:: श्रीः ::

सामाजिक और साहित्यिक

मासिक पत्रिका

वर्ष ८, खंड १

श्रावण-पौष, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)

अगस्त-जनवरी, १९३४-३५ ई०

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(संपादक गंगा-पुस्तकमाला)

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

साधारण संस्करण		सस्ता संस्करण	राजसंस्करण	
वार्षिक मूल्य	६)	(केवल फुटकर बिक्री	वार्षिक मूल्य	१२)
एक प्रति का मूल्य	॥=)	के लिये)	एक प्रति का मूल्य	१।)
विदेश के लिये वार्षिक	७)	मूल्य ।)	विदेश के लिये वार्षिक	१४)

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

चित्र-सूची

क—रंगीन

चित्र-सूची

ख—व्यंग्य

ग—सादे

सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८	१ अगस्त, १९३४—	संख्या १
खंड १	श्रावण-कृष्ण ६, ३११ तुलसी-संवत (१९९१ वि०)	पूर्ण संख्या ९७

गीत

[श्री पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

तुम्हारे सुंदरि, कर सुंदर
मिलाए हुए वर अमर-मर।

अनावृत, सुकृत-स्नेह के प्राण,
अमृत-ही-अमृत, ज्ञान-ही-ज्ञान;
मृत्यु को अपने ही कर म्लान
कर दिया तुमने प्रिया सुघर।

छिन्न कर जुड़े हुए सब पाश,
प्रणय का खोल दिया आकाश :
मृत्यु में पैठ भंग-भ्रू-लास
रंग दिखलाती हो विस्मर।

गीत

[महाकवि श्रीसुमित्रानंदन पंत]

नव हे, नव हे !
नव-नव सुषमा से मंडित हो
चिर पुराण भव, हे !

नव ऊषा - संध्या अभिनंदित,
नव-नव ऋतुमयि भू, शशि-शोभित,
विस्मित हो देखूँ मैं अतुलित
जीवन-वैभव, हे !

बाँधे रहें मुक्ति को बंधन,
हो सीमा असीम - अवलंबन,
द्वार खड़े हों नव-नव सुख-दुख
विजय-पराभव, हे !
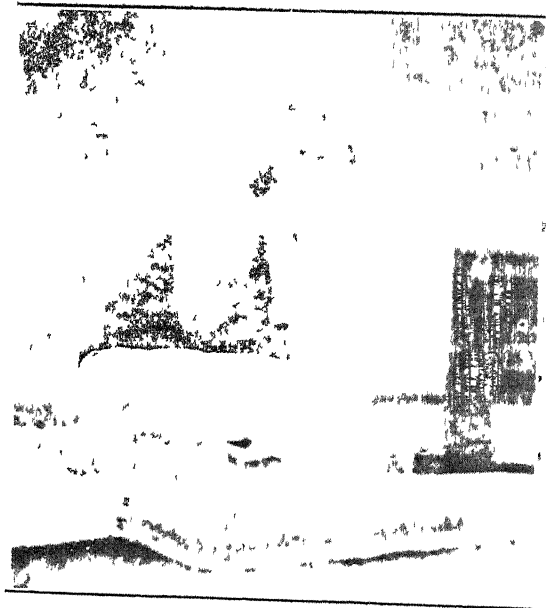
महाकवि श्रीसुमित्रानंदन पंत

नव शैशव - यौवन हिल्लोलित,
जन्म-मरण से हो जग दोलित,
नव इच्छाओं का हो उर में
आकुल पिक-रव, हे !

अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुख-दुख के अस्थिर-डग,
मेरे ही जीवन से जीवित
यह जग का शव, हे !

एकतारेवाला

[श्रीपं० गोविंदवल्लभ पंत]

संध्या समय भीड़ से भरी नगर की सड़कों पर वह कभी कभी दिखाई देता है। मुझे उसका नाम मालूम नहीं है, पर आकृति और वेश से वह सहज ही पहचाना जा सकता है।

नंगे पैरों के ऊपर बटन लगा सफ़ेद पायजामा और एक कुरता पहने वह घूमता है। काल-चक्र ने निर्दयता से उसके गंभीर मुख-मंडल में अनेक गहरी रेखाएँ खुरच दी हैं। उसकी हँसी में भी वे उदास रेखाएँ मिट नहीं जातीं, उसकी छोटी-छोटी सफ़ेद दाढ़ी भी उन्हें छिपा नहीं सकती।

सिर में अस्त-व्यस्त साफ़ा, उसके ऊपर एक डलिया में अनेक एकतारों का बोझ सँभाले वह सड़क के एक किनारे से भीड़ चीरता हुआ चला जाता है। बाएँ हाथ में एक छोटा-सा एकतारा और दाहने में एक गज़ लिए वह उस यंत्र से सुमधुर रागिनी निकालता हुआ—उस प्रकाश की संधि को अधिक अनुरागमयी करता हुआ चला जाता है।

बड़ी ही धीर और सतर्क गति से वह सड़क की भीड़, मोटर-ताँगे, इक्के-ठेलों के झुंड में अपना मार्ग निकाल लेता है। जाते हुए कभी उसकी रागिनी का सूत्र नहीं टूटा, न उसने कभी ठोकर खाई, और न किसी का खोंचा उल्टा!

अपनी ही धुन में मस्त वह एकतारेवाला सीधा चला जाता है। अनेक रंग रंजित भीड़ में उसकी आँखें उलझतीं नहीं। भाँति-भाँति के दृश्यों में उसका मन फँसता नहीं। वह दृष्टि सीधी रख एकतारे के तार में गज़ घिसता हुआ चला जाता है।

वह एकतारों को बेचने के लिये नगर में आता है। वह अपनी किसी भी कृति से अपने मतलब को प्रकट नहीं करता। केवल उस एक तार से प्रचलित पथ-गीतों को निकालता हुआ चला जाता है। उसका कितना साफ़ और मँजा हुआ हाथ है। वह जो भी गीत बजाता है, वह अपने पूरे रूप, परिच्छद और अलंकारों के साथ वायु-मंडल में आकर मूर्तिमान् हो जाता है?

बिलकुल बेग़रज़ होकर वह एकतारा बजाते हुए चला जाता है। कभी उसने और फेरीवालों की तरह कोई आवाज़ नहीं लगाई। किसी के सामने खड़े होकर एक एकतारा ख़रीद लेने की अभ्यर्थना नहीं की। कदाचित् इसीलिये उसका एकतारा बिकता है। सप्ताह में एक-आध दिन जब कभी वह फेरी लगाता है, तब ज़रूर अपनी डलिया ख़ाली कर के ही घर लौटता है।

एकतारे में उसका मोहक गीत सुनकर बालक मचल जाता है। पार्क में रीढ़ झुकाए बैठा हुआ मनुष्य उदासी खोकर उसके गीत में ताल देने लगता है। सौदा ख़रीदने को आए हुए स्वामी कुछ भूलकर घर लौटते हैं। नवीन प्रेमी के मन का स्वर-सप्तक एकतारे के गीत की चोट खाकर जाग उठता है, और वह भी अपना 'दर्दे-दिल' गुनगुनाने लगता है। समझदार कहने लगते हैं—"वाह, कला इसे कहते हैं। माध्यम तो केवल एक निमित्त-मात्र है। गुणी लकड़ी पत्थर में से संगीत निकाल सकता है, निर्गुणी को अच्छे-से-अच्छा यंत्र भी दो, तो उससे क्या होता है!"

एकतारेवाले ने आरंभ में अपने शौक के लिये ही पहले एकतारे का निर्माण किया था। तब उसे

पेट की चिंता नही करनी पड़ती थी। यौवन में वह घर और वन में उस तार से गीत निकालकर उससे प्रभात और संध्या को एक में मिला देता था। उसके पिता उससे नाराज़ रहते थे। माता कहती थी—"बेटा, कुछ खाने कमाने की चिंता करो। हम लोग सदा नही बैठे रहेगे। तुम्हारे दिन कैसे कटेगे।" बेटा हँसी में ही माता की सलाह उडा देता था।

बिलकुल बेग़रज होकर वह एकतारा बजाते हुए चला जाता है।

माता-पिता के मरने के बाद अत मे एकतारेवाले को संसार का बोध हुआ। उसने देखा, मरीचिका चारो दिशाओं मे थी, और पानी की बूँद—कहीं पर भी नहीं। गृहिणी कहती थी—"शाम के लिये आटा नहीं है।" पड़ोसी नहीं पूछते थे—"खाया कि नहीं?"

उस दिन वह बहुत सुबह ही उठ गया, और उसने अपनी पत्नी को जगाकर कहा—"देखो, अब हमे भूखो नहीं मरना पड़ेगा।"

पत्नी ने उदासीनता दिखाकर कुछ उत्तर नहीं दिया।

"सुनती नहीं हो। अब हमारे अँधेरे दिन बीत गए। जमा करने से क्या होता है। खाने-पहनने के लिये मिल जायगा।"

"कहाँ से?"

"मैने अभी अभी सपना देखा है!"

"कहीं गड़े धन का पता मिला है क्या? पर जब वहाँ खोदने से कुछ मिले, तब न?"

"मुझे गड़ा धन नहीं चाहिए।"

"फिर?"

"मै गीत बेच लाऊँगा।"

पत्नी चुप रही।

"तुम चुप क्यो हो गई? मैं नगर मे बाबू लोगों के हाथ गीत बेच डालूँगा। इतने दिन तक उसे छिपाकर रक्खा है, अब तबीयत घबरा उठी है। तुम्हारा उदास मुख मुझसे देखा नहीं जाता।... ... गीत मेरी सबसे बड़ी निधि है। तुम्हे सुखी करने के लिये मै उसे बेच डालूँगा।"

पत्नी उठ खड़ी हुई, और वह गाँव के कुम्हार के यहाँ साठ सत्तर मिट्टी के दीपक बना उनके आमने-सामने के किनारो पर दो छोटे-छोटे छेद कर पका देने की प्रार्थना कर नगर की ओर चला गया।

नगर मे जाकर उसने कुछ पतला लोहे का तार तथा दो पैसे का लाल-नीला रंग ख़रीदा, और

गाँव को लौटते समय घर के निकट एक बाँस की झाड़ी से एक सूखा बाँस काटकर ले गया।

कुछ खा-पीकर बाँस छीलने बैठ गया। पत्नी ने मुँह फुलाकर कहा—"यह क्या कूड़ा करने लगे। तुम्हें परिश्रम करते हुए बड़ी लाज लगती है। तुम्हें समझाते-समझाते तुम्हारे माता-पिता स्वर्गवासी हो गए, और अब—"

"चुप रह, तुझसे पहले मैं मर जाऊँगा।"

पत्नी अप्रसन्न होकर चक्की पीसने चली गई।

उसने बाँस से अँगूठे-बराबर मोटे, हाथ-भर लंबे कई टुकड़े काटे, और उन पर चाकू की धार घिस-घिसकर उन्हें चिकना बना डाला।

संध्या-समय वह उठा, और अपने बाल-सखा एक क़साई के यहाँ गया। वहाँ जाकर उसने दूसरे दिन के लिये कुछ मांस की झिल्लियाँ और कुछ लंबे बालों का इंतिज़ाम किया। वहाँ से वह कुम्हार के यहाँ गया। कुम्हार ने उसके आदेशानुसार दीपक बनाकर दिन-भर में सुखा लिए थे, अब वह उन्हें भट्ठी में पकाने जा रहा था।

दूसरे दिन कुम्हार और क़साई के यहाँ से अपनी चीज़ों का संग्रह कर वह अपने आँगन में बैठ गया। उसने पुकारकर कहा—"अरी! ले आ, एक चिलम तंबाकू भरकर तो दे जा। मेरी कारीगरी शुरू होना चाहती है। आ, तू भी कुछ मदद दे।"

उसने दीपकों में झिल्लियाँ मढ़कर उन्हें एक-एक कर सूखने को रख दिया, फिर उनके छेदों में बाँस के तैयार टुकड़ों का एक सिरा जमाया। बाँस के दूसरे सिरे पर उसने छेद कर उसमें एक छोटी बाँस की खूँटी लगाई। झिल्ली के ऊपर लगभग एक इंच लंबा, आधा इंच चौड़ा एक और चपटा बाँस का टुकड़ा रखकर उसने उसका 'ब्रिज' बनाया। फिर तार का एक सिरा खूँटी पर लपेटकर 'ब्रिज' के ऊपर से निकालकर दीपक के नीचे आधे इंच निकले हुए बाँस पर बाँध दिया।

इस प्रकार उसने साठ पैंसठ एकतारे तैयार किए, और उतने ही बालों के छोटे-छोटे गज़ बनाए। एकतारों के बन जाने पर उसने उनमें कुछ लाल-नीले रंग की रेखाएँ खींच दीं।

संध्या निकट थी, नगर भी कुछ दूर न था। तमाम एकतारों को डलिया में सजाकर उसने उसे सिर पर रख लिया। एक एकतारा और गज़ हाथ में लेकर वह शहर की ओर चलने लगा।

पत्नी ने कहा—"इन्हें कौन ख़—"

"चुप रहो, छींको मत। इस समय अशकुन-भरी वाणी न बोलो।" कहकर उसने उस एकतारे में एक गत का टुकड़ा बजाया।

पत्नी उस ध्वनि को सुनकर सिहर उठी!

एकतारेवाले ने सम पर गत तोड़कर कहा—"इस तरह मेरे मन की पीड़ा मेरे हाथों से होकर इस तार से निकलेगी, और मैं उसे बेच लाऊँगा। वह भीख न कहलाए, यह एकतारा उस कलंक को ढक देने के लिये है।"

रात को एकतारेवाले ने डलिया पत्नी के सामने उलट दी, और उसकी अंजलि में पैसे गिनते हुए कहा—"प्रिये! उतने ही एकतारे और होते, तो मैं उन्हें भी कुछ ही देर में बेच लाता। परंतु लालच बढ़ाना ठीक नहीं है।"

इस प्रकार उसका शौक पेशे में बदल गया। कहते हैं, उसी दिन से उसकी कला अधिक सजीव हो उठी। वह यंत्र का निर्माता, वादक और विक्रेता, सब कुछ बना। महीने में पाँच-छ दिन नगर में जाकर दो-चार घंटे में अपनी डलिया ख़ाली कर घर लौट जाता है। इसी प्रकार उसके काले बाल सफ़ेद होते जा रहे हैं।

एकतारेवाला अपने आकर्षण को स्थिर रखने के लिये पुराने गीतों को छोड़ता हुआ पथ के नवीन गीतों को याद करता और अपने एकतारे से उन्हें वायु-मंडल में प्रसारित करता जाता है। इस प्रकार

परिवर्तनशील जगत् में वह सदैव नवीन ही दिखाई देता है।

कुछ लोगों ने उसका अनुकरण कर उसकी वृत्ति को विभाजित कर देने के लिये कमर कसी। उन्होंने ठीक वैसे ही एकतारे बना लिए, पर वे उनमें से उस एकतारेवाले की भाँति स्पष्ट गीत नहीं निकाल सके! उनका श्रम व्यर्थ गया। यही पर एकतारेवाले की सफलता का रहस्य था। वास्तव में बाज़ार में एकतारा नहीं बिकता था, एकतारेवाले की कला बिकती थी। वह उस कला को साथ लेकर पैदा हुआ था, उसने अपने जन्म की साधना से उसे परिपूर्ण किया था। उसकी ऐसी निधि को आसानी से बिना उपयुक्त बलि दिए कौन छीन सकता है?

अधिकतर लोग उसके एकतारों को बच्चों के बहलाने के लिये ही ख़रीदते हैं। पर कभी-कभी उसके यंत्र से सही गीत निकलते हुए सुनकर बड़े-बड़े भी उसके फेर में फँस जाते हैं। अनेक दिन से उसके एकतारे को सुनता हुआ चला आ रहा था। हृदय के किसी कोने में राग के प्रति अनुराग छिपा हुआ था। फिर उस एकतारे का मूल्य भी क्या था—केवल दो पैसे! उस दिन एक एकतारा मैं भी ख़रीद लाया। और कमरे के द्वार बंद कर उस छोटे-से यंत्र पर गज़ चलाने लगा। मन में सोचा था, कदाचित् प्राणों की सुप्त रागिनी उस यंत्र की सहायता से जाग उठेगी। एक-आध घंटे उस पर परिश्रम किया, कुछ भी फल नहीं हुआ। समझने लगा, कदाचित् यंत्र में ही कुछ कसर हो। परंतु नहीं, मैं उससे वही एकतारा ख़रीद लाया था, जिसे बजाता हुआ वह जा रहा था। फिर यंत्र पर विश्वास बढ़ा, और फिर परिश्रम करने लगा। सब व्यर्थ ही साबित हुआ, गीत का कोई भी टुकड़ा साफ़ नहीं निकला। असफलता के समस्त कारण अपने ही सिर पर स्थापित कर मैंने वह यंत्र अपनी मेज़ के नीचे रख दिया। कुछ दिनों के अंतरों में फिर एक आध बार नवीन उत्साह-पूर्वक यंत्र को हाथ में लिया, और फिर कुछ फल न निकला!

उस दिन इतवार की छुट्टी थी। मेरे एक मित्र अपने बालक को लेकर मेरे यहाँ आए हुए थे। बालक ने मेज़ के नीचे उस यंत्र को देखकर कहा—"बाजा है!"

बालक ने मेरी दुर्बलता प्रकट कर दी थी। मित्र ने कुछ आश्चर्य से पूछा—"यह खिलौना क्यों रक्खा है?"

"शीघ्र ही प्राचीन न पड़ जाऊँ, इसलिये।" मैंने हँसते हुए उत्तर दिया।

उन्होंने फिर दूसरा प्रसंग छेड़ दिया।

मित्र के बिदा होने के समय मैंने वह एकतारा निकालकर उसकी धूल झाड़ दी। गीत का मोह छोड़कर वह एकतारा उस बालक को दे दिया। बालक प्रसन्न होकर पिता के साथ चला गया।

अब भी जब कभी मन में देश-काल का ज्ञान विस्मृत हो जाता है, तब उस एकतारेवाले के दूर रहने पर भी उसका बाजा बजते हुए सुन पाता हूँ। उसकी तर्ज़ में यदि शब्द स्थापित किए जायँ, तो शायद इस प्रकार है—

"या इलाही, मिट न जाए दर्दे-दिल!"

हकीम अफ़िस्क़ूरातीस

[श्रीअवधवासी लाला सीताराम बी० ए०]

भारतवर्ष के कपिल आदि आचार्यों की भाँति रोम और यूनान मे भी कुछ ऐसे लोग हो गए हैं, जिनके सिद्धांतों का पश्चिमी सभ्यता पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। ऐसे लोगों को अरबी-भाषा में हकीम कहते हैं। यद्यपि आजकल हमारे देश में यूनानी वैद्य हकीम कहलाते हैं। उनमें एक ज़ीनो था। ज़ीनो सैप्रस टापू का रहनेवाला था। बचपन मे उसने सुकरात के अनुयायियों के ग्रंथ पढ़े, फिर यूनान की राजधानी एथेंस में जाकर सिद्धांत की पुस्तकों और दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन किया, और बीस वर्ष तक उसी मे मग्न रहकर उसने अपना सिद्धांत परिणत किया, और एक दालान (अँगरेज़ी पोर्च, यूनानी स्टोआ) में शिक्षा देने लगा। इसी से उसके अनुयायी स्टोइक कहलाने लगे। एथेंस-निवासी उसका बड़ा आदर करते थे। उसके सिद्धांत का मूल-मंत्र आज सुधा के पाठकों की भेंट किया जाता है।

विज्ञान का मूल-मंत्र

१—तुम भले होना चाहते हो, तो पहले इस बात का विश्वास कर लो कि तुम बुरे हो।

२—जो लोग विज्ञान के मंदिर में सीधी राह से प्रवेश करना चाहते हैं, और उसकी प्राप्ति की उचित रीति जानते हैं, वे नित्य के व्यवहार की बातों मे अपना अज्ञान और अपनी निर्बलता को मान लेना विज्ञान का पहला सिद्धांत मानते है।

३—यह प्रत्यक्ष है कि हम जब संसार मे आए थे, तो हमको समकोण त्रिभुज या स्वर और ताल का ज्ञान एक विशेष कला सीखने या सुनने से हुआ था। ऐसे ही जो लोग इन बातों को नहीं जानते, उन्हें कभी इनके जानने की चिंता नहीं होती। परंतु
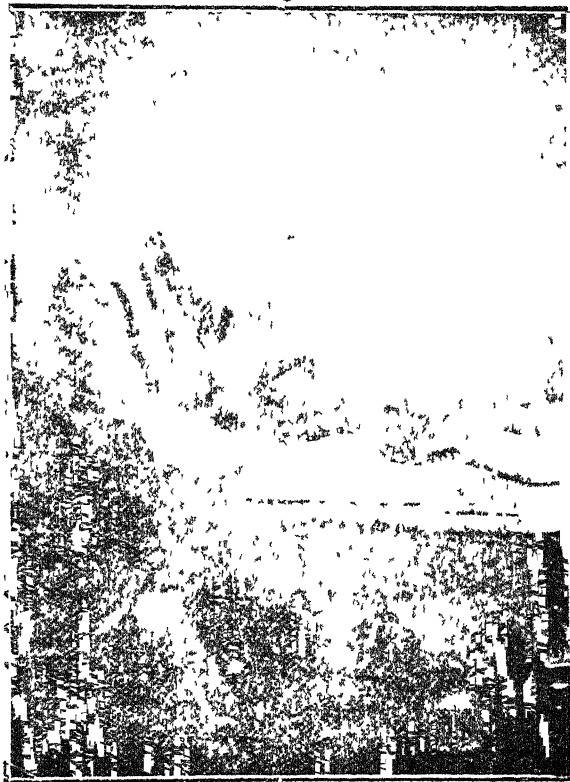
श्रीअवधवासी लाला सीताराम बी० ए०

भलाई, बुराई, शिष्टाचार और नीचता, सुंदर और

कुरूप, सुख-दुःख, लगाव और बेलगाव, हमको क्या करना चाहिए, और क्या न करना चाहिए, इत्यादि बातों का विचार सबको होता है।

हम लोग सदा इन शब्दों का प्रयोग करते और प्रत्येक वस्तु के विषय मे अपना मंतव्य स्थिर कर लेते है कि उसने अच्छा किया, अच्छा नहीं किया, ठीक किया या ठीक नहीं किया, सफल हुआ, या सफल नहीं हुआ, वह बुरा है, वह अच्छा है। ऐसे वाक्य किसके मुँह से नहीं निकलते। वह कौन है, जो इन शब्दों के अभिप्राय सीखने और समझने के विचार से उनके प्रयोग करने मे सकोच करेगा? या संगीत-शास्त्र या रेखागणित के शब्दों की भाँति उस विद्या को बिना जाने नित्य के बोल-चाल में इन शब्दों के प्रयोग करने मे सोच-विचार करेगा। इसका कारण यह है कि जब हम संसार में आते हैं, उसी समय आप-से-आप इन विषयों की शिक्षा दी जाती है, या यों कहना चाहिए कि प्रकृति हमको कुछ शिक्षा देकर ससार मे भेजती है, इसलिये हम लोग नित्य के व्यवहार में अपनी बुद्धि से काम लेते है। जैसे हम लोग कहते हैं—

प्रश्न—भले और बुरे मे विवेक कैसे किया जाता है?

उत्तर—क्या हम इतना भी नहीं जानते।

प्रश्न—क्या प्रत्येक वस्तु पर इन शब्दों का प्रयोग नहीं करते?

उत्तर—अवश्य करते हैं।

प्रश्न—क्या हमारा प्रयोग करना ठीक नहीं है? इसी प्रश्न के उत्तर में संदेह है, और यहीं आदमी अपनी बुद्धि से काम लेता है।

पहले तो तर्क-वितर्क में ऐसी बातें कही जाती हैं, जिसमें किसी को संदेह नहीं है, परंतु परिणाम ऐसा निकाला जाता है, जिसमे बहुत कुछ सदेह है। प्रयोग करने की यह रीति ठीक नहीं है, क्योंकि प्रारंभिक बुद्धि के साथ तुम्हे प्रयोग की रीति भी आ गई, तो सिद्ध होने मे क्या कसर रह जायगी।

परतु तुम यह समझते हो कि हम अपनी बुद्धि का प्रयोग उचित करते हैं। हम तुमसे यह पूछते हैं कि तुमको इसका विश्वास कैसे हो गया है? तुम यही कहोगे कि हमको ऐसा ही जान पड़ता है। परंतु तुम्हारे साथ एक और है, जिसको ऐसा नहीं जान पड़ता, तो क्या वह अपने प्रयोग को ठीक नहीं समझता?

उत्तर—हाँ, वह भी ठीक समझता है।

प्रश्न—यह भी संभव है कि तुम दोनो अपनी अपनी बुद्धि का ठीक-ठीक प्रयोग करते हो, परंतु तुम दोनो में इतना मतभेद है।

उत्तर—कभी नहीं। तो फिर तुम्हारे पास अपने प्रयोग के ठीक होने का और भी कोई प्रमाण है? क्या यह है कि हमको ऐसा जान पड़ता है। यदि जान पड़ना ही प्रमाण हो, तो पागल भी वही काम करता है, जो उसको ठीक जँचता है।

उत्तर—कभी नहीं।

प्रश्न—तो अब उस बात की खोज करनी चाहिए, जो 'जान पड़ने से' भी बढ़कर है।

४—उत्तर—सोचो। विज्ञान की जड़ यही है कि मनुष्य के मतभेद पर विचार किया जाय, और यह देखा जाय कि इस मतभेद का कारण क्या है। अपनी राय को तुच्छ समझो, और उस पर विश्वास न करो।

विज्ञान का आधार इस विषय की जाँच है कि जो कुछ हो रहा है, वह सत्य है या असत्य, और जैसे हम तौलने के लिये तराज़ू और सीधी व टेढ़ी के लिये सुहावल बनाते हैं, इसी तरह इस विषय की जाँच के लिये नियम बना लें। विज्ञान का पहला सिद्धांत यही है, जैसे इस बात पर विचार किया जाय कि जो विषय किसी को उचित जँच रहा है, वह समीचीन है, या उसके उचित जँचने पर ही

उसकी समीचीनता निर्भर है, जैसा हमने ऊपर लिखा। एक ही बार किसी को एक पक्ष से और किसी को दूसरे पक्ष से उचित प्रतीति होती है, तो क्या यह भी सभव है कि परस्पर विरुद्ध बाते भी ठीक हों? इसके उत्तर मे कोई यह कहे कि सब विषयों में नही, केवल उन्हीं बातों में, जो हम लोगों को ठीक जँचती हैं। तो हम तुमसे यह पूछते है कि मिस्रवालों या शामवालों की अपेक्षा तुम विशेष बुद्धिमान् क्यों माने जाओ? किसी दूसरे की अपेक्षा मुझमे क्या विशेषता है। इससे यह विदित हुआ कि 'जान पड़ना' या समझ मे आना वास्तविक ज्ञान की समता नहीं रखता। यह भी तो विचारिए कि नाप और तौल मे सिर्फ़ देखने से ही हमारा संतोष नही होता, और हमने पूरी जाँच के लिये एक नियम बना रक्खा है, और यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान से बढ़कर और कोई नियम ही नही है। यह भी हो सकता है कि ऐसे विषयों के लिये, जो अत्यंत आवश्यक है, कोई नियम न हो। हम निश्चय कह सकते है कि नियम है, और जब यह निश्चित हो गया, तो हम लोग उसकी खोज क्यो न करें, और जब उस नियम का हमको ज्ञान हो जाय, तो उससे काम क्यों न ले, और कोई काम कितना ही छोटा क्यो न हो, उसके प्रतिकूल न होने दें। हम तो यह समझते है कि अगर ऐसे नियम का ज्ञान हो गया, तो जो लोग ऊपर के रूप और ऊपर के कार्यों से प्रत्येक विषय का अनुमान करते हैं, उनका पागलपन दूर हो जायगा, और वे नित्य के व्यवहार मे उन वस्तुओं का विचार रक्खेगे, जो हमको ठीक-ठीक विदित हो चुकी है।

४—अब प्रश्न यह हो सकता है कि किस बात की जाँच की जाय? मान लो, सुख की जाँच अपेक्षित है। सुख को इस नियम से जाँचो। एक नियम यह है कि जो वस्तु अच्छी है, उसको ऐसा होना चाहिए कि उस पर भरोसा किया जा सके। अब देखना चाहिए कि जो वस्तु स्थिर नहीं है, उस पर भरोसा हो सकता है या नहीं?

उत्तर—कभी नहीं।

प्रश्न—सुख स्थिर है?

उत्तर—नही। सुख को तराज़ू से निकालकर फेक दो, और सत् से दूर रक्खो। अगर तुम्हारे विचार में भ्रम है, और तुम्हारे लिये एक नाप काफ़ी नही है, तो दूसरी नाप लो। वह यह है—जो वस्तु सत् नहीं है, उस पर अभिमान करना उचित है या अनुचित?

उत्तर—अनुचित। फिर सुख से फूल जाना उचित है? ख़बरदार, उचित न कहना, नहीं तो हम तुम्हें तराज़ू के योग्य न समझेंगे। ऐसे ही संसार मे प्रत्येक वस्तु तौली जाती है, और नियम का ज्ञान हो, तो उससे जाँची जाती है। विज्ञान का प्रयोजन केवल यही है कि नियमो और सिद्धांतों की जाँच करे, और उसी के अनुसार एक नियम बना ले। और, बुद्धिमान् का यह काम है कि जब नियम स्थिर हो गए, तो उनका प्रयोग करे।

हिंदू-जाति और गांधी

छुआछूत नागिन-डसी परी जु जाति अचेत,
देत मंत्रना-मंत्र ते गांधी गारुड़ि चेत।

नागिन = साँपिन। मंत्रना = उपदेश। गारुड़ि = मंत्र से साँप के विष को उतारनेवाला।

जर्मनी का मुसाफ़िर

[स्नातक श्रीधीरेंद्रकुमार मेहता (जर्मनी से)]

(१)

रप के महायुद्ध के समय मेरी उम्र १० या ११ बरस की होगी। मुझे याद आता है, मैं उस समय लड़ाई की कहानियाँ कितनी दिलचस्पी से सुनता था। वाचनालय मे जाकर रोज़ अखबार के पन्ने उलटता और लड़ाई के चित्र देखने मे घंटों बिता देता। कभी आकाश मे विमान की आवाज़ सुनाई देती, तो आधी रात को भी नींद से उठकर कमरे से बाहर निकल आता और प्रातःकाल अपने दोस्तों को बडे गर्व से सुनाता—"आज रात को मैंने जर्मनीवालों का विमान उड़ते देखा था। शायद जर्मनी के सिपाही लड़ते-लड़ते हिंदोस्तान तक पहुँच गए है।" बालकों की कल्पना-शक्ति अत्यत विलक्षण होती है। मै भी अभी बालक था। सुनता था, लड़ाई मे बेचारा जर्मनी एक ओर है और सारा योरप दूसरी ओर। मेरी सहानुभूति जर्मनीवालों के साथ थी, क्योंकि अकेला जर्मनी सारी दुनिया के साथ मोरचा लिए हुए था। अखबारों मे भी जर्मनी की ही दुहाई सुनाई देती थी। कभी सुनता था—"जर्मनीवाले पेरिस तक पहुँच गए है। इँगलैंड पर धावा बोल दिया है।" एक बार यह भी सुना था कि "एमडन-जहाज़ ने आकर मद्रास शहर पर बम फेके थे।" यह तो लड़ाई की बात हुई, परंतु जर्मनी के कला-कौशल की ख्याति भी अनुभव कर रहा था। मेरी पेंसिल पर 'मेड इन जर्मनी' लिखा हुआ था। मेरी स्लेट भी जर्मनी की बनी हुई थी। मेरे चाक़ू पर भी जर्मनी का ही सिक्का था। बच्चों को रंगों का बडा शौक होता है, मुझे तो इसका ख़ास शौक था। अगडम-बगड़म चित्र बनाकर मै अपने ड्राइंग-टीचर के पास पहुँच जाता, और उनसे चित्र मे भरने के लिये रंग माँगता। वह मुझे सडियल रंग देकर टरका देते। परंतु मै उनसे जर्मनी के बने रंग माँगने का हठ करता, क्योंकि मैं जर्मनी के रंग बहुत अच्छे समझता था। इन सब बातों के कारण मेरे हृदय में जर्मनी के प्रति आदर मिश्रित भाव थे। इस देश के नाम से मैं ख़ूब परिचित था। यदि उस समय मुझसे कोई पूछता कि इँगलैंड कहाँ है, तो मैं न बता सकता, परंतु जर्मनी का नाम भूगोल के नक़्शे में ढूँढ़ निकालना मेरे लिये अत्यंत सुगम था। मै अपने भूगोल के अध्यापक का जर्मनी का नाम बताने के लिये लेश-मात्र भी ऋणी नहीं हूँ।

जर्मनी लड़ाई में शिकस्त खा गया। हमारे स्कूल मे उस दिन ख़ुशी मनाने के लिये छुट्टी हो गई थी। छुट्टी पाकर कौन-सा विद्यार्थी ख़ुश नहीं होता, परंतु मै ख़ुश नही था। क्योंकि जर्मनी के हार जाने के कारण मैं अपनी रंगों की डिबिया हार गया था। मैंने अपने सहपाठी के साथ शर्त लगाई थी कि "यदि जर्मनी हारा, तो मैं उसे अपने रंगो की डिबिया दे दूँगा; यदि जीता, तो वह मुझे अपना चाक़ू दे देगा।" हम दोनो ही अपनी शर्तों पर दृढ़ थे। मुझे अपनी डिबिया दे देनी पड़ी। छुट्टी का सारा दिन बहुत ख़राब बीता। जर्मनी की बहादुरी पर विश्वास करके शर्त लगाई थी, परंतु मेरा विश्वास झूठ निकला। सारी दुनिया ने मिलकर अकेले जर्मनी को हराया, इसमें कौन-सी बहादुरी की बात है।

यह मेरा बचपन का जर्मनी था। बाल्यकाल में ही जर्मनी के प्रति मेरी जो भावनाएँ उत्पन्न हुई थीं, शायद उन्हीं का यह परिणाम है कि आज २० वर्ष बाद मेरा वह शैशव-स्वप्न यथार्थ हो रहा है।

(२)

समुद्र की मुसाफ़िरी में कितना सौंदर्य है, इसका अनुभव उन्हें ही हो सकता है, जिन्हें ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ हो। परंतु इस सौंदर्य की सर्वथा उपेक्षा कर मैं मुसाफ़िरी का वही भाग वर्णन करूँगा, जिसका योरप के साथ सीधा संबंध है। भारत से चलते वक्त मुझे अँगरेज़ी के सिवा अन्य किसी पाश्चात्य भाषा का ज्ञान नहीं था। बंबई से जर्मन-भाषा का एक 'Self German Teacher' ख़रीद लिया था; परंतु १०-१२ दिन में भला क्या सीखा जा सकता है। जहाज़ पर तो अँगरेज़ी-भाषा से काम चल गया, परंतु ज्यों ही 'मारसेल्स' के बंदर पर उतरा, मुझे अपनी भूल मालूम हुई। कहते हैं, योरप में अँगरेज़ी से काम चल जाता है, परंतु कभी धोका मत खाइएगा। अनुभव इस बात की पुष्टि नहीं करता। दुनिया की मुसाफिरी के लिये अँगरेज़ी का ज्ञान अत्यंत सहायक है, परंतु योरप की मुसाफ़िरी में 'फ्रेंच' भाषा का ज्ञान विविध कठिनाइयों से बचा देता है। जहाज़ से उतरते ही मुझे चार-पाँच कुलियों ने घेर लिया, और मेरा सामान सत्यानास करने लगे। मैं तो समझता था, योरप की सभ्यता में इस असभ्यता का स्थान नहीं है, परंतु यहाँ भी हरिद्वार के स्टेशन का-सा नज़ारा सामने आ गया। बंदर पर रम्य भिखारियों को भीख माँगते देख मुझे जो आश्चर्य हुआ था, इन कुलियों ने द्विगणित कर दिया। एक ओर भिखारी सता रहे थे, दूसरी ओर कुली मेरे सामान के लिये मेरी नाक में दम कर रहे थे। मेरा सामान हथियाने के लिये वे बुरी

श्रीधीरेंद्रकुमार महता

तरह झगड़ रहे थे। यदि मुझे भाषा का ज़रा-सा भी ज्ञान होता, तो मैं उन्हें शांत कर सकता था, परंतु उनकी 'वें', 'वें' मेरी समझ में बिलकुल न आई। अंत में मुझे अँगरेज़ी जाननेवाले 'थॉमस कुक' के 'वेगन लिट्स' की शरण लेनी पड़ी, और मामला शांत हो गया। वेगन लिट्स थॉमस कुक कंपनी के एजेंट हैं, और दुनिया के प्रत्येक बंदर पर

(कम-से-कम मुख्य बंदरों पर) मुसाफिरों की सहायता के लिये तत्पर रहते हे। इनकी लाल टोपियों पर 'वेगन लिट्' लिखा रहता है। इनकी सहायता से मुसाफिरी की सब व्यवस्था की जा सकती है। इन दलालों की सहायता से मैंने अपना सामान सीधा जर्मनी (म्युनिक्) के लिये बुक करवा दिया।

मारसेल्स फ्रेंच सरकार के हाथ मे है। दो-तीन घंटे पहले से ही मारसेल्स की पहाडियाँ दिखाई देने लगती हैं। किनारा दिखाई देने पर ऐसा प्रतीत होता है, मानो १५ २० मिनट मे ही जहाज़ लंगर डाल देगा, परंतु स्टीमर को किनारे लगने और रस्सों से बाँध-छोड करने मे ही एक घटा निकल जाता है। अनुभवी यात्री इस बात से परिचित होते हुए भी उतरने के लिये न-जाने क्यों अधीर बन जाते हैं। शायद इसका कारण यात्रा से उकता जाना है। मारसेल्स में जहाज़ लगभग ख़ाली हो जाता है। योरप खंड के इतर भागों मे जानेवाले मुसाफ़िरों का तो यहाँ उतरना ही पड़ता है, बल्कि इंगलैंड के मुसाफिर भी बहुधा यहीं उतरना पसद करते हैं। क्योंकि मारसेल्स से २४ घंटे में ही, ट्रेन द्वारा, लंदन पहुँचा जा सकता है, और स्टीमर को लदन पहुँचने दो दिन लगते हैं। दूसरा कारण 'बे आफ़् बिस्की' के तूफ़ान से बचना भी कहा जाता है, क्योंकि इस खाड़ी मे अक्सर भयंकर तूफ़ान रहता है। समुद्र-यात्रा का सारा आनंद क्षण-भर मे किरकिरा हो जाता है, यदि दैववशात कभी जहाज़ मे तूफान आ गया। तूफ़ानी समुद्र में अननुभवी यात्रियों की क्या दशा होती है, इसका ज्ञान अनुभव किए विना नहीं हो सकता।

मारसेल्स में एक दिन भी ठहरने का समय मेरे पास नहीं था, क्योंकि मुझे यथाशीघ्र म्युनिक् पहुँचना चाहिए था। दिसंबर का महीना था। जाड़ा बहुत सख्त पड़ रहा था। शाम के सात बजे मैं गाडी पर सवार हो गया। योरप की गाड़ियों के डब्बे स्टीम द्वारा गरम रक्खे जाते हैं, परतु यह गरमी मेरे लिये पर्याप्त न थी, क्योंकि मेरे पास न तो ख़ासा ओवर कोट ही था, और न दस्ताने थे। मेरे शरीर के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों ही शीत के कारण ख़ुद मुसीबत मे थे, तो भला शूद्र की वहाँ कौन सुनता! गाडी शैतान की भाँति प्रभु जाने कहाँ लिए जा रही थी। लियोन के स्टेशन पर मुझे गाड़ी बदलनी थी, परंतु वहाँ गाड़ी कितने बजे पहुँचेगी, इसका कुछ अंदाज़ न था। न तो गाडी का टाइम-टेबुल मेरे पास था, और न मेरी रिस्ट-वॉच ही काम कर रही थी। मैंने बडी हिम्मत करके एक मुसाफ़िर को (जो मेरे ही कंपार्टमेंट मे था) लियोन का नाम लेकर नीचे उतरने का इशारा किया, जिससे वह तुरंत समझ गया कि मैं लियोन उतरना चाहता हूँ। रात के क़रीब दो बजे होगे। लियोन आने मे अभी देर है, ऐसी कल्पना कर, मैं भयंकर शीत का ख़याल न कर जैसे-तैसे सोने का बदोबस्त कर रहा था। यात्री ने मुझे हिलाते हुए नीचे उतरने का इशारा किया। इतनी सख्त सरदी में मुझे रात को दो बजे उतरना पडेगा, यह स्वप्न में भी ख़याल न था। परतु अब क्या करूँ? 'थॉमस कुक्' के एजेंट को (जिसने मुझे अधूरी सूचनाएँ दी थीं) मन-ही-मन बुरा-भला कह अपने ही नसीब को कोसने लगा। उतरना ही पडा, क्या करता। गाड़ी सचमुच लियोन-स्टेशन पर खड़ी थी। उतर तो गया, परंतु आधी रात को—जब स्टेशन पर इने-गिने ही व्यक्ति होते हैं, और वे भी शीत के कारण बंद कमरों मे -किससे, कैसे और क्या पूछूँ। होटल का नाम-ठाम जाने विना कहाँ जाऊँ! म्युनिक् की गाड़ी तो दूसरे दिन शाम को चलती थी। आज की रात और सारा दिन लियोन में

बिताना था। कोहरा इतना छाया हुआ था कि सामने जलते हुए बिजली के लैंप भी मुश्किल से नजर आते थे । हाथ-पैर की उँगलियाँ मानो कटकर टूटी जा रही थीं । शरीर में ख़ून चलना बंद हो गया था, समस्त देह शीत के मारे ठिठुर रही थी । कोई आदमी नजर नहीं आता था । शाम को स्टीमर से उतरने की खटपट में पेट भरकर खाना भी नहीं खाया था । एक तरफ़ भूख सता रही थी, और दूसरी ओर जाड़ा । इस हालत में मैं अपना भारी हैंड-बेग हाथ में लिए रात के दो बजे योरप के आकाश के नीचे लियोन-स्टेशन पर पहली बार खड़ा था । 'आकाश'-शब्द भूल से लिख दिया है । आकाश में तो रात को तारे-चाँद नज़र आते हैं, परंतु यहाँ तो कुहरे के सिवा और कुछ नज़र ही न आता था । कोई मानवीय आकृति आती हुई दिखाई दी । 'पोरटर' निकले, तो अच्छा हो, मेरे नसीब जागे । वास्तव में यह पोरटर ही था, क्योंकि इसने आते ही मुझसे बिना कुछ कहे-पूछे मेरा हैंड-बेग हथिया लिया, और कुछ पूछने लगा । ज़रूर वह मेरे जाने का ठिकाना पूछ रहा था । मेरे होटल कहने पर वह समझ गया कि मैं होटल जाना चाहता हूँ । दो-तीन मिनट चलने के बाद हम दोनों एक बड़ी इमारत के सामने आ गए, जिस पर नीली बिजली की बत्तियों द्वारा 'ग्रेंड होटल डि बॉर डेक्स' लिखा था । मैं बिना किसी विलंब के अंदर घुस गया । यदि मेरे साथ पोर्टर न होता, तो निश्चित रूप से होटल जानते हुए भी शायद मुझे अपने अज्ञान के कारण सारी रात बाहर ही रहना पड़ता । दरवाज़े में ताला लगा था, और उसे खुलवाने के लिये बाहर किसी गुप्त जगह पर घंटी का बटन था । मुझे यह बटन सुगमता से मिल सकता था या नहीं, यह संदेहास्पद है ।

अंदर जाकर मैंने पहले पोर्टर को बख़शीश देकर बिदा किया । फ्रांस में, नहीं-नहीं, योरप की भूमि पर मेरा यह पहला ही लेन-देन था, इसलिये इस घटना की उपेक्षा कर आगे बढ़ना अनुपयुक्त है । मुझे उसे क्या इनाम देना चाहिए, इसका निर्णय उस पर ही छोड़ दिया । पहले एक फ्रांक हाथ में रक्खा । उसने हाथ नहीं हटाया । २० सेंट और दिए । हाथ वहीं का वहीं रहा । ४० और रक्खे, फिर भी हाथ स्थिर था । अंत में एक फ्रांक और दिया । मैं अनुभव कर रहा था कि परदेशी जान कर वह मुझसे ज्यादा माँग रहा है । परन्तु उससे झगड़ना नामुमकिन था । झगड़ने के लिये भी तो भाषा का परिचय चाहिए । जब तक उसने हाथ नहीं हटाया, मैं एक पर एक सिक्का रखता चला गया । गनीमत ! तीन फ्रांक लेकर वह चला टला, परंतु यदि उसने मनोविज्ञान (Psychology) पढ़ा होता, तो वह मेरा बटुआ ख़ाली करवा सकता था । अब मैं दूसरे पोर्टर का तावेदार हो गया । उसने मुझे एक अच्छा कमरा खोल दिया । कमरा सेंट्रल हीटिंग सिस्टम द्वारा गरम किया हुआ था ।

(३)

चौदह दिन तक समुद्र की सतह पर सोने के बाद आज पृथ्वी पर सोने में जो आनंद हुआ, वह वर्णनातीत है । हमें 'पोर्ट सैयद' के बाद तीन-चार दिन तक लगातार तूफ़ान का सामना करना पड़ा था । यद्यपि मेरी यह तीसरी समुद्र-यात्रा थी, तथापि भूमध्य सागर के तूफ़ान ने मुझे परास्त कर दिया । तीन दिन बिना कुछ खाए-पिए मैं अपना केबिन में सोता रहा । डेक पर फिरने की कोशिश करता था, परंतु तूफ़ान के कारण सिर चकराने लगता, और उलटी होने लगती । मुझे फिर अपनी केबिन में वापस आ जाना पड़ता । तीन दिन तक मेरी यही हालत रही । जी एकदम उकता गया था, और परमेश्वर से यही प्रार्थना कर

रहा था कि कब मारसेल्स आए, और इस समुद्री बीमारी (Sea-sickness) से छुटकारा मिले। मुसाफिरी की थकावट और बीमारी के कारण आज रात को गहरी नींद आई। प्रातःकाल १० बजे आँख खुली। नित्यकर्म से निवृत्त होकर सबसे पहले खाने की फ़िक्र करने लगा। नित्यकर्म करने में भी कितनी ही रोचक घटनाएँ घटीं, परंतु उनका वर्णन मैं प्राइवेट कानों को सुनाने के लिये ही रिज़र्व रखता हूँ। कमरे में मेरे सिरहाने के पास टेलीफोन लगा था, इसका उपयोग क्यों न करता। होटल-मैनेजर को टेलीफोन कर नाश्ता (Breakfast) मँगवाने की हिम्मत की। सामने से 'टेलो' की पतली, मीठी आवाज आई। टेलीफ़ोन पर कोई स्त्री होगी, यह विचार कम-से-कम उस समय मेरे हृदय में नहीं था। मैं अभी भारत के ही स्वप्न देख रहा था। योरप में दैनिक व्यापार में (होटेल, रिस्टोराँ, दूकान इत्यादि में) महिलाओं का मुख्य भाग होता है, यह बात सर्वविदित है। मैं प्रथम तो कुछ घबराया, परंतु पुनः सँभलकर कहा—"कृपया जलपान भेजिए।" महिला शायद अँगरेज़ी नहीं जानती थी, इसलिये उसकी कुछ समझ में न आया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, उसने खिसियाकर टेलीफ़ोन पटक दिया है। जब इस उपाय से कार्य सिद्ध न हुआ, तब ख़ुद जाकर मैनेजर की मुलाक़ात करनी उचित समझकर नीचे चला गया। पूछने पर विदित हुआ कि जल-पान का समय तो हो चुका था, परंतु ११ बजे लंच शुरू होता था, तब तक प्रतीक्षा करने के लिये मैं बाधित हुआ। साढ़े दस तो यों ही बज चुके थे। इतनी देर तक सब्र किया, तो आधा घंटा और सही, इस विचार से मैं होटल के स्मोकिंग-रूम में बैठकर टेबल पर पड़े फ्रेंच मेगज़ीन देखने लगा। मेगज़ीन के चित्र भी देख रहा था, और साथ में यह भी सोच रहा था कि क्या खाऊँ। 'वेटर' ने एक लंबा परचा सामने लाकर रख दिया था, जिसमें विविध प्रकार के भोजनों के नाम टाइप किए हुए थे। प्रथा के अनुसार इनमें से किसी भी पदार्थ का मुझे ऑर्डर देना चाहिए था, परंतु मेरे लिये तो वे 'काला अक्षर भैंस-बराबर' थे।

मैं कार्ड में लिखी किसी भी वस्तु का उसकी कीमत का ख़याल कर 'ऑर्डर' कर सकता था। मांसाहारी हिंदू को गाय के मांस का और मुसलमान को सुअर के मांस का विचार करना पड़ता है, परंतु मुझे तो 'मांस'-मात्र का विचार करना था, इसलिये इस डर से कि कहीं भूल से मांस न आ जाय, मैंने उस परचे को लौटा दिया, और 'कॉफी' के साथ ब्रेड, बटर खाकर ही संतोष कर लिया। योरप में शाकाहारी नहीं रहा जा सकता, यह मत भी अनुभव-विरुद्ध है। योरप में लोगों की प्रकृति 'शाकाहार' की ओर दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है, और प्रत्येक शहर में शुद्ध शाकाहारी भोजनालय खुले हुए हैं।

जर्मनी का सुप्रसिद्ध नेता 'हर हिट्लर' भी शुद्ध शाकाहारी है। वह न शराब पीता है, न तबाकू। वह अपने देश-बंधुओं से भी यही आशा करता है कि जहाँ तक हो सके, इन वस्तुओं से बचा जाय।

परंतु योरप से लौटकर विशुद्ध अर्थों में शाकाहारी रहने का दावा करनेवाले महानुभावों के साथ मेरा विचार-भेद तब तक क़ायम रहेगा, जब तक मुझे स्वतः उनके अनुभव सुनने का अवसर न मिलेगा।

म्युनिक् के लिये शाम के सात बजे ट्रेन छूटती थी। सारा दिन मुझे लियोन में ही बिताना था। भोजन करने के अनंतर घूमने के विचार से ज्यों ही सड़क पर आया, तो मुझे भान हुआ कि ओवर कोट नहीं है। रात की ही भाँति चारों तरफ़ कुहरा छाया हुआ था। सामने से आती मोटर भी

नज़र नहीं आती थी। प्रथम तो यह आश्चर्य हुआ कि ये लोग इतनी सख्त सरदी में कैसे काम करते है! जिसे देखो, वही ओवर कोट पहने है। पैरों में भारी बूट, हाथों में दस्ताने, गले में जाडे का गुलूबंद। भला, इन लोगों को जाडा कैसे लगे। आदमी तो क्या, यहाँ के कुत्ते भी ओवर कोट पहने थे। सारे शहर में शायद मै ही अकेला ओवर कोट के विना आम रास्ते पर खडा शीत से काँप रहा था। मेरा बंबई का नाज़ुक सूट, सुरती जुराबें और लखनऊ-फ़ैशन के जूते देखकर कितने ही लोग आश्चर्य कर रहे थे। मै दौडा—सरदी से बचने के लिये, शरीर में गरमी पैदा करने के लिये, और अपनी सबसे पहली आवश्यकता पूरी करने के लिये। एक दूकान की खिडकी में ओवर कोट टँगे देखे, उसमे फ़ौरन् घुस गया। दूकानदार बेचारा कोई भला था। उसने मुझे अँगीठी के पास कुरसी पर बैठ जाने का इशारा किया। ऐसे अवसरों पर मनुष्य की गुप्त भाषा कैसा चमत्कार दिखलाती है, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेरे विना कहे ही वह एक-से-एक बढ़िया ओवर कोट लाकर दिखलाने लगा। ओवर कोट के सिवा मुझे कुछ अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी ख़रीदनी थीं। सौभाग्य से एक अमेरिकन निग्रो, जो पड़ोस के होटल मे काम करता था, मुझे मिल गया। वह बहुत सुंदर अँगरेज़ी बोल सकता था। इसकी सहायता से मैंने अपने सब सौदे निपटाए। और उसे 'कोकटेल' ड्रिंक पिलाकर बिदा कर दिया।

रात की मुसाफ़िरी थी। लियोन से गाड़ी सीधी म्युनिक् जाती थी। इसलिये मैंने सारी रात गाड़ी में सोते बिताई। योरप मे हिंदोस्तान की गाड़ियों की भाँति पैर फैलाकर सोना नामुमकिन ही नहीं, वर्जित है। सोने की इच्छा रखनेवाले यात्रियों के लिये सोने की गाड़ियाँ (Sleeping cars) होती हैं। अतिरिक्त किराया देने पर इनमें आराम से सोया जा सकता है। साधारण डब्बों में सोना निषिद्ध है। परंतु मैंने अपनी अज्ञानता का लाभ उठाया, और पडोसी के आराम या ग़ुस्से की तनिक भी परवा न कर, पैर फैलाकर खूब अच्छी तरह सोया। वह बेचारा अपनी शान में ही रह गया। प्रातःकाल आठ बजे आँख खुली।

मैंने भारत मे तरह-तरह के ड्रिंक्स बर्फ़ डालकर अनेक बार पिए होंगे। बरफ़खाना भी देखा होगा, और कभी-कभी बरसात में ओले पड़ते भी देखे होगे, परतु बरफ़ कैसे गिरती है, यह कभी नहीं देखा था। आँख खुलते ही गाड़ी की खिड़की से बाहर सिर निकालकर देखा, तो सारी पृथ्वी श्वेत नज़र आ रही थी। पहले कुछ देर तक ज़रा भी समझ में नहीं आया कि यह क्या वस्तु है। क्या मैं जर्मनी में कोई बड़ी 'जिनिंग फ़ैक्टरी' देख रहा हूँ? गाड़ी बड़ी शीघ्र गति से दौड़ी जा रही थी। डब्बों पर, रेल की पटरियों पर, वृक्षों पर, घरों पर, हिलते-जुलते मनुष्यों पर, जिधर देखो, उधर, सब सफ़ेद-ही-सफ़ेद नज़र आ रहा था। गौर करने पर विदित हुआ कि बरफ पड़ रही है। मेरा 'जिनिंग फ़ैक्टरी' का ख़याल कितना मूर्खता-भरा था। बरफ की यह दुनिया देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। बरफ की बरसात में भी लोग इधर-उधर दौड़ रहे थे। एक छोटा सा बरफ का टुकड़ा ज़रा देर हाथ पर नहीं रक्खा जाता, और ये लोग बरफ के ढेरों पर बड़े आराम से चल रहे थे। एक स्टेशन पर छोटे छोटे बालक बरफ के गोले बनाकर एक दूसरे पर फेंक रहे थे। कितने ही लोग पहाड़ों में 'स्केटिंग' खेलने के लिये भाग रहे थे, और बरफ देखकर आनंदित हो रहे थे। तमाम वृक्ष बरफ़ से लदे हुए, सारी धरती बरफ़ से ढकी हुई। पृथ्वी का नंगा स्वरूप कहीं नजर ही नहीं आता था। प्रकृति की यह एकदम नवीन लीला देखते-देखते मैं म्युनिक् पहुँच गया।

परसों समुद्र की सपाटी पर था। कल फ्रांस मे था। रात को स्विट्ज़रलैंड में था, और आज योरपीय महायुद्ध के मुख्य रण-क्षेत्र में आ पहुँचा था। यह वही जर्मनी था, जिसके एरोप्लेन मैंने अपने शैशव मे अपने सिर पर उड़ते देखे थे, जिसकी स्लेट-पेंसिल के द्वारा मैंने लिखना सीखा था, और जिसके स्वप्न मैं बहुधा देखा करता था। जर्मनी मे मैंने क्या देखा, और क्या देख रहा हूँ, इसका वर्णन फिर कभी करूँगा*।

* इस लेख के लेखक गुरुकुल कांगड़ी के पुराने स्नातक हैं, और आजकल 'म्युनिक्'-युनिवर्सिटी में पी-एच्० डी० के लिये तैयारी कर रहे हैं, साथ ही आप हिंदी भाषा की भी सेवा कर रहे हैं। म्युनिक्-युनिवर्सिटी में आप हिंदी एवं गुजराती के अध्यापक हैं। आपके रोचक और शिक्षाप्रद लेख हम सुधा में देते रहेंगे।—सुधा-संपादक

समाधान

[श्रीसियारामशरण गुप्त]

"अरे, ओ मेरे मार्ग महान,
तुझे तम-ही-तम क्यों भाया?

श्रीसियारामशरण गुप्त

मेंटकर दिन में ही दिन-मान,
तिमिर में तूने क्या पाया?"

बंधु, यदि है तुझको कुछ इष्ट,
नहीं तो यह तम भी भय-क्लिष्ट,
खुले में पाकर यहाँ समस्त,
प्राप्त कर ले यदि तू निज लक्ष।

बता तो, किस गौरव के साथ
　　रख सकेगा तू उन्नत माथ?
ठोकरे खा - खाकर शत बार
　　मेट बिपदा को बाहु पसार।
करेगा अधिकृत तू जो सत्व,
　　उसी पर होगा तेरा स्वत्व।
हृदय का प्रोज्ज्वल ओज उजाल
　　छिन्न कर देगा तू तम - जाल।
तभी होगा तुझको यह ज्ञान,
　　मुझे तम - ही - तम क्यो भाया?
अरे, ओ मेरे पथिक सुजान,
　　तिमिर में क्या मैने पाया।
"अरे, ओ मेरे मार्ग महान,
　　कटको से तू क्यो छाया?
हाय ! कैसा तेरा यह ज्ञान,
　　किसे यो तूने अपनाया?"

बधु, यदि है तुझको कुछ इष्ट,
　　नहीं तो ये कटक भी क्लिष्ट।
बढ़ाकर निज पद दृढता - पूर्ण
　　इन्हे कर दे तू चूर्ण - विचूर्ण।
रोकने जाकर तेरी राह
　　बढा देगे ये गति - प्रवाह।
तुझे होगा जो पीड़ा - बोध,
　　वही तेरे पथ - ऋण का शोध।
दूर कर चिता का गुरु भार
　　इन्हे जब कर लेगा तू पार,
विजय का रक्त - तिलक निष्पाप
　　पदों पर आ लोटेगा आप।
तभी होगा तुझको यह ज्ञान,
　　कटकों से मै क्यों छाया?
अरे, ओ मेरे पथिक सुजान,
　　इन्हे मैंने क्यो अपनाया।

अमेरिका की 'मय'-नामक प्राचीन जाति*

[श्रीयुत लोचनप्रसाद पांडेय]

आज से हज़ारों वर्ष पहले उत्तर अमेरिका के नितांत दक्षिणी भाग मे, जिसे लोग अब Central America या ,मध्य अमेरिका' कहते है, 'मय'-नामक एक महाशक्तिशाली जाति निवास करती थी। कुछ लोग 'मय'-जाति का नाम 'माया'-जाति कहते है। जो हो, 'मय'-जाति और हमारे भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य मे वर्णित 'मय' दानव के नाम और गृह-निर्माण-कला मे बड़ी समानता है। अमेरिकावाली 'मय'-जाति विशालकाय शिला-भवनों के निर्माण मे परम दक्ष रही है। इधर भारतीय पुराणों के मयाधिपति-कृत पांडव-बंधुओं का अनुपम प्रासाद प्रसिद्ध ही है। मय ने असुरों के लिये स्वर्ण, रौप्य और लौह के तीन प्रसिद्ध 'पुर' निर्माण किए थे, जिन्हें महादेवजी ने उनके अधिपति त्रिपुर दानव-सहित विदग्ध और विध्वंस कर 'त्रिपुरांतक'-आख्या धारण की थी।

अमेरिका के 'मय' लोगों के भवन, मंदिर एवं स्तंभ आश्चर्य-चकित करनेवाले है। उनका भवन-निर्माण-कौशल देखकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। मय-जाति की सभ्यता जितनी विस्मयकारिणी है, उतनी ही रहस्य-पूर्ण भी। उस सभ्यता (civilisation) को लोग amazing & puzzling कहते है। इस 'मय'-जाति के साम्राज्य की विशाल राजधानी चिचेन आइज़ा के भग्न और भू-पतित देव मदिरों तथा राजप्रासादों की खोदाई आदि से जो सामग्रियाँ मिली है, उनसे सन् ई० के हजारो वर्ष पूर्व की मय-सभ्यता और संस्कृति का अनुमान किया जा सकता है।

अद्भुत रीति से निर्मित कई प्राचीन मय-नगरियों का उद्धार, अभी हाल मे जंगलों को तथा सदियों के पंक-प्रलेप आदि को परिष्कृत कर, किया गया है। उन्हे देखकर एक अनजान दर्शक भी 'पुरातत्त्व के रहस्य' पर पुलकित हुए विना न रह सकेगा।

चिचेन आइज़ा, जो इस मय-साम्राज्य की राजधानी रही है, निस्संदेह अतीव सुंदर नगरी थी। उस नगरी की दीवाले रंग-बिरंग के रंगों से रंगी हुई है, तथा उन पर बड़ी सुंदर-सुंदर चित्रकारी की गई थी। वहाँ 'भवन-शृंगार' के लिये 'कला' की अमूल्य वस्तुएँ रक्खी गई है। ग्रीष्म-ऋतु के विहार, खेल-कूद और आमोद-उत्सव के अनेको चिह्न मिले है।

बहुतों का अनुमान है कि 'ग्वाटेमाला' की उच्च समभूमि पर अवस्थित 'पेटेन'-नामक झील

---

* अमेरिका से प्रकाशित Evangelical Tidings के एक लेख के आधार पर।

के निकट इन मय लोगों का प्रथम उपनिवेश था। वहाँ से वे उत्तर की ओर बढते हुए 'युकटन' तक पहुँचे, और 'चिचेन आइज़ा' नगरी की स्थापना की।

प्रथम छ सदियों तक इन 'मय'-जाति के लोगो ने मेक्सिको की खाडी से लगाकर होंडुरस-उपसागर पर्यंत अनेकानेक स्थानो मे निवास किया, वहाँ शहर बसाए, मंदिर तथा भवन बनवाए। जब ऐसे जंगलों में से जाने-आने का सुगम उपाय न था, ये सब कार्य किस प्रकार साधित किए गए, यह एक प्रश्न है। (Why and how this took place at a time when there was no known means of easy transportation through such jungle regions, remains one of the most baffling mysteries of history. All that we do know is that it was true)

सन् ई० की छठी सदी के आस-पास इन मय लोगों को अतीव दुर्दिन देखने पड़े होंगे। उनमे 'कलह' और 'अशांति' की घनघोर घटा छाई रही होगी। नगर-के-नगर ध्वस हो गए होंगे। 'चिचेन आइज़ा' को भी जन-शून्य होना पड़ा होगा। ई० सन् की नवीं सदी मे अर्थात् ३०० वर्षों के बाद फिर भी उन लोगो ने अपनी अवस्था में सुधार करना शुरू किया होगा।

इसी 'सुधार' के युग मे उनका सौभाग्य फिर उदय हुआ। इस युग को उस जाति का 'स्वर्ण-युग' कहना चाहिए। उस समय कला और विज्ञान की बड़ी उन्नति हुई। उनके इंजीनियरों द्वारा निर्मित प्रासाद-माला आकाश को छूने मे होड दिखाने लगी। उनके राजमार्ग शिला-फलकों से आच्छादित थे। एक नगर से अन्य नगर के यातायात के लिये मीलों लंबी सुंदर-सुंदर सड़कें बनाई गई थी। वे ज्योतिष-शास्त्र के निपुण पंडित रहे है। ग्रहणों का विवरण, तिथि तथा बारो के सूचक पत्रा (Calendar) या जंत्री उनकी विद्वत्ता के

श्रीयुत लोचनप्रसाद पांडेय

साक्षी है। उनकी ग्रहण-गणना आदि आजकल प्रचलित गणना से कम महत्त्व-पूर्ण नही है।

इस 'मय'-जाति के अनेकानेक शिला-लेख प्राप्त हुए है। कुछ हस्त-लिखित ग्रथ भी पाए गए है। इनके आंशिक पाठ से पता लगता है कि पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और कलह ही इनके अधः पतन के मुख्य कारण थे। एक नगर अन्य नगर से प्रतिस्पर्धी होकर उससे युद्ध मे रत रहा करता था। राजधानी 'चिचेन आइज़ा' पर कई नगरो ने आक्रमण कर उसे विध्वस कर डाला, और 'मय-साम्राज्य' का सौभाग्य-सूर्य अस्तगत हुआ।

भारतवर्ष के भिन्न राज्यो की भाँति 'मय'-जाति के भिन्न-भिन्न अधिपतियो ने स्पेनवालो के आक्रमणो को रोकने का सम्मिलित प्रयत्न तक नही किया। फल यह हुआ कि अपनी स्वतत्रता के साथ उच्च सभ्यता और संस्कृति को भी खो बैठे।

'मय'-जाति के विद्वान् नागरिकों ने—उनके पुरोहितों तथा शासकों ने—अपनी जाति का इतिहास सकलन कर रक्खा था, पर उनके ये अमूल्य रत्न (उनके इतिहास के ग्रंथ) भी उनके शत्रु स्पेन-निवासियो द्वारा नष्ट कर डाले गए।

खेद है, इन परदेशी शत्रु स्पेनवालो को विजित जाति के 'साहित्य' तक से शत्रुता थी। यदि वे इनके इतिहास-ग्रंथो को नष्ट-भ्रष्ट न कर डालते, और यदि वे आजकल सुलभ होते, तो हम इस 'मय'-जाति की 'सभ्यता और उन्नति-अभ्युदय' के संबंध में गाढ अंधकार में न होते।

अमेरिका के इस जंगलमय भू-भाग मे रहनेवाले मूल निवासियो मे जो प्रवाद प्रचलित है, उसके अनुसार जब 'मय'-जाति के राजो को अपनी पराजय का अनुमान होने लगा, तब उन लोगों ने बड़े श्रम और प्रेम-पूर्वक लिखित अपने 'इतिहास' तथा धर्म-ग्रंथो को जला डाला, या निकट की गुफाओं मे छिपाकर रख छोड़ा। खोज करनेवाले विद्वानों को आशा है कि उन्हे इन गुफाओं से ये ग्रथ आज या कल अवश्य प्राप्त होगे।

ग्रंथो को जलाने तथा गुफाओं मे छिपा रखने का उल्लेख स्पेनवालों के उस समय के पत्रों मे भी मिलता है। प्राचीन राजधानी की सफाई से मंदिर, महल, पिरामिड, बाज़ार, नाट्य-गृह, कब्र तथा अट्टालिकाएँ निकली है, जो आजकल के नगरो के समान है। मीलो तक बस्ती के चिह्न देखने मे आते है। लकड़ी के गृह, फूस के छप्पर, चूने की दीवालें सब आजकल की-सी है।

मंदिरो मे एक ऐसा बृहदाकार मदिर है, जिसमे १००० खंभे थे। सहस्र स्तंभवाला यह मंदिर दर्शनीय रहा होगा।

एक योद्धाओं का मंदिर है। एक मंदिर में एक विचित्र वन्य जतु और ढाल की बड़ी-बडी मूर्तियाँ है।

पत्थर की मूर्तियों और पिरामिडों को देखकर बहुतों का अनुमान है कि 'मय'-जाति का संबध मिस्र (Egypt) देश से रहा होगा।

'मय'-जाति की चित्र-विद्या, मूर्ति-विद्या तथा अलंकार एवं आभूषण-कला-कौशल-विद्या का

मूल जन्म-स्थान कहाँ था, इस पर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है।

खोजी विद्वानों को पुराने खँडहरों और गुफाओं का पता तो लगाना ही है, पर वे योरप के छोटे-बड़े, ज्ञात-अज्ञात, सब प्रकार के पुस्तकालयो की छान-बीन मे भी लगे हुए है। उन पुस्तकालयों मे कोई पांडु-लिपि या प्राचीन ग्रथ कही ऐसा मिल गया, जिसकी सहायता से 'मय'-जाति के शिला-लेखो का पाठोद्धार हो सका, तो अमेरिका के प्राचीन इतिहास पर नूतन प्रकाश डालने का यश उन्हें मिलेगा।

स्पेन देश मे, हाल ही मे, कुछ हस्त-लिखित लेख मिले है। स्पेन के सेनापतियो ने जो 'टिप्पणियाँ' लिखी थी, उनसे अमेरिका के कई प्राचीन नगरों के पता लगाने मे सहायता मिली है। एक ग्रंथ का नाम है Chilam Balam of Chumayal or the Black Book of the Tiger Priests. यह सन् १७८२ मे लिखा गया था। इसके लेखक को किसी 'मय'-जाति के ग्रथ से सामग्री प्राप्त हुई थी।

इसी ग्रंथ के लेखानुसार घोर अरण्य में एक अज्ञात राजपथ (Road) का पता डॉक्टर गन (Dr Gann, archaeologist and explorer) ने लगाया है। इस ग्रथ तथा अन्य प्राचीन लेखों से, जो आक्रमणकारी सेनानायकों द्वारा लिखित है, इस 'मय'-जाति के जीवन की एक झलक प्राप्त होती है। उसका संक्षिप्त शब्द-चित्र यों है—

किसी उत्सव के अवसर पर 'मय'-जाति के किसी नगर मे प्रवेश कीजिए, तो मालूम होगा कि मीलों तक नाज और कपास के खेत लहरा रहे है। बीच-बीच मे सुंदर-सुंदर मैदान देखने मे आवेंगे। पत्थर की पक्की सड़कों पर लोगों की भीड़-सी लगी है, जो शहर देखने को आए हुए है। उनके चेहरे दाढ़ीदार नहीं है। मस्तको मे चंदन लगे हुए है। कमर-बंध, कपास के सूती चोगे पहने हुए है। मुख-मंडल सुचित्रित किए हुए है। उनकी स्त्रियाँ एक लंबी साड़ी से घिरी हुई है। वे भी चंदन-चर्चित है। सुगंधित तेल-फुलेल, इत्र से विमंडित है। उनके लंबे-लंबे केश तेल से युक्त सुगंधित है। उनके केश दो भागों मे सुंदरता से सँवारे गए है। पुरुषों का नृत्य हो रहा है। महिलाएँ अलग ही नृत्य-कला दिखा रही है।

'मय'-जाति के उत्सव-आनंद का यही शब्द-चित्र है। विद्वानों का अनुमान है कि यदि इसके अधिनायक परस्पर प्रेम और मित्रता का व्यवहार करते हुए 'द्वेष और कलह' से दूर रह सके होते, तो आज तक वे विद्यमान रहते।

उनकी विस्मयोत्पादक सभ्यता और संस्कृति पश्चिमीय योरप की सभ्यता और संस्कृति के जोड की थी। उनकी श्री-समृद्धि और शक्ति-शालिता, उनकी उन्नत तथा संगठित जीवन-प्रणाली, उनके उत्सव, आमोद एवं उनकी भवन-निर्माण-कला की अद्भुत शक्ति और निपुणता आज भी सभ्य-संसार की स्पर्धा की वस्तु है।

कोकिले !

[श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही']

अरी कोकिले कूक !

[१]

मुसकाती - सी कलियाँ आई,
हँसती सुमनावलियाँ आई;
मधुपों की मंडलियाँ आई,
बनकर परी तितलियाँ आई।
आ जा तू भी 'कू-कू' करती,
ऐसे समय न चूक!
अरी कोकिले कूक!

[२]

आम्र - मंजरी तुझे बुलाती,
लता तुझे छूकर लहराती;
आ जा! तू तो आती-आती—
बन को कुछ का कुछ कर जाती।
मुझ दुखिया के दुख से कब तक—
बनी रहेगी मूक!
अरी कोकिले कूक!

[३]

तू भी काली, मै भी काली,
तू मतवाली, मै मतवाली,
तूने प्याली पा ली, ढाली,
मेरी प्याली तो है खाली।
मेरी दिल की हूक न निकली,
तू निकाल ले हूक!
अरी कोकिले कूक!

[४]

अंग-अग मे आग समानी,
आँखो मे पानी - ही - पानी;
मै पगली दुनिया की रानी,
दीवानी है हाय! जवानी।
मेरा हृदय उछलता, इसके—
कर दे तू दो टूक!
अरी कोकिले कूक!

महाकवि श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
(संपादक सुकवि)

योरप की दुर्दशा का एक चित्र

[श्रीपरिपूर्णानंद वर्मा]

क्ति की स्वार्थपरता की तो कोई सीमा भी होती है, पर राष्ट्रों की स्वार्थपरता असीम और अनियंत्रित होती है। ठीक यही बात इस समय योरप के विषय मे सब बुद्धिमान् कह रहे है। उन्होंने तो यहाँ तक कहना शुरू कर दिया है कि योरप सर्वनाश की ओर जा रहा है। एशिया यदि अब भी सँभल जाय, जापान अपनी नीचता और कलुषित स्वार्थपरता को छोड़ दे—जिसको सन्मार्ग पर लाने का एक यही तरीका है कि जापानी माल का बहिष्कार किया जाय—तथा सघटित होकर एशिया आगे बढे, तो कल योरप उसी प्रकार हमारा मुँह ताकेगा, जिस प्रकार आज हम उसका ताकते है।

योरप की गंदी राजनीति का कोई ठिकाना है! राष्ट्र-परिषद् को बडे राष्ट्रों ने अपने हाथ का खिलौना बना रक्खा था। फिर भी उसके अतिरिक्त अपना गरोह बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। छोटे राष्ट्रों को दबाने के लिये चतुर्महाशक्तियों ने अपना एक गुट बनाया। रोम मे ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किया। ७ जून, १९३३ से यह 'पैक्ट' लागू हो गया है। इसके अनुसार आगामी १० वर्ष तक "चारो शक्तियाँ परस्पर संबध की बातों पर विचार-मशविरा का कार्य करने का वचन देती है।" "चारो शक्तियाँ निरस्त्रीकरण-सम्मेलन की सफलता के लिये हर प्रकार का प्रयत्न करने का वचन देती है।"—पर जर्मनी ने ही 'समानता का अधिकार' का दावा कर निरस्त्रीकरण को पहले ही दफनाया।

जर्मनी ने या उसके सर्वेसर्वा हिटलर ने इतना ही नही किया। वे और भी आगे बढ़े। उन्होंने योरप के समूचे जर्मनों को मिलाकर, एक गुट बनाकर समस्त योरप पर अपना अधिकार करने का सपना देखना शुरू किया। पहली छेड़-छाड़ आस्ट्रिया से शुरू हुई। नाज़ी आस्ट्रिया के जर्मनो को भडकाने-उभाडने लगे। आस्ट्रिया के शासक डॉ० डॉलफस ने बड़ी कड़ाई से स्थिति सँभाली। यदि इतने रक्तपात से स्थिति सँभली भी, तो क्या! आज आस्ट्रिया मे वैसी ही भीतरी आग भभक रही है, जैसी इतने रक्तपात के बाद भी जर्मनी मे। ये देश पराधीन नहीं है, इनकी जनता पराधीन है। स्वाधीन तो शासक ही है।

अस्तु। मित्र राष्ट्रो ने इस भय से कि आस्ट्रिया और जर्मनी एक मे न मिल जायँ, वार्साई संधि के विरुद्ध आस्ट्रिया को ८,००० सैनिक अधिक रखने की आज्ञा दे दी। वार्साई सधि मित्र राष्ट्रों ने स्वय भंग की, पर फ्रांस के विरोध के कारण जर्मनी को एक भी सिपाही अधिक रखने की

आज्ञा नहीं है। यह है राजनीतिक न्याय। हमारा यह तात्पर्य नहीं कि जर्मनी जो कर रहा है, वह उचित ही कर रहा है, पर मित्र राष्ट्र भी उसके साथ न्याय नहीं कर रहे हैं, यह स्पष्ट है।

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीपरिपूर्णानंद वर्मा

घोर जातीयता

हिटलर ने घोर जातीयता—संकुचित जातीयता—के प्रचार मे भारतीय मुसलमानो से भी बाज़ी मार ली है ! आस्ट्रिया के जर्मनों मे जो घोर अशांति उत्पन्न की गई, उसका समाचार हमने पढ़ा ही है । जेकोस्लोवाकिया के ३०,००,००० जर्मन भी उत्तेजित हो गए है, और जर्मनी से हाथ मिलाने के लिये उत्सुक हो रह है । बेलजियम के फ्लेमिग-जाति के जर्मन अपने फ़्रेंच साथियों की मुख़ालिफत कर रहे है । इस छोटे-से देश मे हिंदू-मुसलिम-विरोध से अधिक भीषण फ्लेमिग-फ़्रेंच-विरोध है । एक बार पुनः यह आशंका हो उठी है कि क्या बेलजियम के मार्ग से ही जर्मनी फिर फ़्रास पर आक्रमण करेगा ! इसी भय से बेलजियम ने पिछले वर्ष के ऑक्टोबर मास मे, यानी आज से नव मास पूर्व, अपने बजट मे ७०,००,००० पौंड सीमा के दृढ शस्त्रीकरण के लिये स्वीकृत हुआ है । फ्रांस ने अपने पूर्वी भाग को खूब मजबूत बना लिया है, पर स्विट्ज़रलैंड के ज़रा-दर्रे से होकर फ़्रास के हृदय मे प्रवेश करना सरल है, और ऐसा संभव भी हो सकता है, क्योंकि सदा से तटस्थ स्विट्ज़रलैंड के निवासियों की एक बहुत बड़ी संख्या—यानी जर्मन स्विस—जर्मनी से मेल के लिये उत्तेजित हो रही है ।

हृदय की ज्वाला

मध्य योरप की अशांति उतनी ही महत्त्व-पूर्ण है, जितनी हृदय की ज्वाला । जिस प्रकार अनेक कारणों में से अपच से विशेषतः दिल मे जलन होती है, उसी प्रकार स्वार्थपरता की अपच से, जातीयता की अत्यधिक घूँटे पी लेने की अपच से योरप का हृदय यानी मध्य योरप जल रहा है । बल्गेरिया मे इतनी अधिक भीतरी अशांति थी कि विगत वर्ष इन्हीं दिनों वहाँ मार्शल-लॉ था । डेनजिग मे—इस छोटे-से राज्य मे—शासन का अधिकार नाज़ियों के हाथ मे आ गया है । रूमानिया मे मंत्रिमंडल का उलट-फेर बहुत समय से होता चला आ रहा है । यूनान में बहुत कुछ क्रांति के बाद अब जाकर व्यवस्था स्थापित हो सकी है । निकोलस प्लास्ट्रास ने वेनेज़िलो के नवें मंत्रिमंडल का खात्मा ही कर डाला था ।

वास्तव मे योरप का मध्य भाग एक ओर तो पारस्परिक विरोध से बड़ा ही दुर्बल हो रहा है, दूसरी ओर बडे राष्ट्र उसे दिन-ब-दिन दबाने चले जा रहे है । केवल पोलैंड ने ही अपनी स्वतंत्र सत्ता इतनी प्रभावशालिनी बना रक्खी है कि वह बडे राष्ट्रों को भी परेशान कर सकता है । हाल मे पोलैंड ने रूस से परस्पर एक दूसरे की सीमा मे न प्रवेश करने तथा मित्रता रखने की जो संधि की थी, उसी का फल यह हुआ कि पोलैंड का पुराना मित्र या अगुआ फ्रांस भी रूस की ओर आकृष्ट हुआ, और मोशिए हेरियट—फ़्रांस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री—मौस्को तक हो आए ।

शस्त्रीकरण

एक ओर यह दशा है, दूसरी ओर चुंगी, व्यापार की हानि, गरीबी तथा हर प्रकार का संकट होते हुए भी योरपीय राष्ट्र अपना शस्त्रीकरण करते चले जा रहे है । इस संबंध में

ब्रिटेन के वर्तमान (१९३४) फर्स्ट लॉर्ड ऑफ् एडमिरेलटी सर बोल्टन-आइरेस-मौसेल ने अपने एक रोचक व्याख्यान में बड़ी सूचना-पूर्ण बातें बतलाई थीं। आपने कहा था—

"विगत आठ वर्षों मे इटली ने अपने सैनिक-व्यय को ९½ प्रतिशत, संयुक्तराज्य अमेरिका ने १० प्रतिशत, जर्मनी ने १२ प्रतिशत से कुछ अधिक, जापान ने ८० प्रतिशत से कुछ अधिक और रूस ने १६७ प्रतिशत बढाया है। घटाने-वाला केवल ब्रिटेन है ; उसने १६ प्रतिशत घटा दिया है।"

यह कितनी सूचना-पूर्ण, तथ्य-पूर्ण तथा दुःख की बात है कि एक ओर करोडों प्राणी बेकार घूम रहे है, करोड़ों जीव भूखे मर रहे है, करोडो बच्चो को दो चुल्लू दूध नहीं मिल पाता, और दूसरी ओर करोडो रुपया सेना पर खर्च किया जा रहा है!

स्थानाभाव के कारण हम यहाँ पर लडाई के कर्जे का जिक्र नही कर रहे है, पर पाठकों को आश्चर्य होगा कि योरप ने अब तक अकेले ही अमेरिका को ३० अरब २१ करोड़ रुपए कर्ज के मद मे चुका दिए, फिर भी योरप अमेरिका का कर्जदार बना ही हुआ है। एशिया की परिस्थिति बतलाने का भी स्थान नही है। ये कतिपय पंक्तियाँ योरप की भीषण अशांति का चित्रण करेंगी। जब सेना का इतना अधिक व्यय हो गया है, जब इँगलैंड भी यह कहने लगा है कि अब सब लोग सेना बढा रहे है, तो मै क्यो न बढ़ाऊँ, तो ऐसी दशा मे क्या होगा?

सेना बढ़ाने के लिये रुपया चाहिए। रुपया है नही। उसके अभाव मे हरएक उपयोगी काम स्थगित कर लड़ने की तैयारी करने का फल क्या होगा—सर्वनाश!

पतित-पावन

कलिजुग ही मैं मैं लखी अति अचरजमय बात—
होत पतित-पावन पतित, छुवत पतित जब गात।
(दुलारेलाल भार्गव)

(१)

अछूत मूर्ति-पूजा के लिये मंदिर मे जाता है।

(२)

अछूत को खदेड़कर मूर्ति शुद्धि का आयोजन किया जाता है ।

राका और अमा

[महाकवि श्रीपं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

शार्दूलविक्रीडित

है लीला करती ललाम बनती है मुग्ध होती महा ;
है उल्लास-विलास से विलसती पीती सुधा सर्वदा ।
होके हासमयी विकास भरती है मोहती विश्व को ;
पा राकेश-समान कांत रुचिरा राका निशा सुंदरी । १ ।

महाकवि श्रीपं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

वंशस्थ

असंख्य मे से उडु एक भी जिसे,
कभी नहीं कांतिमती बना सका ।
अभागिनी भीतिभरी तमोमयी ;
कहाँ मिली अंधतमा अमासमा । २ ।

हिंदी के गद्य-शैलीकार पं० बदरीनाथ भट्ट

[श्रीयुत प्रो० सद्‌गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०]

स्वर्गीय पं० बदरीनाथ भट्ट वर्तमान युग के उन इने-गिने पिछड़े लेखको मे थे, जिनकी लेखनी बहुत काल से विश्राम ले चुकी थी। स्वभाव के मधुर, मिलनसारी की मूर्ति बदरीनाथ कभी खिन्न-मुख नही देखे गए। उनका हमेशा खिला हुआ मुख बात-बात मे व्यंग्य करता था। वह स्वयं हँसते और दूसरो को हँसाते थे। बडी शीघ्रता से वह घुल-मिल जाते थे। 'हास' उनके जीवन का स्थायी भाव था।

उनकी बनावट बड़ी भावुक थी। उनकी सजगता बडी सजीव थी। अँगरेजी-लेखक स्टेविसन की भाँति दीर्घव्यापी रुग्णता झेलते हुए भी बदरीनाथ कभी म्लान नही हुए। वह प्रकाश मे आने से घबराते थे। एकांत-जीवन—जिसमे मित्रो की मुस्किराहट और उनका अट्टहास मौजूद हो—उन्हे बहुत पसंद था। बहुत समय तक उन्होने बाल-सखा का संपादन किया। फुटकर लेखों के अतिरिक्त भट्टजी ने कई नाटक और प्रहसन भी लिखे। 'कुरु-वन-दहन' और 'चंद्रगुप्त' मे भूत और वर्तमान का मेल है। 'चुंगी की उम्मेदवारी' मे म्युनिसिपैलिटियाँ और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अच्छा उपहास है। 'लबड़धोंधों' मे आपके व्यंग्यात्मक लेखों का संग्रह है। 'मिस अमेरिकन' कुछ आस-पास के परिचितो का ख़ाका है। 'राज-परिवर्तन' तथा 'तुलसीदास' मे भी क्रमशः बदरीनाथ के राजकीय और सामाजिक विचारों का
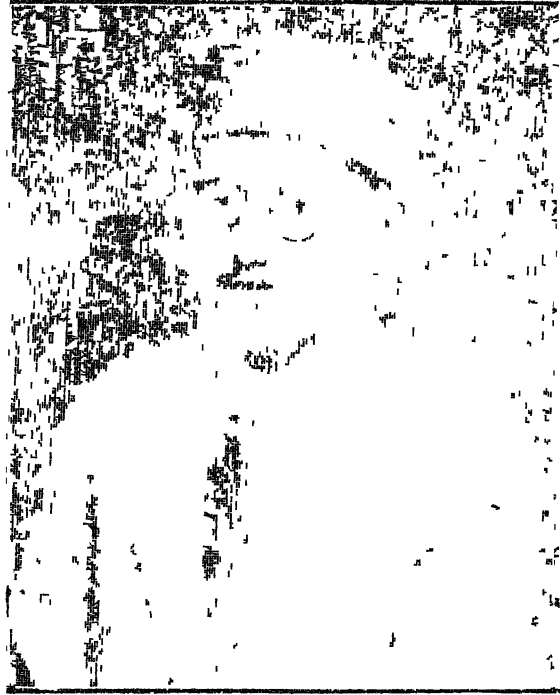
प्रो० सद्‌गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०

निदर्शन है। 'हिंदी' हिंदी का छोटा इतिहास है।

वैसे तो थोड़े हेर-फेर के साथ बदरीनाथ भट्ट मे कई शैलियों के दर्शन होते है, परंतु उनकी

विशेष शैलियाँ तीन है। गवेषणात्मक अथवा समीक्षात्मक विषयो पर लिखते समय वह पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की गवेषणात्मक शैली का अनुसरण करते है। छोटे-छोटे वाक्य और हल्के-हल्के शब्द उसकी विशेषता है। एक उदाहरण उनकी 'हिंदी' से दिया जाता है—

"गद्य के पीछे पद्य का जन्म होना स्वाभाविक है, किंतु संसार के लगभग सभी साहित्यो मे जो पहली कृति हमको मिलती है, वह पद्य मे। कविता क्यो लिखी जाती, यह प्रश्न दूसरा है। किसी कारण मनुष्य के हृदय मे जब कुछ आनंद उमंगता या ठेस लगती है, तब उसके हृदय की दशा कुछ विचित्र हो जाती है। इसी दशा को हम कविता की जननी कह सकते है। चारणो और भाटो के अलावा न-जाने कितने लोगो ने हिंदी मे ईश्वर के गुण गाए होंगे, उसको धन्यवाद दिए होंगे, उसके सामने अपना दुखड़ा रोया होगा, लोगो को नीति के मार्ग पर चलाने के लिये उपदेश किए होंगे, अपनी-अपनी समझ के अनुसार संसार की असारता या सारता दिखाई होगी, सुंदर प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन किया होगा, परंतु खोज करने पर भी उनकी रचनाओं का पता अभी तक नहीं चला। इसलिये जो कुछ हमारी आँखो के सामने है, उसी को देखकर कहना पड़ता है कि जो रचना हमारे यहाँ सबसे पुरानी मिलती है, उसमे से अधिकतर भाटो और चारणो की है। शोक है, तो यह कि इनकी रचना भी पूरी नही मिलती। समय के फेर से, राज्यो के ध्वंस होने से और दूसरे अनेक कारणो से जितनी सामग्री नष्ट हो गई, उसका सौवाँ हिस्सा भी आज हमको नही मिलता।"

कहीं-कही वाक्य कुछ बड़े हो गए हैं, परंतु आदर्श एक ही है। उनकी दूसरी शैली भावात्मक होती है। इसके अंतर्गत कभी बदरीनाथ वर्णनात्मक प्रसंगो को आलंकारिक भाषा मे लिखते चले जाते हैं, और कभी आलंकारिक रूपको को बाँधते अथवा व्यंग्य करते चलते है। पहले विधान का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"यक्ष—यहाँ आनेवाली आत्माएँ अपनी प्रवृत्ति के अनुसार संसार अथवा मोक्ष की ओर चली जाती है। अनेक जन्मो के संचित संस्कारो के अनुसार किसी की प्रकृति संसार का उपकार करने के निमित्त फिर मनुष्य-शरीर धारण करने की होती है, और किसी की परमात्मा मे जा मिलने की। अतएव प्राचीन काल के वीर यहाँ अब नही रहे। हाँ, हाल के कुछ वीरो के दर्शन अवश्य हो जायँगे। (दिव्य संगीत की ध्वनि सुन पड़ती है) देखिए, आपके पधारने पर यहाँ उत्सव और हर्ष मनाया जा रहा है।"

इसी शैली मे बड़े प्रवाह के साथ बदरीनाथ मनस्तत्त्व का विश्लेषण अथवा भावो का निदर्शन करने लगते है। भावो के नाना रूपो और विचारो के नाना खंडो मे सूक्ष्म और पैनी पहुँच बदरीनाथ की नही है, परंतु जहाँ तक वह पहुँच पाते है, उसका अच्छा चित्रण उपस्थित

कर सकते हैं। नीचे एक उदाहरण इसका उपस्थित है--

"घरवारी०--महारानीजी ने पिताजी को नज़र-क़ैद कर रक्खा है। अच्छा, देखा जायगा। अभी पिताजी से मुझे पता लगा है कि यह राज शीघ्र ही उलटनेवाला है। और, इसके उलट जाने पर मुझको--क्योंकि पिताजी तो अब बूढ़े हो चले है--बड़ी अच्छी जगह मिलेगी। एक जागीर की जगह सौ जागीरे मेरे पैरो मे मारी-मारी फिरेंगी। पिताजी का यह कहना है, बिलकुल सच है कि हमारे पुरखो ने अपने रक्त से इस राजरूपी पेड़ को सींचा था। मै तो यो कहूँगा कि इस विष-वृक्ष को रोपा था, सो अब, जब कि यह बड़ा हो गया है, इसके फल भी हमे ही खाने पड़ रहे है। ठीक ही है। यदि ऐसा न हो, तो इस समय को कलजुग कोई क्यो कहे? मै पूछता हूँ, कौन करता था प्रजा को तंग? यदि घड़ी-भर के लिये मान भी लें कि हम प्रजा को तंग करते थे, तो आप क्या हम लोगो--जमींदारो--को तंग नहीं करती? प्रजा पशु नही है, तो आख़िर हम भी तो पशु नही है। यदि प्रजा पर साम-दाम-दंड-भेद से शासन करनेवाले--या आपकी इच्छा हो, तो यो कह लीजिए कि उस पर मनमाना अत्याचार करनेवाले--किसी जागीर-दार की जागीर छीन लेना अन्याय नही है, तो जागीरदारों को तंग करनेवाले राजा अथवा जैसा अवसर हो--रानी का राज्य उलटवा देना भी अन्याय नहीं है। यही होना भी चाहिए। जिनकी छिन चुकी, उनकी छिन चुकी, औरो को सदा यह उबका लगा रहता है कि अब की बार कही हमारी जागीर न छिन जाय। वाह, क्या अच्छा प्रबंध है! प्रजा सुखी ही सही, सरदार लोग दुखी है, इसमे कोई संदेह नही। महारानीजी ने समझ लिया है कि यदि सरदार लोग संतुष्ट रहेगे, तो प्रजा अप्रसन्न हो जायगी। ठीक है, यह तो होना ही है। पर देखना यह चाहिए कि लड़ाई के अवसर पर आपके काम कौन अधिक आता है। रूप से, पैसे से, धन से, दौलत से बेचारे जागीरदार ही तो पिसते है। बेगार मे लोगो को पकड़-पकड़कर आपकी सेना के लिये रँगरूट देते है। तात्पर्य यह कि जितनी और जिस प्रकार हम लोग सहायता करते है, उतनी और उस प्रकार सहायता नोन-तेल-लकड़ी की चिंता मे अधमरी रहनेवाली प्रजा नही कर सकती। भला, सोचने की बात है कि यदि हम लोग प्रजा का कचूमर न निकालें, तो आपको हर साल कर कहाँ से दे? तेल तो तिल मे से ही निकलेगा। एक से लिया जाता है, दूसरे को दिया जाता है। यदि आपको प्रजा के हित की ऐसी ही चिंता है, तो हमसे कुछ न ले, हम भी प्रजा से कुछ न लेंगे--सिवा नजराने और बेगार के। राज को हमारा ही तो आधार है, और फिर हमारा ही अपमान किया जाता है! जिस डाल पर खड़े हो, उसी को काटना! (सोचता हुआ) परंतु खूब होगा, जब ऊपर से मिले रहकर भी हम लोग

भीतर से छुरी चलावेंगे, उस समय देखेंगे कि आपकी प्यारी प्रजा कहाँ तक और किस प्रकार आपका साथ देती है, और उसकी सहायता से आप इस राज्य की रक्षा करने में कैसे समर्थ होती हैं। सच बात तो यह है कि प्रजा है राजरूपी रथ का घोड़ा। जागीरदार है चाबुक, और आप हैं हाँकनेवाले! भला, कहीं बिना चाबुक के भी आज तक किसी ने सफलता-पूर्वक रथ हाँक पाया है! (सोचता हुआ) हाँ, क्या कहा था पिताजी ने? ठीक है। मै अब जाकर ऊपर से महारानीजी की खुशामद करूँ, और उन्हे अपनी राजभक्ति पर विश्वास कराऊँ। ऐसे शुभ काम मे देर करना ठीक नही, चलना चाहिए।"

ऊपर के अवतरण के बीच मे एक लंबा वाक्य आ गया है। अवतरण की शैली मे लेखक की अनिश्चयात्मकता तथा अभिव्यक्ति की स्पष्टता मे संदेहात्मकता भासित होती है। इसीलिये पुनरावृत्ति का आश्रय लिया गया है। यदि कथोपकथन के बीच यह प्रसंग न होता, तो वाग्जाल के असाधारण फैलाव के कारण वाग्विदग्धता अधकचरी समझी जाती। यह शैली बहुत श्लाघ्य नहीं है। वैसे अवतरण मे अधिक वाक्य बड़े-बड़े नहीं है, और अर्थ मे स्पष्टता बहुत है। कहीं-कहीं पर अलंकारों का भी आश्रय लिया गया है, जिससे अभिव्यक्ति मे वेग आ गया है।

उनकी व्यंग्यात्मक शैली ही उनकी विशेषता है। उसका निखरा हुआ रूप उनकी गोलमालकारिणी सभा की सूचनाओ मे दिखाई देता है। पहले 'प्रताप' मे ये सूचनाएँ प्रकाशित होती थी, और बाद मे 'सैनिक' मे प्रकाशित होने लगीं। आज जिस समय कौशिकजी की 'विजयानद दुबे की चिट्ठी' पढ़ी जाती है, उस समय बदरीनाथ भट्ट का स्मरण अवश्य हो आता है। यद्यपि कौशिकजी की भाँति बदरीनाथ शिष्ट-व्यंग्य-लेखक न थे, तथापि उनकी लेखनी मे बड़ी सरसता और चुटीलापन था। कभी-कभी इनकी चुटकियाँ बड़े-बड़े बकोटे हो जाते है, और विनोद-पूर्ण व्यंग्य के स्थान मे विद्वेष-पूर्ण अभद्रता की दुर्गंध आने लगती थी। व्यक्तिगत आक्षेपो मे कभी-कभी बदरीनाथ बुरी प्रकार से घसिट जाते थे। हास्य-रस के निर्माण मे भी बदरीनाथ हमेशा पवित्रता को साथ नही रख सके।

व्यंग्य का कोमल रूप तो अभिव्यक्ति को चमका ही देता है, परंतु उसका कठोर रूप भी, लक्ष्य पर बड़े बड़े ढेलो की वर्षावाली शैली की सृष्टि करता हुआ भी, अश्लीलता को कभी नही अपनाता। बदरीनाथ ने जब कभी व्यंग्य को छोड दिया, और रसात्मकता मे बहने लगे, वह शील की रक्षा नही कर सके। 'मिस अमेरिकन' ऐसी ही पुस्तक है। वह बदरीनाथ की लेखनी का गौरव नहीं। 'लबड़धोंधों' के कुछ लेखों मे तथा 'चुंगी की उम्मेदवारी' और अन्य प्रहसनो के कई स्थलो मे भोंडापन प्रविष्ट हो गया है। यह बात नहीं कि बदरीनाथ भट्ट

साफ़-सुथरा लिख ही न सकते थे। नीचे का उदाहरण देखने योग्य है—

"राव०—इसीलिये तो मैंने अपने इलाक़े का प्रबंध आदर्श कर दिया है। और, इसीलिये तो मैंने बहुत-से सुधार कर दिए हैं। अर्थात् किसलिये ? और सुधार भी कैसे ? लीजिए पहला सुधार—कोई आदमी मेरे राज मे जूता न पहन सके, क्योंकि मै भी जूता पहनता हूँ। वे भी जूता पहनेंगे, तो क्या वे मेरे बराबर है ? दूसरा सुधार—कोई भी मेरे राज मे धूप अथवा बरसात मे छतरी न लगा सके ; क्योंकि हम छतरी लगावे, तो फिर सब दुनिया क्यो लगावे ? क्या सब दुनिया हमारी बराबरी करेगी ? तीसरा—मेरे राज मे कोई गाड़ी-घोड़ा न रखने पाए, और अगर रक्खे, तो घोड़े की पूँछ मे बाँध घिसटवा दिया जाय। चौथा सुधार—अगर मेरे कुनबे मे एक मच्छड़ की भी मौत हो जाय, तो सारा इलाक़ा-का-इलाक़ा अपना सिर और मूछें मुड़ावे। सरदारी यो होती है। प्रबंध इसको कहते है। (एक माली का आना और गुलदस्ता भेट करना, माली से) तू यह अच्छा ले आया। देख, इसमे जो फूल है, उनमे रूप, रस, गंध, इतनी चीजे है। समझता है ? ये रूप, रस, गंध नाम की जो चीजें है, सो इंद्रियों को लुभानेवाली है। इन्ही की बदौलत ब्रह्म को जीव संज्ञा प्राप्त होती है, यह बात तू बेचारा क्या समझे, जब कि बड़े-बड़े ज्ञानी इन बातो मे गोते खाने लगते है, बल्कि खा जाते है। जैसे फूल मे काँटा है, वैसे ही सुख के साथ दुख लगा हुआ है। आज यह खिल रहा है, कल मुरझा जायगा। इसी तरह मनुष्य का भी हाल होता है।"

इस अवतरण मे व्यंग्य भी है और मर्म भी। तथ्य-निरूपण भी है और मनोभाव-चित्रण भी। परिहास वस्तुस्थिति के तथ्य-वर्णन मे छिपा हुआ है।

बदरीनाथ भट्ट की तीसरी शैली उर्दू-प्रधान है। इसका प्रयोग अभिव्यंजना मे दौड़ उत्पन्न करने के लिये बदरीनाथ ने किया है। और इसमे उन्हे सफलता भी मिली है। संवादो मे बहुधा ऐसे प्रयोग मिलते है। 'दुर्गावती'-नामक नाटक का एक कथन नीचे दिया जाता है—

"सिपाही--अबे बुज़दिल, नमकहराम, लड़ाई से भागकर अपनी जान बचाना चाहता है! तूने ही मेरे भाई को क़त्ल किया है। बहुत देर से तुझको ढूँढ़ता फिरता हूँ। मुझे क़ैद हो जाने या मारे जाने का ख़ौफ़ नहीं, सिर्फ़ तेरे ख़ून का प्यासा हूँ।"

कुछ भी हो, बदरीनाथ भट्ट का हिंदी के लेखकों मे अपना स्थान रहेगा।

जापानी दासी

[आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री]

(१)

यह घटना सन् १९१७ की है। योरप का महायुद्ध घनघोर चल रहा था। सारे संसार पर लोहू और लोहे का रंग चढ़ा हुआ था। जर्मनी का आतंक मित्र राष्ट्रों की नींद हराम किए था। उस समय जापान पर मित्र राष्ट्रों के, ख़ासकर अँगरेज़ों के, प्राण आ अटके थे। ग्रेट ब्रिटेन, जो मित्र राष्ट्रों का केंद्र था, जापान की करुणा-कोर का दीन भिखारी था। जापान के भ्रू-भंग होते ही एशिया से ब्रिटेन का नाम-निशान मिट सकता था।

जापान ने अपना महत्त्व समझ लिया था। जापान का टापू जैसा क्षुद्र और महासमुद्रों की जल-राशि मे मग्न एक नगण्य भूमि खंड है, वैसे ही जापान के निवासी भी नाटे-ठिगने और पीतवर्ण होते है। वे इस समय लोहे के फौलादी आदमियों की भाँति पृथ्वी-भर में अपने व्यापार-साम्राज्य का विस्तार करने पर तुले थे। उनके चारो ओर चाँदी थी। अमेरिका, योरप, एशिया और आफ्रिका, सभी तरफ़ के कला-कौशल-व्यापार भंग थे। यातायात आतंक-पूर्ण था। समुद्रीय मार्ग मे टारपीडो और विध्वंसकों का जाल बिछा था। उस जाल को भेदन करके किसी भी शत्रु-मित्र के पोत का बच निकलना संभव न था। समुद्र में मानो आग लग रही थी। योरप ने महामद्य पिया था, वह मतवाले की भाँति अपना ही रक्त पी रहा था। सुदूर पूर्व की मुर्दार और निस्तेज जातियाँ भय, शंका और चिंता से भरी हुई मत्त योरप का यह रण-तांडव देख रही थीं।

व्यापार ही इस युद्ध का प्राण है, व्यापार ही इसका मूल-कारण है, यह जापान समझ गया था। यह छोटी सी पीली जाति, पौनिया नाग की भाँति लहरा लहराकर, इस सुयोग से लाभ उठाकर अपने उन्मुक्त व्यापार के लिये विश्वव्यापी द्वार का उद्घाटन कर रही थी। महान् रण-पंडित और कट्टर राजनीतिज्ञ लायड जॉर्ज उस समय मित्र राष्ट्रों के भाग्य-विधाता थे—जापान को अपना परम मित्र घोषित कर रहे थे। वह समझ गए थे, इसी मित्र की बदौलत, इस कठिन समय मे, एशिया में ब्रिटिश तलवार का आतंक कायम रक्खा जा सकता है।

(२)

राजधानी टोकियो में लाखों मनुष्य पागल कुत्ते की भाँति दिन-भर और आधी रात तक दौड़ते रहते थे। साधारण कुली से बड़े-बड़े व्यापारियों तक की यही हालत थी। लोगों को घरों पर जाकर खाने की फ़ुर्सत न थी। रुपए का मेह बरस रहा था, किसी चीज़ की मानो कोई दर ही न थी। मिट्टी सोने के मोल बिक रही थी। उस समय जापान मे सिर्फ़ एक दूकान थी, और सारा संसार इसका ख़रीदार था। भोजन के समय होटलों मे भीड़ देखने योग्य होती, पर प्रबंध और व्यवस्था भी देखने योग्य थी। सभी की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं।

जापान मे रहते मुझे २० वर्ष हो गए थे। मैं जापान की नस-नस से वाक़िफ़ था। मेरे जीवन का मुख्य भाग जापान मे व्यतीत हुआ था। जापान ही मेरा घर था। मै अविवाहित ही रहा। घर से दरिद्र-देव की लात खाकर बचपन ही में भाग निकला था। यहाँ विदेश मे लक्ष्मी की ठोकरें खाने से इतनी फ़ुर्सत न मिलती थी कि देश जाकर किसी कन्या-भार-ग्रस्त

पिता का कुछ उपकार कर सकूँ। विदेशी रमणी को पत्नी बनाना ठीक नहीं समझा। जवानी की आँधी आई, और वासना के टिमटिमाते स्नेह-हीन दीपक को एक ही झोंके से बुझाकर चल दी। जीवन अंतिम रात्रि के शांत वातावरण की भाँति बीत रहा था, मन और इंद्रियों की चंचलता धीमी पड़ गई थी। हृदय अलसाया पड़ा था। सब काम आप ही चल रहा था। रुपयों का ढेर छमाछम नाचता हुआ आप ही मेरे ऊपर आ गिरता था, मुझे कुछ भी न करना पड़ता था।

मेरे घर मे मुझे छोड़कर मेरी एक दासी है। उसे मै एक दिन बाज़ार की एक गली से ले आया था। यह वहाँ उस दिन कुछ रुपया कमाने की इच्छा से अपने यौवन का सौदा सड़क पर बखेरे खड़ी थी। मुझे युवा और सपन्न देख इसने आँखों-ही-आँखों मे मुझे अपने सौदे की तरफ़ आकर्षित किया। मैंने बाते कीं। और, जाना कि पिता का क़र्ज़ चुकाने को यह कुमारी बालिका आज अपना कौमार्य बेचने आई है। इसका पिता किसी किरानी का क्लर्क था। मै उसके साथ जाकर उससे मिला। कुल १०० येन की उसे ज़रूरत थी, वह मैंने उसे दे दिए, और १०० येन वार्षिक वृत्ति पर मैंने उसे नौकर रख लिया। यह आज से ३ साल पूर्व की बात है। तब से वह रात-दिन मेरे घर रहती है। घर का सब काम करती, भोजन बनाती, सफ़ाई करती, कपड़े धोती और मेरी सब वस्तुओं को सँभालती है। मै यह भूल गया हूँ कि यह मेरी दासी है।

इस बीच मे मैंने कभी उसे विनय-हीन नहीं देखा। वह सदा हँसती है। अपने काम मे उसने कभी प्रमाद नहीं किया। वह बिजली की भाँति फुर्तीली है। उसने कभी मुझे असंतुष्ट नहीं किया। वह मुझे स्वामी कहकर पुकारती है, और मैं उसे उसका नाम लेकर। कभी-कभी प्यार में आकर मैं उसे 'बिजली' कहता हूँ। बिजली का अर्थ मैंने उसे जापानी भाषा में समझा दिया है। वह इस हिंदोस्तानी नाम से बहुत ख़ुश है। जिस दिन मैं उसे इस नाम से पुकारता हूँ, वह समझ लेती है, आज मै उस पर बहुत प्रसन्न हूँ। और, वह उस दिन ख़ूब गुनगुनाकर गाती है, मेरे बिछौने पर नई चादर बिछाती है, तकिए पर सुगंधित सेंट छिड़क देती है, और जब मै शयन करने जाता हूँ, तब वह द्वार पर खड़ी होकर मधुर हास्य से, धीमे स्वर मे, बत्ती बुझा देने की आज्ञा माँगती है। आज्ञा मिलने पर बत्ती बुझाकर, दुःख की हास्य रेखा की भाँति अपने सोने के कमरे मे चली जाती है।

(३)

पंजाब की एक बड़ी फ़र्म से हमारा व्यापार है। वह फ़र्म रेशम की बड़ी करारी फ़र्म है। महायुद्ध के कारण भारत मे रेशम के व्यापार को चार चाँद लग रहे है। माँग के मारे नाक मे दम है। सुविधा के ख़याल से इस फ़र्म के एक एजेंट जापान आए। वह १५ दिन से मेरे घर ठहरे हैं। वह एक ग्रेजुएट है। सुंदर है, युवक है, अप-टु-डेट है। दाँत बहुत सुंदर है, बाल और भी साफ़। स्त्रियों के बेहद शौक़ीन हैं। व्यापार की योग्यता तो ठीक है, जो हो, स्त्रियों की परख की भारी योग्यता व्यक्त करते है। वह आए तो व्यापार करने हैं, हमारा-उनका व्यापार-संबंध है भी, पर वह बाते सदैव स्त्रियों की किया करते है। उनके कहने का मतलब यह कि उन्होंने भारतवर्ष मे सुना था कि जापान मे लड़कियाँ सड़कों की धूल मे मिली रहती है। यदि किसी सड़क से एक मुट्ठी धूल उठा ली जाय, तो दो-चार सुंदरी युवतियाँ उसमें से निकल आना आश्चर्य की बात नहीं। स्त्री-चर्चा मे मेरा निरुत्साह देखकर उन्हे बड़ी निराशा हुई।

मेरी दासी पर उनकी शुभ दृष्टि है, मै उनके आने के दो-चार दिन बाद ही समझ गया। परंतु इस संबध मे कुछ कहना मैंने ठीक न समझा। मुझे

विश्वास था कि उन्हें अपने गौरव और दासी को अपनी रक्षा का काफी ख़याल है। दासी को मैने उनकी सब आवश्यकताएँ पूरी करने की ख़ास आज्ञा दे रक्खी थी। वह बहुत ही तत्परता से उनकी ज़रूरतो को रफ़ा करती थी। वह उनकी बातों को न समझकर घबरा जाती थी, फिर इशारे से समझाने पर हँस पड़ती थी। उस मधुर हास को बखेरकर जब वह चली जाती, तब मेरे यह नवयुवक मेहमान उसे बटोरकर हृदय मे रख लेते थे। कुछ दिन मे वह बहुत-सा इकट्ठा हो गया। यह तो मैं कह ही चुका कि वह बहुत हँसती थी। अब वह बिखरा हुआ हास्य हृदय मे जमा होकर ऊधम मचाने लगा।

(४)

मुझे इन दिनो घर मे रहने की बहुत कम छुट्टी मिलती थी। मुझे प्रायः दिन-दिन-भर और कभी-कभी तमाम रात बाहर रहना पडता था। मेरे यह मेहमान अधिकतर घर मे पड़े रहते। उनका विश्वास था, दौड-धूप की उन्हे क्या आवश्यकता है, उसके लिये मैं हूँ ही। जापान मे आकर घर में पड़ा रहना, दिन मे तीन बार मछली, अंडा, केक और पुलाव खाना, छ बार चाय पीना, बिजली से दीदारबाज़ी करना, यही उनकी कर्तव्य दृष्टि से काफ़ी है।

उस दिन मै रात को लौट नहीं सकता था। मैंने फ़ोन मे इस बात की सूचना बिजली को दे दी थी। मेरे मेहमान को कोई कष्ट न हो, तथा उन्हे खाना खिलाकर सुला दिया जाय, यह भी कह दिया था। आज रात को मैं घर न आ सकूँगा, यह जानकर मेरे मेहमान की धुकधुकी बढ़ गई।

बिजली ने उन्हें सब सूचना दी। वह गरमागरम खाना ले आई। खाने के बाद एक कप काफ़ी भी दे गई। इसके बाद ही जब वह उनके शयन-गृह के द्वार पर बिजली का बटन पकडकर खडी हुई, और मुस्किराकर बत्ती बुझाने को कहा, तो मेहमान महाशय ने लपककर, उसका हाथ पकड़कर चूम लिया। बिजली कुछ लाज, कुछ आदर से झुकी, शिष्टाचार के ख़याल से नाराज़ी-मिश्रित तनिक मुस्कान उसके होठों पर आई। वह बत्ती बुझाकर अपने कमरे में जा सोई।

वह कभी अपना कमरा बद करके नहीं सोती थी। वह दिन-भर की थकी-माँदी सो रही थी। दूध के फेन के समान उसके बिछौने पर चंद्रमा की उज्ज्वल, नीली किरणे पड़ रही थीं। उसके सुनहरे बाल बिखर रहे थे, और अर्ध-नग्न वक्षःस्थल साँस के साथ उठ-बैठ रहा था। गर्मी थी, और उसके शरीर पर सोने के समय की हलकी पोशाक थी।

मेरे मनचले युवक मेहमान की आँखों मे नींद न थी। बिजली की लहर उनके मन मे लहरा रही थी। वह साहस करके उठे। जूता उन्होने नही पहना। वह पंजे के बल ऊपर की मजिल पर चढ़ गए। उन्हे मालूम था कि वह किस कमरे में सोती है। वहाँ जाकर उन्होने बिजली का उन्मुक्त सौंदर्य आँख भर देखा। वह मुग्ध होकर देखते रह गए। उन्होंने और भी साहस किया, वह भीतर घुस गए। द्वार बद कर दिया, और बिजली के पलंग पर बैठ गए।

आहट पाकर वह उठ बैठी। क्षण-भर ही में उसने परिस्थिति को समझ लिया। वह उछलकर खड़ी हो गई। उसके खड़े होने के वेग और आकस्मिक धक्के को मेरे मेहमान न सहन कर सके, वह औधे मुँह गिर गए। बिजली ने लपककर बत्ती जला दी।

बिजली के प्रकाश मे वह छाती पर दोनो हाथ धरकर, दीवार से सटकर खड़ी हो गई, और क्रोध-भरे नेत्रो से घूर-घूरकर उन्हे देखने लगी। उसके होठ फड़के, उसने घृणा से होठ हिलाए।

और उन्हे बाहर निकल जाने का हुक्म दिया। मेहमान महाशय वासना के मत्र में गड गए थे। वह निर्लज्ज हँसी हँसते हुए, हाथ फैलाकर आगे बढे। उन्होंने जेब से नोटो का बंडल निकालकर बिजली के आगे डाल दिया।

बिजली ने उसे पैरों से कुचल डाला, और दाँत पीसकर कहा—"बाहर जाओ, कुत्ता !" वह टूटी-फूटी हिंदी बोल लेती थी। महमान महाशय ने धृष्टता पर कमर कसी थी। वह बल-पूर्वक उसे आलिंगन करने आगे बढे।

बिजली वहाँ से उछली। उसने पास पड़ी एक कुर्सी उनके सिर मे दे मारी। उसने खिडकी खोली, बाहर झाँका, और कूद गई।

(५)

प्रातःकाल मेरे सेक्रेटरी ने अँधेरे ही मुझे जगाया, और घर पर कुछ दुर्घटना हो गई है—पुलिस घर पर आई है, इसकी सूचना दी। मैने आकर देखा। पुलिस के कमिश्नर बिजली का अंतिम बयान ले रहे हैं। उसकी पसली और रीढ़ की हड्डी चकनाचूर हो गई है। वह बडे कष्ट से साँस ले रही है। वह रुक रुककर बड़े धैर्य से सब घटना बयान कर रही थी। मुझे देखकर वह मुस्किराई। उसने मुझे प्रणाम किया, और अलविदा कहा। इसके बाद उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

पुलिस ने मेरे भी बयान लिए। मुझे सत्य-सत्य सब कुछ कह देना पडा। मेहमान साहब को बचाने की काफी चेष्टा की गई, पर वह बच न सके। एक स्त्री की इज़्ज़त के लूटने की चेष्टा करने तथा उसे प्राणांतक ख़तरे में डालने के अपराध मे जापान की स्वाधीन सरकार ने उन्हे ७ वर्ष का कठिन कारागार दिया।

बिजली का एक चित्र मेरे पास है, उसे लेकर मैं देश लौट आया हूँ। वह उसी भाँति मेरे साथ है, और तन-मन से मेरी सेवा कर रही है।

दुबेजी की डायरी

[श्रीयुत विजयानंद दुबे]

महात्मा गांधी के पधारने से अपने राम के नगर में काफ़ी चहल-पहल रही। यों तो महात्माजी हरिजनों के उद्धार के लिये आए थे, और संभव है, वह थैलियों के साथ-साथ अपने मन में यह धारणा भी लेकर गए हों कि नगर में हरिजन-उद्धार का काम कुछ तो हुआ ही होगा ! लेकिन अपने राम को तो फ़िल-हाल ऐसे कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते—आगे की भगवान् जाने। हाँ, लोगों का मनोरंजन ख़ूब हुआ। एक प्रकार का मेला-सा हो गया। जैसे कुँवार के महीने में राम-लीला होती है, कुछ वैसी ही सी हो गई। अंतर केवल इतना था कि उसमें रामचंद्रजी की सवारी निकलती है, इसमें महात्मा-जी की निकली थी। "आज सवेरे चौक में आवेंगे।" यह ख़बर पाकर लोग-बाग दौड़े चले जा रहे हैं। उनको न अछूतों से सरोकार, न अछूतो-द्धार से मतलब ! वे तो तमाशबीन हैं, कोई भी मेला-तमाशा हो, दौड़ पड़ेंगे। दोपहर से ही यारों में सलाहें हो रही हैं—"शाम को मीटिंग में चलोगे न ? ठंढाई छानकर चलेंगे। आज ज़रा बदली भी है, आनंद आ जायगा। अरे भई सुना ? आज वर्णाश्रमी महात्माजी से प्रश्न करेंगे, आज बड़ा आनंद आवेगा, ज़रा जल्दी चलना।" इस प्रकार यार लोग महात्माजी के आगमन में भी मज़ा ढूँढ़ते फिरते थे। और, बिलकुल बेमज़ा बातों में भी अपनी इच्छा-शांति द्वारा मजा उत्पन्न करके प्रसन्न होते थे। घर लौटकर आए, तो बैठकर टीका-टिप्पणी करने लगे। "महात्माजी ने अमुक बात तो मार्के की कही। गांधीजी ने फलानी बात अच्छी कही। भइ, उनकी वह बात तो हमें कुछ जँची नहीं। गांधीजी जो चाहते हैं, वह तो होना कठिन है।" अपने राम के एक पड़ोसी महोदय, जो पूरे लाल बुझक्कड़ हैं, व्यास बने हुए अपने से कम बुद्धि रखनेवालों को गांधीजी का मंतव्य समझा रहे थे। कह रहे थे—"आप लोग गांधीजी का मतलब नहीं समझे। गांधीजी यह थोड़ा ही कहते हैं कि हरिजनों से रोटी बेटी का व्यवहार करो। वह तो सिर्फ़ यह बात कहते हैं कि जो है सो हरिजनों से नम्रता का व्यवहार करो, उनसे घृणा मत करो। बस, केवल इतनी बात है। सो इतना काम कौन कठिन है, सब लोग कर सकते हैं।"

वह यह कह ही रहे थे कि मुहल्ले की भंगिन आ गई। संयोग-वश उसी समय उन महोदय का छोटा बच्चा द्वार के पास, नाली के किनारे, बैठा पाख़ाना फिर रहा था। भंगिन यह देखकर बोली—"महाराज, लड़के को नाली में हगाते हो, घर में काहे नहीं हगाते ? हमको रोज़ उठाना पड़ता है।" इतना सुनते ही महाराज बिगड़ उठे। महात्माजी का दिया हुआ ज्ञान सब काफ़ूर हो गया, बोले—"नाली में न हगावें, तो कहाँ हगावें ? और तुम न उठाओगी, तो क्या हम उठाएँगे ?"

मेहतरानी बोली—"नाली में हगाने का हुकुम नहीं है। हम नाली का मैला नहीं उठा सकतीं।"

"काहे नहीं उठा सकतीं, तुम्हें हज़ार दफ़े ग़रज़ हो, तो उठाओ, नहीं पड़ा रहने दो।"

"हम इंसपट्टर से रपोट करेंगी।"

महाराज का पारा एक डिग्री और चढ़ गया; बोले—"एक नहीं, हज़ार दफ़े कहो, जो तुम्हारे

मन में आवे, सो करो, हम तो यहीं हगावेंगे। गांधीजी आए है न, सो मिज़ाज आसमान पर है। यह नहीं जानती है कि गांधीजी तो दो-एक रोज़ में चले जायँगे, रोज़ तो हमी से काम पड़ेगा।"

अब मेहतरानी को भी जोश आया, उँगलियाँ नचाकर बोली--"गांधीजी आए हैं, तो हमसे मतलब? गांधीजी क्या हमे राजगद्दी दे जायँगे। गांधीजी रुपया बटोरने आए हैं, सो बटोर के ले जायँगे, हमारा क्या भला होगा? हमारे दुख-दलिद्दर दूर होयँ, तो हम जाने, गांधीजी आए है। वह दाढ़ीजार मुलुवा का बाप कल से दौडा-दौडा फिर रहा है, एक रुपया चंदा दे आया है, काम हाथ से नहीं छूता, कल से सब मुभी को करना पड़ रहा है। मै अकेले कहाँ तक करूँ!'

मेहतरानी की बात सुनकर इस बार महाराज को हँसी आ गई। मुस्किराते हुए बोले—"एक रुपया चंदा दे आया है, तो क्या हुआ, तुम्हारे भले के लिये ही तो यह सब हो रहा है।"

"हमारा भला तो परमात्मा को छोड और कोई नहीं कर सकता। हम तो तब जाने, जब गांधीजी हमारी तनखाह बढ़वा जायँ, इंसपट्टर हर महीना एक रुपया नजराना ले लेता है, वह बद करा जायँ, ऐसे बाते करने को तो सभी करते है। गांधीजी ने तो और हमारा एक रुपया ले लिया, वह हमें क्या दिलावेंगे।" महाराज बहुत हँसे। अन्य उपस्थित लोगों से बोले—"कहती तो पते की है। गांधीजी के आए से इन बेचारो का क्या भला हुआ!"

एक दूसरे महोदय बोले—"भला क्या इसी दम हो जाय, धीरे-धीरे होगा।"

एक तीसरे महानुभाव बोले—"भला-वला तो जो कुछ होना था, हो चुका। यह तो चार दिन की चाँदनी है। जहाँ महात्माजी गए, बस फिर वही ढाक के तीन पात रह जायँगे। न कुछ होयगा, न हुवायगा।"

"यहाँ के कांग्रेसवाले कुछ न करेंगे?"

"अभी तक क्या किया, जो अब करेंगे। हाँ, इस समय वाहवाही लूटने और नाम कमाने के लिये दौड़े-दौड़े फिर रहे है। जिसे देखो, वह यही कोशिश करता है कि महात्माजी की बग़ल मे ही बैठे। जुलूस में निकलेंगे, तो मोटर में महात्माजी की बग़ल में ही बैठेंगे। इस समय तो महात्माजी को दिखाने के लिये दौड लगा रहे हैं, पीछे कोई बात भी न पूछेगा। भाईजी, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और होते है। सेठ-साहूकारों को देखिए, नाम कमाने के लिये थैलियों पर थैलियाँ दे रहे है, पर यह किसी ने नहीं कहा कि अच्छा, आज से हम अपना मदिर अछूतों के लिये खोले देते हैं। मुख्य काम तो यही था। थैली देने को क्या, जहाँ लाखों भरा पड़ा है, वहाँ दो-चार हज़ार चंदा दे दिया, तो उनका क्या बिगड़ गया। नाम हुआ, अख़बारो में चित्र छप गया!"

"बात तो पक्की कहते हो, जो काम करने का है, वह तो कोई नहीं करता। इस समय देखो, कितने खद्दरधारी दिखाई पड रहे है। महात्माजी से मिलने के लिये जिसे देखो, खद्दर डाटे घूम रहा है। जहाँ महात्माजी गए, बस फिर वही मिल का कपडा पहनेंगे।"

"मिल का क्यों, विलायती कहो। हमने तो ऐसे-ऐसे आदमियो को खद्दर पहने देखा है, जो विलायती कपडा बेचते है। बेचे विलायती, और महात्माजी को धोका देने के लिये, उनसे हाथ मिलाने के लिये इस समय खद्दर पहने घूम रहे हैं। यह दशा है, देश का उद्धार हो, तो कैसे हो। दुनिया मे चारो तरफ़ ढोंग और पाखंड है!"

"परंतु महात्माजी के व्याख्यान में भीड तो

ख़ूब होती है। इससे तो मालूम होता है, महात्माजी की बात लोग मानते हैं।"

"अजी बस रहने भी दो, इन बातों मे क्या धरा है। हिंदोस्तानी भेड़ियाधसान विलायत तक मशहूर है। लोग तमाशा देखने आते हैं। बहुतो के लिये तो यह सब तमाशा हो रहा है, मेला है, मेला। उन्हें न अछूतोद्धार से मतलब, न खद्दर-प्रचार से। यहाँ तो परेड के बाज़ार में ऊसर-साँडे का तेल और प्रमेह-सूज़ाक की दवा बेचनेवालो तक के पास भीड लग जाती है—यह तो महात्माजी हैं। हज़ारो आदमी तो महात्माजी को देखने जाते हैं कि वह काले हैं या गोरे। यह हमारे पड़ोसी खड़े हैं, यह कल से काम-काज छोड़े दौड़े-दौड़े फिर रहे हैं। देखनेवाले समझते होगे कि महात्माजी के बड़े भक्त हैं, परंतु इनसे पूछो कि अछूतोद्धार के पक्षपाती हैं या विरोधी, तो हाल खुल जाय।" पड़ोसी महोदय सिर खुजलाते हुए बोले—"भइ, महात्माजी जो कहते है, सो तो हमसे हो नहीं सकता। वह भ्रष्टाचार सिखाते हैं, सो हम भ्रष्टाचार तो सीखेंगे नहीं।"

"तो फिर दौड़े-दौड़े क्यो फिरते हो, घर में क्यों नहीं बैठते?"

"इससे क्या होता है, सब लोग जाते है, हम भी चले जाते हैं, जी बहल जाता है। कुछ महात्माजी का उपदेश ग्रहण करने थोडा ही जाते हैं।"

"देखिए, वही बात आई न? तमाशा देखने जाते हैं, जी बहलाने जाते है। सो इन्हीं पर बात नही, अधिकांश इसीलिये जाते है। जब नेताओ का यह हाल है कि महात्माजी के सामने कुछ और उनके पीठ-पीछे कुछ, तो साधारण लोगों का तो कहना ही क्या!"

मेहतरानी नाली साफ़ करते हुए थोडी दूर चली गई थी। उससे एक महोदय बोले—"मेहतरानी, महात्माजी ने तुम लोगों को जूठन लेने के लिये मना किया है, अब आज से जूठन न लेना, समझीं।"

मेहतरानी सीधी खड़ी होकर बोली—"जूठन न लेंगी, तो बाल-बच्चे कैसे जियावेंगी महाराज! महात्माजी हमारे बाल-बच्चों के लिये खाने का इंतजाम कर जायँ, तो हम जूठन न लें।"

"महात्माजी ने इंतज़ाम किया है, लोगों से कहा है कि मेहतरो को जूठन न दे, अच्छा भोजन या सीधा दे।"

मेहतरानी बोली—"वाहवा तब फिर क्या है, एक-एक सीधा दै देओ।"

"हाँ, देखो, तुम्हारे लिये मन-दो मन आटा पिसाकर धर ले, तो फिर दिया करें।"

इतना सुनकर उपस्थित लोग हँस पड़े।

मेहतरानी बोली—"अरे महाराज, जूठन है, इससे मिल जाती है, खाया नही जाता, बच रहता है, तो क्या करो। कोई खुसी से नहीं देता। हमारे लिये न कोई आटा पिसाकर धरेगा, न कोई रसोई बनावेगा, हमारा गुजारा तो जूठन ही से है। एक-एक दो-दो रोटी घर पीछे मिल जाती है, तो खाने-भर को हो जाता है, वैसे एक दाना न मिले। आज हम जूठन लेना बंद कर दे, तो तुम्हारा क्या नुकसान है, तुम गाय को खिला दो, फेक दो। हमारे लिये अलग परोसकर रखनेवाला कोई नही।"

एक महोदय बड़े आवेश से बोले—"क्यों नहीं है? हम तुझे जूठन नहीं देंगे। रसोई होने पर पहले तेरे लिये दो रोटी निकालकर रखवा दिया करेंगे।"

मेहतरानी बोली—"मानो तुमने एक ने निकालकर रखवा दी, तो इससे क्या होता है।"

इतना कहकर वह आगे बढ़ गई। दूसरे महाराज बोले—"क्या सचमुच रोटी निकलवाकर रख दिया करोगे?"

वह सिर खुजलाते हुए बोले—"हाँ, मुश्किल कौन है। परंतु...।"

"परंतु क्या ?"

"परंतु यह कि हमेशा यह नियम निभना कठिन है। कभी कभी तो हो सकता है। मान लो, रोटी निकालकर रख दी; और पीछे हम लोगों को खाने को घट गई, तो फिर ?"

"तो ऐसा करो क्यों ? दो रोटी अधिक बनवा लिया करना।"

"अधिक-वधिक बनवाने की बात तो झूठी है। फालतू ख़र्च नहीं बाँध सकते।"

"और जूठन क्या करोगे ?"

"हाँ, यह समस्या कठिन है। तब जूठन क्या होगी ? क्या फेकेंगे थोडा ही।"

"अरे यह सब कुछ नहीं चलेगा। जैसा चल रहा है, वैसा चल सकता है। जूठन बचेगी ज़रूर। ऐसा कौन गृहस्थ है, जिसके कुछ-न-कुछ जूठन न बचती हो, सो उसका क्या होगा ? अभी तो उसकी बदौलत मेहतर का भुगतान हो जाता था, तब फिर क्या होगी ?"

'यह सब झोल है। न ये लोग जूठन लेना छोड़ेंगे, न हम लोग देना छोड़ेंगे। बातें चाहे जितनी कर लो, समझे ?"

"ठीक कहते हो, अभी जैसा चल रहा है, वैसा ही चलेगा। आगे जो होगा, देखा जायगा। अच्छा, हम तो अब जाते हैं स्नान करने, आज महात्माजी चौक मे आवेंगे, सो ज़रा जल्दी तैयार हो जाना है। तुम भी चलोगे न ?"

"हाँ-हाँ, ज़रूर चलेंगे, आज चौक में ज़रा आनंद रहेगा ?"

फ़ैशन रहे या जाय ?

[सरस्वती-संपादक कविवर ठाकुर श्रीनाथसिंह]

शन रहे या जाय ? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो समस्त संसार के लोगों को इस समय चक्कर में डाले हुए है। इस प्रश्न का तीर भारतवासियों के हृदय को बेधने के लिये बड़ी तेज़ी से दौड़ा आ रहा है। ससार की समस्या को समुद्र के पार ही रखकर यहाँ मै केवल भारतवासियों की मनोवृत्ति का थोड़ा-सा परिचय देना चाहता हूँ। भारतवर्ष मे अधिकांश लोगों को फैशन सह्य नही। यहाँ यदि यह प्रश्न कोई करे, तो चारो ओर से उसे एक ही उत्तर मिलेगा—"फैशन जाय।" यह उत्तर कदाचित् इसलिये कि भारतवर्ष में लोग फैशन को बुरा समझते है। कवि-सम्मेलनों मे फ़ैशनेबुल स्त्री-पुरुषों पर आवाजे कसे जाते है। अगर किसी नवयुवक ने मूछें मुड़ाई, तो लोग उसे तुरंत बदर या जनाना कह देंगे, यद्यपि मूछें मुड़ाना भारतीयों के लिये नया फ़ैशन नही। राम, कृष्ण और गौतम बुद्ध के मूछे नही थीं, और न प्राचीन भारतीय चित्रकला में मूछों का कोई स्थान था। मज़ा यह कि फैशन के प्रेमी लोग भी सिर झुकाकर अपराधी की भाँति सब कुछ सह लेते है। उनमें इतना साहस नही कि वे अकड़कर कह सके कि हाँ, हम जो कुछ करते हैं, अच्छा समझकर करते है, और अपनी पोशाक तथा रहन-सहन के संबंध मे किसी का उपदेश सुनना नही चाहते।

यह अवस्था सदैव नही रह सकती। लोग आक्षेप करते रहेगे, पर फैशन का प्रचार बढ़ता जायगा, और एक दिन विरोध अपने आप दब जायगा। मनुष्य की रुचि फैशन की ओर सदा रही है, और रहेगी। धर्म, सदाचार या सुधार के नाम पर फैशन का अंत नहीं किया जा सकता। समाज के शुभचिंतक इस संबंध मे अगर कुछ कर सकते है, तो केवल इतना ही कि खर्चीले फैशनो के स्थान पर वे सादे और कम-खर्च फैशनों का प्रचार करें। फैशन को संसार मे रखना या जहन्नुम में भेज देना हमारे हाथ में नही। हम उसमे अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार केवल सुधार कर सकते है। हम क्यों न साहस करके कह दें कि फैशन रहे, और उसका एक सुंदर स्वरूप निश्चित कर लें। जो लोग कहते है कि फ़ैशन जाय, वे स्पष्ट रूप से यह नहीं बताते कि क्यों जाय ? केवल धर्म और सदाचार की दुहाई देते है। एक राजा साहब ने अपने राज्य में यह आज्ञा निकाली कि जो लोग अँगरेजी ढंग से बाल कटाते है, वे रियासत के दुश्मन है, और उसे जनाना बनाना चाहते है। लिहाज़ा

नाइयों को हुक्म हुआ कि ऐसे लोग जहाँ मिले, वही उन्हें पकड़कर उनके बाल कतर दो। कुछ दिनों तक रियासत मे अंधेर मचा रहा। नाई लोग ऐसे शौकीनों को ढूँढ-ढूँढकर मूड़ने लगे। पता नही, अब भी वहाँ यह कार्य जारी है या नही। एक दूसरे राजा ने यह आज्ञा निकाली कि ऐसे महीन वस्त्र, जिनके भीगने पर अंग झलकें, स्त्रियाँ पहनकर नहाने न जाने पावे। लिहाज़ा स्नान के घाटो पर पुलिस का पहरा बैठ गया, और ऐसी बहुत-सी स्त्रियों की बेइज़्ज़ती की गई। हमारे देश की बहुत-सी रियासतों मे आज भी इस प्रकार की मूर्खतापूर्ण आज्ञाएँ जारी हो रही है। वे समझते हैं, फैशन शुरू हुआ, और सदाचार का क़िला टूटा। इसीलिये वे फ़ैशन से घबराते है। बहुत-सी जगहों मे उच्च वर्ण के लोगों के लिये फैशन माफ हो गया है, पर वहाँ यदि निम्न श्रेणी के लोग फशन की ओर झुकते है, तो उन पर आफत आ जाती है। मैने एक रियासत मे स्वय देखा कि एक भंगी को पकड़कर लोगों ने केवल इसलिये कोड़े लगाए कि उसने अँगरेज़ी ढंग के बाल रखवा लिए थे।

तो क्या सदाचार ऐसी चीज़ है, जो बालों में तैल लगाने या कंघी करने, मूछें मुड़ाने या ख़ास तरह की पोशाक पहनने से नष्ट हो जायगी, क्या जो लोग मूछें नही मुड़ाते, बालों में कंघी नहीं करते, वे बड़े ऊँचे दर्जे के सदाचारी होते है ? इस प्रश्न का सही उत्तर जानने के लिये जेलख़ानों में बंद समाज के अपराधियों की पूर्व रहन-सहन पर विचार करना होगा। और, उस पर विचार करने से पाठक इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि फैशन अपराध को प्रोत्साहन नही देता। जो लोग फैशन नही करते, जिन्होंने कभी सुना भी नही कि फ़ैशन किस चिड़िया का नाम है, उनकी बहुत बड़ी संख्या जेलों मे मिलेगी। इससे यह स्पष्ट है कि सदाचार के नाम पर लोग फैशन का विरोध केवल इसलिये करते है कि उन्हे विरोध करने का कोई और बहाना नही मिलता। वे प्राचीनतावादी लोग, जो प्रत्येक नई बात से भड़कते है, नए फ़ैशनो को बेशक सहन नही कर सकते! यहाँ एक छोटा-सा उदाहरण पर्याप्त होगा। भारतवर्ष मे पोशाक-संबधी सबसे नया फैशन है—गांधी कैप, खादी का कुर्ता, खादी की धोती और चप्पल मर्दों के लिये, और खादी की साड़ी, खादी का जफर और चप्पल स्त्रियों के लिये। प्राचीनतावादी लोग इस नए फैशन का विरोध नहीं कर सके, क्योंकि अभी तक वे पोशाक का विरोध दो बातों के ऊपर करते थे। पहली तो यह कि वस्त्र विदेशी है, और दूसरी यह कि वह महीन है। जब गांधी ने शुद्ध, स्वदेशी और मोटा वस्त्र उनके सामने उपस्थित किया, तब वे चकराए, अपने पुराने तर्कों के कारण वे किंकर्तव्यविमूढ़-से हो रहे। खादी की पोशाक का वे विरोध न कर सके, पर उन्होंने उसको अपनाया भी नही। उन पंडितों को और उन मुल्लाओं और बाबुओं को—जो शुद्ध, स्वदेशी और पवित्रता का दम भरते हैं, पर खादी की पोशाक धारण करने

से इनकार करते है—कोई हक नही कि नए फैशन के संबंध मे अपनी राय दें। खादी की पोशाक-जैसा शुद्ध, उपयोगी, देश-काल के अनुकूल और अल्प व्ययवाला फैशन न अपनाकर ये पडित और मौलवी आज भी विदेशी वस्त्रों की, अँगरेज़ी काट की और मशीनो पर सिली हुई पोशाक पहनते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ये लोग केवल नए फैशनों के विरोधी है, और पुराने फ़ैशनों से चिपके हुए है। दूसरे शब्दों मे इसे यों कह सकते है कि ये लोग फैशन की दौड़ में हमेशा पीछे रहते है। मशीन की सिली हुई पोशाक भी इन्होंने बहुत कष्ट और बहुत हिचकिचाहट के बाद धारण की होगी। विदेशी वस्त्रो को तो और भी कष्ट के साथ धारण किया होगा। पर जब उसके आदी बन गए, तब उसे छोडने के लिये तैयार नहीं। खेद है, आज वे पडित, जो धर्म और सदाचार की दुहाई देते है, विदेशी वस्त्रों को धारण करते हुए नही शर्माते और खादी पहनते हुए डरते है। इन लोगों को बुद्धि और तर्क से कोई मतलब नही, उपयोगिता और अनुपयोगिता से कोई प्रयोजन नही। ये किसी बात का विरोध केवल इसलिये करेंगे कि वह नई है, और उसे इन्होने अपने बाप-दादा को करते नही देखा। बाप को खादी पहनते नही देखा, तब खुद क्यो पहने? धन्य है इस तर्क को। ऐसे लोगों से ईश्वर ही रक्षा करे। भारत ही मे नही, ऐसे बुद्धि के शत्रु सभी देशों में है, और नए फैशनों का इसी प्रकार विरोध करते है। पाठकों ने, कुछ दिन हुए, इँगलैंड के एक बड़े पादड़ी की घोषणा समाचार-पत्रो मे पढी होगी। उसने कहा था, जो स्त्रियाँ अपनी टाँगें खोलकर सड़कों पर चलती है, वे स्वर्ग न जा सकेंगी। पादड़ी साहब को क्या पता कि उन स्त्रियों ने उन सड़कों को ही अपनी नग्न टाँगों का प्रदर्शन करके स्वर्ग से अधिक आकर्षक बना लिया है। फैशन का उद्देश्य ही है परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करना, एक दूसरे की दृष्टि में सुंदर लगना, और ससार को सुंदर बनाना, पर यहाँ तो हमारे पडितों, मुल्लाओ और पादडियों मे सयम नही। स्त्रियों को सुंदर पोशाक में देखकर उनका सयम भग होता है। इन लोगो को पता नही कि इनकी संयम की रक्षा के लिये अब स्त्रियाँ घरों में न बैठेंगी, और अपने शरीर को ढककर न चलेंगी। यदि अर्द्ध-नग्ना स्त्रियों को देखकर इनका संयम टूटेगा, तो इनका ईश्वर इन्हें चाहे नरक में न भी भेजे, संसार की वर्तमान शासन-प्रणाली तो इन्हें जेल-खाने भिजवा ही देगी। वहाँ जाने पर इन्हें प्रतीत होगा कि संयम और सदाचार की रक्षा का यही उपयुक्त स्थान है।

फैशन अब जायगा नही, रहेगा। हमें उससे भागने की आवश्यकता नही, वह हमारे लिये विदेशी नही। अपने शरीर को सुंदर और आकर्षक बनाना और इस प्रकार की पोशाक धारण करना कि उसके भीतर से वह अधिकाधिक सुंदर जान पड़े, व्यक्ति और राष्ट्र, दोनो के लिये हितकारक है। इससे मनुष्य को अपना शरीर

पुष्ट और सुडौल बनाने की उत्तेजना मिलती है। आज भारतवासी कमज़ोर, बदसूरत और निकम्मे क्यों दिखाई पड़ते है। इसलिये कि पडितो और मुल्लाओं के कहने मे आकर उन्होने अपने शरीर की सौदर्य-वृद्धि करनी छोड़ दी, फ़ैशनों से मुँह मोड लिया। पर अब वे कमज़ोर और असुदर नही रहना चाहते। इसीलिये उन्होंने आधुनिक व्यायामों और आधुनिक फ़ैशनों को अपनाया है। फ़ैशनो की वृद्धि से भारत का उपकार होगा, अपकार नही। आवश्यकता पड़ने पर इस संबंध में मै अपने उन तर्कों को भी उपस्थित करूँगा, जो समयाभाव के कारण यहाँ नही दिए जा सके।

हम कैसे जीते हैं ?

[श्रीरमेशप्रसाद बी० एस्-सी०]

भोजन का मनुष्य के जीवन से बड़ा घनिष्ठ संबध है। यदि हमें कुछ दिनों तक भोजन न मिले, तो हमारा प्राणांत अवश्य हो जाता है। यदि भोजन उपयुक्त प्रकार का न हो, तो हमारा स्वास्थ्य गिर जाता और हमारी आयु घट जाती है। यदि हम लगातार कुछ दिनों तक अपुष्टि-कारक भोजन करते रहे, तो हमारी तंदुरुस्ती दिन-दिन खराब होती जाती है, और हम कुछ ही दिनो में मृत्यु के शिकार बन जाते है। इसी प्रकार उत्तम तथा पुष्टिकारक भोजन द्वारा मृत्यु के आगमन को रोककर आयु बढ़ाई भी जा सकती है। किंतु मृत्यु है क्या चीज़? शरीर से कार्यकारिणी शक्ति का सर्वथा लोप हो जाने ही को हम मृत्यु कह सकते है।

इसमे सदेह नही कि मनुष्य-शरीर के लिये शक्ति अत्यावश्यक वस्तु है। इस शक्ति को लोग कई नाम से पुकारते है। कुछ लोग इसे गरमी कहते है, कुछ कॉलोरीज कहते है, और कुछ Basal Metabolism द्वारा इसे पुकारते है। शरीर के पुष्टिकरण के विचार से इन सभी शब्दों का एक ही आशय होता है। वैज्ञानिक कई प्रकार की शक्ति से परिचित है। गरमी एक शक्ति है, विद्युत् दूसरे प्रकार की शक्ति है। चुंबक की शक्ति, गुरुत्वाकर्षण की शक्ति, यांत्रिक शक्ति (mechanical energy) आदि शक्ति के भिन्न-भिन्न रूप है। शरीर की शक्ति भी यांत्रिक शक्ति है। यदि हम यह जान ले कि हमारे शरीर को दैनिक कार्य-संपादन के लिये कितनी शक्ति की आवश्यकता होती है, तो हम भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों—जिनकी शक्ति-उत्पादक शक्ति ज्ञात है—का भोजन कर उतनी शक्ति अपने शरीर में जमा रख सकते है। किंतु कठिनाई यह है कि इस यांत्रिक शक्ति को मापने का कोई साधन नहीं है। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि श्वास लेने मे, शरीर में रक्त-संचालन में, कितनी शक्ति खर्च होती है, इसे जानना आसान बात नही। इन क्रियाओं में कितनी शक्ति व्यय होती है, इसे जानने के लिये वैज्ञानिकों ने उस सिद्धांत से काम लिया है, जो अनेक प्रयोगों द्वारा सच्चा उतर चुका है। वैज्ञानिक जानते है कि एक प्रकार की शक्ति विना उसका कोई भी अंश नष्ट किए दूसरी शक्ति मे परिणत की जा सकती है। शरीर की यांत्रिक शक्ति को वे गरमी के रूप मे परिणत कर तथा नापकर इस नतीजे पर पहुँचे है कि हमारे किस काम मे कितनी शक्ति लगती है।

शरीर से गरमी निकलती है। इस गरमी

को मापने का सवाल है । इसके लिये धातु के कमरे बनाए गए है । कोई-कोई कमरे बड़े हॉल के आकार के होते है । उनमे दरवाजे, जगले भी लगे होते है । जो मनुष्य उसमे रक्खे जाते है, उनके श्वास लेने के लिये हवा, पीने के लिये पानी और खाने के लिये भोजन का भी प्रबंध रहता है, किंतु उस कमरे की दीवाले ऐसी बनी हुई है कि मनुष्य के शरीर से जो गरमी निकले, उसका कोई भी अश नष्ट न होने पावे, और न बाहर की गरमी से कमरा गरम ही हो सके । इसमे शरीर से निकली हुई गरमी को मापने की व्यवस्था भी है। इस कमरे को वैज्ञानिक भाषा मे कॉलोरी-मिटर (ताप-मापक यंत्र) कहते है। इतने बड़े यंत्र से काम लेने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के भिन्न-भिन्न प्रकार के काम मे लगने-वाली शक्ति को गरमी के रूप मे परिणत कर देना और उसे कॉलोरीज़ मे मापना। (गरमी मापने के ऐकिक (unit) को कॉलोरीज़ कहते है) ।

कई परीक्षाओ द्वारा पता लगा है कि मनुष्य जीवन-धारण के लिये यथेष्ट शक्ति व्यय करता है। यह शक्ति-व्यय मनुष्य की उम्र, अवस्था कार्य करने के तरीको तथा अन्य कई बातो पर निर्भर है। स्त्रियाँ अपनी ही उम्र के पुरुषों से प्रति घंटा कम कॉलोरीज़ व्यय करती है। नीचे दी हुई तालिका मे यह दिखलाया गया है कि किस उम्र के स्त्री-पुरुष प्रति घंटा कितने कॉलो-रीज़ गरमी व्यय करते है—
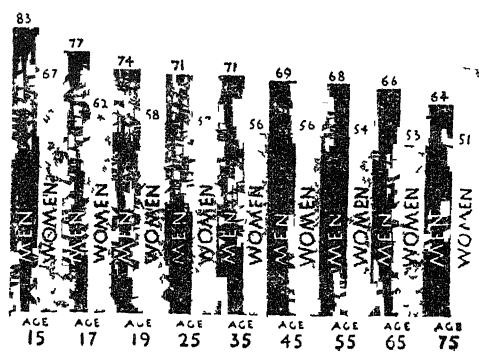
एक मनुष्य—जो रात्रि-निद्रा के बाद भोर में अभी अभी जगा है, किंतु अभी चारपाई पर पड़ा हुआ है--बहुत ही कम शक्ति व्यय कर रहा है। कुछ लोग आश्चर्य करेंगे कि अभी तो उसने कुछ कार्य ही नही आरंभ किया, शक्ति कैसे व्यय करने लगा ? उसकी श्वास चल रही है, उसका हृदय धड़क रहा है, उसके शरीर मे रक्त-संचालन हो रहा है, इन कार्यों के लिये भी शक्ति की आवश्यकता होती है। यदि उस मनुष्य की तौल दो मन हो, और वह ५ फीट आठ इंच लबा हो, तो उसे इस अवस्था मे पड़े रहने के लिये प्रायः ७१ कॉलोरीज़ प्रति घंटा या प्रायः १७०० कॉलोरीज़ दिन-रात में गरमी खर्च करनी पड़ेगी। यह हिसाब २० से ४० वर्ष की उम्र के मनुष्य के लिये है। यदि वह कम उम्र का है, तो अधिक और ज्यादा उम्र का है, तो कम खर्च करनी पड़ेगी।

एक औसत स्त्री एक औसत पुरुष से छोटी और हलकी होती है। एक स्त्री यदि ५ फीट ३ इंच लबी और तौल मे डेढ़ मन हो, और यदि उसकी अवस्था ४० वर्ष की हो, तो उसे चारपाई पर

पड़े रहने के लिये एक घंटे के लिये ५४ कॉलोरीज या दिन-भर के लिये १३०० कॉलोरीज शक्ति की आवश्यकता होगी। केवल उम्र पर ही शक्ति का व्यय निर्भर नहीं। मनुष्य के शरीर का स्वास्थ्य भी इस विषय मे विचारणीय है। बीमारी की दशा में साधारण अवस्था की अपेक्षा अधिक शक्ति खर्च होती है। किसी-किसी हालत में इसकी मात्रा प्रायः दुगनी हो जाती है। यही कारण है कि बीमार पड़ने पर हम दुर्बल हो जाते है। पुरुष और स्त्री में शक्ति का व्यय पृथक्-पृथक् रहता है, जैसा कि तालिका देखने से पता चलता है।

हममें बहुत ही कम लोग ऐसे होंगे, जिन्हें दिन-भर चुपचाप चारपाई पर लेटे रहने का सौभाग्य प्राप्त हो, यद्यपि इस अवस्था में पड़े रहने से भोजन का खर्च बहुत ही कम हो जाता है। हममें बहुतों को उठकर अपनी रोटी का सवाल हल करना पड़ता है, और कम-से-कम शरीर को प्रतिदिन १७०० कॉलोरीज गरमी पहुँचाने के लिये भोजन जुटाना पड़ता है। पड़े रहने के अतिरिक्त अन्य कोई भी काम करने में अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है। अभी दो मन वज़नवाले जिस मनुष्य का परिचय हम पा चुके है, वह यदि सिर्फ उठकर चारपाई पर बैठ जाय, तो प्रति घंटा उसे १०० कॉलोरीज़ व्यय करना पड़ेगा। यदि वह उठकर अपने अस्त-व्यस्त बालों को ठीक करने के लिये आईना-कंघी उठाता है, तो १०५ कॉलोरीज़ और कपड़ा पहनने मे ११८ कॉलोरीज प्रति घंटा के हिसाब से खर्च करने पड़ते है। मुँह-हाथ धोने मे १२५ कॉलोरीज़ प्रति घंटा की आवश्यकता होती है। यदि वह दोमंजिले पर सोया हुआ है, और उसे नाश्ता के लिये नीचे उतरना पड़ता है, तो ज़ीने तक जाने में २०० कॉलोरीज़ प्रति घंटा के हिसाब से और सीढ़ी से उतरने मे २१० कॉलोरीज़ प्रति घंटे के हिसाब से खर्च करने पड़ते है। इसी बीच वह देखता है कि सिगरेट का डब्बा वह भूल से ऊपर ही छोड़ आया है, और वह ऊपर जाता है। इस क्रिया मे २३० कॉलोरीज़ के हिसाब से व्यय करता है। यदि उसे गाने-बजाने का शौक हुआ, और वह ऑफिस जाने के पहले का समय गाने-बजाने मे व्यतीत करना चाहता है, तो प्रति घंटे २०० कॉलोरीज के हिसाब से शक्ति खर्च कर डालता है। अब वह खा-पीकर दफ्तर को रवाना होता है, और साधारण चाल से ज़रा तेज़ चलता है, इसमें ३०० कॉलोरीज़ प्रति घंटे के हिसाब से व्यय कर रहा है। इतने मे उसकी नज़र अपनी कलाई की घड़ी पर जाती है—१०½ हो चला है। वह चलने की रफ्तार बढ़ाता है। इसी के साथ-साथ ३०० से बढ़कर ५७० कॉलोरीज प्रति घंटे के हिसाब से खर्च होने लगते है। दफ्तर मे पहुँचकर ज्यो ही वह कुर्सी पर बैठता है, शक्ति घटकर केवल १०० कॉलोरीज़ पर जा पहुँचती है। दफ्तर मे सारा दिन उसका खर्च प्रायः इसी १०० कॉलोरीज़ के हिसाब से होता रहता है। शारीरिक काम करनेवाले बढ़ई, लुहार आदि दिन में अपना काम

करते समय २५० से २६० कॉलोरीज़ प्रति घंटे के हिसाब से खर्च करते है। शक्ति भोजन से ही प्राप्त होती है। चूँकि दफ्तर मे काम करने-वाले कम शक्ति व्यय करते है, इसलिये वे भोजन का अधिकांश हिस्सा चरबी के रूप में जमा करते जाते है। ऐसे लोगों में अधिकांश तोंदवाले होते है। शारीरिक काम करनेवाले दफ्तर में काम करनेवाले लोगों से प्रतिदिन प्रायः १२०० कॉलोरीज़ अधिक खर्च करते है। यही कारण है कि इन लोगो में बहुत कम तोंदवाले मिलेगे।

स्त्रियों में भी काम करनेवाली और कम काम करनेवालियों में भिन्नता पाई जाती है। स्त्रियाँ अपना दिन ५४ कॉलोरीज़ प्रति घंटा के हिसाब से आरंभ करती है। ज्यो ही वे उठ बैठती है, ७५ कॉलोरीज़ के हिसाब से खर्च करने लगती है। खडे होते ही यह बढ़कर ७९ कॉलोरीज हो जाती

है। स्त्रियों के कपड़ा पहनने मे ९०, ज़ीने तक जाने मे १५०, सीढी से नीचे उतरने में १५८, नाश्ता तैयार करने मे १०८, पुनः दोमंज़िले पर जाने में १७२ कॉलोरीज़ प्रति घंटे के हिसाब से व्यय होता है। घर के लोगों को खिलाकर दफ्तर भेजने के बाद कपड़ा मरम्मत करने मे ८३, झपकी लेने में ५० और ताश खेलने मे ८० कॉलोरीज़ के हिसाब से लगते है।

कहा जाता है, जोर से टहलना सर्वोत्तम व्यायाम है। इस युक्ति में कुछ लोगों को संदेह रहता है। परीक्षा द्वारा पता लगा है कि जिस रेट से हम दौड़ते है, उसी रेट से यदि हम चलें, तो दौड़ने की अपेक्षा चलने में प्रायः १५ सैकड़े अधिक कॉलोरीज खर्च होता है। 'गॉल्फ' खेलने मे प्रति घंटा २०० से ३०० कॉलोरीज़ के हिसाब से, तैरने में ५०० से भी अधिक कॉलोरीज़ और 'टैनिस' खेलने मे प्रायः ६०० कॉलोरीज प्रति घंटा के हिसाब से लगता है। अन्य खेलों में खिलाड़ी के खेलने की तीव्रता पर कॉलोरीज़ का खर्च निर्भर है।

हम जिस शक्ति को काम में लाते है, उसका सारा भाग हमारे भोजन से प्राप्त होता है—वह भोजन, जिसे हम खाकर पचाते और जिसका सार भाग ग्रहण करते है। दरअसल यह शक्ति हमें भोजन के तीन पदार्थों—

शकर या माँड़ (carbohydrates), तेल, घी, चर्बी (Fats) और नेत्रजन-प्रधान वस्तुओं (proteins)—से प्राप्त होती है। सूखे और शुद्ध शकर या माँड़ का एक छटाक भाग आग या शरीर मे जलाने से प्रायः २२५ कॉलोरीज़ गरमी निकलती है। शुद्ध प्रोटीन, जैसे अडे की जर्दी, माँड़ ही के बराबर गरमी पैदा करती है। चर्बी मे अधिक गरमी पैदा करने की शक्ति है। एक छटाँक घी या चर्बी से ५०० कॉलोरीज से भी अधिक गरमी निकलती है। इस प्रकार हम जनते भी है कि जिन पदार्थों मे चर्बी की अधिकता होगी, वे शक्ति भी अधिक उत्पन्न करेंगे। बहुत-से फलों और शाकों मे जल का भाग अधिक होता है, इसलिये उनमे माँड़ तथा अन्य पदार्थ कम होते है। अतएव उनमें शक्ति-उत्पादक शक्ति भी कम होती है। शराब जब शरीर में जलती है, शक्ति पैदा करती है, किंतु पेशियों के सचालन के लिये यह शक्ति नही दे सकती। वह क्षणिक उत्तेजना ला सकती है, किंतु कार्यकारिणी शक्ति तो भोजन से ही प्राप्त होती है।

नीचे कुछ खाद्य पदार्थों के नाम दिए जाते है। उनमे प्रति सेर मे कितनी शक्ति पैदा करने की शक्ति है, यह भी दिया गया है। भिन्न-भिन्न स्थानों के खाद्य पदार्थों में कुछ कमी-बेशी हो सकती है—

वस्तु	प्रति सेर कॉलोरीज़
तेल	८१६०
चर्बी	८१६०
मक्खन	७०००
गोश्त	४७४०
चावल	३१८०
किशमिश	२८००
सूखे बेर	२३२०
शहद	२६६०
आटा	३२००
अंजीर सूखे	२८८०
खजूर	२८३०
बिस्कुट	३८००
रोटी	२२००—२७००
बादाम	३२३०
शकरकंद	९००
आलू	६००
बेर	७२०
दूध	६४०
अंगूर	६६०
अंडा	१२००
मलाई	१७६६
मछली	७२०
मुर्गी का बच्चा	५८०
हरा मटर	११२०
केला	५८०
सेब	४३०
खरबूज़ा	११७
शलजम	२५०
टोमाटो	२००
मूली	१८०
खीरा	१४०

कद्दू	१२०
सतरा	३४०
प्याज	४००
तरबूज	१८०
नीबू	२८०
ककड़ी	१२०
गोभी	२८०
गाजर	३२०
फूल कोबी	२४०

इस तालिका मे गुठली, छिलका आदि बाद नहीं दिया गया है। बाजार मे जिस अवस्था मे ये चीजे पाई जाती है, उसी की शक्ति दी गई है। गुठली, छिलका आदि के लिये कुछ मार्जिन रख लेना चाहिए। उदाहरण के लिये बादाम को लीजिए। तालिका में इसके सामने २२३० कॉलोरीज लिखा हुआ है। यह छिलका-सहित है, छिलका हटा देने से इसकी शक्ति-उत्पादक शक्ति ५८८० हो जाती है।

यदि कोई मनुष्य अपने भोजन के मूल्य (value) को कम बेश करना चाहे, तो उसे ऊपर की तालिका से बहुत कुछ मदद मिल सकती है। यह भी ख़याल रखना चाहिए कि यदि दैनिक आवश्यकता से अधिक भोजन किया जाय, तो अधिक भोजन चर्बी के रूप मे शरीर मे जमा होता जायगा। इसके विपरीत यदि आवश्यकता से कम खाया जाय, तो शरीर के कोष स्वय जलकर उस कमी को पूरा करेंगे। अधिक दिनो तक यही क्रम जारी रहा, तो शरीर कोषाभाव मे नष्ट हो जावेगा। उपवास-काल मे शरीर की सचित चर्बी ख़र्च होती है।

भोजन का काम शरीर को शक्ति देना है। यदि मनुष्य आवश्यकता से अधिक भोजन करता है, तो मोटा होता जाता है, और यदि कम, तो दुबला। भोजन मे कमी कर मोटे आदमी दुबले और भोजन को बढाकर दुबले आदमी मोटे हो सकते है। जो लोग हर साल तौल मे एक-सा रहते है, वे सौभाग्यशाली है, क्योंकि उन्हें जितने भोजन की आवश्यकता होती है, उतना ही वे करते है।

हिंदी के कुछ महत्त्व-पूर्ण टॉकी फ़िल्म

[श्रीयुत लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०]

रतवर्ष में बोलते फ़िल्मों का प्रचार दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है, और वह समय दूर नहीं, जब पाश्चात्य देशों की भाँति यहाँ भी फ़िल्म-व्यवसाय पूरी उन्नति पर होगा। यह एक अप्रिय सत्य है कि हमारी भारतीय कंपनियों में से अधिकांश केवल निम्न कोटि के चित्रपट निर्माण करने में सफल हुई हैं। फिर भी कुछ कंपनियाँ ऐसी हैं, जिनका उद्देश्य आरंभ से ही साहित्य और कला को प्रोत्साहन देने के साथ-ही साथ ऐसे चित्रपट बनाने का रहा है, जो आदर्श कहे जा सकते है। हिंदी-साहित्य को फ़िल्मों मे स्थान देने का श्रेय केवल इनी-गिनी दो-चार कंपनियों को ही प्राप्त हो सका है, जिन्होंने उसके महत्त्व को और उसके वास्तविक रूप को अच्छी तरह समझा है, और अनुभव किया है। मै धार्मिक चित्रपटों को महत्त्व नहीं देता, क्योंकि उनमे विषय-निर्वाह का अभाव रहा है, वे जनता के एक समूह-विशेष की रुचि के अनुकूल रहे हैं। आरंभ में, जब जनता कला के विकास से अनभिज्ञ रही, फ़िल्म-कंपनियों ने बेढंगे, बेतुके और असंगत धार्मिक फ़िल्म बनाकर ख़ूब पैसा लूटा। परंतु आज दिन रुचि के विकास के परिणाम-स्वरूप कला का विकास हो रहा है, और भारतीय जनता सिनेमा-भवन मे जाते समय अपने पैसों का मूल्य समझकर अच्छे-से अच्छा चित्रपट देखना चाहती है। ऐसी दशा में चित्रपट-निर्माण मे उन्नति, परिष्करण और कला की माँग का बढ़ना अवश्यंभावी है। आलोचनात्मक दृष्टि की उत्पत्ति ही जन-समुदाय की कलाप्रियता की द्योतक है। भाषा, भाव, अभिनय एवं कथानक का प्रवाह किसी भी चित्रपट को निम्न या उच्च कोटि का सिद्ध करने मे समर्थ होता है। विज्ञापनबाज़ी का प्रभाव उतना नहीं होता, जितना आडंबर से रहित सत्य का, चाहे वह सत्य देर में ही क्यों न प्रकट हो। बंबई की अधिकांश कंपनियाँ प्रतिमास दो-तीन चित्रपट बनाने मे एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रही है, चाहे वे चित्रपट दो कौड़ी के क्यों न हों। उनका विश्वास सामूहिक निर्माण मे पक्का हो चुका है, क्योंकि सिनेमा-भवनों की अधिकता और चित्रपटों की कमी उनको अनुकूल मार्ग दिखा रही है। परिणाम-स्वरूप उनके चित्रपट अभिनय, कला और साहित्य की दृष्टि से एकदम निम्न श्रेणी के होते हैं, यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से वे एक बार सफल ही क्यों न हों। नाच-गाने से भरा हुआ कला-हीन स्टेज-अभिनय, कैमरा द्वारा लिए गए स्टंट चित्र और अशुद्ध भाषा बंबई के बने हुए सवाक् चित्रपटों की विशेषताएँ है। रह गया कलकत्ता, वहाँ एकआध को छोड़कर अधिकांश कंपनियाँ सस्ते चित्रपट तैयार करती रहती है। उनमे समय अधिक लगता है। फिर भी वे चित्रपट सफल नहीं हो पाते। इसका मुख्य कारण निर्माताओं मे उत्तर-भारत की सिनेमा-प्रिय जनता की रुचि का ज्ञान न होना है। एक प्रकार से युक्तप्रांत, पंजाब और दिल्ली, ये ही स्थान हिंदी के चित्रपटों की कसौटी-रूप है। इनमें सफलता पानेवाले फ़िल्म भारतवर्ष-भर मे सफल होते है। इसी कारण बंबई के निर्माता उत्तर-भारत की जन-रुचि का अपने चित्रपटों में विशेष ध्यान रखते है। हाँ, कला-हीन चित्रों को शिक्षित

जन-समुदाय अब ठुकराने लगा है, और उनको वाछित सफलता नहीं प्राप्त होती, चाहे वे किसी भी प्रांत की किसी भी कंपनी के हों।

प्रभात-सिनेटोन, पूना और न्यू थिएटर्स, कलकत्ता के चित्रपटों ने सिनेमा-जगत् मे युगांतर उपस्थित करके जनता में कला-प्रेम जाग्रत् कर दिया है। माया-मच्छींद्र, जलती निशानी, सैरंध्री के निर्माण में अतुल धन व्यय करके प्रभात ने भारतवर्ष एवं विदेशों में अपनी कीर्ति का डंका बजाया। इन उपर्युक्त चित्रपटों में भाषा, भाव, अभिनय-कला, ध्वन्यालेखन, दृश्यावली, सभी उच्च कोटि की हैं। सेटिंग्स की विशालता के लिये प्रभात प्रसिद्ध था ही, किंतु उसके नए चित्रपट 'अमृत-मंथन' से हम बहुत कुछ आशा रखते हैं। कारण, प्रभात-सिनेटोन के अधिकारियों ने पूना में पहलेपहल भारत की सर्वश्रेष्ठ और सबसे बड़ी प्रयोगशाला का निर्माण किया है। उसका स्टूडियो बहुत बड़ा है, और विद्युत्-प्रकाश का आयोजन पूर्णता को पहुँच चुका है। जर्मनी से लाए हुए ५०० एम्० एम्० के लेंस का प्रयोग पहलेपहल 'अमृत-मंथन'-नामक चित्रपट मे ही दिखाई देगा। इसके अतिरिक्त बहुरंगा चित्रपट बनाने की मशीन भी प्राप्त करके अपने

मास्टर बिट्ठल और मिस मेनका
(सरस्वती-सिनेटोन-कृत 'भेदी राजकुमार' मे)

देश के फ़िल्म-व्यवसाय को उन्नत करने का श्रेय प्रभात-सिनेटोन को ही प्राप्त होगा। रही कला-कारों की बात, यह प्रभात की विशेषता है। नए-नए कलाकारों को शिक्षा देकर काम लेना

मिस शकुंतला
('भेदी राजकुमार' के दृश्य में)

और उनको सर्वोत्तम रूप मे परदे पर लाना प्रभात का एक नियम-सा बन गया है। डाइरेक्टर श्रीशांताराम स्वयं एक कुशल कलाकार है, और प्रभात सिनेटोन
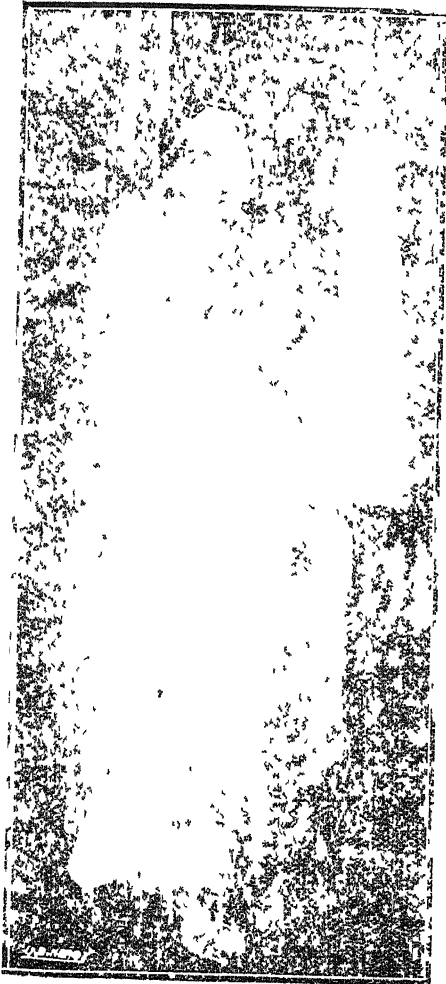
कुमारी इंदुमती

(हिमालय-पिक्चर्स-कृत 'सिंहासन'-नामक चित्रपट में)

की उन्नति में वह स्तंभ-रूप है। उन्होने 'अमृत-मंथन'-नामक चित्र की भूमिका मे इस बार शिक्षित कलाकारो को ही रक्खा है। कुमारी नलिनी तर-खुद बी० ए०, कुमारी शांता और श्रीचंद्रमोहन वाटल, श्रीसुरेश बाबू आदि-आदि का सहयोग लेकर वह 'अमृत-मंथन' को भारत का सर्वश्रेष्ठ चित्रपट बनाने का उद्योग कर रहे है। ईश्वर उन्हें सफलता देगा, क्योकि उनमे और उनके कलाकारों में कार्य करने की क्षमता है, अध्यवसाय है, कला-प्रेम है, और एक अनूठी लगन है, जो उनको तथा प्रभात को गर्वोन्नत कर सकती है।

न्यू थिएटर्स का 'पूरन भक्त' यद्यपि यथेष्ट ख्याति पा चुका है, परंतु उसके आदर्श मे और प्रभात के चित्रों के आदर्श मे ज़मीन-आसमान का अंतर है। 'पूरन भक्त' की भाषा एकदम लचर, पात्रों का उच्चारण निकृष्ट और वेश-भूषा तथा वस्त्र अधिकांश मे समय के विपरीत और भद्दे हैं। सारे चित्र मे बंगालीपन वर्तमान है, जो हमारे प्रांत के दर्शकों को बहुत ही खटकता है। न्यू थिएटर्स, कलकत्ता के बनाए चित्रो मे यद्यपि यह सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है, और उसमे बहुत से गुण भी है, परंतु वह प्रभात-सिनेटोन मे चित्रो की समानता कदापि नहीं कर सकता। 'पूरन भक्त' मे कला है, विषय-निर्वाह है, और आकर्षण है, जो श्रीयुत देवकीकुमार बोस-जैसे कुशल डाइरेक्टर के सह-योग का फल है। जितनी प्रशंसा पत्रकारों ने इस चित्र को दी है, उतनी के योग्य वह कदापि नहीं हो सकता। हाँ, हम उसे एक परिमार्जित और परिष्कृत चित्रपट मान सकते है।

उपर्युक्त फिल्म-कंपनियों के बाद सरस्वती सिने-टोन, पूना का नाम उल्लेखनीय है, जिसके बनाए हुए 'श्यामसुंदर', 'आवारा शाहज़ादा', 'भक्त प्रह्लाद' आदि चित्रो ने सिनेमा-संसार मे यथेष्ट ख्याति पाई है। भाषा और साहित्य की दृष्टि से इसके चित्रपट सबसे अच्छे होते है। श्रीयुत आर० जी० तोरणे-सरीखे कुशल डाइरेक्टर के प्रयास का

यह फल है कि आज दिन सरस्वती-सिनेटोन के चित्रों का प्रचार बढ़ रहा है। इसका आगामी चित्रपट होकर आनेवाला है। इस कंपनी के अभिनेता और अभिनेत्रियाँ प्रभात-सिनेटोन की भाँति प्रति
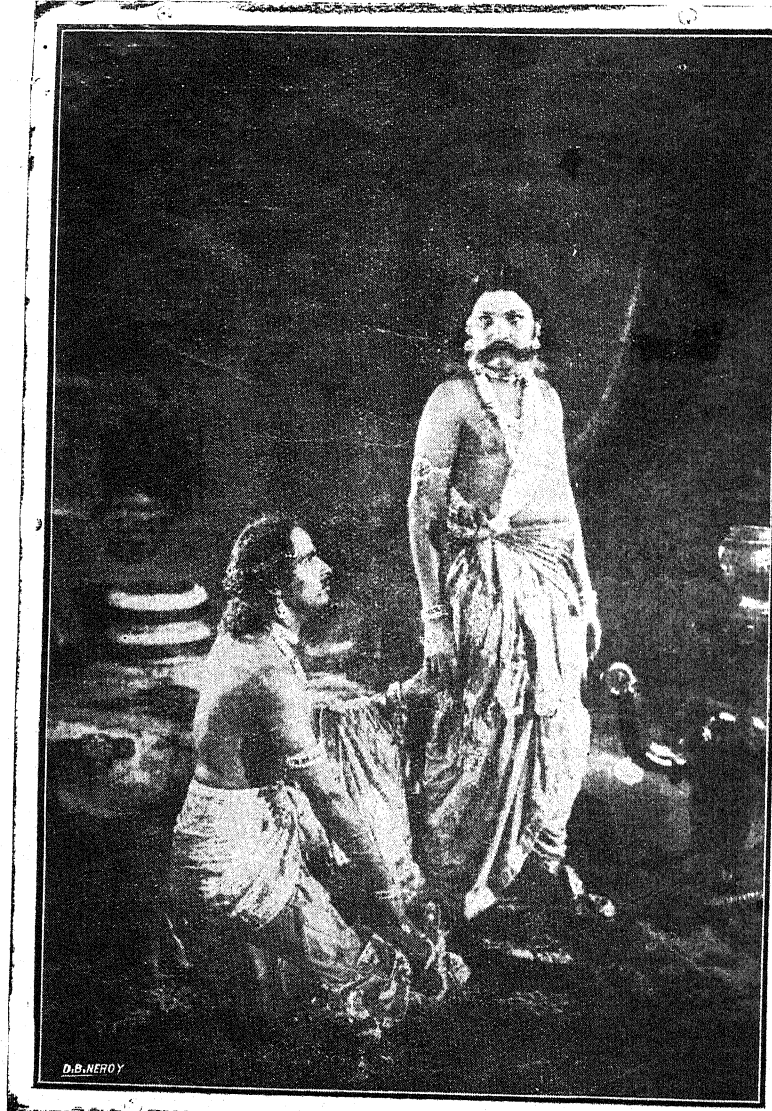
श्रीयुत वासुदेव तथा श्रीयुत सर्वे

(हिमालय-पिक्चर्स-कृत 'सिंहासन' के एक दृश्य में)

'भेदी राजकुमार', जो प्राचीन भारत की एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर है, शीघ्र ही तैयार बार नई-नई होती हैं, किंतु उनकी दक्षता, कुशलता और भाव-प्रदर्शन में सफलता देखकर

दंग रह जाना पड़ता है। 'भेदी राजकुमार' में प्रमुख अभिनय मास्टर बिट्ठल का है, जो सिनेमा-जगत् में साहसिक अभिनेता के रूप में प्रसिद्ध हो चुके हैं। सुना है, उनको गायन शिक्षा भी दी गई है, और उपर्युक्त चित्रपट में उन्होंने सुंदर रूप में अपने कार्य का निर्वाह किया है। कुमारी मेनका नाम की एक नई अभिनेत्री श्रीयुत बिट्ठल के साथ अभिनय कर रही है। इसमें संदेह नहीं कि ऐतिहासिक तथा पौराणिक चित्रपटों की रचना में सरस्वती-सिनेटोन का कार्य सर्वोत्तम और प्रशंसनीय है। सीमित साधनों द्वारा अध्यवसाय से कला-पूर्ण चित्रपट बनाना, जो व्यवसाय की दृष्टि से भी सफल हो सके, इसी कंपनी का कार्य है। फ़ेमस पिक्चर्स, बंबई के अध्यक्ष श्रीयुत बाबू राव पाई का सहयोग सरस्वती-सिनेटोन के चित्रों को सिनेमा-जगत् में नई ख्याति देता है, क्योंकि वह पुराने व्यवसायी होने के कारण जनता की रुचि को भले प्रकार समझकर चित्र की उन्नति के लिये यथेष्ट परिश्रम करते हैं। उत्तर-भारत में ही नहीं, वरन् प्रायः सभी प्रांतों में सरस्वती-सिनेटोन के चित्र कई सप्ताह तक लगातार चलकर नाम कमा चुके हैं, और आगामी चित्रपटों से भी यही आशा की जा सकती है। कंपनी की ओर से विश्वास दिलाया गया है कि उसका 'भेदी राजकुमार' एक नई शैली का सुंदर चित्रपट होगा।

बंबई की एक नई कंपनी हिमालय-पिक्चर्स के नाम से कार्य कर रही है, जिसका पहला चित्रपट 'सिंहासन'-नाम से हमारे सामने आया है। प्रभात के परिचित लेखक श्रीयुत शिवकुमार के प्रयास से ही इस कंपनी का जन्म हुआ है, और बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि वह हमारे युक्त-प्रांत के ही साहित्यिक हैं। 'सिंहासन' में नवीनता है, और रुचि को परिष्कृत बनाने का प्रयत्न किया गया है। पात्रों का अभिनय अधिकांश में बहुत अच्छा हुआ है। श्रीशांताकुमारी ने प्रमुख अभिनेत्री का कार्य किया है, और इसमें संदेह नहीं कि अपने पहले के चित्रपटों की अपेक्षा वह इसमें पर्याप्त सफल हुई हैं। चित्र में आकर्षण की मात्रा बहुत अधिक है, और रोचकता आदि से अंत तक वर्तमान रहती है। भारत की प्राचीन नृत्य कला के अनुकूल नृत्य का समावेश भी किया गया है। 'सिंहासन' के कथानक की भाषा निर्दोष है, और होनी ही चाहिए, क्योंकि पं० शिवकुमार से हमें ऐसी ही आशा थी। गायन भी सुंदर है। श्रीयुत नदू खोटे और श्रीयुत वासुदेव अपने अपने अभिनय में काफ़ी सफल हुए हैं। आशा है, पं० शिवकुमार के हाथों इस कंपनी की अच्छी उन्नति होगी, और इसके सभी चित्रपट सिंहासन की भाँति सफल और रोचक होंगे।

विक्टर ह्यूगो

[श्रीदीनानाथ व्यास विशारद]

ह्यूगो की गणना ससार के श्रेष्ठ कवियों मे है। उसकी रचना-शक्ति अपूर्व है। उसने ५० साल तक फ्रेंच-साहित्य की सेवा की। वह साधारण मनुष्य नही, महान् व्यक्ति था। उसने एक ही विषय मे नही, किंतु साहित्य के प्रमुख तीनो विभागों—कविता, नाटक और उपन्यास—मे अपूर्व कौशल दिखलाया। योरप मे ह्यूगो के ग्रथों का बड़ा भारी मान है। २६ फरवरी, १८०२ को फ्रांस के बेसनकान-नगर मे ह्यूगो पैदा हुआ था। उसकी माता नैपोलियन के एक प्रधान सेना-पति की पत्नी थी। इसीलिये बाल्यकाल मे ह्यूगो को जीवन के उत्थान और पतन के मार्मिक दृश्य देखने का खूब ही मौका मिला। इन अनुभवों को उसने अपने प्रारभिक ग्रथो मे लिखा है। प्रतिभावान् पुरुष छिपाए नही छिपते। बाल्यकाल से ही उनकी प्रतिभा प्रत्येक कार्य मे दिखलाई देने लगती है। सोलह वर्ष की उम्र मे उसने 'Bug Jargal'-नामक एक कथा लिखी। उसमे भावों की कोमलता और प्रवणता दोनो भले प्रकार व्यक्त हुई है। दो साल बाद ही उसने 'Hand Island' की रचना की। इस ग्रंथ पर एक महान् विद्वान् ने राय लिखी है, उसका तात्पर्य यह है कि किसी की भी बाल्यकालीन रचना में क़लम की ऐसी अद्भुत कारीगरी और अपूर्व शक्ति-वैचित्र्य नहीं है। १८२२ मे ऐडले फाउचर-नामक एक महिला के साथ उसका विवाह हुआ। इसके बाद उसके अन्य ग्रंथ प्रका-शित हुए। उनके प्रकाशित होते ही उसकी गणना फ्रांस के प्रतिभा-संपन्न महाकवियों मे होने लगी। उसकी कविताओं का प्रथम सग्रह 'Lesbrien tales' है। उसकी अक्षय कीर्ति को स्थापित करने के लिये केवल यही ग्रथ पर्याप्त है। इस ग्रथ मे आज है, माधुर्य है, और है भावो का सरस प्रभाव। इसमे कवि ने कला कौशल और भाषा नैपुण्य, दोनो मे अपना अधिकार प्रदर्शित कर दिया है। सन् १८३१ से १८४० तक उसके अन्य कई ग्रथ प्रकाशित होते रहे। सभी मे उसकी विलक्षण शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। शेक्सपियर के बाद वियो-गांत नाटक लिखने मे वह अद्वितीय है, यह सभी विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। 'Marionade Lorme' ह्यूगो का एक वियोगांत नाटक है। उसमे राजा अपने मंत्री के वशीभूत बतलाया गया है। चार्ल्स दसवें के शासन-काल मे इसका प्रचार इसीलिये रोक दिया गया। चार्ल्स के बाद उसके प्रचार की फिर आज्ञा मिल गई, किंतु स्वाभिमानी और उन्नत हृदय ह्यूगो ने उसके प्रचार को अस्वीकार कर दिया। ३८ वर्ष की उम्र में वह फ्रेंच एकेडमी-नामक विद्वत्समिति मे शामिल हुआ। उस समय उसने जो वक्तृता दी

थी, वह नैपोलियन की कीर्ति का स्मारक है। १८४६ मे उसने पोलैंड का पक्ष लेकर Chambers of Peers मे व्याख्यान दिया। दूसरा व्याख्यान फ्रांस की तट-रक्षा पर हुआ। नैपोलियन के निर्वासित परिवार को फ्रांस मे लाने का उसने खूब प्रयत्न किया। उसके व्याख्यान के कारण ही फ्रांस के राजा लुई फिलिप ने अपनी नैपोलियन के परिवार-निर्वासन-विषयक राजाज्ञा रद कर दी। इसके बाद फ्रांस के षड्यंत्रकारियों ने हत्या पर हत्या करना आरंभ कर दिया। ह्यूगो निर्वासित किया गया। लगभग २८ साल उसे बाहर ही रहना पड़ा। उसी समय उसका संसार-प्रसिद्ध ग्रंथ 'Les Chaliments' प्रकाशित हुआ। इसमे ह्यूगो के क्षुब्ध हृदय के ऐसे उद्गार निकले है, जो भविष्यवक्ता के कथन से कम नहीं। इसमे पद-लालित्य है, दिव्य भावावली है, हृदयहारी व्यंग्य है। ऐसा कोई भी सहृदय नहीं कि इस ग्रंथ को पढ़कर मुग्ध न हो जाय।

विक्टर ह्यूगो

उक्त ग्रथ के प्रकाशित होने के तीन साल बाद 'Les Contemplations' निकला। यदि 'Les Contemplations' अर्धरात्रि के अंधकार मे लिखा गया है, तो 'Les Miserables' की रचना उषाकाल के मनोरम प्रकाश मे हुई है। इसके ६ भाग है। प्रथम भाग में जीवन के प्रभातकाल के सुख-दुःखादि विषयों का वर्णन है। साथ ही कवि ने वर्णन के अनुसार शैली भी पसंद की है। दूसरे भाग में भाषा की वैसी ही विवशता और शैली का वैसा ही वैचित्र्य है, पर भावों में महान् गंभीरता आ गई है। तीसरा भाग दूसरे से ज़्यादा परिष्कृत है। चौथे भाग में शोकोच्छ्वास है। नारमंडी

के किनारे विक्टर ह्यूगो की एक कन्या, अपने पति के साथ, १८४३ मे, डूबकर मर गई थी। इसी घटना से व्यथित होकर कवि ने जो कविता लिखी है, वह इसी भाग मे है। इसके एक-एक पद से व्यथा टपकती है। इससे अधिक हृदयग्राही वर्णन अन्यथा मिलना दुर्लभ है। पाँचवें और छठे भाग अपने हृदयग्राहित्व, भावो की गभीरता एव विशदता के लिये अद्वितीय है। १८६२ मे ह्यूगो का सर्वश्रेष्ठ और ससार-प्रसिद्ध उपन्यास 'Les Miserables' निकला। इसमे आत्मा की कथा है। आत्मा कैसे विकृत होती है, उसका उद्धार किस प्रकार होता है, दुखो की ज्वाला से उसका परिशुद्ध रूप कैसे प्रकट होता है, यही इस उपन्यास मे वर्णित है। इसमे जीवन के आलोक और तिमिर, उत्थान और पतन का बड़ा ही सुंदर वर्णन है।

ह्यूगो ने शेक्सपियर की कृतियों पर भी एक आलोचनात्मक निबंध लिखा है। उसके पुत्र ने शेक्सपियर के नाटको का फ्रेंच-भाषा मे अनुवाद किया था। उसके साथ भूमिका-रूप मे जोड़ने के लिये ही यह निबध लिखा गया था। इसके बाद उसके कई ग्रंथ प्रकाशित हुए। मृत्यु के बाद भी उसके कई ग्रथ प्रकाशित हुए।

ह्यूगो के चरित्र-चित्रण मे एक विशेषता है, जो अन्य किसी भी लेखक मे नहीं। उदाहरण के लिये स्कॉट को लीजिए। स्कॉट मे भी चरित्र अकित करने की कुशलता थी, अवलोकन की शक्ति थी, कल्पना थी। यही बात विक्टर ह्यूगो मे थी। परंतु ह्यूगो की कृति से जैसा प्रभाव पड़ा, वैसा स्कॉट के उपन्यासो से नहीं। अर्थ और भाव का जो गांभीर्य ह्यूगो मे है, वह स्कॉट मे नहीं। ह्यूगो की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसने मानव-जीवन मे हमे अदृश्य शक्ति का दर्शन कराया। ससार-भर मे सबसे अलक्षित, किंतु सबसे अनुभूत जो हाहाकार उठ रहा है, जिसके कारण सब अपने सुंदर मुखडो के हास्य मे हृदय की मर्म व्यथा छिपाए रहते है, वह हमे ह्यूगो की कृति मे दिखाई देता है। ह्यूगो के साथ पाठको की अविच्छिन्न सहानुभूति रहती है। यही कारण है कि पाठक उसकी प्रतिभा से केवल विस्मय-विमुग्ध ही नहीं होते, उसके साथ ही उसके भाव-स्रोत मे बहने लगते है।

साधारण मनुष्यों के साधारण जीवन में भी काव्य-सौंदर्य वर्तमान है, किंतु उसका अनुभव करने के लिये कल्पना और सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता है। राजा के महल और दरिद्र की कुटी मे जीवन का जो उत्थान और पतन, आशा और निराशा का जो द्वंद्व-युद्ध मचता है, धनता और निर्धनता के बाह्य आवरणो के नीचे जो आँधी उठती है, उसका चित्र-चित्रित करना कवि का ही कर्तव्य है, यद्यपि यहीं उसके कर्तव्यो का अत नहीं हो जाता। ह्यूगो के काव्य को पढकर जो विलक्षण प्रभाव पड़ता है, उसका कारण यही है। कवि मे जैसे भावों की गभीरता है, वैसे ही कल्पना-शक्ति की उद्दडता, किंतु अस्वाभाविकता जरा भी नहीं। वह जिस प्रकार जीवन के अधकारमय रहस्यों पर प्रकाश डालने

में निपुण है, उसी प्रकार वह मनुष्यों की कोमल वृत्ति को भी अंकित करने में सिद्ध-हस्त है।

प्रिंस बिस्मार्क से ह्यूगो ने एक समय यह कहा—"तुझे ईश्वर ने एक शक्ति दी है, दूसरी मुझे दी है, किंतु मैं तुझसे बहुत बड़ा हूँ। तू शरीर है, तो मैं आत्मा हूँ। यदि तुम और हम एक हो जायँ, तो संसार का अस्तित्व ही न रहे।"

ह्यूगो के उपर्युक्त कथन को गर्वोक्ति कैसे कहें? उसमें पूर्ण यथार्थत्व है।

सखी-नायिका-संवाद

सखी का कथन

[कविवर श्रीउमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०]

वह मोहन के मुख-चंद की चाँदनी चंद-लजावनहार-सी री;
सखि, माथे कलंक को लीजै कहा, कहि वा छबि स्याम की मार-सी री।
दृग झूलति मेरे अबौ वह सूरति मूरतिवंत सिंगार-सी री;
चलि देखै न क्यौं निज नैननि सौं, कर कंगन कौ कहा आरसी री?

मार = कामदेव। मूरतिवंत = मूर्तिमान्।

नायिका का उत्तर

[श्रीदुलारेलाल भार्गव]

सखी, दूरि राखौ सबै दूती-करम-कलाप;
मन-कानन उपजत-उठत प्यार आप-ही-आप।

मन-कानन = मन-रूपी वन। प्यार = (१) प्रेम। (२) एक वृक्ष-विशेष, जिसका बीज चिरौंजी है। मध्यभारत एवं बुंदेलखंड में इस वृक्ष को अचार का वृक्ष भी कहते हैं। यह वृक्ष जंगल में अपने आप पैदा होता है, किसी को इसे रोपना नहीं पड़ता।

नोट—कविवर उमेशजी का सुंदर छंद पढ़कर हमने दोहे में इसका जवाब लिखा है। आशा है, पाठकों का इससे मनोरंजन होगा। उनकी सुविधा के लिये कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए गए हैं। अगर पाठकों को यह ढंग पसंद आया, तो आगे भी ऐसे ही रोचक संवाद सुधा में छापे जायँगे। कहना न होगा कि सुधा खड़ी बोली और ब्रजभाषा, दोनों ही को सदा ही समान दृष्टि से देखती रही है।—सुधा-संपादक

बम-प्रहार
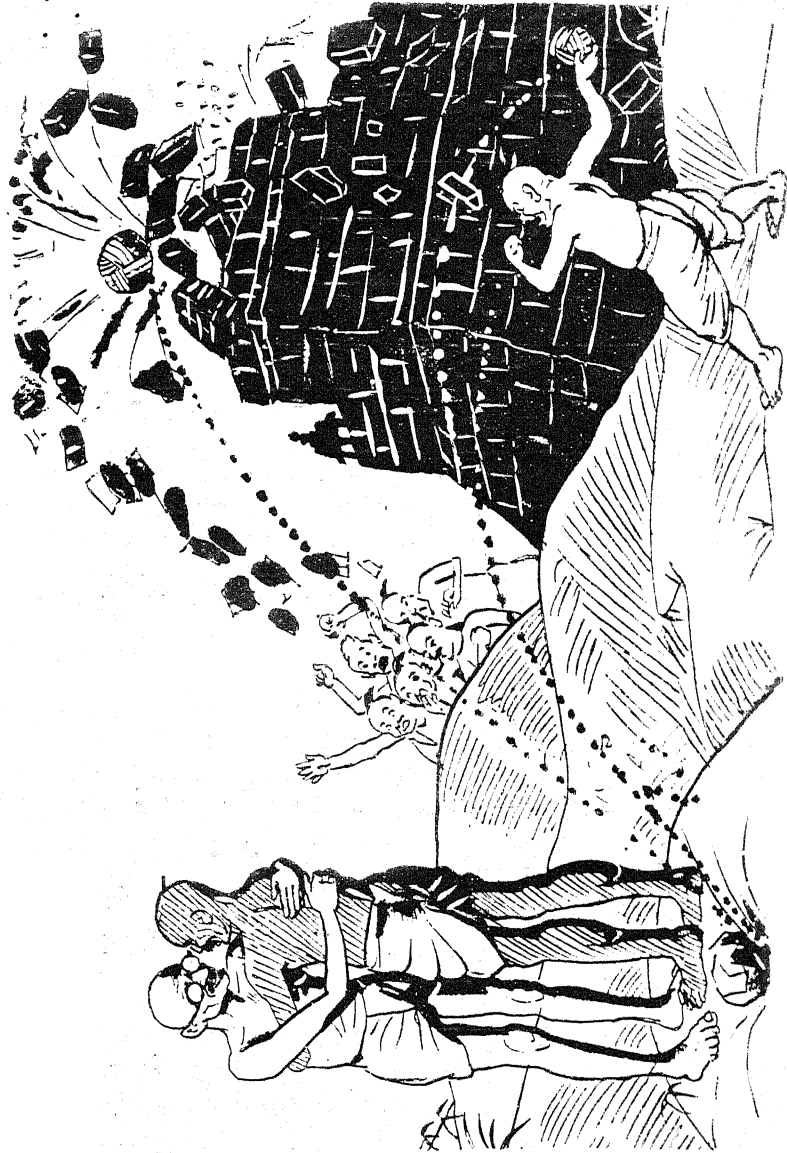
बमचख मची कि बम गयौ गांधी ओर चलाय,
पै दृढ़ छूआछूत-गढ़ ढहन चहत अरराय !

बमचख = शोर-गुल । गढ़ = क़िला । (दुलारेलाल भार्गव)

हिंदी-संसार के प्रसिद्ध आलोचक

पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्य-रत्न, साहित्याचार्य

[आप हिंदी-साहित्य के उद्भट समालोचक और काव्य-मर्मज्ञ हैं। आपके अनेक सुंदर लेख सुधा में निकल चुके हैं। आपने बिहारी-दर्शन, देव दर्शन और सूर-दर्शन नाम की आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं, जो शीघ्र ही गंगा-पुस्तकमाला से प्रकाशित होंगी।]
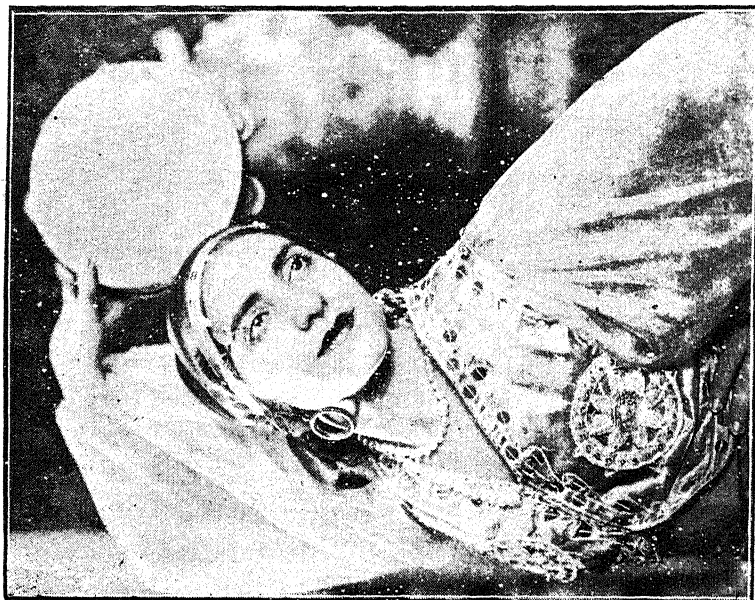
मिस बानू

[सागर-फ़िल्म-कंपनी के 'नूरे-इस्लाम'-नामक खेल में ।]

[सागर-फ़िल्म-कंपनी द्वारा खेला जानेवाला 'शहर का जादू'-नामक खेल का एक दृश्य ।]

मिस गुलाब

[श्रीकृष्ण-फ़िल्म-कंपनी की प्रसिद्ध अभिनेत्री ।]

'शहर का जादू' का दूसरा दृश्य

परीक्षा

श्रीकृष्ण-कीर्तन—संग्रहकर्ता तथा अनुवादक, 'दीक्षितबंधु' प्रकाशक, कन्हैयालाल दीक्षित; खलासीटोला, कानपुर; पृष्ठ-संख्या १६; कागज और छपाई उत्तम, बिना मूल्य वितरित।

प्रस्तुत पुस्तक श्रीमिश्रीलाल दीक्षित-ग्रंथमाला का प्रथम पुष्प है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति-विषयक ३२ श्लोकों का संग्रह है। श्लोक एक-से-एक बढ़कर हैं, उनका हिंदी-अनुवाद भी उत्तम है। संग्रहकर्ता का श्रम सराहनीय है। पुस्तक उत्तम है।

आशा है, हिंदी-संसार, विशेषतः भगवच्चरणानुरागी, इस संग्रह से लाभ उठावेगा।

श्रीदत्त अवस्थी

× × ×

भगवान् गौतम बुद्ध—संशोधक और प्रकाशक, माननीय श्रीयुत उत्तम भिक्षु (बर्मा-निवासी), महा-बोधि-सोसाइटी, कालेज-स्क्वायर, कलकत्ता, विचार और सामग्रीदाता, श्रीमद्बुद्धत बोधानंदजी महास्थविर, बुद्ध-विहार, रिसालदार-बाग, लखनऊ, लेखक और संपादक, श्रीचंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु, हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय, सआदतगंज रोड, लखनऊ, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ-संख्या २८०, मूल्य ७)

भगवान् गौतम बुद्ध का यह जीवन-चरित्र अत्यंत श्रद्धा-भक्ति के साथ महायान-संप्रदाय के विचारानुकूल लिखा गया है, और ग्रंथ के पढ़ने से समझ पड़ता है कि दृढ़ बौद्ध आधारों पर अवलंबित है, यद्यपि उन आधारों के पृथक्-पृथक् नाम त्रिपिटक के अतिरिक्त नहीं दिए गए हैं। वर्णन में स्थान-स्थान पर असंभव घटनाएँ बहुत श्रद्धा के साथ पूर्ण दृढता-पूर्वक लिखी गई हैं, यह बात इस परमोत्कृष्ट ग्रंथ की महत्ता को कुछ घटाती है। फिर भी वर्णन ऐसा सुरुचि-पूर्ण प्रायः सर्वत्र तथागत के ही शब्दों में किया गया है, जिसका प्रभाव चित्त पर बहुत ही अच्छा पड़ता है, मानो सामने खड़े हुए स्वयं भगवान् उपदेश कर रहे हों। सिद्धांतों के कथन ऐसी उत्तमता से आए हैं कि ज्ञान-विस्तार के साथ प्रसन्नता भी अच्छी होती जाती है। कथा के साथ-ही-साथ उपदेश भी सुगमता-पूर्वक ऐसे चलते जाते हैं, मानो पाठक भगवान् की भिक्षुमंडली में सम्मिलित होकर उनकी अमृतमयी वाणी सुन रहा हो। ग्रंथ बहुत ही उमंग-पूर्ण, श्लाघ्य और उपादेय है। लेखक ने भगवान् के अस्तित्व में अपना अस्तित्व ऐसा लीन कर दिया है कि इस ग्रंथ में हम भगवान् ही को सर्वत्र पाते हैं, स्वयं लेखक को कहीं नहीं। हम चंद्रिकाप्रसादजी को ऐसा बढ़िया ग्रंथ लिखने पर बधाई देते हैं। भाषा भी श्रेष्ठ है।

मिश्रबंधु

× × ×

नल नरेश—लेखक, पुरोहित प्रतापनारायण कवि-रत्न; प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ।

कुछ दिन हुए, एक सज्जन की कृपा से 'नल नरेश' हमारे देखने में आया। इच्छा हुई कि इसके विषय में कुछ लिखा जाय। किंतु आलोच्य ग्रंथ एक महाकाव्य है, अतः इसके लिये आलोचक भी महा विद्वान् होना चाहिए, जिससे यथार्थ आलोचना हो सके। फिर भी कुछ बिना लिखे रहा नहीं गया।

उक्त काव्य पुरोहित श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न' की ओजस्विनी बुद्धि और चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा का प्रसाद है। संपूर्ण ग्रंथ सुललित पद्यों से पूर्ण, उन्नीस सर्गों में समाप्त हुआ है। चरित-नायक महाराज नल का चरित बहुत कम है, किंतु पुरोहितजी की प्रतिभा और लेखन-चातुरी

से वह बहुत बढ़ा-चढ़ा मालूम होता है। संस्कृत-काव्यों में वाल्मीकीय रामायण, जिसे हम सुललित काव्य-ग्रंथों का शिरोमणि या एक आदर्श महाकाव्य कह सकते है, जिस चाल-ढाल से रची गई है, और जिस चाल से अथ से इति तक पहुँची है, इसमे संदेह नही कि पुरोहितजी ने भी नल नरेश मे उसी सरणी का अनुसरण किया है। आश्चर्य तो यह है कि इस मंथर गति में भी पुस्तक अरुचिकर नहीं हुई। अन्य ग्रंथों मे देखा जाता है कि जहाँ वर्णनीय विषय अल्प रहता है, वहाँ लेखक व्यर्थ के शब्दाडंबर से उसे पूर्ण कर देते है, और घासलेटी-साहित्य की वृद्धि करके स्वयं भी गिर जाते है। परंतु आनंद की बात है कि नल नरेश इस दोष से उन्मुक्त है। इसे देखने के पहले मैंने सोचा था कि "नल के स्वल्प चरित को लेखक ने इतना विस्तृत कैसे बना दिया ? संभव है, इसमे भी घासलेटी का प्राधान्य हो।" लेकिन पुस्तक पढने के बाद सारा संदेह नष्ट हो गया। लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से नल-दमयंती के मंजुल चरित को अंकित किया है। वर्णन-शैली में जल्दबाज़ी का कहीं नाम भी नहीं है।

पुस्तक के प्रारंभ में कवि-सम्राट् श्रीहरिऔधजी का 'अंतर्दर्शन'-शीर्षक वक्तव्य है। उसमें उन्होंने काव्य-ग्रंथो के महत्त्व का बखान करते हुए गद्य से पद्य को उच्च श्रेणी का सिद्ध करने में अपनी लेखन-चातुरी का परिचय दिया है। परंतु यह विषय विवाद-ग्रस्त है, अतः अधिकार से ही कुछ लिखना ठीक होता है। जिस बाण भट्ट की कीर्ति-पताका साहित्य-गगन मे अब तक फहरा रही है, और जिसने कादंबरी-जैसे ललित गद्य-काव्य की रचना करके संस्कृत साहित्य मे अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है, उसी बाण के लिये हरिऔधजी कहते हैं कि "जो गौरव संस्कृत-साहित्य मे रामायणकार और महाभारत के रचयिता अथवा कवि-पुंगव कालिदास को प्राप्त है, वह गौरव अब तक किसी गद्य-साहित्यकार को नहीं प्राप्त हुआ। कादंबरी के रचयिता बाण को भी नहीं।" क्यों नहीं ? "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" क्या है ? फिर उसी बाण को आप उस गौरव से युक्त नहीं समझते, यह आश्चर्य है। अस्तु। यह विषय विवाद-ग्रस्त है, अत. इस पर यहाँ कुछ नहीं लिखना है। हाँ, ग्रंथकार के विषय मे हरिऔधजी के उद्गार सराहनीय हैं। अस्तु।

नल नरेश को मैंने यथासाध्य पूरा देखा है। गुण और दोष दोनो ही मिले है। परंतु आश्चर्य तो यह है कि नल नरेश गुणाकर है, साथ ही रत्नाकर भी। क्योंकि जिस तरह रत्नाकर में विविध प्रकार के रत्न मिल सकते है, उसी तरह इसमे भी नाना प्रकार के ललित पद्य-रत्न प्राप्त होते है।

यद्यपि परिदृश्यमान सभी वस्तुएँ गुण-दोष के संयोग से बनती है, निर्दोष कुछ भी नहीं है। एक काव्यकार कहते है—"एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।" अर्थात् गुणों के समूह मे भी एक अवगुण तो सर्वत्र मिलता ही है, जैसे पूनम के पूर्णचंद्र में भी लांछन रहता है। फिर भी मै यह कहूँगा कि नल नरेश मे ऐसा अवगुण नही मिलेगा, जो ग्रंथकार के अमल यश मे कलंक लगावे।

नल नरेश की उत्तमता के एक दो उदाहरण पाठकों की प्रसन्नता के लिये नीचे दिए जाते हैं, जिससे पाठक नल नरेश को पहचान सकें। पुरोहितजी की वर्णन-शैली मे एक आनंद है, और विरह-विधुरा नायिका के अंतस्तल के वर्णन में पुरोहितजी ने कई जगह अद्भुत भाव-प्रदर्शन किया है। महाराज नल के विरह मे व्याकुल अथवा उसकी दर्शनाप्ति के लिये उन्मत्त दमयंती अपने मन में नल से कहती है—

हो सकती है पृथक् चंद्र से चारु चद्रिका हे प्राणेश ।
सदा प्रफुल्लित रह सकती है कलित कमलिनी विना दिनेश।
जी सकती है मीन विना जल, पिक वसत में विना रसाल,
चकवी-चकवे विना हर्ष से खो सकती है दिवस विशाल।
भ्रमरी विना पद्म को देखे ले सकती है दिन-भर श्वास,
और कुमुदिनी खिल सकती है कुमुदिनि-पति के विना प्रकाश ।
किंतु भीमजा रह सकती है नल के विना नहीं निष्पाप ।
ऐसा दृढ निश्चय कर मुझको शीघ्र दीजिए दर्शन आप ।

(नल० स० ४ । ९० । ९१)

देखा आपने, यहाँ दमयंती के मनोगत भावो का पुरोहितजी ने कैसा हृदयग्राही वर्णन किया है । उसका निश्चय कैसा दृढ़ है । भले ही असंभव संभव हो जाय, किंतु दमयती अपने 'दृढ़ निश्चय' को नहीं छोड सकती ।

महाराज नल भाग्य पलट जाने से पत्नी-सहित वन मे चले गए है । एक दिन दमयंती के बारे में वह सोचते है—"अहा ! जिस दमयंती का सुंदर मुखकमल चंद्र की चाँदनी से भी मलिन हो जाता था, तथा जिसको देखकर चंद्र के विना भी कुमुद सुशोभित हो जाते थे, वही मुख आज ग्रीष्म-सूर्य के किरण-जाल से संतप्त हो रहा है ।'

जो मुख चारु चंद्रिका से भी बन जाता था मलिन महान,
जिसको देख कुमुद होते थे दिन में भी शोभा की खान,
उसे आज संतप्त कर रहा ग्रीष्म-सूर्य किरणों का जाल,
फेर समय का कैसा पटका हे मायावी त्रिभुवन पाल !'

(१० । ६)

अपनी विपत्ति से घबराकर नल पतिव्रता दमयती को अकेली वन मे छोड जाना चाहते है । किंतु जब बीती बाते उनको याद आती है, तो अपने प्रति उनको बडी घृणा होती है । यहाँ तक कि चंद्र भी उनकी दृष्टि में विष-वृष्टि करनेवाला मालूम होता है । इसका सजीव वर्णन पुरोहितजी की लेखनी से यो चित्रित हुआ है—

चंद्र तुम्हारा नाम, सुधाधर झूठ सरासर;
कहते है जो तुम्हें कलकी झूठे वे नर।
क्योंकि आप विष-वृष्टि हर्ष से करते मुझ पर—
निज किरणों का जाल काल के सम फैलाकर।

(११ । ३५)

इस तरह सारी पुस्तक आदि से अंत तक रस से सराबोर है । उदाहरण इसके और भी बहुत है, और देने की इच्छा भी थी, किंतु स्थानाभाव से वैसा न हो सका । अतः ग्रंथकार से एक बात और कहकर इस आलोचना को यहीं समाप्त करता हूँ ।

पुरोहितजी ने नल नरेश को सर्वांग सुंदर बनाने मे कोई कसर नहीं रक्खी । प्रत्येक पद मे लालित्य लाने के लिये अद्भुत शब्द-विन्यास किया हैं । लेकिन पुस्तक के प्रत्येक सर्ग मे या प्रत्येक पद में व्याकरण के कठिन-से-कठिन शब्दो का कई जगह सन्निवेश हुआ है । दुःख है, ऐसे शब्दों का सहज ही अर्थ समझनेवाले अब कम हो रहे है । ऐसी अवस्था मे नल नरेश को लेखक यदि ऐसे शब्दो से बचाते, तो ठीक था । पंद्रहवे सर्ग मे वैसे शब्दो का अधिक प्रयोग किया गया है । यद्यपि उस सर्ग में वैसे शब्दों के कारण मनोहरता आ गई है, जैसे—

अंभ - अबर - अचल - अचला - अनिल में—
स्वच्छता का स्वच्छ शासन लेखकर—
थे मुदित मन में बहुत ही मनुज सब—
सौख्यदा शुचि - शरद - शोभा देखकर ।

(१५ । १२)

तथापि हिंदी-प्रेमी ऐसे पद्यो से प्रसन्न नहीं हो सकते ।

निम्नोक्त पद्यो के रेखांकित चरणों में भी सुधार की आवश्यकता है । उनमे कई जगह भाषा-सामंजस्य भरा हुआ है—

एक पत्नि-व्रत-नियम नरों में था अति शोभित,
पतिव्रताएँ उन्हें सदा करती थीं मोहित ।

निज वैभव से गर्व शची का जो खोती थीं,
वाणी के ही तुल्य श्रेष्ठ विदुषी होती थीं,
ऐसी सतियों का यहाँ महामान सम्मान था,
जो मानव-अभिमान था, देशोन्नति-पहचान था।
(२ । १८)

कई प्राकृतिक दृश्य बनाकर सुंदर-सुंदर
सुर-नर-खग-पशु चारु चित्र चित्रित कर, कर, कर—
चित्रकला-चातुर्य सदा वह दिखलाती थी,
. ...
(९ । १८)

यों कहकर वह छिपी कुंज में प्राण बचाने—
क्योंकि सर्प-सम वणिक वहाँ थे उसको खाने।
(१३ । १७)

नल नरेश को देखते समय विचार हुआ था कि इसके संबंध में कुछ विस्तृत रूप से लिखा जाय, किंतु समय के अभाव से वैसा न हो सका। फिर मैंने जो कुछ लिखा है, निष्पक्ष होकर लिखा है। नल नरेश वास्तव में सर्वांग-सुंदर काव्य है। इसको लिखकर पुरोहितजी ने हिंदी का बहुत कुछ उपकार किया है।

श्रीप्रेमी शर्मा

धर्म

[कविवर पं० शिवरत्न शुक्ल 'सिरस']

धरम बिना परलोक मैं करहु न सुख की आस;
पंखहीन पंछी कबहुँ उड़ि न सकत आकास।

नए फूल

इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं —

(१) 'काल-चक्र'—लेखक, डॉ० सिद्धेश्वर शास्त्री ; मूल्य ।=)

(२) 'आनंद की लहर'—लेखक, श्रीहनुमान-प्रसाद पोद्दार , मूल्य -)॥

(३) 'शिक्षा-सप्तशती'—लेखक, श्रीदीनानाथ 'अशंक' ; मूल्य ॥)

(४) 'अछूत' (काव्य)—लेखक, श्रीकैरव ; मूल्य ।≡)

(५) 'विदुषी कमला'—लेखक, श्रीगोविंद हयारण ; मूल्य प्रेम

(६) 'अनुभूत प्रयोग'—लेखक, वैद्यराज जगन्नाथप्रसाद विद्याश्रमी ; मूल्य =)

(७) 'अमरलता'—लेखक, श्रीशंभुदयालु सकसेना ; मूल्य ॥)

(८) 'तूणीर' (बालोपयोगी)—लेखक, श्री-देवदूत , मूल्य ॥)

(९) 'तरकस' (बालोपयोगी)—लेखक, श्री-रामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ॥)

(१०) 'बाल-कथा कहानी' (पंद्रहवाँ भाग)—लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी ; मूल्य ।=)

(११) 'सेवा-भाव'—लेखक, श्रीबाँकेविहारी-लाल 'बाँकेपिया' ; मूल्य प्रेम

(१२) 'सुदामा-चरित्र'—संपादिका, श्रीमती सरोजिनी मिश्र विशारद, हिंदी-प्रभाकर ; मूल्य ।)

(१३) मिश्रबंधु-विनोद (चतुर्थ भाग)—लेखक, श्रीयुत मिश्रबंधु । मूल्य ४)

(१४) 'बिस्मिल की शायरी' (काव्य)—लेखक, श्रीयुत सुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिस्मिल' ; मूल्य १॥)

सौरभ

[संपादकीय विचार]

१ क्रीड़ा

वल गंभीर विषयों की आलोचना जीवन के लिये ज़रूरी नहीं। मन को प्रफुल्ल करने के लिये खेल-कूद भी वैसा ही आवश्यक है। आज हम हिंदोस्तानियों ने जीवन की सब तरफ़वाली बातों का ध्यान भुला दिया है। चिर काल से चलते हुए अध्यात्मवाद की प्रतिक्रिया हममें ऐसी हुई कि आज हमने जीवन के मूल सूत्र को ही खो दिया है। हम ऐसा विचार नहीं कर सकते कि हमारी व्यक्तिगत या समष्टिगत चारपाई का एक भी पाया टूट गया, तो बैठने और लेटने का काम नहीं चल सकता। जहाँ 'योगः कर्मसु कौशलम्' सिद्धांत था, वहाँ केवल हाहाकार रह गया है, या दरिद्र समुदाय एकटक धन की ओर देख रहा है। सब जगह सुनने में एक ही बात आती है—बिना धन के कुछ नहीं होने का। पर थोड़े से संतुष्ट रहकर अधिक के लिये प्रयत्न करना, स्वास्थ्य को जीवन-संग्राम के योग्य बनाना, संसार में जो बचने की लड़ाई हो रही है, उसके लिये अपने को योग्यतम सिद्ध करना, हम लोगों में बहुत कम देख पड़ता है, विशेषत. हम हिंदी-भाषियों में। अभी तक हममें जीवन की क्रियाशीलता नहीं पैदा हुई। जो कुछ स्कूल-कॉलेजों में है, वह स्कूल-कॉलेजों के लिये है, उससे संसारी मनुष्य का जीवन नहीं सिद्ध होता।

दूसरे देशों की बात जाने दीजिए, जहाँ क्लबों का आज इतना महत्त्व हो गया है कि लोगों को गृह-धर्म की महत्ता समझाकर जीवन बदलने का उपक्रम किया जा रहा है। यह भी समझ लेना चाहिए कि उन गृह छोड़नेवाले विदेशियों के लिये कोई नया देश जीतने को, प्रभावित करने को या अपने मुक्त जीवन की ओर खींचने को नहीं रह गया। इसीलिये वहाँ छोटे गृह-धर्म की महत्ता प्रचलित हो रही है। हमारे देश के बड़े हुए प्रांतों में क्लब और खेल-कूद का उत्तरोत्तर महत्त्व बढ़ रहा है। लोगों की पारस्परिक प्रीति तो इस प्रकार बढ़ती ही है, बाहरी संसार के प्रति एक खिंचाव भी इससे पैदा होता है। एक प्रकार की शक्ति आती है। पुनः निर्दोष होकर एक साथ खेलने कूदने, गाने-बजाने, साहित्य-चर्चा करने और नाटक खेलने से खुले जीवन के आनंद के साथ सुखद स्वास्थ्य की भी प्राप्ति होती है। इस तरह के क्लबों में अन्य प्रकार के व्यायाम और पुस्तकालय भी सम्मिलित होते हैं। बड़ी-बड़ी नदियों तथा समुद्र के किनारे के क़स्बों और शहरों में किश्ती आदि का भी प्रबंध रहता है। टेनिस, क्रिकेट, फुटबाल आदि खेल तो होते ही हैं।

हमारे यहाँ आज क्रीड़ा-प्रियता तीतर, बटेर, बुलबुल, मेढे और मुर्गों की लड़ाई में रह गई है। सिर्फ़ अखाड़े का शौक़ प्रशंसनीय है। पर वह मूर्ख देहातियों के ही अधिकार में रह गया है, जिनके लिये तंदुरुस्त होना पुलिस की टेढ़ी निगाह में पड़ना हो रहा है, और बल प्राप्त कर बुरी संगति में पड़कर वे अधिकांश में बिगड़ भी जाते हैं। शिक्षा के अभाव से, बल प्राप्त कर, दूसरों को देखकर सीना तानकर चलने लगते हैं। रामायणी समाज हैं, पर यहाँ रामायण का असली तथ्य तो कुछ हासिल नहीं होता, उलटे सोलहवीं सदी के प्राचीन संस्कार प्रबल रूप धारण करते हैं। श्रोता-

गणों मे जिसे देखिए, वही शरासन तानकर म्लेच्छों के सहार के लिये उद्यत रहता है। हमारे यहाँ एक खेल और है, जो बहुत प्रसिद्ध है। वह है पतग उडाना।

आजकल योरप मे दो महादेशों की स्पर्द्धा इसी खेल मे चल रही है। यह स्पर्द्धा योरप और आस्ट्रेलिया मे है—विशेषतः इँगलैंड और आस्ट्रेलिया मे। योरप मे इँगलैंड ही क्रिकेट के लिये अधिक प्रसिद्ध है। कुछ वर्ष पहले आस्ट्रेलिया के ब्रैडमैन ने अपनी अद्भुत बैटिंग से संसार को मुग्ध कर दिया था, और इँगलैंड को परास्त। इन आस्ट्रेलियन वीरो ने, क्रिकेट मे, ससार मे आज तक रहे रेकार्ड में परिवर्तन किया था—अपना सर्वश्रेष्ठ रेकार्ड रक्खा था। इस समय वही टीम इँगलैंड में खेल रही है। अब तक तीन टेस्ट हो चुके है। पहले मे आस्ट्रेलिया जीता, दूसरे में इँगलैंड, तीसरे में बराबरी रही। पहले टेस्ट की बात है, आस्ट्रेलियन टीम फाटक से घुस रही थी कि ब्रैडमैन की निगाह एक मज़दूर पर पड़ी। उसके पास टिकट ख़रीदने के पैसे न थे, पर वह बार-बार फाटक से घुसने का प्रयत्न कर रहा था। ब्रैडमैन ने उसका हाथ पकड लिया, और बडे स्नेह से उसे टिकटघर की तरफ़ ले जाकर अपने पैसे से टिकट ख़रीद दिया। मजदूर बडा ख़ुश हुआ। ब्रैडमैन ने अब मज़दूरो के खेल देखने के सुबीते के विचार से एक सार्वजनिक कोप खोल दिया है।

कुछ ही दिनों की बात है, जापान के चुने हुए खिलाडी इँगलैंड से क्रिकेट खेलने के लिये रवाना हुए थे। जहाज़ पर जापानी टीम के कैप्टेन को मालूम हुआ, जापानी टीम अभी इस योग्य नही हुई कि इँगलैंड की जोरदार टीम का मुकाबला कर सके। इससे कैप्टेन की मानसिक स्थिति बहुत खराब हो गई, जापान इँगलैंड के मुकाबले हार जायगा, यह कल्पना उसे असह्य हो गई। अत मे एक चिट्ठी इसी आशय की लिखकर, जहाज़ से कूदकर, समुद्र मे डूबकर उसने जान दे दी। क्रीडा के भीतर से देश के प्रति कितना बडा सम्मान पैदा होता है!

आस्ट्रेलियन टीम की बात है, इसी बार तीसरे मैच के समय आस्ट्रेलियन टीम के कुछ मुख्य खिलाडी बीमार थे, जिनमे ब्रैडमैन और चिपरफ़ील्ड भी थे। यह एक साधारण बीमारी इँगलैंड मे फैली हुई थी। इससे गले मे दर्द होता है। पहले आस्ट्रेलियन टीम को फ़ील्डिंग करनी पडी। इँगलैंड के ६२७ रन हुए। चूँकि आस्ट्रेलियन टीम के अच्छे खिलाडी न थे, इसलिये टीम किसी तरह बराबरी की कोशिश कर रही थी। पर वह आशा न रही। ख़बर ब्रैडमैन के पास पहुँची, तो आस्ट्रेलिया की हार होगी, यह उससे सहा न गया। वह बिस्तर से उठकर मैदान मे आया। उधर चिपरफ़ील्ड बिस्तर पर पडा टेलीफ़ोन हाथ मे लिए खबर ले रहा था। ब्रैडमैन, जिसने कभी २०० रन किए थे, केवल ३० रन करके आउट हो गया। बराबरी की फिर उम्मीद न रही। यह देखकर चिपरफील्ड भी उठा, और ग्राउंड मे आकर दाख़िल हुआ। उसे देखकर दर्शकों के हर्ष का सागर उमड पडा। बीमार चिपरफ़ील्ड बैट लेकर, जान की बाज़ी लगाकर खेलने लगा। उसका खेल देखकर लोगों मे आतंक छा गया। उस होती हुई हार को चिपरफ़ील्ड ने बराबर कर दिया। खेल ख़त्म होने पर वह वीर वहाँ से फिर अस्पताल मे दाखिल किया गया!

× × ×

२ हमारे साहित्य की रूप रेखा

हिंदी-भाषियों को मालूम है, कुछ महीने हुए, मद्रास के हिंदी-शिक्षित युवक और महिलाओ के एक दल ने हिंदी-भाषी प्रांतो का भ्रमण किया था। इस दल ने प्रायः सारे हिंदोस्तान का भ्रमण

किया है। अब उस दल के सज्जन व्यक्तिगत रूप से अपने विचार प्रकट कर रहे है। इन्हीं विचारो में एक यह भी है कि हिंदी (खडी बोली) में ऊँचे साहित्य का अभाव है। बगाली भाइयो को हिंदी के राष्ट्र-भाषा होने मे सबसे बडी आपत्ति यह है कि हिंदी मे ऊँचा साहित्य नही, यद्यपि बगालियों मे सर्वश्रेष्ठ भाषा-तत्त्व-वेत्ता डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी महाशय आर्य-सभ्यता की रक्षा के लिये हिंदी को ही योग्यतम भाषा मानते है, और हिंदी बँगला की बडी बहन है, ऐसी ध्वनि वंगीय साहित्य-परिषद् में सुन पड़ती है, और स्वामी माधवानदजी-जैसे बंगाली विद्वान् प्राचीन बॅगला के मुकाबले प्राचीन हिंदी को ही अधिक महत्त्व देते हैं, और किसी-किसी बगाली विद्वान् ने यह सत्य भी ज़ाहिर किया है कि व्याव-सायिक ससार में हिंदी की सजीवता दूसरी भाषा नहीं प्राप्त कर सकती। हमारी समझ मे यह बात नहीं आती कि राष्ट्र-भाषा के साथ ऊँचे साहित्य का कौन-सा सबंध है, जो कहें, इसके विना उसकी सिद्धि असंभव हो रही है। इसे हम बंगाली सज्जनों की प्रांतीयता के अलावा एक दूसरी कम-ज़ोरी भी कहेगे। पर यह स्वीकार करने मे हमे कोई आपत्ति नहीं कि आधुनिक बॅगला साहित्य हिंदी-साहित्य से ऊँचा है। कारण यह कि बॅगला पर बहुत दिनों से अँगरेजी का प्रभाव पड रहा है। किंतु यदि हम इतिहास के सन्-सवत् के अनुसार दोनो के आधुनिक उन्नयन-क्रम की जाँच करेंगे, तो हमे मालूम होगा कि हिंदी की गति बँगला से दूनी है, और जो उँचाई बँगला ने हासिल की है, उस तक पहुँचने के लिये वर्तमान हिंदी साहित्य को और तीस साल से अधिक समय न लगेगा, वैसे हिंदी का पुराना साहित्य—ब्रजभाषा और अवधी का साहित्य—तो बॅगला के पुराने साहित्य के मुकाबिले कहीं श्रेष्ठ है। कम न निकलेगा। हिंदी मे जिस तरह सनातनधर्मवालो का समाज प्रबल है, उसी तरह बँगला में भी है। केवल ब्राह्मसमाज के कार्य ऐसे है, जिनका प्रदर्शन साहित्य की दृष्टि से अधिक मार्जित कहा जायगा, पर यहाँ उसी तरह आर्य-समाज का जोर है। यह निस्सदेह है कि वहाँ ब्राह्मसमाज तथा परिवर्तित सनातन हिंदू समाज में आजवाली बाते आर्य-समाज से अधिक मिलती है।

बँगला को जिस तरह भाषा-विषयक सुविधा प्राप्त हुई है, हिंदी को उसी तरह असुविधा। हिंदी का अधिकांश भाग आपस की बातचीत मे जिस भाषा का उपयोग करता है, वह पुस्तक की भाषा नही। बगाल मे भी भिन्न भिन्न भाषाएँ प्रचलित है। पर वहाँ का एक विशाल भाग, जिसका केंद्र कलकत्ता है, वही भाषा बोलता है, जो पुस्तको मे आज की बँगला के रूप से चल रही है, जिसमें नाटक खेले जाते है। हिंदोस्तान के शहरों में जिस उर्दू को मुसलमानों की प्रचलित भाषा होने का अधिकार प्राप्त है, और माताएँ भी जिसमे बातचीत करती है, वह हिंदुओ के घरों मे हिंदी रूप से बदलने लगी है—अरबी और फारसी की जगह संस्कृत तथा देशज शब्दों के प्रयोग बढ चले है। आशा की जाती है कि बहुत जल्द शुद्ध हिंदी शहरों मे माताओ की ज़बान बन जायगी।

इधर साहित्यिकवर्ग साहित्य की भी उत्तरोत्तर वृद्धि करता जा रहा है। पर यही हमे सबसे बडी अड़चन देख पडती है। साहित्य की वृद्धि के मानी ये नही कि इससे साहित्य की व्यापकता और स्थिति-शीलता भी सिद्ध हुई। यह निश्चय है कि अभी उस दिन तक भाषा का ही प्रश्न हल होता रहा है कि कौन-सी भाषा हिंदी मे स्थायी हो सकेगी, और ऐसी हालत मे एकाएक बृहत् साहित्य-ज्ञान का प्रकाशन असंभव है, फिर जब समाज ने कोई परिवर्तन न किया हो। दस साल पहले तक राम और कृष्ण के साहित्य का ढर्रा रहा, यह अब भी है। पर

अब कुछ दूसरे ढंग की रचनाएँ होने लगी है। इनसे एक नवीनता अवश्य पैदा हुई है। पर समाज मे विचारो का परिवर्तन जब तक नहीं होता, तब तक साहित्य को नवीन प्रगति कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। देश के संबंध का भी कुछ साहित्य हमारे यहाँ है, पर वह भी कम-उम्र लडके की तरह अपनी सत्ता पर ज़ोर देकर दूसरो से बातचीत नहीं कर सकता। काव्य, नाटक और उपन्यासों मे आशा-जनक परिवर्तन हुए है। पर इन्हे अभी बहुत लंबी मंज़िल तय करनी है। राजनीतिक प्रगति से देश की जनता के मनोभाव जिस प्रकार बदलने लगे है, उन्हे देखते हुए यह निश्चय हो रहा है कि हमारे वर्तमान साहित्य की गति बहुत तेज़ी से बढ़ेगी। बहुत जल्द हिंदी का दैन्य दूर होगा। राम और कृष्ण की जो व्याख्याएँ आज तक समाज मे प्रचलित थी, वे अपनी शुद्धता के लिये तो रहेगी, पर उपकरणो के लिये बिलकुल नहीं। न आगे के राम तीर लेकर लोगो के आदर्श होनेवाले वीर रहेगे, न दो शादियाँ करके दोनो बीबियो के साथ चैन करनेवाले कृष्ण की ही कोई सुनेगा, और न लड़ाई के समय १८ अध्यायवाली गीता का सुनाया जाना कोई आँख बंद करके मानेगा। सब रूपको के तौर पर रहेगे। मनुष्य का सच्चा साहित्य, सच्ची स्फूर्ति और सच्चा विकास तभी यहाँ से निर्गत होगा। आज जैसा साहित्यिक रुख़ देख पडता है, इससे हिंदी की भविष्य-भावना अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। ये जो किरणें हिंदी के साहित्याकाश मे फूटी है, इनकी गति कितनी तेज़ होगी, यह कहना यद्यपि कठिन है, फिर भी हमे इस निश्चय मे कोई संदेह नही कि ये सहस्रों की संख्याओं मे साथ-साथ चलकर बहुत जल्द अपनी पृथ्वी को ज्योतिर्मय करेगी।

× × ×

३. समस्या-मूलक साहित्य

संसार का आधुनिक साहित्य अधिकांश में समस्या-मूलक साहित्य है। वर्तमान समय मे मनुष्य ने अपने लिये अनेक प्रकार की जटिल समस्याएँ उत्पन्न कर ली है। इससे आधुनिक लेखक को एक यह सुविधा हुई है कि रस सृष्टि के लिये उसे कुछ नवीन सामग्री प्राप्त हो गई है। यहाँ रस से काव्य-शास्त्र के नौ रसों से ही हमारा तात्पर्य नहीं है, रस से हमारा तात्पर्य है विचित्र जीवन का विचित्र रस। जीवन की समस्याओं में जिनको रस मिलता है, वे समस्या-रस की ही उपन्यास, नाटक अथवा कहानियों द्वारा सृष्टि करते है, उनका वही रस है। उसके भीतर हास्य, करुण, रौद्र आदि रसों का समावेश हो सकता है। अथवा विवेचना के भीतर ही जिनको रस मिलता है, उनकी रस सृष्टि मे वह विवेचना रूपी रस ही विचित्र कला के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है, परंतु इस प्रकार कला की सृष्टि करना बहुत सहज नहीं। साहित्य मे विषय के प्रयोजन को जहाँ अधिक महत्त्व मिलता है, वहीं वह अपने आदर्श से च्युत होता है। क्योंकि समस्या की विवेचना करना साहित्य का कार्य नहीं, उसका कार्य तो रस की सृष्टि करना है। परंतु साहित्यिक रचना का विचार करते समय हम इस तथ्य को भूल जाते है। साधारण पाठकों की तरह हम रचना के रस-रूप की ओर दृष्टिपात न करके रचना के उपादान अथवा विषय-वस्तु की ओर अधिक आकृष्ट होते है। परंतु कला की दृष्टि से उपादान का कुछ भी महत्त्व नही, रस-रूप ही सब कुछ है---अर्थात् विषय वस्तु अतिशय तुच्छ चीज़ है, काव्य का रस-रूप ही उसका सर्वस्व है। काव्य में विचार और चिंता, तत्त्व और तथ्य का कोई मूल्य नही, तात्त्विक मीमांसा के लिये कोई काव्य नहीं पढ़ता, और विवेचना के ऊपर कवित्व निर्भर नही। कवि की प्रतिभा तो रस-सृष्टि से ही देखी जाती है। जो वस्तु पूर्व से ही मौजूद है, जिसे सब कोई जानता है, अथवा जिस

विषय की बारंबार आलोचना हो चुकी है, वह सब कवि की प्रतिभा द्वारा जो नया रूप धारण करता है, वही काव्य है। जो बात सोची तो बारंबार गई है, परंतु सुंदर ढग से प्रकट कभी नहीं की गई, उसे प्रकट करना ही कवि का गुण है। यह व्यंजना अथवा expression ही काव्य का प्राण है। विचार कवि के चाहे निज के हों, अथवा दूसरों के निकट उधार लिए हो, कला की दृष्टि से तो वह अवांतर वस्तु है। कारण, कहा क्या गया है, यह उस जगह बहुत महत्त्व-पूर्ण नहीं है, किस प्रकार कहा गया हे, यही वास्तव मे विचार करने की चीज़ है। बात कोई भी हो, कहने का ढग अनूठा चाहिए। विवाह, परिवार, सपत्ति, धर्म, राजनीति आदि सबंधी नवीन विचारो से आज-कल प्रायः सभी परिचित हैं। योरप के विचार-शील लेखको ने इन विषयों पर बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं पर अनेक प्रकार से विचार किया है। उन्होंने जो सिद्धांत प्रतिपादित किए है, काव्य की दृष्टि से उनमे कोई नवीनता नही। बर्टंड रसेल पढ-कर एक साधारण विद्यार्थी भी यह कह सकता है कि विवाह-प्रथा एक प्रकार की वेश्या वृत्ति है, और पतिव्रत-धर्म एक पुराना धर्म है, जिसका अर्थ है पति की गुलामी करना। परतु रसेल ने, एक सच्चे वैज्ञानिक की हैसियत से, जिस विषय की विवेचना की है, काव्य के द्वारा उसका प्रचार करना ख़तरे से ख़ाली नहीं। लेखक के अपने कुछ सिद्धांत हो सकते है। इसमें तो कुछ हर्ज नही। मनुष्य-मात्र के अपने सिद्धांत होते है। परंतु उसके लिये निबध, आलोचना आदि लिखना अधिक उपयोगी है। काव्य के द्वारा तो पाठक के मन पर उस सिद्धांत की छाप डाली जाती है, उसका प्रचार नही किया जा सकता। वह छाप किस प्रकार डाली गई है, उपन्यास-लेखक अपने प्रयत्न मे कहाँ तक सफल हुआ है, और पाठक को रस-सृष्टि द्वारा उसने कितना प्रभावित किया है, यही देखने की वस्तु है। साहित्य मे यदि कोई सिद्धांतों की नवीनता का दावा करे, तो यह गलत है। साहि-त्यिक की रचना का विचार तो कला की दृष्टि मे ही किया जायगा, फिर चाहे उपन्यास उसने वेश्या-वृत्ति पर लिखा हो, चाहे साम्यवाद पर और चाहे बोलशेविज्म पर। उपन्यास के भीतर जब कोई यह कहता है कि रिश्ते कायम करना तो अपने हाथ की बात है, हम नए-नए रिश्ते कायम कर सकते और पुरानो को बदल सकते है, कोई भाई अपनी बहन को ही स्त्री बनाना चाहे, तो वह भाई-बहन का रिश्ता टूट जायगा, और दोनो मे पति-पत्नी का रिश्ता कायम हो जायगा, तो लेखक को यह समझ लेना चाहिए कि इस भयानक सिद्धांत में कोई भी नवीनता नहीं है, और उसकी भयानकता भी परिस्थितियो के ऊपर अवलंबित है—अर्थात् पात्रों का ऐसा संघटन एव चित्रण करने पर कि पुस्तक के पन्नो पर वह अंगारे की तरह जल उठे। इस प्रकार की अनेक भयंकर बाते मुँह से कही जा सकती है। परतु उपन्यास के भीतर वे जिस पात्र के मुँह से कहल-वाई जाती है, उसका चरित्र, उसकी शिक्षा, उसका सस्कार, उसका बाल्य-जीवन, उसकी पारिपार्श्विक परिस्थितियाँ और घटनाओं का back ground ये सब मिलकर उस सिद्धांत को यदि मूर्ति-दान नही करती, तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं, बल्कि कभी कभी तो उपन्यास के भीतर इस प्रकार के सिद्धांतो का प्रचार अनर्गल प्रलाप का रूप धारण कर लेता है।

एक ऐसे पात्र की कल्पना, जो वेश्या-वृत्ति का समर्थन करता अथवा भाई और बहन के दांपत्य प्रेम को उचित मानता है, बहुत सहज नही। ऐसा पात्र अवश्य बडा अनहोना होगा। साधा-

रण मनुष्य ऐसी भयानक बात अपने मुँह पर भी नही ला सकता। सभ्य मनुष्य विवाहिता माता के गर्भ से नही जन्मे है, अथवा अपने पिता का नाम नहीं जानते है—इसे वह कभी गौरव की वस्तु अनुभव नही करेगे। जिसे जो अच्छा लगे, उसी के साथ अपना प्रेम संबंध स्थापित कर ले, और जितने दिन इच्छा हो, उसके साथ रहे, और फिर छोडकर चला जाय, इस प्रकार की Theory जिसके दिमाग मे घुस गई है, ऐसे प्रेम-रोग-ग्रस्त व्यक्ति के लिये आगरा अथवा बरेली का पागलखाना ही उचित स्थान हे। साहित्य-क्षेत्र में उसका काम नहीं।

हमारे कहने का आशय यह कि समस्या-मूलक उपन्यास अथवा नाटक के भीतर प्राचीन धर्म अथवा संस्कार के विरुद्ध थोड़े-से विद्रोह-पूर्ण वाक्य लिख देने से ही काम नही चल जाता। योरप के जिन सब प्रसिद्ध लेखकों ने काव्य के द्वारा समाज और संस्कार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की है, उन्होंने अपने चरित्रों को इस प्रकार की मानसिक एवं पारिपार्श्विक अवस्था मे गढ़ा है कि काव्य को ही वहाँ अधिक महत्त्व मिला है। काव्य की शक्ति के द्वारा ही विद्रोह प्राण-स्पर्शी हुआ है, बर्नार्ड शॉ की पात्री मिसेज़ वैरेन वेश्या-वृत्ति का समर्थन करती है। इब्सन के एक नाटक मे उसकी प्रसिद्ध पात्री नोरा अपने पति का परित्याग करके घर से बाहर निकल जाती है। इन रचनाओं को पढ़कर पाठक पात्रों की चिंता और उनके कार्य कलाप से सहानुभूति प्रकट करते है। पुरुष यदि स्त्री को प्रेम नहीं करता, तो स्त्री उसे छोड़कर चली जाने के लिये स्वतंत्र है, यह है इब्सन के नाटक की मूल-कथा। परंतु यह पाठक के मन पर आघात नहीं करती। इब्सन के मूल-सिद्धांत के साथ चाहे कोई सहमत न हो सके, फिर भी Doll's House मे अपना घर छोड़कर चले जाने के लिये नोरा को कोई धिक्कार नहीं सकता, और न इस प्रकार की चरित्र-सृष्टि करने के लिये कोई लेखक को ही दोष दे सकता है। परंतु जिस नाटक के भीतर प्रधान पात्रों का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बात पाठक की बुद्धि का अपमान करती है, समझना चाहिए कि वह बिलकुल ही अस्वाभाविक है।

अतएव हिंदी के जो लेखक समस्या-मूलक साहित्य की सृष्टि मे प्रवृत्त है, उनसे हम यह कहना चाहते है कि जो केवल दूसरों के विचारों का संग्रह करते है, वे लेखक नही, । वे तो साहित्यिक मजदूर है। उनके परिश्रम का मूल्य अवश्य है, परंतु शाश्वत साहित्य के मंदिर में उन्हे कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। जो साहित्य को कुछ नई भेंट दे सकते है, जो बारंबार कही गई बात को भी नवीन प्रकार से सजाकर रख सकते हैं, और जो स्वयं कुछ नई बात, नई चिंता और नया भाव सृजन कर सकते है, वे ही लेखक है। और, समस्या-मूलक काव्य, नाटक अथवा उपन्यास लिखने के वे ही अधिकारी है।

× × ×

४. अमेरिका का नैतिक जीवन

हाल ही मे प्रकाशित हुआ है कि अमेरिका के सिर्फ एक शहर न्यूयार्क में गत वर्ष एक लाख से अधिक मनुष्यो ने आत्महत्या की है। इनमे ७१ करोडपति, ८८ महाजन, ३८ विद्यार्थी, ४० शिक्षक, १६ धर्म-प्रचारक, ४२ वकील और जज तथा १ सौदागर है। आत्महत्या करनेवाली स्त्रियो की संख्या चालीस हज़ार है। अर्थात् स्त्रियो ने ही सबसे अधिक आत्महत्याएँ की है। इन आत्म-हत्याओं के कारण कहीं-कही तो बहुत ही साधारण है। एक लडकी ने अपने बाल बेडौल होने के कारण आत्महत्या कर ली, और एक स्त्री को खेल-कूद का सुबीता नहीं था, इसलिये उसने गाडी से

कूदकर आत्महत्या कर ली। एक आदमी ने यह सोचकर कि पृथ्वी धँस जायगी, आत्महत्या कर ली थी।

यह तो हुआ आत्मघात का हाल। अब ख़ून-ख़राबी के हाल सुनिए। वहाँ की बीमा-कंपनियो के विवरणो से यह मालूम होता है कि वहाँ युद्ध के बाद से ख़ून-ख़राबियाँ इतनी बढ गई है कि प्रतिवर्ष ११ लाख आदमियों की हत्याएँ होती है। यह संयुक्तराज्य का विवरण है। इसी संयुक्त-राज्य मे, स्वतन्त्रता के सप्तवर्षीय युद्ध मे, कुल ४० हज़ार ही आदमी मारे गए थे! सयुक्तराज्य मे दुनिया-भर से अधिक अपराध होते है। संयुक्त-राज्य मे प्रति घंटा २ आदमी केवल मोटरों के नीचे दबकर मरते है। और, अन्य छोटी सवारियो के कारण एक लाख आबादी मे १४ आदमी मरते है। अन्य देशों मे यह सख्या अधिक-से-अधिक ५ है। वह भी सिर्फ़ इँगलैंड में।

जो ख़ून अमेरिका मे होते है, उनका कारण सुनकर आश्चर्य होता है। थोड़े दिन की बात है, अमेरिका की एक स्त्री ने अपने पति को इसलिये ज़हर देकर मार डाला कि उसने अपनी जान का बीमा कराया था। और, उसके मर जाने से उसकी स्त्री को तीस हज़ार पौंड मिल जानेवाले थे। अयोवा की एक स्त्री ने अपने १५ दिन के नन्हे बच्चे को छुरे से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया, क्योंकि वह रोया करता था, यह मा को पसंद न था। ओहियो में एक स्त्री ने अपने दो मास के बच्चे को एक बड़े भारी कडाह में, खौलते पानी मे, जीते ही उबाल दिया। इलिनोइज़ मे एक जवान बेटे ने अपने बूढे बाप को छुरे से मार डाला, क्योकि वह बूढे बाप से क्रुद्ध था। शिकागो के कुछ छात्रो ने एक छोटे छात्र को बहकाकर, जंगल मे ले जाकर उसकी खोपड़ी हथौड़े से चूर-चूर कर दी। दक्षिण डाकोटा के एक बैंक मे दो स्त्रियाँ घुसीं, उनमे से एक ने तो बैंक के ख़ज़ांची की नाक पर पिस्तौल तानी, और दूसरी ने उसके सामने से नोटों के गट्ठर उठा लिए।

पाठकों को मालूम है कि इस समय अमेरिका एशियाई-प्रवेश-निषिद्ध का क़ानून पास करना चाहता है। अमेरिका का ख़याल है कि एशिया के संपर्क से अमेरिका के प्रजातंत्र-सिद्धांत और नैतिक जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ने का भय है। परंतु ऊपर के आँकड़े इस बात को सिद्ध करते है कि अमेरिका का नैतिक जीवन कैसा है! अयोवा के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर डॉ० सुधींद्र बोस का कथन है कि यह अमेरिका जगत्-भर के अमानुषी अपराधों और पाशविक अत्याचारों का केंद्र है। उनका कथन है कि केवल शिकागो और न्यूयार्क में ही प्रतिदिन प्रायः ६०० बालक रास्ते मे कुचलकर मरते है! जगत् भर में इतने चोर कहीं भी नहीं!! उसे इस बात का झूठा घमंड है कि वह सभ्यता मे सबसे ऊँचा देश है।

अमेरिका के प्रख्यात दार्शनिक अध्यापक मिहोल्मस ने, जो कानपुर-कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे, पूछने पर मद्रास मे कहा था कि आत्म-सयम अमेरिका को भारतवर्ष से सीखना होगा। अमेरिका में महात्मा गांधी-जैसे शांति के उपदेष्टा की बडी ही आवश्यकता है। यह बात विचार-णीय है कि बड़े-बडे करोडपति आत्मघात क्यों करते है, और माताएँ बच्चो को क्यों उबाल डालती है! इन बातों का मूल-कारण क्या है? शिक्षित लोगों का इतनी बडी संख्या मे आत्मघात करना यह प्रकट करता है कि अमेरिका बहुत ही अशांत देश है। हमे यह देखकर हँसी आती है कि इसी अशांति ग्रस्त अमेरिका के हज़ारों पादरी वहाँ से करोडों रुपए लाकर हमे शांति और प्रेम का पाठ पढ़ाते है! हमारे भारतवर्ष मे तो—जहाँ दरिद्रता, मूर्खता और गुलामी ने करोड़ो मनुष्यो का जीवन कष्ट पूर्ण

बना दिया है, जहाँ स्त्रियाँ ऐसी दलित की जाती है कि उनका जीते रहना और संयम रखना बड़े ही आश्चर्य की बात है—इतने अधिक आत्मघात और ऐसे रोमांचकारी ख़ून देखने में नहीं आते। स्त्रियाँ कभी-कभी पानी में डूबकर या ज़हर खाकर मर जाया करती हैं, परंतु ऐसे उदाहरण विरले होते हैं, और उनके कारण अत्यंत दारुण। हमारे विचार में आत्मघात अत्यंत कायरपन का चिह्न है।

योरप के अध्यात्मवाद में भावुकता बहुत ही कम है। भावना की भूमि बाइबिल में भी आत्मघात के पाप की ओर कुछ इशारा नहीं किया गया है, बल्कि वहाँ के लेखकों ने आत्मघात का एक ढंग से अनुमोदन किया है। महात्मा टाल्सटाय का कहना है कि आत्महत्या राज्य के लिये बुरी है, पर मनुष्य के लिये नहीं। परंतु क्या वह मनुष्य, जो तोपों की गर्जना से डरकर आत्मघात कर लेता है, मनुष्य है? हमारी सम्मति में आत्मघात वास्तव में मनुष्यत्व का घातक है।

हम इसके दो कारण समझते हैं—एक तो मांसाहार, दूसरे दांपत्य संबंध का बिलकुल अधूरा स्वरूप। मांसाहार से मनुष्य निर्दयी, क्रूर, क्रोधी और साहसी बन जाता है। प्राणियों का वध करते-करते उसका मन इतना कठोर पड़ जाता है कि किसी को मारना उसे विचलित नहीं कर सकता। जो मनुष्य ख़ून को खाद्य समझता हो, उसे ख़ून से क्या भय होगा। दूसरा कारण गंभीरता से विचार करने पर समझ में आ जाता है। क्या भारत में कोई स्त्री करोड़ों की संपत्ति के लालच से भी पति की हत्या कर सकती है? क्या भारत की स्त्रियाँ पति को जगत् की किसी भी बहुमूल्य वस्तु पर बेच सकती हैं? नहीं। कारण स्वाभाविक है। यह तो हो ही नहीं सकता कि भारत और अमेरिका की स्त्रियों की बनावट में कुछ फ़र्क़ हो। स्त्रियाँ तो सब जगह एक-सी होती हैं। सिर्फ़ देश के समाज और नीतियों के प्रभाव से आज भारत की स्त्रियाँ पतिप्राणा हैं, और अमेरिका की स्त्रियाँ हत्यारी। जिस गहराई पर—धर्म और परलोक तक—ग्रंथि-बंधन करके हिंदू-समाज ने स्त्री पुरुषों का संबंध स्थापित किया है, उस गहराई पर बिना पहुँचे जगत् का दांपत्य कभी त्याग के उस स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जिस पर पहुँचना प्रत्येक पत्नी और माता के लिये अनिवार्य है।

× × ×

५. नर-हत्या

गत योरपियन महायुद्ध एक प्रचंड नर-मेध था। पृथ्वी पर शायद महाभारत के बाद इतना मनुष्य-वध कभी नहीं हुआ। एक अँगरेज़ ने इसके विवरण में एक पुस्तक लिखी है। इस युद्ध में योरप और अमेरिका के १ करोड़ तीस लाख मनुष्य मरे। इनके सिवा २ करोड़ ज़ख़्मी हुए, ३० लाख क़ैदी हुए, ६ लाख बच्चे बिलकुल अनाथ हो गए, ५० लाख विधवाएँ हो गईं, १ करोड़ आदमी बेघर-बार के हो गए, और ३ लाख मनुष्य लापता हुए।

ऊपर के ये भयंकर आँकड़े दिल को हिला डालनेवाले हैं। इस महायुद्ध में सवा दस खरब रुपए का असंख्य धन जो व्यय हुआ, उसकी आलोचना हमारा विषय नहीं। हम सिर्फ़ यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य के ज्ञान और सभ्यता का चरम विकास, जो मनुष्य के कल्याण के लिये सहायक होना चाहिए था, इस प्रकार मनुष्य के नाश का कारण हुआ है! इससे अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है!! जर्मन-सम्राट् क़ैसर, जो इस नर-हत्या के प्रधान जिम्मेदार हैं, अभी जीवित हैं। उनका नया चित्र देखा गया, मानो वह क़ैसर नहीं हैं। उनकी वे चढ़ी हुई मूछें नीचे झुक गई हैं, उन्होंने छोटी डाढ़ी रखा ली है; उन्होंने फिर विवाह किया है, और वह अब जर्मनी के निकट एक प्रदेश में

लकड़ी का कारबार करते हैं। उनका एक पुत्र जर्मनी ही मे क्लर्की का कार्य करता है। हाल ही में जर्मन सरकार ने कैसर को कुछ करोड़ नकद रुपए, कुछ लाख एकड़ ज़मीन और ३४ उनके महल उन्हे दे दिए है।

इसका विरोध जर्मन की जनता बड़ी तीव्रता से कर रही है। अभी उस दिन कैसर की वर्ष गाँठ बर्लिन मे, बड़ी धूम से, मनाई गई थी। उस अवसर पर अपार भीड़ ने सम्राट् को यह सब देने का विरोध किया। भूतपूर्व राजमहल के सम्मुख एक लाख मनुष्यों ने एकत्र होकर कैसर की तसवीर जलाई। इसके बाद लाल रंग की पताकाएँ उड़ाई गईं; जिनमे लिखा था—'शासकों को एक पैसा भी मत दो।' लोगो के पास पुराने ज़माने के रद्दी नोटों के बंडल थे, उन पर लिखा था—'कैसर को उनके जन्म-दिन की सौगात मे ये ही नोट भेंट।' नक़ली अख़बार निकाले गए। उनके बेचनेवाले चिल्लाते थे कि 'युव-राज अपाहिज हो गए, कैसर भूखों मर गए।' इत्यादि।

इस परम प्रतापी नर-श्रेष्ठ की जीते-जी इस हीना-वस्था पर अवश्य दुःख होता है। स्वभाव से ही जगत् वीरता का पुजारी है। परंतु इसमे कोई संदेह नही कि सुव्यवस्था, शांति एवं जीवन के प्रश्नो को हल करने के लिये ऐसा भयकर नर संहार और धन की होली खेलना अति घृणित व्यापार है!

ये धन और जन की हानियाँ युद्ध की प्रत्यक्ष और तत्कालीन हानियाँ हुई हैं। युद्ध के बाद जो युद्ध-ज्वर समग्र पृथ्वी पर फैला, उससे अभागे भारत के ६० लाख मनुष्य तड़प तड़पकर मर गए, यह भी इसी नर-मेध की एक आहुति है। युद्ध-काल मे अनियमित और अप्राकृत रूप मे बहुत-से मनुष्य एक साथ रहते, खाते, मरते और रोगी होते हैं। इस कारण एक भयानक विष पैदा हो जाता है, जो इस भीषण महामारी का उत्पादक है। इनके सिवा ५ लाख विधवाओं, ६ लाख अनाथों और १ करोड़ बेघर बारवालों की दशा पर ध्यान दीजिएगा कि इनसे व्यभिचार, ख़ून, चोरी, डकैती, बेरोजगारी और अनेक प्रकार के पाप कहाँ तक फैले होंगे!

महान् विद्वानो की सम्मति है कि निकट भविष्य मे एक और भयंकर युद्ध होनेवाला है, जिसके सामने गत महायुद्ध की भीषणता कुछ भी न होगी। योरप के देशों के परस्पर जो समाज और राजनीति के भाव हैं, और उनकी जो अनिवार्य कठिनाइयाँ हैं, एवं एशिया जिस प्रकार योरप के दर्प से ऊब रहा है, साथ ही रूस मे जो ज्वाला धधक रही है, यह सब देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि अब संसार ५ वर्ष भी विश्राम से नहीं सो सकता। राष्ट्रों के भीतर सोती हुई ख़ूनी प्रवृत्ति इस समय अपनी थकान उतार रही है—वह शांत नहीं है। शीघ्र ही जगत् पर वज्र-पात होगा, और मनुष्य का उत्कर्ष मनुष्य के लिये प्रबल नाशकारी साबित होगा!

× × ×

६ विद्वद्वर पं० चंद्रशेखरजी शास्त्री का स्वर्गवास

हिंदी के सम्मान्य विद्वानों मे पं० चंद्रशेखरजी शास्त्री एक थे। बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि उनका पांचभौतिक शरीर अब इस संसार में नहीं रहा। अभी पं० बदरीनाथजी भट्ट का शोक प्रशमित न हुआ था कि शास्त्रीजी भी हमे छोड़कर चले गए!

शास्त्रीजी हिंदी के उन स्तंभों में से थे, जिनके कारण हिंदी को दृढता का गर्व था। संस्कृत-साहित्य के वह अगाध पंडित थे। उनकी साहित्यिक सेवाएँ अमूल्य हैं। इतने बड़े विद्वान् होने पर भी जो हिंदी वह लिखते थे, वह बोलचाल की, आदर्श भाषा कहलाती थी। उर्दू के बिना भी हिंदी में

कितनी सादगी और कितना मार्जन रह सकता है, हिंदू-संस्कृति से निकली हिंदू ज़बान कितनी ललित और मधुर हो सकती है, शास्त्रीजी की भाषा इसका प्रमाण है। शास्त्रीजी वर्षों तक 'शिक्षा' का संपादन करते रहे, और अनेकानेक पुस्तकें लिखीं। इधर वह संस्कृत-महाभारत का अनुवाद निकाल रहे थे। वह कब और किस तरह बीमार पड़े, उन्हें क्या हो गया, संवाद-पत्रों में इसका समाचार पढ़ने को नहीं मिला, एकाएक उनके महाप्रस्थान का वज्र मस्तक पर आकर टूट पड़ा!

शास्त्रीजी सच्चे ब्राह्मण थे। वह स्वभाव से तपस्वी थे। इतने बड़े विद्वान्, हिंदी के एक प्रतिष्ठित आचार्य होते हुए भी वह सदा सत्त्वगुण से युक्त, अभिमान-रहित रहते थे। वेश और भाषा में भी उनकी सरल प्रांजलता व्यंजित रहती थी। हृदय के वह बड़े शुद्ध, निष्कपट और इसलिये लोक-प्रिय थे। उनका जीवन हिंदी की हित चिंतना में लीन। वह काम करके पुरस्कार चाहनेवालों में न थे। उन्हें संसार की अनेक अड़चनों का सामना करना पड़ा, पर अपनी तपस्या उन्होंने कहीं भी न छोड़ी। उनका सरल ब्राह्मण-गुण सर्वत्र प्रबल रहा। प्रसन्न चित्त से दुःख को भी गले लगाया। जब उनकी पवित्र मुख-कांति की याद आती है, आप ही-आप मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। उनके न रहने से हिंदी को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। वह हिंदी के हृदय के असाधारण रत्न थे। ईश्वर उनके दुखी परिवार को धैर्य दे। हमें आशा है, उनके सुपुत्र पं० प्रफुल्ल-चंद्र ओझा 'मुक्त', जो हिंदी के अच्छे कवि और कहानी-लेखक हैं, इस शोक में धैर्य रखते हुए, परिवार को प्रबोध देंगे, और पिता के कार्य को पूरा कर आदर्श पिता के आदर्श पुत्र कहलाएँगे।

× × ×

७. 'सैनिक' का स्वागत

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र सैनिक पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल के संपादकत्व में पुनः प्रकाशित हो रहा है। आज से लगभग ढाई वर्ष पूर्व, जनवरी सन् १९३२ में, सैनिक से और उस प्रेस से भी, जिसमें सैनिक छपता था, एक-एक हजार की—कुल दो हज़ार की—ज़मानत माँगी गई थी। सैनिक के संचालक यदि चाहते, तो यह ज़मानत सहज ही में दे सकते थे। परंतु ज़मानत देकर पत्र निकालना कांग्रेस की नीति और सैनिक के सिद्धांतों के विरुद्ध समझकर ज़मानत नहीं दी गई, और पत्र तथा प्रेस दोनों बंद कर दिए गए।

इस प्रकार सैनिक की मृत्यु हो गई। परंतु वह वास्तव में जीवित रहा। अब वह युद्ध, त्याग और तपस्या की भावना लेकर पुनः कर्म क्षेत्र में अवतरित हुआ है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह चिरकाल तक जीवित रहे, और देश की सेवा करता रहे।

× × ×

८ हम मनुष्य बनें

एक अँगरेज़ लेखक अपने मित्रों से अक्सर कहा करता था कि भाई, तुम इस रूप में तो मेरा सम्मान करते हो कि मैं कवि हूँ, लेखक हूँ, पंडित हूँ, परंतु क्या तुम कभी मेरे संबंध में यह जानने की भी परवा करते हो कि मैं मनुष्य हूँ या नहीं। क्योंकि यदि मैं मनुष्य हूँ, तो सब कुछ हूँ, वरना कुछ भी नहीं हूँ।

आज जब हम हिंदी-जगत् में चारों ओर नज़र डालते हैं, तो उक्त अँगरेज लेखक का कथन हमें बारंबार स्मरण हो आता है। आज अपने को भी मनुष्यता की कसौटी पर कसते हुए हमें डर लगता है। हिंदी में अनेक अच्छे कवि, लेखक और आलोचक मौजूद हैं। हम उनका सम्मान करते हैं। उनकी

रचनाएँ पढते हैं। उन्हें अपने से प्रत्येक विषय में बडा मानते हैं। कम से कम साधारण पाठकों की तो यही धारणा होती है कि जो कवि है, लेखक है, आलोचक है, पत्रकार है, वह सब प्रकार से ऊँचा व्यक्ति है। परतु उसमे कितनी ईमानदारी है, कितनी भलमनसाहत है, कितनी सचाई है, कितनी उदारता है, कितनी सच्चरित्रता है, कितनी मनुष्यता है, इस ओर भी क्या कभी हमारा ध्यान जाता है ? यदि हम मनुष्य नही हैं, तो कवि होने से हमें लाभ क्या ? यदि हममें मनुष्यता के साधारण गुण भी नही हैं, तो लेखक अथवा पत्रकार बनने की उपयोगिता क्या ? मनुष्यता की हमारी परिभाषा यह नहीं कि वह भिक्षु का जीवन व्यतीत करे, अच्छा मकान छोडकर कुटिया में रहना सीखे, मोटे कपडे पहने, मोटा खाना खावे, ज़रूरत पडने पर मोटर का भी उपयोग न करे, बाल न रखाए, उन्हें कभी सजाकर भी न रक्खे। ये सब मनुष्यता से परे चीज़े है। मनुष्यता के साथ जीवन के इस आडंबर का कोई संबंध नहीं। ऐसे बहुत से सौंदर्य-प्रिय व्यक्ति है, जो सदैव सुंदर वस्तुओं से घिरे रहना चाहते हैं। उनकी सभी वस्तुओं में सुरुचि का ऐसा समावेश होता है कि दूसरे उसे भोग-विलास समझते है। परंतु इसका आशय यह कदापि नहीं कि ऐसा व्यक्ति मनुष्यता के गुणों से हीन होगा। किसी व्यक्ति के बाह्य लक्षणों से ही उसके चरित्र के संबंध मे अपनी धारणा बना लेने से कभी-कभी बडी गलती हो जाती है। हमारे कहने का आशय यह है कि हमारे लेखक और कवि यदि आराम से रहते है, और सौदर्य की एक विशेष भावना के वशीभूत होकर अपना रहन-सहन आडंबर-पूर्ण बनाते है, तो इसके लिये हमे कभी उन पर आक्षेप नहीं करना चाहिए। मनुष्य के जीवन मे ये बाते बहुत महत्त्व की नही। यदि कोई व्यक्ति रोज़ अपने बालो को सँवारकर एवं गजरे पहनकर सड़क पर घूमने निकलता है, तो उसकी वेश भूषा पर आप मनमाना हँस सकते है, परंतु उस पर आप यह दोष कभी नही लगा सकते कि वह मनुष्यता से शून्य है। आप यह क्यों नही कहते कि मनुष्य को भी कभी-कभी गजरे पहनने का शौक हो सकता है। परंतु वह व्यक्ति यदि झूठ बोलता है, यदि वह अकारण ही दूसरों की चापलूसी करके अपनी आत्मा का हनन करता है, यदि दूसरों को गिराने के उद्देश्य से वह अपनी बडाई एवं अपने मित्रों की झूठी प्रशंसा करता है, यदि वह अपने सहकारियों एवं सहमार्गियों से ईर्ष्या और द्वेष करता है, तो निस्संदेह वह चाहे कवि हो, चाहे लेखक हो, चाहे पत्रकार हो, उसके संबंध में हमें यह कहना पडेगा कि वह मनुष्यता के गुणो से शून्य है, वह मनुष्य नहीं, और इसलिये वह इस योग्य नहीं कि किसी भी ऊँचे समाज में उसे सम्मान दिया जाय।

आज हम बडी नम्रता के साथ अपने कवियों, लेखको एवं पाठको का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहते है कि हिंदी में ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिहिंसा का जो कलुष फैल रहा है, उसका एकमात्र कारण यह है कि हममे मनुष्यता का अभाव है। हमारे अधिकांश लेखक एवं पत्रकार अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्यता के साधारण कर्मो का पालन करना भी भूल रहे है। ऐसे व्यक्तियों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपने को एक ऊँचा कवि या लेखक समझने के पूर्व आत्म-निरीक्षण की आग मे अपने को डालें। हमारा विश्वास है, इससे उन्हें लाभ होगा। ऐसा करने से उनकी लेखनी और भी अधिक ओजमयी बनेगी, एवं उनकी कविता में मर्म को स्पर्श करने की अधिक शक्ति भी आवेगी। क्योंकि कवि अथवा लेखक के दुहरे व्यक्तित्व पर विश्वास करते हुए भी हमारी यह दृढ़ धारणा है कि कलाकार की सृष्टि पर उसके व्यक्तित्व का कुछ न कुछ असर पड़ता ही है।

हम अपने कथन को फिर स्पष्ट करना चाहते हैं। हम यह मानने को तैयार नहीं कि जो व्यक्ति उच्छृंखल है, उसकी रचना भी वैसी ही उच्छृंखल होगी। वास्तव में होता यह है कि चरित्र-हीन व्यक्ति की रचनाओं में उसके मन की प्रतिक्रिया और भी अधिक प्रबल रूप में प्रकट होती है। अक्सर देखा गया है कि उच्छृंखल रूप से जीवन व्यतीत करनेवाले कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाओं में दुराचार का घोर प्रतिवाद किया है, और सच्चरित्रता का ऊँचे-से-ऊँचा आदर्श पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है।

परंतु मनुष्यता-रूपी गुण बिलकुल ही भिन्न वस्तु है। यदि कोई व्यक्ति उच्छृंखल है, शराबी है, वेश्यागामी है, तो भी हम कहेंगे, वह मनुष्य है। परंतु वह यदि मनुष्य नहीं है, यदि उसमें मनुष्यता के साधारण गुणों का अभाव है, तो हम कहेंगे, वह मनुष्य नहीं, पशु है।

इसलिये परमपिता से हमारी प्रार्थना है कि हे भगवन्, कवि, लेखक या पत्रकार बनाने के पहले तू हमें मनुष्य बना, हममें चाहे जितने दुर्गुण हों, एक मनुष्यता के सद्गुण से तू हमें विभूषित कर! क्योंकि हम यदि मनुष्य हैं, तो सब कुछ है, वरना कुछ भी नहीं।

× × ×

६. सुधा के रूप-रंग में परिवर्तन

इस संख्या से सुधा अपने जीवन के ८वें वर्ष में पदार्पण करती है। सुधा का हिंदी-संसार ने निकलते ही—प्रथम संख्या से ही—अपूर्व स्वागत किया, जिसका नतीजा यह हुआ था कि इसकी पहली और दूसरी संख्या के हमें दो संस्करण छापने पड़े थे! पहले संस्करण ३२०० प्रतियों के थे, और दूसरे संस्करण ४००० प्रतियों के!! और, फिर तीसरी संख्या से सुधा ७२०० छापनी पड़ी थी!!! हिंदी-संसार में यह अभूत-पूर्व घटना थी। इसके पहले शायद ही और कोई मासिक पत्र इतनी संख्या में अपने जीवन के प्रारंभ से ही छपा हो! किंतु जिस हिंदी-भाषा के बोलने-वाले करोड़ों हों, उसके मासिक पत्रों की ग्राहक-संख्या लाख-दो लाख भी न हो, यह आश्चर्य की बात है। इसका मुख्य कारण यह है कि पढ़े-लिखे लोगों और हिंदी-भाषा-भाषी रईसों में अच्छे पत्र और पुस्तकें पढ़ने की रुचि नहीं है। वे एक तो अच्छी चीज़ें पढ़ते ही नहीं, अगर पढ़ते भी हैं, तो लाइब्रेरियों से मँगाकर। और, इसी लिये प्रकाशक और संपादक को लोगों की रुचि का ख़याल रखकर अपना पत्र निकालना पड़ता है। हमने जनता की रुचि देखकर सुधा को सस्ता निकालने का प्रबंध किया—उसमें सिनेमा-विषयक मैटर और चित्र भी दिए, यद्यपि हमारे कुछ मित्रों ने उसे अच्छा न बतलाया। हाँ, जैसी आशा थी, सुधा की फुटकर प्रतियों की खपत अधिक हो गई। ह्वीलर-कंपनी के बुक-स्टालों पर भी हमारा पत्र सबसे अधिक बिकने लगा! पर हमारे साहित्यिक मित्र यही लिखते रहे कि सुधा को नए वर्ष से मासिक ही कर दें, उसी में इसका गौरव है। अस्तु। अब हम फिर सुधा को इस नए वर्ष से मासिक रूप में ही निकालने जा रहे हैं। सुधा अब फिर उसी पहली सज-धज के साथ, जो उसने अपने प्रथम ६ वर्षों में रक्खी, निकलेगी। कागज़ भी बढ़िया आइवरी फ़िनिश या एंटिक लगेगा, छपाई-सफ़ाई भी अच्छी होगी। टाइप अभी हाल ही में हमने बदला है, और भी नए टाइप हम ढलवा रहे हैं।

सुधा को हिंदी-संसार के श्रेष्ठ लेखकों एवं कवियों का सहयोग सदैव प्राप्त रहा है। हिंदी के जितने भी श्रेष्ठ कवि एवं लेखक हैं, वे सुधा पर कृपा करते हैं। अतएव क्या विषय-निर्वाचन की दृष्टि से और क्या पाठ्य सामग्री की उत्कृष्टता की दृष्टि से सुधा का मस्तक अपने अन्य सहयोगियों एवं सहयोगिनियों के समक्ष सदैव ऊँचा रहा है।

हमें तो इस बात का गर्व है, और हम समझते हैं, हमारा यह गर्व उचित है कि सुधा ही एक ऐसी पत्रिका है, जिसने हिंदी मासिक पत्रों के क्षेत्र में हिंदी-लेखकों के मौलिक लेख ही अधिक छापने और नए-नए लेखकों और लेखिकाओं को तैयार करने में सबसे अधिक ध्यान दिया। अपने मित्रों एवं कृपालु लेखकों तथा पाठकों को हम विश्वास दिलाते हैं कि सुधा अब पुनः मासिक रूप में वैसी ही शान से प्रकाशित होगी। हाँ, यह बात जरूर है कि सुधा को उसके प्रत्येक अंक में सुंदर और श्रेष्ठ सामग्री पाठकों को पढ़ने के लिये मिलेगी। हमारे ये सम्मान्य लेखक बराबर सुधा की श्री-वृद्धि करते रहेंगे—

रायबहादुर लाला ब्रजवासी सीताराम बी० ए०,
महाकवि पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय,
रावराजा रा० ब० पं० श्यामबिहारीजी मिश्र,
रा० ब० पं० शुकदेवबिहारीजी मिश्र,
महाकवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त,
कुँवर राजेंद्रसिंहजी भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री,
आचार्य चतुरसेनजी शास्त्री,
कविवर श्रीसूर्यकांतजी त्रिपाठी 'निराला',
बाबू वृंदावनलालजी वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०,
कविवर श्रीसुमित्रानंदनजी पंत,
कविवर मुंशी अजमेरीजी,
कविवर बाबू सियारामशरणजी गुप्त,
श्रीजैनेंद्रकुमारजी जैन,
श्रीकृष्णानंदजी गुप्त,
श्रीहर्षवर्धनजी नैथाणी एम्० ए०, बी० एस् सी०।

हम दावे के साथ कहेंगे, सुधा से उत्तम पाठ्य तथा मनोरंजन की मौलिक सामग्री पाठकों को अन्यत्र न मिल सकेगी।

पाठकों को यह जानकर भी प्रसन्नता होगी कि सुधा के संपादकीय स्तंभ में भी हम नोट सदा की भाँति चित्ताकर्षक और विविध विषयों पर, काफी तादाद में, देंगे। हमारी टिप्पणियाँ हिंदी-संसार सदा पसंद करता रहा है, और आशा है, आगे भी इस संबंध में वह संतुष्ट रहेगा। हम कार्टून और चित्र भी सुंदर-सुंदर देंगे। कला एवं साहित्य पर तथा आधुनिक हिंदी साहित्य के विषय में विशेष रूप से अपने विचार प्रकट किया करेंगे। संसार की आवश्यक विचित्र बातों का भी समावेश होगा। आशा है, इस योजना से सुधा हिंदी पाठकों के लिये अधिक उपयोगी बनेगी।

चित्रकारिणी

Ganga Fine Art Press, Lucknow.
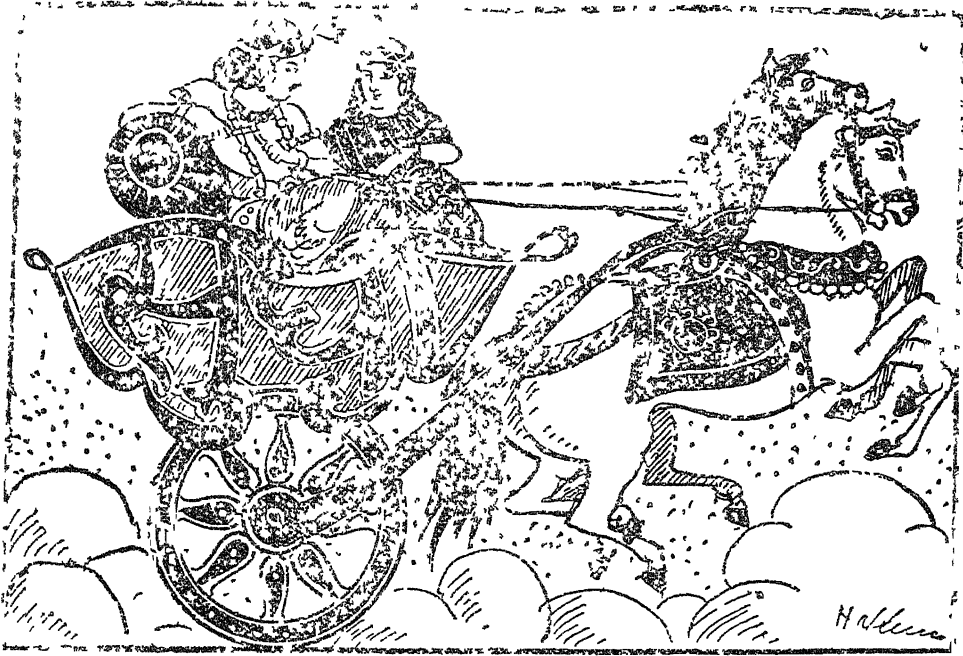
सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८	भाद्रपद, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)—	संख्या २
खंड १	सितंबर, १९३४	पूर्ण संख्या ९८

प्रार्थना

[श्रीदुलारेलाल भार्गव]

नंद-नंद सुख-कंद कौ मंद हँसत मुख-चंद,
नसत द्वंद-छलछंद-तम, जगत जगत आनंद।

[भावार्थ—नंद-पुत्र सुख-कंद बालकृष्ण का मुख-चंद्र मंद-मंद हँस रहा है, जिससे दुःख और छलछंदों का अंधकार नाश हो रहा है, और जगत् आनंद से जग रहा है।]

जनता

[श्रीजैनेंद्रकुमार जैन]

(१)

बाबा भगीरथजी विचित्र पुरुष है। मन में आया, वैसे ही रहते है। अपने से बाहर भी कुछ है, जिसका असर व्यक्ति पर होना चाहिए, इसकी सूचना मानो उन्हे प्राप्त नहीं है। समाज अगर कुछ है, तो ठीक है, हो; सरकार अगर कुछ है, तो अवश्य हो, किंतु इस कारण उनके मन को जैसा अच्छा लगेगा, वैसे वह क्यों न रहेंगे। हाँ, उनसे किसी को कष्ट न हो, इसका पता वह रक्खेगे। यही क्यो, उनसे भरसक सबको आराम पहुँचे, इसका भी ख़याल वह रक्खेगे। और, बस। इसके आगे उनके नज़दीक दुनिया जैसी है, वैसी ही नहीं है।

मै कहता हूँ, यह ठीक नहीं है। दुनिया है, और इसमें निभकर चलना पहली बात है। इससे बाहर जाकर तो गुज़ारा नहीं। इससे अगर विद्रोह भी करना हो, तो उससे मिलकर ही हो सकेगा। दुनिया से अजीब, अलग, रूठे हुए बनने से काम नहीं चलेगा। कुछ लोग हैं, जो डाढी रखते है, और कुछ लोग हैं, जो डाढ़ी नहीं रखते। पर तरीक़ा तरीक़ा है। जो डाढ़ी रखते हैं, वे रखने के तरीक़े से रखते हैं। उन्हे मालूम होता है कि यह डाढी है, कोई झाडी नहीं है, जिसके न कुछ अर्थ है, न प्रयोजन। और, डाढी नहीं रखते, तो शेव किया कीजिए। और, कपडो मे पतलून है, पाजामा है, धोती है, कुर्ता, क़मीज़, कोट, वास्कट है, अब न डाढ़ी रखना, न रखना, और कपडों में ऊपर गिनाई सब चीज़ों को छोडकर कोई अपनी ही ईजाद करके पहनना, और सोलह मे पंद्रह आने उघारे बदन ही रहना—मै कहता हूँ, यह भी कुछ समझदारी है? लेकिन बाबा भगीरथ पर किसी का बस चले, तो बाबा भगीरथ कैसे।

मैने एक दिन कहा – देखिए बाबाजी! आदमी जो समझता है, ठीक है, उसे फिर उसके साथ कसकर देखना होगा, जिसे दुनिया समझती है, ठीक है। उनके समन्वय से जो मिले, वही तो व्यक्ति का मार्ग है। क्योंकि आदमी अपने मे पूरा कहाँ है? पूर्ण होने के लिये उसे समाज की अपेक्षा नहीं है क्या?

बात यह है कि मैं अपने मन से बाबाजी को टालना चाहता हूँ। मन उन पर जाकर कुछ सुख नहीं पाता, उसमें कुछ विद्रोह, एक बेचैनी-सी होती है। बाबा को देखकर जी मे होता है कि तेरी प्रतिष्ठा, तेरी दुनियादारी, तेरी कामयाबी जूठी है, झूठ है, छल है। चाहता हूँ, बाबा पर दया कर डालूँ, और इस तरह अपने बडप्पन को स्थिर रक्खूँ, सँभाले रक्खूँ। पर होता नहीं। बाबा को सामने पाकर बडप्पन हठात् मुझ पर से खिसकने लगता है, उतरकर जैसे मुझे छोड जाने को उतारू हो जाता है। तब उस बाबा और उसकी सारी फ़िलासफ़ी पर मुझे बडा गुस्सा आता है। लेकिन कभी वह साढ़े तीन सौ मासिक पाता था, मेरा सीनियर था, गण्य-मान्य था। और, आज है कि मैं चार सौ पाता हूँ, और उसे ठौर का ठिकाना नहीं है, और मित्रों का कृपानुजीवी ही समझिए, बनकर उसे रहना होता है। मैं उसे पागल कह सकूँ, बैरागी कह सकूँ, साधु संन्यासी कह सकूँ, तो मुझे चैन पड़ जाय। क्योकि समाज की रीति-नीति मे उसके लिये जगह है, समाज उसे पहचान सकती है। कहा, पागल है, और

चलो छुट्टी हुई। इस बाबा से, लेकिन, इस तरह की छुट्टी मुझे किसी भाँति नहीं मिलती। और, वह सदा इतना ख़ुश और इतना पक्का और इतना ताज़ा रहता है कि मन मन मे मैं कितना ही झुँझलाऊँ, उसके प्रति एक प्रकार की श्रद्धा से भी बचा मुझसे नहीं जाता।

बाबा ने कहा—देखो भाई, समाज से मैं इनकार नहीं करता। जिसको मैं सही कहूँ, मन हो, तो क्यो न समाज उसे ग़लत माने। स्वतंत्रता चाहनेवाला मैं समाज को तो और भी स्वतंत्रता दूँगा। मै तो कहता हूँ, जिसको मै अपने लिये सही समझूँ, उसी को समाज मेरे लिये निषिद्ध ठहरा सकती है। मैं यदि अपने समर्थन मे उसका विरोध करूँ, तो उसका धर्म है कि अपने समर्थन मे मेरा विरोध करे। यहाँ तक कि मै दब जाऊँ, नही तो मिट जाऊँ। समाज ने ईसा को सूली चढ़ाकर समाज-धर्म की प्रतिष्ठा की। ईसा को यदि ईसा बनना था, तो सूली पर चढना था। समाज को समाज रहने के लिये उसी तरह ईसा को, जो ईसा बने विना मानता न था, सूली दिए विना न रहना था। सूली चढ़नेवाला ईसा समाज के इस दायित्व को जानता था। अपने कंधो सलीव लेकर वह वधस्थल गया। कोई अडचन उसने वधिको के काम मे नहीं उपस्थित की। यही नही, बल्कि सुविधा उपस्थित की। अब मै यह कहता हूँ कि अपने ऊपर समाज को पूर्ण स्वतंत्रता देकर क्या अपनी नियति को अपने ही रूप में संपन्न करने का अधिकार ईसा का नहीं हो जाता? समाज के हाथों जब वह ख़ुशी से सूली चढ़ने को उद्यत है, तब ईसा ईसा बने विना किस भाँति रह सकता है। इसलिये व्यक्ति, अपने लिये, समाज की ओर नहीं देख सकता है, बल्कि नहीं देखना चाहिए, अगर उसमें समाज के दंड से बचने की इच्छा नहीं है, और वह समाज का हितैषी ही बना रहकर उसके दंड का स्वागत कर सकता है। अगर दुनिया मुझे पागल कहेगी, तब भी मैं उसका बुरा न सोचूँगा, मुझे पीडा देगी, तब भी उसकी कल्याण-कामना करूँगा—यह मानने के बाद क्या अपने मुताबिक चलने का हक़ मेरा न मानोगे?

देखा आपने! यह बाबा भगीरथ हैं। इस बाबा भगीरथ को, आप समझते है, कभी जीवन मे आराम मिल सकेगा, सफलता मिल सकेगी? क्या नहीं समझते कि उमर-भर उसे मोहताज और आवारा ही रहना होगा?

और आइए, मै आपको सुनाऊँ, बाबा के बावापन का एक रोज क्या गुल खिला। क़िस्मत समझिए कि बाबा मौत से बाल-बाल बच गया, नही तो विधना की ओर से तो तैयारी काफ़ी पूरी हो गई थी।

और आप जानते हैं, क्या? उसके बाद भी बाबा को होश नही हुआ है, और वह वही है।

(२)

मास्टर दीनानाथजी की ग्यारह बरस की लडकी सुखदा को पाँच छ रोज़ से उनके घर आए बाबा भगीरथजी से एक भेद की ख़बर मिली है, जिसने उसके चित्त को विभ्रम में डाल दिया है। बाबा ने उसे बताया है कि रामजी ने उसे एक जामन के पेड के नीचे डाल दिया था। वहाँ वह कीं-कीं-कीं ख़ूब रो रही थी। दया करके बाबा ने वहाँ से उसे उठा लिया, और यहाँ आकर फिर उसकी मा को पालने को दे दिया। समझी कि नहीं? चाहे तो अपनी मा से पूछ ले कि तू कहाँ से आई थी। बाबा ही दे गया था कि नहीं।

लडकी ने कहा—"नहीं-नही-नहीं। झूठ, बिल्कुल झूठ।"

और तभी वह सोचने लगी कि जामन के पेड़-तले पड़ी वह नन्ही-सी कैसी लगती होगी।

भगीरथजी ने कहा—"इसमे क्या बात है। जाकर अपनी मा से न पूछ आओ।"

मा से पूछा, तो उसने भी बता दिया कि हाँ, ठीक तो है, पेड़ के नीचे ही तो भगीरथजी ने उसे पाया था।

लड़की ने आँख फाड़कर पूछा—"अच्छा!"

मा ने पूछा—"तो तू बाबाजी के संग जायगी?"

बेटी ने कहा—"हाँ, बाबाजी के संग जाऊँगी। तू तो मुझे मारती है।"

इस तरह और जाने किस-किस तरह बालको को रिझा और हिला लेने में भगीरथजी-सा दूसरा आदमी न होगा। सुखदा बाबूजी और मा को भूलकर सदा बाबाजी के ही सिर चढ़ी रहती है। या उसके सिर कहो 'बाबाजी' चढ़े रहते हैं।

मास्टर दीनानाथजी से उन्होंने कहा—"देखो मास्टरजी, यह इस्कूल-विस्कूल ग़लत बात है। जब तक हम रहे, लड़की किसी स्कूल मे पढ़ने नहीं जायगी। और, सबसे बड़ी शिक्षा खुली हवा मे घुमाना है। आप छोड़िए सुखदा को मेरे ऊपर। अभी तो एक महीने मैं यहाँ हूँ।"

लड़की अब स्कूल नही जाती, सुबह-दोपहर-शाम जाने कहाँ-कहाँ बाबाजी के साथ नई-नई चीज़े देखने जाती है। एक-दो घंटे बाबाजी ही उसे पढ़ा भी देते है।

जाड़ो के दिन थे। दस बजे होंगे। मीठी-मीठी धूप फैली थी। और, निकल्सन बाग़ में घास पर बैठे बाबा भगीरथजी और सुखदाजी बाते कर रहे थे। और, उस बाग़ के बाहर भी दो-तीन आदमी घूम रहे थे।

यहाँ एक बात ख़याल रखनी चाहिए। सुखदा सुंदर है, गोरी है, देखने से ही अच्छे घर की मालूम होती है। अच्छी, साफ़ साडी है, पैरो मे बढ़िया चप्पल। भगीरथजी नगे पैर है, जिनमे बिवाइयाँ फट रही है, उघारे बदन, बस एक मटमैले रंग का जाँघिया है। छ महीने की डाढ़ी है। रंग धूप से पका ताँबिया।

सुखदा ने पूछा—"बाबाजी, यह चौराहो पर आदमी क्यों खड़े रहते हैं?"

"अच्छा, बताओ, इस चौराहे पर जो खड़ा था, कौन था?"

लड़की ने बताया—"सिपाही।"

भगीरथजी ने कहा—"हाँ, सिपाही है। जानती हो, क्यों रहता है? आते-जाते ताँगे-मोटरो को वह रास्ता बनाता है, नही तो वे लड़ जायँ। इनका नाम पुलिस है। ये पुलिस के सिपाही है। इनसे डरना नही चाहिए। समझी? ये लोगो को मदद देने के लिये है। तुम डरती तो नहीं?"

"नहीं।"

"हाँ, डरना कभी नहीं चाहिए। अच्छा, धोती यही उतार जाओ। जाँघिया तो है न? जाओ, जितनी तरह की कल घास बताई थी, ढूँढकर उनके नमूने लाओ तो।"

लड़की चली गई। इतने में एक आदमी आया। आकर पूछने लगा—"आप कहाँ रहते है?"

"हम कहाँ रहते है? यहीं रहते है।"

"यहीं क्या, देहली में? किस मुहल्ले में?"

बाबाजी ने कहा—"क्यों, तुमको मेरे मुहल्ले से ख़ास काम है?"

आदमी ने कहा—"हिंदू हो या मुसलमान?"

बाबाजी को यह बडा विचित्र लगा। कहा—"भाई, हम जो है, है। जहाँ रहते हैं, रहते है। तुम जाओ अपना काम देखो।"

इतने में लड़की आ गई, और एक अजनबी को देखकर मनमारी वहाँ बैठ गई। बाबाजी ने पूछा—"क्यो? क्यो, बेटी?"

आदमी ने पूछा—"यह लड़की कौन है?"

बाबाजी को इस आदमी का यह सवाल बहुत बुरा मालूम हुआ। कहा—"तुमको इससे मतलब ? जाओ, अपना रास्ता देखो।"

आदमी चला गया, और लड़की ने घास दिखानी शुरू की।

इतने मे एक आदमी और आया, बोला—"आप कितनी देर तक यहाँ बैठेंगे ?"

"हमारी तबियत।"

"मै पूछता हूँ, घटे, दो घटे, आख़िर कितनी देर तक आप यहाँ है ?"

"तुम सुनते नहीं हो।" बाबाजी ने कहा—"हमारी तबियत है, जब तक हम यहाँ है।"

आदमी ने कहा—"अच्छी बात है।" और वह चला गया।

बाबाजी के मन पर किसी तरह की कोई जूँ नही रेंगी। और, देखा गया, बग़ीचे के बाहर टहलते हुए आदमियों की सख्या दो-तीन से छ-सात हो गई है। उनमे एक बावर्दी पुलिस का सिपाही भी है।

लड़की का उत्साह अकारण मंद पड़ने लगा, और उसका जी बैठने लगा।

बाबाजी ने कहा—"देखो सुकी, मैंने छ तरह की घास तुम्हे बताई थी, और छहो इस बग़ीचे मे है। तुम लाई चार ही।"

लड़की ने कहा—"बाबाजी, घर चलो।"

"क्यो ?" बाबाजी की समझ मे जैसे यह बात बिल्कुल नहीं आई।

"नहीं, हम तो घर चलेंगे।"

"अच्छी बात है, चलो।"

दोनो उठकर चले।

(३)

बगीचे से बाहर निकले, तो वे छओ-सातो आदमी भी पीछे-पीछे चले। अब बाबाजी ने जाना कि दाल में कुछ काला है। पर उन्हें आशंका से अधिक कुतूहल ही हुआ, और वे दोनो चुपचाप चलते रहे।

फ़र्लांग-भर गए होगे कि पचास-साठ आदमी हो गए। एक बावर्दी घुड़सवार भी साथ दिखाई देने लगा। सब अपने-अपने अनुमानो से भरे थे, और पुलिस के लिये शीघ्र एक यह काम भी हो गया कि जनता के भरे सदस्यो को मर्यादा से आगे बढ़ने से थामे रहे।

"ज़रूर मुसलमान गुडा है। बाबा बनकर लडकियाँ भगाता है, बदमाश !"

"मुसलमान नहीं है। है हिंदू, पर गुडा है।"

"लडकी किसकी है ?"

"देखते रहो, कहाँ जाता है ?"

"देखना, निकल न जाय।"

"साला आज पकडा गया।"

पुलिस ने कहा—"पीछे रहो, पीछे रहो।"

ख़ुशी से भरी जनता घुड़सवार पुलिसमैन के पीछे बाढ़-सी बढ़ती और उमड़ती हुई चलने लगी।

"क्या है ? क्या है ?"

"देखते नही, सामने क्या है ?"

"ओह, यह ! साला—"

कृतार्थ होकर अत्यंत उत्साह के साथ पूछने-वाला भी भीड़ के साथ हो लिया।

"अपना नाम इसने मौलाबख़्श बताया है, पर असली ज़ैनुद्दीन यही है।"

"ज़ैनुद्दीन !"

"सौ-सौ के ६ नोट इसके जाँघिए की जेब में मिले हैं।"

"अब ले जाकर लड़की बेच देता। अभी इनका गिरोह है, गिरोह।"

"मुसलमान क्यो बढ़ रहे हैं ? इसी से तो।"

"कौन कहता है, लडकी मुसलमान-ख़ानदान की है, और यह शख़्स हिंदू गुंडा है।"

"झूठ। मुसलमान है।"

"हरगिज़ नहीं। काफ़िर है।"

"वह ज़िदा क्यों है ?"

"तुम झूठे हो।"

"तुम नालायक हो।"

"कोई मर्द नहीं है, जो यहीं उसे करनी का मज़ा चखाए।"

पुलिस—"पीछे रहो, पीछे रहो।"

भीड़ बढ़ती ही चली गई। हिंदू भी थे, मुसलमान भी। इसमें दो राएँ न थीं कि यह शख़्स ज़िंदा न बचने पाए। और, सबको यह बुरा मालूम हो रहा था कि यह पुलिस कौन चीज है, जो सामने आकर उनके और उस बदमाश के बीच, मे यानी इंसाफ़ और जुर्म के बीच मे, हायल है।

रेल का पुल आते-आते तीन-चार हज़ार आदमी हो गए होगे। जैसे समदर के बीच मे बूँद बूँद नहीं होती, वैसे ही भीड में आदमी आदमी नहीं रहता। भीड़ का अपने मे एक अस्तित्व है, एक व्यक्तित्व है। वह अतर्क्य है।

"सीधे चलो, सीधे चलो !"

"कोतवाली ! कोतवाली !"

लड़की सहमी-सहमी चल रही थी। उसने ज़ोर से भगीरथजी का हाथ पकड रक्खा था। उसकी समझ मे न आता था, यह क्या है। एक निशब्द त्रास उसके मन पर छा रहा था, और बाबाजी को भी बोध हो रहा था कि परिस्थिति साधारण नहीं रह गई है। लोगों की भीरुता और मूर्खता पर उन्हे बडी झुँझलाहट हो रही थी।

घुडसवार ने आगे बढ़कर बाबा से पूछा—"तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"आप देख तो रहे हैं, मै जहाँ जा रहा हूँ।"

"किस मुहल्ले मे रहते हो ?"

"जिसमे रहता हूँ, वहीं तो जा रहा हूँ।"

उस समय लडकी बाबा के हाथों से चिपट-चिपट गई।

"मै घर जाऊँगी बाबाजी, घर।"

पुल के आगे उनका रास्ता मुड़ता था। मुडने लगे, तभी घुडसवार ने उनके सामने आकर कहा—"सीधे चलना होगा।"

यह बाबा के लिये अप्रत्याशित था। पूछा—"कहाँ ?"

"कोतवाली।"

"क्यों ?"

"मै कहता हूँ, इसलिये।"

"आप कहते है इसलिये ? या भीड़ कहती है, इसलिये ?"

सवार ने उत्तर न दिया। वह लौट गया, और उसने समझ लिया, यह आदमी वैसा नहीं है, जैसा ख़याल है।

दोनो चुपचाप सीधे कोतवाली की तरफ़ बढ़ चले।

जुलूस पीछे-पीछे आ रहा था। बात अब तक दूर-दूर फैल गई थी। अब चौक से भी जुलूस को गुज़रना हुआ। पाँच से दस, पंद्रह, बीस हज़ार तक भीड पहुँच गई। टेलीफ़ोन से पुलिस के कई दस्ते आ गए थे। पर भीड को शांत रखना मुश्किल हो रहा था। शोर बेहद था, और उसमे अब पक्ष भी पड़ने लगे थे। मुसलिम-पक्ष और हिंदू-पक्ष।

परिस्थिति भीषण होती जा रही थी, और लड़की के कारण बाबाजी को चिता होने लगी थी। पर मालूम होता था, बात अब वश से बाहर हो गई है। क्या कोई मेरी बात सुनने योग्य इस जनस्थिति मे होगा ?

"अरे, यह लडकी तो दीनानाथ की है !"

"दीनानाथ ! हेडमास्टर दीनानाथ !"

"ओह, दीनानाथ की ?"

चुटकी बजाते बात फैल गई कि दीनानाथ की लड़की को एक मुसलमान गुंडा उडाकर ले आया है।

हिंदू-पक्ष के क्रोध की सीमा न रही, और मुस्लिम-पक्ष का उत्साह तनिक मंद हो गया। तब दो-एक मुसलमानों को सूझा कि पुलिस से कहे कि मामले की जाँच भी पहले की या नहीं।

दो-एक शरीफ़ मुसलमान उस समय पुलिस-इंस्पेक्टर के पास गए, और तभी बाबाजी ने इंस्पेक्टर के पास पहुँचकर कहा—"आप यह क्या ग़ज़ब कर रहे हैं। आप क्या चाहते हैं। आख़िर इस बेचारी लड़की को तो बाप के पास जाने दीजिए। पता मैं बताता हूँ, सिपाही के साथ लड़की को घर भेज दीजिए। मैं आपके सामने ही हूँ।

मुसलमान सज्जनों ने कहा—"जी हाँ, कोतवाल साहब, यह शरीफ़ आदमी मालूम होते हैं। पता तो लीजिए कि बात क्या है।"

पुलिस भीड़ में से उन्हें एक ख़ाली दुकान की तरफ़ ले गई। वहाँ बाबाजी ने मकान का पता दिया। और, तय हुआ कि एक सिपाही वहाँ जाय, और मालूम करके आवे, तब तक दोनों यहीं रहे।

इस बीच बात आग की तरह फैलती रही। महावीर-दल, अर्जुन-सेना, भीम-सेवा संगठन, हिंदू-रक्षा-सभा और अखाड़ा बंजरंगबली आदि सदल-बल मौक़े पर आ गए। इधर हुसैन-ग़ोल और रफ़ीकाने-इस्लाम तथा रजाकाराने-दीन भी चौकन्ने-चौकस हो गए।

इधर दीनानाथजी चार मित्रों के साथ भोजन कर रहे थे। दीनानाथजी की लड़की भगा ली गई है, यह इस सभा से उस सभा तक सबको मालूम हो गया। दीनानाथ को ही बतलाने की, या उनसे पूछने की, ज़रूरत किसी को नहीं हुई। वह निश्चित, प्रसन्न भोजन कर रहे थे, तभी नौकर ने ख़बर दी—"बाबूजी, एक सिपाही आपको पूछ रहा है।"

'क्या चाहता है?"

"पूछता है, आपकी कोई लड़की है।"

"अबे, है, तो उससे उसे क्या है?"

"कहता है, ज़रूरी काम से दारोग़ा साहब ने फ़ौरन् आपको बुलाया है।"

"कह दो, मुझे फ़ुर्सत नहीं है।"

नौकर गया, और फिर लौटकर उसने ख़बर दी—

"जी, वह तो जाता नहीं। कहता है, आपकी लड़की वहाँ है, और आपका वहाँ चलना बहुत ज़रूरी है।"

"होने दो लड़की वहाँ। मैं अभी नहीं आ सकता। और, वह आदमी अभी नहीं जाना चाहता, तो उसे खड़ा रहने दो वहीं।"

नौकर गया, और दोस्तों में फिर ठट्ठा होने लगा।

"देखा! यह पुलिस है! कोई ग़ुलाम बैठा है कि फ़ौरन् हुक्म पर दौड़ा जाय!"

"आख़िर लड़की कहाँ है?"

"होती कहाँ? भगीरथजी के साथ है। फिर उनके साथ कहीं भी हो, फ़िकर क्या है।"

उधर जनता में न्याय की भूख और हिंसा की प्यास ख़ूब बढ़ रही थी। चौक में एक दुकान के भीतर बेंच पर भगीरथजी बैठे थे, उनसे चिपटी-सिमटी सुखदा, कुर्सी पर इंस्पेक्टर थे, आस-पास सिपाही और चौक की चौड़ी सड़क एक फ़र्लांग तक नर-मुंडों से पटी थी। जो सिपाही भेजा गया था, उसके लौटने की प्रतीक्षा की जा रही थी। न्याय रुका हुआ था, जनता ख़ाली थी, और उसका मद उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। बातचीत में दारोग़ाजी को मालूम हो गया था कि यह बाबा शरीफ़ आदमी है। लेकिन इस भूखी मतवाली जनता के बीच में अब इस बाबा को आज़ाद छोड़ना जानवरों के बीच में छोड़ना है, फिर उसकी बोटी बाक़ी न बचेगी।

सिपाही ने आकर ख़बर दी कि मास्टर दीनानाथ ने उसे घर से बेइज़्ज़त करके निकाल दिया है, और कुछ जवाब नहीं दिया।

इस पर तय हुआ कि दोनो को कोतवाली ले चलना होगा। लेकिन पैदल ले चलना ख़तरे से ख़ाली न था, इससे ताँगा मँगवाया गया। ताँगा चला, और भीड भी चली।

"देखा! पुलिस को चकमा देता था।"

"अब जायगा कहाँ?"

"अब तो यहीं इसको बहिश्त दिखाई देगी।"

दारोग़ा ताँगे मे आगे बैठे थे, लडकी के साथ बाबा पीछे। उस वक्त लडके बाबा पर कंकडियाँ फेक रहे थे, लोग बेत चुभो रहे थे, कभी-कभी जूते भी पास आ गिरते थे, और लड़की बाबा की गोद मे दुबकी जा रही थी।

ज्यों-त्यो दोनो कोतवाली के अदर ले जाए गए, और भीड बाहर तैनात हो गई।

(४)

शहर-भर मे सनसनी फैल गई थी। दल-के-दल कोतवाली के सामने पहुँच रहे थे। कोई खाली हाथ न था। लाठी, डडे, बल्लम, जिससे जो हुआ, साथ ले आया था। सबको खबर थी—"मास्टर दीनानाथ की लडकी उडाई गई, मास्टर दीनानाथ की!"

"अजी, सोलह बरस की है। तुमने नहीं देखा? ख़ूबसूरत, कि ग़ज़ब की ख़ूबसूरत!"

"अभी ब्याह नही हुआ।"

"और पढ़ाओ लड़कियों को। जभी तो ब्याह जल्दी करना चाहिए।"

"सगाई हो गई थी। ब्याह बैसाख में हो जाता।"

"अजी, पहले से लाग-साख होगी। नहीं तो इतनी उमर की लडकी को कौन ले जा सकता है।"

इधर यह सब कुछ था, उधर मास्टर दीनानाथ के कानों भनक न थी। उन्हें अचरज अवश्य था कि अभी तक सुखदा और भगीरथजी घूमकर आए नहीं, पर सोच लेते थे, अब आते ही होगे। चिंता की जरूरत हो सकती है, यह संभावना तक उनके पास न फटकती थी।

तभी पड़ोसी मनोहरलाल बाहर से ही चिल्लाते घर मे दाखिल हुए—

"मास्टरजी, मास्टरजी, लड़की मिल गई।"

"क्या-क्या?"

"अजी, लडकी गायब हो गई थी न, वह मिल गई। और, वह गुंडा भी पकड लिया गया है। लाइए, मिठाई खिलाइए।"

"क्या कह रहे है आप!"

"मैं कहता हूँ, अब से आपको होशियार रहना चाहिए। मुसलमानो को आप जानते नहीं हैं। और बनिए कांग्रेसी। आस्तीन के साँप हैं, साहब, आस्तीन के।"

दीनानाथजी ने कुछ हँसना भी चाहा, लेकिन बाँह पकड़कर उतावली से पूछा—"मनोहरलाल, कह क्या रहे हो?"

"अजी, मै वहीं से आ रहा हूँ। लखूखा आदमी है। उसकी बोटी भी बच जाय, तो मेरा नाम नहीं। साला.."

"कहाँ से? कहाँ से?"

"कहाँ से? जनाब, वहाँ से, जहाँ अब भी वह गुंडा मौजूद है, और लड़की भी है। आप लड़की की शादी क्यों नहीं कर देते?"

"मनोहरलाल"—दोनो बाहों से मनोहरलाल को झकझोरकर दीनानाथ ने पूछा—"कहाँ हैं वे लोग?"

"कहाँ है! क्यो, क्या अब भी कोतवाली मे वह नहीं बैठा है। लेकिन मै कहता हूँ, कुछ दम का और मेहमान है वह, फिर तो उसका बाल भी नहीं मिलेगा।"

दीनानाथ ने साइकिल सँभाली, और भागे। भीड के पास पहुँचे, तो किसी ने उन्हें पहचानकर बधाइयाँ दीं—

"मास्टरजी, लडकी मिल गई।"

"यही मास्टर है ? इसी की लडकी है ? शर्म की बात है ।"

"जगह दो, जगह ।"

"लडकी की हिफ़ाज़त होती नहीं, पढ़ाने का शौक़ है । बुरा हो इस पढ़ाई का ।"

भीड़ को चीरते हुए दीनानाथ कोतवाली में दाख़िल हुए । लड़की के बाप के आने की बात पर भीड़ में नशे की एक और लहर आ गई । अंदर दारोग़ा साहब ने कहा—"आइए, मास्टर साहब, आइए ।"

"यह आप क्या ग़ज़ब कर रहे हैं । वह कहाँ हैं ?"

उस कमरे में पहुँचे, तो लडकी इनसे चिपट गई ।

दारोग़ा ने पूछा—"यह आपकी लडकी है ?"

"जी हाँ, साहब ! और यह मेरे दोस्त बाबा भगीरथजी हैं ।"

"ओ हो, माफ़ कीजिए । इनको बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी ।"

"लेकिन जनाब, आपने भी तो ग़ज़ब किया । देखिए न, कितना हजूम जमा है ।"

विचार होने लगा कि इस भीड मे से कैसे बाबाजी को ले जाना होगा । आख़िर, सोचा गया कि मास्टरजी साथ रहेंगे, तब ज्यादा ख़तरा नही है ।

पुलिस की मदद से ताँगे मे सवार हुए, और मास्टरजी बराबर साइकिल लेकर चले ।

"मास्टरजी, यही गुंडा है ?"

"अरे, मास्टर की लडकी भगानेवाला यही है ।"

"साला, जाने न पावे ।"

मास्टर ने चिल्लाया—"अरे, क्या गज़ब करते हो !"

लेकिन साहसी व्यक्तियों ने बढ़-बढ़कर भगीरथजी के धौल-धप्पे जमाने शुरू कर दिए ।

ताँगा दौड़ा । पत्थर फिके । दीनानाथ साइकिल दौड़ाते जा रहे थे ।

भीड़ एकाएक कुछ स्तब्ध रह गई थी, और ताँगा इतने में निकल गया । यही कुशल हुई ।

लेकिन रास्ते में स्वयंसेवकों के दल अभी चले ही आ रहे थे ।

"देखा, मास्टर दीनानाथ ताँगे के बराबर साइकिल पर जा रहे है, और ताँगे पर लड़की के साथ एक मुसलमान-सा बैठा है ।"

"मास्टरजी, यही है ?" और दे डंडा !

"मास्टरजी की लडकी यही तो है जी !"—और पाँच-सात आदमी दौड़े ताँगे की तरफ़ लाठियाँ उठाए । कुछ ताँगे की छत पर पड़ीं, एकआध बाबा पर भी । पत्थर भी ख़ासे बाबा को लगे । पर ज्यों-त्यों, आख़िर ताँगा घर पहुँच ही गया ।

(५)

लेकिन बाबाजी ने न अपना जाँघिया बदला, न भलेमानसो की तरह कुर्ता-क़मीज़ कुछ पहनना शुरू किया ।

"ओ हो, बाबाजी, आप थे ! मैं मोटर पर जा रहा था, भीड मैंने भी देखी थी । क्या पता था, वहाँ आप घिरे थे ! आप भी ख़ूब हैं ।"

"भीड तो हमने भी देखी थी । लेकिन बाबाजी, आप ठीक तरह क्यों नहीं रहते ?"

बाबाजी को इससे कुछ भी सुख या दुःख नहीं जान पड़ता कि वह मौत से बच गए । वह हँस देते हैं, और बाबा छोड़कर कुछ और बनना नहीं चाहते ।

साहित्य में भोग-लिप्सा

[श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम्० ए०, भाषातत्त्वरत्न]

मनुष्य प्रवृत्ति का दास है। प्रवृत्ति की लगाम यदि ढीली कर दी जाय, तो संसार मे कैसी अनिष्ट की सृष्टि होती है! इसलिये हरएक धर्म-मत मे प्रवृत्ति को रश्मि-संयत करके निवृत्ति-मार्ग में चलने का उपदेश दिया गया है। मानव-मन मे

श्रीनलिनीमोहन सान्याल एम्० ए०, भाषातत्त्वरत्न

अच्छे तथा बुरे, दोनो प्रकार के भाव रहते है, किंतु अधिकांश मनुष्य अपनी मंद बुद्धि द्वारा जितना चालित होते है, सुबुद्धि के वश में रहने के लिये उतना नही। सुमति तथा कुमति का द्वंद्वयुद्ध हर-एक मानव-मन मे अहर्निश होता रहता है, किंतु प्रायः कुमति की ही जय होती है। इस जय-पराजय का फल यदि मन के ही भीतर सीमित रहे, तो अधिक हानि की संभावना नही। किंतु उसका बहिःप्रकाश हमेशा हुआ करता है—इंद्रियों पर उसका प्रभाव पड़ता है। चक्षु रूप के लिये, कर्ण सुस्वर के लिये, नासिका मधुर सौरभ के लिये, जिह्वा तृप्तिकर स्वाद के लिये और त्वचा सुख-स्पर्श के लिये व्याकुल होती है। कर्मेंद्रियाँ भी हाथ बँटाती है। तब कैसे अनर्थों का संघटन होता है, यह अनुमान कर लेना कठिन नही।

शंकराचार्य ने अपने बृहदारण्यक-भाष्य में लिखा है कि इंद्रियों में ही देव तथा असुर-भाव विद्यमान है। जब वे शास्त्रोपदिष्ट ज्ञान तथा कर्मानुष्ठान मे नियत रहती है, तब दीप्तिमान कही जा सकती हैं, और 'देव'-पद-वाच्य होती है। किंतु जब वे भोगासक्ति द्वारा परिचालित होती है, तब प्राण-मात्र वा 'असु' की परितृप्ति मे लगी रहती है, और 'असुर'-पद-वाच्य होती

है। मनुष्य को ईश्वराभिमुख करने के लिये ही इंद्रियों की सार्थकता है। प्रकृति मे नाना सौदर्यो को देखकर भगवान् के असीम सौदर्य का अनुभव करना, विहंगों की मधुर काकली को सुनकर भगवान् की मोहिनी मुरली-ध्वनि की कल्पना करना, फलो के परिमल का आघ्राण कर भगवान् की मादक सौरभ राशि के प्रति आकृष्ट होना, मृदु-मद समीरण-स्पर्श पाकर भगवान् के श्रीअंगों के स्पर्श के अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करना—इन्हीं मे है इंद्रियो की यथार्थ उपयोगिता। देवतागण असुरों को अतिक्रम करने की चेष्टा करते है, किंतु भोगासक्ति के हेतु इंद्रियाँ नैतिक पथ से भ्रष्ट हो जाती हैं। यह भोगासक्ति महान् पाप है, और पाप-स्पर्श के कारण इंद्रियाँ अनुचित कर्मो में प्रवृत्त होती है।

उपनिषदुक्त उपदेश का अनुसरण कर यह कहा जा सकता है कि साहित्य भी असुराक्रांत होकर भोगासक्ति-रूप पाप द्वारा स्पृष्ट हुआ है, जिसके कारण असत् साहित्य का आविर्भाव हुआ है। जैसे संसार के समस्त पदार्थ भगवान् के उद्देश्य में प्रयुक्त होने से सार्थक होते है, किंतु भोग के निमित्त प्रयुक्त होने से उनका अपव्यवहार होता है, वैसे ही यदि साहित्य भगवदनुमोदित पवित्र मार्ग का अनुसरण और दुर्नीति का वर्जन करे, तभी उसकी सार्थकता है। दुर्नीति-पूर्ण साहित्य से साहित्य का अपव्यवहार होता है, मानना चाहिए। सत्साहित्य मनुष्य के अंतःकरण को पवित्र करता है, और असत् साहित्य उसके मन को कलुषित कर भोगाभिमुखी बनाता और इंद्रिय-तृप्ति के लिये व्याकुल करता है।

आजकल शिल्प या कला के नाम से साहित्य मे घोर अनाचारो का प्रवेश हो रहा है। आधुनिक साहित्यिकगण कहते है कि कला ही साहित्य का प्राण है। जिसमे शिल्प-नैपुण्य है, वही अच्छा साहित्य है, और जिसमे इसका अभाव है, वह साहित्य नाम के अयोग्य है। यह उक्ति हमें अस्वीकृत नही, किंतु उनके इस कथन को कि साहित्य के उत्कर्ष-अपकर्ष के विचार मे सुनीति और दुर्नीति की आलोचना अप्रासंगिक है, हम एकाएक नही मान सकते। कला के नाम से हम दुर्नीति के पृष्ठ-पोषक नही हो सकते।

कला कैसी वस्तु है, इसकी विशद आलोचना यहाँ अनावश्यक है। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि किसी रस के वर्णन मे उसको ऐसे परिस्फुट करना चाहिए कि सहृदय पाठकों के मन अलौकिक आनंद से परिप्लुत हो जायँ। जो इस कार्य मे सफल होता है, उसे अवश्य ही मनोभावों का विश्लेषण तथा घटना-परंपरा के भीतर भावों के क्रमिक परिवर्तनों का युक्ति-पूर्ण चित्र अंकित करना पड़ता है। साहित्य इसी से चित्ताकर्षक होता है। किंतु आधुनिक पाठकगण इसके साथ इंद्रिय-तृप्ति-विषयक उपादानों के समावेश से उसमे अधिक कला पाते और उसे अधिक चित्ताकर्षक समझते है। साहित्य समाज की मनोवृत्तियों का मुकुर है। साहित्यिकगण पाठकों

की मनोवृत्तियों का अनुसरण कर, चित्ताकर्षक साहित्य की रचना कर प्रशसा पाते है। इस प्रकार से उत्साहित होकर अपनी आगे की रचनाओं मे विषोद्गमन करते जाते है।

क्या दुर्नीति का वर्जन कर उच्च कला नहीं दिखाई जा सकती? मेरे विचार मे जो सुनीति की सम्यक् रक्षा कर मानव-मन की गति और कार्यावली का विश्लेषण तथा क्रमिक परिवर्तनो का आलेख्य नही खीच सकता, वह उच्च साहित्यिक नाम के योग्य नही।

मानव-चित्त को आकृष्ट करने की शक्ति साहित्य में है। उस शक्ति के उचित उपयोग से ही समाज का कल्याण होता है। उच्च साहित्य के आदर्श उदाहरण है रामायण और महाभारत। ये ग्रंथ जैसे एक ओर चित्ताकर्षक है, वैसे दूसरी ओर सैकड़ो वर्ष से मानव-मन के ऊपर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य के सस्कारा को अकित करते आए है। क्या इनमे साहित्य के सद्व्यवहार का परिचय नहीं मिलता? क्या इनमे कला नहीं पाई जाती? क्या ये चित्ताकर्षक नहा है?

यशोधरा

[श्रीगुलाबराय एम्० ए०]

यदि एक शब्द में सब धर्मों का सार पूछा जाय, तो वह वाङ्मय का मुकुटमणि 'त्याग' है। त्याग ही में सृष्टि का उदय है, त्याग ही में ईश्वर की ईश्वरता है। लोकोपकारार्थ हलाहल पान और चिर सन्यास के ही कारण महादेव शिव हुए, सहारकर्ता से कल्याणकर्ता बने। अपने ऐश्वर्योत्सर्ग के ही कारण राम और कृष्ण जगद्वंदनीय हुए। हनूमान और भीष्म पितामह ने चिर-कौमार व्रत के प्रताप से भक्तों को भगवान् से बड़ा प्रमाणित किया। ईसा मसीह ने अपने प्राणों के बलिदान से ईश्वरत्व पाया। बुद्धदेव ने स्वयं अपनी इच्छा से राज्य-श्री और उससे बढ़कर दुस्त्यज नवप्रसूता पुत्रवती कांता की मुख-श्री से मुख मोड़ बुद्धत्व प्राप्त किया। जो त्याग और आत्मोत्सर्ग सब धर्मों का प्राण है, वही नारी-जीवन का जीवन-रस है। आत्मबलिदान ही भारतीय रमणियों का मूल्यवान् आभूषण है। सती-शिरोमणि सीता, सत्य-संधिनी सावित्री, साध्वी शैव्या, तपस्विनी शकुंतला, पतिप्राणा उर्मिला, दृढ़व्रता यशोधरा, सब एक से एक बढ़-बढ़कर त्याग और प्रेम की अनूठी प्रतिमाएँ हैं। त्याग ही भारतीय रमणियों के आंतरिक सौंदर्य की ज्योति को दीप्त रखता है। आत्मबलिदान ही नारी-जीवन का सर्वस्व है। देखिए, नारी-धर्म की दिव्य ज्योति की पुनीत वेदी पर अपनी सुरभित सुमनोंजलि समर्पित करते हुए कविवर मैथिलीशरणजी ने कैसे अमर वाक्य की रचना की है—

श्रीगुलाबराय एम्० ए०

अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल मे है दूध और आँखों मे पानी !

शायद यह आँखों का पानी मोती के पानी की भाँति नारी-रत्नों को दीप्ति प्रदान कर रहा है। नारी इसी दूध और पानी में अपना जीवन-रस बहा देती है। यदि दूध से मनुष्य-जाति की पुष्टि हुई, तो आँखों का पानी मनुष्य-हृदय की तुष्टि में सहायक हुआ।

इस सुधा को फीका करनेवाले दूध और पानी के बदले में मनुष्य ने क्या दिया? कभी-कभी कवियों ने इसका गुण-गान कर मानव-जाति का थोड़ा-बहुत ऋण चुकाया है, किंतु उर्मिला और यशोधरा के विषय मे कवियों की बड़ी उदासीनता रही है।

हर्ष की बात है कि कविवर मैथिलीशरणजी ने साकेत और यशोधरा द्वारा इस त्रुटि को पूरा कर दिया। यशोधरा के लिये उनके अनुज हिंदी-जगत् के धन्यवाद-भाजन हैं, जिन्होंने अपने अनुरोध से कवियों को विश्राम न लेने दिया, और उनकी प्रतिभा ने पयोधरा से यशोधरा की सुधा-धारा का दोहन कर लिया। अनुजों का उत्साह सदा ही अग्रजों में कृपा का संचार करता रहा है। मालूम नहीं, कहानी कहलाने में सियारामशरणजी का भी हठ राहुल का सा हठ है, जो विना कहानी सुने मा को विश्राम नहीं लेने देता।

नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो, चाहे पानी।
नहीं पिएगा बेटा, यदि तू, तो सुन चुका कहानी।
तू न कहेगी, तो कह लूँगा मैं अपनी मनमानी।

मुक्तक और प्रबंध काव्य

यद्यपि बिहारी आदि महाकवि मुक्तक काव्य लिखकर ही अमर हो गए हैं, तथापि मुक्तक में प्रसंगाभाव के कारण पाठकों को अपनी कल्पना पर अधिक ज़ोर डालना पड़ता है, और टीकाकारों को 'किसका वचन किससे' की मनमानी पूर्ति करनी पड़ती है। मुक्तक काव्य में लेखक की स्वतन्त्रता अवश्य है, परंतु पाठक को कभी-कभी कठिन मानसिक व्यायाम करना पड़ता है। प्रबंध काव्य में सब बात प्रसंग-बद्ध होने के कारण सहज में हृदयंगम हो जाती है। इसमें स्थितियों की कल्पना द्वारा मनोवैज्ञानिक सामग्री को समाविष्ट करने की अधिक संभावना रहती है। पूर्वापर का संबंध भी रहता है, और शाखा-चंक्रमण भी नहीं होने पाता। आजकल मुक्तक काव्य अधिक और प्रबंध काव्य कम होता है। इस कमी को भी मैथिली बाबू ने पूरा किया है। कवि के शब्दों में यशोधरा में सभी तरह के प्रबंधों की बानगी है। गीत, नाटक, गद्य और पद्य, तुकांत, अतुकांत, सभी कुछ है।

मंगलाचरण और महानिष्क्रमण

कवि ने मंगलाचरण में राम-भक्ति और देश-भक्ति का एक ही साथ परिचय दिया है, और अंत में अमिताभ शब्द को लाकर बुद्ध-धर्म का भी पुट दे दिया है।

राम, तुम्हारे इसी धाम में
नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ,
इसी देश में हमें जन्म दो,
लो प्रणाम हे नीरज-नाभ!
धन्य हमारा भूमि-भार भी,
जिससे तुम अवतार धरो;
भुक्ति मुक्ति माँगें क्या तुमसे,
हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ!

सब महापुरुषों के जीवन में परिवर्तन का कुछ-न-कुछ कारण होता है, और यह कारण प्रायः छोटा ही हुआ करता है। वास्तव में वह कारण छोटा नहीं होता। वह सामान्य दृष्टि के लोगों में छोटा होता, परंतु बड़े-बड़े आदमियों के लिये बड़ा होता है। बुद्धदेव वृद्ध पुरुष को देखकर सोचने लगते हैं कि क्या मनुष्य का यही परिणाम है। उनके वैराग्य में भी यशोधरा के प्रति प्रेम प्रकाशित होता है। देखिए—

देखी मैंने आज जरा!
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा?
हाय! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा?
सूख जायगा मेरा उपवन, जो है आज हरा?

जीवन के साथ जरा और जरा के साथ मरण लगा है। क्षणिक जीवन से क्या लाभ? देखिए—

मरने को जग जीता है!
रिसता है जो रंध्र-पूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।
कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मनचीता है?
खोजूँगा मैं उसको, जिसके
विना यहाँ सब तीता है।

इसीलिये वह सब भोगों को लात मारकर चलने का निश्चय कर लेते हैं। देखिए—

पड़ी रह तू मेरी भव-मुक्ति!
मुक्ति-हेतु जाता हूँ यह मैं मुक्ति, मुक्ति बस मुक्ति!
मेरा मानस-हंस सुनेगा और कौन-सी युक्ति?
मुक्ता-फल निर्द्वंद्व चुनेगा, चुन ले कोई शुक्ति।

एक बार निश्चय करके बुद्धदेव इधर-उधर मन नहीं भटकाते हैं। बस, उन्हें इतना संतोष है कि उनकी यशोधरा राहुल के पालन-पोषण में जीवन व्यतीत कर सकेगी। यशोधरा को आनंद मिल गया। वह भी अपने आनंद की खोज में जाते हैं।

अयि गोपे, तेरी गोद पूर्ण,
तू हास-विलास - विनोद-पूर्ण,
अब गौतम भी हो मोद-पूर्ण।

× × ×

जरा-कमज़ोरी आती है, किंतु उनको सार न प्राप्त करने का ध्यान आ जाता है, और यशोधरा को नहीं जगाते।

क्या तुझे जगाऊँ एक बार?
पर है अब भी अप्राप्त सार।
सो अभी स्वप्न ही तू निहार,
है शुभे, श्वेत के साथ श्याम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम!

यद्यपि कमजोरी दिखाना बुरा समझा जाता है, तथापि ऐसी कमज़ोरी का भी महत्त्व है। उसमें मानुषी भाव रहते हैं। श्रीरामचंद्रजी शुक्ल के बुद्धदेव में राजकुमार सिद्धार्थ की इस कमज़ोरी का बड़ा मधुर वर्णन है।

विमाता का विलाप

बुद्धदेव के चले जाने पर सभी ने विलाप किया है। किंतु उनकी विमाता महाप्रजावती का विलाप बड़ा मर्म-भेदी है। देखिए—

मैंने दूध पिलाकर पाला।
सोती छोड़ गया, पर मुझको वह मेरा मतवाला।

महाप्रजावती कहती है कि मरकर भी तो शांति न मिलेगी।

कह, मैं कैसे इसे सहूँगी?
मरकर भी क्या बची रहूँगी?
जीजी से क्या हाय! कहूँगी?

बुद्धदेव की माता प्रसव-काल में ही स्वर्गलोक पधार गई थीं। यदि महाप्रजावती मर जाती, तो स्वर्ग में बुद्धदेव की माता उलाहना देती। कैसी सुंदर उक्ति है। और देखिए—

जरा आ गई यह क्षण-भर में,
बैठी हूँ मैं आज डगर में!
लकड़ी तो ऐसे अवसर में
देता जा, ओ लाला!
मैंने दूध पिलाकर पाला।

यशोधरा का विलाप

गोपा के विलाप में करुणा है, किंतु उस करुणा में स्वार्थ नहीं। वह सिद्धार्थ की सिद्धि-प्राप्ति में बाधक नहीं होना चाहती थी। वह अपने स्वार्थ के लिये अपने पतिदेव का भावी यश कलुषित नहीं करना चाहती थी, उनके त्याग में भी गौरव था। देखिए—

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात;
पर चोरी-चोरी गए, यही बड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथबाधा ही पाते?

× × ×

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

बुद्ध-चरित्र में बुद्धदेव के वर्णन में गोपा विलीन हो जाती है। केवल आदि और अंत में उसका ज़िक्र आता है। यहाँ ऐसा नहीं है। उधर बुद्धदेव

बुद्धत्व-प्राप्ति की धुनि मे थे, तो इधर यशोधरा संन्यास-व्रत धारण किए अमूल्य थाती राहुल का पालन कर रही थी। वह विरहिणी थी, किंतु स्वाभिमान और निस्स्वार्थता के साथ। उसके मन मे विषाद था, पर धैर्य का अभाव न था। वह आशावादिनी थी।

विश्व-प्रेम के नाते मिलन की आशा

वह स्वार्थ-मूलक प्रेम को विश्व-प्रेम मे परिणत कर देती है। संसार-भर को प्यार करनेवाला उससे द्वेष नहीं कर सकता। यहाँ पर प्रेम मे ईर्षा की कालिमा नहीं रहती।

भौतिक प्रेम मे जो अपने प्रेम-पात्र के व्रत से दूसरे के बहिष्कार की प्रवृत्ति रहती है, वह उसमे नहीं है। वह उनको चाहती है, वह चाहे जिस भाव से आवे।

गोपा व्रज की गोपिकाओं की भाँति पति-पत्नी-भाव की ही उपासिका न थी। उससे यदि केशों में धूल रमा लेने को कहा जाता, तो सहर्ष रमा लेती। उसने काषाय वस्त्रो को तो अपना ही लिया था। उसने विरहिणी का एक वेश भी नहीं धारण किया, वरन् उससे भी कुछ अधिक किया। उसने क़ैंची से बालों को ही बिदा कर दिया।

जाओ मेरे सिर के बाल!
अलि, कर्तरी ला, मैने क्या पाले काले व्याल ?

उसके लिये शृंगार और संन्यास बराबर था, किंतु वह संन्यास यदि हो, तो बुद्धदेव की शरण में आने के अर्थ। राजकुमार सिद्धार्थ की अभिलाषिणी न थी, सिद्धार्थ की सिद्धि चाहती थी। वह विश्व-प्रेम के नाते पूछती है—

अपना कर संपूर्ण सृष्टि को मुझे न अपनाओगे ?
नाथ तुम ?
उसमे मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।

यशोधरा का धैर्य

यशोधरा का धैर्य शुद्धोदन को भी आश्चर्य-चकित कर देता है। वह स्त्री होकर पुरुषों से बढ़ जाती है।

शुद्धोदन—
धीरा है यशोधरे तू, धैर्य कैसे मै धरूँ ?
तू ही बता, उसके लिये मै आज क्या करूँ ?

यशोधरा—
उनकी सफलता मनाओ तात, मन से ;
सिद्धि-लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से।

वह धर्म के कारण शुद्धोदन की खोज करने के प्रस्ताव पर भी तिरस्कार कर देती है। उसका कोमल हृदय कठोर बन गया था। लेकिन धर्म के लिये—

तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ है ;
खोज हम लावें उन्हे, क्या वे असमर्थ है।

मुक्ति की खोज में नारीत्व का आदर

यद्यपि वह उनकी अमृत की खोज से संतुष्ट है, तथापि वह रोए विना नहीं रहती। वह रोती है, और उसे अपने रोने का गौरव है। मुक्ति के वरने मे भी वह नारीत्व का आदर देखती है। वह उनको बता देती है कि नारी-मात्र हेय नहीं है। मुक्ति भी स्त्रीलिंग है। देखिए, क्या ही मधुर उपालंभ है ?

है नारीत्व मुक्ति मे भी तो ओ वैराग्य-विहारी !
आर्य-पुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।

× × ×

जाओ नाथ ! अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी ;
चेरी ही मै बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।

भक्त का भरोसा

उसके पानी मे पतिव्रत का अमृत है, उसे उसका ही अभिमान है। यशोधरा को अपनी भक्ति का भरोसा है। वह निर्दोष है, उसे आत्मविश्वास है। वह उनको नहीं खोजने जावेगी, वरन् बुद्धदेव ही अमृतत्व प्राप्त कर उससे मिलने आवेंगे।

भक्त नही जाते कही, आते है भगवान ;
यशोधरा के अर्थ है अब भी यह अभिमान।

यह अभिमान यशोधरा का ही नहीं है, वरन् भक्त-मात्र का यह अभिमान और दृढ़ विश्वास रहता है कि भगवान् आकर उद्धार करेंगे। इतना ही नहीं, वह खोज को ही नहीं जावेगी, वरन् स्वागत को भी नहीं जावेगी। बिदा नहीं माँगी, तो स्वागत कैसा? स्वागत न करने का भार उसके ऊपर नहीं, वरन् स्वयं बुद्धदेव पर ही है।

बिदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है;
हंत! अंत मे यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है।

गोपा के मान का समर्थन

क्या यह मान है? नहीं, आगे चलकर देखिए। स्वागत को न जाना उदासीनता नहीं थी, वरन् बुद्धदेव के व्रत और संकल्प की पुष्टि थी। यह प्रश्न स्वयं कवि ने ही प्रजावती के मुख से कहलवाया है।

बुद्धदेव के कौशलराज मे आने पर सब लोग स्वागत को जाते है। बुद्धदेव के माता-पिता यशोधरा को ले जाना चाहते हैं, किंतु वह स्वयं बुद्धदेव का निर्देश चाहती है। इस पर महाप्रजावती कहती है। देखिए—

गोपे, हम अबलाजनो के लिए इतना
तेज—नही, दर्प—नही, साहस क्या ठीक है?
स्वामी के समीप हमे जाने से स्वयं वही
रोक नही सकते है, स्वत्व आप अपना
त्यागकर बोल, भला तू क्या पायगी बहू?

यशोधरा उत्तर देती है—

उनका अभीष्ट मात्र! और कुछ भी नही।
हाय अम्ब! आप मुझे छोड़कर वे गए,

स्वयं जाने के लिये उसे इनकार नहीं, वरन् उनके आदेश पर जाना चाहती थी। उसको उनका व्रत उनसे भी प्यारा था। उसके मन में शंका थी कि जिस कमज़ोरी के कारण उन्होने उससे जगाकर बिदा न ली, उस कमज़ोरी को वह स्वयं न उपस्थित कर दे। इसीलिये उसका समय न था। यदि यह बंधन होता, तो क्या करती। देखिए—

जाने नही पाती! यदि पाती तो कभी यहाँ
बैठी रहती मै? छान डालती धरित्री को।
सिंहनी-सी काननों मे, योगिनी-सी शैलों में,
शफरी-सी जल मे, विहंगिनी-सी व्योम में
जाती तभी और उन्हे खोज कर लाती मै।

यह बात नहीं है कि उसके हृदय न था। उसका हृदय पिघल-पिघलकर आँसू निकालता था, उसमे प्रेम था, मिलन की आकांक्षा थी। वह मन पर शासन करती थी, किंतु उस शासन का भार रोकर हलका करती थी।

यह जन शासक न होता मन का यहाँ,
तात! तो चला न जाता, धन उसका जहाँ।
भार रखती हूँ उस शासन का जब मै,
हलकी न होऊँ नेक रोकर भी तब मै।

× × ×

दुःख का महत्त्व

दुःख को उसने पूर्णतया अपना लिया था। वह दुःख को छोड़ना नहीं चाहती थी। वह राहुल से कहती है—

त्राण मिलता है मुझे तात! निज पीड़ा में;
प्राण मिलता है जैसे तुझे मल्ल-क्रीड़ा मे।
दुख से भी जाऊँ, मुझे उससे है ममता,
बढ़ती है जिससे सहानुभूति समता।

दुःख का इसीलिये आदर है कि उससे सहानुभूति का भाव बढ़ता है, हृदय कोमल हो जाता है। और, दु.ख मे बड़े भी छोटे के समान हो जाते है। वह दृढ़ व्रत धारण करती हुई अपनी मिलन-वासना को छिपा नहीं सकती। जब बुद्ध का संवाद तो मिल गया, पर उनके आने में देर हुई, तो क्या ही सुंदर शब्दों में वह अपना भाव कहती है—

आली, पुरवाई आई, पर वह घटा न छाई;
खोल चंचुपुट चातक तूने भी ग्रीवा वृथा उठाई।

गोपा की परीक्षा

लेकिन इतना होते हुए भी वह अपना समय और व्रत पूरा रखती है।

रे मन, आज परीक्षा तेरी !
बिनती करती हूँ मैं तुमसे
बात न बिगड़े मेरी।
अब तक जो तेरा निग्रह था,
बस अभाव के कारण वह था,
लोभ न था जब लाभ न यह था,
सुन अब स्वागत-भेरी !
रे मन, आज परीक्षा तेरी !

वह इस कठिन परीक्षा मे उत्तीर्ण हुई। ठीक ही कहा है—"विकारहेतौ सति न विक्रियन्ते येषां चेतांसि त एव धीराः।" धीर वे ही है, जिनका चित्त विकार के हेतु उपस्थित होने पर भी विकार को नहीं प्राप्त होता। उसने इस कठिन परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर ससार को बतला दिया कि पुरुषों मे ही त्याग नहीं, स्त्रियों मे भी है। उस स्वागत-भेरी पर विजय पाना सहज कार्य न था। जब तक बुद्धदेव आए नहीं थे, तब तक मजबूरी का त्याग था, किंतु उनके आ जाने पर न जाना वास्तविक संयम था। उसने दिखा दिया कि वह वास्तव में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध की पत्नी होने योग्य थी।

गोपा की विजय

गोपा ने विजय पा ली। उसकी विजय नारी-जीवन की विजय है, किंतु लोग कहेंगे कि प्रेम की हार ही विजय होती है। हाँ, वह शायद हारने को भी तैयार हो जाती, किंतु उसको यह गौरव न मिलता कि त्यागी होकर भी भगवान् ने उसकी टेक रक्खी। श्रीकृष्ण भगवान् ने भी भीष्म पितामह की टेक रखकर अपना नाम रथांगपाणि रखवाया था। हार मानने मे यशोधरा को गौरव था। यशोधरा की टेक रखने में भगवान् बुद्ध का गौरव था। उसने अपना गौरव न रखकर भगवान् का गौरव रक्खा, इसमे भी त्याग था। भगवान् सबके होकर भी उसके ही थे।

मेरे नाथ, रहे तुम नर से नारायण होकर ही !

इसमे त्याग के साथ कितनी ममता है। स्वार्थ और परार्थ का कैसा अपूर्व सम्मिश्रण है। जब बुद्धदेव आ जाते है, वह उनके चरणों में आत्म-समर्पण करती हुई उनका प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के साथ स्वागत करती है।

उस स्वागत मे सारा मान-अभिमान, सारे उपालंभ विलीन हो जाते है। स्वयं विजयिनी होकर वह विजय का श्रेय पतिदेव को ही देती है। वह हारकर स्वय विजयिनी नहीं बनना चाहती थी। प्रेम की हार-रूपी विजय का गौरव वह अपने आराध्य देव को ही देना चाहती थी। देखिए—

पधारो भव-भव के भगवान
रख ली मेरी लज्जा तुमने, आओ अत्र भवान ;
नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी,
अपनाई मुझ-सी लघु नारी
होकर महा महान।
पधारो भव-भव के भगवान।

बुद्धदेव द्वारा नारी-जाति की प्रशंसा

बुद्धदेव ने अपने उत्तर में त्यागी होकर भी नारी-जाति को गौरव दिया। जो जाति यशोधरा-से रत्न उत्पन्न कर सकती है, उसको क्यो न गौरव दिया जाय।

दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नही नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से,
क्षीण हुआ वन मे क्षुधा से मै विशेष जब,
मुझको बचाया मातृ-जाति ने ही खीर से।
आया जब मार मुझे मारने को वार-वार
अप्सरा-अनीकिनी सजाए हेम-हीर से।
तुम तो यहाँ थी, धीर ध्यान ही तुम्हारा वहाँ
जूझा, मुझे पीछे कर, पचशर वीर से।

बुद्धदेव को दान

बुद्धदेव भिक्षुक बनकर आए थे, उनको देती क्या, आत्मसमर्पण कर ही चुकी थी। उसने अपना अमूल्य रत्न राहुल ही उनकी भेट कर दिया। उसी के साथ राहुल को पैतृक दाय भी मिल गई।

तुम भिक्षुक बनकर आए थे,
गोपा क्या देती स्वामी ?
था अनुरूप एक राहुल ही,
रहे सदा यह अनुगामी।
मेरे दुख मे भरा विश्व - सुख
क्यों न भरूँ फिर मै हामी;
बुद्ध शरणं, धर्म शरणं,
संघशरणं गच्छामि।

राहुल

यह पवित्र प्रेम, त्याग और आत्मसमर्पण की कहानी यहाँ समाप्त होती है। इसमें परम पुनीत करुणा का ही विस्तार है। कहीं-कहीं राहुल का हठ और बाल्य चापल्य तथा उत्साह ही इस करुणा की धारा में एक वात्सल्य की धारा मिलाकर करुणा के बाँध को टूटने से बचा लेता है। यशोधरा के धैर्य और आशा से भी अधिक राहुल का प्रेम उसके जीवन धारण करने में सहायक होता है। उसके रोने मे यही हँसी और गाने का कारण है।

यह छोटा-सा छौना;
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल,
क्या ही मधुर सलौना।
क्यों न हँसूँ, रोऊँ, गाऊँ मै,
लगा मुझे यह टौना;
आर्य-पुत्र, आओ तुम सचमुच,
मै दूँगी चंद्र - खिलौना।

आर्य-पुत्र आए भी, और उन्होंने चद्र-खिलौना पाया भी। उसका कहानी के लिये हठ बडा ही मधुर है—

मा, कह एक कहानी।
बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी।
कहती है मुझसे यह चेरी,
तू मेरी नानी की बेटी।
कह मा, लेटी-ही-लेटी,
राजा था या रानी।
कह मा, एक कहानी।

बालक बड़ा होकर मिलन के लिये अधीर हो जाता है। उसका उत्साह सच्चे वीर बालक के योग्य है। देखिए, बालक अपने उत्साह मे एक साथ कवि और वैज्ञानिक बन जाता है। बेतार के तार का मूल-सिद्धांत कह जाता है।

राहुल—
अंब, मेरी बात तुझ तक जाती है?
यशोधरा—
बेटा, वह वायु पर बैठकर उड़ जाती है।
राहुल—
होंगे जहाँ तात, क्या न होगा वायु मा, वहाँ?
यशोधरा—
बेटा, जगत-प्राण वायु व्यापक नहीं कहाँ?
राहुल—
क्यो अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं?
यशोधरा—
निज ध्वनि फैलकर लीन होती यहीं।

पुस्तक में बहुत-सी बातें उल्लेखनीय हैं। उसमे भावो की नवीनता, सरलता और प्रबलता मन पर अच्छा प्रभाव डालती है। नारी-जाति के लिये श्रद्धा उत्पन्न होती है। हम एक धार्मिक संतोष के साथ पुस्तक का अंत करते है। वैराग्य में संयोग होकर सुखांत नाटक बन जाता है, और भारत के नाटकीय नियमों का निर्वाह हो जाता है।

बच्चों का व्यवसाय

(पाश्चात्य देशों की सभ्यता का एक कलंक)

[श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०]

जिन माता-पिता के बच्चे नहीं होते, वे बच्चों के लिये तरसा करते है, और जिनके होते है, उनमे से अधिकांश संतान को जीवन का पाप और क्लेश का कारण समझकर उससे छुटकारा पाना चाहते है। ऐसे स्वार्थी और कुप्रवृत्तिवाले माता-पिता विदेशों में ज़ोरों से प्रचलित बच्चों के व्यवसाय मे सहायक बनते है। जाँच करने पर यह पता चला है कि विदेशो मे लोग बच्चों से छुटकारा पाने के लिये उसे दूसरों के हाथ सौंप देते और साथ ही धन भी देते है। इसी धन के लोभ से क़ानून की अवहेलना करते हुए भी बच्चों का व्यवसाय दिन-पर-दिन ज़ोर पकड़ता जा रहा है।

श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०

एक अवसर पर एक स्त्री ने, जिसके पास तीन हृष्ट-पुष्ट बच्चे थे, चौथे बच्चे को पालने के लिये एक दंपति से माँगा। जब उससे पूछा गया कि इस चौथे बच्चे को लेकर वह क्या करेगी, तो उसने उत्तर दिया—"कुछ नहीं, मुझे बच्चो से प्रेम है। मै इसे भी पालूँगी।" वास्तविक बात और ही थी, जो एक दिन इस चौथे बच्चे पर बीती। यह स्त्री अपने बच्चों को लाड-प्यार से रखती थी, लेकिन अभागे पालित बच्चे को अपने सुख और आमदनी का कारण समझती थी। चार वर्ष में उसने उस अभागे बच्चे से इतना काम लिया कि वह रोगी हो गया। अंत मे जब पुलिस-वाले उसे बचाने आए, उस समय वह अभागा अस्थि-पिंजर-मात्र रह गया था। क्रूर स्त्री उसे नियमित रूप से नित्य पीटा करती और भूखो मारती थी।

दूसरा उदाहरण एक और स्त्री का है, जिसने तीन वर्ष में ग्यारह बच्चे पाले, और चार मार डाले। चारो बच्चे जब आए थे, तब उनके नाम और थे, परंतु जब मरे, तब पैदायश व मौत के सरकारी रजिस्टर

में उनके नाम और ही लिखा दिए गए। स्त्री पर फ़ौजदारी का कोई अभियोग नहीं चलाया गया। एक दिन दो वर्ष से भी कम उमर के एक बच्चे को निर्दयता से पीटने के अपराध मे वह पकड़कर अदालत मे लाई गई, और चार महीने की क़ैद की सज़ा मिली, लेकिन सरकार की ओर से उसके इस घृणित व्यवसाय को रोकने का कोई प्रयत्न नही हुआ, यद्यपि यह साबित हो चुका था कि वह रुपया लेकर बच्चो को पालती है। कुछ दिनों बाद यह स्त्री जेल से छूटी, और उसने पुनः अपना पुराना पेशा अख़्तियार कर लिया। कानून ने उसके कार्य मे कभी हस्तक्षेप नहीं किया।

अधिकतर यह व्यवसाय विलायत के पत्रों मे विज्ञापनों द्वारा चलाया जाता है। मान लीजिए, किसी अविवाहिता नवयुवती के बच्चा पैदा हुआ, और वह अपने स्वार्थ तथा सुख के विचार से माता का कार्य करने मे असमर्थ है। वह बच्चे को पालने के लिये तीस पौड से लगाकर तीन सौ पौड तक रुपया खर्च कर सकती है। वह तुरंत इसी आशय का विज्ञापन किसी दैनिक या साप्ताहिक पत्र मे दे देगी। सौदा पट जायगा, बच्चे से उसे छुटकारा मिल जायगा। लेकिन वह रुपया, जो उसने बच्चे के खर्च के लिये दिया है, पालनेवाले के निजी खर्च मे लाया जायगा, जिसका उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता। कानून यह कहता है कि बच्चे पर निर्दयता करनेवाली स्त्री को दूसरा बच्चा पालने की आज्ञा नहीं है। परंतु क्या यह कानून कभी व्यवहार मे लाया जाता है?

एक बार एक स्त्री, जो बच्चा पालने का कार्य करती थी, पकड़ी गई, तो उसके यहाँ से बच्चो के तीन सौ नए-पुराने कपड़े बरामद हुए। इस घृणित व्यवसाय मे उसकी सफलता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है। एक दूसरी स्त्री ने बारह वर्षों मे चौबीस बच्चे पाले, जिनमे से छ मर गए। उसने चार बार विवाह किया। बच्चो पर दुर्व्यवहार करने के कारण छ बच्चों को उनके माता-पिता वापस ले गए, और शेष छ बच्चे सरकारी समिति ने, उस स्त्री की निर्दयता के कारण, उससे छीन लिए। उसको जो सजा दी गई, वह इतनी कम थी कि छूटने के बाद उसने फिर यह व्यवसाय चालू कर दिया।

तीसरा उदाहरण एक नानबाई का है, जिसने एक बच्चे को पाला था। स्त्री-पुरुष दोनो उस बच्चे से दिन-भर काम कराते, और उसे गरम किए हुए लोहे के चिमटे से दागते थे। बेचारा एक-एक कौर रोटी के लिये तरसा करता था। रिपोर्ट मिलने पर दोनो से एक वर्ष तक अच्छा चाल-चलन रखने के लिए मुचलके ले लिए गए। लेकिन क्या यह दंड पर्याप्त था?

सचमुच कानून इसकी कोई रोक नहीं रखता। और, यही कारण है कि यह व्यवसाय दिनोंदिन उन्नति पर है। क्या हम इसे विदेशी सभ्यता का कलंक मान सकते है?

सत्य और मिथ्या

[महाकवि श्रीसुमित्रानंदन पंत]

मिथ्या ने की नित्य नई कल्पना-जल्पना,
बहुत बनाना चाहा उसने जग में अपना।
सत्य रहा नित मूक, न था उसको कुछ कहना,
मिथ्या का मिथ्यापन था मिथ्या को सहना।
जिसने पाया भेद, कहा—"मिथ्या है सपना!"
सत्य मौन ही रहा, उसी का स्वप्न था बना।

चित्रों पर कविता

[श्रीयुत प० अवध उपाध्याय]

इस बात को सभ्य-संसार अब मुक्त कठ से स्वीकार करने लगा है कि चित्र-कला और काव्य-कला मे बड़ा घनिष्ठ संबध है। किसी-किसी का तो विचार है कि एक को समझना दूसरे को समझना है। इसमे तो लेश-मात्र भी सदेह नही कि दोनो ही ललित कला के भीतर आते है। इन दोनो मे क्या सबध है, तथा इनमे क्या समानताएँ और क्या विषमताएँ है, आदि बड़े महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। परंतु इस लेख मे इन सब प्रश्नो के बारे मे बिल्कुल विचार नही किया जायगा, क्योकि इस संबंध मे मै दूसरी जगह एक स्वतंत्र लेख लिख रहा हूँ। इस लेख में तो केवल इस प्रश्न पर विचार किया जायगा कि हिंदी मे चित्रों पर जो कविताएँ की जाती है, अथवा कविताओं पर जो चित्र बनते है, वे कहाँ तक सार्थक और कहाँ तक निरर्थक है।

श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय

यह बात प्रायः देखने में आती है कि कभी-कभी किसी चित्र पर कुछ लोग ऐसी कविता गढ़ डालते है, जिसका चित्र से कोई संबंध ही नही रहता। ऐसी दशा मे, वास्तव मे, ऐसे लोग अपनी काव्य तथा चित्र-सबधी अनभिज्ञता ही प्रकट करते है। जो लोग चित्र की

बारीकियों को नही समझते, उन्हे चित्रो पर कभी कविता करनी ही न चाहिए। कुछ लोग तो चित्रो पर कुछ भी लिख मारना चाहते है, और अपनी ओर से बहुत बातो को जोड लेते है। हिंदी मे चित्रों पर बहुत आदमी कविता लिखते है, और कुछ कविता पर चित्र बनाते है।

'माधुरी' मे 'मीरा की मलार'-नामक एक चित्र प्रकाशित हुआ है। चित्रकार है श्रीरामनाथ गोस्वामी। चित्र वास्तव मे परम सुदर है, देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। रगो का प्रयोग बहुत ही उपयुक्त है। सौंदर्य की दृष्टि से यह चित्र उन इने-गिने चित्रो मे कहा जा सकता है, जो वास्तव मे हिंदी मे गौरव की वस्तु है। मीरा के शरीर की गठन परम प्रशसनीय है। जिन अच्छी बातो का किसी आदर्श चित्र मे समावेश होना चाहिए, वे सब उसमे वर्तमान है। केवल दोनो ओठो के बीच का भाग कुछ बढ़-सा गया है। परतु इस चित्र की सुदरता मे कुछ अतर नहीं पड़ सकता। मीरा के सामने किसी मनुष्य के शरीर के सब अवयव बिखरे पड़े है, कही उसका सिर पड़ा है, तो कही हड्डियाँ पड़ी है, कहीं हाथ है, तो कही पैर। मीरा इनकी ओर बड़े ध्यान से देख रही है। चित्र के देखने से पता चलता है कि मीरा कह रही है— "यदि शरीर के ये भाग अलग-अलग न होते, तो मै अवश्य इस पुरुष को जिला लेती।"

उस चित्र के नीचे निम्न-लिखित कविता है—

मास-सहित होतो जु तन, लेती अवसि जिवाय ,
मीरा राग-मलार - बल हाड़न पै न बिसाय।

इन सब बातो से स्पष्ट है कि चित्र के अनुकूल कविता है और कविता के अनुकूल चित्र, दोनो मे समानता है। अतएव यदि कवि ने चित्र के अनुकूल कविता बनाई हो, तो वह सार्थक है, और यदि चित्रकार ने कविता के अनुकूल चित्र बनाया हो, तो वह भी सार्थक है। अतएव इसके सबध मे यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि कवि और चित्रकार दोनो अपने प्रयत्न मे सफल हुए है। अस्तु।

'भूपति' का यह दोहा है—

कच-सिवार, पंकज-नयन, राजति भुजा विशाल ,
पावत पार न मीन-मन सरस रूप को ताल।

इसी दोहे पर प्रो० ईश्वरीप्रसाद वर्मा का चित्र है। वास्तव मे चित्र बडा सुदर है। चित्रकार ने 'राजति भुजा विशाल' को चित्र मे खूब अच्छी तरह दिखलाया है। एक भुजा कुछ दूर पर दिखलाई गई है, जिससे दोहे का भाव चित्र मे अच्छी तरह आ गया है।

श्रीविष्णुनारायण भार्गव की चित्रशाला का एक चित्र माधुरी मे छपा है। इसमें श्रीकृष्ण मुरली बजा रहे है, और नीचे खडे है। ऊपर एक खिड़की है। उसी खिडकी से राधिकाजी श्रीकृष्ण को देखती है, और तब श्रीकृष्ण भी राधिका की ओर देखते है। अब दोनो एक दूसरे को प्रेम-पूर्वक देखने लगते है। वास्तव मे यह चित्र अत्यत सुदर है। आकार-प्रकार तथा रूप-रेखा मनोहर है। रगो का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया गया है।

कुशल चित्रकार की कूँची की सफाई प्रत्येक

स्थान पर झलक रही है। चित्रकार का नाम नहीं दिया गया है। परतु मै यह बात निःसंकोच भाव से कह सकता हूँ कि इसका बनानेवाला एक अत्यंत ही अधिक चतुर चित्रकार अवश्य रहा होगा। चित्र के नीचे यह दोहा लिखा है—

खिरकी सों राधा तक्यो, ठाढ़े नंदकिसोर ;
मिले दुहूँ के दृग झमकि, भए सनेह-विभोर।

वास्तव मे यह दोहा सर्वथा चित्र के अनुकूल ही बना है, और चित्र भी दोहे के अनुकूल बना है। इसमे कवि और चित्रकार दोनो को सफलता मिली है।

माधुरी मे विरह-विह्वला-नामक एक चित्र छपा है। वास्तव मे चित्र भाव-पूर्ण है। चित्र देखने से पता चलता है कि नायिका किसी के विरह में तड़प रही है, और रोना ही चाहती है। इसी चित्र पर श्रीदुलारेलालजी भार्गव का निम्न-लिखित दोहा है—

तचैं बिरह-रवि मन-जलधि, उठ्यौ बिकलता-मेह ,
नयन-गगन उमड़यौ घुमडि, बरसन चहत अछेह।

यह दोहा चित्र के सर्वथा अनुकूल है, इसलिये यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि कवि और चित्रकार दोनो को सफलता मिली है।

उमर खैयाम की निम्न-लिखित एक रुबाई है—

अये प्रिये, यह प्याला भर दो, जमने दो तुम इसका रंग,
करता है जो वर्तमान में भूत-भविष्य-भावना भग।
आगामी कल की चर्चा क्यो? आगामी कल तो सहसा,
हो सकता हूँ मै गत कल की सत्तर शताब्दियों के संग।

यह अनुवाद श्रीमैथिलीशरणजी का किया हुआ है। इसी रुबाई का पं० केशवप्रसादजी पाठक का किया हुआ अनुवाद यह है—

आशंका, अनुशोक आदि हर
करती है जो 'आज' विशद ;
मेरी इस मधु की प्याली में
मधुवाले ! आ भर दे मद।
'कल' कैसा कल ! क्योंकर कल को
तू ही कह मैं अपनाऊँ ;
संभव है, कल तक गत कल की
शताब्दियों में मिल जाऊँ।

इसी पद के भाव के अनुकूल श्रीरामप्रसादजी ने एक चित्र बनाया है। यह चित्र वास्तव में अत्यंत ही अधिक सुंदर है। इसकी प्रशंसा मै दूसरी जगह कर चुका हूँ। परंतु चित्र का जो भाव है, वह कविता के भाव के सर्वथा अनुकूल नहीं है। चित्र देखने से पता चलता है कि वह किसी प्रेमी और प्रेमिका का चित्र है। वास्तव मे कविता मे भी 'प्रिये'-शब्द आया है। इसी से उसके भाव के समझने मे धोका हो गया है। वास्तव मे उमर खैयाम ने उस अमृत-तत्त्व की ओर संकेत किया है, जिसके पीने से भूतकाल की सब व्याधाएँ टल जाती है, भविष्य की कोई चिंता नहीं रह जाती, और आदमी का अमर-तत्त्व से सयोग हो जाता है। यदि उस चित्र में नायिका का चित्र अपेक्षाकृत ऊपर तथा नायक से दूर होता, तो वह भाव उसमे आ जाता। और सब तो ठीक ही है, प्याली भी है, मद माँग भी रहा है, नायिका के पास अमृत-घट भी है, परंतु प्रार्थना का भाव चित्र में नहीं आने पाया

है। तथापि और सब कविता के भाव चित्र मे आ गए है। इसलिये एक प्रकार से चित्रकार को सफलता मिल गई है। यही चित्र 'माधुरी' मे ज्यों-का-त्यों उतारकर प्रकाशित किया गया है। मैने पहले तो समझा कि कदाचित् यह दूसरा चित्र हो। तदनंतर मैने दोनो को एक स्थान पर रखकर अच्छी तरह से मिलाया। उसके बाद मुझे विश्वास हो गया कि या तो प्रकाश-पुस्तकालय के चित्र से माधुरी ने उड़ाया है, अथवा माधुरी से प्रकाश-पुस्तकालय ने उस चित्र को ले लिया है। जो हो, मै इस उडाने के संबध मे कुछ नही कहना चाहता, परंतु 'माधुरी' के चित्र के नीचे निम्न-लिखित कविता दी गई है—

जानी, तेरा मुख-चंद्र लखे
लेता है हिमकर ताब कहीं,
दिल मे आदर्श मलीन हुआ,
फिरता है कंज ख़राब कहीं।
क्या ताकत पडी फ़िरिश्तों की,
जो आगे करे जवाब कहीं;
जब बेनक़ाब हो तू दिलबर!
अरु रोशन हो महताब कहीं।

यह 'शीतल' कवि की कविता है, परतु चित्र के सर्वथा विरुद्ध है। पता नहीं, उस चित्र के नीचे यह कविता किसने लिख मारी। इसमे लेश-मात्र भी सदेह नही कि जिसने उक्त चित्र के नीचे यह कविता लिखी है, वह न तो चित्र-कला के सबध ही मे कुछ जानता है और न कविता के विषय मे ही। उक्त उदाहरण इस बात का ज्वलत प्रमाण है कि आजकल कुछ आदमी, जो चित्रो तथा कविताओं का संबंध स्थिर करते है, कभी-कभी भयंकर भूल कर बैठते है। और, इस बात को अच्छी तरह सिद्ध कर देते है कि वे न तो चित्र-कला के सबध मे कुछ जानते है, न कविता का ज्ञान रखते है।

अपराध-स्वीकरण

[श्रीसत्यजीवन वर्मा एम्० ए०]

तो क्या आप समझते है, जो घटना सन् १८६० मे घटित हुई, वह अब भी उल्लेखनीय है? अच्छी बात है। मै सारी कथा कहने को राजी हूँ, पर शर्त यह है कि यह सारा रहस्य मेरी मृत्यु के पूर्व खुलने न पाए। आपको देर तक प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी—अधिक-से-अधिक एक सप्ताह। मेरी मृत्यु निश्चय है।

मै अपनी सारी जीवन-कहानी सुनाता, जिसमें अनेक मनोरंजक घटनाएँ हुई है, परंतु उसके लिये समय, साहस और अधिक लिखने की सामग्री की आवश्यकता होगी। माना, आपके पास लिखने की सामग्री काफ़ी है, परंतु मेरा साहस ठंडा-सा हो रहा है। रहा समय, जो मेरे जीवन में शेष है, बुझते हुए दीपक के जीवन की शेष घड़ियों के समान है।

कल फिर सूर्यदेव दर्शन देंगे, उस विराट् राक्षस की भाँति, जिसका रहस्य मानव-जीवन की तरह अगम्य और अभेद्य है। प्रिय बंधु, नमस्कार। अंतिम प्रणाम। इसे पढ़ना, और मेरे प्रति मन मे कोई बुरी भावना न आने देना। यदि कुछ अनुचित जँचे, तो मुझे उसके लिये क्षमा करना। और, मेरे कथन में कहीं बुराई की गंध हो, तो उसमे गुलाब का सौरभ न पाकर अधिक शिकायत न करना। आपने मुझे मनुष्य की कहानी लिखने की आज्ञा दी थी, वही सामने उपस्थित है। आप मुझसे साम्राज्य पाने की अभिलाषा न रक्खें, और न मै आपको अलभ्य वस्तुएँ ही प्रदान कर सकता हूँ। हाँ, यदि आप चाहें, तो मै मृत्यूपरांत आपके नाम अपने जूते दान-पत्र मे लिख जाऊँ। इसके अतिरिक्त मै आपको कुछ नहीं दे सकता।

श्रीसत्यजीवन वर्मा एम्० ए०

आप जानते है, यह सन् १८६० की बात है। उसके पूर्व, अगस्त-मास के लगभग, अपनी आयु के ४२वे वर्ष मे मै धर्म-शास्त्र के अध्ययन का अनुरागी बन गया। बात यह थी कि मैने अपने कॉलेज के साथी निकथिरा के पुरोहित के धर्मशास्त्र-संबंधी निबंधों की नकल करने का काम ले लिया। उसने मेरे लिये

अपने यहाँ खाने और रहने का प्रबंध कर दिया। १८९९ के उसी अगस्त मास में उसके पास प्रांत के अंतरंगप्रदेशीय किसी नगर के पुरोहित ने एक पत्र भेजा, जिसमें उसने एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता प्रकट की, जो कर्नल फेलिस्बर्ट की अर्दली का काम कर सके। सेवा के बदले पुरस्कार में अच्छी तनख़्वाह देने की बात भी उसने लिखी थी। मित्र पुरोहित की राय हुई कि मैं उस स्थान को स्वीकार कर लूँ। मैं भी नकल करने के काम से ऊब गया था, अतः मैंने सहर्ष प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मैंने वहाँ से चलकर, राजधानी में रहनेवाले अपने एक भाई से मिलकर नियत स्थान के लिये प्रस्थान किया।

वहाँ पहुँचकर मैंने कर्नल के बारे में बहुत-सी शिकायतें सुनीं। लोगों के कथन का सारांश यह था कि कर्नल बद मिज़ाज, सख्त और कसकर काम लेनेवाला आदमी है। शायद ही कोई आदमी उसके पास टिक सके। उसके मित्र तक उसके पास फटकने की हिम्मत नहीं करते थे। उसने दवाइयों से अधिक नौकर बदले थे। कहते थे, उसने दो नौकरों का सिर तोड़ दिया था। मैंने यह सब सुनकर केवल यही उत्तर दिया—"मुझे स्वस्थ लोगों का डर नहीं रहता, तो बीमारों से मैं क्यों डरने लगा।" इसलिये पहले पुरोहित से मैं मिला। उसने भी सारी शिकायतों की पुष्टि की, पर साथ ही उसने सहिष्णुता और दया-भाव से काम लेने की सलाह भी दी। मैं कर्नल के आवास की ओर चला।

कर्नल मुझे अपने बरामदे में कुर्सी पर लेटा हुआ मिला। वह बड़े दुख में था। उसने अच्छी तरह मेरा स्वागत किया। पहले उसने चुपचाप मुझे सिर से पैर तक देखा, अपनी भेड़िया को-सी आँखों से घूरता हुआ। फिर उसके मुख पर ऐसी दुष्ट मुस्किराहट दौड़ी, जो मुझे खल उठी। अंत में उसने कहा—"मेरे यहाँ जितने नौकर आए, सब दो कौड़ी के थे। सोने में एकता, बदतमीज़, रात-दिन नौकरों से 'हीं हीं' करनेवाले। दो तो उनमें से चोर भी थे।"

"क्यों, क्या तुम भी चोरी करते हो?"

"नहीं हुज़ूर।"

तब उसने मेरा नाम पूछा। मेरे मुँह खोलते ही उसने बड़े आश्चर्य का भाव प्रकट किया।

"तुम्हारा नाम कोलवो है?"

"नहीं हुज़ूर, मेरा नाम प्रोकोपियो-जोसे-गोए वालाँगो है।"

"वालाँगो?" उसने निश्चय किया कि यह गोत्र का नाम है, इसलिये उसने मुझे प्रोकोपियो के नाम से पुकारने का प्रस्ताव किया। मैंने उत्तर दिया—"जैसी आपकी मर्ज़ी।"

मैंने यह सब सविस्तर इसलिये नहीं कहा कि मैं कर्नल का चरित्र-चित्रण करना चाहता हूँ, वरन् यह दिखाने के निमित्त कि मेरे उत्तर ने कर्नल पर अच्छा प्रभाव डाला। दूसरे दिन उसने पुरोहित से मेरी तारीफ़ की कि ऐसा अच्छा नौकर मुझे कभी नहीं मिला। बात यह थी कि हम लोग एक सप्ताह तक नव-विवाहित दंपति की भाँति रहे।

सप्ताह की समाप्ति के दूसरे ही दिन से मुझे अपने पहले के नौकरों की दुर्गति का आभास मिलने लगा। बेचारे कुत्तों की भाँति रहते थे। मैंने सोना छोड़ दिया। मैंने किसी और वस्तु का चिंतन छोड़ दिया। मुझ पर गालियों की बौछार पड़ने लगी। मैं उदासीनता और अधीनता का भाव प्रकट करता हुआ उन पर मुस्किरा देता। मैं जानता था, इस पर मालिक प्रसन्न होता है। उसका चिड़चिड़ापन उसकी बीमारी और बदमिज़ाजी, दोनों के कारण था। उसकी बीमारी साधारण न थी, उसे गठिया-वठिया जाने क्या-क्या रोग था। वह लगभग ६० वर्ष का था, और

पाँच वर्ष की अवस्था से ही लोगों पर शासन करता आया था। इतना तो क्षम्य भी हो सकता था। परंतु वह बड़ी दुष्ट प्रकृति का भी था। उसे दूसरों के अपमान और दुख मे आनंद मिलता था। तीन ही महीने मे मेरे नाकों दम आ गया। मैंने निश्चय कर लिया कि अब यहाँ नहीं रुकता। सिर्फ मौके की प्रतीक्षा थी।

वह भी शीघ्र मिल गया। एक दिन मुझे किसी समाचार के देने मे देरी हुई। उसने बेत उठाकर एक-दो तीन मेरी पीठ पर जड़ दिए। चलो, अच्छा ही हुआ। मैने वहीं उसे जवाब दे दिया कि मैं नहीं रहता, और मै अभी अपना रास्ता लेता हूँ। मैं अपना सामान समेटने गया। वह मेरी कोठरी मे पहुँचा, और मुझसे ठहर जाने की बिनती की। उसने समझाया कि इस पर बिगड़ने की कोई बात नही है, और मेरे बुढ़ापे का ख़याल कर तुम्हे क्षमा करनी चाहिए। उसने आग्रह किया, और मै उसकी उपेक्षा न कर सका।

"अब मैं मृत्यु के समीप हूँ, प्रोकोपियो।" उसने उसी दिन संध्या को मुझसे कहा—"मै अब अधिक दिनो तक नहीं जीता। बस, अब मरने ही वाला हूँ। तुम मेरी अत्येष्टि-क्रिया करना, प्रोकोपियो! मै तुम्हें किसी तरह छोड़ नहीं सकता। तुम मेरी आत्मा की शांति के लिये प्रार्थना करना। और, यदि तुम न करोगे" उसने कहा—"मै भूत बनकर रात मे पहुँचूँगा, और तुम्हारी टाँग पकड़कर घसीटूँगा। तुम प्रेतो में विश्वास करते हो? प्रोकोपियो!"

"जाने भी दीजिए।" मैंने कहा।

"और, तुम क्यों नहीं विश्वास करते, कूढ़मग्ज़!" उसने प्रेम-भरी आवाज़ मे कहा। उसकी आँखे मुझे घूर रही थीं।

यह तो उसका उस समय का आचरण था, जब वह प्रसन्न रहता था। आप स्वय सोचिए, क्रोधा-वस्था में उसकी क्या दशा रहती होगी।

फिर उसने कभी मारा-पीटा नहीं, परंतु उसकी गालियाँ ज्यो-की-त्यों रहीं। अगर बढ़ी नहीं, तो कम भी नही हुईं। धीरे-धीरे मै भी अभ्यस्त हो गया। अब मुझे उसकी बातो की चोट न लगती। मै गदहा, उल्लू, सूअर, पाजी, चोंच, कूढ़मग्ज़, जाने क्या-क्या था। एक बात और थी, केवल मै ही अकेला यह सब कुछ था।

कर्नल का कोई सबंधी न था। उसका एक भतीजा था, जो क्षय-रोग से मर चुका था। उसके मित्र जो कभी-कभी उसकी मिजाजपुर्सी करने आते, दस-पाँच मिनट से अधिक न बैठते। मै अकेला सदा उसकी गालियों की आवृत्ति सुनने को उपस्थित रहता। जाने कितने बार मैने वहाँ से जान छुड़ानी चाही, पर पुरोहितजी ऐसा आग्रह करते, इतनी बिनती करते कि अत मे अपना इरादा छोड़ना ही पड़ता।

मै केवल ऊब ही नहीं गया था, वरन् मुझे राजधानी पहुँचने की भी जल्दी थी। बयालीस वर्ष की आयु मे मनुष्य शीघ्रता से एक क्रूर, कटहे बूढे के साथ एकांत वास करने का अभ्यासी नहीं हो सकता। मेरे एकांत जीवन का अनुमान इसी से हो सकता है कि मुझे समाचार-पत्र तक पढ़ने को नहीं मिलते थे। उन इने-गिने समाचारों को छोड़, जो कर्नल को लोग सुना जाते थे, मुझे बिलकुल नही पता था कि ससार मे क्या हो रहा है। इसलिये मै राजधानी जाने के लिये आतुर था, चाहे ऐसा करने मे मुझे पुरोहित की प्रार्थनाओ की उपेक्षा ही क्यो न करनी पड़े। एक बात और थी। कह देना उचित होगा, क्योंकि अब मैं सारी बाते कह ही रहा हूँ। अपना सारा वेतन बचाकर अब मुझे उसे राजधानी मे फ़ैलसूफी में उड़ा देने की उत्कट अभिलाषा हो रही थी।

शायद मेरा अवसर शीघ्र समीप आ रहा था। कर्नल की अवस्था दिनोदिन बिगड़ती जा रही

थी। उसने अपना वसीयतनामा लिख डाला था। वकील को भी मेरे समान गालियाँ सुननी पड़ी थीं। रोगी की चिकित्सा का प्रबंध और कठोर हो गया। क्षण-भर के लिये शांति और शयन मेरे लिये दुर्लभ हो गया। रोगी के अत्याचारों को भुलानेवाली रही-सही उसके प्रति सहानुभूति मुझमे पहले ही लुप्त हो चुकी थी। अब तो मेरे भीतर उसके प्रति घृणा और उपेक्षा ज्वालामुखी की भाँति उमड रही थी। अगस्त-मास के आरभ मे मैंने निश्चय कर लिया कि अब यहाँ से अवश्य चला जाऊँगा।

पुरोहित और डॉक्टर ने मेरी हालत सुनकर मुझे दो-चार दिन और ठहर जाने को कहा। मैंने उन्हें पूरे मास की अवधि दे दी, और कह दिया कि उसके अंत में मैं निश्चय चलता बनूँगा, रोगी की चाहे जो अवस्था हो। पुरोहित ने वचन दिया कि वह मेरे स्थान पर दूसरा आदमी ढूँढ़ लेगा।

अब आगे क्या हुआ, सो सुनिए। अगस्त की २४ तारीख़ को कर्नल उद्दड हो गया। उसने मुझे पीटा, बुरी-से-बुरी गालियाँ दीं, गोली मार देने की धमकी दी। अततः उसने भोजन से भरी तश्तरी मुझ पर दे मारी। उसका कहना था कि भोजन ठंडा हो गया था। तश्तरी दीवाल से टकराकर चूर चूर हो गई।

"तुझे इसका दाम देना पड़ेगा—चोर कहीं का।" उसने गरजकर कहा। बहुत देर तक वह बरबराता रहा। ग्यारह बजे के लगभग वह सो गया। उसे सोता जान मै भी उसी कमरे मे, उसके बिस्तर से थोड़ी दूर हटकर, एक पुस्तक पढ़ने लगा। मुझे मध्य रात्रि में उसे जगाकर दवा पिलानी थी। परंतु कह नहीं सकता, थकावट या पुस्तक के कारण मैं दो पृष्ठ समाप्त करने के पूर्व ही सो गया। कर्नल का बकना-झकना सुन मैं एकाएक चौक पड़ा। उठकर देखा, तो वह बेहोशी मे अपने नियमानुसार गालियाँ दे रहा है। एकाएक उसने पानी की बोतल उठाकर मुझ पर फेंकी। बोतल मेरे बाएँ गाल पर लगी। चोट के कारण मै बेसुध-सा हो गया। आवेश मे मै रोगी पर झपट पड़ा। एकाएक अपनी पूरी शक्ति से मैंने उसका गला पकड़ लिया। वह छटपटाने लगा। मैंने भी शक्ति लगा दी। वह दम घुटकर मर गया।

जब मैंने देखा, उसकी साँस बंद हो गई, मै घबराकर पीछे हट गया। मै चिल्ला उठा, पर किसी ने सुना नहीं। तब मैं उसके समीप जाकर, उसे हिलाकर पुनः जीवन-सचार करने का प्रयत्न करने लगा। समय बीत चुका था। कर्नल के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। मै भागकर दूसरे कमरे में चला गया, और दो घंटे तक मुझे वहाँ जाने का साहस न हुआ। उस समय मेरी क्या दशा थी, इसका वर्णन करना मेरे लिये असभव है। मै अवाक् था। बेहोश-सा था। जान पड़ता था, चारों ओर दीवालों पर मुझे चेहरे दिखाई पड़ते हैं। मुझे आवाज़ सुनाई पड़ने लगी थी। मुझे ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे चारों ओर से चीख़ने और छटपटाने की आवाज़ आ रही हैं। यह मत समझिए कि मै कविता कर रहा हूँ, मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ, मुझे स्पष्ट शब्द सुनाई पड़ रहे थे—"हत्या-हत्या !"

घर मे पूर्ण शांति थी। घड़ी की टिक-टिक भी अपनी धीमी और ताल-युक्त चाल से नीरवता की वृद्धि सी करती जान पड़ती थी। मैंने उस कमरे के द्वार पर कान लगाकर सुनना चाहा—कदाचित् कराहना या कोई अपशब्द ही सुनाई पड़ जाय, जिससे यह तो निश्चय हो कि कर्नल जीवित है, और मेरी आत्मा को शांति मिल सके। मै इसके लिये भी तैयार था कि कर्नल मुझे अपने हाथों एक-दो नहीं, सैकड़ों बेंत लगाए। परंतु वहाँ कुछ भी नहीं, केवल नीरवता थी। मै कमरे मे निर्विचार

हो चक्कर लगाने लगा। बैठ गया। सिर पर हाथ रखकर पछताने लगा कि मै इस स्थान पर आया ही क्यों।

"कैसी अशुभ घडी पर मैने ऐसी नौकरी स्वीकार की।" कहकर मै रोने लगा। मुझे अपने मित्र निकथिरा पर क्रोध आने लगा। उस डॉक्टर और यहाँ के पुरोहित पर झल्लाहट आई—इन्हीं सबोने मुझे यहाँ आने और ठहरने का आग्रह किया था। मुझे निश्चय हो गया। मेरे अपराध मे वे भी सहायक थे।

नीरवता से भयातुर होकर मैने खिड़की खोल दी। कदाचित् वायु के कारण पत्तियों की खडखड़ाहट ही सुन सकूँ। परंतु वहाँ पत्ता तक नही डोल रहा था। रात्रि संपूर्णतः प्रशांत थी। आकाश मे नक्षत्रगण उसी भाँति उदासीनता से चमक रहे थे, जैसे रास्ते मे अर्थी ले जाते देख पथिकगण आदर-प्रदर्शन करते हुए अपनी बातचीत का सिलसिला जारी रखते है। मै खिडकी पर खडा दोनो हाथो से सिर थामे अंधकार को भेदने की दुश्चेष्टा कर रहा था। मेरे मस्तिष्क में संक्षेप में मेरे जीवन की सारी घटनाएँ घूम रही थी। यह सब केवल उपस्थित वेदना को भुलाने के लिये था। मुझे अपने अपराध का दंड निश्चय हो गया। मुझे जान पडा, मानो मुझ पर अभियोग लग चुका है, और मुझे भारी दड का भय दिखाया जा रहा है। अब तो मेरा पश्चात्ताप भय मे परिणत हो गया। क्षण-भर बाद मुझे जान पडा, मानो तीन-चार व्यक्ति मुझे मकान के ऊपर से देख रहे है, जैसे मुझे पकड़ने का मौका देख रहे हो। मैं हट गया। मेरी कल्पना विलीन हो गई।

प्रात.काल मैने अपने घाव पर पट्टी बाँधी, और साहस करके कमरे की ओर चला। दो बार मैने चौककर पीछे देखा। कोई उपाय न था, अतः भीतर जाना ही पडा। फिर भी मै पहले पलंग के समीप नहीं गया। मेरी टाँगे थर-थर काँप रही थीं, मेरा हृदय पिसा जाता था। मै भाग खडा होता, परंतु उससे तो मुझ पर सदेह होने की संभावना थी, और, यह आवश्यक था कि मैं संदेह से अपने को बचाऊँ। धीरे-धीरे मै पलंग के समीप पहुँचा। शव की ओर देखा, उसकी खुली आँखो और खुले मुँह को। मानो वह कह रहा था—"अरे मनुष्य, तूने यह क्या किया?" मैने देखा, उसकी गर्दन पर मेरे नाख़ून के चिह्न थे। मैने कमीज़ का कालर उठाकर उन्हें ढँक दिया, और चद्दर से उसकी गर्दन भली भाँति ढँक दी। नौकर को बुलाकर मैने समाचार दिया कि कर्नल प्रातःकाल पंचत्व को प्राप्त हुआ। यह समाचार वह डॉक्टर और पुरोहित को दे।

सबसे अच्छा उपाय मैने यही सोचा कि यहाँ से जितना शीघ्र हो, चल देना उचित है—चाहे किसी बहाने। संयोग से दो एक दिन पहले मेरे भाई का पत्र भी आया था कि उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, परंतु फिर मैने सोचा, एकाएक प्रस्थान सदेह उत्पन्न कर सकता है। अतः मैने उस समय यह विचार त्याग दिया। एक नौकर की सहायता से मैने शव को नीचे उतारा। बराबर मै कमरे ही मे रहा कि कोई कुछ भाँप न सके। मुझे सदेह था कि कहीं और नौकर कुछ पता न पा गए हो। इसलिये मै बड़े ध्यान से देखता। उनका धीरे-धीरे चलना, धीरे-धीरे बोलना, एक दूसरे की ओर देखना आदि। मेरी इच्छा हुई कि लोगो की आँखों की परीक्षा करूँ। कहीं कोई भाव तो नहीं है, पर मेरा साहस न होता कि उनकी ओर देखूँ। समय पर शव ताबूत में बंद किया गया। मैंने काँपते हुए हाथो से उसे बंद किया। लोगो ने हाथों का काँपना देखा। किसी ने सहृदयता से कह भी डाला—"बेचारा प्रोकोपियो—यद्यपि इसके प्रति कर्नल बडा दुर्व्यवहार करता था, फिर भी इसे बड़ा शोक है।"

मुझे यह व्यंग्य-सा लगा। पर मैं चाहता था. किसी प्रकार बखेड़ा टले। हम लोग शव के साथ चले। एकांत-वास से निकलकर, एकाएक खुले प्रकाश में आकर एक बार मैं सड़क पर गिरने से बचा। मुझे ऐसा भासित होने लगा, मानो मैं अपना अपराध अब और देर तक छिपा नहीं सकता। मैं नीची निगाह करके साथ साथ चलने लगा।

जब सब ख़तम हो गया, मैंने सुख की साँस ली। मुझे मनुष्यों के भय से छुटकारा मिला। परंतु मेरी आत्मा अभी तक शांत न हो पाई थी। स्वाभाविकतः प्रथम रात्रि मैंने बड़ी बेचैनी और दुख से बिताई। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं तुरत राजधानी लौट गया। यद्यपि मैं घटना-स्थल से बहुत दूर पहुँच गया था, फिर भी मुझे निरंतर भय लगा रहता। मेरे होठों पर कभी हँसी नहीं दिखाई पड़ी। मैं अधिकतर चुप रहता। बहुत अल्प भोजन कर सकता। मुझे रात में भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते।

लोग कहते हैं, 'मरा सो गया', परंतु "ऐसा अंध-विश्वास अज्ञान है।" यह मेरी अपनी राय है।

मुझे इस पर प्रसन्नता होती कि लोग मुझे देखकर कुछ उलटी बातें समझते हैं। मैं मरे हुए कर्नल की प्रशंसा किया करता—"निश्चय उसकी आत्मा निष्कपट थी, वह हीरा आदमी था।" यह सब कहते हुए मैं क्षण-भर के लिये उस पर विश्वास करने लगता। पर मेरे मन में दूसरी बात उठती—मैं बतलाए देता हूँ—कदाचित् आप इससे कुछ परिणाम निकाल सकें—वह यह थी कि यद्यपि मैं धर्म में बिल्कुल विश्वास नहीं करता था, फिर भी मैंने मृतक के लिये पूजा-पाठ कराया, दीन-दुखियों को दान वितरण किया। यह सब शांति-पूर्वक चुपचाप हुआ।

मैं किसी को धोका नहीं देना चाहता था। आप इसी से समझ लें कि यह सब मैंने बिना किसी को बतलाए किया। यहाँ तक कि मैंने बिना "परमात्मा उसकी आत्मा को शांति दे" कहे कभी कर्नल का नाम तक नहीं लिया। अक्सर मैं कर्नल के मधुर और मनोरंजक संस्मरण लोगों को सुनाता।

राजधानी में पहुँचने के एक सप्ताह पश्चात् मुझे पुरोहित का एक पत्र मिला। उससे पता चला कि कर्नल ने मेरे ही नाम अपनी सारी संपत्ति वसीयत की थी, और मैं ही अकेला उसका उत्तराधिकारी हूँ। मैं तो दंग रह गया। आप ही मेरी अवस्था का अनुमान कीजिए। मुझे भ्रम हुआ कि मैंने पत्र ठीक तौर से नहीं पढ़ा। उसे मैंने अपने भाई को दिखाया, मित्रों को दिखाया। सभी वही बात सुनाते। वही बात साफ़-साफ़ लिखी थी—मैं निश्चय कर्नल का उत्तराधिकारी था। फिर मुझे ध्यान आया—यह सब मुझे फँसाने का बहाना है। परंतु दूसरे क्षण मैंने सोचा, मुझे पकड़ने के और भी सहज उपाय हो सकते हैं, अगर सचमुच मेरी हत्या की बात खुल गई है। और फिर मुझे पुरोहित की निष्कपटता पर विश्वास था, वह कभी ऐसी चाल में सहयोग नहीं दे सकता है। मैंने पत्र को फिर एक बार पढ़ा, फिर पढ़ा, फिर पढ़ा—बात वास्तव में सच थी। मैं कर्नल की संपत्ति का मालिक था!

"कुल कितने मूल्य की होगी?" मेरे भाई ने पूछा।

"कह नहीं सकता, पर कर्नल बड़ा अमीर था।"

"सच, उसने तो तुम्हारे प्रति अपने प्रेम का प्रमाण दे दिया।"

"वह सचमुच..... वह...।"

इस प्रकार अदृष्ट के विकट विधान के अनुसार कर्नल की सारी संपत्ति मेरे हाथ आ गई। पहले मैंने उसे अस्वीकार करने की बात सोची। ऐसे

पुरुष का धन लेना बडा अरुचिकर प्रतीत होता था। यह तो हत्या का इनाम था। तीन दिन तक यह विचार मेरे मस्तिष्क को कष्ट देता रहा, परंतु धीरे-धीरे मै उसके विरुद्ध ही होता जाता था, अंत में मैने सोचा, मेरा अस्वीकार करना संदेह उत्पन्न करने मे सहायता कर सकता है। अंततः यही निश्चय किया कि स्वीकार करके उसे धीरे-धीरे परोपकार में व्यय कर दूँ।

ऐसा केवल हिचक के कारण नही था, वरन् मेरी इच्छा भी थी कि मै अपने पापो का प्रतीकार उपकार करके करूँ। मेरे आस-पास सारा वातावरण मुझे अपने पाप का स्मरण दिलाता था। सड़क की प्रत्येक मोड पर मुझे कर्नल की प्रेतात्मा मँडराती हुई दिखाई पडती। लाख प्रयत्न करने पर भी मुझे उसका छटपटाना-चिल्लाना न भूलता।

हत्या या आत्मरक्षा? वास्तव मे मैने आत्मरक्षा ही मे यह सब किया था। मुझे क्या मालूम था कि इसका परिणाम भीषण होगा। यह विचार मेरे मन में घर कर गया। मैने उसके द्वारा किए गए अपने सारे अपमानो पर ध्यान दिया। उसका मारना—गालियाँ देना—मुझे अच्छी तरह मालूम था, यह कर्नल का दोष नहीं था। यह सब उसकी बीमारी के कारण होता था। मैने सब अपराध क्षमा कर दिए थे। परंतु उस रात को उसने जो बोतल फेंककर मारी थी, यह उसने होश में नहीं किया था। उसका अत करीब था। पर क्या वह यह नहीं जानता था? वह तो बार-बार कहा करता था—"मुझे अब कै दिन जीना है, एक-दो या तीन सप्ताह?"

यह तो जीवन न था, वरन् धीरे-धीरे मरना था। इसके सिवा उस बेचारे की मृत्यु का और क्या नाम हो सकता है? और, कौन जानता है, कौन कह सकता है कि उसका घुलना उसकी मौत नहीं थी। संभव था, वह स्वयं मर जाता, यह विचार मेरे मन में बैठ गया।

मुझे नगर में घुसते ही जान पडा, मानो मेरे हृदय में जैसे किसी ने कील ठोक दी हो। परंतु मैने अपनी दुर्बलता को छिपाया, और मै धड़धडाता हुआ आगे बढ़ा। लोग मुझे बधाई देने पहुँचे। पुरोहित ने मुझे वसीयतनामे का ब्योरा सुनाया। कर्नल ने मुझे उपकार का बदला दिया था। "आप ठीक कहते है।" कहकर मैं घबराहट मे दूसरी ओर देखने लगा।

मैं तो चकित था। सभी मेरी तारीफ के पुल बाँध रहे थे। क्रमशः सारी कार्रवाई हुई। लोग आते और कर्नल की बाते छेड़ते। उसकी बुराइयाँ, बदमिज़ाजी की कहानियाँ सुनाते, एक-से-एक बढ़कर, आश्चर्य-जनक।

क्या मुझे कहना पड़ेगा। पहले तो यह सब सुनकर मुझे कौतहल हुआ, फिर मेरे हृदय मे एक विचित्र आनद का उद्रेक हुआ। ऐसा आनद जिसके अनुभव से मैने अपने को बचाया, और मै बराबर कर्नल का पक्ष लेकर उसकी तारीफ़ करता रहा। मैने कहा—"लोग यो ही उसे दोषी ठहराते है। माना, वह ज़रा कसकर काम लेता था, कभी-कभी मार बैठता .. .."

"कभी-कभी, अरे वह तो साक्षात् पिशाच था।" नाई ने चिल्लाकर कहा। और सभी—कारिंदा, मुंशी, नौकर—एकमत हो उस पर दोषारोपण कर रहे थे। अपने समर्थन में वे घटनाओं का वर्णन करने लगते। वे उसके सारे जीवन की आलोचना, विशेषकर उसकी युवावस्था की तीव्र आलोचना करते। मैं मन-ही-मन धीरे-धीरे प्रसन्न हो रहा था। कर्नल के प्रति लोगो के विचार सुनकर मुझे कुछ आश्वासन हुआ। अब मुझे वहाँ का वातावरण उतना भीषण नही लगता था। मै ले-देकर लौट आया।

कई मास बीत गए। संपत्ति को पुण्य कर्मों मे वितरण करने के भाव अब कुछ मंद पड़ गए थे। मुझे अब ऐसा लगने लगा, मानो यह भी व्यर्थ का दिखावा है। पर मैंने अपनी बात रक्खी। कुछ थोड़ा-सा धन इधर-उधर परोपकार मे लगा ही दिया। मैने कर्नल की कब्र पर एक संगमरमर का स्तूप भी बनवा दिया।

वर्षों बीत गए। मेरी स्मृति भी अब धुँधली और अविश्वसनीय हो गई। कभी-कभी मै कर्नल की बात सोचता हूँ, पर अब पहले-जैसा भय वा दुख नहीं होता। जितने डॉक्टरो से मैने उसकी व्याधि की चर्चा की, सभी ने एकमत होकर यह बतलाया कि उसकी मृत्यु तो इसके बहुत पूर्व हो जानी चाहिए थी। संभव है, मैने उसके रोग के लक्षणों को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कहा हो, पर सच बात तो यह है कि उसकी एकाएक मृत्यु अनिवार्य थी। चाहे यह घटना न भी घटती।

अब मै बिदा लेता हूँ। प्रिय सज्जनो ! यदि यह कहानी तुम्हे बिलकुल व्यर्थ की न जान पड़े, तो इसके पुरस्कार-स्वरूप मेरी समाधि पर एक संगमरमर रखवा देना, और उस पर नीचे लिखा वाक्य लिखवा देना। यह प्रभु के उपदेश के शब्दों का अनुकरण कर मैने स्वय रचा है—

"धन्य है वे लोग, जिनके पास धन है, क्योंकि ईश्वर उनकी आत्मा को शांति देगा *।"

* ब्राजिल के प्रसिद्ध लेखक Machado De Assis की एक कहानी का भावानुवाद।

विवाह क्यों और कब ?

[श्रीयुत दीनानाथजी व्यास विशारद]

क्यो ?

वन की महान् अभिलाषा एवं उद्देश्य केवल सुख की खोज है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ईश्वर ने हमे स्त्री दी है। ससार मे दूसरी महान् आशा स्वास्थ्य है। इसकी भी आवश्यकता अकेले के बजाय वैवाहिक जीवन मे ज्यादा प्रतीत होती है। अकेलापन एक अस्वाभाविक दशा है, जो स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन के लिये अहितकर है। यह बात विवाहित और अविवाहित लोगों की तुलना द्वारा सहज ही सिद्ध हो गई है।

वह भोजन, जो अकेले ने खाया हो, केवल क्षुधा की शांति कर सकता है। यदि वही भोजन सुंदर रमणी के साथ बैठकर खाया जाय, तो प्रत्येक वस्तु मे अद्भुत स्वाद उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार मित्रो और रिश्तेदारो के सबंध मे भी समझना चाहिए।

विवाहित जीवन हमे अपने सामाजिक, गार्हस्थ्य एवं आत्मिक सद्गुणों को सुधारने का मौका देता है, और स्त्री तथा पुरुष को जीवन के उच्चादर्श तक पहुँचाने मे सहायता प्रदान करता है।

स्त्री और पुरुष वैवाहिक सबध स्थापित करने मे अक्सर बड़ी भारी गलती करते है। इस गलती से न योग्य संतान और न स्थायी सुख ही प्राप्त हो सकता है। इन गलतियो मे हम अभिलाषा, धन, पदवी, पद, हित, गृहेच्छा, माता-पिता के पजो से स्वतंत्र होने की भावना, संबंधियों पर अधिकार करने की प्रबल आकांक्षा, आवश्यकताएँ, मजबूरी, झूठी नकल, तीव्रता, मनोविकार आदि से ही अथवा उपर्युक्त गलतियो मे से किसी एक पर जम जाते है, और गलती कर बैठते है। किंतु शुद्ध एव निर्मल आंतरिक प्रेम तो ढूँढने से भी नहीं मिलता।

दुनिया मे विवाह के सिवा दूसरा कोई ऐसा कार्य या व्यापार नहीं, जो झूठ पर इतना स्थिर हो। स्त्री या पुरुष का विवाह करना ही आजकल महान् असत्यता का केंद्र हो गया है। व्यापार मे मनुष्य पहले अपना लाभ, हानि और जोखिम आदि का विचार कर लेता है, तब लगता है, किंतु स्त्री की पसंदगी तो हम अधो की तरह कर डालते है।

स्त्री की केवल एक चित्ताकर्षकता ही हमे विवाह-जैसे जिम्मेदार संस्कार मे फँसा देती है। स्त्रियों मे लुभानेवाला सौंदर्य एव मधुर भाषण की सुंदर रीति तो ईश्वर-दत्त ही है, किंतु इससे उसकी असलियत प्रकट नहीं होती। वास्तविक चरित्र की जॉच करना अत्यत आवश्यक है।

बहुत-से विवाह दो बीमारो के बीच भी कर दिए जाते है। जैसे यदि कोई पुरुष किसी रोग

मे दुखी है, तो स्त्री भी ऐसी ही ढूँढ दी जाती है, जो उसी प्रकार के रोग से दुखी हो। इससे लोगो को दोनो के रोग मिट जाने की सभावना रहती है। किंतु यह महान् हानिकर प्रथा है। बीमार से बीमार मिल जाय, और फिर उसका पारस्परिक सभोग हो, तो रोग दिन-दिन वृद्धि पाता जाता है, और दोनो इस दुनिया से इसी दु:खित दशा मे ही कूच कर जाते है। वर्तमान समय मे बुद्धिमान् इन बातो से अवश्य बचते है, किंतु यह प्रथा आज भी नीच जाति के लोगो मे विद्यमान है। विवाह-सबध मे सबसे अधिक ध्यान वर और वधू की तंदुरुस्ती पर देना चाहिए।

कब ?

आयु की परिपक्वता या यौवन की प्रफुल्लता ही विवाह करने का समय है, किंतु इसमे भी स्वभाव एवं जीवन-चर्या पर ध्यान अवश्य रक्खा जाता है। यौवन की तीव्रता पुष्टिकारक भोजन, मसाले, उत्तम पदार्थ, बड़े शहरों का जीवन, नैतिक प्रभाव आदि से बड़ी जल्दी और बडी ही घृणित रीति से आ जाती है *। गरमी प्रत्येक इंद्रिय मे उत्साह और जोश भर देती है। और, वह कद तथा अवयवों की वृद्धि भी बडी शीघ्रता के साथ करती है। इसी तरह वह मासिक धर्म के जल्दी होने में भी सहायक हो जाती है। इसीलिये गर्म प्रदेशों मे मासिक धर्म एव यौवन बहुत ही जल्दी आ

* विवाह-वय के लिये योरपीय एवं भारतीय महान् पुरुषो के अनेक मत हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते है—

"पुरुष का वय २५ और स्त्री का १६ होना चाहिए। इससे कम उम्र हो, और सतान हो जाय, तो वह सतान गर्भ में ही मर जाती है, यदि बच जाय, तो अल्पायु होगी, और यदि दीर्घायु हुई, तो निर्बल एव रोगी होगी।" —सुश्रुत

"छोटी उम्र में संतान होने से अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य का शारीरिक विकास बिलकुल रुक जाता है, और वह दुर्बल हो जाता है।"

—हर्बर्ट स्पेंसर

"बाल-विवाह शारीरिक नाश कर डालता है, स्वास्थ्य का ह्रास कर देता है। बाल-विवाह के बाद धारण किया हुआ गर्भ प्रसव-काल में महान् कष्ट देता है।" —डॉक्टर डंकन

"मेरा मत यह है कि हिंदू-स्त्रियो का १६ वर्ष के बाद विवाह करना उचित है। इसके पहले विवाह करना योग्य नहीं।" —डॉक्टर वॉट

"१६ वर्ष के पूर्व स्त्री का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता ही नही। गर्भ धारण करने की शक्ति उसमे उसके बाद ही आती है।" —डॉक्टर स्मिथ

"यौवन-चिह्न दिखाई देने के बाद विवाह करना ठीक है। १६ वर्ष पूरे होने के पूर्व विवाह करना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं। १६ वर्ष के बाद ही गर्भ धारण करना योग्य है।"

—डॉक्टर तमीज़ख़ाँ

"१६ वर्ष हुए विना भारतीय स्त्रियो का विवाह होना भी ठीक नहीं। प्रसव एवं बालक को दूध पिलाने से जो हानि होती है, वह १६ साल के पहले स्त्री सहन नही कर सकती।"

—डॉक्टर नवीनचंद्र बसु

"लड़की के ऋतुमती होने पर ही विवाह करना योग्य है। किसी भी प्रगतिशील देश मे ऐसा इससे पहले नहीं होता। और, हमसे ऐसा होता देखा भी नहीं जाता।"

—डॉक्टर चक्रवर्ती

जाते है। इस तरह से जननेंद्रिय आदि अवयवो का वृद्धि पाना किसी भी प्रकार हितकर नही कहा जा सकता। क्योकि जो पूर्ण यौवन मे जल्दी प्रवेश करता है, वह अल्पायु हो जाता है। उसका सौदर्य जल्दी ही नष्ट हो जाता है, और बुढापा एकदम आक्रमण कर देता है। इसके विरुद्ध जिसका यौवन और मासिक धर्म जितनी ही देर से आता है, वह उतनी ही आयु मे, सौदर्य मे, बल मे वृद्धि पाता तथा दीर्घजीवी होता है। यह साधारणतया स्वीकार कर लिया गया है कि मासिक धर्म के आते ही स्त्री जनन-शक्ति-संपन्न हो जाती है, और इसीलिये विवाह के योग्य भी हो जाती है। परतु स्त्री और पुरुष के प्रत्येक अंग के परिपक्व होने और पूर्णतया वृद्धि पाने पर ही वे विवाह के योग्य होते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मासिक धर्म आरंभ हो जाने पर भी शरीर के अनेक अगों मे पुष्टि नही आती, इससे यही समझ लेना चाहिए कि अभी विवाह के योग्य अवस्था नही हुई।

शरीर की ऐसी बहुत-सी हड्डियाँ है, जो २५ वर्ष की आयु तक पूर्ण रूप से वृद्धि पाती ही नहीं। हँसली की हड्डी (Collar Bone), जो शरीर मे सबसे ज्यादा उभरी हुई दिखाई देती है, १८ साल की उम्र के पहले कभी पुष्ट नही होती। कंधे की हड्डियाँ २५ साल की आयु के पूर्व परिपक्व नहीं होतीं। इसी प्रकार टाँग और रान की हड्डियाँ। बहुत-सी ऐसी भी हड्डियाँ है, जो २८ से ३० साल की उम्र तक वृद्धि पाती है। मनुष्य या स्त्री का छोटी उम्र में ज्यादतियाँ करना जीवन को बिगाड़ना है, और परिणाम स्वतः के लिये हानिप्रद है।

बाल-विवाह की सतान हमेशा रोग-ग्रस्त एवं निर्बल होती है। मान लिया, उनका चेहरा तमतमा रहा है. स्वस्थ है, फिर भी वे पूर्ण वय को कभी पहुँच नहीं सकते। वे आदमी, जो ३० वर्ष के पहले विवाह कर लेते है, अपनी वृद्धि को ठेस पहुँचाते और अपने शरीर की यत्रशाला तथा उसके पुर्जों को सत्यानाश कर देते है। उनका दिमाग, पट्टे और नसे आदि सभी नष्टप्राय हो जाती है। बीमारी, अकाल मृत्यु आदि इसके भयकर परिणाम है।

इसी विषय पर कलम चलाते हुए 'Marriage'-नामक पुस्तक के लेखक महाशय ने लिखा है—

"Very early marriages are in my opinion a serious evil. Acting under the impulse of head-strong passion or caparice or dissatisfaction, young persons too often prematurely rush thoughtlessly and blindly into engagements, which in after life become matters of deep and painful regret. The fancy visions of love's paradise now vanish, the other sober realities of life, its cares, its difficulties and its positive evils, soon lead to disenchantment, and worse than all, to growing mental in difference."

अर्थात्, मेरी राय मे बचपन की शादी बहुत ही भयंकर है । पुरुष अपरिपक्व अवस्था मे ही, अपनी मानसिक कमजोरियों के कारण, अधाधुंध सम्मिलन करने लगते है । इसके भयंकर परिणामो पर उनकी नज़र ही नहीं जाती । उनका समस्त जीवन यातनाओं एवं बीमारियों का घर हो जाता है । उनका स्वर्गीय सुख का स्वप्न तिरोहित हो जाता है । उनका पारस्परिक स्नेह और संबध भी हृदय कमज़ोर हो जाने के कारण हमेशा को नष्ट हो जाता है ।

प्राचीन जर्मन लोग २५ साल की आयु के पूर्व विवाह नहीं करते थे । उनमे और भी बड़े बधन थे, जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी संतान ऐसी थी कि सारा योरप चकित हो रहा था ।

शरीर के प्रत्येक अग के पूर्ण रूप से पुष्ट हो जाने पर ही शादी करना श्रेष्ठ है, इसके पहले स्त्री-पुरुष विवाह करने की कोशिश न करे ।

आयु के विवाह योग्य न होने पर स्त्री और पुरुष दोनो को धन आदि के लालच मे आकर न फँस जाना चाहिए, क्योकि दोनो के स्थायी सुखों को धन पूरा नहीं कर सकता । धन का कार्य धन और स्त्री तथा पुरुष की इच्छाओं की तृप्ति उनका स्वस्थ शरीर ही कर सकता है । यदि धन से ही दोनो की इच्छाएँ शात हो जातीं, तो आज हम बड़े घरो मे नग्न व्यभिचार के घृणित किस्से न पढ़ पाते । अयोग्य मा-बाप की सतान हमेशा नाज़ुक और शरीर एवं दिमाग से बेकार होगी ।

शरीर की पूर्ण वृद्धि आब-हवा, तबीयत आदि अन्य प्रभावों के कारण प्रत्येक देश में भिन्न-भिन्न काल मे होती है, फिर भी यह साधारण नियम प्रत्येक देश के पुरुषों पर लागू है कि वह २५ साल की वय होने के पूर्व शादी न करे, यदि उसे शरीर स्वस्थ और चारो ओर शांति तथा सुख रखना है । यह और भी अच्छा हो कि वह ३५ साल की उम्र तक ठहरा रहे । स्त्रियो को दुनिया मे बहुत-से काम एव जिम्मेदारियाँ है । यदि वे पूर्ण वय होने पर न ब्याही जायँगी, या यों कहिए कि पूर्ण वैवाहिक वय होने के पूर्व ही ब्याह दी जायँगी, तो गृहस्थी-जैसा महत्त्व-पूर्ण कार्य कैसे पूरा हो सकेगा ! स्त्रियों का वैवाहिक वय प्रायः १६ से २२ साल तक माना गया है ।

वह पुरुष, जो पूर्णतया स्वस्थ है, और जिसकी उम्र ३२-३३ साल की है, उसे सुंदर एवं स्वस्थ १८ से २२ साल तक की स्त्री की खोज करनी चाहिए । इसी प्रकार जो स्त्री पूर्ण रूप से स्वस्थ और सुंदर है, उसे ३२ साल के स्वस्थ और सदाचारी पुरुष से विवाह करना ठीक होगा । स्त्री और पुरुष की आयु में १२ वर्ष का फर्क होना चाहिए ।

इस प्रकार आयु, स्वास्थ्य एव गृह-कौशल आदि आवश्यक बातो पर ध्यान रखकर जो विवाह होंगे, वे सचमुच इस लोक मे भी कथित स्वर्गलोक का आनंद प्राप्त कर लेंगे ।

बालकों को सत्यवादी बनाना

[श्रीकृष्णानंद गुप्त]

अभी थोड़े दिन हुए, अमेरिका के एक प्रतिष्ठित पत्र में, बालकों की शिक्षा के संबंध मे, एक उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ था। लेख का विषय था बालको को सत्यवादी बनाना। अभी उस दिन फ़ाइल के भीतर उस लेख का कटिंग मुझे मिल गया। ऐसा अच्छा और उपयोगी लेख कहीं मेरी असावधानी से खो न जाय, इस भय से आज मैं सुधा मे उसका उद्धार कर रहा हूँ। आशा है, पाठकगण इससे लाभ उठाएँगे।

सभी माता-पिता अपनी संतान को सत्यवादी बनाना चाहते है। बच्चो को सत्यवादी बनाने का वे प्रयत्न भी यथेष्ट करते है। परंतु बालकों के स्वभाव एवं उनकी मानसिक अवस्था का सही ज्ञान न होने की वजह से उन्हे बहुधा अपने प्रयत्न मे सफलता नहीं मिलती। सभी बच्चे झूठ बोलते हैं। झूठ बोलना उनका स्वभाव होता है। आपको ऐसे बालक बहुत कम मिलेंगे, जो कभी झूठ न बोले हो। इसका यह आशय नहीं कि सभी बालक असत्यवादी होते हैं। बालक स्वभाव से ही ईमानदार होते है। ये दोनो उलटी बाते पाठकों की समझ में नहीं आएँगी। असल मे उनका असत्य बिलकुल दूसरी तरह का होता है। सत्य के उस रूप से वे परिचित नहीं होते, जिससे हम परिचित रहते है। नीति-शास्त्र की आज्ञा के अनुसार जिस सद्गुण को हमने सत्य का नाम दे रक्खा है, वह दीर्घ काल के अभ्यास से ही आयत्त हो सकता है। नित्यप्रति के व्यक्तिगत अनुभव एवं उत्तरदायित्व से ही उसका क्रम-विकास होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बालको को ऐसे अनुभव कभी प्राप्त नहीं होते।

देखिए न, बालक हमारी दुनिया से कितनी दूर रहते हैं। उस दुनिया का उन्हे कुछ ज्ञान नहीं होता। हम जो कुछ देखते है, अथवा देख सकते है, वह उनकी दृष्टि से परे रहता है, हम जो कुछ सुनते हैं, अथवा सुन सकते है, वह उनके कर्ण-गोचर नहीं होता, और यह भी एक साधारण ज्ञान की बात है कि हम परिचित वस्तुएँ ही अपनी आँख से देखते है, एवं परिचित स्वर-समूह ही अपने कान से सुनते हैं। अपरिचित वस्तुओं पर काफ़ी समय तक हमारी दृष्टि नहीं पडती, और न अपरिचित जगत् का कोई स्वर ही हमे काफ़ी दिनो तक सुनाई देता है। हम सदैव अपने नेत्रो से वे ही वस्तुएँ देखते है, जो अब तक हम देखते आए हैं। नए दृश्य क्रमशः ही हमारे दृष्टि-पथ में आते है। अवस्था-प्राप्त व्यक्तियों मे हम जिन्हे बहुत श्रेष्ठ समझते हैं, वे भी जब शनैः-शनैः ही ज्ञान की उपलब्धि कर पाते हैं, तब बालको के लिये यह कार्य सहज कैसे हो सकता है?

बालको की दुनिया ही निराली होती है। उनका अधिकांश समय जिस जगत् में बीतता है, उसकी सृष्टि वे अपने आप ही करते है। किंतु वह जगत् उतना ही सत्य होता है, जितना हमारा जगत् हमारे वास्ते। और, बालकों के उस मनोराज्य में जो घटनाएँ घटित होती हैं, वे भी उतनी ही महत्त्व-पूर्ण होती है, जितनी हमारी घटनाएँ हमारे वास्ते। बालकों के मानस में किस प्रकार की तरंगें उठा करती हैं, और उनका झूठ किस प्रकार का होता है, अध्यापक महोदय ने इसका उदाहरण

दिया है। एक दफे वह चार वर्ष की एक छोटी बालिका के साथ बाहर घूमने निकले। साथ मे उनका कुत्ता था, जिसकी रस्सी बालिका के हाथ मे थी। वह कुत्ते को लेकर चल रही थी। कुत्ते को वह बहुत प्यार करती थी, और उसकी बडी इच्छा थी कि कहीं से एक ऐसा कुत्ता उसे भी मिल जाय। कुत्ता बहुत ख़ूबसूरत था—आँख के ऊपर काला दाग़ और पूँछ पर सफ़ेद धब्बा। ठीक ऐसा ही कुत्ता उसके मन में बसा हुआ था। सहसा वह खडी हो गई। उसके उज्ज्वल, विशाल नेत्र आनंद से चमक उठे, और वह बोली—

"मेरे पास भी एक बढिया कुत्ता है। बडा बढिया। झब्बू और सफ़ेद, छोटे-छोटे पजे है। आँख पर काला दाग। और, दुम भी उसकी इसी तरह हिलती है। बडा अच्छा कुत्ता है। मैं उसे बहुत प्यार करती हूँ, और उसे बडी अच्छी तरह रखती हूँ।"

बालिका की बात सुनकर अध्यापक महोदय ने कहा—"तुम्हारा कुत्ता तो जरूर बडा अच्छा है। ख़ूब खेलता है, क्यों न ?"

बालिका ने जोर देकर कहा—"ख़ूब खेलता है।" फिर उत्सुकता पूर्वक बोली—"अरे, वह तो झूठमूठ का कुत्ता है। परतु वह मेरा कुत्ता है। क्यो न ?"

अध्यापक महोदय ने फिर कहा—"हाँ, मेरे पास भी एक ऐसा ही कुत्ता है। मै उसे अपने साथ घुमाने ले जाता हूँ। झूठमूठ का बडा बढ़िया कुत्ता। उसके बदन पर मनचाहा एक काला दाग़ है। मै जब उसे बुलाता हूँ, तुरत आ जाता है। और मुझे वह बहुत प्यार करता है।"

बालिका ने सब समझकर सिर हिलाया। फिर सतुष्ट मन से कुत्ते के साथ आगे बढ़ी। अपना झूठमूठ का कुत्ता उसके लिये इतना वास्तविक था कि इस कुत्ते पर किसी प्रकार का अधिकार जताने की इच्छा भी उसके मन मे जाग्रत् नहीं हुई।

"अब आप क्या यह कहेंगे कि वह झूठ बोली ? फिर भी यह कहते समय कि मेरे पास भी एक बढिया कुत्ता है, उसके नेत्रो मे दृढ विश्वास की झलक थी, और कंठ-स्वर भी उतना ही दृढ़ था। उस एक क्षण के लिये उसके कल्पना-राज्य का वह कुत्ता उसका था, वह उसके लिये परम सत्य था। वह उसे प्यार भी करने लगी!'

यह है असत्य भाषण का प्रकार, जो बहुधा छोटे बालकों के मुँह से सुनने मे आता है। यह असत्य भाषण होता है या तो किसी चिर-वांछित वस्तु के संबध मे, या निराशा से व्यथित हुए हृदय की वेदना शात करने के लिये—बालक जिस प्रकार भोजन की इच्छा करते हैं, उसी प्रकार वे आनंद के भी भूखे होते है—या दूसरो के आगे अपनी हीनता का भाव गोपन करने के लिये, या किसी स्वप्नमय जगत् की सृष्टि करने के लिये जहाँ का मार्ग उनके नन्हे और सुकुमार पैरो के लिये बडा ही सुखद होता है। बालक जब एक ही तरह की दुनिया में रहते-रहते ऊब जाता है, तब वह अपने लिये दूसरी दुनिया की सृष्टि करता है। उसका मन सदैव नवीनता चाहता है।

इस प्रकार के असत्य भाषण से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। आप थोड़ा ठहरिए, और देखिए कि क्या होता है। बालक एक दीर्घ श्वास लेकर शीघ्र ही कहेगा—"यह मेरा झूठमूठ का कुत्ता है, किंतु मै उसे ख़ूब प्यार करता हूँ।" कल्पना-राज्य के सौदर्य के अतराल मे सदैव कठोर सत्य निहित रहता है—बचपन मे भी और बुढ़ापे में भी।

कभी-कभी बालक अपने सम्मान अथवा अपने साथियो के आगे अपने गौरव की रक्षा के हेतु असत्य भाषण करता है। बालको का मन बड़ा सुकुमार होता है। अपने जीवन का कोई अभाव अथवा अपने और अपने साथियों के बीच का प्रभेद उन्हे तुरंत खटकने लगता है। मोहन के पास यदि

मिस गौहर
(हिंदी-चित्र-पटो की प्रसिद्ध नटी)

ऐसा खिलौना है, जो अशोक के पास नहीं है, तो अशोक को यह अभाव तुरंत खटकेगा। और, यदि मोहन ने अशोक के पास जाकर कहा—देखो, मेरे पास कैसा बढिया खिलौना है, तो अशोक अपने सम्मान की रक्षा करता हुआ तुरंत कहेगा—"घर पर मेरे पास इससे भी बढ़िया खिलौना है।" अशोक इसके अतिरिक्त और कह ही क्या सकता है? उसके साथी के पास खिलौना है, उसके पास नहीं है। इस अभाव की पूर्ति तो उसे करनी ही पडेगी। अन्यथा मोहन के आगे उसकी सारी किरकिरी हुई जाती है। इसलिये तुरंत कह दिया—"मेरे पास इससे बढिया कुत्ता है।" ऐसा करके उसने नीति-शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन किया है, और इसलिये बडा पाप भी किया है, इसका उस बेचारे को पता क्या।

सबसे प्रथम इस बात का निश्चय करने की आवश्यकता है कि बालक ने जो असत्य भाषण किया है, वह है किस प्रकार का। उस झूठ का कारण खोजना चाहिए, और यह भी देखना चाहिए कि बालक की काल्पनिक स्कीमों और हवाई किलों के भीतर उसका स्थान क्या है। जिसे आप असत्य समझते है, वह तो उसके लिये ज्वलंत सत्य एव अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है, फिर चाहे वह क्षण-भर की ही चीज क्यों न हो। बात जैसे ही मुँह से निकली, वह उस पर विश्वास कर लेता है। इसलिये यह जानना बहुत जरूरी है कि उसके मन मे जो भाव उदय हुआ है, उसके दैनिक जीवन के साथ उसका क्या संबंध है। ऐसा करने से आप उसकी कठिनाई दूर करने मे अधिक सहायक हो सकेंगे।

बालक ने यदि कोई भूल की है, तो उस पर तूफ़ान की तरह टूट पडना ठीक नहीं। यदि आप उसको वास्तव मे सुमार्ग पर ले जाना चाहते हैं, तो पहले अपना क्रोध शांत कीजिए, अपने को प्रकृतिस्थ बनाइए। फिर सावधानी से बालक का मन टटोलिए। अत्यंत सावधानी से ही यह कार्य करना चाहिए, क्योंकि यदि आपने उसे भय दिखाया, यदि आप उस पर चिल्लाए, यदि आपने उसे धमकी दी, यदि आपने उसे भयभीत कर दिया, तो फिर उसके मन के मार्ग आपके लिये बंद हो जायँगे, और लाख प्रयत्न करने पर भी आप वहाँ प्रवेश नहीं पा सकेंगे, और न आप उसकी कोई सहायता ही कर सकेंगे।

बालक के अपराध को झूठ की कुत्सित संज्ञा प्रदान मत कीजिए। यदि आप उसके आत्मरक्षा के प्रयत्न को, उसकी भयातुरता के लक्षणों को, उसकी संकट के समय अपने लिये सौंदर्य-सृष्टि की उत्कट कामना को और उसके काल्पनिक विचारों को झूठ का नाम देते है, तो आप ग़लत शब्द का व्यवहार कर रहे है, और उसके तथा अपने साथ भी घोर अन्याय कर रहे हैं।

बालक के मनोराज्य मे कल्पना की जो तरगे उठा करती हैं, उन्हे यदि असत्य का नाम दिया गया, तो यह बुरी वस्तु जब अपने असली रूप मे उसके सामने आएगी, तब वह उसे पहचान नहीं सकेगा। वह नही समझ सकेगा कि इस असत्य तथा अन्य असत्यों मे प्रभेद क्या है, और न फिर वह एक विषैली वस्तु की तरह उसका परित्याग ही कर सकेगा। बहुत थोड़े बालक ऐसे मिलेंगे, जो वास्तव मे झूठ बोलते हो। बोलते भी हैं, तो इसलिये कि उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ है, अपने से बडों के प्रति उनके मन मे भय समा गया है, उन्हे यह शिक्षा दी गई है कि नीच और स्वार्थी पुरुष ही झूठ बोलते हैं, और उन्हे यह सिखाया गया है कि कठिन परिस्थितियो को सुगम बनाने के लिये झूठ एक उत्तम साधन है। इस प्रकार का ज्ञान बचपन मे अपने आप अथवा सहज में प्राप्त नहीं होता। इसलिये यदि कहीं इसके अंकुर दिखाई दे, तो समझ लीजिए कि उसका बीज कहीं

बाहर मे आया है। इसका अर्थ यह है कि बालक को ऐसी शिक्षा दी गई है कि वह सत्य के मार्ग से भटक गया है।

यदि आप बालक को सत्य भाषण की शिक्षा देना चाहते है, तो सच बोलने को आकर्षक बनाइए। जब कभी वह किसी घटना की सही रिपोर्ट सुनावे, तब उसकी प्रशंसा कीजिए। जब कभी वह निर्भीक भाव से किसी विषय को जानने अथवा किसी आँखों-देखी घटना का यथार्थ वर्णन करने का प्रयत्न करे, तब संतोष प्रकट कीजिए, उसे शाबाशी दीजिए, और मुस्किराइए। तब देखिए, वह कितना प्रसन्न होता है। उसका हृदय उस सात्त्विक आनंद का अनुभव करेगा, जो सत्य से प्राप्त होता है। सत्य भाषण के मीठे फल का एक बार उसे स्वाद भर मिल जाय, फिर रिश्वत देने से भी वह कभी सत्य को धोका नहीं देगा।

परंतु आप यदि कहे कि बिलकुल छोटी उम्र से ही कोई सत्य बोलना सीख जाय, तो यह गलत है। ज़रा अपने छुटपन की याद कीजिए, और सोचिए कि आपने सत्य, केवल सत्य, संपूर्ण सत्य पहलेपहल कब बोलना शुरू किया था। ज़रा अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर देकर अपनी परिस्थिति का ख़याल कीजिए, कोई बात कहना अथवा किसी घटना का वर्णन करना आपके लिये कितना कठिन था। आप जब कोई घटना सुनाने बैठते होंगे, तब उसमे कुछ हेर-फेर अवश्य हो जाता होगा। अधिक न सही, दो-चार शब्द ही इधर-के-उधर हो जाते होंगे। अथवा मुँह से बाहर निकलते होंगे, तो उलटे-सीधे। हमारे कहने का आशय यह है कि सत्य बोलना आपने एक दिन मे नहीं सीखा होगा, दीर्घ काल के उपरांत ही आप सत्य पर आरूढ होना सीखे होंगे। यह गुण अनवरत परिश्रम और प्रयत्न से ही आयत्त होता है। बालकों को भी धीरे-धीरे ही सत्य-पथ पर अग्रसर होने की शिक्षा देनी चाहिए।

झूठ बोलने के मामले मे दंड से कुछ लाभ नही होता, उलटे हानि होने की ही अधिक संभावना है। असत्य भाषण—भयकर प्रकार का असत्य भाषण—भय से उत्पन्न होता है। जो लड़का भय-ग्रस्त है, वह स्वयं एक दुःख से पीडित है। उसे और भय दिखाने से आपकी कठिनाई बढेगी ही, घटेगी नही। आप तो उसे ठीक रास्ते पर ले जाकर अपनी कठिनाई को कम करना चाहते हैं। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि आप बालक के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करे। आप उसे अपना मित्र समझे।

यदि वह कोई भूल करे, तो उसकी चर्चा करनी ठीक नही। यदि उसने कोई बेवकूफ़ी की है, तो उसे बेवकूफ़ मत कहिए, यदि उसने असत्य भाषण किया है, तो उसे झूठे की संज्ञा प्रदान मत कीजिए। यदि आप उसे इस प्रकार बदनाम करेंगे, तो आपके प्रति वह अपना विश्वास खो बैठेगा, और आपके हाथ से बाहर निकल जायगा। उसके साथ बहुत खरा और नम्रता का व्यवहार कीजिए। ऐसा करने से आप उस पर अपना काफ़ी प्रभाव डाल सकेंगे। आपको यह समझ लेना चाहिए कि बच्चों का भी एक व्यक्तित्व होता है, उनमे भी आत्मगौरव की भावना निवास करती है। यदि चतुराई से काम लिया जाय, तो बडी उम्र के आदमियों की तरह उनको भी वश मे किया जा सकता है। परंतु जल्दबाज़ी से वे उसी तरह भड़कते हैं, जिस तरह हम लोग।

यदि कोई बालक झूठ बोलने के लिये बदनाम है, तो हमे उसकी प्रतिष्ठा स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि दूसरे बालक उसे झूठे की उपाधि न दे पाएँ। यदि उसके साथियो ने उसका झूठा नाम रख लिया, तो इससे उसकी त्रुटियाँ और पक्की हो जायँगी। उसके साथी जब अपनी कोई बात सुनाने आवे, तब ऐसा प्रबंध

कीजिए कि जो कुछ कहना है, वही कहे। उसे ही अपनी बात कहने का मौका दीजिए। तब यह अनुभव करके कि जरा भी इधर उधर होने से उसके साथी उस पर टूट पडने को तैयार खडे है, वह जो कुछ कहेगा, बहुत सावधानी के साथ कहेगा।

स्कूल से उसे जो काम मिले, उस पर भी दृष्टि रखनी चाहिए। यदि अध्यापक ने पाँच सवाल हल करने को दिए है, तो पाँच ही होना चाहिए, चार नही। यदि अध्यापक ने स्याही से लिखने को कहा है, तो स्याही का ही व्यवहार होना चाहिए, पेंसिल का नहीं। यदि आपने पाँच बजे कोई काम करने को कहा है, तो काम पाँच बजे ही होना चाहिए, पाँच बजकर दस मिनट की देरी बहुत देरी है। पडोस के लडको से खेल की वस्तु माँगने की मनाही रहनी चाहिए।

पढाते समय यथासंभव शांति से काम लेना चाहिए। डराने और धमकाने की आवश्यकता नही है। भर्त्सना और भूल-सुधार, यह सब एकांत मे होना चाहिए। किसी दूसरे के समक्ष बालक को ताडना देना अथवा उसे मूर्ख या गधा कहना बहुत अनुचित है। क्योंकि बालक के साथियो में यदि उसके दोषो की चर्चा फैल गई, अथवा घर मे ही यदि उसके कार्यों की प्रतिकूल आलोचना होने लगी, तो समझ रखिए कि वह आपके हाथ का नहीं रहेगा। आप उसे सुधार नहीं सकेंगे।

बालकों की शिक्षा का यही रहस्य है। बालक के मन मे हमे सत्य बोलने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। तभी सत्य भाषण उसके लिये आनंद-जनक बन सकता है। माता-पिता और शिक्षकों का कर्तव्य है कि सत्य भाषण को वे ऐसा ही बनाने का प्रयत्न करे।

निशा-नवेली

[महाकवि पं० प्रतापनारायण]

क्षितिज - गेह से बाहर आकर
तू बल से बल खाती है;
काले - काले केशों को तू
फैलाती, उलझाती है।
हीरो को, फूले फूलो को
उनके बीच लगाती है;
वसुधा को चमकाने उनको
तू चम - चम चमकाती है।
जीवन - वीणा के तारों को
तू ढीला कर जाती है;
ज्ञानी-वाणी की वाणी को
मौन - हार पहनाती है।
नींद - नदी में तू स्वप्नो का
जगी जाल बिछाती है;
नीरवता के रत्नाकर मे
पीछे उसे बहाती है।
साथ सभी के खेली है,
पर तू सदा अकेली है ॥ १ ॥

तू प्रत्येक दिवस मर जाती
और जन्म भी पाती है;
देकर के विश्राम विश्व को
उसकी शक्ति बढाती है।
योगी, भोगी, भूत, प्रेत सब
चोरो को हर्षाती है,
कमलो को मुर्झाती है तू,
कुमुदो को विकसाती है।
सख्यावानो के नयनो को
नभ मे नाच नचाती है;
मदमाती है तू, प्रशाति का
फिर भी राज्य जमाती है।
विधुवदनी होकर भी तो तू
काली - काली आती है;
पुण्य प्रभात-पुत्र को जनकर
तू वध्या कहलाती है।
बहुत बडी अलबेली है,
तू ही निशा-नवेली है ॥ २ ॥

महाकवि पु० प्रतापनारायण

पाप

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)
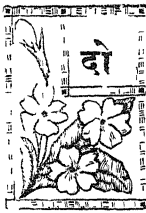
दो स्त्रियाँ परस्पर बातें कर रही थीं। संध्या हो रही थी। अंधकार कमरे में बढ़ रहा था, पर वे अपनी बातचीत में इतनी लीन थीं कि उन्हें इसकी तनिक भी परवा न थी। एक की अवस्था २६ वर्ष के लगभग थी और दूसरी की १९ वर्ष की। दोनो संभ्रांत कुल की शिक्षिता महिलाएँ थीं। कमरा ख़ूब सजा था, और ये दोनो सुंदरियाँ एक तख्त पर, मसनद के सहारे, अस्त-व्यस्त पड़ी अपनी बातों में दीन-दुनिया भुलाए बैठी थीं। बड़ी स्त्री अत्यंत सुंदरी थी। उसकी खिली हुई आँखें और उभरे हुए होठ प्रबल लालसा के द्योतक थे। ख़ूब गहरे और ख़ूब काले बालों से उत्कट वासना प्रकट हो रही थी। वह ख़ूब मज़बूत, मांसल और मुस्तैद औरत थी। दूसरी स्त्री अत्यंतनाज़ुकबदन, अविकसित कली के समान अस्फुट, पीली, दुबली-पतली, किंतु सुंदरी थी। उसकी नासिका का मध्य भाग कुछ उभरा था, और आँखें कटाक्ष युक्त थीं। छिपी हुई वासना और चांचल्य उसमें फूटा पड़ता था। अभी कुछ मास में उसका विवाह होनेवाला था, पति-सहवास की स्मृति की एकमात्र झलक ने उसे असंयत कर दिया था। अब स्त्री के लिये पति क्या वस्तु है—पति नहीं, पुरुष क्या वस्तु है? यही उसके विचार और कल्पना का विषय था। इस समय दोनो स्त्रियाँ बिलकुल सटकर बैठी इसी विषय का चिंतन कर रही थीं।
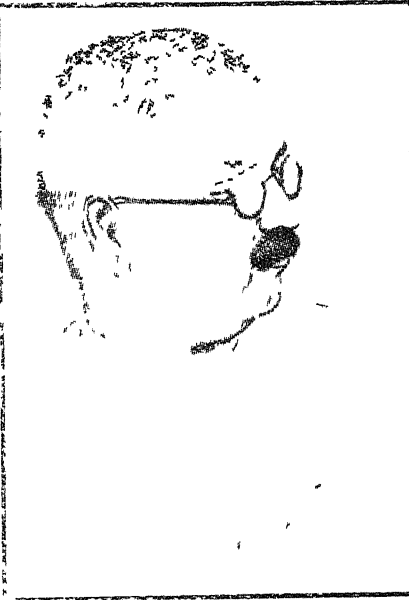
आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री

छोटी स्त्री ने कहा—"अब मैं तुम्हे चाची कहूँ, या बहनजी, या क्या? कुछ समझ मे नहीं आता।"

"जो चाहे सो कहा कर।"

"जब ऐसी-ऐसी बाते करती हो, तो चाची कैसे हुई?"

"न सही, बहनजी सही।"

"अच्छी बात है, अब मैं बहनजी कहा करूँगी, पर बाबू साहब को क्या कहना होगा?"

"जीजाजी। अब तो वह तेरे जीजाजी हो गए।"

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं; जीजाजी बहुत बुरे हुआ करते है।"

"बुरे क्या हुआ करते है?"

"सब भाँति की हँसी-दिल्लगी करते हैं। मैं

उनसे हँसी-दिल्लगी करती क्या सजूँगी, बोलूँगी ही कैसे ?"

'क्या वह कोई बाघ हैं ? जीजाजी की मरम्मत तो सालियाँ ही किया करती है ।"

'ना भइ, मुझसे ऐसा न होगा, उनके सामने से मैं भाग जाऊँगी ।"

"भाग कैसे जायगी। साली बनना क्या हँसी-खेल है, इस बार होली खेलना होगा।"

"वाह, यह भी कहीं हो सकता है।" बालिका कुछ हँसकर, गर्दन टेढी करके बोली, और दूसरी स्त्री की गोद मे सिर छिपा लिया ।

"नही, कैसे हो सकता है, होली तो खेलना ही होगा।"

बाहर पद-ध्वनि सुनकर दोनो चौकीं, बालिका ने कहा—'लो, जीजाजी आ रहे है, अब मैं जाती हूँ ।"

"वाह, जायगी कैसे ? आज उनसे बाते करनी पडेगी ।"

"नही-नहीं, मैं जाती हूँ।" बालिका उठकर भागने लगी। दूसरी स्त्री ने उसे कसकर खींच लिया, और कहा—"जायगी कहाँ ? जीजाजी से बाते करनी होंगी।"

कमरे में स्त्री के पास किसी और को बैठा देख राजेश्वर बाहर ही ठिठक गए, वह दूसरे कमरे मे जाने लगे। पत्नी ने पुकारकर कहा—"चले आइए, यहाँ आपकी नई साली साहबा हैं, और कोई नहीं।"

राजेश्वर ज़रा झिझकते हुए भीतर गए। बालिका सिकुडकर गृहिणी की पीठ-पीछे छिप रही। गृहिणी ने हँसकर कहा—"जीजाजी को प्रणाम भी नहीं!"

बालिका ने चुपके से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

राजेश्वर ने कहा—"कौन है ?"

"आप नहीं जानते, पड़ोस के प्रोफेसर साहब की कन्या किशोरी हैं, हम लोगों ने बहनापा जोडा है, अब यह आपकी साली और आप इसके जीजाजी हुए।"

राजेश्वर ज़रा मुस्किराए, फिर कहा—"इन्हे कुछ खिलाया-पिलाया भी है, या नहीं, फल-मिठाई और मँगवा लो।"

इतना कहकर राजेश्वर कमरे से बाहर निकल गए। उन्हे एक बहुत ज़रूरी मुकद्दमे की मिसल देखनी थी। मुवक्किल बैठक मे बैठे थे। उन्होंने बालिका को देखा भी नहीं, उनके मन मे कोई भाव भी उदय नहीं हुआ। उनके जाने पर बालिका ने कहा—

"बहनजी, यह तो बहुत मीठा बोलते है।"

"क्या रीझ गई ?"

"हटो, ऐसी बाते न करो, मेरे यहाँ रहने से बाहर चले गए। मुझे जाने क्यों नहीं दिया, वह यहाँ बैठने।"

"तेरे सामने बैठने मे क्या उन्हे डर लगता था ?"

"मेरी वजह से तो चले ही गए।"

"चले जाने दे, जा कहाँ सकते है, नकेल नथी हुई है। बावली, वह एक क्षण तो मेरे बिना रह ही नहीं सकते।"

यह कहते हुए युवती के नथने फूल गए, आँखों मे मद छा गया। बालिका ने सखी की ओर देखकर कहा—"सच कहना बहन, क्या वह तुम्हे इतना प्यार करते है ?"

"तू प्यार को क्या जाने पगली, अभी तो अल्हड़ बछेडी है, ससुराल का रस तूने देखा नहीं है ?"

"अच्छा, सच कहो, वह तुम्हे कितना प्यार करते है ?"

"इतना जगत् मे किसी ने किसी को नही किया।"

"और तुम ? तुम भी प्यार करती हो या नहीं ?"

"मैं क्यों करने लगी ?" युवती ने दो धप्प बालिका को लगा दी। इसके बाद कहा—"अच्छा, वह, कैसे हैं ?"

"बहुत अच्छे हैं।"

"तुझे पसंद आए ?"

"हटो, कैसी बातें करती हो !"

"कह—कह, नहीं घूँसे मार-मारकर ढेर कर दूँगी।"

बालिका ने स्वीकार सूचक सिर हिलाकर मुँह सखी के आँचल में छिपा लिया। युवती गर्व से फूल गई। उसने दो-चार घूँसे जमाकर कहा—"कहीं आगे-पीछे बातें न करने लगना।"

"वाह, मैं बातें कैसे करूँगी ? हाँ, सुनो, उन्हें नाश्ता तो करा दो। बेचारे हारे-थके कचहरी से आए हैं।"

गृहिणी ने तीन तश्तरियों में नाश्ता सजाकर कहा—"लो, पहले उन्हें तुम्हीं दे आओ।"

बालिका ने कान पर हाथ धरके कहा—"राम-राम, मर जाऊँ, तब भी उनके सामने नहीं जाऊँगी।"

"तब साली क्या खाक बनी ?"

"ऐसी साली नहीं बनती।"

"बस, इतने ही वह अच्छे लगे ?"

"पर उनके सामने जा कैसे सकती हूँ ?"

"क्या वह तुझे हलुवा समझकर गडप कर जायँगे ?"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"

"तुझे ही आज भेजूँगी।"

"बहनजी, हाथ जोड़ती हूँ।"

"हाथ जोड़, चाहे पाँव।"

"नहीं जीजी, नहीं।"

"तब मैं नाराज़ हो गई, ले।"

"बहनजी, माफ़ करो, मुझे न भेजो।"

"बस, मैं बोलती नहीं।"

"अजी, वहाँ और भी आदमी हैं।"

"तुम क्या बहू हो ? बेटी हो, परदा क्या है ?"

"तब तुम भी चलो।"

"मैं आदमियों में कहाँ जाऊँ ?"

"चिक के पास खड़ी रहना।"

"अच्छा, चल।"

दोनो स्त्रियाँ चलीं। बालिका के हाथ में नाश्ते की तश्तरी और पानी का गिलास था। द्वार पर जाकर गृहिणी ने उसे धकेल दिया। बालिका आँखें बंद कर, गिलास और तश्तरी टेबिल पर रख, सिर पर पैर रखकर भागी, तो अपने घर पर ही जाकर उसने दम लिया। गृहिणी कमरे में आकर पलंग पर लोट-पोट होकर हँसने लगी।

(२)

जैसे बिजली कौंधा मार गई हो। राजेश्वर भौचक-से रह गए। वह एक क्षण भी उस ज्वलंत चांचल्य को आँख भरकर न देख सके। मानो उनके शरीर का सारा रक्त दिमाग़ में इकट्ठा हो गया हो, और नसों में पारा भर गया हो। परंतु वह शीघ्र ही संयत हो गए। वह चुपचाप अपने काग़ज़ात देखते रहे, पर उनका कलेजा धड़क रहा था। वह रह-रहकर सोच रहे थे, अजब साहसी और चपल लड़की रही यह। कैसे वह एकाएक आई, और भाग गई। क्या यह सब कुमुद की कारस्तानी नहीं ? पर कैसी भद्दी, कैसी वाहियात, ये लोग भी क्या कहेंगे। यह सोचते-सोचते उन्होंने आँख उठाकर दबी नजर से अपने मुवक्किलों को देखा, और फिर उनकी दृष्टि नाश्ते की तश्तरी पर जाकर अटक गई। एक मुवक्किल ने कहा—"वकील साहब, आप पहले नाश्ता कर लीजिए, यह तो काम होता ही रहेगा।" वकील साहब अब भी आपे से बाहर थे। उनके मन में एक द्वंद्व मच रहा था। वह अकारण ही हँस पड़े, पीछे अपनी हँसी से स्वयं चौंक भी पड़े। उन्होंने नाश्ते की तश्तरी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—"आप लोगों के लिये भी कुछ मँगाया जाय ?"

"जी नहीं, आपकी कृपा है।"

वकील साहब नाश्ता कर फिर कागज़ देखने-भालने लगे। पर अब उनका मन काम मे लगा नहीं। वह मुवक्किलो को विदा कर भीतर आए। देखा, कुमुद की आँखे चुपचाप हँस रही और होठ रह-रहकर फड़क रहे है।

उन्हें देखते ही कुमुद खिलखिलाकर हँस पडी।

राजेंद्र ने कहा—"यह क्या बेवकूफ़ी की ?"

"कहिए, नाश्ते मे स्वाद आया ?"

"उसे वहाँ भेजा क्यों ?"

"क्या वह अच्छी नहीं लगी ?"

"पर वहाँ भेजना सरासर बेवकूफ़ी थी।"

"पर थी मजेदार।" कुमुद फिर हँस दी। वकील साहब कुर्सी पर बैठकर बोले—"यह ठीक नहीं किया, वहाँ बहुत लोग थे।"

"वे क्या उसके ससुर थे ?"

"हँसी की भी एक हद होती है, मर्यादा से बाहर जाना ठीक नहीं।"

"मर्यादा के बाहर क्या हुआ ?"

"ग़ैर लड़की को अकेला मर्दों में भेजना ठीक नहीं।"

"पर वह तो आपकी साली साहबा है, ग़ैर नहीं।"

"मुझे सालियो की ज़रूरत नहीं।"

"आपकी जरूरत को कौन पूछता है ?"

"आइंदा फिर ऐसा कभी न करना।"

"देखा जायगा।"

"अभी तुम्हारा अलहड़पन नहीं गया।"

"जी नहीं, मुझे वकीलों की तरह लंबा मुँह बनाकर क़ानूनी बहस नहीं करनी पड़ती।"

"मैं तुमसे बहस नहीं करता, उस आफ़त को अब कभी घर न बुलाना, न उसकी चर्चा करना।"

"वह मारा ! आफ़त, आफ़त, आफ़त, मन की बात तो मुँह से निकल गई। मालूम होता है, मन को भा गई।" वह हसते-हँसते लोट गई। राजेश्वर झुँझलाकर घर से बाहर निकल गए।

(२)

वह सीधे क्लब गए। वहाँ जी न लगा, तो घूमने दूर तक निकल गए। वहाँ भी मन न लगा, तो एक दोस्त के घर जाकर शतरंज खेलने लगे। पर कहीं भी उनका मन नहीं लगा। वह अन्यमनस्क-से घर लौटे, चुपके से खाना खाया, और अख़बार ले बैठे। उनके मन में वही 'आफ़त' रम रही थी। वह बिजली की तरह प्रकाश-पुंज को लपेटे कमरे में घुसना और तूफ़ान की तरह निकल भागना, आँधी की भाँति सब कुछ बखेर जाना, ये ही सब बाते उनके दिमाग़ में हलचल मचा रही थीं। वह इस बात पर हैरान थे कि कुमुद ने भोजन के समय न उसकी चर्चा की, न हँसी। उन्हे बहुत आशा थी कि उसकी बात सुनेगे। वह अख़बार लिए आराम-कुर्सी पर देर तक पड़े-पडे ऊँघने लगे। झपकी लगते ही देखा, वही 'आफ़त' उसी भाँति झपटकर उनके सामने आ खड़ी हुई है। वह हड़बडाकर उठ बैठे, मानो उसे पकड लेंगे। पर खड़े होकर, आँख खोलकर देखा, कुमुद दूध का गिलास लिए खड़ी है। वह ख़ूब गंभीर बनी खड़ी थी। उसे सामने देख राजेंद्र अपनी बेवक़ूफ़ी पर झेप गए। वह चुपचाप कुर्सी पर बैठ गए। फिर बेवक़ूफ़ की भाँति हँसकर बोले—"मुझे नींद आ गई ?"

"जी हाँ, उसी मे कुछ सपना देखकर शायद हड़बडाकर उठ पड़े, पर सामने कोई और ही खड़ा मिला। लीजिए, दूध पी लीजिए, और फिर आराम से रात-भर सपने देखिए।" कुमुद ने अब भी अपनी गंभीरता भंग न की।

राजेंद्र सोच ही न सके, क्या जवाब दें, वह चुपचाप दूध पीने लगे। कुमुद उन्हें एक पान देकर

चलने लगी, तो राजेंद्र ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"भागती कहाँ हो, अपनी उस नई सखी का सब हाल सुनाओ।"

"जी, उसकी बात न कीजिए।"

"नहीं-नहीं, बताओ तो, तुमने क्या समझकर उसे वहाँ भेजा था?"

"जी नहीं, श्रीमान्‌जी, उसकी बात करने का मुझे हुक्म नहीं है।"

राजेंद्र ने कुमुद को खींचकर कुर्सी पर गिरा दिया, और दोनो हाथो से गला दबाकर कहा—"बोलो, नहीं तो गला घोट दूँगा।"

"घोट दीजिए श्रीमान्‌जी, पर एक साँस ले लेने दे।"

"अच्छा, लो एक साँस।"

कुमुद झटका देकर उठी, और राजेश्वर को गिराती तथा कुर्सी में अटकी अपनी साड़ी फाड़ती और हँसती हुई वहाँ से भाग गई।

राजेश्वर बक-झक करते ही रह गए।

(४)

वकील साहब की उम्र ४० को पार कर गई थी। वह बहुत गंभीर और उदासीन प्रकृति के आदमी थे। अपने मुवक्किलों मे वह रूखे और खरे तथा अदालत मे तीखे आदमी प्रसिद्ध थे। बहुत कम उन्हें हँसी-दिल्लगी करते देखा गया था। उनके यार-दोस्त भी कम थे। रसिकता नाम की कोई वस्तु उनमें थी ही नहीं। परंतु किशोरी जैसे उनकी आँखों में तप्त सलाई की भाँति घुस गई हो। उनका मन न कचहरी मे लगता था, न मुवक्किलों में। वह कुमुद से उसकी चर्चा करते भय खाते थे, पर घर में आते ही चारो ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखते कि क्या किशोरी कहीं दीवार के कोने में छिपी तो नहीं है। वह बड़ी सावधानी से घर में घुसते। वहाँ कुमुद किशोरी की कुछ चर्चा करती है या नहीं, इस बात की वह बराबर टोह रखते। कुमुद उनकी सदैव ही प्रतीक्षा करती मिलती। वह मानो मन-ही-मन पति की इस भावना को समझ गई थी, इसीलिये उन्हे देखते ही उसकी सदा की हँसती हुई आँखें और भी उत्फुल्ल हो जाती थीं।

दोपहर का समय था। कचहरी की छुट्टी थी। वकील साहब भोजन कर चुपचाप पलंग पर पड़े पान कचर रहे थे। कुमुद नीचे कालीन पर बैठी छालियाँ काट रही थी। पति-पत्नी दोनो के मन मे एक ही बात थी, परंतु दोनो ही वह बात कह नही सकते थे। कुमुद यह कठिनाई देख मुस्किरा रही थी। वकील साहब झेपकर छिपी नज़रों से कुमुद को देख रहे थे।

उन्होंने साहस करके कहा—

"हँस क्यो रही हो?"

"रोऊँ क्या?"

"कुछ सोच रही हो, भला क्या बात तुम्हारे मन में है?"

"तुम्हीं बताओ, तुम तो अंतर्यामी हो।"

"हूँ तो, पर बताऊँगा नही।"

"जाने दो।" कुमुद फिर छालियाँ काटने में जुट गई। इस बार उसकी हँसी रुक न सकी। वह मुँह फेरकर हँसने लगी।

"तुम मुझे बेवक़ूफ़ समझती हो, क्यों?"

"बेशक, इसमें आपको कुछ आपत्ति है?"

"मैं बेवक़ूफ़ क्यों हूँ?"

"यों कि विना बात रार बढ़ाते हो, सो नहीं जाते।"

"तब मैं सोता हूँ।" कहकर राजेंद्र करवट बदलकर सो गए।

कुमुद ने और बाते नही कीं, वह वहाँ पर बैठी सरौता चलाती तथा धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाती रही। कुमुद से कुछ सुनने की आशा करते-करते राजेश्वर सो गए।

आँख खुलने पर उन्होंने सुना, कुछ लोग उनके पलंग के पास बैठकर धीरे-धीरे बातें कर रहे है। क्षण-भर बाद उन्होने देखा, कुमुद और किशोरी हैं। राजेंद्र को जागता देख वह सिकुडकर उठ भागने की तैयारी करने लगी। पर कुमुद ने एक बार पति की ओर वक्र दृष्टि से देखा, ज़रा मुस्किराई, और किशोरी का हाथ पकड़कर गिरा दिया।

राजेश्वर ने रसिक की भाँति कहा—"यह हाथा-पाई क्या हो रही है?"

"फिर? आपको ज़ामिनं किसने बनाया है? मेरा घर है, मै जो चाहूँगी, करूँगी।"

"कभी नहीं, अपना घर होने ही से क्या हुआ, किसी पर अत्याचार न करने पाओगी, यह अँगरेज़ी राज्य है, समझीं?"

"समझी, और आप है एक नामी-गिरामी वकील, परंतु यहाँ कच्चे मुवक्किल नही। वकालत रहने दीजिए, एक धेला भी नहीं मिलेगा।"

राजेद्र उठकर हँसते हुए बैठ गए। किशोरी ने लजाते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजेद्र ने उसे आँख भरकर देखना चाहा, पर न देख सके। वह दूसरी ओर मुख करके हँसने लगे।

कुमुद ने कहा—"अब आप खिसकिए। वहाँ मुवक्किल लोग बैठे है, मुंशी कई बार आ चुका है।"

किशोरी ने धीरे से कहा—"जीजी, उन्हे घर से क्यो भगाती हो?" कुमुद ने कहा—"यह वकीलो की वकालत होने लगी।"

राजेश्वर ने अब एक बार किशोरी को भली भाँति देखा, वह लजाकर सिकुड गई।

राजेश्वर ने बातचीत का बहुत कुछ आयोजन किया, पर उन्हें कहने योग्य कोई बात ही न सूझ पड़ी। वह उठकर चलने लगे।

कुमुद ने इसी बीच उठते-उठते कहा—"आपके लिये नाश्ता लाती हूँ।" कुमुद उठ गई। किशोरी ने उठकर कुमुद के साथ जाना चाहा, पर वह उठ भी न सकी, और बैठना भी उसके लिये भार हो गया। फिर भी वह चुपचाप धरती पर बैठी रही। बहुत चेष्टा करने पर भी राजेश्वर उससे एक शब्द भी न कह सके, उसकी ओर देख भी न सके।

कुमुद दो तश्तरियो मे नाश्ता सजा लाई। एक तश्तरी पति के आगे रखकर दूसरी किशोरी के आगे रख दी, और मुस्किराकर उसे खाने का अनुरोध किया।

किशोरी वहाँ से भागने की जुगत में थी, पर यही सबसे कठिन था, वह कुमुद से और भी अधिक सटकर बैठ गई। कुमुद ने बल-पूर्वक उसके मुँह मे इमर्ती ठूँस दी। उसने आँचल से मुँह छिपा लिया।

ये सभी दृश्य राजेश्वर के लिये असाधारण प्रभावशाली थे। किशोरी घबराकर, वहाँ से उठकर जाने लगी। कुमुद ने बहुत रोका, पर वह चली गई।

राजेश्वर मन के उद्वेग को न रोककर बोले—"उसे नाराज़ क्यो कर दिया।"

"क्या आपको ज़्यादा बुरा लगा?"

"उसे मनाना चाहिए।"

"तब मना लाइए।"

"मै उससे क्या बोलूँगा, तुम उसे बुला लो।"

कुमुद ने बाहर आकर देखा, वह खड़ी हुई मिसरानी से बाते कर रही है। कुमुद ने भीतर पति की ओर ताककर कहा—

"अब आप बाहर तशरीफ़ ले जाइए, तब वह आवेगी।" राजेश्वर चले गए। कुमुद ने किशोरी से कहा—

"आ किशोरी, वह चले गए, अब क्यो भागती है?"

किशोरी ने गर्दन टेढ़ी करके, ज़रा हँसकर कहा—"उन्हे क्यों भगा दिया?"

"तब बुलाऊँ फिर?"

किशोरी हँसते-हँसते कुमुद से लिपट गई, उसने कहा—"जीजी, यह तो बहुत अच्छे हैं।"

पति की इतनी मधुर आलोचना सुनकर कुमुद आनंद-विभोर हो गई। उसने किशोरी के तड़ातड़ चुंबन पर चुंबन ले डाले।

(४)

उस दिन कोई पर्व था। कुमुद बहुत जल्द उठकर यमुना-स्नान को चली गई थी। महाराजिन उसके साथ गई थी, घर में नौकर छोकरा झाड़ू लगा रहा था। राजेश्वर मीठी नींद में पड़े थे, कुमुद ने उन्हें जगाया भी न था, जताया भी न था। वह बहुधा ऐसा ही करती थी।

आँख खुलने पर राजेश्वर ने देखा, बिस्तरे पर कुमुद नहीं है। उन्होंने छोकरे को पुकारकर पूछा, तो मालूम हुआ, वह महाराजिन को साथ लेकर स्नान को गई है।

"गाड़ी ले गई हैं या नहीं?"

इसका अनुकूल उत्तर पाकर वह फिर आँख बंद करके पड़ रहे। छोकरा बाहर दफ़्तर में झाड़ू लगा रहा था। राजेश्वर चुपचाप पड़े थे। प्रातःकाल का मधुमय समीर बह रहा था। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि घर में कोई घुसा है। उसके घुसने से घर मे सौरभ का प्रसार हुआ है। उन्होंने समझा, कुमुद स्नान करके साथ मे बहुत-से फूल और चंदन लेकर वापस आई है। उसके सामने अभी तक पड़े सोते रहने का स्वाँग करके अहदीपन का ख़िताब तथा एक-आध जली-कटी सुननी चाहिए।

कुछ देर चुपचाप पड़े रहने पर भी उन्हें कुछ खटका नहीं प्रतीत हुआ। उन्होने मुँह उघारकर देखा, द्वार के पास किवाड़ से सटी हुई किशोरी खड़ी है। उसे भ्रम था कि कुमुद सो रही है, वह चुपचाप उसे जगाने की जुगत मे थी। पर निर्णय नहीं होता था। अब एकाएक राजेश्वर को सामने देखकर वह घबरा गई। पर वह भागी नहीं, उसने अपने को सँभाला, और मुस्किराकर राजेश्वर को प्रणाम किया।

आज इस समय इस शून्य घर मे किशोरी को इस अवस्था में देखकर राजेश्वर के शरीर में प्रसुप्त वासना का एकबारगी ही उदय हो गया। क्षण-भर वह श्वास भी न ले सके। कुछ देर वह उसे न देख सके, न एक शब्द कह सके।

किशोरी यह देख वहाँ से खिसक चली। राजेश्वर ने कठिनाई से कहा—"जाती कहाँ हो किशोरी? कैसे आई थी?" "मै बहनजी को बुलाने आई थी, जमुना जाना था, रात उन्होंने कहला भेजा था, वह कहाँ है?"

राजेश्वर ने झूठ बोल दिया—"ठहरो, वह अभी आती है।" झूठ कहकर वह मानो थर-थर काँपने लगे। उनका कंठ सूख गया। उन्हें मानो ज्वर का वेग हो गया। उन्होंने सूखे कंठ से कहा—

"बैठो किशोरी।"

किशोरी खड़ी ही रही। वह कुछ भी न निर्णय कर सकी। न वह जा ही सकी। इस बीच में राजेश्वर साहस करके उठकर उसके पास आए। उसने समझा, वह बाहर जा रहे है। वह द्वार से हटकर कमरे मे एक ओर हो रही।

हठात् राजेश्वर ने उसका कंधा छूकर कहा—"किशोरी, क्या तुम मुझसे डरती हो?"

किशोरी के शरीर मे रक्त की गति रुक गई। वह पीपल के पत्ते की भाँति काँपने लगी। वह सिकुड़कर वहाँ से चलने लगी।

राजेश्वर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"किशोरी, मैं तुम्हे प्यार करता हूँ। किसी से कहना नहीं, कुमुद से भी नहीं।"

किशोरी ने थोड़ा बल किया, पर जब वह हाथ न छुड़ा सकी, तो उसने आर्तनाद करके कहा—"छोड़िए, मैं जाती हूँ।"

"नहीं किशोरी, जाओ नहीं, मैं तुम्हें देखने को सदैव पागल रहता हूँ।"

किशोरी की आँखों मे आँसू भर आए। उसने रोते-रोते कहा—"छोड़िए, छोड़िए, नहीं, छोड़िए।"

"राजेश्वर धीरे-धीरे पाशविक वासना से ओत-प्रोत हो रहे थे। उन्होंने और भी कसकर उसका हाथ पकड़ लिया, और सूखे गले तथा भर्राई आवाज़ मे कहा—"किशोरी, मेरा प्राण निकल जायगा, मैं तुम्हे प्राण से अधिक चाहता हूँ।" उन्होंने उसे खींचकर अपने निकट कर लिया। किशोरी भयभीत होकर एकबारगी ही चिल्ला उठी। यह देखकर राजेश्वर ने अपने बलिष्ठ हाथों से उसका मुँह बड़े ज़ोर से दबाकर उसे धरती पर पटक दिया।

अकस्मात् ऐसा पाशविक आक्रमण किशोरी न सह सकी। वह सके की हालत मे करुण दृष्टि से राजेश्वर को देखने लगी। उसके मुँह से शब्द भी न निकले। धीरे-धीरे वह बेहोश होने लगी। राजेश्वर ने उसे अपने हाथो मे ऊपर उठाया। उसका खुला मुख, अधखुली आँखे और शिथिल शरीर एवं विमुक्त अलकावलियाँ, प्रभात की उन्मुक्त वायु का झोका, सभी ने राजेश्वर की पशु-वासना को अंधा बना दिया। वह घोर अपवित्र भावना से उस महापवित्र कुमारी का मुख-चुंबन करने को नीचे झुके।

एक तीव्र झंकार से चौकन्ने होकर उन्होने पीछे देखा। कुमुद द्वार पर भौचक खड़ी है। उसके हाथ से फूल, चंदन और जल की झारी से भरा थाल छूटकर फ़र्श पर झन्न से गिर गया है। क्षण-भर मे ही वह सब कुछ समझ गई। वह अग्निमय नेत्रों से पति को देखती हुई भीतर चली आई। राजेश्वर से उसने एक शब्द भी न कहा। वह चुपचाप किशोरी को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर चले गए।

कुमुद ने किशोरी को झटपट उठाकर पलंग पर सुलाया। परंतु इससे प्रथम ही वह होश में आ गई थी। वह कुमुद को देखते ही जीजी कहकर उसके गले से लिपटकर रोने लगी। कुमुद भी खूब रोई। किशोरी ने अंत मे कहा—"जीजी, क्या वह ऐसे हैं?"

"किशोरी, मुझे इसका स्वप्न मे भी गुमान न था। मै पृथ्वी में सबसे अधिक गर्व अपने पति पर करती थी, और उन्हें अपने प्रेम के कवच से रक्षित समझती थी। आज मैंने उन्हे पहचाना। किशोरी, मै बड़ी ही अभागिनी और अधम नारी हूँ।"

"नहीं जीजी, ऐसा न कहो, तुम्हारा इसमें क्या दोष है।"

"सब मेरा ही दोष है। मैंने ही तुझे उनके सामने भेजा, हँसी की, और उनमें साहस उत्पन्न किया। पर मुझे क्या मालूम था कि विनोद को भी यह पापी व्यक्ति पाप के रूप में ही काम में लाता है।"

किशोरी कुछ न कहकर उठ खड़ी हुई। कुमुद ने कहा—"क्या जाती हो? अभी न जाने पाओगी।"

"क्यों?"

"क्या तुम मुझसे भी घृणा करती हो?"

"नहीं जीजी।" किशोरी की आँखों में आँसू भर आए।

"वैसा ही समझती हो?"

"वैसा ही।"

"तब अभी ठहरो, मैं तुझे साथ चलकर पहुँचा दूँगी।"

"अभी चलो जीजी।"

"ज़रा ठहर, एक और वचन लूँगी।"

"क्या?"

"यह बात कभी किसी से न कहेगी, कभी भी।"

"न कहूँगी।" किशोरी ने उदास स्वर मे कहा।

"और यहाँ बराबर उसी भाँति आती रहेगी।"

किशोरी ने कातर दृष्टि से कुमुद को देखकर कहा—"न-न, यह न होगा जीजी।"

"तब मैं ज़हर खाकर प्राण त्याग दूँगी।"

"ना जीजी, यह क्या कहती हो।"

"तुझे नित्य इसी भाँति आना पड़ेगा।"

"परंतु ....।"

"मेरे दम मे दम है, वहाँ तक कोई तुझे छू भी न सकेगा, आँख उठाकर भी न देख सकेगा।"

"मै आऊँगी जीजी।" किशोरी ज़ोर से रोकर कुमुद से लिपट गई। कुमुद रोई नहीं। वह कुछ देर चुपचाप उसे छाती से लगाए खड़ी रही। इसके बाद उसने उसे कुर्सी पर बैठाकर कहा—

"अब यहीं नहा ले, फिर भोजन करके घर चलेगे। मैं माताजी को कहलाए भेज देती हूँ।"

कुमुद ने यही किया। वकील साहब विना भोजन किए ही कचहरी भाग गए। कुमुद ने भी कुछ भोजन नहीं किया। किशोरी ने नाम-मात्र को खाया। इसके बाद कुमुद किशोरी के घर जाकर उसे वहाँ छोड़ आई। उस दिन संध्या तक वह वहीं रही। चलती बार एकांत पाकर उसने किशोरी के पैर छूकर कहा—"किशोरी, मेरी इज़्ज़त तेरे हाथ है। तूने जो वचन दिया है, पूरा करना।"

किशोरी ने कुमुद की गोद मे मुँह छिपाकर कहा—"यह क्या कहती हो जीजी, प्राण जायँ, पर वह बात मुँह से न निकलेगी।"

कुमुद ने व्याकुल दृष्टि से उसे ताकते हुए कहा—"तुझे साक्षात् होने पर उनसे उसी भाँति बोलना, व्यावहारिक करना पड़ेगा, जिस भाँति अब तक करती रही है।"

किशोरी ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"मै करूँगी जीजी!"

कुमुद उसे छाती से लगा और प्यार करके घर चली आई।

(६)

रात को राजेश्वर साहस करके घर मे आए। कुमुद फ़र्श पर बैठी कुछ फटा वस्त्र सी रही थी। वह सामने कुर्सी पर बैठकर अकारण ही हँसने लगे।

कुछ ठहरकर कुमुद ने कहा—"भोजन हुआ या नहीं, मैं ज़रा किशोरी के घर गई थी।"

"भोजन कर लिया।" वह फिर हँसने लगे।

कुमुद अपना वस्त्र सीती रही। उसने सीते-सीते ही कहा—"आप सुबह खाना विना खाए ही क्यो चले गए थे?"

"भूख ही नहीं थी, फिर तुम्हारे तीखे नयनो का भी भय था।" वह फिर ही-ही करके हँसने लगे।

कुमुद ने वस्त्र और सुई एक तरफ़ रख दी। वह एक कुर्सी खींचकर पति के सामने बैठ गई। उसने कहा—"आज बहुत हँसी आ रही है, इसका कारण क्या है?"

कुछ भी जवाब न देकर राजेश्वर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे। इसके बाद वह कचहरी, मुवक्किल आदि की बहुत-सी फालतू बातें बक गए। कुमुद ने सहज-गंभीर स्वर मे कहा—"सुबह की घटना का क्या कारण था?"

राजेश्वर सहम गए, परंतु वह फिर ही-ही करके हँस दिए। उन्होंने कहा—"उसी ने छेड़-छाड़ की थी।"

"उसने क्या किया था?"

"छेड़-छाड़।"

"अच्छा! फिर आपने क्या किया?"

"मैंने भी वही किया।" वह फिर ही-ही करके हँसने लगे।

"अर्थात्?"

"अर्थात्?" वह फिर हँसने लगे।

कुमुद ने कहा—

"आपने भी छेड़-छाड़ की।"

"की तो।"

"क्यो?"

कुमुद के प्रश्न का लहज़ा देखकर वकील साहब ज़रा सिटपिटाए, पर फिर उन्होंने हँसकर कहा—

"मेरा क्या क़सूर है, वह क्यों आई थी मेरे पास ?"

"क्या आप समझते है, वह इसीलिये आई थी ?"

"इसीलिये आई होगी ।" राजेश्वर पत्नी की आँखो मे दृष्टि न मिला सके, वह उधर देखने लगे । वह हँस भी न सके ।

कुमुद ने अपने वस्त्र से पिस्तौल निकालकर धीरे से उसका घोड़ा दबाया । यह देख राजेश्वर का रोम-रोम काँप गया । वह कुर्सी से उछलकर उठ खड़े हुए । उन्होंने चीख़कर कहा—'यह क्या ? क्या तुम मुझे गोली मारोगी ?"

"अभी नहीं, मैं यह देख तो लूँ, क़सूर किसका था । उसे ही गोली मारी जायगी । हाँ, श्रीमान्‌जी, कहिए, वह क्या इसीलिये आई थी ?"

'मै कैसे कह सकता हूँ ?"

"तब आपने यह कहा कैसे ?"

राजेंद्र कुछ भी जवाब न देकर इधर-उधर ताकने लगे ।

कुमुद ने खड़े होकर कहा—"बैठ जाइए श्रीमान्, आप ठीक-ठीक बताइए कि वह क्यो आई थी ?"

"यह मै नहीं जानता ।"

"आप अवश्य जानते है ।"

"मै नहीं जानता ।" उन्होंने क्रोध के स्वर मे कहा ।

"क्या आप इस समय क्रोध भी करने की हैसियत रखते हैं ?"

"कहिए, वह क्यो आई थी, सत्य कहिए, आप मेरे पति है, मैंने आपको देवता समझा है ।"

"वह तुम्हे जमुना ले जाने के लिये आई थी ।"

"तब आपने उसे छेड़ा ।"

राजेश्वर ने नीची गर्दन किए धीमे स्वर में कहा—"हाँ ।"

"उसने क्या किया ?"

"मिन्नतें कीं, फिर भय से बेहोश हो गई ।"

"आपने यह कुकर्म क्यों किया स्वामी !"

राजेश्वर चुपचाप कुमुद के मुख को ताकते रहे । वह बोल न सके ।

कुमुद ने कहा—"मेरा जीवन, गृहस्थ, धर्म, पुण्य, सभी अकारथ हुआ, जिसे मैंने देवता समझकर पूजा, वह अब इतने दिन बाद पशु प्रमाणित हुआ ।"

राजेश्वर चुप बैठे रहे ।

"कहिए स्वामिन्, मेरे पूज्य देवता, क्या मैंने नित्य आपके पैरो की धूल मस्तक पर नहीं लगाई ?"

राजेश्वर चुप रहे ।

"क्या मैंने सदा आपकी परछाईं को अपने समस्त प्राण और शरीर से अधिक पवित्र नही समझा ?"

राजेश्वर फिर भी नहीं बोले । कुमुद ने फिर कहा—"क्या मैंने अनगिनत व्रत-उपवास करके आपके जीवन, आपके प्राण, आपके व्यक्तित्व की रक्षा के लिये देवताओ से याचना नहीं की ? क्या इस पृथ्वी पर आपके समान पवित्र, महान् सद्गुण-युक्त पुरुष मेरी दृष्टि में दूसरा है ?" राजेश्वर की आँखो मे आँसू आकर बहने लगे । उनके होंठ हिले, पर वह कुछ कह न सके ।

कुमुद के स्वर मे दृढ़ता थी, उसने कहा—"श्रीमान्‌जी, क्या आपके घर मे आने पर किसी भले घर की बेटी की इज़्ज़त की रक्षा भी संभव नही हो सकती ? आपकी धर्मपत्नी से मिलने क्या किसी की बहू-बेटी का यहाँ आना इतना भयानक है ? आप वकील है, प्रतिष्ठित हैं, विद्वान् हैं । लोग आपको सलाम करते, आपको हुज़ूर, सरकार कहते, आपको बड़ा समझते है । आप एक जिम्मेदार सद्गृहस्थ है, पर क्या इन सब उत्तरदायित्व की बातो को आप पहचानते हैं ? क्या कुमारी कन्याओ की माताएँ आपकी पत्नी की पवित्रता पर विश्वास करके अपनी पुत्रियो को भेज देती हैं, तो यह उनकी भारी भूल नहीं ? क्या आपका घर एक

अपवित्र और सामाजिक जीवन का दुर्घट स्थान नहीं।"

राजेश्वर ने आवेश मे आकर कहा—"कुमुद, तुम मुझे गोली मार दो, अथवा पिस्तौल मुझे दो। मैं स्वयं इन पतित प्राणों का अपहरण करूँगा। मुझे अब लज्जित न करो।"

कुमुद ने अति गंभीर वाणी से कहा—"स्वामी, क्या कभी और कही भी आपने ऐसा पाप किया था?"

"नहीं कुमुद।"

"मन, वचन, कर्म से?"

"कभी नहीं, कुमुद, क्या तुम विश्वास न करोगी, मैं विश्वास के योग्य नहीं रहा।"

वह कुर्सी छोडकर धरती पर बैठ गए, और दोनो हाथो से मुँह ढँककर रोने लगे।

कुमुद ने पिस्तौल स्वामी के आगे रखकर कहा—"इसमे अपराध मेरा है, आप मुझे गोली मार दीजिए। मैं आत्मघात न कर सकूँगी।"

'तुम्हारा क्या अपराध है कुमुद।"

"मैंने ही इस पाप का बीज बोया, मर्यादा के विपरीत उस कन्या को हास्य में तुमसे परिचित कराया, तुम्हारा और उसका भी साहस बढ़ाया। परंतु मुझे यह स्वप्न मे भी कल्पना न थी कि पुरुष इतने पतित होते हैं। स्वामी, स्त्री एक ऐसी कोमल लता है, जो पुरुष-रूपी दृढ़ वृक्ष के सहारे लिपटी रहती है। पुरुष स्त्री के लिये आदर्श वस्तु है। स्त्रियाँ हर बात मे पुरुष को श्रेष्ठ और आदर्श मानती हैं। पर पुरुष यदि आदर्श से इतने गिर जायँ, तो फिर जीवन के एकांत क्षण भी विनोद और सरस जीवन से रहित हो जायँ।"

"तुम सच कहती हो कुमुद। परंतु इसी युक्ति के आधार पर मैं कहता हूँ कि तुम अपराधिनी नहीं। यदि तुमने अपने दांपत्य-परिधि के विनोद में उस बालिका को सम्मिलित किया, तो इसमें तुम्हारा दोष न था। तुम मेरी पत्नी हो, यह मुझे समझना चाहिए था। वह तुम्हारी सखी है। इसकी मर्यादा का पालन मुझे करना था। कुमुद, मै समझ गया। पतित तो मैं हूँ, पाप तो मैंने किया है, परंतु वह तुम्हें पापिनी समझेगी। वह यही समझेगी कि यह चरित्रहीना स्त्री पराई बहू-बेटियो को सहेली बनाकर अपने पति से संश्लिष्ट कराती है। हाय, मैं यह कैसे सुन सह सकूँगा कुमुद?"

"वही तो स्वामी, उत्तम है, तुम मेरा प्राण हरण करके स्वयं भी आत्मघात कर लो। पिस्तौल में ३ गोलियाँ हैं।"

कुछ देर राजेश्वर स्तब्ध बैठे रहे। इसके बाद उन्होंने कहा—"नहीं, कुमुद, यह ठीक दंड न होगा। हमे प्राणनाश न करना चाहिए। क्या तुम विश्वास करती हो कि मेरी प्रवृत्ति बदल गई है। तुम्हारी सखी के प्रति मेरे भाव अब क्या हैं, जानती हो?"

"कुछ-कुछ।"

"और सदैव, आजन्म, संसार-भर की स्त्रियों के प्रति मेरे क्या भाव रहेंगे, यह भी समझ गई?"

"समझ गई।"

"प्रिये, इस पाप का हम दोनो ही को प्रायश्चित्त करना होगा।"

"कौन प्रायश्चित्त?"

"अब सो रहो, सुबह कहूँगा।"

"अच्छी बात है, उसमे एक अनुष्ठान जोड़ देना होगा।"

"वह क्या?"

"तीन वर्ष तक हम दोनो पृथक् कमरों में शयन करेंगे।"

"अच्छी बात है।"

"कभी स्पर्श न करेंगे।"

"अच्छा।"

"यह बात कभी किसी पर किसी भाँति प्रकट

न की जायगी। यदि प्रकट हो गई, तो उसी दिन से फिर तीन वर्ष गिने जावेंगे।"

"अच्छा, कुमुद, यही होगा।"

"हम लोग भूमि पर सोवेंगे, एक वक़्त भोजन करेंगे।"

"मंज़ूर है।"

"तब स्वामी, आज के मेरे इस अप्रिय व्यवहार पर दया कीजिए। जाइए। बाहर आपके शयन की व्यवस्था हो जायगी।"

राजेश्वर चुपचाप चले गए।

(७)

होली का दिन था। कुमुद रसोई बना रही थी। एक थाल को आँचल से छिपाए किशोरी वहीं पहुँच गई। वह बहुमूल्य गुलाबी साड़ी पहने थी। कुमुद के सामने आकर वह खड़ी-खड़ी हँसने लगी। कुमुद ने उसे भोजन का निमंत्रण दिया था। इतनी जल्द उसे आया देखकर उसने कहा—"इतनी भूखी हो? अभी से आ गईं। अभी तो कुछ बना भी नहीं।"

"मैं बना लूँगी, परंतु पहले इधर देखो।" उसने थाल की ओर इशारा किया।

"यह क्या है री?"

उसने थाल पर से आँचल हटाया। उसमें रोली, गुलाल, रंग और कुछ मिठाई थी। उसने लज्जा से लाल चेहरे को ऊपर उठाकर कहा—"मैं जीजाजी से होली खेलने आई हूँ।"

"पागल हुई है क्या?"

"जो समझो। उन्हें बुला दो न।"

"इसकी ज़रूरत नहीं है, तू बैठ।"

"मैं स्वयं बुला लाती हूँ।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता।" कुमुद ने रूखे स्वर में कहा। किशोरी की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। वह उसी भाँति थाल लिए खड़ी रही।

उसकी आँखों में आँसू देख कुमुद रसोई छोड़, उठकर उसके पास आई। उसके आँसू पोछकर कहा—"रोती क्यो है री पगली।"

"मैं होली खेलकर जाऊँगी। उस दिन तुमने क्या कहा था, जानती हो?" कुमुद ने क्षण-भर किशोरी की ओर देखा। उसकी आँखे भर आईं। वह विना कुछ कहे राजेश्वर को बुला लाई।

भीतर आकर राजेश्वर ने देखा, किशोरी चुपचाप थाल गोद में लिए खड़ी है। उसकी शोभा ओस से भीगे गुलाब के समान थी। उन्होने मुस्किराकर कहा—"मामला क्या है? बेवक़्त की तलबी क्यो?"

"आपकी साली साहबा होली खेलने आई है। जूता उतारकर भीतर आइए।"

राजेश्वर भीतर आकर चौकी पर बैठ गए। किशोरी ने सामने बैठ, थाल चौकी पर रख उनके माथे पर गुलाल लगा रोरी का टीका दिया, फूलो की माला पहनाई, और ऑचल गले में लपेट उसने झुककर राजेश्वर के पैर छुए। फिर मुस्किराकर धीमे स्वर में कहा—"इसमें से कुछ मिठाई खाइए।"

राजेश्वर ने बल-पूर्वक आँसू रोककर मिठाई का एक टुकड़ा खाया। इसके बाद एक सौ रुपए का नोट किशोरी की गोद में डाल थाल से अजलि-भर फूल उठा किशोरी पर बरसा दिए। वह चले गए। उनके होठों पर हास्य और आँखों में आँसू भरे थे।

चयन

१. प्रेम

प्रातःसमीर से मंथर - गति
ले तव प्रेम - उमंगें—
निष्प्रभ नीरव हृद - तट पर
सकुचाई - सी टकराती।
पर तपित दग्ध थल छूकर,
हो स्वयं अग्नि ज्वाला - सी,
दावाग्नि प्रज्वलित करती,
चिनगारी - सी उड़ जाती।
मम मानस - सर की कलिका
यदि एक बार खिल जाती,
उर - द्रवित - अश्रु - सरिता से
सिंचन कर अमर बनाती।
प्रेमानिल मधुमय झोंके
दे - देकर तुम्हे झुलाती;
पीड़ा वीणा - स्वर बनकर
हृत्तंत्री से मिल जाती।
आशा शत - कली कुचलकर
सुरभित परिमल भर तुझमे—
उत्कट चिर - इच्छाओ से
अनुराग - राग रँग देती।
चिर-संगिनि! निज श्वासों से
तव प्रेम - पराग उड़ाती।
मम मूक व्यथाएँ अलि हो,
रजित हो, तव गुण गाती।

(कुमारी) शकुंतला सकसेना 'शक्ति'

× × ×

२. चित्रकार

लोग बाग कहा करते थे कि वह चित्रकार है। मगर पुरा-पडोस मे उसकी चर्चा चलती, तो बहुत-से भले आदमी उपेक्षा के भाव से कह डालते थे—"उँह, होगा। इस नगर मे ऐसे चित्रकारों की कमी नहीं बेचारे गली-गली मारे फिरते है।"

और, उनका यह उपेक्षा-जन्य भाव अकारण नहीं था। बात यह थी कि वह बहुत गरीब था। उसने एक तंग गली में एक छोटा-सा कोठा भाड़े पर ले रक्खा था, जिसमें न सफ़ाई थी, न सजावट और न सुंदरता। वह दिन-भर उसी में बैठा रहता, मैले-कुचैले कपडे पहने, विषाद के वायु-मंडल से घिरा हुआ, चुपचाप एकाग्र मन से चित्र-पट पर अपनी तूलिका चलाया करता।

कुछ दिन बाद नगर में एक विराट् प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया। नामी-नामी चित्रकारो के कौशल ने उसके चित्रकला-विभाग मे जीवन भर दिया। सभी चित्र बहुमूल्य रंगों की ज्योति से जगमगा रहे थे। दर्शक जिस चित्र के सामने पहुँचते, ठगे-से रह जाते थे।

एक दिन वह ग़रीब चित्रकार भी चित्रकला-विभाग मे पहुँचा, और एक साधारण-से स्थान पर अपना रचा हुआ एक चित्र रखकर चुपके से बाहर निकल गया। संपूर्ण चित्र गहरे लाल रंग से रँगा गया था, और उसके नीचे लिखा हुआ था—'प्रेमिका'। लोग चित्र को घेरकर खडे हो गए, और कहने लगे—"इसका रचयिता कौन है? कितना मनोहर रंग है। कितना अपूर्व सौंदर्य है। यह चित्रकार की 'प्रेमिका' है, या उसके हृदय की प्रतिमूर्ति?"

दूसरे चित्रकारों ने उस चित्र की यह प्रशंसा सुनी, तो वे उसके रचयिता के पास दौड़े गए, और

उससे बोले—"आपने तो सचमुच गज़ब कर दिया भइ! कितना अनूठा रंग है।"

मगर चित्रकार सिर नीचा किए चुपचाप अपने काम में लगा रहा।

दूसरे चित्रकारों ने उसके रचे हुए चित्र एक-एक करके देख डाले, और कहा—"अरे! ये तो एक ही नारी की भिन्न-भिन्न स्थितियों के चित्र हैं। सुंदरता तो मानो इनमें मुँह बोल रही है। मगर यह सुर्ख़ रंग तो बस, अजीब चीज़ है। कितना प्रिय जान पड़ता है! भइ, आपने यह कहाँ से प्राप्त किया?'

इस बार चित्रकार ने धीरे-धीरे सिर ऊपर उठाया। चित्रकारों पर मुस्किराती हुई नज़र डाली, और कहा—"यह भी क्या बतलाने की बात है?"

और, इसके बाद ही वह गर्दन झुकाकर चित्र-फलक पर तूलिका चलाने में निमग्न हो गया।

मगर वे चित्रकार हताश नहीं हुए।

कोई बंबई दौड़ा गया, और वहाँ से बढ़िया-बढ़िया बहुमूल्य रंग ख़रीद लाया। उसने उन रंगों के मेल से रुच-रुचकर चित्र रँगे, मगर थोड़े दिन बाद ही वे रंग उड़ गए। किसी ने नामी-नामी रासायनिकों की सहायता से उत्तमोत्तम रंग तैयार किए, परंतु कुछ दिनों के बाद ही वे रंग फीके पड़ गए। किसी ने पुरानी पुस्तकें पढ़-पढ़कर चटकीले रंग बना डाले, परंतु उनमें वह बात न आई!

इधर उस ग़रीब के पास वही रंग था। उसके रँगे हुए चित्र, दिनोदिन गहराई पकड़ते जाते थे, बराबर लाल-ही-लाल होते जाते थे, मगर वह ख़ुद धीरे-धीरे पीला पड़ता जाता था, मानो उसका जीवन-रस क्रमशः शुष्क होता जाता था।

एक दिन लोगों ने देखा, चित्रकार का दरवाज़ा भीतर से बंद है। जब वह बहुत देर तक न खुला, तो वे उसे तोड़कर भीतर जा घुसे, मगर भीतर पहुँचकर क्या देखते हैं कि चित्रकार निश्चेष्ट पड़ा हुआ है, और उसके रचे हुए चित्र उसके चारों ओर फैले हुए हैं। लोगों ने कहा—उफ़! बेचारा चल बसा! कितना चतुर चित्रकार था।

इसी समय एक मनुष्य, जो शायद चित्रकार था, बड़ी सावधानी से उसकी प्यालियों और कूचियों की परीक्षा करने लगा। मगर वे सूखी पड़ी थीं। उनमें रंग का एक कण भी न था।

इतने में लोग चित्रकार के शव को नहलाने की तैयारी करने लगे। जब उन्होंने उसके शरीर पर से वस्त्र हटाए, तो देखा, उसके हृदय की बाईं ओर एक घाव है। घाव बहुत पुराना प्रतीत होता था, शायद उसके संपूर्ण जीवन से उसका संबंध रहा था। उसकी कोरें बहुत कड़ी और काली पड़ गई थीं। मगर मृत्यु सबका मुँह बंद कर देती है। उसने घाव का मुँह भी चारों ओर से कोरें समेटकर बंद कर दिया था।

लोग चित्रकार को श्मशान के हवाले कर आए। मगर जब उनमें उसकी चर्चा चलती, तो वे यही कहते थे—"यह पता न चला कि उसने वह अपूर्व रंग कहाँ से प्राप्त किया था!"

ज़हूरबख़्श (हिंदी-कोविद)

× × ×

३. गीत

प्रेयसि! सदा यही रहना।

हिय की मृदुल डाल पर बैठी श्यामा! नित कूजन करना!

हरी - भरी मेरी फुलवारी,
मधु - भावों की कुसुमित क्यारी,
अरे ! सकल वसुधा से न्यारी,
वासंती ! सुरभित उपवन मे नव - उल्लास मधुर भरना !
नयनों का प्रिय मधु ढुलकाना,
अधरों पर चुंबन बरसाना,
उर का मादक प्यार लुटाना,
मेरी मधु - शय्या पर रानी, स्वप्नवती - सी तुम फिरना !
मेरे सूने गृह का आँगन
आज बना है नदन - कानन,
कभी न हो यह नष्ट तपोवन,
जग की मादक सुषमा-छवि ले नित ही देवि, बरस पड़ना !

रामसूर्ति शुक्ल 'राम'

फुलझड़ियाँ

[श्रीयुत बलई]

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन अपना जंगम उरुस साल मे एक बार करता है। वहाँ इधर-उधर के बहुतेरे जुटते हैं। कार्यकारिणी समिति मे बैठकर ऐसा उत्साह दिखाते है, मानो वे कुछ-न-कुछ करेंगे अवश्य। पर जहाँ वहाँ से बिदा हुए, तहाँ उनकी कर्म-कुशलता भी बिदा हो जाती है। देखिए, आजकल कोई सनकता है, ठीक है, आम के बौर को देखकर ही तो काली कोयल कू-कू करती है। पर प्रयाग के कार्यकर्ताओ के कान मे कहना चाहिए 'टू', जिससे वे सजग तो हो जायँ। सम्मेलन के पास पत्र-पत्रिका नहीं है, तो दो-एक कालम भारत के भांडे पर लेकर अपना भाव भी देना चाहिए, जिससे जाना तो जाय कि वे कर्मशील क्या कर रहे हैं।

× × ×

हमारी समझ में अब की बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति स्वर्गेश इंद्र को बनाना चाहिए, क्योंकि भूपति तो कई बन चुके है, अब की बार सुरपति को बनाकर देख लें कि वह अपने चैत्र-रथ उपवन के पारिजात के पुष्प भेंट करते है। यदि पूर्ण पुष्प न दे, तो एक उसकी पँखड़ी ही प्रदान कर दे। क्योंकि सभापति तो कुछ पाने ही के लिये बनाया जाता है। सुरेश के सभापतित्व में एक विशेष बात होगी कि उनके साथ वे भूतपूर्व सभापति भी आवेगे, जो आजकल स्वर्ग में निवास करते हैं। वे आकर देख तो ले कि सम्मेलन उनके समय से अब कितने इंच आगे बढ़ा या पीछे हटा है।

× × ×

कवि-सम्मेलन के संयोजको से कह देना चाहिए कि हारमोनियम, तबला, सरंगी आदि साजिंदो के साथ, मौजूद रखनी चाहिए। जब स-री-ग-म-प-ध-नी के स्वरानुसार कविता का गायन होगा, तब बाजा के विना गाना वस्त्रहीनांगना के समान जँचेगा। जहाँ गाना और बाजा एक साथ हुए, तहाँ थिरकने की कमी पूरी की जाती है। गति नाचने मे तो छायावादी आगे बढ़ जायँगे। क्योंकि इनको मूक वेदना होती है, और वह भी मूक नाच है।

× × ×

आजकल जिस व्योपार को देखिए, वही गिरा हुआ नज़र आता है। पर चंदा माँगने का काम बढ़ा हुआ है। इसके अलावा जंटलमैन भिखमंगे रसीद-बुक छपाकर, संस्थाएँ खोलने की विज्ञप्ति दे उदार मनुष्यों के सिर हो जाते है। इस बावन ख़ानदान से कह देना चाहिए कि उनको दान देने मे देनेवाले की वही गति होगी, जो बलि की हुई थी। जिसे अपना अधःपात स्वयं देखना हो, तो टेंट ख़ाली करें, और उनका टेट भरे। Fools make feast, wisemen eat कहावत ठीक चरितार्थ होती है।

× × ×

आजकल हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों को बडी कठिनता है। अँगरेज़ी, मराठी और बँगला आदि भाषाओ में लिखे लेख उन्हें हिंदी में अनुवाद करने पड़ते हैं। क्योंकि उनके मस्तिष्क-रूपी रसाल बाग़ में मौलिक लेख-रूपी फल नहीं लगते। जब देश मे कोई वस्तु पैदा नहीं होती, तब बाहर से मँगाई जाती है। इस समय के संपा-

दकी का धान बहिला भैंस के समान है, जो बच्चा तो देती नहीं, पर हृष्ट-पुष्ट ख़ूब है।

× × ×

जिस पत्र पत्रिका को देखिए, वे सब अनुवाद से भरी पड़ी है, यदि सपादक को अनुवाद ही प्रकाशित करना था, तो संपादक क्यो लिखते हैं। ठीक तो था कि लिखते अनुवादक। मालूम होता है, हिंदी-साहित्याकर की इन्हे ख़बर नहीं, और न वे उस खानि से रत्न निकालने में समर्थ है, और न वे लोलुप लेखक ही, जो अनुवाद करते अपनी बुद्धि मे ताला लगाए हैं। मौलिक लेख-रूपी रत्न को खानि से खोदने मे निपुण हैं। आचार्य, महारथी, सम्राट् समालोचक आदि भरे पड़े हैं। पर कोई चूँ नहीं करता कि इस सामयिक साहित्य मे गत हिंदी की कौन-सी वस्तु है। बोलें कैसे, भीष्म पितामह की भाँति इन सबकी भी बुद्धि कुंठित नाम छपवाने द्वारा हो गई है। जहाँ स्वार्थ-पहाड़ सामने खड़ा हो जाता है, तहाँ बुद्धि-पथिका का सुपथ तो रुँध ही जाता है। फिर विपथ हो जाय, तो आश्चर्य क्या। हे भगवन्, तुम निर्लेप हो, अब हिंदी-पत्र-पत्रिकाओ की गति आप ही बने, अन्यथा ये कर्णधार हिंदी-साहित्य-नौका को न-मालूम किस भयानक अज्ञात स्थान को पहुँचावें। जैसे बड़े दिन मे ईसा के अनुगामी शराब सेवन कर संसार को भूल जाते हैं, तैसे ही कुछ को छोड सब संपादक अनुवादवाद में पड़े है, इन्हें वास्तविक साहित्य की ख़बर नहीं है।

× × ×

आजकल महाकवि बनने का शौक़ चर्राया है, जिसे देखो, वही 'महाकाव्य'-रचयिता बना जाता है। पर इन्हे इतना ही मालूम है कि सर्गबद्ध काव्य महाकाव्य कहाता है। पर जनाब को मालूम नहीं कि उसकी रचना के लिये 'महामति' की ज़रूरत पड़ती है, क्या वह इनमें है, यदि है, तो पूर्वकाल के महाकवियो की कृति और शुक्राचार्य के नाती-पनातियों की भी कृति को कसौटी पर कसके देखना चाहिए। यदि इनकी कृति का रंग फीका हो, तो इनके ऊपर वंचक बनने का जुर्म लगाना मुनासिब है, पर लगावे कौन, विना एक मृगराज के वन सूना है।

परीक्षा

हिंदू-पर्व-प्रकाश—लेखक, साहित्य-भूषण ठाकुर आदित्यप्रसादसिंह व अध्यापक ठाकुर रामप्रसादसिंह भृगुवंशी, प्रकाशक, रामदयालु अगरवाला, प्रयाग, पृष्ठ-संख्या १४१, मूल्य ॥=)

हिंदू-त्योहारों और पर्वों की संख्या अगणित है। हम अपने त्योहारों और पर्वों के इतिहासों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। त्योहारों के इतिहास और उनके महत्त्व से अपरिचित होने के कारण ही हम धीरे-धीरे उन्हें ऐसा विकृत रूप दिए दे रहे हैं कि वे हमारी जाति के उपहास का कारण बन रहे हैं, और हम स्वयं उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं। आवश्यक है कि हम अपने जातीय त्योहारों के इतिहास से परिचित हों, उनका महत्त्व समझें, और उनकी मर्यादा बनाए रक्खें।

त्योहार और पर्व जाति की संस्कृति और सभ्यता के द्योतक होते हैं। हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता के चिह्नों की मर्यादा-रक्षा के लिये उनके इतिहास से परिचित होना चाहिए।

यह पुस्तक हमारे त्योहारों और पर्वों के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। पुस्तक बड़े परिश्रम और खोज से लिखी गई है। बड़ी उपयोगी है। सर्वसाधारण के पढ़ने की चीज़ है। विद्यार्थियों के लिये अमूल्य है।

× × ×

एकादशी—लेखिका, श्रीमती तेजरानी पाठक बी० ए०; प्रकाशक, सौभाग्यवती सरलादेवी पाठक, जगत-निवास, नरसिंहपुर सी० पी०, पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य १)

जिसने श्रीमती तेजरानी पाठक की 'अंजलि' और 'हृदय का काँटा' पढ़ा है, उसे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक में संगृहीत कहानियाँ कैसी हैं। श्रीमती तेजरानीजी हिंदी की कुशल कहानी-लेखिका हैं। आपकी कहानियाँ कितनी सजीव, स्वाभाविक तथा सुंदर होती हैं, यह हिंदी-प्रेमियों से छिपा नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में ११ कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ सभी बड़ी रोचक हैं। पढ़ते ही बन पड़ता है। मुझे 'अपना घर', 'श्यामा' तथा 'गुप्ताकर्षण' बहुत पसंद आईं। पाठक पढ़ेंगे, बिना दाद दिए न रह सकेंगे।

हाँ, मुझे एक शिकायत है। इस संग्रह का नाम बड़ा ही असंगत है। इस पुस्तक का नाम पढ़कर मैं तो यह समझा कि यह 'एकादशी-व्रत' से संबंध रखनेवाला ग्रंथ है। मुझे इसका गुमान भी न हुआ कि 'एकादशी' कहानियों का संग्रह है। आशा है, यह भ्रम में डाल देनेवाला नाम दूसरे संस्करण में बदल जायगा।

पृथ्वीपालसिंह (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

विनोद—लेखक, श्रीयुत वचनेश; प्रकाशक, श्रीयुत रामकुमार मिश्र विशारद, कालाकाँकर, मूल्य ।)

वचनेशजी व्रजभाषा और खड़ी बोली के बहुत अच्छे कवियों में हैं। विनोद में उन्होंने जैसी आवश्यकता समझी है, उसी भाषा के अनुसार कविता बनाई है। प्रस्तुत पुस्तक में स्फुट छंद हैं। फिर भी पुस्तक एक बार हाथ में ले लीजिए, तो बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। विनोद नाम वास्तव में सार्थक है। जब तक आप पुस्तक पढ़ते रहेंगे, हँसते रहेंगे। यही नहीं, हास्य के साथ-साथ सामाजिक बुराइयाँ भी बतलाई गई हैं। नमूने के लिये हम विनोद में से एक छंद उद्धृत करते हैं। कट्टरपंथियों का कैसा सुंदर मखौल उड़ाया गया है, छंद के अंतिम पद को पढ़िए। शारदा-बिल सरकार द्वारा पास हो चुका है। उसमें लड़-

कियों की उम्र की क़ैद १४ साल रक्खी गई है। अब देखिए, कवि ने किस ढग से कहा है।

पंडितों की किसानी—

पडित औ' मौलवी न जानिए, किसान हम,
जाति-पाँति मौरुसी हमारे अधिकार की;
शादी-ब्याह नहीं, यह खेती है कराते, सिर्फ़
'बचनेश' सूरत यही है रोज़गार की।
जल्द-जल्द बोने-काटने से कमज़ोर फ़स्ल
होने दो, ज़रूरत न आपके सुधार की,
चौथा साल धरती को परती रखाइए न,
भूखो मर जायँगे, दुहाई सरकार की।

छंद को पढ़िए, और देखिए, प्रत्येक पद मे व्यग्य के साथ-साथ समाज-सुधार है। इसी तरह से सारी पुस्तक में सामाजिक, राजनीतिक आदि विचार भरे पड़े हैं। पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़िए।

गिरिजाशंकर द्विवेदी (विशारद)

× × ×

नवरस (द्वितीय संस्करण, १९३४)—लेखक, बाबू गुलाबराय एम्० ए०, एल् एल्० बी०, प्रकाशक, मत्री आरा-नागरीप्रचारिणी सभा, आरा, पृष्ठ-सख्या ६३४।

इस ग्रथ में १८ अध्यायों मे लेखक महोदय ने रस के विषय को बहुत स्पष्ट कर दिया है। भावो और मनोविकारों की शरीर-विज्ञान-सबधिनी व्याख्या करके लेखक ने इस प्राचीन विषय में नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। कई प्राचीन कवियो के मतो का सार देकर कवि ने अपने ग्रथ को और भी आदरणीय कर दिया है। प्राचीन नव रसो को भली भाँति समझकर आपने वात्सल्य रस, नवरसेतर रस, रसाभास, भावाभास आदि के भी उत्कृष्ट वर्णन किए हैं। रसो की शत्रुता, मैत्री, दोष, अन्य काव्यांगो से संबंध तथा रस-निष्पत्ति के विषयो को भी लिखकर आपने बडा उपकार किया है। इनको पढ़ने से ही विदित होता है कि कितनी सूक्ष्म दृष्टि, ढूँढ़-खोज आदि से काम लिया गया है। यह ग्रथ बी० ए० आदि कई परीक्षाओ में पाठ्य ग्रंथ नियत है, जो उचित ही है। हम अपने मित्र गुलाबरायजी को ऐसे अनमोल ग्रंथ लिखने पर बधाई देते है।

शुकदेवविहारी मिश्र (रायबहादुर) (मिश्र बधु में से एक)

× × ×

हमारे हरिजन—लेखक, श्रीदयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागंज, प्रयाग, मूल्य ।=)

जब से महात्माजी ने हरिजनोद्धार का बीड़ा उठाया है, तब से हिंदू-जाति का ध्यान इधर विशेष रूप से आकर्षित हो गया है, और सभी सुधारकों ने किसी-न-किसी रूप से इस कार्य में हाथ बँटाया है। और, अब सारे भारतवर्ष मे इनकी दशा सुधारने का प्रयत्न हो रहा है।

ससार मे मेरा जहाँ तक अनुमान है, भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ अछूतों को अलग करके उनके साथ अमानुषिक कृत्य किए जाते है। लेखक महोदय ने हरिजनों की संख्या ५ करोड़ बतलाई है। कैसा अंधेर है, हम अपने ५ करोड़ भाइयों को अपने से पृथक् किए हुए है। यही कारण है, आए दिन विधर्मियो की संख्या बढ़ती जाती है।

यह कितने दुःख की बात है कि हमारी जाति का कितना बड़ा हिस्सा हमसे अलग है, उसकी किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं हैं। भला, आप ही सोचिए, जब हमारा इतना बड़ा समूह संपूर्ण अधिकारों से वंचित है, तो हम किस प्रकार देश को उत्थान के शिखर पर पहुँचाने में समर्थ होंगे। किस प्रकार हम अन्य राष्ट्रों से कंधे से कधा भिड़ाकर बैठ सकेंगे। अछूत कहलानेवाले बहुत-से भाई उन कुलीन ब्राह्मणों से अच्छे है, जिनका काम है संसार के बुरे-से-बुरे कामो को करते रहना। आपसे यह

नहीं कहा जाता कि आप अछूतों की थाली में उनके साथ बैठकर खाइए। नहीं, आपसे यही कहा जाता है कि उनके साथ अच्छा बर्ताव कीजिए। यह नहीं कि मुसलमान रंडियाँ तो आपके ठाकुरजी के सामने नाचे-गावें, और एक मेहतर, जो नित्य राम-नाम जपता है, मंदिर की देहली भी स्पर्श नहीं कर सकता।

प्रस्तुत पुस्तक मे श्रीमान् दुबेजी ने बड़े ही परिश्रम से हरिजन जातियों का सब प्रकार का रहन सहन, उनके रहने की व्यवस्था, शिक्षा, कितने वर्गों में वे बँटे हैं, उनके रहने के स्थान कैसे है, गाँवों और नगरों मे उनके रहने की व्यवस्था कैसी है आदि बाते लिखी है। पुस्तक के अंत में प्रांतवार हरिजनों की संख्या दी गई है। पुस्तक के बीच में व्यग्य-चित्र दे दिए गए हैं, और उनके नीचे जो कविता दी गई है, इससे चित्रों का भाव भी समझ मे आ जाता है, और जैसा व्यवहार अछूतों के साथ किया जाता है, वह भी समझ मे आ जाता है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। प्रत्येक नवयुवक को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए।

गिरिजाशकर द्विवेदी (विशारद)

× × ×

योरप की भक्त स्त्रियाँ —संपादक, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य ।)

इस पुस्तक में योरप की चार सुप्रसिद्ध भक्त स्त्रियों—एलिज़ाबेथ, कैथरिन, गेयो और लुइसा—की पुण्य जीवनी का संग्रह है। प्रत्येक देवी का चरित्र हमारे सामने सेवा, त्याग, प्रेम और भक्ति का संदेश उपस्थित करता है। भक्तो के पढ़ने की चीज़ है। वे पढ़ेंगे, उनके हृदय भर आएँगे।

इस पुस्तक के पढ़ने से हमें पता चलताहै कि भारतवर्ष ही मे नहीं, वरन् योरप में भी ऐसी आदर्श देवियाँ हो गई है, जिन्होने भक्ति और विश्वास की वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। रानी एलिज़ाबेथ की जीवनी पढ़कर, आप लेखक के भावों से पूर्णतया सहमत होकर अनायास ही उसके शब्दों को दुहरा देंगे—"धन्य है! एक दिन वह था, जब ईसाई-समाज में ऐसे-ऐसे राजा रानी मौजूद थे। एक आज का ईसाई-शासन है, जो ईसाई कहाते हुए भी निर्दोषो और सज्जनों पर अत्याचार करने मे ही अपना गौरव समझता है। समय का कैसा परिवर्तन है।"

पुस्तक वास्तव में शिक्षाप्रद है। ईसाई-धर्म की इन भक्त स्त्रियो की जीवनी पढ़कर हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। हम उनके कष्टों की कहानी पढ़कर द्रवित हो उठते है, और उनके त्याग का विवरण पढ़कर दंग रह जाते है। ऐसी पुस्तको के प्रचार द्वारा ही हम एक दूसरे को समझने तथा आपस के भेद-भाव को दूर करने मे सफल हो सकते है। यह पुस्तक गीता-प्रेस की भक्त-चरित-माला का नवाँ पुष्प है। हमें विश्वास है, इसकी सुंदर सुगंध सर्वत्र फैलेगी, और लोग इसे पसंद करेंगे।

× × ×

भारतीय वाङ्मय के अमर रत्न—लेखक, श्री-जयचंद्र विद्यालंकार, प्रकाशक, शारदा मंदिर, दिल्ली; पृष्ठ-संख्या ६५। मूल्य ।-)

श्रीजयचंद्र विद्यालंकारजी हिंदी के एक प्रमुख साहित्यिक हैं। यह कृति उन्हीं के पांडित्य का प्रसाद है। वास्तव में यह पुस्तिका पाठक-पाठिकाओं को अपनी संस्कृति की विरासत का ठीक-ठीक पता देने में सहायक होगी। विशेषकर संस्कृत और हिंदी-साहित्य के विद्यार्थियों को इससे यह ठीक पता मिल सकेगा कि भारतीय वाङ्मय के किस अंश का विकास इतिहास की किन परिस्थितियो में हुआ है।

श्रीजयचंद्रजी ने यह पुस्तिका प्रकाशित करके हिंदी की बड़ी सेवा की है। आजकल बिरले ही

लेखक साहित्यिक विषय पर लेखनी उठाते हैं। श्रीजयचंद्रजी वास्तव में बधाई के पात्र है। हमें आशा है, शीघ्र ही आप भारतीय वर्णमाला के विकास के संबंध में भी कुछ-न-कुछ लिखेंगे। हम आपकी नवीन कृति की प्रतीक्षा करेंगे।

पृथ्वीपालसिंह (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

सुधा-चित्रावली

श्रीयुत देवदास गांधी

[मदरास से जो हिंदी-प्रेमी-दल तमाम भारतवर्ष में भ्रमण के लिये निकला था, उसमें आप भी शामिल थे।]

श्रीमती गोमतीदेवी
[मदरास के हिंदी-प्रेमी-दल में आप भी शामिल हुई थीं।]
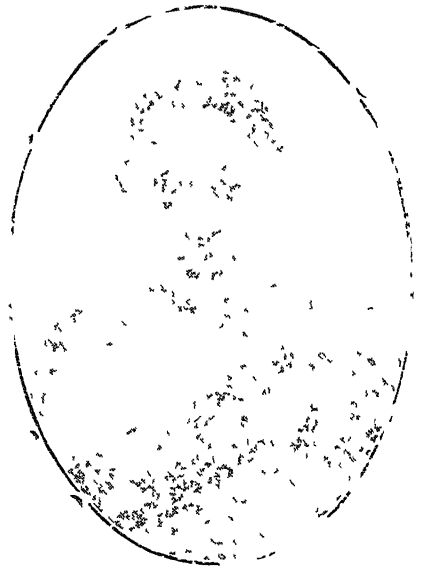
श्रीमती रुक्मिणि लक्ष्मीपति
[मदरास के हिंदी-प्रेमी-दल में आप भी शामिल हुई थीं।]
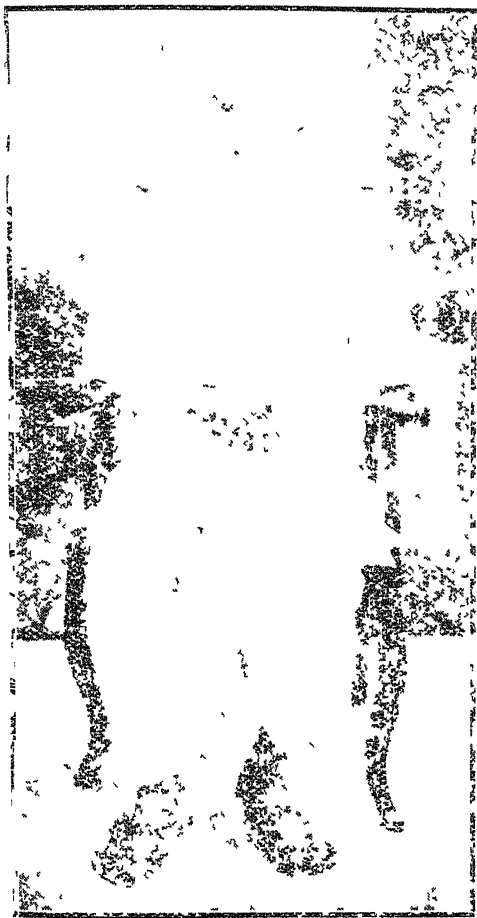
श्रीयुत स्व० पं० चंद्रशेखर शास्त्री

[गत ४ जुलाई को, प्रयाग में, आपका देहावसान हो गया । आप संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे ।]
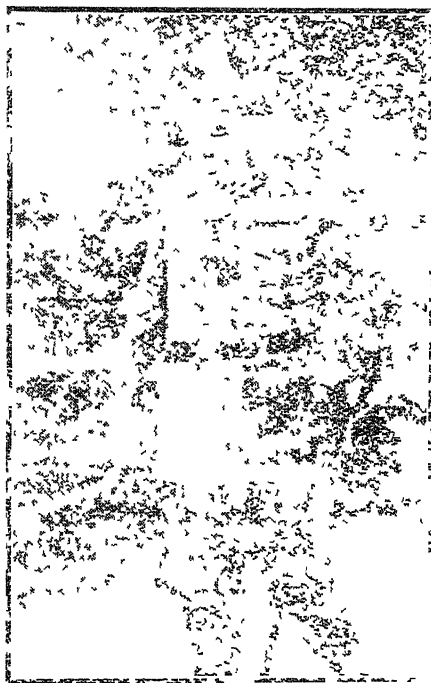
स्व० वान हिंडनबर्ग

[गत दो अगस्त को आपका स्वर्गवास हो गया। इस समय आप जर्मनी के राज्याध्यक्ष थे। आप जर्मनी-महायुद्ध के समय लोक-प्रिय सेनापति थे ।]

श्रीमती इंदिराबाई मैसूर

[हिंदी-प्रेमी यात्री-दल मदरास से जो भ्रमण करने निकला था, उसमें आप भी शामिल थी ।]

[हिंदी-प्रेमी यात्री-दल जो मदरास से भ्रमण करने निकला था, उसमे आप भी शामिल थीं ।]

श्रीमती अंबुजम्माल

नए फूल

इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने मे निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'केशव की काव्यकला'—लेखक, पं० कृष्णशंकर शुक्ल एम्० ए०, मूल्य १॥)

(२) 'सचित्र भारत'—लेखक, श्रीरमाशंकर सिंह 'मृदुल', मूल्य १॥)

(३) 'स्त्री-संगीत-गायन'—लेखिका, श्रीमती पार्वतीदेवी ; मूल्य ।=)

(४) 'श्रीभर्तृहरि नीति, शृंगार और वैराग्य शतक'—अनुवादक, प्रोफ़ेसर रामदास राय काव्यतीर्थ ; मूल्य १)

(५) 'एकादशी'—लेखिका, श्रीमती तेजरानी पाठक बी० ए०, मूल्य १।)

(६) 'व्याकरण-मयंक'—लेखक, श्रीसुरेश पाठक विद्यालंकार, विशारद ; मूल्य १)

(७) 'संक्षिप्त भूषण'—लेखक, शंभूदयाल सक्सेना ; मूल्य ॥)

(८) 'हिंदी - गद्य - रत्नावली'—लेखक, श्रीवियोगी हरि ; मूल्य ॥=)

(९) 'प्रह्लाद'—लेखक, जुगतरामदेव श्रीकाशीनाथ त्रिवेदी ; मूल्य ।)

(१०) 'मोती के दाने'—लेखक, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न प्रोफ़ेसर विश्वनाथप्रसाद एम्० ए०, मूल्य ।=)

(११) 'बाल - गुलिस्ताँ'—लेखक, चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, मूल्य ।=)

(१२) 'महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह'—लेखक, श्रीकमलनारायण झा 'कमल' ; मूल्य ।)

(१३) 'देवताओं की सभा'—लेखक, श्रीमथुराप्रसाद खत्री ; मूल्य ।)

(१४) 'मदरेसिया'—लेखक, श्रीमथुराप्रसाद खत्री ; मूल्य २)

(१५) 'मंगल - प्रमोद'—लेखक, श्रीअन्नपूर्णानंदजी ; मूल्य १।)

सौरभ

[संपादकीय विचार]

१. हिंदू-मुस्लिम-समस्या

स देश की मनुष्यता का निर्माण और हिंदू-मुस्लिम प्रश्न का हल होना एक अर्थ रखते है। हम किसी तरह बृहत् ससार की ओर बढ नहीं सकते, इसका यही कारण है कि देश के मनुष्य का क्या रूप है, यह हम नहीं समझे। इसी देश से बृहत् संसार की ओर अनेक मनुष्य, अनेक विद्यार्थी जाते है, पर वे वास्तव मे बृहत् ससार के लिये नहीं जाते, अपने छोटे संसार के लिये जाते हैं; क्योंकि वे हिंदू और मुसलमान रहकर जाते है, और हिंदू और मुसलमान रहकर ही लौटते है। जिस दीनता की पूर्ति के लिये शिक्षित होने के उद्देश से जाते है, योरप और अमेरिका के बाहरी बुरे सस्कारो को लेकर, उसी दीनता को बढ़ाकर लौटते है। यहाँ फिर वे हिंदू है या मुसलमान। हाथ कुछ इल्लत साहबी की और लगी है। यह देश के मनुष्य की परिभाषा नहीं।

आज मुख्यतः देश दो भागा मे बँटा हुआ है। इन्हीं दोनो का संघर्ष धर्म, राजनीति और समाज को प्रगति दे रहा है। यदि ये दोनो न रहे या न रहने का उपक्रम करे, तो ऐसे धर्म, राजनीति और समाज भी नही रह सकते। अपने अस्तित्व के लिये एक जितना सचेष्ट हो रहा है, दूसरा स्वभावतः उतना ही बल प्राप्त कर रहा है। हिंदुओं के समाज ने कठोर आर्यत्व को ग्रहण किया, तो मुसलमान पहले से अधिक सतर्क होकर दल बढ़ाने की चिंता मे लगे। पुनः अफ़गानिस्तान, फ़ारिस, टर्की आदि देशों तक भी उनकी दृष्टि दौड़ने लगी। बीच में जो तीसरी शक्ति इन उभय शक्तियों के ऊपर है, उससे साम्य भाव पैदा करने की इन दोनो मे किसी ने न सोचा; बल्कि उसी की सहायता से अपने हकों की रक्षा करने लगे, जिन हकों की न रक्षा होने पर भी मनुष्य तथा मनुष्यत्व की रक्षा होती है। कृष्णजी का जुलूस यदि न निकले, तो कोई क्षति नही होती; रामलीला में यदि मनुष्य बंदर बनकर न नाचे, तो मनुष्यत्व की रक्षा ही होती है, धन भी बचता है। उधर मुसलमानों के देश मे, उस दिन तक छपता था, मसजिदे तोडी गईं, और मुसलमानो के ही हाथों। पुरानेपन को दूर करने के लिये कुछ ही वर्षों के अदर मुसलमान राज्यों में क्या क्या हुआ, यह संवाद-पत्रों के पाठक जानते हैं। केवल हमारे देश में यह धार्मिक भाव दोनो तरफ़ से इतना प्रबल रूप धारण किए हुए है। इसीलिये हम सच्चे मनुष्य नही बन पाते।

मनुष्य, केवल मनुष्य देश और संसार के लिये सोचता है, यहाँ की तरक्की उसी का सहारा चाहती है। धार्मिक लोग तो दूसरी दुनिया के, देवता, या उनसे भी बढ़कर कुछ हैं। वे जो कुछ भी हों, जिस मनुष्य-देह मे मुक्ति प्राप्त होती है, कहा गया है, उस मनुष्य-देह मे वे नहीं रहते। उनका मनुष्यत्व सस्कारो की समष्टि है, और ऐसे संस्कार कभी मुक्ति-स्वरूपा नवीनता को नहीं प्राप्त होने देते।

नारीहरण, लड़कियो और बच्चो का भगाना, आरती और नमाज़ का झगड़ा, इस तरह के अनेक प्रतिबध सामने आते है, जिनका दूरीकरण इसी अवस्था मे नहीं हो सकता। क्योंकि यह अवस्था ही कमज़ोर है। यदि नमाज़ के समय आरती करने पर, बाजो के उच्च स्वर से हम प्रसन्न हों, और मुसलमान दुखी, तो भी यह हमारी एक कमज़ोरी हमारी

प्रसन्नता के भीतर छिपी रह गई। यदि आरती का समय टाल दिया गया, तो हमारे दुखी होने का प्रत्यक्ष कारण है। मुसलमान यदि इससे सुखी हों, तो यह दुर्बलताजन्य सुख ही कहा जायगा। यह कभी स्थायी नहीं हो सकता। मनुष्यता एक ऐसा गुण है, जिसमे ह्रास या वृद्धि नहीं होती। यदि कहे कि दल बढ़ाकर मुसलमान हिंदुओ को दबाना या देश को मुसलमान कर लेना चाहते है, तो बडी ही तुच्छ धारणा है। जब मुसलमान इस देश के शासक थे, तब इतनी संख्या मे न थे। जापान की जन-सख्या चीन की इतनी नहीं। इँगलैंड और भारत की भी जन-संख्या देखी जा सकती है। जो उपाय नीच, धूर्तता-पूर्ण हैं, वे अपने ही अँधेरे मे ढके हुए हतप्रभ हैं। क्रिश्चियन और मुसलमान एक-ही-एक मनुष्य की इतनी बड़ी-बडी संख्याएँ है। आज कितनी उदार और व्यापक भावनाएँ मनुष्य के मस्तिष्क में होनी चाहिए, हमें उन्हीं का अनुशीलन कर मनुष्य होना है। जो घात-प्रतिघात आते हैं, वे मनुष्यता के रास्ते पर और ज़ोरदार होकर आ सकते है।

हमारे समाज में वर्तमान मनुष्य-धर्म का व्यापक प्रचार अभी नहीं हुआ। देहात मे तो पुराने भावों तथा आचार-विचारों का ही साम्राज्य है। शहरो मे भी बहुत कम लोगो को नवीन ऊँचे विचारों से प्रेम है। इसीलिये अच्छे लेखकों की लिखी पुस्तकों का आशानुरूप प्रचार नही हो पाता। पुनः अर्द्ध-नवीनो मे भी प्राचीनता के ही संस्कार दृढ़ है। ऐसी हालत में लोग उन्हीं भावनाओं का अनुसरण करते है, जिनका वे शताब्दियों से करते आए थे। यहाँ एक उदाहरण दिए विना न रहा गया। जापान की जो इतनी जल्द तरक्की हुई, इसका कारण यह है कि जापान किसी प्राचीन सस्कार में बुरी तरह बँधा न था। जो भी जगली जाति होगी, वह नए संस्कार बहुत जल्द ग्रहण कर ले सकेगी। हमारे संस्कृत हिंदू इतने जड हो गए है कि उनके संस्कार ही जीवन-रस के ग्रहण के मूल हो रहे है। यह न बदल सकनेवाली वृत्ति चेतन गुण नहीं, जड़ है। यही हिंदू-मुस्लिम-वैमनस्य की भी जड है। जिन विचारो से विजित हिंदू और विजयी मुसलमान पहले से इस देश में रहते आए हैं, वे ही विचार इस समय भी हिंदू और मुसलमानों के है, बल्कि पुष्टि को बल मिलता जा रहा है। इन्हीं विचारो, इन्ही धार्मिक भावनाओं मे इन दोनो की मैत्री असंभव है। देश का व्यापक मनुष्य इनमे से किसी प्रकार का नही। जब हिंदू अपनी वर्तमान मनोवृत्ति को छोड़कर हर तरह के आदान-प्रदान मे संसार के साथ साम्य-स्थापना करेंगे, उनके उच्च-नीच भेद मिटते जायँगे, उनका सगठन प्रेम और सहानुभूति से भरकर बढ़ता जायगा, उनकी प्रांतीयता मिटती रहेगी, वे वर्तमान वैज्ञानिकों की तरह विचारो की ऊँची भूमि पर अधिष्ठित रहने का प्रयत्न करेंगे, ससार की सभी नीतियों को व्यापक हित का रूप देना सीखेंगे, तब आज के मुसलमान भी आज के मुसलमान न रहेंगे। अगर रहे, तो इस उच्चता के मुक़ाबले रह नहीं सकते; क्योंकि यह युग ही व्यक्तिवाद का नही रहा। यहाँ व्यक्ति की अधिक-से-अधिक उन्नति तभी हो सकती है, जब वह व्यक्तिगत, पक्षपात-पूर्ण न होगा। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद एक-एक आदर्श व्यक्ति रहेंगे, पर व्यक्ति के नियामक नहीं; उनकी तारीफ़ होगी, पर उनके पीछे जान देना मनुष्यता से दूर समझा जायगा। कारण, हर मनुष्य की वही कीमत है, जो राम-कृष्ण और ईसा-मुहम्मद की थी।

बड़े दुःख की बात है कि हिंदू-मुसलमान आपस में लड़कर अपने भाग्य का निर्णय करना चाहते हैं। इन दोनों की लड़ाई, संवाद-पत्रो मे एक दूसरे का पक्ष लेकर एक दूसरे का पक्ष-समर्थन, प्रतिवाद, प्रतिकार की चेष्टा, आरती और नमाज़ के नियमो का

दृढ़ीकरण आदि-आदि क्या यही साबित नही कर रहे कि हिंदू और मुसलमान मनुष्यता से कितनी दूर हैं, और इस तरह रहकर कितनी दूर रहेगे ?

× × ×

२. नया कीमती चर्खा

अखिल भारतीय चर्खा-समिति ने कई साल पहले यह घोषणा की थी कि इस समिति के कहने के अनुसार अगर किसी ने चर्खा बनाया, तो उसे एक लाख रुपया इनाम दिया जायगा । इधर आंध्र के एक इंजीनियर ने एक चर्खा आविष्कृत किया है, जो चर्खा-समिति की कही हुई सभी शर्तों के मुआफ़िक़ है । इस चर्खे से प्रति घंटा बीस नंबरवाला दो हज़ार गज़ सूत काता जा सकता है । इस चर्खे के बनाने में बीस हजार रुपए का ख़र्च लगा है । परंतु अभी यह नही ज़ाहिर किया गया कि ऐसा चर्खा अधिक-से-अधिक संख्या मे तैयार कराकर इस क़ीमत से बेचा जाय, तो लागत, ब्याज, मरम्मत और पारिश्रमिक आदि निकल आएँगे, और इतने दिनों मे । आशा है, चर्खा-संघ बहुत जल्द इस पर प्रकाश डालेगा । यदि यह चर्खा उक्त व्यावसायिक परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ, और सूत के बाज़ार-भाव का मुक़ाबला कर सका, जिससे तैयार कपड़े भी बाज़ार-भाव के अनुसार रहे, तो लाखों ही नही, करोड़ो की संपत्ति देश के हाथ आ सकती है । इस चर्खे के संबंध में विस्तार-पूर्वक सुनने के लिये हम उत्सुक है । आशा है, चर्खा-संघ शीघ्र प्रकाश देने की कृपा करेगा ।

× × ×

३. शिल्प और सरकार

आजकल ऐसा ज़माना आ गया है कि छोटे-बड़े सभी तरह के शिल्प की तरक़्क़ी के लिये उन्नत राष्ट्र प्रयत्न कर रहे है । टर्की बड़ी तेज़ी से शिल्प की प्रतिष्ठा के लिये दत्तचित्त है । इँगलैंड के प्रभाव के बाद से संसार के राष्ट्रों का अब निश्चय-सा हो रहा है कि शिल्प की वृद्धि ही देश की आर्थिक दुर्दशा का सुधार कर सकती है । जापान का बाजार मे एकच्छत्र राज्य इस भाव को और ज़ोर पहुँचा रहा है । युद्ध के कारण उपस्थित रहने पर भी जर्मनी अपने विगत शिल्प-गौरव के पुनः प्रसार के लिये कम परिश्रम नही कर रहा ।

परंतु शिल्प की तरक्की के लिये बहुत तरह से विशेषज्ञों की समष्टि एकत्र होकर विचार करती है । इसका सारा ख़र्च सरकार उठाती है । यह स्वतंत्र देशो की बात है । तभी राष्ट्र को शक्ति मिलती है, और उसे आगे कदम रखने की नौबत आती है । रूस के स्वतंत्र होने के बाद बड़े-बड़े मस्तिष्क सरकार की ओर से इसीलिये नियोजित हुए थे । भारत मे ऐसी बात न थी । जो कुछ था, वह उल्लेख योग्य नहीं । इसी भारत से केवल धोती की भड़कीली किनारियों पर विचार करनेवालो ने लाखो रुपए खाए हैं । हमेशा जनता की पसद की जाँच होती रहती है । और-और जो सूक्ष्माति-सूक्ष्म शिल्प के विषय है, उनका उल्लेख स्वल्प-साध्य न होने के कारण न किया गया ।

हमारे यहाँ अब तक पूँजीपति-वर्ग आपस में चंदा एकत्र करके यह शिल्प-गवेषणा संबंधी कार्य कराता रहा है । जावा में चीनी के कारख़ानों के मालिक अपने ख़र्च से चीनी की सार्वदेशिक गवेषणा कराते रहे है । पाट के शिल्प पर प्रकाश डालने के विचार से कलकत्ते के सेठ इसी प्रकार अपने ख़र्च से विशेषज्ञो द्वारा सूक्ष्मतम उपयोगिता की परीक्षा, निर्णय आदि कराना चाहते है । पर देश के शिल्प पर जब तक सरकार स्वयं ध्यान नहीं देती, तब तक उसकी सार्वभौम उन्नति होना असंभव है । इसके लिये यदि दूसरे राष्ट्र के सहयोग की आवश्यकता हुई, तो सरकार ही इसकी पूर्ति कर सकती है । ख़र्च भी सरकार के

इतना व्यवसायी लोग नहीं उठा सकते। भारत मे इंपीरियल कौंसिल ऑफ् एग्रिकलचरल रिसर्च के द्वारा शिल्प-विषयक ऐसे कार्य हुआ करते है। परंतु वह संस्था इस कार्य के लिये पूर्ण रूप से उपयोगी नही । भिन्नप्रांतीय सरकार की अधीनता मे भी शिल्प-कार्य की गवेषणा होती है, पर ज़रूरत को देखते हुए वह भी विशेष फलप्रद नही। अब सरकार ने सेंट्रल इंडस्ट्रियल एंड रिसर्च ब्यूरो नाम से एक केंद्रीय संस्था का निश्चय किया है, जिसमे की गई सूक्ष्मातिसूक्ष्म गवेषणाओ का देश मे प्रचार किया जायगा। यह देखकर हमे हार्दिक प्रसन्नता हुई। यदि कृषि-गवेषणा-समिति की तरह किसी योग्य सस्था को यह भार दिया गया, तो काम शायद अच्छा होगा। यदि सरकार शिल्प का अर्थ रेशम और तॉत आदि-जैसे साधारण विषयों की गवेषणा कराकर सतुष्ट रहना चाहे, तो अवश्य हमे विशेष फल की प्राप्ति न होगी। यह शंका हमें इसलिये हो रही है कि सरकार के उद्योग से शिमले मे होनेवाले शिल्प-सम्मेलन मे साधारण के सिवा बडी-बडी बातें भी कुछ हुईं, हमारे पढ़ने मे नहीं आईं।

× × ×

४. साहित्य तथा हमारे लेखको का संकट

हम कई बार यह प्रकाश डाल चुके है कि अच्छी-अच्छी पुस्तको के पढ़ने की ओर रुचि हुए बगैर साहित्य की श्री-वृद्धि न हो सकेगी। जो लोग उच्च शिक्षित है, आमदनी भी अच्छी है, वे हिंदी की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं देते। वे सैकड़ो रुपए अँगरेज़ी-किताबो मे ख़र्च कर देते हैं, पर साल मे चार रुपए की भी हिंदी की पुस्तकें नहीं ख़रीदते। उलटे कहते हैं—"जनाब, हिंदी मे है क्या? क्यो कोई व्यर्थ रुपए ख़र्च करे?" ऐसा उत्तर वे लोग कदापि न देंगे, जिन्हे कुछ भी अपने देश तथा जाति का विचार होगा। अँगरेज़ी वही समझते है, दूसरे नहीं, ऐसी तो कोई बात है नही, न यही कि हिंदी के लेखक अँगरेज़ी-साहित्य के कोरे हुआ करते है। हिंदी की अच्छी पुस्तकों मे अँगरेजी की रद्दी पुस्तकों के इतना भी आनंद नहीं, जो विलायत से भारत बिकने के लिये आती है, और बिक भी जाती है, यह हम मानने के लिये तैयार नहीं। यदि ऐसा कहा जाय कि जिस गुण या दुर्गुण के कारण भारतीय नहीं चमकते, उसी के कारण उनका साहित्य भी मुरझाया हुआ होता है, तो इस कहने की अपेक्षा कहनेवालों की ज़बान की तारीफ़ ज्यादा होगी, हमें पूरा विश्वास है। बँगला-साहित्य का हिंदी से काफ़ी ज्यादा प्रचार है, और बगाली हिंदीवालों से अँगरेजी भी ज्यादा जानते हैं। इसलिये अँगरेज़ी-हिंदीवाली बात लज्जित करने की अपेक्षा लज्जित होने के लिये होती है। किसी भी बंगाली रीडर के यहाँ बँगला के साधारण लेखको की कृतियाँ मिलेंगी, बंगाली लेखको और कवियो की प्रगति तथा कृतियो से वह परिचित होंगे, बँगला-साहित्य की सस्कृति उनके यहाँ मिलेगी, पर हिंदोस्तानी प्रोफ़ेसर के यहाँ हिंदी के अच्छे-अच्छे कवि और लेखक भी न होंगे, उन्हें कुछ ज्ञान नही कि उनके साहित्य की कैसी प्रगति है। कितने दुःख की बात है यह! किताब न ख़रीदेंगे, ऊपर से साहित्य को खरी-खोटी सुनाएँगे। जहाँ पढ़े-लिखे आदमियो का यह हाल है, वहाँ साधारण शिक्षित जनों से क्या आशा की जाय?

साहित्य की वृद्धि व्यापक सहयोग चाहती है। क्योंकि साहित्य का निर्माण समष्टि के लिये होता है। फिर ऊँचा साहित्य तो ऊँचे-ऊँचे व्यक्तियो के लिये ही होता है। यदि उन्हीं का उससे सहयोग न हुआ, तो उसके निर्माण का फल क्या हुआ?

हम जानते हैं, और बहुत अच्छी तरह जानते

है, क्योंकि हिंदी के ऊँचे-से-ऊँचे कलाविद् प्रशंसित साहित्यिकों के साथ हमारा संबंध रह चुका है, और है; यदि उन उच्च साहित्यकारों की कृतियों का यही हाल रहा, और हिंदी के धनी तथा शिक्षित मनुष्यों ने उनकी पुस्तकों से अपना मानसिक आदान-प्रदान न किया, तो साहित्य का एक युग के लिये पीछे चला जाना निश्चित है, इसी प्रकार उन कलाकारों का भी साहित्य निर्माण से विमुख होना अनिवार्य।

सभी घरानों में वैसी ही, बल्कि और सुंदर-सुंदर साड़ियाँ पहनी जाती हैं, तेल, साबुन, इत्र, सेंट, पौडर आदि ख़र्च होते हैं, मोटर की सैर होती है, पेट्रौल फुँकता है। इन सबकी माँगें पहले से बढ़ गई हैं। पर अफ़सोस है, जिन लोगों ने दारिद्र्य का घोर दुःख उठाकर भी सुंदर साहित्य की रचना की, वे तुच्छातितुच्छ समझे गए, और उनकी कृति दैनिक जीवन से अलग, अनावश्यक। उनकी किताबों के लिये पैसों का एकांताभाव हुआ। ऐसे ही विवेक और विचार से साहित्य का उद्धार होगा? एक विदेशी एक रुमाल भी यहाँ का न ख़रीदेगा। हम नाम लेकर नहीं लिख रहे, पर हिंदी के प्रतिभाशाली अनेक लेखकों और कवियों को जानते हैं, जो इसी कारण ऊबकर अब लिखना बंद करनेवाले हैं; यों भी, उनसे जितनी आशा की जाती थी, उतनी नहीं पूरी हुई, कारण, उनकी रचना बिकी नहीं, इसलिये प्रकाशक को दूसरी कृति लेने की हिम्मत नहीं हुई, न अच्छे दाम न मिलने के कारण, अच्छा निर्वाह न हो सकने की वजह उन्होंने कुछ लिखा। ईश्वर कल्याण करे, इससे अधिक कुछ कहा नहीं जाता। नाम लेकर लिखें, तो आज हिंदी के जितने बड़े-बड़े रत्न हैं, प्रायः सब आ जाते हैं। यह दोष अवश्य लेखक अथवा प्रकाशक का नहीं।

× × ×

५. युद्ध के काले बादल

योरप के अशांत वातावरण में युद्ध के काले बादल बराबर मँडरा रहे हैं। युद्ध कोई नहीं चाहता। परंतु योरप के सभी राष्ट्र एक दूसरे के प्रति इतना विश्वास खो बैठे हैं कि युद्ध अवश्य-भावी जान पड़ रहा है। इसलिये, इस प्रयत्न के बजाय कि युद्ध न होवे, सभी उसकी तैयारी कर रहे हैं। अभी मुसोलिनी ने एक घोषणा द्वारा अपने सैनिकों को चेतावनी दी है कि युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिए। क्योंकि लक्षणों से प्रकट हो रहा है कि लड़ाई किसी भी समय छिड़ सकती है, और अभी होते-होते बची है।

जापान ने तय किया है कि वह हर साल चार करोड़ अस्सी लाख येन ख़र्च करके पुराने जहाज़ों की जगह पर नए जंगी जहाज़ बनवावेगा। उधर अमेरिका ने भी कोई सोलह करोड़ रुपए ख़र्च करके चौबीस नए जहाज बनवाने का निश्चय किया है। इस तैयारी का उद्देश्य स्पष्ट है। यदि युद्ध हुआ, तो उसमें सभी शक्तियाँ भाग लेने को मजबूर होंगी। परंतु युद्ध के कारण उपस्थित होने पर भी ये सभी राष्ट्र युद्ध में भाग न लेने का निश्चय कर लें, तो, हमारी समझ में, इससे किसी का कुछ नुक़सान नहीं होगा, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि गत महायुद्ध के भयानक परिणामों को लोग अभी भूले नहीं हैं।

× × ×

६. परलोकगत डॉ० हीरालाल

प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता एवं इतिहासज्ञ रायबहादुर डॉ० हीरालाल के असामयिक स्वर्गवास से समस्त देश की बड़ी हानि हुई है। डॉ० हीरालालजी पुरातत्त्व के बड़े भारी पंडित और ऊँचे दरजे के विद्वान् थे। वह रिटायर्ड डिप्टी-कमिश्नर थे। परंतु पुरातत्त्व से उन्हें विशेष प्रेम था। सरकारी नौकरी में रहते हुए भी उन्होंने ऐसी-ऐसी खोज की है, जिनका

बड़ा महत्त्व है। डॉक्टर साहब प्राकृत, पाली और संस्कृत के भी ज्ञाता थे। प्राकृत भाषा के ग्रंथो को विद्वानो के सामने लाने मे उन्होंने जो प्रयत्न किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। सबसे बड़ा काम उन्होने प्राचीन काल के जैन-ग्रंथों के उद्धार के सबध मे किया। हिंदी के वह अनन्य प्रेमी थे। अपनी महत्त्व-पूर्ण खोजो को वह समय-समय पर, लेखमाला के रूप मे, हिंदी-जनता के सम्मुख उपस्थित करते रहते थे। नागरी-प्रचारिणी सभा से उनका घनिष्ठ सबंध था। उन्होंने खोज-सबधी जो कार्य किए है, वे साहित्य की स्थायी वस्तु है। ऐसे विद्वान् के उठ जाने से हिंदी की बडी हानि हुई है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते है कि वह उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे, तथा उनके कुटुंबियों एवं मित्रों को धैर्य बँधावे।

× × ×

७. उपवास का असर

'हरिजन' के गत १७ अगस्त के अक मे महात्मा गांधी लिखते है—

"अब तक जितने प्रमाण मिले हैं, उनसे तो यही मालूम होता है कि मेरे इस उपवास ने कई कार्य-कर्ताओ के दिलों में तेज़ी से जागृति पैदा करने मे सहायता पहुँचाई है। यह तो समय ही बतावेगा कि यह असर किस हद तक हुआ है। उपवास के असर को मानने का काम मेरा नहीं है। मेरा तो यही काम था कि जो मुझे स्पष्टतया अपना कर्तव्य दिखाई दे, उसे नम्रता के साथ पूरा करूँ। परमात्मा का गुण-गान करना चाहिए, जिसने मुझे विना खतरे के पार जाने की इजाज़त प्रदान की। पा.क-वृंद! आइए, आप भी ईश्वर-प्रार्थना मे मेरा साथ दीजिए, ताकि वह मुझे और अधिक शुद्धता और उद्देश्यवाली शक्ति प्रदान करे, जिससे मैं अपने उस ध्येय को पूरा कर सकूँ, जो उसने मुझे सौंपा है।"

× × ×

८ हिंदी, उर्दू, हिंदोस्तानी

श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा एम्० ए० ने, हिंदोस्तानी एकेडेमी की तिमाही पत्रिका 'हिंदोस्तानी' में, हिंदी, उर्दू, हिंदोस्तानी पर एक विचार-पूर्ण निबंध लिखा है। निबध के अत मे वह कहते है—

"देव-नागरी-लिपि तथा हिंदी भाषा भारतीय लिपि तथा भाषा है, अतः सयुक्त-प्रांत आदि भू-भागो मे रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को—चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अँगरेज़ हो या यहूदी, पारसी हो या मदरासी—देव-नागरी-लिपि और हिंदी-भाषा को अपनी राष्ट्रीय लिपि और भाषा समझकर सीखना चाहिए। मुसलमान भाई यदि चाहें, तो अपनी सस्कृति और धर्म को सुरक्षित रखने के लिये फ़ारसी-लिपि और भाषा को भी अपने बच्चों को सिखा सकते हैं। इसकी उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जब तक वे इसके लिये राजी न हो, तब तक यही एक उपाय है कि हिंदी-भाषी प्रदेशो के ८५ फ़ीसदी हिंदू हिंदी और देव-नागरी-लिपि को अपनावे, और १५ फ़ीसदी मुसलमान भाई उर्दू को अपनाए रहें। भविष्य आप ही इस सबंध मे फ़ैसला कर देगा। जो हो, मैं प्रत्येक पढ़े-लिखे हिंदू-बालक को उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि का अनिवार्य रूप से सिखलाया जाना या उर्दू के निकट जाने के उद्देश्य से साहित्यिक हिंदी की प्रौढ़ शैली को नष्ट कर उसे हिंदोस्तानी बनाना अस्वाभाविक तथा अनावश्यक समझता हूँ। विशेषतया जब इससे साहित्यिक हिंदी और उर्दू के भेद को दूर करने मे कोई भी सहायता नहीं मिलेगी।"

हम वर्माजी के उपर्युक्त विचारों से पूर्णतया सहमत हैं। हिंदी-उर्दू का झगडा किसी के मिटाए नहीं मिटेगा। भविष्य आप ही इस संबंध मे फ़ैसला कर देगा। यद्यपि उर्दू किसी एक प्रांत की भाषा नहीं है, और उसे लिखने और समझने-

वाले अपेक्षाकृत थोड़े है, फिर भी अन्यप्रांतीय भाषाओं की भाँति वह भी यदि अपना एक अलग व्यक्तित्व क़ायम कर सके, तो इससे तो हमें प्रसन्नता ही होगी।

× × ×

९. डॉक्टर बीरबल साहनी का सम्मान

सन् १९३५ के सितंबर-मास में, एमस्टर्डम-नगर में, अंतर्राष्ट्रीय बोटेनिकल कांग्रेस का जो छठा अधिवेशन होगा, उसकी एक विशेष शाखा के सहकारी सभापति का आसन ग्रहण करने के लिये लखनऊ विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के अध्यापक डॉ० बीरबल साहनी डी० एस्-सी० (लंदन) एस्-सी० डी० (कैंटब) को उक्त कांग्रेस की कमेटी द्वारा निमंत्रण मिला है। अब तक अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान-परिषद् की किसी भी शाखा का सहकारी सभापति होने का सम्मान किसी भी भारतीय और संभवतः किसी भी एशिया-वासी को प्राप्त नहीं हुआ है। कैंब्रिज-विश्वविद्यालय की एस्-सी० डी० उपाधि भी साहनी महोदय को भारतवासियों में सर्वप्रथम मिली है। साहनी महोदय वनस्पति-शास्त्र के बड़े भारी पंडित हैं। और, इस विषय में उन्होंने जो खोजें की है, वे बड़ी महत्त्व-पूर्ण हैं। अतएव कांग्रेस ने उनको अपनी सभा का सहकारी सभापति बनाकर उचित सम्मान दिया है।

हम डॉ० साहनी को उनके इस असाधारण सम्मान-लाभ के लिये हार्दिक बधाई देते हैं।

× × ×

१०. परलोकगत श्रीए० पी० सेन

डॉक्टर हीरालाल के साथ ही देश के एक और प्रसिद्ध व्यक्ति के उठ जाने का आज हमें बड़ा दुःख है। प्रसिद्ध लिबरल नेता और लखनऊ के नामी वकील श्रीए० पी० सेन अब इस संसार में नहीं है। रविवार २६ अगस्त को प्रयाग में लिबरल फ़ेडरेशन की अखिल भारतवर्षीय कार्यकारिणी समिति की बैठक थी। अन्य सदस्यों के अतिरिक्त श्रीए० पी० सेन के भी उपस्थित होने की आशा थी। परंतु उस दिन प्रातःकाल होने के पहले ही वह सदा के लिये इस संसार से चल बसे। शनिवार को २ बजे तक उनकी हालत अच्छी थी। परंतु एकाएक पक्षाघात का आक्रमण हो गया, और उससे आपकी मृत्यु हो गई।

श्रीए० पी० सेन लखनऊ के ही नहीं, वरन् समस्त देश के एक रत्न थे। आप बड़े सज्जन और उदार थे। ललित कलाओं से आपको बड़ा प्रेम था। और, हिंदी-प्रेमियों को कदाचित् यह बात मालूम नहीं होगी कि युक्तप्रांत के निवासी श्रीए० पी० सेन बँगला-साहित्य के बहुत ही अच्छे कवि थे। रवि बाबू आपका सम्मान करते थे, और उन्होंने सेन महोदय को अपनी एक काव्य-पुस्तिका भी भेंट की थी। अतएव उनकी मृत्यु से बँगला-साहित्य की भी हानि हुई है। वकालत में आपने ख़ूब रुपया कमाया, परंतु रुपया जोड़ने की इच्छा आपने कभी नहीं की। आप स्वभाव के बड़े सरल थे। आपकी रहन-सहन सादी थी। अभिमान आपको छू तक नहीं गया था। आपके स्वर्गवास का समाचार मिलते ही सरकारी अदालतें बंद हो गईं, साथ ही कांग्रेस का राष्ट्रीय झंडा भी झुक गया। श्रीए० पी० सेन ने प्रकट रूप से कभी किसी आंदोलन में भाग नहीं लिया। फिर भी देश से उन्हें बड़ा प्रेम था। वह साधु-प्रकृति के व्यक्ति थे, और सर्वजन-प्रिय थे। लखनऊ के नाते हम यह कहने को बाध्य हैं कि उनकी मृत्यु से इस नगर की बड़ी हानि हुई है।

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह आपके कुटुंबियों को इस संकट के समय धैर्य प्रदान करे।

× × ×

११. युगांतर का गृहस्थांक

पंजाब-निवासी हिंदी-लेखकों में श्रीयुत संतरामजी बी० ए० का स्थान सर्वोच्च है। वह बड़े विचार-शील लेखक और सफल संपादक है। उनके संपादकत्व मे लाहौर के सुप्रसिद्ध जाति-पाँति-तोडक मंडल की ओर से दो सुंदर मासिक पत्र निकलते हैं—१. क्रांति (उर्दू), २ युगांतर (हिंदी)। युगांतर की हिंदी के अच्छे मासिकों मे गिनती है। यद्यपि उसका वार्षिक मूल्य २) ही है, और उसमें प्रतिमास ५४ पृष्ठ और एक रंगीन तथा कई व्यंग्य-चित्र ही रहते है, किंतु पाठ्य सामग्री सब पठनीय होती है। एक अंक का मूल्य केवल ≡) है। अभी हाल मे इसने 'गृहस्थांक' निकाला है। गृहस्थ-संबंधी गुत्थियो को सुलझाने के लिये इसमे प्रचुर सामग्री संतरामजी ने भर दी है। इसमें दी हुई कविताएँ, लेख और चित्र, सभी अच्छे है, और संतरामजी की संपादन पटुता के द्योतक हैं। हमे संतरामजी से ऐसे ही सुंदर विशेषांक की आशा थी। युगांतर का उद्देश्य हिंदू-जाति मे सामाजिक युगांतर करना है—जाति-पाँति के भयंकर किले को ढहाकर उसकी भूमि पर सुंदर उपवन तैयार करना ही उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। हमारी परमात्मा से आंतरिक प्रार्थना है कि वह अपने इस उद्देश्य में सफल हो। अस्तु। युगांतर के गृहस्थांक को सुचारु रूप से संपादित करके निकालने पर हम अपने मित्र और सुधा के पुराने अपने लेखक श्रीयुत संतरामजी को बधाई देते है।

× × ×

१२. केशों की रक्षा और उनका सौंदर्य

सुंदर केशों का होना महिलाओं के स्वास्थ्य का एक चिह्न है। किंतु अधिकांश में हमारी बहने केशों की रक्षा और सौंदर्य की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं। स्वस्थ केशों का रंग गहरा काला और चमकदार होना चाहिए। परिश्रम की अधिकता, अनियमित भोजन और चिंताओ के कारण केश रूखे और छोटे हो जाते तथा गिरने लगते हैं। और, अंत मे चेहरे का सौंदर्य उनके कारण नष्ट होने लगता है। जहाँ तक हमें मालूम है, हमारी बहुत-सी बहनें केशों के रोगों से पीड़ित है, और उनका इलाज करने मे असमर्थ है। जिसका मुख्य कारण उनका आलस्य और असावधानी है।

केशो की सौंदर्य-रक्षा का पहला नियम है उनको साफ़ रखना। कम-से-कम दस दिनो में एक बार केशों को अवश्य धोना चाहिए। जिनके बाल रूखे हों, उनको दो या तीन सप्ताह के अंतर से धोना चाहिए। तेल के नियमित प्रयोग के कारण बालो मे चिकनाई जम जाने से मैल की तह जमने लगती है, जिसे यदि साफ़ न किया जाय, तो बाल गिरने लगते हैं, और उनकी जडे कमज़ोर हो जाती है। केशों को नियमित रूप से धोने से उनकी कांति और चमक बढ़ती है, तथा वे दिन-दिन लंबे होते जाते हैं। केश धोने के लिये खार, सज्जी या सोडे का व्यवहार हानिकारक है। अच्छा साबुन व्यवहार मे लाना चाहिए, और पहले गरम पानी से अच्छी तरह केशो को धोकर बाद में ऊपर से ठंडा जल छोड़ना चाहिए। साबुन के पतले-पतले टुकड़े चाकू से खरोचकर, गरम पानी मे उबालकर उस पानी से केशो का धोना उनकी सफ़ाई के लिये अच्छा प्रयोग है।

केशो को धोने से पहले उनको कंघी से अच्छी तरह काढ़ना चाहिए, जिससे मैल नरम पड जाय। कंघी धीरे-धीरे चलाना चाहिए कि केश झटके से न टूटें। इसके बाद एक अच्छे ब्रुश से उनको साफ़ करना चाहिए। फिर चारो ओर अच्छी तरह से साबुन लगाकर हल्के-हल्के हाथो से उनको धीरे-धीरे मलना चाहिए।

एक बार साबुन लगाकर धो डालने के बाद दुबारा फिर साबुन लगाकर धोना चाहिए। जिनके सिर में खुजली मालूम होती हो, उनको कम-से कम तीन बार उपर्युक्त विधि से केशों को धोना चाहिए। धोने के बाद मोटे तौलिए या अँगौछे से केशों को पोंछकर पूरी तरह से सुखा लेना चाहिए। बालों में साबुन न लगा रह जाय, इसका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, क्योंकि उससे भी गंज आदि रोगों की सृष्टि हो सकती है।

स्नान करने से पहले सिर में तेल डालना केशो का सौंदर्य स्थिर रखने के लिये आवश्यक है। एक चम्मच मे, जो काफ़ी बड़ा हो, थोडा-सा तेल लेकर अँगीठी पर गरम कर लो। इसके बाद दाहने कान के सिरे से लगाकर आधे सिर में उँगलियों से धीमे-धीमे मलती हुई चली आओ। एक कपड़े के साफ टुकड़े को तेल से भिगोकर बालो की जडो को ख़ूब मलो, लेकिन शीघ्रता न करो। दाहने भाग मे अच्छी तरह तेल लग जाने पर बाईं ओर भी उपर्युक्त ढग से लगाओ। इसके बाद पूरे सिर में हथेली से बालो को घुमा-घुमाकर लगभग बीस मिनट तक हलके-हलके मलती रहो, फिर साबुन लगाकर धो डालो। गरम पानी से धोने पर तेल की चिकनाई जाती रहेगी, और बाल हलके तथा चमकदार निकल आएँगे। बाल बढ़ाने के लिये ऊपर लिखी रीति से तेल का व्यवहार बहुत लाभदायक है।

बालो मे ब्रुश फेरने से उनमें मैल नहीं जमने पाता, और वे साफ़ रहते है। ब्रुश को कम-से-कम बीस बार दाहने, बाएँ और ऊपर की ओर सिर में फिराना चाहिए। केशो को सुंदर बनाने के लिये यह सर्वोत्तम साधन है। नरम और लंबे बालो का ब्रुश ही व्यवहार में लाना चाहिए, और उसे अच्छी तरह से साफ रखना चाहिए। बालो में विदेशी सेंट तथा अन्य सुगंधित वस्तुएँ न लगा-कर केवल अच्छे तेल का व्यवहार करना उनके सौंदर्य और जीवन को बढाता है।

× × ×

१३. लेखन-शैली और उसका विकास

किसी साहित्य के भावों को भाषा-बद्ध करने की कुशलता उपयुक्त लेखन-शैली की पहचान है। हृदय की भावना का शाब्दिक रूप ही शैली है। विज्ञान और शैली दोनो का रूप और कार्य सर्वथा भिन्न है। लेखन-कला में प्रत्येक मनुष्य अपनी मौलिकता का प्रदर्शन कर सकता है, परंतु विज्ञान में निश्चित सिद्धांतो के क्रमानुसार कार्यों की ही विवेचना होती है। साहित्यिक शैली लेखक के व्यक्तित्व का शाब्दिक रूप और उसके भावो की प्रतिच्छाया है। उन्नतिशील लेखकों को चाहिए कि वे अपनी शैली को स्वाभाविक रूप में रखने की चेष्टा करें, और अपने व्यक्तित्व के अनुसार अनुभव के आवरण में अपने विचारों को प्रकट करना सीखें। शैली का विकास ही लेखक के व्यक्तित्व का विकास है। यदि लेखक कृत्रिमता की ओर न जाकर अपने मनन किए हुए विचारो को सीधी-सादी भाषा में लिपि-बद्ध कर लेता है, तो यह निश्चित समझिए कि वह अपनी शैली में मौलिकता लाने में सफल होगा, और उसका साहित्य एक भिन्न वस्तु होगी, जिसको जनता उसकी शैली विशेष के कारण ही पहचान सकेगी। दूसरे लेखको के आधार पर लिखना लेखक की प्रतिभा और मौलिकता को नष्ट करता है।

शैली मे प्रवाह का होना बडी भारी विशेषता है। गद्य मे भी पद्य का अंश वर्तमान रहता है, यह न भूलना चाहिए। यही कारण है कि कुछ लेखकों की रचनाएँ, साहित्यिक दृष्टि से ऊँची न होकर भी, बहुत पसंद की जाती हैं, तथा उच्च कोटि की साहित्यिक शैली होते हुए भी बहुत-सी रचनाओं को लोग पढ़ते तक नहीं। शैली स्पष्ट और संक्षिप्त

होना चाहिए। जो कुछ लिखना हो, केवल उतने ही शब्दों मे लिख जाय, जितने की आवश्यकता है, अधिक नहीं। भावों की स्पष्टता शैली के महत्व को बढ़ाती है। भाषा की सादगी लेखक की कुशलता की पहचान है। लेखक को चाहिए कि लिखते समय यह समझ ले कि उसका पाठक सामने खड़ा है, और उससे बातें कर रहा है। जो बोलचाल की भाषा वह व्यवहार कर सकता है, वही लिपि बद्ध करना उसके लिये उचित है। लंबे वाक्य और उत्प्रेक्षा तथा उदाहरण का व्यवहार शैली के प्रवाह मे बाधक समझना चाहिए। कठिन शब्दों और औपन्यासिक भाषा का प्रयोग कभी शैली के आदर्श को ऊँचा नही बना सकता।

यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि लिखे हुए वाक्य मे प्रयुक्त प्रत्येक शब्द सार्थक हो। निरर्थक शब्दों के व्यवहार से अच्छे लेखक को सदैव बचना चाहिए। छोटे छोटे सरस वाक्यों का प्रयोग भाषा की सुंदरता को बढ़ाता है, और लंबे-लंबे साहित्यिक वाक्यों से सजी हुई आलंकारिक भाषा लेखक की विचार-न्यूनता का द्योतक समझी जाती है। लेख को कई छोटे छोटे भागों और पैराग्राफ़ में विभाजित कर देना चाहिए, जो पाठकों को सुविधा-जनक प्रतीत हों।

लेखक को दूसरी बात यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसकी शैली विषय के उपयुक्त हो। अभ्यास और विचारशीलता से उसको इसमे सफलता प्राप्त होगी। यदि विषय साधारण है, तो भाषा भी उसके अनुकूल होनी चाहिए। यदि विषय गंभीर और विवेचना से युक्त है, तो भाषा सरल और ज़ोरदार होनी चाहिए। हास्यरस के लेखक को भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए, और जहाँ तक हो सके, उसे सरल शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। इसी भाँति किसी गंभीर विषय पर लिखते समय भाषा-शैली को शिथिलता से बचाना चाहिए।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् फ़्लाबर्ट ने शैली की परिभाषा इस प्रकार लिखी है—"जो कुछ लेखक कहना चाहता है, वही उसे सादे शब्दों मे लिखना चाहिए। उस रचना के लिये एक संज्ञा की, उसको कार्यात्मक रूप देने के लिये एक क्रिया की और उसकी विशेषता प्रकट करने के लिये एक विशेषण की आवश्यकता होती है। उनको सोचना और ढूँढ़कर प्रयोग करना चाहिए, ताकि वे वाक्य मे सर्वथा उपयुक्त हो सकें। भाषा में बनावट न आना चाहिए। मौलिकता तभी आ सकती है।"

×　　×　　×

१४ ऐतिहासिक नाटक का रूप

अभी थोड़े दिन हुए, तब हिंदी की एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका के एक लेख मे ऐतिहासिक नाटकों के संबंध मे कुछ इस प्रकार की बात पढ़कर हमे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कवि अथवा नाटककार अपनी रचना मे यदि इतिहास की भूलें करता है, तो यह कोई अपराध नहीं है। हम भी मानते हैं कि कवि का काम इतिहास लिखना नही है। अतएव उससे यदि दो-एक ऐतिहासिक प्रमाद हो जायँ, तो वे बहुत चिंत्य नही है। क्योंकि स्वयं इतिहास मे भी ऐतिहासिक ग़लतियों और प्रमादों से बचना असंभव हो जाता है। अपने प्रसिद्ध उपन्यास Penguin Island की भूमिका में अनातोले फ़्रांस ने लिखा है—It is entremely difficult to write history. We do not know exactly how things have happened, and the historian; embarrassment increases with the abundance of documents at his disposal When a fact is known through the evidence of a single person, it is admitted

without much hesitation Our perplexities begin when events are related by two or by several witnesses, for their evidence is always contradictory and always irreconcilable.

अर्थात्, इतिहास लिखना अत्यंत कठिन कार्य है। घटनाएँ किस प्रकार घटित हुई है, इसे हम नहीं जान सकते। और, ऐतिहासिक सामग्री जितनी ही प्रचुर होती है, इतिहासकार की कठिनाई उतनी ही अधिक बढ़ जाती है। किसी एक ही व्यक्ति के द्वारा जब कोई लिखित प्रमाण हमे मिलता है, तो हम उसे निस्सकोच भाव से स्वीकार कर लेते है। परतु हमारी कठिनाई उस समय बढ जाती है, जब किसी एक ही घटना का दो या अनेक व्यक्तियों द्वारा उल्लेख होता है, क्योंकि ऐसी अवस्था मे उनके प्रमाण सदैव एक दूसरे से विभिन्न एव विरोधी होते है। अतएव ऐतिहासिक कथा-साहित्य में इतिहास-संबंधी भूलों को हम कोई बहुत महत्त्व नहीं देते। परतु जब कोई लेखक ऐतिहासिक नाटक के आदर्श एवं उसके मूल अभिप्राय से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हुआ यह कहने की बुद्धिमत्ता प्रदर्शित करता है कि कवि के लिये इतिहास का मानना ज़रूरी नहीं है, और कवि के आदर्श के अनुकूल इतिहास बरता जाता है, इतिहास की प्रणाली का कवि अनुगामी नहीं है, तब इस संबंध में हम अपने विचार प्रकट करना आवश्यक समझते है। वास्तव मे हम तो कवि अथवा नाटककार को उसकी रचना के संबंध मे उसे पूर्ण स्वाधीनता देने के पक्षपाती है। परंतु कोई लेखक अहम्मन्यता के वशीभूत होकर यदि उस स्वाधीनता का दुरुपयोग करे, अर्थात् "कवि के आदर्श के अनुकूल इतिहास बरता जाता है," इस वाक्य का ठीक मर्म समझने की कोशिश न करके ज़बरदस्ती अपनी हठधर्मी एवं अज्ञानता के वशीभूत होकर इतिहास के रूप को कलंकित करने की चेष्टा करे, तो वह किसी भी प्रकार क्षमा के योग्य नहीं है।

किसी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना के आधार पर ही काव्य-रचना कर देने से वह ऐतिहासिक काव्य नहीं हो जाता। हम कवि से यह आशा भी करते हैं कि उसकी रचना अपने समय की सच्ची तस्वीर हो। यदि ऐसा नही है, तो ऐतिहासिक काव्य अथवा नाटक लिखने का उद्देश्य ही फिर क्या है? यदि ऐतिहासिक दृष्टि से उस काव्य की रूप रेखा ठीक नहीं है, यदि वह रचना इतिहास-प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों का यथार्थ चित्रांकन नही करती, तो फिर उसमें एव एक साधारण नाटक में अंतर ही क्या रह जाता है? क्या ऐतिहासिक नाटक एवं एक साधारण सामाजिक अथवा रोमांटिक नाटक का उद्देश्य एक ही है? अर्थात् मानव-प्रकृति का चित्रण? यही क्या दोनो का एकमात्र एवं अंतिम लक्ष्य है? तब इस कार्य के लिये इतिहास को कष्ट देने की आवश्यकता क्या है? हम बुद्ध और अशोक, चंद्रगुप्त और स्कदगुप्त, चाणक्य और कालिदास, इन सबको रंगमंच पर लाने का प्रयत्न क्यों करे? इससे हमें क्या लाभ? इससे अच्छा तो यही है कि इन ऐतिहासिक नामों के स्थान पर हम कमल, विमल और अमल आदि नामों से अपना काम चला लें।

इतिहास के ये पात्र है क्या चीज? क्या संस्कृत के किसी प्राचीन ग्रथ मे कालिदास का जीवन-चरित मिलता है? और चंद्रगुप्त के संबंध में जो खोज हुई है, वह भी क्या सत्य एवं पूर्ण है? कालिदास और चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त और चाणक्य, ये सब कैसे थे, यह कौन बता सकता है? इतिहास क्या उनके साथ न्याय करेगा? सब ऐतिहासिक विवरण क्या सत्य होते हैं? क्या पता, कालिदास स्वयं इतिहास की

एक कल्पना हो ? किंतु जिसने रघुवंश और मेघदूत रचा है, वह तो कल्पना नहीं है । मेघदूत का कवि सत्य है, अजर और अमर है । उससे जन्म-जन्म का हमारा परिचय है । हमारे मानस-पटल पर उसकी जो मूर्ति अंकित है, वह अमिट है । उस कवि को यदि हम कभी रंगमंच पर देखें, तो हम उसे तुरत पहचान लेंगे। ऐसी दशा में कोई असमर्थ लेखक यदि इस महाकवि के साथ अन्याय करे, और उसे निहायत बेहूदा ढंग से स्टेज पर लाकर उपस्थित कर दे, तो क्या हम उसे क्षमा कर देंगे ? और, उसे दंड देते समय क्या हमें इतिहास की दुहाई देने की ज़रूरत पड़ेगी ? कालिदास को इतिहास की अपेक्षा हम अधिक जानते हैं । अशोक और बुद्ध, चाणक्य और चंद्रगुप्त को भी हम जानते हैं । जो कवि और नाटककार है, जिसने इन चरित्रों को रंगमंच पर लाकर खड़ा किया है, उसने इन्हें किस रूप में देखा है ? कल्पना का कौन सा रंग और चित्र की कौन-सी भाषा उसने इन्हें प्रदान की है ? इतिहास की इन अस्थि-पंजरमय मूर्तियों को उसने किस प्रकार अस्थि-मज्जामय मनुष्य बनाया है ? और, अपनी कल्पना के द्वारा हमारे अतीत को उसने कैसा सजीव किया है ? ये सब विषय हैं, जिन्हें हम रंगमंच पर देखना चाहते हैं, और जिनके लिये ऐतिहासिक काव्य अथवा नाटक की सृष्टि हुई है ।

कवि का कार्य इतिहास लिखना नहीं है । इसे तो हम प्रारंभ में ही स्वीकार कर चुके हैं । उसका कार्य ऐतिहासिक रस की सृष्टि करना है । यह रस इतिहास के शुष्क पन्नों में नहीं मिलता । उसका निवास तो कवि के मानस में है । परंतु जिन उपादानों से इस रस की सृष्टि होती है, उनका शुद्ध होना आवश्यक है, अन्यथा रस में विकार उत्पन्न हो सकता है । चितेरा जैसे रंगों से छवि अंकित करता है, वैसे ही कवि थोड़ी-सी ऐतिहासिक सामग्री की सहायता से एक समय-विशेष की झाँकी खींचता है । यदि सामग्री दूषित हुई, तो यह मानी हुई बात है कि चित्र ठीक नहीं बनेगा । अतः ऐतिहासिक नाटककार को यह कहकर निष्कृति नहीं मिल सकती कि "ऊँह, हम तो कवि हैं, हमारा कार्य तो कविता करना है । इतिहास लिखना हमारा कार्य नहीं है ।' हम पूछते हैं, उसका कार्य क्या है ? और इतिहास-लेखक का कार्य क्या है ? इन दोनों के कार्यों एवं उद्देश्यों में क्या कोई विशेष प्रभेद है ? किंतु फिर भी यह ठीक है कि कवि इतिहासकार नहीं है । परंतु यदि वह अपने लेख्य विषय का पंडित नहीं है, तो वह ऐतिहासिक विपर्यय दोष से बच नहीं सकता, यह भी उतना ही ठीक है । कवियों के लिये (सौभाग्य से) यह डिक्टेटरों का ज़माना हो सकता है, परंतु जो ऐतिहासिक काव्य लिखना चाहते हैं, वे हर घड़ी विपत्ति में हैं ।

हमारे यहाँ अब तक उच्च कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास अथवा नाटक नहीं लिखे गए हैं । हिंदी में बाबू वृंदावनलालजी वर्मा ही ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में ऐतिहासिकता का यथोचित सम्मान किया है । इस दृष्टि से उनके उपन्यास स्कॉट की रचनाओं के संग तुलनीय हैं । परंतु हिंदी में अब तक जो ऐतिहासिक नाटक लिखे गए हैं, वे केवल नाम-मात्र के ऐतिहासिक नाटक हैं । वास्तव में ऐतिहासिक काव्य का जो आधुनिक रूप एवं आदर्श है, उससे हम बिलकुल ही अपरिचित हैं । इसी कारण इस विषय में जो मन में आता है, हम कह देते हैं । हमारे लेखक ऐतिहासिक काव्य के प्रति न तो किसी प्रकार का उत्तरदायित्व ही अनुभव करते हैं, और न उसे लिखने के लिये किसी तरह की तैयारी की ही आवश्यकता महसूस करते हैं । साधारण लेखक तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि इस प्रकार की रचना-सृष्टि करने के लिये

कितने परिश्रम की आवश्यकता है। इस विषय में हम पश्चिम के उन लेखकों से बहुत कुछ सीख सकते हैं, जिनकी हम बात-बात मे दुहाई दिया करते है। उनके यहाँ ऐतिहासिक उपन्यास अथवा नाटक का लिखा जाना इतना आसान नहीं समझा जाता। वहाँ के श्रेष्ठ लेखक भी इस क्षेत्र में पैर रखते हुए भय खाते है। इसका कारण स्पष्ट है। वे जानते हैं, वर्तमान के इस सघन कोलाहल की सुदृढ़ दीवार को भेदकर अतीत को देखना, उसकी कल्पना करना, इस प्रकार कि उसमे निवास करने लगना, उसमे डूब जाना और फिर उसका एक चित्र खींचकर रख देना, यह कार्य बहुत सहज नहीं है। इसके लिये आवश्यक है इतिहास का गभीर ज्ञान एव कवि की प्रखर कल्पना-शक्ति। तभी कुछ संभव है, अन्यथा ऐतिहासिक नाटक या उपन्यास लिखने का ढोंग ही क्यो रचा जाय?

इतिहास तो स्वयं साहित्य है। इतिहास-लेखक अपनी कल्पना से काम लेकर ही इतिहास-रचना करता है। जो लेखक जितना ही अधिक कल्पना-शील होगा, उसका इतिहास भी उतना ही अधिक रोचक होगा। इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। योरप के आधुनिक साहित्य में ऐसे इतिहास-ग्रंथों एवं जीवन-चरितों का अभाव नहीं है, जिन्हे पढ़कर आप किसी भी अच्छे गद्य काव्य का रस ले सकते हैं। कहने का आशय यह कि आधुनिक इतिहास-लेखक के साथ कवि या नाटककार का सहज ही मे समझौता हो सकता है। फिर उससे विरोध करने की ऐसी आवश्यकता क्या? इतिहास-लेखक प्रत्येक घटना को अपने दृष्टिकोण से देखता है, और उस पर अपनी कल्पना का रंग चढ़ाता है। कवि भी यही करता है, बल्कि उसका कार्य और भी अधिक सुंदर एवं महत्त्व-पूर्ण है। वह इतिहास की एक ही घटना को अनंत दृष्टिकोण से देख एवं अनंत रूपो में सजाकर रख सकता है। किंतु घटना के मूल रूप मे परिवर्तन करने का उसे क्या अधिकार है? कवि को यदि हमने यह सुविधा सौंप रक्खी है कि वह इच्छानुसार अपनी कल्पना का उपयोग करे, तो क्या इस सुविधा के बल पर वह निरंकुशता से काम लेगा? उसका कार्य इतिहास की मूर्ति को सजाना है, उसे विकृत करना नहीं। अपनी कल्पना से इतिहास की मूर्ति को वह अधिक सुंदर बनावेगा, उसका गला नही घोटेगा। इतिहास में जो शूरवीर है, उसे वह नीच एवं लंपट नहीं बनावेगा। जो कामी और लोलुप है, उसे वह देवता नही बनावेगा। जो धनी है, उसे वह भिखारी नहीं बनावेगा। जो घृणित है, उसे वह सबका प्रिय बनाकर चित्रित नहीं करेगा। इस प्रकार की निरंकुशता इतिहास तो कभी सहन कर ही नही सकता, और साहित्य मे भी वह सदैव अक्षम्य है।

× × ×

१५. बाढ़ का भयानक प्रकोप

भूकंप से पीड़ित बिहार को इतने शीघ्र दूसरी विपत्ति का सामना करना पडेगा, यह कोई भी नहीं जानता था। बाढ़ के कारण होनेवाली असंख्य जन-हानि ने बिहार को अस्तित्व-हीन कर देने मे कुछ उठा नहीं रक्खा। भारतवर्ष के उत्तर पूर्वीय प्रांतो में नदियो की बाढ़ ने जो प्रलय मचाई है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस दैवी आपत्ति का शिकार बनकर जाने कितने घर सत्यानाश हो गए, कितने परिवार नष्ट हो गए, और कितने बेघर बार के होकर दर-दर के भिखारी बन गए। आसाम-प्रांत में विशेष रूप से इस बाढ़ ने विनाशकारी रूप धारण किया है। और, एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा प्रांत उजाड़ दिखाई दे रहा है। पश्चिमीय बिहार और युक्त-प्रांत के कुछ पूर्वीय ज़िलों में भी बड़ी हानि हुई है। गोरखपुर, बलिया, ग़ाज़ीपुर, उन्नाव, बनारस

और इलाहाबाद-ज़िले के बहुत-से गाँव जल-मग्न हो गए, घर और बढ़ती हुई फ़सलें नष्ट हो गई, मवेशी और किसानों का रहा-सहा धन बह गया। बगाल के राजशाही-ज़िले से समाचार मिला है कि पद्मा-नदी का जल बाँध से ऊपर बढ गया है, और आस-पास के गाँवो को भयंकर क्षति पहुँचाई है।

पिछले वर्ष भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमीय प्रांतों मे ऐसी ही भयकर बाढ़ के कारण बडी हानि हुई थी। कुछ वर्ष पहले पूर्वीय तट का अधिक भाग बाढ़ के कारण नष्ट हो गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि विज्ञान की आधुनिक उन्नतिशील अवस्था मे भी क्या हम ऐसी दुर्घटनाओं का प्रति-कार करने की तदबीर नहीं निकाल सकते? योरप और अमेरिका मे बाढ़ के कारण कोई विशेष हानि होने की सूचना बहुत कम मिलती है। इसका क्या कारण है? उन देशो में सरकार की ओर से नियुक्त किए हुए नदी-नियंत्रण विभाग द्वारा नदियों का जल भिन्न भिन्न प्रकार के बाँध और नहरों से नियंत्रित होकर प्रवाहित होता है। सभवत. ऐसे आयोजन का व्यय भारतवर्ष मे फ़िज़ूलख़र्ची समझा जाता है। फिर भी हमारी सरकार कुछ ऐसे उपायों का अवलबन कर सकती है, जिनसे बाढ़ के प्रकोप से होनेवाली हानि से देश की रक्षा हो सके। नदियों के जल-प्रवाह की गति सीमित रखना नितांत आवश्यक है। अतिरिक्त जल की तीव्रता रोकने के लिये स्थान-स्थान पर गहरे नाले खोदे जा सकते हैं, और नदी का प्रवाह धीमा किया जा सकता है। अधिकतर समतल प्रदेशों की अपेक्षा पहाड़ो पर वर्षाधिक्य के कारण ही बाढ़ आया करती है। नदियों का मार्ग पहाड़ से निकलने के बाद समतल प्रदेश मे जाता है, और उसके दोनो तटो पर बस्ती और खेती-बारी अधिक होती है। समतल प्रदेश मे नदियों का प्रवाह धीमा रहता है, और इस कारण ऐसे उपायो का अवलबन करना, जिनसे बाढ़ से रक्षा हो सके, कोई कठिन कार्य नही, यदि भारत-सरकार के इंजीनियरिंग और फॉरेस्ट-डिपार्टमेंट के अधिकारीगण इस विषय में ध्यान दें। शासक के नाते उनका कर्तव्य है कि किसी-न-किसी प्रकार ऐसी आकस्मिक घटनाओ से देशवासियो की रक्षा करें।

× × ×

१६. ज़मींदार और ऋण-समस्या

लखनऊ मे युक्तप्रांतीय महाजन सभा के विगत अधिवेशन के अवसर पर डॉ० जैकरणनाथ मिश्र ने अपने सभापति के भाषण मे ज़मींदारों की ऋण-समस्या पर अपने महत्त्व-पूर्ण विचार प्रकट किए। इन्होंने बतलाया, महाजन और ज़मींदारों के पारस्परिक सबंध में जो कटुता और स्वार्थप्रियता की भावना आ जाती है, इसको दूर करने के लिये उनके पारस्परिक सहयोग की बडी आवश्यकता है। ऋणी की अधिकार-रक्षा के क़ानून कुछ अंशो में व्यावहारिक रूप पूर्णतया नहीं ग्रहण कर सकते। कान्फ्रेंस मे इस सबध मे अनेको प्रस्ताव रक्खे गए, और सर्व सम्मति से पास हुए। यदि सरकार ऋण ग्रस्त और आर्थिक संकट मे पड़े हुए ज़मींदारों की सहायता करना चाहती है, तो उसे चाहिए कि सुलभ शर्तों पर जमींदारो को अपनी ओर से रुपया उधार देकर महाजनो के पजे से छुडाए। इसके अतिरिक्त यदि ज़मींदार दिवालिया बनना चाहे, तो उनको महाजनो से कुछ छूट दिलाने मे भी सरकार सहायता कर सकती है। पिछले वर्षो मे जो कठिनाइयाँ ज़मींदारो के सामने आई हैं, उनके कारण वे लाचारी मे ऋण-ग्रस्त बने हैं। उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये ही नही, वरन् किसानो पर उनका अत्याचार कम करने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसे उपाय ढूँढ़ निकाले जायँ, जिनसे वे अर्थ-संकट का समर्थता से सामना कर

सकें। इस विषय में भारत-सरकार को ध्यान देना आवश्यक है।

× × ×

१७. स्वस्थ रहने के दस आवश्यक नियम

चिरकाल से संसार के चिकित्सा-विशेषज्ञ शरीर को पूर्णतया स्वस्थ और नीरोग बनाए रखने के रहस्यों की विवेचना करते आए हैं। स्वास्थ्य-नियमों को जानकर भी उनके अनुकूल व्यवहार करना हम लोग नहीं जानते, यह हमारी मानसिक दुर्बलता और आलस्य का एक प्रमाण है। चिकित्सक इस विषय में हमारी कोई सहायता नहीं कर सकता, जब तक हम स्वयं स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने के लिये प्रस्तुत न हों। सिद्धांतवाद और मौखिक विवेचना का कोई मूल्य नहीं, जब तक कोई नियम व्यवहार में न लाया जाय। वे लोग, जो अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहते हैं, सदैव सिद्धांतों को कार्य-रूप में परिणत करते हैं। एक विशेषज्ञ द्वारा बतलाए हुए स्वस्थ रहने के दस आवश्यक नियमों का हम नीचे उल्लेख करेंगे—

१. कम खाओ

इक्कीस वर्ष की अवस्था तक अधिक परिमाण में गरिष्ठ और भारी भोजन स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं पहुँचाता। कारण, शरीर उस समय तक वास्तविक रूप से बनता रहता है। बाद में जब शरीर के सभी अवयव पूर्णता को पहुँच जाते हैं, उस समय भोजन का कार्य केवल हानिकारक द्रव्यों के प्रभाव को नष्ट करने मात्र का रह जाता है, जो शरीर को क्षीण होने से बचाता रहता है। अधिक परिमाण में भोजन करने से उत्पन्न होनेवाली अजीर्णता शरीर में विष उत्पन्न कर देती है, और उसी से नए-नए रोग समय-समय पर उभरने लगते हैं। अंत में परिणाम यह होता है कि शरीर की पाचक शक्ति का क्रमशः ह्रास हो जाता है। बुद्धिमानी इसी में है कि बड़ी रात गए, जल्दी में और श्रम की अवस्था में डटकर भोजन कभी न किया जाय। सप्ताह में या पंद्रह दिन में एक बार उपवास करना स्वास्थ्य के लिये लाभदायक सिद्ध होता है, किंतु उपवास की दशा में दिमागी काम न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके, भूख से थोड़ा कम खाना ही रोगों से बचने का सर्वोत्तम नियम है।

२. पेट साफ़ रक्खो

मादक द्रव्यों का सेवन और अधिक परिमाण में भोजन, शरीर में विष पैदा कर देता है। पेट में कब्ज़ रहना किसी भी दशा में उचित नहीं। कब्ज़ रहना इस बात की स्पष्ट निशानी है कि पेट में विषाक्त और हानिकारक द्रव्य इकट्ठा हो गया है। नियमित रूप से स्नान न करने से भी यह बात पैदा हो सकती है, क्योंकि ऐसी दशा में रोम-छिद्र मैल से बंद हो जाते हैं, और पसीने में मिलकर आनेवाला भीतरी द्रव निकल नहीं पाता। यदि शीघ्र ही ध्यान न दिया जाय, तो इससे अनेक भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। त्वचा को साफ़ रखना बहुत आवश्यक है, और प्रत्येक मनुष्य को नियमित रूप से स्नान करके प्रतिदिन तौलिए या अँगौछे से शरीर को रगड़-रगड़कर मलना चाहिए। यदि हो सके, तो अच्छे साबुन का व्यवहार त्वचा को साफ़ रखता है।

३. परिश्रम के बाद ख़ूब सोओ

स्फूर्ति लाने के लिये नींद प्रकृति का सर्वोत्तम नियम है। सोने की दशा में हृदय की गति धीमी होकर शांति लाभ करती है, और फेफड़ों को आराम मिलता है। रक्त का प्रवाह शरीर में स्थित हानिकारक द्रवों का प्रभाव अधिक सफलता से नष्ट करने में समर्थ होता है। कितनी देर तक सोना चाहिए, इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं। सोने के बाद अगर थकावट दूर होकर स्फूर्ति आती जान पड़े, तो समझना चाहिए कि अच्छी नींद आई। आधी रात से घंटा-भर पहले अवश्य सो जाना चाहिए,

और कमरे के दरवाज़े व खिडकियाँ खुली रखना चाहिए। वज़नदार लिहाफ़ या भारी कम्मल ओढने की अपेक्षा काफ़ी वस्त्र पहनकर सोना उचित है, क्योंकि इस प्रकार शरीर की गरमी सुरक्षित रहते हुए बोझा नहीं मालूम होता।

४. व्यायाम करो

कितनी देर तक और कैसा व्यायाम करना चाहिए, यह शारीरिक स्वास्थ्य और अवस्था के अनुसार जाना जा सकता है। हाँ, प्रत्येक के लिये व्यायाम करना आवश्यक है, वह चाहे जिस प्रकार का हो। व्यायाम करने से शरीर की मांस-पेशियाँ स्वस्थ और मजबूत होती है, और मस्तिष्क हलका होकर हृदय और रक्त की गति को ठीक होने का अवसर मिलता है। व्यायाम न करने से शरीर की कांति नष्ट हो जाती है, और फुर्ती नही रहती। देर तक और बहुत ज़्यादा व्यायाम करना भी स्वास्थ्य के लिये हानिकर सिद्ध होता है। मनुष्य को उतना ही व्यायाम करना चाहिए, जितने में उसे कमज़ोरी न जान पडे, और जितना उसकी शारीरिक स्थिति के अनुकूल हो। नियमित व्यायाम स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकर होता है।

५. शक्ति से बाहर काम न करो

मस्तिष्क और शरीर का कार्य समान रूप मे बँटा हुआ है, और दोनो साथ-साथ काम करते है। परिश्रम की अधिकता होने पर शरीर में क्षीणता आ जाती और मस्तिष्क भारी हो जाता है। शारीरिक शक्ति का पूर्ण विकास होने पर मनुष्य जितना चाहे कार्य कर सकता है, परतु साधारणतया शक्ति के अनुसार सीमित परिश्रम करना ही उचित है। नेपोलियन अपने सहकारियो को आदेश-पत्र लिखाते-लिखाते बीस मिनट की नीद ले लेता था, और जागने पर फिर उसी स्थान से आगे लिखाना आरंभ करता था, जहाँ उसने पहले छोडा था। वह नीद के मूल्य से परिचित था, और स्वस्थ शरीर तथा हलके दिमाग़ का महत्त्व अनुभव करता था। थक जाने के बाद कार्य करते रहना किसी भी दशा मे उचित नहीं समझा जाता, क्योंकि उस दशा मे ठीक और सुचारु रूप से काम हो ही नही सकता। मिलों और फ़ैक्ट्रियो मे इस सत्य की परीक्षा की जा चुकी है, और यह प्रमाणित हुआ है कि निश्चित समय के बाद काम करनेवाले मज़दूर धीरे-धीरे काम करते हैं। उनसे गलतियाँ होती है, और वे दुर्घटनाओं के शिकार बनते है, अतएव किसी भी दशा में शारीरिक शक्ति को समझकर सामर्थ्य के अनुसार ही परिश्रम करना चाहिए।

६. दाँत और मुख साफ़ रक्खो

तबियत ख़राब होने पर जब आप डॉक्टर के पास दौडेंगे, तो सभवतः वह आपको दाँतो की चिकित्सा कराने की सलाह देगा। कारण यह है कि मुख और दाँत रोग-कीटाणुओं की जन्मभूमि है, और इन्हीं के द्वारा सारे शरीर मे विष फैलता है। प्रत्येक दशा मे मुख को अच्छी तरह साफ़ रखना चाहिए, और भोजन के बाद दाँतो को मंजन से या टूथ-पेस्ट से रगडकर धोना चाहिए। मसूडों और दाँतों की ओर ध्यान न देने से बहुत-सी बीमारियाँ शरीर पर अपना अधिकार कर लेती हैं। नमक के पानी से दाँतों और मुख को नियम से अच्छी तरह धोना लाभदायक होता है।

७ खूब जल पियो

मनुष्य के लिये सबसे सुंदर पेय पदार्थ जल ही है, जो शरीर के अंदर उत्पन्न होनेवाले हानिकारक द्रव्य को नष्ट करनेवाला माना गया है। बिछौने से उठते समय ही प्रातःकाल बासी मुँह और रात को सोते समय थोडा जल पीना अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है। शरीर मे जल की मात्रा कम हो जाने से अवयवों मे दर्द होने लगता है। जल

अधिक परिमाण मे न पीना चाहिए, और न बहुत कम ही पीना चाहिए। हाँ, थोड़ा-थोड़ा करके कई बार जल पीना स्वास्थ्यकारक है।

८ साफ रहो

स्नान का प्रयोजन बाहरी मैल को दूर करना ही नही होना चाहिए, वरन् शरीर की भीतरी रक्त-वाहक नालियो का कार्य संचालित रखने के लिये इसे एक आवश्यक कार्य समझना चाहिए। स्नान का प्रभाव त्वचा और नसों पर समान रूप से पड़ता है, और शरीर की कांति निखरने लगती है। स्नान करने के बाद शरीर और मस्तिष्क ताजा हो जाता और थकावट दूर हो जाती है। शरीर की स्वच्छता के साथ-साथ कपड़ों की सफाई का ध्यान रखना भी आवश्यक है। आजकल के समय में लोग वस्त्रों की सफाई की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, जो रोगो की प्रबलता का एक चिह्न है। शहर की वायु में धूल और रोग के कीटाणु मौजूद रहते हैं, जो बाहर निकलने पर हमारे कपडो पर आ पडते हैं। स्त्रियाँ हलके वस्त्र पहनती है, और उनको नियमित रूप से धोती है, किंतु पुरुषो को अपने वस्त्रो का अधिक ध्यान नही रहता। यही कारण है कि पुरुषो में रोगियों की संख्या दिनोदिन बढती जा रही है। वस्त्रों की स्वच्छता का शरीर की स्वच्छता से बडा घनिष्ठ संबंध है। वस्त्रों को धूप मे डालकर रोज़ सुखाने से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। घर मे साबुन से प्रतिदिन कपड़ो को धो लेना परिवार के स्वास्थ्य के लिये एक आवश्यक नियम बना लेना चाहिए।

९. भय और चिंता छोड दो

स्वस्थ मस्तिष्क के बिना शरीर का स्वस्थ रहना कदापि संभव नहीं है। साहस के बिना मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रह सकता। साहस का अभाव ही भय कहलाता है। हम उसे ही 'चिंता' कहते है, क्योंकि यह नाम हमारी प्रवृत्ति के अनुकूल रहता है। विज्ञान यह सिद्ध करता है कि भय अर्थात् चिंता का प्रभाव विशेष रूप से शरीर पर पडता है। निरंतर चिंता का शिकार बने रहने से मनुष्य रोगी हो जाता है, और उसकी आकृति बदल जाती है। भय के कारण को जानकर साहस से उसका सामना करना हमारे भय और चिंता को दूर कर सकता है। भय केवल मन की भ्रांति और अस्थिरता का एक रूप है। कार्यशीलता द्वारा भय पर विजय पाई जा सकती है। चिंता या भय से मुक्त रहने के लिये मनुष्य को प्रसन्न-चित्त रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

१० सबसे प्रेम करो

प्राचीन चिकित्सकों ने यह माना है कि स्वास्थ्य के लिये प्रेम एक आवश्यक साधन है, प्रेम से वंचित मनुष्यों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, और वे अहंकार के भाव से भर जाते है। हम उनको स्वार्थी कहते और उनसे घृणा करते है। हमे उन पर दया आनी चाहिए। वे अपने जीवन को अपने हाथो नष्ट करते है। जहाँ प्रेम है, वहाँ घृणा की छाया भी नहीं पड़ सकती। चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार घृणा का अस्तित्व शरीर मे विष पैदा कर देता है। हमने प्रेम का उल्लेख सबसे अंत मे किया है, यद्यपि हमें इसे ही महत्त्व देना चाहिए था। स्वास्थ्य के नियमो मे इसका बहुत बडा स्थान है, यह हमे न भूलना चाहिए। और, विश्व को परमात्मा की सृष्टि और उसी का अंश समझकर प्रत्येक प्राणी से प्रेम से व्यवहार करना चाहिए।
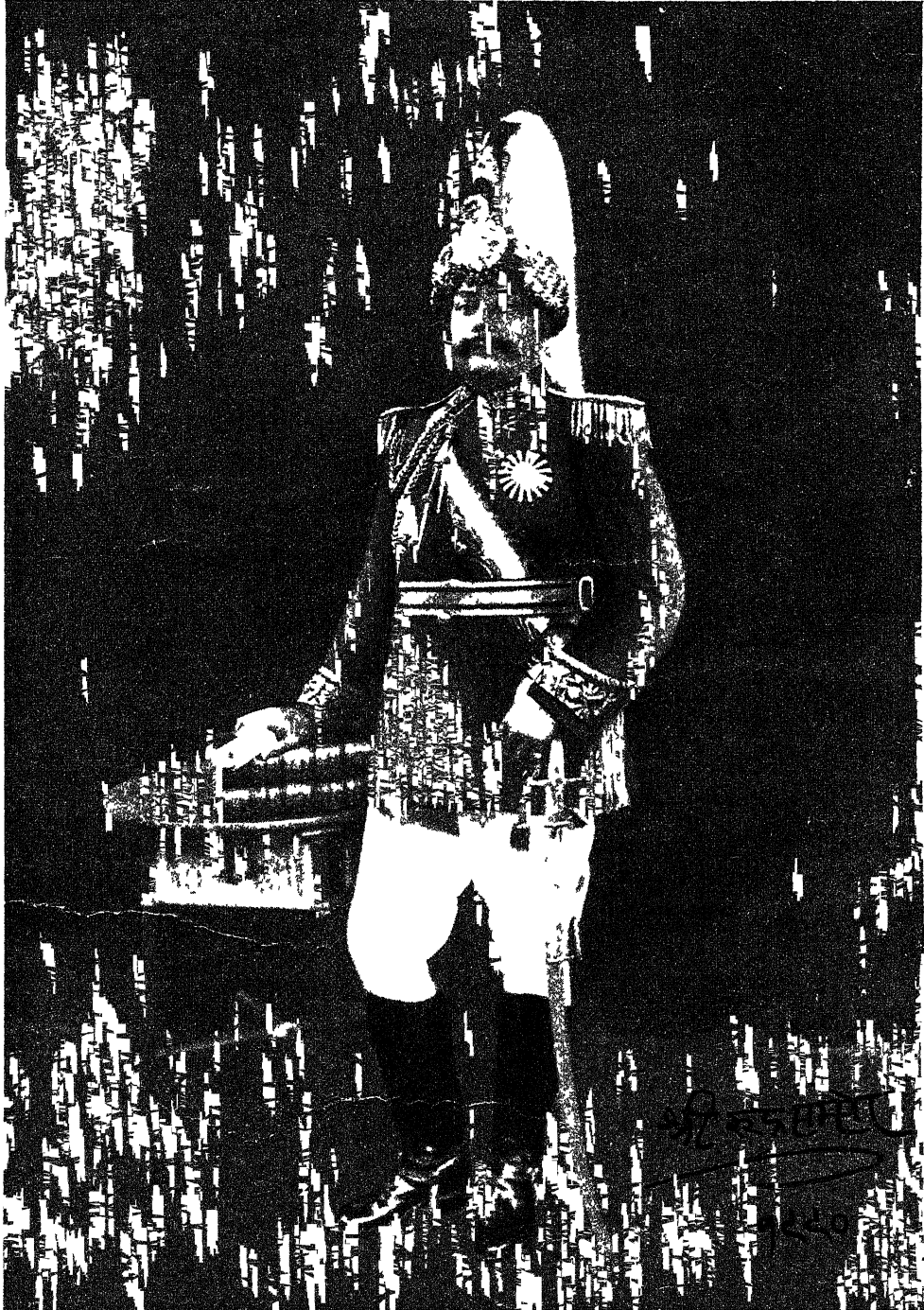
श्रीसुप्रदीप्त मान्यवर नेपालतारा कमाण्डर-इन-चीफ जेनरल रुद्रशमशेर जंगबहादुर राणा

सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८ खंड १ | आश्विन, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)— ऑक्टोबर, १९३४ | संख्या ३ पूर्ण संख्या ९९

शरत् के प्रति

[श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

नभ से आ आभा-सी शुभे, शुभ्र रक्खे पद
धौत धवल विश्व-कमल पर, कर में आस्वद-शद ;
किंतु बहा कल जो जल उद्धत हर शत-शत तन ,
बता सकोगी क्या तुम—उसका भी क्या विवरण ?
शारद-शत-जीवन की शरण न दो—वरण करो ;
अंध-विश्व-जन्म-बंध मरण हरो—मरण हरो !

हिंदी बनाम उर्दू

[आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री]

दिल्ली के गत २३वें अखिल भारत-वर्षीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक प्रस्ताव पास किया गया था, जिसका अभिप्राय यह था कि अदालतों और म्युनिसिपैलिटियों में उर्दू और अँगरेज़ी के साथ-साथ हिंदी को भी स्थान दिया जाय। यह प्रस्ताव बिलकुल साधारण था, और इसमें किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता की बू न थी।

परंतु इसी एक साधारण-सी बात को लेकर दिल्ली के ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने एक उर्दू-कान्फ्रेंस कर डाली। उसके सभापति ने सभापति की कुर्सी से जो भाषण दिया, वह इतना पक्षपात और सांप्रदायिकता से परिपूर्ण था कि उसकी जितनी निंदा की जाय, थोड़ी है। इस भाषण द्वारा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के स्वीकृत सीधे-सादे प्रस्ताव को सांप्रदायिकता के गंदे शीशे में दिखलाकर मुसलमानों को बुरी तरह भड़काने की चेष्टा की गई थी। इस उर्दू-कान्फ्रेंस का उद्देश्य तो उर्दू की उन्नति करना बताया गया था, परंतु इसमें सभापति के भाषण से लेकर अंत तक जो कुछ था, मुसलमानों को उत्तेजित करना था।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रस्तावों में न तो यह कहा गया था कि हिंदी को उर्दू या अँगरेज़ी के स्थान पर रक्खा जाय, और न यही कहा गया कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है। सम्मेलन का उद्देश्य तो सीधा यही था कि वह अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिंदी का प्रचार चाहता है। सम्मेलन की किसी भी कार्यवाही में उर्दू के प्रति द्वेष नहीं प्रकट किया गया। सम्मेलन पर सांप्रदायिकता का दोष तो वही लगा सकता है, जिसने अपनी आँखों पर सांप्रदायिकता की पट्टी बाँध ली हो।

आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री

हमें खेद से कहना पड़ता है कि इस उर्दू-कान्फ्रेंस में सभापति महाशय के मुख से जो बातें कही गईं, वे अवश्य ही किसी पागल की बौखलाहट-सी प्रतीत होती हैं। आपने यहाँ तक कह डाला कि यह हिंदी-प्रचार की चेष्टा इस्लाम के लिये बेहद ख़तरनाक है। उन्हें भय है कि यदि हिंदुओं ने हिंदी का आंदोलन जारी रक्खा, तो मुसलमानों और खासकर सरहद के मुसलमानों का मज़हबी जोश भड़क उठेगा। और, जो हालत रँगीलारसूल-संबंधी आंदो-

लन के समय हुई थी, वही हो जायगी। इन शब्दों के साथ सभापतिजी ने आशंका की चादर में छिपाकर छिपी हुई सलाह मुसलमानों को दी है, जिसे कोई भी देश-भक्त ईमानदारी और बुद्धिमानी की बात नहीं स्वीकार कर सकता।
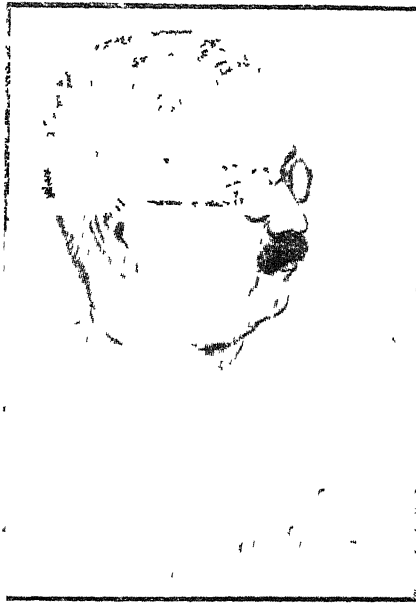
आपने यह भी कहा कि जिस प्रकार रँगीला-रसूल के आंदोलन उठ खड़े होने पर सरहदी प्रांतों को मुसलमानों ने हिंदुओं से खाली करा लेने के लिये उपद्रव उठाया था, वही परिस्थिति अब भी उत्पन्न हो सकती है।

हिंदी के विरोध में आपने जो युक्तियाँ दीं, उनमें एक बड़े मार्के की युक्ति यह थी कि जब लॉर्ड क्लाइव ने ईस्ट-इंडिया-कंपनी की ओर से मुग़ल बादशाहों से संधि की थी, उसमें एक शर्त यह भी थी कि अदालत की भाषा फ़ारसी रहेगी। सरकार को चाहिए कि वह अपने इस अहद पर क़ायम रहे। यह मौलाना महाशय शायद यह भूल गए कि यह अहद तो न-जाने कब से टूट गया, और अब कहीं भी भारत-भर में अदालती भाषा फ़ारसी नहीं है। कुछ स्थानों पर उर्दू अदालती भाषा ज़रूर है, पर अधिकांश में प्रांतीय भाषाएँ ही काम में लाई जाती हैं।

दूसरी महत्त्व-पूर्ण युक्ति आपने यह दी कि मुसलमानों के सभी धर्म-ग्रंथ उसी लिपि में लिखे गए हैं, जिनमें उर्दू लिखी जाती है। इसलिये हिंदी का पक्ष लेकर आंदोलन करने का अर्थ मुसलमानों के विरुद्ध आंदोलन करना है। इस युक्ति में कुछ भी दम नहीं है, यह तो स्पष्ट ही है। यदि कुरान की लिपि होने ही से मुसलमानों को उर्दू का पक्ष लेना चाहिए, तो वेदों की लिपि होने से हिंदुओं को हिंदी का पक्ष लेना स्वाभाविक है।

ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब अपने को कुछ दिन से हिंदू-मुसलिम-एकता का प्रेमी कहने लगे हैं। हिंदू-मुसलिम-एकता के प्रेम का एक नमूना तो उनकी यहीं कान्फ्रेंस की गढ़त है। सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली में मद्रास का हिंदी-प्रेमी दल आया था। एक उच्च कोटि के साहित्यिक के नाते हमने उसे दिल्ली आने पर ख़्वाजा साहब से मिलने की सलाह दी थी। वह दल ख़्वाजा साहब से मिला, उनकी रचनाओं की प्रशंसा की, और कहा कि आपकी कलम का अनुवाद हम हिंदी में किया चाहते हैं। मालूम होता है, इस बात से ख़्वाजा साहब की सांप्रदायिकता भड़क गई। उन्होंने बातचीत में एक मित्र से इस दल की भेंट की बात बतलाते हुए कहा कि ये लोग क्यों हमारी किताबों का हिंदी में तर्जुमा किया चाहते हैं। क्या उर्दू-ज़बान मर गई है कि अब हिंदोस्तान के लोग हमारी चीज़ों को हिंदी में पढ़ेंगे। ख़्वाजा साहब की इस मनोवृत्ति तथा टिप्पणी को सुनकर हमें अपनी इस मूर्खता पर दुःख हुआ कि क्यों हमने दक्षिण-भारत के मित्रों को ऐसे पक्षपाती आदमी से मिलने की सलाह दी। कुछ दिन पूर्व ख़्वाजा साहब ने स्वयं क़ुरान शरीफ़ का हिंदी-अनुवाद छपाया था, और हमें बड़े आग्रह से अपनी ग़दर-संबंधी पुस्तकें हिंदी में अनुवाद करके छपाने की अनुमति दी थी, तब क्या वह इस बात पर विचार नहीं कर सके थे कि इस ख़तरनाक काम से उर्दू-भाषा मर जायगी!

मैं कहता हूँ, भारतवर्ष में उर्दू-भाषा मर रही है। वह उसी भाँति मरकर नष्ट हो जायगी, जिस भाँति मुग़ल-तख़्त मरकर नष्ट हो चुका। मेरा यह भी कहना है कि मुग़ल-तख़्त को नष्ट करने का श्रेय भी इसी उर्दू-भाषा को है। जिस भाषा ने प्रतापी मुग़ल-तख़्त को जलाकर ख़ाक कर दिया, वह भाषा कैसे ज़िंदा रह सकती है?

भाषा प्रत्येक देश के साहित्य का प्राण है, और साहित्य किसी भी देश तथा जाति की रीढ़ की हड्डी है। कोई भी देश या जाति अपने साहित्य के आधार पर ही जीवित रह सकती है। साहित्य ही

मनुष्य-समाज का उत्कर्ष है। हिंदू-जाति आज अपने साहित्य के आधार पर ही जीवित रही है। संसार जब चरम कोटि की उन्नत वैज्ञानिक सत्ता का स्वामी बन गया था, तब भी उसे हिंदू-साहित्य की प्रशंसा करनी पड़ी। वह हमारा संस्कृत-साहित्य है, जो सारी पृथ्वी पर एक ऐसी महत्त्व-पूर्ण वस्तु है, जिसने मानवीय कल्पना और कोमल भावना को अमर बना दिया है। आज भी यह साहित्य काल के थपेड़ों से बच रहा है, और इसे पढ़कर संसार के भावुक आनंद-विभोर होते हैं। उपनिषदों की धर्म की प्रबलता, एकाग्रता और दार्शनिकता ऐसी है, जिसे सहस्रों वर्ष बाद आज भी हम नतमस्तक होकर पढ़ते और मनन करते हैं। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शेखन-हाट ने इन्हें पढ़कर लिखा था—प्रत्येक पद से गहरे, नवीन और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं, और सबमें उत्कृष्ट और सच्चे भाव वर्तमान हैं। भारतीय वायु-मंडल हमें घेरे है। समस्त संसार में मूल पदार्थों को छोड़कर किसी अन्य विद्या का अध्ययन ऐसा लाभकारी और हृदय को उच्च बनानेवाला नहीं है, जैसा उपनिषदों का। इसने मेरे जीवन को शांति दी है, और मृत्यु के समय शांति देगा। षड्दर्शनों ने वेदों से प्रकट जगत् और सूक्ष्म चैतन्य शक्तियों का संबंध तथा प्रकट जगत् का अभ्यंतर एवं मूल-कारण वैज्ञानिक दृष्टि से खोज निकालने की चेष्टा की है। यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त तीनों संप्रदायों ने वेदों को तीन भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने की चेष्टा की है। वेद पृथ्वी का सर्वप्राचीन सार्व-भौम धर्म प्रकट करनेवाले ग्रंथ हैं। यह साहित्य है, जिसने हिंदू-जाति की जातीयता को शक्ति दी, और उसे अमर किया। वेद, उपनिषद् और दर्शनों को लेकर हिंदू-जाति का मस्तिष्क, हिंदू-जाति का गौरव, हिंदू-जाति का जीवन आज भी, जब कि इसकी तमाम सहायक शक्तियाँ तथा राष्ट्रीय संपत्ति नष्ट हो चुकी है, अत्यंत उच्च है। एक समय था, जब तक्षशिला के महान् विद्यालय में बैठकर आर्यों के आचार्यों ने सारी पृथ्वी के विद्वानों को आर्य-संस्कृति की शिक्षा दी थी। पंजाब की उर्वरा भूमि ने हमें वेद दिए, षड्दर्शन दिए। परंतु उसी पंजाब पर हज़ारों वर्ष तक विपत्ति के पर्वत टूटे, उसे २५ वर्ष भी कभी शांति से न रहने दिया गया। विदेशी जातियों के आक्रमणों ने पंजाब के साहित्य को, पंजाब के राष्ट्र को, पंजाब की जातीयता को छिन्न-भिन्न कर दिया।

भारत में मुस्लिम शक्तियाँ आईं, और बस गईं। उन्होंने उर्दू-भाषा को जन्म दिया, पाला और उसका शृंगार किया, परंतु जिस भाँति आर्यों ने संस्कृत को मातावत् श्रद्धा और पवित्रता से स्नान कराया था, उस भाँति नहीं, कुल-वधू की भाँति नहीं, वरन् वारांगना के समान उसका शृंगार और उपभोग भी किया गया। समस्त उर्दू-साहित्य शृंगार-रस के नग्न काव्यों से परिपूर्ण है। शराब को हराम माननेवाले मुसलमानों के इस उर्दू-साहित्य में शराब की नदी ही नहीं, समुद्र बह रहा है। और, वह समुद्र केवल साहित्य में ही नहीं रहा, बल्कि उसी मदिरा के समुद्र और उसी काव्य की चंचल ज़ुल्फ़ोंवाली नाज़नियों के कुटिल भ्रू-पात से मुग़ल-साम्राज्य भस्म हो गया। क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि घोड़ों की पीठ पर बच्चे जननेवाली मुग़ल-वीरांगनाओं के बच्चों ने किस आसानी से अपना तख़्त-ताज खो दिया? क्या अंतिम मुग़ल बादशाह इसी काव्य सुरा-सुंदरी में नहीं डूब गए? क्या वह स्वयं ज़नाने और नामर्द नहीं हो गए? और, क्या इसी कारण उनका पतन नहीं हो गया? जिस जाति और भाषा के साहित्य में सुरा-सुंदरी और तानारीरी को छोड़कर कुछ न हो, वह जाति अंत में ध्वंस न होगी, तो उसका क्या होगा? जिस तख़्त को प्रतापी अकबर ने पवित्र किया, उसे मुहम्मदशाह रँगीले-जैसों ने कलंकित किया! अंत

में वह अतल-पाताल मे डूब गया—माशूकों की ज़ुल्फ़े, कटारीदार सुर्मे-भरी आँखे, सुराहीदार गर्दन, पतली कमर बल खाती ही रही। वह तख़्त तो ध्वस हो गया, जो वीरो की नंगी तलवारो के आधार पर ही टिका रह सकता था।

इसके विपरीत राजपूताने के राजवशों के सिर पर अब भी राजमुकुट है। यह उनके चारणो द्वारा निर्मित वीर-रस के साहित्य का प्रसाद है। जीवन के लिये हमारा साहित्य ही हमारी सबसे बहुमूल्य वस्तु है। और, साहित्य का प्राण भाषा है।

हिंदी-भाषा केवल हमारे साहित्य ही का प्राण नही, वह हमारे राष्ट्र का भी प्राण है। दुःख की बात है कि बहुत-से हिंदू भी इस बात को नहीं जानते। आज जो हम हिंदी-भाषा के प्रचार का इतना पक्ष लेते है, वह हिंदू होने के नाते नहीं, और न उर्दू को इसलिये हम पीछे हटाना चाहते है कि वह मुसलमानो की भाषा है। उर्दू केवल मुसलमानों की जैसे भाषा नहीं, वैसे ही हिंदी भी हिंदुओ की भाषा नही। मुग़लो के राज्य-काल में हमें सैकडो ऐसे हिंदी के कवि मिलते हैं, जो न केवल प्रसिद्ध मुसलमान ही थे, प्रत्युत उच्च राजपदाधिकारी भी थे। रहीम के सरस और भाव-पूर्ण दोहे जिसने पढ़े हैं, रसखान और आलम के लिखे काव्यों का रस जिन्होंने पान किया है, वे जान सकते है कि ये मुस्लिम कवि न केवल उर्दू-भाषा मे, प्रत्युत हिंदी-भाषा में भी अग्रगण्य कविताएँ करते थे। इसी प्रकार आज भी हिंदोस्तान के लाखो हिंदू उर्दू के वैसे ही महाविद्वान् कवि, लेखक और वक्ता हैं, जैसे कि मुसलमान।

हिंदी-प्रचार के संबंध मे हम न उर्दू से प्रतिस्पर्धा करते, और न उर्दू को मुसलमानो की सांप्रदायिक भाषा समझकर विरोध करते है। हम तो हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं। और, हिंदी ही राष्ट्र की भाषा बन सकती है।

विशाल भारत दो प्रधान भागों में बँटा हुआ है—दक्षिणापथ और उत्तरापथ। उत्तरापथ में आज भी सर्वत्र हिंदी भाषा बोली और समझी जा सकती है। दक्षिणापथ में चार प्रमुख प्रांत है, जिनकी भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं। उन चारो प्रांतों के निवासी परस्पर अपने विचार-विनिमय अपनी-अपनी भाषाओं द्वारा नही कर सकते। अब तक उनकी माध्यमिक भाषा अँगरेज़ी थी, अब हिंदी हो गई है। हिंदी के द्वारा दक्षिण के चारो प्रांत एक हुए है, और सयुक्त दक्षिण अब उत्तर-भारत से मिल रहा है। यह एक ऐसी महत्त्व-पूर्ण बात है, जो राष्ट्रीय दृष्टि से अपना सानी नहीं रखती। इस समय समस्त दक्षिण में हिंदी-प्रचार के लिये ४५० केंद्र हैं। सभा की ओर से प्रतिवर्ष तीन बार परीक्षाएँ ली जाती हैं। वार्षिक परीक्षा मे १० हज़ार परीक्षार्थी सम्मिलित होते है, तथा इस समय ४० हज़ार विद्यार्थी हिंदी सीख रहे है। सभा का कार्य १९१८ से प्रारंभ हुआ है। इन १५-१६ वर्षों में सभा ने ६ लाख दक्षिण-भारतीयों को हिंदी सिखाई है। सभा की ओर से पुस्तको का प्रकाशन किया गया है, तथा ७ लाख प्रतियाँ भिन्न-भिन्न पुस्तकों के प्रचारार्थ लोगों में बाँट दी गई है। सभा की ओर से 'हिंदी-प्रचारक'-नामक एक पत्र भी निकलता है। इस प्रकार दक्षिण-भारत में हिंदी-प्रचार के सबंध में बड़ा भारी कार्य हो रहा है। और, यह सब महाराष्ट्रपति महात्मा गांधी के मस्तिष्क का प्रभाव है, उन्होने अपने सुपुत्र भाई देवीदासजी को हिंदी-प्रचार के लिये वहाँ भेजा। जिन्होंने वहाँ हिंदी का बीज आरोपित किया, और उसका फल आज हम देख रहे है।

मै इस बात को स्वीकार करता हूँ कि उर्दू इस समय भी हमारी वर्तमान हिंदी की अपेक्षा कुछ अगो में प्रौढ है, परंतु उर्दू को सबसे बड़ा अभाव इस बात का है कि उसकी पुष्ठ पर संस्कृत-

जैसी कोई महान् भाषा नहीं, जिससे उसमें सर्वतोमुखी प्रतिभा-संयुक्त साहित्य आसानी से आ सके। मैं स्वीकार करूँगा कि उर्दू का काव्य तथा कुछ दर्जे तक कथानक एवं कुछ राजनीति संबंधी साहित्य भी उच्च कोटि का है। उर्दू की भाषा परिमार्जित तथा बामुहावरे है। फिर भी कोई भाषा केवल इन्हीं वस्तुओं को लेकर ज़िंदा नहीं रह सकती। भाषा को जीवित रहने के लिये उसमें मनुष्य समाज का वह भोजन रहना चाहिए, जिसके बल पर वह समाज खड़ा हो सके। आज अँगरेज़ी-भाषा का विश्व-भर में बोलबाला है। कम-से-कम एशिया में अँगरेजी भाषा का साम्राज्य है। इसका कारण यही है कि उसमें काव्य, गद्य, पद्य, राजनीति, धर्म, विज्ञान, कला-कौशल, सरस साहित्य आदि प्रत्येक विषय का बृहत् साहित्य भरा पड़ा है। योरप की अन्य भाषाओं का भंडार भी इसी भाँति परिपूर्ण है। यह बात उर्दू में नहीं। इस दृष्टि से हिंदी उर्दू से बहुत ऊँचा दर्जा रखती है। आज दक्षिण और उत्तर-भारत मिलकर—देश का समाज और राष्ट्र मिलकर—हिंदी को और भी उन्नत किया चाहते है। इसलिये हिंदी तो अब राष्ट्र-भाषा होगी ही। मुसलमान या कोई भी सज्जन उर्दू को, अब केवल हिंदी को कोसकर, ज़िंदा नहीं कर सकता।

परंतु हमारा कहना तो यह है कि मुसलमान क्यों उर्दू को अपनी भाषा समझते हैं? आप गुजरात में जाइए, हिंदू-मुसलमान दोनो ही समान भाव से विशुद्ध गुजराती भाषा बोलते है। बंगाल में जाइए, सभी बंगाली हिंदू-मुसलमान शुद्ध बँगला बोलते हैं। आप यू० पी० और बिहार के देहातों में जाइए, प्रत्येक हिंदू-मुसलमान एक-सी ही प्रांतीय भाषा बोलते हैं। राजपूताना में जाइए, वहाँ भी यही हाल है। फिर केवल पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रांतों में ही कैसे हिंदी की प्रगति रुक सकती है। और, जब गुजरात, बँगाल एवं राजपूताना के मुसलमान उन भाषाओं को हिंदुओं के समान ही बोलते रहकर मुसलमान बने रह सकते है, तो पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशों के मुसलमानो पर ही क्यों इससे वज्रपात होता है?

हम प्रत्येक हिंदी-भाषा भाषी से यह अपील किया चाहते हैं कि वह हिंदी-साहित्य को पुष्ट करने में प्राण-पण से जुट जाय। राष्ट्र की उन्नति के लिये यही एक चीज़ है, जो हम कर सकते है। हमे अपने साहित्य को हिंदी में खूब वृद्धिगत कर लेना चाहिए। मुझे यह प्रकट करते प्रसन्नता होती है कि हिंदी मे ऐसे ग्रंथ लिखे जा चुके हैं, जिन्हें पढ़ने के लिये योरपियन लोगों को हिंदी सीखनी पड़ रही है। कभी संस्कृत-साहित्य को यह अभिमान था कि उसके गर्भ मे जो ज्ञान-गरिमा छिपी थी उसे सीखने पृथ्वी के आचार्य उसके शिष्य बनते थे। यदि हम हिंदी को यह स्थान दे सकें, तो हमारे बड़े भाग्य हैं।

हमारे लिये यह बड़े शर्म की बात है कि धर्म और राष्ट्र ने हमे संयुक्त किया है, किंतु भाषा हमें पृथक् किए हुए है। आज उत्तर भारत का हिंदी बोलनेवाला व्यक्ति शिव की पूजा करता है, बंगाली बोलनेवाला एक व्यक्ति भी शिव से परिचित है। कनाड़ी, तैलेगू बोलनेवाला भी शिव से परिचित है। राम और सीता हिंदी-भाषा मे हैं, कनाडी, तैलगी भाषा मे हैं, बँगला और उर्दू-भाषा में है। एक ही राम, सीता और शिव हैं, जो धर्म ने एक भावना से हमारे हृदयों में स्थापित किए है। उन्हीं की बदौलत हम भिन्न भिन्न भाषा बोलनेवाले, परस्पर की तनिक भी न समझनेवाले सहधर्मी हैं। इसी भाँति राष्ट्रीय माँगें हमारी संयुक्त है। देश की विपत्ति-संपत्ति प्रत्येक की विपत्ति-संपत्ति है। जब धार्मिक और राष्ट्रीय दृष्टि से हम एक है, तो

भाषा की दृष्टि से भिन्न क्यों हैं। यह हमारी न केवल मूर्खता है, किंतु नैतिक पाप भी है। हमें जितना शीघ्र हो, इसे दूर करना चाहिए।

महात्मा गांधी ने बिल्कुल ठीक ही समझ लिया है कि धर्म ही हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता ही हमारा धर्म है। इस सत्य की खोज महापुरुष तिलक ने की, पर उसका पाठ जनता को गांधी ने ही पढ़ाया है। ऋषि दयानंद का भी हिंदी पर बहुत ऋण है। आज पंजाब में हिंदी का इतना प्रचार इसीलिये है कि वहाँ आर्य-समाज ने धर्म की शुद्ध भावना हिंदी-भाषा द्वारा ही पहुँचाई है, और शायद यही कारण है कि मुसलमान भाई इस काम से इस प्रकार चौकन्ने हो गए हैं!

हिंदी-साहित्य के नाम से जो वस्तु आज प्रसिद्ध है, उसे मैं पसंद नहीं कर सकता। वह एक बूढ़ा हाथी है, जो किसी रईस के द्वार पर केवल शान दिखाने को बाँध दिया गया हो। यह हाथी शान बढ़ाएगा, और गन्ने खा-खाकर लीद करेगा। परंतु साहित्य तो हमारी सवारी की मोटर गाड़ी होनी चाहिए, जिस पर चढ़कर हम जीवन पथ पर चाहे भी जिस ओर दौड़ सकें। यदि हमारा साहित्य छायावाद-माया-वाद, कल्पनावाद-वितंडावाद, छंदवाद-अछंदवाद में रह गया, यदि हम प्रियतम के प्यार को तरसते रहे, आँखों के रस पीते रहे, हृदय की वेदना से तड़पते रहे, तो हो चुका।

साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर साहित्य-परिषद् के सभापति के पद से पं० माखनलाल चतुर्वेदी भाषण दे रहे थे। कहते-कहते वह कह गए कि वस्तुओं का चोर घृणा का पात्र है, पर चित्त-चोर आदर और श्रद्धा का पात्र है। सुनकर मुझे हँसी आई। यह भी वही सनक है। नहीं कह सकते कि चित्त चुरा-चुराकर चतुर्वेदीजी ने कितनी श्रद्धा अर्जन की है। यदि साहित्य की कोमल भावना का लिहाज़ न किया जाय, तो मेरे तुच्छ विचार में चित्त चुराने का धंधा कोरा गुंडापन है। मेरी राय तो यह है कि ऐसे चित्त चुरानेवाले समाज के लिये सबसे अधिक ख़तरनाक और दंडनीय आदमी हैं। चित्त चुराना एक कोमल फ़न तो है, पर यह भलेमानसों का नहीं, कवियों का हो, तो हो।

यह हमारी उस भावना का दोष है, जो हमने साहित्य के झूठे स्वरूप को समझकर उत्पन्न की है। यही चित्त चुरानेवाले की चोरी की प्रशंसा में जितना साहित्य निर्माण किया जाय, वही सब हमारे द्वार पर बँधा बूढ़ा हाथी है। इसे हमें तुरत औने-पौने बेच डालना चाहिए, या किसी उर्दूवाले रईस को नज़र कर देना चाहिए। वहाँ बच्चूजी भले खाया करें, लीद बनाया करें, और उर्दू की शान बढ़ाया करें। हमें मोटर चाहिए। हिंदी-साहित्य को हमें मोटरकार बनाना चाहिए। इस पर चढ़कर हम धर्म, समाज, राजनीति, तर्क, विज्ञान, कला-कौशल, कृषि, गृह-विज्ञान आदि चाहे भी जिस मार्ग पर ख़ूब तेज़ी से दौड़ सकें।

हिंदोस्तानी भाषा की एक नवीन प्रगति हमारे सामने है। इसके लिये प्रयाग में सरकार की ओर से हिंदोस्तानी-एकेडमी क़ायम हुई है। परंतु जहाँ तक हमें ज्ञात है, इसने किसी नवीन भाषा को जन्म नहीं दिया है। इस संस्था ने बहुत से ग्रंथ भी प्रकाशित किए हैं, पत्रिका भी निकाली है, पर भाषा या तो उत्कृष्ट उर्दू है या हिंदी।

मैंने इस संबंध में बहुत विचार किया कि कैसे हिंदी और उर्दू के स्थान पर एक भाषा हिंदोस्तानी स्थापित की जा सकती है। मेरे ख़याल में जितने उर्दू-हिंदी पढ़े स्त्री-पुरुष हैं, इन सबको देहाती अपढ़ पुरुष-स्त्रियों से ब्याह दिया जाय, तो निस्संदेह इनके संयोग से हिंदोस्तानी भाषा जन्म ले सकती है। दूसरा उपाय यह है कि हम ५० वर्ष प्रतीक्षा करें, और अब तक के सैकड़ों वर्षों में संचित किए

हुए उदू`-हिंदी के साहित्य को नष्ट कर दे, और नए ग्रंथ निर्माण करे, तब हिंदोस्तानी-भाषा बोली जा सकती है। परंतु ये सब अनावश्यक बाते हैं। सबसे बडा प्रश्न तो लिपि के संबंध मे उपस्थित होता है। उदू`-लिपि तो इतनी दोष-पूर्ण है कि छापने की कला के इतने उन्नत हो जाने पर भी उदू`-पुस्तकें टाइप में ठीक तरह से नहीं छापी जा सकतीं। अभी तक लेथो ही मे छापी जाती हैं। हिंदी-भाषा भी लिपि की दृष्टि से दोष-पूर्ण है, यह स्वीकार करना पड़ेगा, पर उदू` के समान नहीं। हिंदी-भाषा के मैटर को कंपोज़ करने के लिये ४६३ खाने भरने पडते है, तब कहीं जाकर हिंदी-मैटर का कंपोज़ होता है, परंतु अँगरेज़ी-भाषा के लिये केवल १५२ खाने ही काफ़ी होते है। ये दोष दूर करने की ओर भी साहित्य-सम्मेलन का ध्यान गया है, और उसने एक प्रस्ताव इस संबध मे भी पास किया है।

अब लगे हाथो मै खडी बोली और व्रजभाषा पर भी एक-दो शब्द कहना चाहता हूँ। लोग कहते हैं, जिसे व्रजभाषा कहते है, वह हिंदी-भाषा नहीं है, हिंदी-भाषा तो वह है, जो अख़बारो में छपती है। इसलिये व्रजभाषा को हिंदी न कहना चाहिए। परंतु किसी भाषा के तारतम्य का पता तो उसके क्रियापदो से लगता है। व्रजभाषा के क्रियापद हिंदी ही जैसे हैं, इसलिये वह भाषा भी हिंदी ही है। फिर वह प्राचीन काव्य की भाषा है। आज भी उसमे काव्य-रचना होती है, पर यदि आप प्राचीन अँगरेज़ी को ले या प्राचीन वेद-काल की संस्कृत को लें, तो उसे आधुनिक अँगरेज़ी और संस्कृत से बहुत भिन्न पावेंगे, फिर भी वह संस्कृत और अँगरेज़ी-भाषा ही कहलाएगी।

सरलता और अर्थ-गांभीर्य भाषा का सबसे बड़ा गुण है, यह हिंदी मे हमें उत्पन्न करना चाहिए। यदि हम उदू`-काव्यो से हिंदी-काव्यों की तुलना करेंगे, तो हम उदू`-काव्यों में अधिक अर्थ-गांभीर्य तथा सरलता पावेंगे। यही कारण हैं, उदू`-काव्य हिंदी-काव्य की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक है। हिंदी-काव्य का रस लेनेवाले विरले कवि या कवि-प्रेमी ही होते हैं, परंतु उदू`-काव्य तो किसी भी शहर या क़स्बे के गली-कूचों मे बिखरा फिरा करता है। उत्तम भाव-पूर्ण शेर और ग़ज़लें भी बेपढ़े आवारागर्द लडके रस ले-लेकर गाते देखे जाते हैं। यह उस कवित्व के प्रासाद-गुण का चमत्कार है।

मैं स्वीकार करूँगा कि जब गहन और गंभीर विचार हम करने बैठेंगे, तो हमें अवश्य ही संस्कृत की गोद मे बैठना पड़ेगा, पर मैं ऐसी अवस्था में फ़ारसी, अरबी और अँगरेज़ी के भी शब्दों से सहायता लेने को तैयार हूँ। इन्हीं सब बातो से तो हमारी भाषा सशक्त बनेगी।

व्याकरण भी भाषा को परिमार्जित करने की वस्तु है। हिंदी-व्याकरण अभी तक बहुत दोष-पूर्ण है। उसका संस्करण करना बहुत ही आवश्यक है। सबसे बडी बाधा हिंदी मे लिंग ज्ञान की है। किस वस्तु का क्या लिंग होगा, इसका हिंदी में कोई नियम नहीं। संस्कृत मे नगर-शब्द नपुंसक लिंग है, ग्राम-शब्द पुंलिंग है। यह तो सच है कि नगर में लोग नपुंसक ही ज्यादा रहते हैं, परंतु नगर-शब्द नपुंसक क्यों माना गया, यह समझना कठिन है। रेल को कोई पुंलिंग कहते हैं, कोई स्त्रीलिंग। इसी प्रकार बहुत-सी और भी बाते हैं। इन सब बातों पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए।

सम्मेलन की स्वागतकारिणी के अध्यक्ष-पद से भी श्रीघनश्यामदासजी बिरला ने कहा था—"इस समय हिंदी को ऐसा रूप देने की आवश्यकता है, जिससे वह हिंदोस्तानी, अर्थात् देश-मात्र के लोगों की भाषा बन सके, और विभिन्न प्रांतों के

हिंदू-मुसलमान उसे बोल-चाल या लिखने-पढने के काम मे ला सके। हर प्रकार की कृत्रिमता से हमें अपनी भाषा को बचाना चाहिए। . .भाषा एक साधन है, जिसका उपयोग करके हम किसी कार्य-विशेष की सिद्धि करना चाहते है।"

श्रीमंत बड़ौदा-नरेश ने सभापति के आसन से कहा था—

"हिंदी-भाषा स्वाभाविक तौर पर ही हमारी राष्ट्रीय भाषा है। और, भाषा-दृष्टि से यह प्रकट है कि एक ऐसी भाषा के प्रचार से, जिसका आधार संस्कृत हो, हमारे देशवासियों के लिये दैनिक साधारण व्यवहार की दृष्टि एवं साहित्यिक दृष्टि से काम करते हुए बहुत ही कम भेद डालेगी। हम हिंदुओं को संस्कृत जानना चाहिए, और मुसलमान फ़ारसी-भाषा मे एक उचित विद्या-संबंधी भाषा और हिंदी मे एक ऐसी देशी भाषा पाएँगे, जिसको वे उर्दू के वेश मे व्यवहार मे ला रहे है। यह भाषा वास्तव में अरबी, फारसी-शब्दो से मिली हुई हिंदी है। अतएव यदि हिंदी अपनी राष्ट्रीय भाषा मान ली जाय, तो उत्तरीय हिंद के दो तृतीयांश के लिये इनकी दैनिक विद्या-संबंधी तथा घरो में साधारण बोल-चाल में संबधित भाषाएँ होगी।"

इन उद्गारो से पाठक समझ सकते है कि हिंदी-लिपि तथा हिंदी-भाषा के व्यवहार का प्रश्न बहुत महत्त्व-पूर्ण एवं बहुमूल्य है। हमें इसके प्रचार तथा सुधार में पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए।

आभास

[श्रीयुत बाबू वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

एक दिन वह मेरे पास से उठकर चले गए, बिना कुछ बोले-चाले। मेरी बड़ी आकांक्षा थी, इनके साथ दो बातें करूँ। न-जाने ऐसी आकांक्षा क्यों उत्पन्न हुई थी। परंतु इसमें संदेह नहीं कि जब से वह मिले, इस आकांक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती चली गई।

जब उस दिन वह मेरे पास से चले गए, कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो मैं कोई एक बड़ी भारी संपत्ति चाहता था, और उसको कोई मेरे सामने से ही छीन ले गया, और मैं कुछ न कर सका।

उनके चले जाने के पश्चात् एकाएक मुझको ऐसा आभास हुआ कि वह चले जाने पर भी दूर नहीं गए हैं, और कहीं पास ही रुक गए हैं। एक सनक-सी उठी। देखूँ, कहाँ हैं, और क्या कर रहे हैं। यह एक तरह की व्यर्थ-सी तृष्णा थी, परंतु हृदय की प्रेरणा ने न माना, और मैं चल पड़ा।

श्रीयुत बाबू वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०
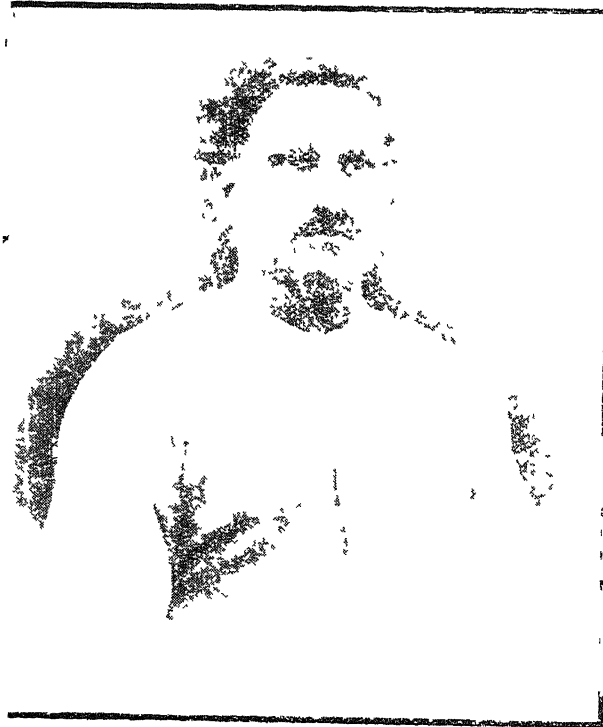
उस स्थान पर और वहाँ की वायु में ऐसा भान होता था कि वह अदृश्य होने पर भी उपस्थित हैं, और मैं उनकी आहट साफ सुन रहा हूँ। परंतु वह जहाँ मेरे पास से गए थे, वास्तव में, वहाँ न थे। उस विश्वास ने ही प्रेरणा जाग्रत् की थी, और मुझको चल पड़ने के लिये मजबूर। मैं चलते-चलते सोचने लगा।

एक बार उन्होंने कहा था—"मुझको प्रेम का संकेत-युग अधिक पसंद है।"

मैंने मंतव्य प्रकट किया था—"क्यो ? जब हम लोगों ने स्पष्ट एक दूसरे से नहीं कहा था कि हम लोग परस्पर एक हो गए है, तब संदेहात्मक विश्वास और विश्वास-मूलक संदेह मे कौन-सा बड़ा आकर्षण था ?"

उन्होने उत्तर दिया था—"यह मालूम था कि तुम मेरे हो, और मैं तुम्हारा हूँ, केवल उसका स्पष्टीकरण नही हुआ था, इसी अदृश्य भाव की तली मे एक विशेष प्रकार का अनोखापन था।"

मै कहने लगा—"तब तुम असल मे तटस्थ-से रहना चाहते थे। समालोचक बनकर, दूसरे की दुर्गति देखकर स्वयं मजे मे रहना चाहते थे!"

वह इस पर हँसे नही थे, किंतु तेज होकर उन्होने कहा था—"तटस्थ कैसे ? मै तो उसके अनुभव के भीतर ही रहता।"

जब मै मार्ग मे चला जाता था, तब मुझको यह वार्तालाप अच्छी तरह याद आया।

साथ ही मन मे एक प्रश्न उठा—"क्या वह मुझसे मिलने के लिये उद्विग्न नहीं होते ?"

तुरंत ही मुझको स्मरण हो आया कि उन्होने कहा था—"तुम अपने को रोक नही पाते, मै अपने को रोक सकता हूँ।"

इसके साथ ही एक आह सहसा निकल पड़ी। कोई पास-पड़ोस मे न था, इसलिये उस आह को स्वेच्छा-पूर्वक निकल जाने दिया, दबाया नहीं।

मैने सोचा, तब देखने-मात्र के लिये मै क्यों चला जा रहा हूँ, लौट पड़ूँ। परंतु न लौट सका, पैर आगे के लिये चले ही गए।

मेरे मन मे उनसे एक-आध बात करने की मनोवांछा बनी रहती है। और, उनके मन मे ? होती तो अवश्य होगी, परंतु वह अपने को रोक सकते है। क्योंकि उन्होने स्पष्ट कहा था! वह तटस्थ या कोरे समालोचक नही है, परंतु अपने को रोक सकते है।

मैंने एक समय इस संयम की परख की थी। उस समय मुझको पूर्ण विश्वास नहीं हुआ था कि वह मेरे हो गए है। उस समय न-मालूम वह क्यो सामने बहुत रहते थे ? न-मालूम क्यो उतना अधिक बोलते थे ? न-मालूम उन्होने क्यो किसी देवता से मूक भाषा मे कहा था कि वह मेरे पास नहीं हैं, दूर भटक गए है, हृदय छटपटाता है, न-जाने कब तक आएँगे। मै उस समय यह कुछ न समझ पाया था, केवल एक भ्रम हुआ था, वह भी अस्थायी। मैं उनके उस मूक भाषण को अवगत कर गया था, परंतु उसके भाव को पूरा-पूरा समझने मे असमर्थ रहा था। शायद उस भाव का लक्ष्य कोई और ही हो, यह संदेह हुआ था।

इस कल्पना ने मुझको जो कुछ पीड़ा पहुँचाई थी, वह उनको कभी न मालूम हो पाएगी। वह कल्पना बड़ी क्रूर और निष्ठुर थी। मार्ग मे मैं इस निश्चय पर पहुँचा था कि जो आभास मेरे हृदय मे हुआ है, वह उनके हृदय मे,

उसी मात्रा मे, कदाचित् जाग्रत् नही हुआ होगा।

तब फिर उसके पूर्व क्यों इतना दिखलाई पड़ते थे ? क्यो इतना बोलते थे ?

हा ! उसी समय यदि मै सब कुछ समझ लेता, तो हृदय को उसी समय भेट देने मे तनिक भी विलब न लगता। और, उनको ग्रहण करने मे ?

मै अपने लक्ष्य-विशेष की ओर चला जाता था, और सोच रहा था—"अनुराग के आभास का अनुभव क्या केवल मेरे ही हृदय को है ? क्या अपने को रोकने की सामर्थ्य रखते हुए भी वह हृदय की स्वाभाविक गति को कुंठित कर देने की क्षमता रखते है ? क्या कोई रखता है ? वह न बोलें, परंतु क्या बोलने की भी अमर वांछा को मिटा सकते हैं ? वह न दिखलाई पड़े, परंतु क्या दिखलाई देने की प्रबल उत्कंठा को भी प्रतिरुद्ध रख सकते है ?" वह उन दिनो कम दिखलाई दिए, तो क्या सामने आने की प्रेरणा भी अवरुद्ध हो गई होगी ?

फिर तुरंत मुझको विश्वास हुआ कि जब मेरा हृदय उनका ही हो गया है, तब मेरे हृदय की क्रिया उनको अवश्य अवगत होती होगी। यही नहीं, किंतु वह क्रिया भी अपनी ही जान पड़ती होगी।

परंतु मैं इस बात को स्पष्ट जानने के लिये, उनके मुँह से ही सुनने के लिये, उत्कंठित रहता था, और वह कुछ कहते न थे।

इसी तरह के कल्पना चक्र मे उलझता हुआ मै चला जा रहा था। थोड़ी दूर चलकर देखा, वह एक स्थान पर अकेले बैठे है। जी चाहा, उनसे लिपट जाऊँ, परंतु मुझको स्मरण हो आया उनका वाक्य—"तुम अपने को नही रोक पाते, मै अपने को रोक सकता हूँ।"

रह गया। केवल उनको देखकर लौट पड़ा। मैने इतने में ही बहुत सतोष माना। क्या वह जानते थे कि मैं उनके पास आ रहा होऊँगा ? और क्यो ?

इसके बाद जब वह मिले, पूछने लगे—"किसलिये व्यर्थ भटके थे ?"

मैंने कहा—"यो ही। मुझे विश्वास था कि तुम दूर नहीं गए हो, और अवश्य ही यहीं कहीं दिखलाई पड़ोगे। इसी भावना के भरोसे चला आया था।"

उन्होंने उत्तर दिया—"मुझको भी आभास हो रहा था कि तुम अवश्य आ रहे हो। तुम दिखलाई नहीं पड़ रहे थे, परंतु ऐसा जान पड़ रहा था कि तुम आए हो। जिस समय मै यह कल्पना कर ही रहा था, उसी समय तुम आए, और दिखलाई पड़े।"

पश्चिमीय और पूर्वीय सभ्यता

[श्रीशीतलासहाय बी० ए०]

भारतवर्ष एक ऐसा अभागा देश है, जो पिछले दो हज़ार वर्ष से, समय-समय पर, इस प्रश्न पर विचार करने के लिये बराबर मजबूर होता है कि वह अपनी सभ्यता पर स्थिर रहे या दूसरों की सभ्यता पर। आजकल भी हमारे सामने यह प्रश्न है, और एक हज़ार वर्ष पहले भी हमारे सामने यही प्रश्न था, जब मुहम्मद गोरी की तलवार के सामने पृथ्वीराज को नीचा देखना पड़ गया था। आज हम यह सोचते है कि हम अँगरेज़ी सभ्यता मे घुल-मिल जायँ, या सनातन से चले आए आचार-विचार और अपनी संस्कृति पर क़ायम रहे। आज से एक हज़ार वर्ष पहले हमारे सामने यह प्रश्न था कि हम मुसलमानी सभ्यता का अनुकरण करे, या सनातन संस्कृति के अनुयायी बने रहें। उस समय तो घोर-घमासान युद्ध के बाद हमने ज़ाहिरा यह निश्चय किया था कि मुसलमानी सभ्यता से असहयोग करेंगे। लेकिन छोटी-छोटी बातो मे उसकी संस्कृति स्वीकृत कर ली थी। आज भी यद्यपि पश्चिमीय सभ्यता से हम कोई समझौता नहीं कर रहे है, फिर भी उसके आचार-विचार, विशेषकर दूषित प्रकार के, हमारे समाज पर ज़ोरो के साथ आक्रमण कर रहे है। एक हज़ार वर्ष पहले हमें विजयी मुसलमान ज़बरदस्ती अपनी सभ्यता का अनुयायी बनाना चाहते थे। हमारे राष्ट्र ने उसका उपयुक्त जवाब दिया था। राणा प्रताप, शिवाजी आदि बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और समाज-सेवक इसीलिये प्रसिद्ध है कि उन्होंने इस्लाम की सभ्यता के प्रबल प्रवाह को रोका था कि वह कहीं भारतीय सभ्यता को बहा न ले जाय। यद्यपि हम आज इस बात के लिये मजबूर नहीं कि पश्चिमीय सभ्यता को ख़ामख़्वाह ग्रहण करें, लेकिन पश्चिमीय सभ्यता के पोषक अपनी संस्कृति

श्रीशीतलासहाय बी० ए०

के मनोहर रूप का प्रदर्शन करके, साहित्य, कला और कौशल का अपूर्व चमत्कार दिखाकर, हमारे मन और बुद्धि को इस प्रबल रूप से आकर्षित कर रहे हैं कि आश्चर्य न होना चाहिए, यदि हमारी पूर्वीय सभ्यता हज़म हो जाय। किंतु हमारी सभ्यता में यह एक विचित्र गुण रहा है कि जब चारो ओर अंधकार-ही-अंधकार देख पड़ता था, ठीक उसी समय पर उसने ऐसे-ऐसे महान् व्यक्ति उत्पन्न किए हैं, और कर देती है, जो मुर्दा शरीर में भी जान डाल देते हैं। अर्वाचीन युग में पश्चिमीय सभ्यता की महान् प्रबल धारा को, जिसके वेग में सारा भारतवर्ष बहा जा रहा था, एकदम रोकने के लिये हिंदू-समाज ने तिलक और महात्मा गांधी को उत्पन्न किया। तिलक भारत की उपज थे, और गांधी भी हिंदू-संस्कृति की सृष्टि हैं। इनका जीवन, इनका पराक्रम, इनकी कीर्ति और इनका गौरव देखकर भारतीय नवयुवकों के हृदय से यह निराशा सदा के लिये विदा हो जाती है कि पूर्वीय सभ्यता महान् पुरुष का निर्माण नहीं कर सकती। २०-२५ वर्ष पहले, जब हम इतिहास के पन्नों को उलटते-पलटते थे, सामाजिक क्रांति, राष्ट्रीय स्वतत्रता, प्रजातंत्रवाद, साइंस, कला कौशल आदि की अर्वाचीन शब्दावली हमारी जिह्वा के ऊपर आती थी, हमारा हृदय लालायित हो उठता था कि क्या कभी भारतवर्ष में भी इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग का अवसर मिलेगा। जिह्वा कहती थी—"हाँ।" लेकिन हृदय से यही आवाज़ उठती थी—"यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते।"

किंतु आज वह बात नहीं है। इन व्यक्तियों के कारण अब हमें विश्वास हो गया है कि भारतीय शरीर धारण करके, इसी अस्थि-पंजर से, इसी गेहुवाँ रंगवाले चमड़े से, राम और कृष्ण को मानते हुए, कुर्ता-टोपी पहनकर भी हम मनुष्य-जीवन के उच्चतम आदर्शों को प्राप्त कर सकते और बहुत ऊँचे उठ सकते हैं। पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य गांधी हमें राजनीतिक स्वतत्रता दिला सकें या न दिला सकें, किंतु इतना तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने हमारी दासता की मनोवृत्ति को संपूर्णतया नष्ट कर दिया है। गांधी हमें राष्ट्रीयता के उच्चतम शिखर तक खींचकर पहुँचा सकें या न पहुँचा सकें, लेकिन उन्होंने इतनी बात तो ज़रूर सिद्ध कर दी है कि आर्य सभ्यता के मौलिक सिद्धांतों के आधार पर ही संपूर्ण सभ्यता प्राप्त की जा सकती है, और अर्वाचीन संसार में भी राष्ट्रीय अस्तित्व और आत्मगौरव कायम रक्खा जा सकता है। हम गांधी से राजनीतिक सिद्धांत में सहमत हों या न हों, लेकिन इस बात के मानने पर तो विवश ही होते हैं कि पूर्वीय सभ्यता उन्हीं के व्यक्तित्व के कारण आज उन्नत-मस्तक है।

हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय अभिरुचि तो हमें इस बात के लिये मजबूर करती है कि हम अपने देश की मुख्य-मुख्य और मौलिक बातों के प्रेमी और प्रशंसक हों। राष्ट्रीयता इसी का नाम है। जो आदमी अपनी मातृभाषा से घृणा करे, उसे जंगलियों की भाषा बतावे, जो अपने देश की स्त्रियों और उनके शृंगार में कोई सौंदर्य न देख सके, और समझे कि सारी सुंदरता पश्चिमीय शृंगार, वेश और विलास में ही रक्खी है, जिस आदमी के मन में अपने देश के महान् व्यक्तियों के प्रति कोई आदर न हो, जिसे गांधी और तिलक न भाते हों, जो हमेशा लेनिन, मार्क्स और बर्क का ही राग अलापा करता हो, जिसे भारतीय इतिहास के गौरव-पूर्ण व्यक्तियों का कोई सम्मान न हो, जिसे न रामायण अच्छी लगती हो, न सूरसागर, जो शेक्सपियर और मिल्टन में ही साहित्य का संपूर्ण आनंद अनुभव करता हो, उसे हम राष्ट्रीय कैसे कह सकते हैं। इस अवसर पर मुझे एक घटना याद आती है। मैं सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में

रहता था। महात्मा गांधी से एक प्रसिद्ध जर्मन या अमेरिकन मिलने आया। अतिथि-विभाग मेरे हाथ मे था, इसलिये उसने मुझसे प्रार्थना की कि महात्मा के 'आटो ग्राफ' की बातचीत मै पहले उनसे कर लूँ। यह व्यक्ति भारतवर्ष के अनेक राजनीतिक नेताओं से आटो ग्राफ ले आया था। महात्माजी ने भी आटो ग्राफ़ देना स्वीकार कर लिया। महात्माजी जब कापी पर हस्ताक्षर कर चुके, तो अतिथि महोदय से इजाज़त लेकर मैंने एक नज़र इस पुस्तक पर डाली। उसमें कमाल पाशा, रज़ा शाह पहलवी, अमानुल्लाहख़ाँ आदि के हस्ताक्षर थे। हमारे नेताओ के भी दस्तख़त थे, लेकिन अँगरेज़ी-लिपि मे। केवल एक नाम हिंदी में था। वह था मोहनदास कर्मचद गांधी का। एक दफ़ा मित्र-मंडल में तुलना होने लगी कि महात्मा गांधी की एक प्रमुख और सच्चे राष्ट्रीय नेता से (जो पश्चिमी रंग मे बिलकुल रँगे हुए है, जिनका नाम मै यहाँ नहीं लेना चाहता, केवल 'क' कहूँगा) एक मित्र ने ऐसी अच्छी तुलना की कि मुझे आज तक याद है। बोले, अगर गांधी का राज्य हो जाय, तो हिंदोस्तान में अँगरेज़ तो मौजूद रहे, लेकिन अँगरेज़ियत ख़तम हो जाय, और अगर 'क' का राज्य हो जाय, तो अँगरेज़ तो चले जायँ, लेकिन अँगरेज़ियत क़ायम रहे।

मै राष्ट्रीयता को प्रथम स्थान देता हूँ, इसलिये भारतीय सभ्यता का पोषक हूँ। लेकिन जब मै इतिहास की देवी से यह प्रश्न पूछता हूँ कि "भगवती! तुम बताओ कि पूर्वीय सभ्यता श्रेयस्कर है या पश्चिमीय?" तब इस देवी का उत्तर हमारी भावना के प्रतिकूल होता है। परिणाम देखकर किसी प्रणाली की उपयोगिता और अनुपयोगिता निर्णय करने के सिद्धांत के आधार पर जो फ़तवा हमें मिलता है, वह अपने ख़िलाफ़ है। इतिहास-देवी कहती है—"हे पूर्वीय सभ्यता के अनुयायियो, मियाँ मिट्ठू न बनो। हमारी कसौटी पर तुम्हारी सभ्यता खरी नही निकली। कालाग्नि की आँच को तुम्हारा संस्कृति-सुवर्ण सह नही सका। यदि पूर्वीय सभ्यता से दो-चार बडे बड़े और भयंकर दोष न होते, तो तुम पिछले दो हजार वर्ष से पद-दलित और परतंत्र क्यों रहते। धिक्कार है तुम्हारी लंबी-चौडी फ़िलासफी पर, तुम्हारे शास्त्रीय विवेचन, साधन और सिद्धांतो पर, यदि उनके होते हुए भी तुम हमेशा जूतियाँ खाते रहे, जमीन पर सर रगडते रहे और दाने-दाने के लिये मुहताज रहे। धिक्कार है तुम्हारी सभ्यता को, जिसके आश्रित होकर तुम्हे न पेट-भर खाना मिलता है, और न लाज ढकने के लिये काफ़ी कपडा।" इस अवसर पर इस बात की आवश्यकता है कि तुम पूर्वीय सभ्यता के सिद्धांतों की मौलिक त्रुटियों को निकालो, और ससार मे जीवित, जाग्रत् और सम्मानित राष्ट्र होकर रहो, या रोम, यूनान और मिस्र की प्राचीन जातियो के समान ससार से सदा के लिये मिट जाओ।

इतिहास-देवी के इन कठोर वाक्यों पर जब मैं विचार करता हूँ, तो इनमे मुझे सचाई दिखाई देती है। आख़िर बात क्या है कि दावा तो हमारा यह है कि हमारी सभ्यता के आश्रित मनुष्य लोक और परलोक दोनो मे सुख का अधिकारी हो सकता है। लेकिन होता यह है कि हमारी सभ्यता के आश्रित मनुष्य भूखों मरता है, और पशु के समान जीवन व्यतीत करता है। अपने दिल मे हम यह समझे बैठे हुए है कि हम आर्यो की सतान है, सबसे श्रेष्ठ है। लेकिन समझे जाते है हम कुली और ग़ुलाम, और ससार हमारा तिरस्कार करता है। समझते हम यह हैं कि भारतवर्ष पुण्य भूमि है, द्वितीय स्वर्ग है, लेकिन पिछले दो हजार वर्ष में, इस देश में, जो-जो पाप हुए, और जो विपदाएँ आईं, वे दुश्मन पर भी न आवे। दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई। कितनी नई-नई बाते पैदा हो गईं। बुद्धि का कितना

अपूर्व विकास हो गया, और हम अभी तक वही मोची के मोची बने रहे। अगर हमारी सस्कृति में कोई खास त्रुटि न होती, तो हम इस प्रकार निरतर पतित क्यों होते रहते। हमारा हरएक पाँसा क्यो उल्टा पडता। हमारा हरएक खेल बन-बनाकर क्यों बिगड जाता। अँगरेज़ लोग कहते है—"The Englishman looses every battle except the last"

अर्थात् अँगरेज़ लोग हरएक संग्राम में हार जाते हैं, सिवा आखिरी संग्राम के। और, हमारे ऊपर यह कहावत उपयुक्त है कि हम सब संग्रामो मे विजयी होते है, सिवा आखिरी संग्राम के। इसलिये प्रश्न यह उठता है कि इस विपत्ति से हम कैसे बाहर निकले?

आवश्यकता यह है कि हम जाने कि राष्ट्रो का पालन और अभ्युदय कैसे और क्यो होता है? यह प्रश्न इतना गंभीर है कि इसके विचार के लिये सहस्रो पृष्ठों की आवश्यकता है—इस छोटे-से लेख मे इस प्रश्न पर संतोषजनक विचार नहीं हो सकता, तथापि संक्षेप मे कुछ निवेदन करूँगा।

राष्ट्रीय पतन और ऐयाशी

मेरी यह धारणा है कि ऐयाशी और राष्ट्रीय पतन में चोली-दामन का साथ है। जिस राष्ट्र को काम-व्यसन ने ग्रसा, वह अनिवार्य रूप से रसातल को पहुँच गया। रोम और यूनान के महान् साम्राज्य इसी दोष-वश नष्ट हो गए। पतन के पूर्व इन देशों की दशा बयान करते हुए सीसल ब्रूस लिखते है—"रोम में थिएटर और ड्रामा का स्टेज व्यभिचार और व्यसन से परिपूर्ण रहता था। अश्लीलता का प्रदर्शन इस हद तक किया जाता था कि अवाच्य है। रोमन-साहित्य अश्लीलता और व्यभिचार-दोष में कितना गहरा डूब गया था, यह वे ही जान सकते हैं, जो उस समय के रोमन-साहित्य से परिचित है। नग्न स्त्रियो की दौड़ उस समय की साधारण क्रीडा थी। त्योहारों के अवसर पर अकथनीय ऐयाशी होती थी। उस समय की व्यभिचार-गाथा सुनकर हृदय काँप उठता है। शताब्दियों तक गणिका-वृत्ति साधारण और आवश्यक संस्था समझी जाती थी। वारांगनाओ को उच्च और सम्मान-पूर्ण स्थान दिया जाता था। पेरीक्लीज* दुष्टचरित्रा अस्पेशिया के यहाँ खुल्लमखुल्ला जाया करता था। सुकरात† अपने शिष्यो के साथ थ्युदोटा-नामक वेश्या के यहाँ जाता था। डिमास्थनीज़‡ विवाहित स्त्रियो से वेश्याओ को अधिक उच्च स्थान देता था। अस्वाभाविक व्यभिचार ऐसे आदमी भी करते थे, जैसे जूलियस सीज़र¶, एंटोनियस§, हैड्रियन और ट्राजन।

पुरुष व्यभिचार को बहुत साधारण-सी बात समझते थे। अस्वाभाविक व्यभिचार, जिसका जिक्र भी आज कुत्सित है, उस समय आमतौर से प्रचलित था।

* पेरीक्लीज (४९०-४२९ BC) एथस देश का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सेनापति और वाक्पडित था, जिसने एथेंस को उन्नति के शिखर तक पहुँचा दिया था।

† सुकरात (४६९-३९९ BC) प्रसिद्ध यूनानी फिलासफर, इसे राज्य की ओर से ज़हर दे दिया गया था।

‡ डिमास्थनीज (३८५-३२२.BC) यूनान का प्रसिद्ध वाक्पडित, राजनीतिज्ञ और सैनिक, इसके ६१ भाषण अभी तक सुरक्षित है, और अभी तक साहित्य के अद्वितीय चमत्कार समझे जाते है।

¶ जूलियस सीज़र (१०० से ४४ BC) रोमन सेनापति। रोमन-साम्राज्य में सर्वश्रेष्ठ राज्याधिकारी। इसने रोमन-साम्राज्य की सीमा को बहुत बढाया था। रोमन लोग इसे राज्यसिंहासन दे रहे थे, लेकिन इसने इनकार किया।

§ एंटोनियस पायस (१३८ से १६१) रोमन-सम्राट्। बहुत विचारशील राजा समझा जाता है।

यूनानियों ने स्त्रियों के दो भाग कर दिए थे—वधू और वेश्या। वधुएँ परदे में रहा करती थीं, और सामाजिक जीवन में कोई भाग नहीं लिया करती थीं ; केवल गृह-कार्य इनका एकमात्र कर्तव्य समझा जाता था। जब कोई पुरुष-अतिथि आता था, तो उसके सामने भी वे नहीं निकलती थीं। वधू-समुदाय से संपूर्ण सतीत्व की आशा की जाती थी। ये सती स्त्रियाँ सतत संरक्षित रहती थीं—बाल्यावस्था में पिता के अधीन, फिर पति के अधीन और अंत में पुत्र के अधीन। केवल वेश्याएँ ही सामाजिक और अन्य वृत्तियों में हिस्सा लिया करती थीं। रोम देश में स्त्रियों को यूनान की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता थी। वहाँ यह नियम था कि बिना कारण स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को तलाक़ दे सकता था। तलाक़ देने-दिलाने की प्रथा ख़ूब प्रचलित हो गई थी। औरतें अपनी उम्र वर्षों से नहीं, बल्कि परित्यक्त पतियों की संख्या से गिना करती थीं। उस समय के इतिहास में ऐसी अनेक स्त्रियों का वर्णन पाया जाता है, जिन्होंने ५ वर्ष के अंदर ८ पति किए हैं। एक ऐसी स्त्री का भी ज़िक्र है, जिसने २३वाँ पति किया था, और वह उस पति की २१वीं स्त्री थी। स्त्री व पुरुष शादी करना पसंद नहीं करते थे। लेकी लिखता है—"इतिहास में निस्संदेह अनेक युग हुए हैं, जिनमें सद्गुणों की कमी पाई जाती थी लेकिन सीज़र के ज़माने में जितना विस्तृत व्यभिचार पाया जाता था, उतना कभी न पाया गया होगा।" उस समय दासियाँ रखने का ख़ूब रिवाज था। वसंत-ऋतु में भैरवी-चक्र चलता था। स्टेज पर अश्लीलता का अनुपम प्रदर्शन हुआ करता था। स्नान करने के स्थानों पर स्त्री और पुरुष खुल्लमखुल्ला नग्न नहाते थे। गंदे चित्रों की ख़ूब चर्चा थी। साहित्य भी उसी प्रकार का बन गया था। इन सब बातों ने मिल-जुलकर रोमन-जाति में एक अपूर्व भयंकर अवस्था पैदा कर दी थी।

इसके बाद अगर रोमन साम्राज्य ५० वर्ष के अंदर तहस-नहस हो जाय, तो आश्चर्य नहीं। मैं यह मानता हूँ कि रोम और यूनान के सदृश भारत के पतन के अनेक कारणों में से एक कारण ऐयाशी भी है। रोमन-राष्ट्र को जिस घुन ने खा लिया, कम या ज़्यादा वही घुन हिंदोस्तान में भी लग गया है। भारतीय जनता—विशेषकर क्षत्रिय-समाज—काम-लोलुप हो गई थी। लोग जीवन का मुख्य उद्देश्य विषय-भोग समझने लगे थे। पृथ्वीराज और जयचंद की लड़ाई क्यों हुई ? जयचंद ने ग़ोरी को क्यों बुलाया ? कारण स्पष्ट है, पृथ्वीराज की इंद्रिय-लोलुपता। क्या पेशवाओं का पतन, क्या सिक्खों की अधोगति और क्या हिंदू तथा मुसलमान-राजों का विनाश, सबके पीछे काम-लोलुपता छिपी हुई है। पिछले हज़ार वर्ष के भारतीय साहित्य को देख जाइए, आपको इसमें दो विचार-धाराएँ दिखाई देंगी—एक धार्मिक विचार-धारा, जिसके सूर, तुलसी आदि प्रतिनिधि हैं, और दूसरी कोरी साहित्यिक विचार-धारा, जो शृंगार से परिपूर्ण है। जितने कवि हुए, सभी ने शृंगार पर ही लिखा, जितनी किताबें बनीं, जितने छंद और कविताएँ लिखी गईं, सब इसी विषय पर। इस काल के साहित्य के अवलोकन से ऐसा मालूम होता है कि हमारे पूर्वज पिछले हज़ारों वर्ष में केवल एक बात में दिलचस्पी रखते रहे हैं—शृंगार में। उर्दू-साहित्य का भी यही हाल है। गुल और बुल-बुल, आशिक़ और माशूक़ की बकवास में ही उर्दू का उस काल का साहित्य ख़तम हो जाता है। यदि साहित्य को राष्ट्र की अभिरुचि की माप समझें, तो हमारी इस धारणा की पुष्टि होती है कि पिछले हज़ार वर्ष के भारतीय समाज की दिल-चस्पी सिर्फ़ शृंगार में रही, और वह जीवन की उच्चतर बातों से बिलकुल दूर रही है। क्षत्रिय-जाति का पिछले हज़ार वर्ष का जीवन घोर रूप

से काम-पूर्ण रहा है। राजपूताना की वीर-भूमि राजपूतो की उज्ज्वल कृत्यों से निस्संदेह सगौरव है, लेकिन अगर उसकी कीर्ति-पताका का पर्दा हटाकर आप राजों, जागीरदारो, ठाकुरो और सैनिको के व्यक्तिगत जीवन को देखे, तो आपको काम-विकारता का घृणिततम चित्र दिखाई देगा। इन लोगों का जीवन मदिरा, मांस और व्यभिचार से घोरतम कलुषित था। शासक-समुदाय चाहे वह राजपूतो का रहा, चाहे मरहठों का, चाहे सिक्खों का, सबमें यही दोष आप पाएँगे। और, अगर आप ग़ौर से देखेंगे, तो अपने राष्ट्र की पराजय की कुंजी इसी स्थान पर आपको मिल जायगी। काम वासना एक ऐसी भयंकर व्याधि है कि इसमें ग्रस्त हो जाने पर सबल-से-सबल व्यक्ति और राष्ट्र दुर्बल और नष्ट हो जाते हैं। योगशास्त्र में एक सूत्र है "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठाया वीर्यलाभः।" यह सिद्धांत व्यक्ति और राष्ट्र, दोनो के लिये सच्चा है।

अभाग्य-वश अभी तक हिंदी-साहित्य मे कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई, जिसमें राष्ट्रो के पतन के कारणो पर विस्तार-पूर्वक विचार किया गया हो। शायद अँगरेज़ी में भी इस क़िस्म की पुस्तक न हो। लेकिन यदि कभी पुस्तक लिखी गई, तो मेरा यह दृढ विश्वास है कि भारतीय जनता और भारतीय शासकों का कामासक्त जीवन हमारे पतन का निस्संदेह एक मुख्य कारण सिद्ध होगा।

पश्चिमीय सभ्यता के अभ्युदय के कारण

अब हमे यह सोचना है कि पश्चिमीय राष्ट्र आख़िर क्यों समृद्धिशाली और उन्नतिशील है, और हम क्यो पतित और दरिद्र है। विषय तो यह एक ४०० सफ़े की पुस्तक का है, ४ पृष्ठो में केवल अत्यंत सूक्ष्म रूप में ही आ सकता है। पश्चिम की उन्नति का मुख्य कारण यह है कि इन लोगों ने समाज-शास्त्र के इस अटल नियम का पता चला लिया है कि राष्ट्र को जीवित रक्खे विना व्यक्ति को जीवित नहीं रख सकते। राष्ट्र ही वास्तव मे मुख्य प्राणी है, उसकी अपनी आत्मा अलग होती है। व्यक्ति तो उसका पुर्ज़ा है, और वह संसार के लिये मुख्य चीज नहीं। संसार के लिये मुख्य चीज़ राष्ट्र है। पश्चिम ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया है कि राष्ट्र के स्वस्थ और सुरक्षित हुए विना व्यक्ति अपना जीवन स्वस्थ और सुरक्षित नहीं रख सकता। पश्चिम ने यह सिद्धांत अच्छी तरह समझ लिया है कि विना राजकीय शक्ति और पुष्टि के राष्ट्र मे न तो सामाजिक, न धार्मिक और न किसी दूसरे प्रकार की स्वतन्त्रता क़ायम रह सकती है। राज्यतन्त्र ससार मे इतनी प्रबल शक्ति है कि इसके हाथ से निकल जाने पर व्यक्तिगत जीवन भी स्वतन्त्रता-पूर्वक निबाहा नहीं जा सकता। और, इसके हाथ में रहने पर धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक, सब प्रकार की व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नतियाँ सरल हो जाती है। इसलिये पश्चिम की कौमे अपनी जनता में ऐसे गुणो की उन्नति और विकास कराती है, जिससे राज्यकीय तंत्र की रक्षा और पुष्टि होती है। उदाहरण के लिये अर्वाचीन जर्मनी को देखिए। हर हिटलर और जर्मनी के नेता लोग, पिछले १० वर्ष से, इस बात का प्रचार कर रहे है कि जर्मन-जीवन का मुख्य उद्देश्य राज्यकीय तन्त्र को पुष्ट करना है, जिससे वह अपने पूर्व गौरव को फिर प्राप्त कर सके। छोटे-छोटे बच्चो और नवयुवको को स्कूल और कॉलेज में इसी बात की शिक्षा दी जाती है। उन्हे यह बताया जाता है कि राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति में ही व्यक्तिगत जीवन की संपूर्णतया उन्नति है। इस उद्देश्य के लिये अगर हज़ारों जर्मनो का व्यक्तिगत जीवन नष्ट भ्रष्ट भी हो जाय, तो उसमे व्यक्तियों को दुःख करने की कोई बात नही, बल्कि उन्हे सौभाग्य मानना चाहिए कि उनके जीवन में जो सबसे उत्तम बात हो सकती थी, हुई। जर्मनी में लड़कपन

से ही बच्चों को सिखाया जाता था कि जब ईश्वर से प्रार्थना करो, तब यह कहो—"भगवन् ! तू हमारे शस्त्रों को विजय दे। तू न्याय कर, जैसा आज तक करता आया है, और यह बता कि हम स्वतंत्रता के अधिकारी है कि नहीं। भगवन्, तू हमारे शस्त्रो को विजय दे।" जो जर्मन देश-भक्त सैनिक पिछले युद्ध में काम आए, उनके चरित्र उज्ज्वल करके दिखाए जाते है। उनकी प्रशंसा होती है। इतिहास मे उनका नाम अमर करने के लिये प्रयत्न किया जाता है। परिणाम यह होता है कि जर्मनी का प्रत्येक युवक अपने राष्ट्र के लिये जीवन निछावर करने की भावना को लेकर बढ़ता है। उनकी सामाजिक संस्थाएँ ऐसी हैं कि युद्ध की भयंकर परीक्षा देने और क्षत्रिय-जाति का कठोर धर्म पालन करने मे सहायक होती हैं। साहित्य में, कला-कौशल मे, गृहस्थी के जीवन मे, देश के अन्न, जल और वायु में, बस एक बात है, राष्ट्र के लिये व्यक्तिगत जीवन को संपूर्णतया ग़ारत कर देना।

जापान एक छोटा-सा राष्ट्र होते हुए भी आज पश्चिमीय राष्ट्रों के दाँत खट्टे कर रहा है। पश्चिम के रहनेवाले व्यंग्य-चित्रों में जापानियों की शकल बंदर की बनाकर उनका उपहास उड़ाते है! लेकिन इस बंदर की संगीन के सामने आते हुए घबराते है। यह क्यों ? उसका एकमात्र कारण यह है कि जापान ने भी संसार के इस अटल नियम को समझ लिया है कि राष्ट्रीयता के निर्माण में बिना व्यक्तिगत जीवन को निछावर किए और बिना क्षत्रिय-धर्म के पालन के न राष्ट्रीय जीवन चल सकता है, और न व्यक्तिगत जीवन। जर्मनी अगर आज चाहे, तो २४ घंटे की नोटिस मे २० लाख नवयुवक समर-भूमि पर लाकर खड़ा कर सकता है। "प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च" जापान भी अगर चाहे, तो २४ घंटे में कई लाख आदमी ऐसे ला सकता है, जो अपने नेता के कहने पर संसार की, कुटुंब की और परिवार की सारी मोह-माया छोड़कर अपने प्राण देने के लिये तैयार हो जायँ। यही इन तमाम राष्ट्रों के उन्नत होने की कुंजी है। स्वार्थ का त्याग और देश-सेवा में परमार्थ का दर्शन, यही एक सिद्धांत है, जिससे पश्चिमीय देश आज भी समृद्धिशाली और स्वतंत्र है। पश्चिमीय राष्ट्रो ने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि राष्ट्र को कायम रखने के लिये प्रथम और मुख्य बात क्षत्रिय-धर्म का पालन है। ये लोग इस बात को इतना महत्त्व-पूर्ण समझते है कि किसी एक जाति-विशेष पर क्षत्रिय-धर्म के पालन की ज़िम्मेदारी नहीं डाल रक्खी है। देश मे जो पैदा हुआ है, वह चाहे जिस श्रेणी का हो, चाहे जिस जाति का हो, उसे मातृभूमि की रक्षा के लिये क्षत्रिय-धर्म का पालन करना पड़ेगा। यह बात दूसरी है कि हरएक काम मे विशेषज्ञ होते हैं, कुछ श्रेणियों में विशेष क्षमता भी पाई जाती है। राष्ट्र उनकी योग्यता और क्षमता से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाता है। लेकिन सर्वव्यापी नियम यह है कि प्रत्येक व्यक्ति क्षत्रिय-धर्म का पालन करे।

भारतवर्ष मे इसकी कमी है, और कमी रही है। भारतवासियों में व्यक्तित्व की भावना बहुत प्रबल है, और राष्ट्रीय सेंस अत्यंत दुर्बल। भारतीय जातियाँ इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ हैं कि राष्ट्रीय जीवन के स्वस्थ और सबल होने पर ही व्यक्तिगत जीवन का निर्वाह हो सकता है। भारतीयो में पिछले दो हज़ार वर्ष से यह ग़लतफ़हमी चली आ रही है कि राज्यतंत्र चाहे जो हो, राष्ट्र का संगठन चाहे किसी प्रकार का क्यो न हो, हम अपना व्यक्तिगत जीवन आनंद और स्वतंत्रता से व्यतीत कर देंगे। हम व्यक्तिगत जीवन को महत्त्व देते रहे राष्ट्रीय जीवन के लिये, व्यक्ति का नाश करना हमने नहीं सीखा। यही हमारी ग़लती थी, और इसी ग़लती का नतीजा आज हम पा रहे हैं।

मान लीजिए, आज जापान हिंदोस्तान पर चढ़ाई

कर दे, और अँगरेज़ लोग हमसे कहे कि तुम लोग स्वराज्य-स्वराज्य करते हो, जापानियो का मुकाबला कर लो, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम लोग गाँव मे चिल्लाते-चिल्लाते चाहे हलक फाड डाले, भारतमाता की चाहे कितनी दुहाई क्यों न दे, पर हिंदोस्तान मे १० लाख आदमी ऐसे न मिलेगे, जो देश की सेवा के नाम पर अपनी जान जापानियो की तोप के सामने निछावर करने के लिये तैयार हो जायँ। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि भारतीयों मे देश के लिये आत्मत्याग करने की क्षमता नही पाई जाती। मेरे कहने का उद्देश्य केवल इतना है कि भारतीय जनता ने ससार के उस अटल नियम को अभी तक नहीं समझ पाया कि राष्ट्रीय जीवन ही एक मुख्य चीज है। व्यक्ति उसका केवल एक पुर्जा है और उसे जीवित रखने का साधन।

पश्चिम की सभ्यता में एक बात मार्के की यह है कि वह आत्मगौरव के सामने मृत्यु की अवहेलना करते हैं। यूनान और रोम की सभ्यता में मृत्यु की अवहेलना को सद्गुणों मे बड़ा उच्च स्थान दिया गया था। स्पर्टा-प्रांत मे इस गुण का विशेष आदर था, और जो लोग स्पर्टा के इतिहास से परिचित है, वे जानते है कि वहाँ के नवयुवक प्राचीन क्षत्रियों के समान हँसते हँसते समर-भूमि में प्राण दे देना साधारण-सी बात समझते थे। रोम मे भी आत्मसम्मान के नाम पर आत्महत्या कर लेना साधारण-सी बात थी। पश्चिमीय सभ्यता ने बहुत कुछ हिस्सा रोम और यूनान से लिया है। यहाँ आत्मगौरव को संसार की सब चीज़ों की अपेक्षा ऊँचा स्थान दिया जाता है। उसके सामने प्राणों का भी कोई मूल्य नही। सम्मान-पूर्ण जीवन और सम्मान-पूर्ण मृत्यु की अभिलाषा व्यक्ति मे पश्चिमीय सभ्यता के वातावरण से उत्पन्न होती है। कहने का अभिप्राय यह नहीं कि पश्चिम का बच्चा-बच्चा अभय हो गया है, लेकिन यह कि प्राण देने की किसी भी योजना मे शामिल होने के लिये पश्चिम में बहुत काफ़ी आदमी मिल जाते है। केवल समर भूमि मे प्राण देने के लिये नहीं, बल्कि ख़तरे के हरएक काम मे शामिल होने के लिये उन लोगों में उत्साह पाया जाता है। हवाई जहाज पर उड़ना हो, हिमालय के हिम मंडित शिखर पर चढ़ना हो, सूनसान रेगिस्तान की पैदल यात्रा करनी हो, भयकर जंगल की सैर करनी हो, अर्थात् ख़तरे के हरएक भाग मे पश्चिमीय नवयुवक बहुत काफी तादाद में शामिल होते है। ख़तरे का जन्म व्यतीत करना (To live dangerously) वहाँ के सभ्य आदमियों का प्रियतम विनोद है। इसलिये जब कभी इन जातियो के ऊपर कोई सकट का समय आता है, तो उसके मिटाने के लिये आदमियो की कमी नहीं रहती।

एक और महत्त्व-पूर्ण बात, जो पश्चिम से हम सीख सकते हैं, सगठन है। हरएक काम ये लोग संगठित होकर करते है, जिससे व्यक्ति की शक्ति कई गुना प्रबल हो जाती है। संगठन की महिमा पश्चिम ने ख़ूब समझी है। इनके बनाए हुए संगठन हज़ारों वर्ष तक क़ायम रहते हैं। व्यक्ति बदलते रहते है, मरते रहते हैं, लेकिन संगठन ज्यों-का त्यों जीवित रहता है। ईस्ट-इंडिया-कंपनी एक संगठित संस्था थी, जिसने कितना महान् कार्य करके दिखला दिया! पश्चिमीय सभ्यता मे सगठन एक ख़ास बात है। हरएक चीज़ के लिये एक संगठित संस्था होती है। शिक्षा के लिये अलग सगठन होगा, खेल-कूद का अलग सगठन होगा, और व्यापार का अलग। मनुष्य-जीवन मे जितनी प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं, सब-की-सब ये लोग संगठित रूप से करते हैं। संगठन में कैसे काम किया जाना चाहिए, इन्हें अच्छी तरह मालूम है। इसलिये

इनका काम मशीन के पुर्जे की तरह चलता है, और संसार की घुड़दौड़ में ये लोग अग्रसर रहते है।

भारतीय सभ्यता के दोष

भारतीय सभ्यता मे इसके विपरीत सबसे भयंकर दुर्गुण जो पाया जाता है, वह स्वार्थपरायणता की अधिकता, व्यक्तित्व का प्राबल्य और राष्ट्रीयता के परिज्ञान का अभाव है। भारतवर्ष मौलिक रूप से व्यक्ति प्रधान देश है। हमारी संस्कृति और हमारी सामाजिक संस्थाएँ इस प्रकार की बनी हैं, जिनमें हरएक व्यक्ति एक दूसरे से अलग होते हुए काम चला सकता है। हम लोग सामाजिक आवश्यकताओ का कुछ भी ध्यान न रखते हुए अलग-अलग अपना-अपना जीवन-पथ निर्धारित करते हैं, और हमारा आधार होता है केवल भोजन और वस्त्र की प्राप्ति तथा गृहस्थी के जीवन को सुख से बिता सकने की संभावना। हम इस बात का ज़रा भी ख़याल नही करते कि हमारे कार्य का भावी राष्ट्र पर क्या परिणाम होगा! उदाहरण के लिये अगर आज एक कंपनी अफ़ीम पीने के लिये प्रोत्साहन देने के वास्ते खुले, और कर्मचारियों को काफ़ी तनख़्वाह देने की योजना कर सके, ऊपर से भी इसमे आमदनी की संभावना हो, तो आपको सैकड़ों हिंदोस्तानी नवयुवक ऐसे मिल जायँगे, जो इस बात का न खयाल करेंगे कि अफ़ीम के प्रचार से हमारा देश अफ़ीमची हो जायगा, और रुपए के लिये ख़ुशी से इस कंपनी का काम अपने हाथ में ले लेंगे। राष्ट्र के लिये घातक से-घातक संस्था आज खोली जाय, उसके लिये हिंदोस्तान मे आपको आदमी मिल सकते हैं। अब तो हम लोगों को राष्ट्रीय हित-अनहित का कुछ ख़याल पैदा भी हुआ है। चार या पाँच सौ वर्ष पहले हिंदोस्तान मे राष्ट्रीय भावना का परिज्ञान बिलकुल नही था। एक बात का केवल परिज्ञान था कि किस तरह से मुलायम चारा, सुंदर स्त्री और आमोद-प्रमोद का जीवन मिले। उपर्युक्त बातो का प्रबंध कर दीजिए, आपको हरएक काम के लिये भारतीय मिल जायँगे। तभी तो फ़्रांसीसियों, पुर्तगालियों और मुसलमानो के लिये पुराने ज़माने मे यह बहुत आसान बात थी कि वे उसी देश से सिपाहियों को भरती करके उसी देश के राजा से लड़वा दें। बैसवाड़े का ठाकुर या कान्यकुब्ज ब्राह्मण फ़्रांसीसी सेना मे भरती होकर अँगरेज़ी सेना मे भरती अपने ही देश के सैनिक पर गोली चलाने मे ज़रा भी संकोच नही करता था। उसके अंतःकरण मे इस कृत्य से ज़रा भी व्यथा नही पैदा होती थी। सच तो यह है कि राष्ट्रीयता का अंकुर तक हिंदोस्तान मे नही पाया जाता था।

हम लोग यह समझते है कि समाज की अवस्था चाहे जो हो, व्यक्तिगत जीवन स्वतन्त्रता पूर्वक व्यतीत किया जा सकता है। इससे बढ़कर भयंकर भूल और नही हो सकती। हमारे इतिहास मे इसके ख़िलाफ़ अनेक उदाहरण पाए जाते हैं। लेकिन खेद है, हम उन पर ध्यान नही देते। विश्वामित्र ने अपना यज्ञ स्वयं क्यो न समाप्त कर लिया था? मख-रक्षा के लिये इन्हे क्षत्रिय की क्यो ज़रूरत पड़ी? मुसलमान-काल में हिंदू लोग अपने धर्म का पालन क्यो नही कर सके? सच तो यह है कि हम अपने जीवन को चाहे जितना स्वच्छ और पवित्र बनाने की कोशिश करें, लेकिन अगर समाज के जीवन मे कलमषता है, तो हमारा जीवन कदापि स्वच्छ नहीं हो सकता। हम अपने घर को बिलकुल साफ़ रक्खें, लेकिन अगर पड़ोसी ने अपने घर को गंदा कर रक्खा है, और उसके यहाँ हैज़ा फैला, तो हम भी उस आपत्ति से न बच सकेंगे। हम चाहे अपना सारा जीवन भगवान् की आराधना ही मे क्यो न लगाना चाहें, यदि हमारे समाज का आर्थिक संगठन अनुकूल नहीं है, तो हम भूखों मर जायँगे, सारे दिन परिश्रम करने

के बाद भी पेट-भर अन्न न मिलेगा, भगवान् की आराधना तो बड़ी दूर की बात है । हम अपना सारा जीवन वेद-पाठ में ही क्यों न लगाना चाहें, लेकिन अगर राजा की अवस्था अनुकूल नहीं है, तो तस्कर लोग हमारी पोथी-पत्रा उठा ले जायँगे, और वेद-पाठ खतम हो जायगा । हम चाहे अपनी वधुओं और कन्याओं को पवित्र-से-पवित्र बनाने का यत्न क्यों न करें, लेकिन अगर राज्य शासक दुराचारी है, तो हमारे सब प्रयत्न विफल होंगे । यदि हम अपने इतिहास का अध्ययन करें, तो इससे ज़्यादा स्पष्ट और कोई बात हमें नहीं दिखाई देती कि राष्ट्रीय जीवन को स्वतन्त्रता पूर्वक ले चलने के लिये प्रथम आवश्यक बात यह है कि राष्ट्रीय भावना पैदा की जाय, राष्ट्रीय जीवन पुष्ट किया जाय, और क्षत्रिय-धर्म का सपूर्णतया पालन हो । क्षत्रिय-धर्म का सपूर्णतया पालन करने पर ही ब्राह्मण-धर्म, वैश्य-धर्म और शूद्र-धर्म पालन हो सकता है । क्षत्रिय-धर्म त्यागने के बाद न ब्राह्मण ब्राह्मण रह सकता है, और न वैश्य वैश्य और न शूद्र शूद्र । भारत यह सबक भूल गया । हमारी सभ्यता की सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि क्षत्रिय-धर्म का पालन करने की जिम्मेदारी हमने केवल एक समुदाय पर रक्खी है । अन्य समुदाय इस बात से बिलकुल उदासीन रहे कि समाज की अवस्था क्या है, या राज्यकीय दशा कैसी है । जब तक क्षत्रिय-धर्म का पालन हुआ, देश का प्रत्येक समुदाय प्रसन्न और प्रफुल्लित रहा । वैदेशिक आक्रमण से जब हमारे राज्यवंश की कमर टूटी, अन्य समुदायों ने परिपाटी के अनुकूल क्षत्रियों की सहायता नहीं की, उस समय से भारतवर्ष पतित होता गया । और, आज हिंदू-समाज का यह हाल है कि ब्राह्मण इस बात की चिंता नहीं करते कि राष्ट्र की क्या दशा है, वे तो केवल शास्त्रों की रक्षा किए हुए, संस्कृत को जीवित रक्खे हुए हैं । वैश्य व्यापार करता है, और उसी में मग्न है । शूद्र जातियाँ नौकरी करती और कहती हैं—

"कोउ नृप होइ, हमैं का हानी,
चेरी छाँड़ि न होइबे रानी ।"

ऐसी अवस्था में अगर हिंदोस्तान के सब खेल बिगड़ जायँ, तो आश्चर्य न होना चाहिए ।

दूसरी भयंकर त्रुटि हमारी संस्कृति में 'पारलौकिकता' की है । हमारे जीवन की आधी से ज्यादा प्रवृत्तियाँ इस अभिप्राय से की जाती हैं कि परलोक बने । इसका परिणाम यह होता है कि परलोक बनता है या नहीं, इसका तो कोई यक़ीन नहीं, लेकिन यह लोक तो ज़रूर बिगड़ जाता है । मैं तो यह मानता हूँ कि जो अपना घर, अपने कपड़े साफ़ नहीं रख सकता, वह अपनी आत्मा को कभी साफ़ नहीं रख सकेगा, क्योंकि निस्संदेह आत्मा की सफ़ाई में कपड़े और घर की सफ़ाई की अपेक्षा अधिक क्षमता, निपुणता और योग्यता की आवश्यकता है । जो आदमी अपनी ज़िंदगी में दो-चार हज़ार रुपया भी पैदा न कर पाए, और दावा यह करे कि हम परलोक में सुख प्राप्त कर लेंगे, वह अपने को तथा दुनिया को धोखा देता है । क्योंकि इसमें ज़रा भी शक नहीं कि ईश्वर-प्राप्ति के साधन का पता चलाना और उस पर अमल करना धनोपार्जन से कहीं ज्यादा कठिन काम है ।

मैं ईश्वर को मानता हूँ, और आध्यात्मिक जीवन में विश्वास रखता हूँ । लेकिन मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो राष्ट्र सांसारिक ध्येय की प्राप्ति में अन्य राष्ट्रों से पिछड़ गया है, और जीवन की हरएक प्रवृत्ति में सबसे फिसड्डी हो, वह यह कहे कि हमारा जीवन आध्यात्मिक है, और हम तो ईश्वर के माननेवाले हैं, केवल प्रलाप-मात्र है । आध्यात्मिकवाद का पहला प्रमाण यह होना चाहिए कि राष्ट्र के चरित्र में स्वच्छता आवे, आत्म-सम्मान पैदा हो, निर्भयता दिखाई दे । एक गुजराती साधु का भजन

है—"हरिनो मारग छे शरानू" अर्थात् हरि का मार्ग शूरों के लिये है। अगर हम हरि के भक्त है, तो कायर कदापि नहीं हो सकते। मोटर की तडक-भड़क, घोडों की टाप, शक्ति और संपन्नता की टीमटाम देखकर जो मस्तक ज़मीन के निकट तक वंदना के लिये निष्कारण पहुँच जाता है, उस मस्तक पर चाहे 'श्री' का चिह्न हो, और चाहे त्रिपुंड् का, वह मस्तक असल मे लांछित है। दासता और कायरता के कलंक से, ज़रा से सांसारिक सुख के लालच से या कायक्लेश के भय से जो मस्तक अन्यायों के सामने झुक जाता है, वह दावा न करे कि हम आध्यात्मिकवाद के माननेवाले है!

हम लोगो में जीवित रहने की इतनी अभिलाषा है कि हम चाहते हैं कि हमारे प्राण बच जायँ, हमारा रहना चाहे जिस दुर्दशा मे हो। जीवन की लालसा, चाहे वह जीवन सम्मान-युक्त हो या अपमान-युक्त, हमारे रोएँ रोएँ मे पाई जाती है। हमारा गृहस्थी का जीवन, हमारा वातावरण और हमारी सामाजिक संस्थाएँ सब-के-सब इस बात का तकाज़ा करते हैं कि हम बने रहे, और इसलिये हम बने रहते हैं, चाहे ज़िल्लत ही मे ज़िंदगी क्यों न गुज़रे। पश्चिम में यह बात नहीं। पश्चिम मे नवयुवक अपमान-पूर्ण जीवन का तिरस्कार करता है। उसकी अपेक्षा सम्मान-पूर्ण मृत्यु के लिये लालायित रहता है। "It is better to be a dead lion than a living dog", अर्थात् मृत सिंह होना अच्छा है, लेकिन जीवित श्वान होना अच्छा नहीं। मरना है, तो सम्मान-युक्त क्यो न मरा जाय। हमारे पूर्वजो मे क्षत्रिय-गति पाने की अभिलाषा थी। अब तो सबको शूद्र-गति प्राप्त होती है, क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य! सूरदास का एक भजन मुझे याद आता है। वह उस समय का है, जब भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की थी कि महाभारत-युद्ध मे कृष्ण को जरूर शस्त्र चलाने पर मजबूर कर दूंगे। भीष्म पितामह कहते हैं—

"आज जो हरिहि न शस्त्र गहाऊँ,
तौ लाजौ गंगा माता कौ, क्षत्री-गति नहिं पाऊँ।"

'क्षत्रिय गति' न पाना उस समय भयकर विपत्ति थी। आज कितने है, जो क्षत्रिय गति के अभिलाषी है? आजकल तो भारतवासी चारपाई पर एँडियाँ रगड-रगडकर मरते है, यह गति शूद्र-गति भी नही, बल्कि पशु-गति है।

सारांश यह कि हमारी सभ्यता मे तीन-चार भयंकर त्रुटियाँ है। हम स्वार्थी है, इंद्रिय-लोलुप हैं। हममे ऊँची भावनाओ का अभाव है। पाशविक भावनाओ से ही हम संतुष्ट हो जाते हैं। जन की सेवा मे हम जनार्दन की सेवा नहीं समझते। हमारा यह ख़याल है कि जनता और चीज है, और जनार्दन और चीज़। हमे इस बात का परिज्ञान नहीं कि राष्ट्रीय अस्तित्व कायम रक्खे विना व्यक्तिगत अस्तित्व कायम नही रह सकता। हममें झूठा अध्यात्मवाद पाया जाता है। कायरता को हम धर्म-शब्द से व्यक्त करते है। हम अध्यात्मवाद और मातुपिक चित्त की उस उत्कृष्ट अवस्था को नही पहुँचे है, जिसमे लोक-संग्रह के लिये मृत्यु का आवाहन करना अत्यंत आनंददायिनी वस्तु समझी जाती है।

किंतु हमारी सभ्यता मे गुण भी है, जिनके कारण हम आज भी ज़िंदा हैं। हममें संयम है, सदाचार के लिये प्रयत्न है, सरलता है और ईश्वर का भय है, किंतु इन सब बातों का वर्णन इस लेख को बहुत बढ़ा देगा। इस स्थान पर स्वदोषानुदर्शन मे ही हम संतोष मानेंगे।

सफलता

[श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी निराला']

(१)

जो हवा दिए के जलते रहने की वजह है, वह दिए को बुझा भी देती है। आभा के सस्नेह अकलुष प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने साल-भर तक जला रक्खा था, वह साल-भर से उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अंतरिक्ष की ओर तिरोहित हो गई है। साल ही भर में सुहाग का काजल उस दीपक प्रकाश के ऊपर, रतनार आँखों में, प्रिय-दर्शन के अंजन-रूप नहीं रह गया। आभा आज की शरत् की तरह अपनी सारी रंगीनी को धोकर शुभ्र हो रही है—श्वेत शेफाली-सी रँगे प्रभात के रश्मि-पात मात्र से वृंतच्युत—जैसे केवल देवार्चन के लिये चुनी हुई। पर, प्राणों के नीचे, डंठल में, जो रंग लगा हुआ है, वह तो शरत् का नहीं—वसंत का है। उसी के ऊपर वसंत के बादवाले महीनों के ये दल जैसे शरत् की आभा से शुभ्र हो रहे हैं। लालसा-चपल क्या कोई उस पूर्ण विकसित स्खलित शेफालिका-राशि को केसर-रिए सुगंध-रंग से अपनी वसंत की पाग रँगने के लिये वृक्ष के नीचे से चुपचाप चुन ले जायगा? हाय, यह वह सत्य शेफालिका जो नहीं! यह तो केवल देव-चरणों पर चढ़ने के लिये है—माला होकर हृदय पर या रंग बनकर आँखों पर चढ़ने के लिये नहीं! तभी आभा गाँव के किनारे धुले धवल शिवालय में देवता-पदों पर प्रत्यह पुष्प-स्वरूप अर्पित होने के लिये जाती है। उसके भीतर हृदय का दीप गुल हो चुका है, बाहर अंध मंदिर-हृदय का दीप वह जला आती है।

यशस्वी साहित्यिक नरेंद्र ने उधर से जाते हुए, दीपक जलाकर देवता को प्रणाम करते समय कई बार आभा का दिव्य मुख और विशाल आँखों की सकरुण दृष्टि देखी। कई शुभ सांध्य क्षण उसे कारुण्य से ओत प्रोत कर चुके—उसके हृदय में सहानुभूति का तैल संचित हुआ; वेदना की वर्तिका में समाज की कुप्रथा की आग लगी—उसके हृदय का दीप जला।

यह प्रकाश कई बार, रास्ते में, मंदिर की सीढ़ियों पर, आभा के म्लान मुख पर पड़ा, प्रतिफलित हुआ। आभा के अंतःपुर की रूपसी ने अंतःपुर में उसे उतने ही निकट संबंध से पहचाना, जितने दूर व्यवहार से आभा धरा से दूर हो गई थी।

हाय रे जीवन! कितने आवर्तों से तू प्रवाहित होता है! जिन कारणों से आभा पृथ्वी से छुटी थी, वे ही उसे नरेंद्र के साथ लपेटने लगे। मन से वह नरेंद्र की दृष्टि की तरह उसके नज़दीक हो गई। वह आज एकांत में नरेंद्र से पूछेगी—इस संसार-दुःख से मुक्ति पाने का कौन-सा मार्ग है? वह विद्वान् होकर उसे वंचित न करेगा—अतः, वह धोका नहीं दे सकता—उसकी आँखें इसका साक्ष्य देती हैं, फिर वह भी उसी की तरह विधुर है—जानता है, व्यर्थ स्नेह कितना दुःखप्रद, कितना कठोर है। हो सकता है, स्त्री न होने के कारण वह इतना दुःख, इतना अपमान न पा रहा हो; पर उसके स्त्री होने के कारण कभी उसने कल्पना की होगी कि मेरे न रहने पर मेरी स्त्री को क्या होगा। आभा का हृदय उमड़ आया।

आज-आज करके कई आज पार कर चुकी। आज नरेंद्र मिला। वह सीढ़ी से उतर रही थी, नरेंद्र चढ़ रहा था। कितना कहना चाहा था, कुछ भी न कह सकी। कितना हृदय धड़का! चुपचाप खड़ी रही। नरेंद्र ऊपर चला गया।

नरेंद्र बीसवीं सदी का मनुष्य है। वह न कर

बैठे हुए श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सके, ऐसा कोई काम नहीं ; ऐसा कुछ किया भी, ऐसा नहीं। वह मन से धर्म और अधर्म को पार कर दूर निकल गया है, पर मन में धर्म से श्रद्धा और अधर्म से घृणा करता है। वह भौंरे की तरह खुले फूल पर नहीं बैठा, पर भौंरे की तरह फूलों का यश बहुत गा चुका है, उनके चारो ओर बहुत मँडलाया। उसकी कल्पना में आभा उतने रंग भर चुकी है, जितने प्रकाश भरता है—फूलो में, पहाड की बर्फ़ पर, बादलों में, दिशाओं और आकाश में, तरह-तरह की सुघर उधेड-बुन में। पर आभा को वरण करने की कोई शह-ज़ोरी उसमें पैदा हुई, ऐसा कोई लक्षण नहीं देख पड़ा। सोचा ज़रूर, पर उठे सर का झुक जाना देखा, और डरा।

त्यों त्यों आभा दृढ़ होती गई। उसकी धडकन जाती रही। चुपचाप स्नेह का एक लेप नरेंद्र के स्मरण-मात्र से लगने लगा। लाज फिर भी रही। एक रोज़ उसी तरह एकांत मिला। कंठ की देवी कंठ में निर्भय बैठी रही। शब्द जैसे आप बनकर, तुले हुए, निकले—"मुझे संसार में बडा दुःख है।"

"दुःख को देवता समझो।" नरेंद्र ने जैसे अपने लेख की एक पंक्ति लिखी।

आभा सहम गई। सारा दुःख एक साथ वाष्प बन गया—उसी महाशक्ति का धड़ाका हुआ—"अर्थात् राक्षस को देवता मानूँ।"

नरेंद्र का हृदय काँप उठा। क्यों डरा, न समझा। आभा ने फिर कहा—"केवल दुख नहीं सहा जाता। रोज़ का अपमान भार हो जाता है।"

धडकन के बाद हृदय का भाव स्पष्ट हुआ। सोचा, यह भगना चाहती है। कृत्रिम गले से बोला—"धैर्य रक्खो।"

आभा ने एक बार अच्छी तरह नरेंद्र को देखा। भाव में खुली हुई बोली—"आपको लोग बहुत बडा विद्वान् कहते हैं—मैं नहीं समझ पाती; पर बड़े भी शायद छोटों को नहीं समझ पाते!"

नरेंद्र ने फिर कहा—"धैर्य रक्खो।"

झुके सर का मधुर उत्तर आया—"अच्छा।"

(२)

आभा की इच्छा निकल जाने की न थी, न किसी विषय-वासना से वह खिची थी। नरेंद्र की तरफ़ उसके भाव ने उसे खींचा, और स्त्रियों की अवहेलना, घृणा, अवज्ञा, जीती हुई एक प्रतिमा को मृत प्रेत से भी भयंकर—इतर पशु से भी तुच्छ समझनेवाली धारणा और व्यवहार ने उसे धकेला था। वह विद्वान् आचार्य से शिष्या की तरह मुक्ति की शिक्षा लेने गई थी, बस। हृदय में जो भाव नरेंद्र के प्रति प्रीतिवाले, कुछ काल के लिये उसे एक आवेश में भुला रखते थे, वे इतने पूर्ण थे कि उनसे अधिक की कामना वह कर नहीं सकती थी, करना सीखा भी न था। मुक्ति का पथ परिष्कृत होने पर वह हृदय की तुला पर तोलकर अवश्य देखती कि वह कितना प्रशस्त और कितना पवित्र है, तब आगे पैर बढ़ाती, तो बढ़ाती। यदि विद्वान् की बतलाई राह में उसे वैसा ही लांछन और अपमान देख पडता, जैसा वह घर में देख रही थी, तो घर और बाहर, दोनो के रास्तों को पार कर जाने का गौरव प्राप्त करती। विद्वान् नरेंद्र—सहृदय नरेंद्र की 'धैर्य रक्खो' यह उक्ति उस दुःख के प्रवाह में हृदय में लगा रखने के लिये एक उतराती कुछ भार सँभालनेवाली लकडी हुई। धैर्य रखकर भविष्य में सत्य निर्देश पाने की कल्पना लिए वह घर जाकर चुपचाप पहले के अपमान सहने लगी।

इधर नरेंद्र ने सोचा, वह उसके साथ निकल जाने को एक पैर से तैयार थी। नरेंद्र को बड़ी घृणा हुई। कुछ आत्म-प्रसाद भी हुआ कि उसकी धैर्य रखने की सलाह उसे मंज़ूर हुई। नरेंद्र गाँव रह रहा था, अधिक दिनों तक रहने

की गुंजाइश न थी; कारण, वृत्ति लिखाई थी, जो घर बैठे मनीऑर्डर द्वारा कम आती थी, शहर मे रहकर ऑर्डर पूरे करने पडते थे, तब पेट-भर को कहीं होता था। पेट भी दो-चार नहीं, सिर्फ़ एक नरेंद्र को इस दुर्दशा की चिंता न थी। कारण, वह साहित्य का सुधार कर रहा था। आदर्शवाद को साहित्य में दर्शाकर तब वह दम लेता था—उसके लेख और पुस्तकें प्रमाण है। बीसवीं सदी की समस्त विचार-धाराएँ उसकी धरा से बह चुकी थीं, पर जो कुछ उसने धारण किया था, वह था मनुष्य-धर्म, जिसे अँगरेज़ी मे "Religion of man" नए स्वरपात से, ज़ोर देकर, कहते है। इसमे भूत, वर्तमान और भविष्य के सब धर्म वह धर देता था।

अस्तु, नरेंद्र घर से कलकत्ते के लिये रवाना हुआ। रास्ते में कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी, पटना, गया होता गया। मित्रों से और प्रकाशकों से मिलकर साहित्य तथा बाज़ार के हाव-भाव समझता रहा। 'आरती' के प्रकाशक ने कहा, हमारे यहाँ ८) फ़ार्म से अधिक मौलिक पुस्तक के लिये देने का नियम नही, रुपया पुस्तक प्रकाशित होने के तीन महीने बाद से दिया जाना शुरू होता है। संपादक ने कहा, हम कोई लेख विना पुरस्कार का नहीं छापते, अवश्य नए लेखकों को २) रुपए ही प्रति लेख देने का नियम है, पर आपको हम ११) पृष्ठ देंगे। फिर बड़ी सहृदयता से बोले, इससे अधिक 'आरती' दे नहीं सकती। संपादक को लेख देने का वादा कर प्रकाशक से नरेंद्र ने कहा—"आप लोग पुस्तकें बेचने के विचार से ५० और ६० प्रतिशत कमीशन बेचनेवाले को देते है—यह आपकी साहित्य-सेवा नहीं, अर्थ-सेवा हुई। यदि लेखकों को अधिक देने लगें, तो किताबें अच्छी अच्छी लिखी जायँ, और साहित्य का उद्धार भी हो।" प्रकाशक ने आँखे निकालकर कहा—"साहित्य का उद्धार कैसे होगा, यह हम आपसे ज्यादा समझते है।" इस प्रकार अडते-छूटते नरेंद्र कलकत्ता गया। वहाँ बीसवीं सदी-पुस्तक-एजेंसी मे ६) फ़ार्म का बँगला के रद्दी उपन्यासों के अनुवाद का काम मिला। कुछ करना ही था। काम लेकर, एक रोज़ निश्चिंत होकर जान बाजार-लाइब्रेरी में बैठा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ देख रहा था। अँगरेज़ी, बँगला, हिंदी, गुजराती, उर्दू, मराठी, सभी भाषाओं मे एक विशेष आदर-भाव देखा—सिनेमा स्टारों के सभी स्टोर हो रहे थे। देख-भालकर नरेंद्र डेरे लौटा।

बीसवीं सदी-पुस्तक-एजेंसी का अनुवाद शुरू तो किया, पर हाथ बद हो गया। बार-बार आँखो के सामने सिनेमा के सितारे चमकने लगे। साथ मन सोचने लगा—"यह अनुवाद का काम भी क्यो? इससे किस आदर्श की पुष्टि होती है? अर्थ मुझे भी तो चाहिए। बडा अर्थ अगर लोग नहीं लेते, तो जो लेते हैं, उसे ही बढ़ाओ।" साथ-साथ, जितने प्रकाशक भली हालत मे रहते थे, तथा अपर व्यवसाय के लोग, जो सफल हुए थे, सामने आने लगे। फिर दीन हिंदी के लेखकों की सूरत आई। उसका मित्र स्नेहशरण एक सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक है, पर कदाचित् सबसे बड़ा दरिद्र और उपेक्षित। उसका भाव, जो अब तक उसे बडा बनाए हुए, दिन-रात उसे छोटा करता जा रहा था, सामने आया। देखकर उसे बड़ी घृणा हुई। कितने प्रकाशक उसका अपमान कर चुके हैं, कोई-कोई ऑफ़िस से भी निकाल चुके है; पर बराबर वह अपने नाम को मरता रहा, जो वास्तव में अपमान था। उसे नामी कहकर, कहाकर, किसी शाप ने उसे ऊँचे आसन से गिरने का धोका दिया है। जो नाम-स्वरूप श्रेष्ठ वैभव का भोक्ता हो, वह कौड़ी-कौड़ी को मोहताज भी रहे, ऐसा हो नहीं सकता; छोटे वैभव उसके पास ज़रूर होंगे, या वह चाहता

न होगा। याद आया, छोटे वैभवों की उसने परवा कब की; इसलिये छोटों ने उसे बराबर धोका दिया—नीचा दिखाया; और अंत में आज यह प्रमाण भी दे रहे हैं कि वे छोटे उससे कितने बड़े हैं—उनके बिना उसका जीवन कितना अधूरा, कितना छोटा है।

नरेंद्र ने अनुवाद बंद कर दिया। सोचने लगा, किस प्रकार छोटा होकर वह बड़ा होगा। उसी क्षण आँखों के सामने वह सोलह सालवाली साक्षात् आभा अपने पूर्ण यौवन में उभरी स्वर्ग की देवी सी झलमलाने लगी। वह मधुर ध्वनि याद आई। वह 'अच्छा' प्राणों में घुलकर अमृत बन गया।

तरंग के तृण की तरह अब नरेंद्र अपने सोचे हुए विचारों में नहीं बह रहा—एक दूसरी विचार-धारा उसे बहाए लिए जा रही है। जो सचाई आज तक दूसरों को रास्ता बताने में लगी थी, उसने आज अपना रास्ता पहचाना। एकाएक नरेंद्र जैसे रात के शुभादर्श स्वप्न से जगकर दिन के प्रकाश में आया, जहाँ सब कुछ खुला हुआ है।

बॉक्स खोलकर रुपए गिने—लौटने का खर्च था।

(३)

गाँव में खबर उड़ी—नरेंद्र बाबू ने आवारगी पर कमर बाँध ली—बाप-दादे का नाम मिटा दिया। घर-द्वार, ज़र-ज़मीन, जो कुछ था, बेच डाला—पाप तो; छिपता है? अब वह चेहरा ही नहीं रहा। आभा ने भी सुना। आँखों में गुनकर चुप हो गई।

शाम को समय पर नरेंद्र मंदिर गया। उसी प्रकार दीपक जला, वैसे ही मुख प्रकाश में ज्योतित हुआ। उतरने के वक़्त उसी तरह चढ़ता हुआ मिला, आभा उसी तरह खड़ी हो गई।

"आभा, मैंने रास्ता ठीक कर लिया है।" यह आचार्य का कंठ न था, एक घनिष्ठ मित्र का था, जिसकी ध्वनि प्राणों के बहुत निकट पहुँचती है।

आभा ने सुना, और तौलकर देखा, यह स्वर वहीं पहुँचा है, जहाँ कभी आँखों की सहानुभूति—स्नेह पहुँचा था। इसमें उपदेश की गुरुता नहीं, मनुष्य के प्रति मनुष्य का सम भाव है। वीणा-स्वर-से झंकृत हुआ—"क्या है वह रास्ता?"

"तुम्हारे और मेरे जीवन से बँधकर बिलकुल एक नया, जिससे, आगे, और लोग आएँगे, मनुष्यों के लिये मनुष्य होने को।"

आभा ने नरेंद्र को देखा, फिर निगाह फेरकर दीपक-प्रकाश में श्वेत शिव को देखने लगी। प्राणों में कैसी गुदगुदी हुई, बोली—"आप क्या मुझे भगाना चाहते हैं?"

"नहीं।" नरेंद्र का कंठ बिलकुल स्थिर था।

आभा ने फिर नरेंद्र को देखा—"गाँववाले आपको आवारा कहते हैं।" कंठ में सहानुभूति बज उठी।

"यह भ्रम गाँववालों को बराबर रहेगा।" नरेंद्र की आँखों से बिजली निकल रही थी।

"मेरे लिये आपकी जैसी आज्ञा हो—"

"हाँ, मैं तुम्हें वही अधिकार लेने के लिये कहता हूँ, जो तुमसे छिन चुका है।"

अज्ञात आँखों से आभा ने देखा।

"जिस दुनिया ने तुम्हें छोटी, अधम, भाग्य से रहित कहा, क्या उसे तुम नहीं समझाना चाहतीं कि तुम बहुत बड़ी—बहुत बड़ी, भाग्य से भरी हुई हो?"

"ऐसा अब क्या होगा!"

"होगा आभा। वही रास्ता देखकर मैं आ रहा हूँ। विश्वास करो, और आज से दुनिया को लात मार दो—इसे जो जितनी लातें कस सका, इसकी आँखों में वह उतना ही बड़ा हुआ—उतना ही इसने इसके पैर पकड़े।"

ध्वनि जैसी होती है, प्रतिध्वनि भी वैसी ही होती है। आभा इस संपूर्ण शक्ति को भरकर एक

दूसरे रूप में बदल गई। तन्मय खडी सुनती रही—

"यह संसार तुम्हारे लिये जैसा था, मेरे लिये भी वैसा ही था। तुम दुख को समझती थी, मैं न समझ पाता था, या समझकर भी न समझता था। अब हमे इस संसार को वैसा ही दुख देना है—उसे उचित शिक्षा देनी है।"

आभा की आँखे, हृदय, वह संपूर्ण निश्चलता कह रही थी—"यह ठीक कह रहे है।"

नरेंद्र ने आभा को देखा, फिर देखा—वह निगाह बदल चुकी थी, जो झुकती है। यह वह निगाह है, जो धूप की तरह लोगों को उठाती हुई उठ जाती है—फिर पृथ्वी पर नहीं झुकती। आभा हृदय से इतना कभी नहीं उठी।

"यह," नरेंद्र ने मन में कहा—"यह आभा है।" खुलकर बोला—"आभा, चलो; मेरे घर मे बहुत दिनो से अँधेरा है, उसमें प्रकाश भर दो। मैने तुम्हारी शिक्षा के लिये जायदाद बेची है।"

होश में आते ही हृदय हिल उठा। आँखो मे शंका आई—"आपको लोग क्या कहेगे?"

"मुझे कुछ नहीं कह सकते; सब अपनी-अपनी किस्मत को रोवेंगे, जिसे किसी तरह वे फूटा नहीं समझ पाते—थाने जायँगे, दारोगा के आगे-पीछे दुम हिलाएँगे—कुत्तो की तरह भूँकेगे, पर कुछ कर नही सकते। सामने आकर काटना देशी कुत्ते जानते नहीं। मैं मुँह पर विलायती ठोकरें लगाना सीख चुका हूँ, तुम्हें भी सिखाना चाहता हूँ। आओ—"

नरेंद्र आगे-आगे, इस दृढ़ता को सर्वस्व सौंपकर आभा पीछे-पीछे चली। बारहदरी की बग़ल मे तीन आदमी खड़े थे, इनके आने से पहले चल दिए। नरेंद्र ने देखा, पर उपेक्षा मे भरकर रह गया। आभा ने देखा, मन मे कहा—"ये वे ही है, जिन्हे रोज़ देखती थी, और रोज़ समझती थी।"

द्वार खोलकर, दीपक जलाकर नरेंद्र ने कहा—"आभा, अभी हमें कुछ रोज़ यहाँ रहना होगा। गाँववालो को बता जाना है कि हम भगनेवाले नहीं थे—तुम्हे, भगानेवाला रास्ता बतलानेवाले थे।"

आभा प्रकाश मे मुस्किरा दी।

(४)

दूसरे दिन से कई दिनो तक लगातार नरेंद्र को देख देखकर गाँववालों ने घृणा से अपना ही सर झुका लिया, और घर-घर राय कायम हो गई कि आभा के बाप की नाक कट गई। मैले पर ढेले चलाने से छींटे अपने ऊपर आएँगे, यह समझकर वयोवृद्धों ने आभा के घरवालो को थाने जाने से रोका।

इस तरह की अनेक अड़चनों को आसानी से पार कर नरेंद्र आभा को लेकर साल-भर से दिल्ली मे है। आने के साथ ही, अपनी और आभा की एक साथ उतरवाई तस्वीर ब्याह के सूक्ष्म स्वतंत्र ब्यौरे से मासिको तथा साप्ताहिकों के संपादको के पास भेज दी। भारत तथा स्त्री-जाति के उद्धार कल्प से संपादकों की लिखी ओजस्विनी टिप्पणियो के साथ दोनो का सुंदर चित्र प्रकाशित हुआ। छोटे-छोटे पत्रवालों ने ब्लॉक मँगा-मँगाकर और ऊँची आवाज़ लगाई। आभा तस्वीरें देख-देख, तारीफ़ पढ़-पढ़कर मुस्किराती रही।

घर पर उस्तादो को बुलाकर नरेंद्र आभा को नृत्य-गीत की शिक्षा दिलवाने लगा—इसको भी एक साल हो चुका। अक्षर-विज्ञान का ख़ुद शिक्षक बना। साल भर मे आभा अच्छी तरह हिंदी और उर्दू समझ लेने लगी है। बुद्धि में इतनी बढ गई है, जैसे कई साल से तालीम पा रही हो। जैसा सुरीला, कोमल गला उसका था, स्टेज पर उतारने पर दर्शक ताँगेवालों और प्रशंसक पत्रवालो मे उसके उतर जाने की नरेंद्र को शंका न हुई।

आभा का बड़े-बड़े चित्रों, पोस्टरों, दैनिक-

साप्ताहिक-मासिक पत्रो में बड़ा विज्ञापन हुआ। 'प्लीडर' में विज्ञापन के दाम अग्रिम भेजकर नरेंद्र ने संपादकीय कालम मे तारीफ़ छापने का अनुरोध किया। लोगों की तो आज भी बँधी धारणा है कि आँखे मूँदने पर ज्यादा देख पड़ता है। फलतः संपादक के कलम ने कालम-के-कालम रँग डाले। आभा उतरी भी। और, दर्शकों का क्या कहना, सहृदय तारीफ़ के बोझ से औंधे हो गए। स्त्रियों की पत्रिका 'पतिव्रता' ने लिखा, हमारी देवियों को इससे बढ़कर दूसरा आदर्श नहीं मिल सकता कि पति और पत्नी सम्मिलित रूप से कला की सेवा मे लगे। साहित्यिक पत्रो ने लिखा, नरेंद्रजी प्रतिभाशाली तो पहले ही से थे, परंतु अब वह विशेष रूप से राष्ट्र-भाषा को समुन्नत कर रहे हैं। दिल्ली मे उनका अर्धनारीश्वर-नाटक बड़ी सफलता से खेला गया, जिसमें पति-पत्नी दोनो उतरे। यह पिछड़े हुए हिंदीवालों को बढ़ने की उचित शिक्षा इस धन्यवादार्ह दंपति ने दी। तीन साल मे आभा और नरेंद्र का भारत के कोने-कोने मे नाम और बंक-बंक मे रुपया हो गया। नरेंद्र ने एक आश्वासन की साँस ली।

अपना 'सुभद्रार्जुन' नया नाटक शहर-शहर चलकर दिखाने के अभिप्राय से नरेंद्र ने प्रोग्राम बनाना और विज्ञापन करना शुरू किया। कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी आदि शहरों से क्रमशः कलकत्ते तक का निश्चय हुआ। केवल काशी के लिये ज़रा संदेह रहा। स्टेज के मालिक ने किराए पर स्टेज न देकर कमीशन पर देने की बात लिखी थी।

कंपनी चली, साथ साथ पत्रों मे सुभद्रा की भूमिका मे आभादेवी की आभा-सी तारीफ़! प्रोग्राम बदल देना पड़ा। निश्चित दिनो से अधिक दिन लोगों को तृप्त करने मे लगते रहे। सरकारी अफ़सर चलने में सबसे पहले बाधक होते थे। पत्रों की विपुल प्रशंसा और नागरिकों की ऊर्ध्व-कंठ प्रतीक्षा को लिए कंपनी काशी आई।

'आरती' के प्रकाशक ने पुस्तकों की बदौलत आज के सिनेमा-साहित्य के उद्धार के विचार से अपनी एक रंगशाला बनवाई है, जिसका नाम भारतीय भावों से, काशी के एक कलाकार से सलाह लेकर, 'पवित्रा' रक्खा है। इस स्टेज में नाटक भी खेला जाता है। इन्हीं से नरेंद्र की शर्तें तय न हुई थीं।

कंपनी के काशी पहुँचने पर 'पवित्रा' के मालिक स्वयं नरेंद्र से मिले। पुरानी पहचान थी ही। बड़ा सम्मान-प्रदर्शन किया। नरेंद्र ने कहा—"आपसे भाड़े का स्टेज नहीं मिला, अतः लाचार होकर मुझे दूसरा प्रबंध करना पड़ेगा।" नम्र भाव से मुस्किराते हुए 'पवित्रा' के मालिक ने कहा—"पवित्रा आप ही की है। आप कुछ भी न दें।"

नरेंद्र ने कहा—"नहीं, ऐसी तो कोई बात है नहीं, आप अगर लेना चाहें।"

वैसा ही नम्र उत्तर आया—"पचास नहीं, तो चालीस सैकड़ा तो दीजिए।"

नरेंद्र ने भौंहें सिकोड़ लीं। कहा—"हमारे चालीस सैकड़े के मानी हैं, भाड़े के अलावा आपको सात-आठ सौ रुपए रोज़ मिलेंगे। अगर यही है, तो पंद्रह सैकड़ा ले लीजिए।"

"पंद्रह सैकड़ा!"

नरेंद्र अट्टहास हँसा। संयत होकर कहा—"बाबू धनीरामजी, मैं ६ महीने में एक किताब लिखता था, पर उसके लिये आपने मुझे १५ सैकड़ा भी नहीं दिया।"

(५)

एक दिन, बाहर की पृथ्वी में प्रकाश की तरह प्रसिद्ध हो चुकने पर, आभा ने नरेंद्र के पास एकांत में बैठकर हाथ में हाथ लेते हुए कहा—"नरेन, तुम बुरा तो न मानोगे, मैं देखती हूँ, दुख बहुत थे ज़रूर, पर मंदिर का वह दीप जलानेवाला जीवन मुझे अधिक सुखमय लग रहा है।"

शासन-सौंदर्य

[पुरोहित प्रतापनारायण]

हुताशन - मात्र लगाना है
　　जमाना घर मे पर आसन,
स्वर्ग मे ठीक, नही भू पर
　　पाकशासन का भी शासन ॥ १ ॥

चंचलानलधारी घन भी
　　अनल का क्षयकारक ही है;
मृगाधिप बन हरिणेंद्र सदा
　　मृगो का संहारक ही है ॥ २ ॥

नीम से कटुता मधु पीकर
　　तनिक भी कभी नही हटती;
दया के संस्कारो से, क्या
　　क्रूरता-जाति कही घटती? ॥ ३ ॥

नही जब स्वाधिकार पूरा,
　　आह ही है केवल भरती;
रहेगी तब ही वह सुख मे,
　　प्रजा जब निज शासन करती ॥ ४ ॥

कष्ट जो अपने हैं, उनको
　　हाथ अपने ही खो सकते,
पराए हाथ पराए हैं,
　　नहीं जो अपने हो सकते ॥ ५ ॥

मधुर जब अद्भुत रत्नाकर
　　प्रजा - शासन का लहराता,
शांति की सीपी मे तब ही
　　मोद का मोती बन जाता ॥ ६ ॥

प्रजा - शासन के घन से ही
　　दनादन पड़ते हैं ओले,
फूट की निशाचरी को जो
　　मारते बनकरके गोले ॥ ७ ॥

यमालय होकर अरियो का
　　आत्मबल का जो आलय है,
देश की ढाल बना रहता,
　　प्रजा का राज्य हिमालय है ॥ ८ ॥

सौख्यकर, तेजाकर होकर
　　ज्ञान-गुण का जो आकर है,
भीरुता - तिमिरासुर - हारक
　　प्रजा का राज्य दिवाकर है ॥ ९ ॥

ताप से जिसके जल जाती
　　लताएँ दुःख - दीनता की,
दासता - दूर्वा क्षय होती
　　कुमुदिनी महाहीनता की ॥ १० ॥

बँधा है जिससे भव - सागर,
　　बड़ा ही होकर व्याकुल है,
पार जो सबको कर देता,
　　प्रजा-शासन ही वह पुल है ॥ ११ ॥

प्रजा - शासन की गंगा को
　　देश को जो लाकर देता,
एक ही वह हो सकता है
　　भगीरथ जग - जेता नेता ॥ १२ ॥

बुद्धि-परीक्षा

[पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०]

साधारणतः उठते-बैठते, प्रत्येक कार्य मे, मनुष्य की बुद्धि की परीक्षा, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे, होती रहती है। जिस समाज मे वह रहता है, उसके अन्य लोग उसकी बुद्धि की परख करते रहते है। विशेषतः आरभ मे यह कार्य बड़ी रुचि के साथ होता है, और परख भी सर्वत्र प्रायः शुद्ध ही होती है। मै पचीस वर्ष से अनुभव कर रहा हूँ कि जुलाई मे, जब नई कक्षा बनती है, देश के भिन्न भिन्न भागों से विद्यार्थी लोग, परस्पर अपरिचित दशा मे, आकर एक ही छात्रावास मे रहते है, तब प्रायः एक सप्ताह तक अन्योन्यपरिचयार्थ दिन-रात चर्म-चक्षु और ज्ञान-चक्षु खुले रखते है। परिणाम यह होता है कि जैसे ताश के 'गुलाम-चोर'-खेल मे अततोगत्वा गुलाम का पत्ता किसी खिलाडी के हाथ मे पकडा जाता है, उसी प्रकार कक्षा का सबसे हास्यास्पद व्यक्ति सबकी दृष्टि मे आ जाता है। आगे चलकर साल-भर तक सपूर्ण कक्षा के हास्य का वही पात्र होता है, उसी को सब लोग मूर्ख बनाते रहते है। और, उसे चिढाकर कभी-कभी उसकी अश्लील बातों से अपना मनोरंजन करते रहते है। प्रत्येक वर्ष के ऐसे व्यक्ति का पूरा पता मै अवश्य लगाता हूँ और ऐसा निश्चयात्मक प्रमाण मिलता है कि वह व्यक्ति जहाँ-जहाँ रह चुका है, सर्वत्र ऐसा ही सम्मान प्राप्त कर चुका है। इससे अधिक अच्छा नमूना किसी की बुद्धि की सामूहिक परख का और कौन हो सकता है? इस उदाहरण मे बुद्धि के साथ विद्या, विचार, चरित्र, बोली आदि का भी समावेश समझा जा सकता है।

यह तो हुई सामूहिक परख; वैयक्तिक परख भी होती है। लड़की का पिता अपने मनोनीत जामाता की, गुरु अपने शिष्य की (तथा शिष्य गुरु की भी), मालिक अपने नौकर की (तथा नौकर मालिक की भी) और महाजन अपने असामी की वैयक्तिक परख करता है। परंतु ऐसी परख प्रायः गुप्त परीक्षा होती है; परीक्षित को यह विदित नही होने पाता कि उसकी परीक्षा हो रही है। साधारण वार्तालाप द्वारा, परिचयार्थ कुछ प्रश्नों के द्वारा, भाव-भंगी द्वारा बुद्धि आदि की मात्रा का अनुमान लगा लिया जाता है। उपनिषदों की कथाओं मे गुरु द्वारा की गई शिष्य-विषयक ऐसी परीक्षाओं का वर्णन है। एक सस्कृत-पाठशाला के प्रधानाध्यापक नवागत प्रवेशार्थी की परीक्षा एक जल-पूर्ण घट के द्वारा किया करते थे। एक बड़े घड़े में पानी भराकर रखा देते थे, और प्रवेशार्थी से कहते थे कि भोजन बनाकर, खा-पीकर निवृत्त हो जाओ, तब तुम्हारे लिये विचार करें। यदि वह उतने ही

जल से अपना संपूर्ण कार्य कर लेता था, तब तो उसे रखते थे, अन्यथा उसे ग्रहण नहीं करते थे।

इन सामूहिक तथा वैयक्तिक परीक्षाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की परीक्षाएँ, प्रायः वैयक्तिक रूपवाली, प्रचलित है। ये प्रायः प्रयासात्मक होती है, इनके उत्तर के लिये सोचना पड़ता है, और जब तक परीक्षा की प्रत्येक शर्त पूरी नही हो जाती, उत्तर अशुद्ध ही रहता है। इसके कुछ भेद दिखलाए जाते है—

पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०

(१) गोरखधंधा

प्रयाग की 'खिलौना'-नामक बच्चो की मासिक पत्रिका मे इनका समावेश रहता है। साधू लोगो के पास भी गोरखधंधे के अनेक यंत्र कभी-कभी मिलते है। जालवाली दौड़ भी इसी के अंतर्गत है। गोरखधंधों के सुलझाने मे बार-बार प्रयास करना पड़ता है। अशुद्ध उत्तर पाने पर तदनुकूल जितनी विचार-शृंखला बनाई थी, सबको रद्द करके दूसरी किसी रीति पर सोचना पड़ता है। ऐसा करने मे कभी-कभी मन उकता जाता है, क्रोध भी आ जाता है, कागज या वस्तु को फेक देने, तोड़ डालने को जी होने लगता है, अतः ऐसी क्रिया से धैर्य का भी कुछ अभ्यास होता है। गोरखधंधों के सुलझाने मे यद्यपि अधिकांश बुद्धि की आव-

श्यकता है, तथापि 'काकतालीय'न्यायेन इत्तिफाक़ (Chance) का भी हाथ इस क्रिया में होता है।

(२) प्रहेलिका (पहेली) और उसके अनेक भेद

शब्द-विषयक या डिठियारी, बहिर्लापिका, गुप्त उत्तर, पर्यायवाची, निषेध, उपमामूलक, विशेषगुण, मुकरी, दोसखुना आदि—इनके उत्तर निकालने में रोचकता होती है, मनोविनोद के साथ-साथ बुद्धि के प्रयोग का अच्छा अभ्यास होता है। गृह-गोष्ठी, मित्र-गोष्ठी आदि के अनुकूल यह अभ्यास है, ध्यान के केंद्रीकरण का एक अमूल्य साधन है, और बच्चों को कुमार्ग से रोकने का एक अच्छा उपाय है।

(३) शतरंज आदि खेल

इनमें भी अवधान की एकतानता का अभ्यास होता है; प्रतिपक्षी की आगामी चालों तक का अनुमान करके उसके निराकरण की रीति सोचनी पड़ती है। रोचकता भी विशेष मात्रा में होती है। परंतु इनमें दो बुराइयाँ होती है—एक तो बैठकर खेलने से और आँखों के निरंतर प्रयोग से स्वास्थ्य मे हानि पहुँचती है, दूसरे इनका व्यसन बहुत शीघ्र हो जाता है, और खिलाड़ी का मन दूसरे, अधिक उपयोगी, कार्य में नही लगने देता।

(४) वैज्ञानिक बुद्धि-माप

पाश्चात्य देशों में इसका बहुत चलन है। मनोविज्ञान के आचार्यों ने वर्षों के कठिन परिश्रम से कुछ ऐसी प्रश्नावलियाँ बनाई है, जिनके उत्तर देनेवालों की बुद्धि की माप सरलता से हो जाती है। अन्य देशो के स्कूलों में, यहाँ तक कि सेनाओं मे, भी इनका प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में अभी इनका अधिक चलन नही। गत वर्ष हमारी संस्था के प्रधान श्रीरायबहादुर पडित लज्जाशंकर झा महोदय ने इनका प्रयोग आरभ किया है, परतु व्ययात्मक होने के कारण विशेष उन्नति नही हो पाई। इस विषय मे मैने एक बार एक लेख 'सुधा' मे प्रकाशित कराया था, यहाँ इस विषय का वर्णन अप्रासंगिक होगा।

(५) समाचार-पत्रों की बुद्धि-माप

'लीडर' आदि पत्रो मे एक-न-एक चक्र इस प्रकार का निकलता ही रहता है। कोई व्यक्ति या संस्था या व्यावसायिक मडल अनेक खानोंवाला एक चक्र बनाकर उसके कतिपय खानों मे एक-एक अक्षर लिखकर आदेश करता है कि शेष खानों मे ऐसे अक्षर लिखो कि खड़े कालम मे पढ़ने से दिए हुए अर्थोंवाले शब्द निकलें, और आड़ी पक्तियो में पढ़ने से दिए हुए अर्थोंवाले दूसरे शब्द निकले। उत्तर के साथ कुछ शुल्क, प्रायः एक रुपया, भेजना पड़ता है, और जिनके उत्तर ठीक निकलते है, उन्हे सैकड़ों क्या, हज़ारों रुपया पारितोषिक मिलता है। उत्तरो का सोचना बड़ा रोचक होता है, जब तक ठीक-ठीक अक्षर मिल नहीं जाते, मन मे बेचैनी-सी रहती है। इस दृष्टि से तो यह अभ्यास श्लाघ्य है, परंतु उसके भीतरी गुप्त रहस्य से तबियत हट जाती है। रहस्य यह है कि आवश्यक शब्दों में से बहुतेरे ऐसे होते है, जिनके परस्पर मिलते-

जुलते दो या कई रूप हों; आप एक ही रूप दे सकते है, यदि दूसरा रूप देना चाहे, तो एक रुपया शुल्क और दीजिए। फिर एक ही शब्द की बात हो, तो आप वैसा भी करें, वहाँ तो कई शब्द ऐसे ही होगे, और सबके परस्पर मेलापक (Permutation and Combination) पर ध्यान दीजिए, तो इस खेल-तमाशे के लिये सौ-पचास रुपए शुल्क के रूप मे आपको देने होगे। परिणाम यह होगा कि आप अधिक-से-अधिक दो-चार रुपए व्यय करेंगे। तथापि पारितोषिक की आशा न कीजिए। यद्यपि आपका भेजा हुआ उत्तर पूर्णतः शुद्ध है, तथापि परीक्षक लोग केवल उस रूप को शुद्ध मानेंगे, जो पहले से लिखकर किसी सम्मानित सज्जन के पास रख दिया गया है। कौन-सा रूप वहाँ रक्खा गया है, इसकी आपको क्या खबर? अँगरेजी शब्द throw के अर्थ मे आपका भेजा हुआ fling शब्द चक्र मे पूरा बैठता है, और शुद्ध है, तथापि अधिकारियो के चक्र में sling दिया हुआ है, इसलिये आप पारितोषिक के अधिकारी नही। अभी आजकल 'लीडर' मे निकल रहा है कि निम्नांकित पाँच भारतीय नगरो के नाम पूरे कीजिए, और १०००) तथा ५००) के प्रथम तथा द्वितीय पारितोषिक लीजिए; प्रत्येक उत्तर के साथ मनीऑर्डर द्वारा आठ आना भेजना आवश्यक है—

D E × H I

P A × N A

B I × A × P U R

R A × P U R

R A N G × × ×

मेरी समझ में पहला नाम **DELHI है,** इसका दूसरा उत्तर नही हो सकता। दूसरा Patna, Pabna, Panna कुछ भी हो सकता है, तीसरा Bilaspur, Bisalpur आदि मे से कुछ हो सकता है; चौथा Rampur, Rajpur मे से कुछ हो सकता है; पाँचवाँ Rangoon, Rangpur मे से कुछ हो सकता है। अब विचार कीजिए, यद्यपि उपर्युक्त सभी उत्तर ठीक है, इनमे से कौन-से रूप मुहरबंद रक्खे है, जिनके अनुसार आपको पारितोषिक मिल सकता है। अतः पारितोषिक मिलना इत्तिफाक (Chance) की बात है, आपकी बुद्धि-परीक्षा नही। यदि किसी भाग्यवान् का उत्तर मुहरबंद उत्तर से अक्षरशः मिल जाय, तो यही समझा जा सकता है कि कोई फरिश्ता, पारितोषिक मे हिस्सा बँटा लेने के इकरार पर, चुपके से कान में ठीक उत्तर कह गया है। मैने भी समय-समय पर इस माया-प्रपंच में कुछ खोया है, तब इस रहस्य को पाया है। आगे आपकी इच्छा; चुपके से घर बैठिए, या दाँव लगाइए। अभी इस विषय मे और बहुत कुछ कहा जा सकता है, परंतु इस समय इसे ही पर्याप्त समझिए।

शृंगार-रस

[साहित्यरत्न श्रीपं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस']
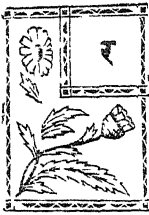
रस की उत्पत्ति कहीं दर्शन, कहीं श्रवण और कहीं स्मरण से होती है। रस नव है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। रस के प्रादुर्भाव होने के कारण आलंबन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और स्थायी भाव है। शृंगार-रस का आलंबन नायक और नायिका हैं। उद्दीपन विभाव--चंद्रमा, चाँदनी, पुष्प, उपवन, सखी, दूती, मनोरम शून्य स्थान, जिनके देखने से प्रिया प्रीतम, दोनो के हृदय मे परस्पर मिलने की उत्कंठा उत्पन्न हो। अनुभाव—जिन क्रियाओ से रसास्वाद का अनुभव हो, जैसे कंप, स्वेद, रोमांच और अश्रु। इसी के अंतर्गत हाव, कटाक्षादि १२ प्रकार के हैं। संचारी भाव नव रसों मे जल की तरंग की तरह उत्पन्न होकर विलीन हो जाते है। इन्हे कोई आचार्य व्यभिचारी भी कहते हैं। इनकी संख्या ३३ है—जैसे निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, स्मृति, अमरख, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, पीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क।

साहित्यरत्न श्रीप० शिवरत्नजी शुक्ल

स्थायी भाव—रसानुकूल जो भाव उत्पन्न हो, उसे स्थायी भाव कहते हैं। इसके स्थिर होने से रस-परिपाक होता है। ये नव प्रकार के हैं—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य, और निर्वेद।

शृंगार-रस सब रसों का राजा कहलाता है। इसीलिये इसका नाम रसराज है। अन्य आठ रस इसके अधीन हैं। विभिन्न आठ रसों के भिन्न भावों का वर्णन एक रसराज ही मे महाकवि सैयद गुलामनबी बिलग्रामी ने एक ही दोहे में, बड़ी ख़ूबी के साथ, किया है—

मोहन लखि यह सबन ते हैं उदास दिन राति;
उमहति, हँसति, बकति, डरति, बिगचति, बिलखि रिसाति।

उदास से शांत-रस, उमहति से वीर-रस, हँसति से हास्य-रस, बकति से अद्भुत, डरति से भयानक, बिगचति से बीभत्स, बिलखि से करुण और रिसाति से रौद्र रस का सूत्र-रूप मे वर्णन है।

यदि शृंगार-रस के साथ अन्य रसो का मिलान किया जाय, तो किसी भी अन्य रस मे ऐसी सामर्थ्य नहीं कि वह शृंगार-रस के सकल भाव-अनुभावों को अपने में स्थान दे सके। किंतु शृंगार-रस ऐसा समर्थ है कि वह अपने में सब रसो को नायक एवं नायिका-वर्णन में आश्रय दे सकता है। उदाहरण देना समुचित होगा।

मुग्धा प्रोषितपतिका नायिका (जो प्रीतम के विदेश-गमन से विरह-संतापित होती है) के वर्णन मे करुण रस प्रकट दिखाई देता है। जैसे—

बोलति न काहू सो, बिलोकति न काहू ओर,
　　बैठी दिन - रैन गुन गनति पिया के री ;
आवन की को कहै, न पातिहू पठाई आली,
　　ऐसे कछु कान्ह भए कठिन हिया के री।
देखी द्विज मैं हूँ बियोगिनी बिकल केती,
　　पै न ऐसो हाल हेरे काहू स्वकीया के री ;
सोचन सकोचन के मोचन करै न ऑसू,
　　रोचन-से ह्वै रहे बिलोचन तिया के री।

वासकसज्जा (प्रीतम के मिलने के लिये तैयारी करनेवाली) नायिका से हास्य रस प्रस्फुटन होता है—

बारनि धूप अगारनि धूपि कै
　　धूम अँध्यारी पसारी महा है,
आनन चद - समान उयो,
　　मृदु - मंद हँसी जनु जोह - छटा है।
फैलि रही 'मतिराम' जहाँ - तहँ
　　दीपति दीपनि की परभा है,
लाल, तिहारे मिलाप को बाल
　　सु आज करी दिन ही में निशा है।

इसी प्रकार स्वाधीनपतिका और आगतपतिका नायिकाओं में हास्य-रस का परिचय मिलता है—

रौद्र-रस का दिग्दर्शन अन्य सुरत-दुःखिता (अन्य स्त्री के तन पर निज प्रीतम के प्रीति-चिह्न देखनेवाली) नायिका में कराया जाता है। जैसे—

धोय गई केसर कपोल भल गोलन की,
　　पीक - लीक अधर अमोलन लगाई है ;
कहै 'पदमाकर' त्यों नैन हूँ निरजन मै
　　तज तन - कंप देह पुलकनि छाई है।
बाद मति ठानै, झूठबादिन भई री अब,
　　दूतपनो छोंड़ि धूतपनो मे सुहाई है ;
आई तोहि पीर ना पराई, महापापिन तू
　　पापी लौ गई न कहूँ वापी न्हाय आई है।

इसी प्रकार प्रौढा खंडिता, प्रौढ़ा धीराअधीरा मे भी रौद्र-रस पाया जाता है।

प्रौढा अभिसारिका (प्रीतम को बुलानेवाली अथवा निश्चित स्थान मे प्रीतम से मिलनेवाली) नायिका मे वीर-रस की छाप दिखाई पड़ती है। जैसे—

आज गरबीली सौति जन के सुहागन की
　　सोवा देह दीपति की दौरन दपेटि लै ;
आली, अभिसार के समाज बेगि साज ब्रज-
　　कुंजन की बेलिन के रगन लपेटि लै।
जोतिन सो आगि अँखियान अनुरागि इन
　　लागन सो लागि मन लागन लपेटि लै,
तारागन साथ लै सिपाहिन की फौज बीच
　　पैठि रथ भाज्यो जात चंदहि चपेटि लै।

नवोढा नायिका भयानक-रस प्रदर्शित करती है—

सखियान के बातन आइ गई,
　　दुलही समझी नहि खोटी खरी,
मुख सो सुखदायिनी सेज प्रसून पै
　　सोय रही ज्यो प्रसून - छरी।
प्रिय भानु प्रमोद-भरे उहि सपनि
　　सूम-सी पाय कै गोद भरी ;
जगि चौंकि परी, चित बीच डरी,
　　उछरी जनु बारि बिना मछरी।

अब बीभत्स रस को शठ नायक मे देखिए—

हौं तो निरदोषी, दोष काहे को लगावै मोहि ,
जैसी तोहि भावै, मोपै सपथ कराय ले ;
त्रिबली - त्रिबेनी नाभि- सर मे सँचाप देखु
सीझौ तौ निहाल मान कीन्होई घटाय ले।
कचुकी-कुटी मे दोय तपसी विराजमान,
ताको सीस छ्वाय चोर-साह निपटाय ले ,
कोप करि पावक कपोल गोल लाल-लाल
लाख लाख वार मोपै जीभन चटाय ले।

अद्‌भुत रस की अद्‌भुत बात अज्ञातयौवना सुनाती है—

जिनके सँग खेलती खेल रही, दिन
द्वैक ते वे नहि सग रखै ;
लखिकै उलटी-सी लटी हो कछू
रिस मानती-सी मन ना हरखै ।
कबि 'भानु' बताइए मेरी हितू,
तन यों नख ते सिख लौ परखै;
अँखियान बड़ी-बड़ी काढ़िकै क्यों
सखियाँ हमरी अँखियाँ निरखै ?

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका निर्वेद रूप मे अपनी दशा वर्णन करती है—

मकरंद सुखानो, प्रसून मलीन,
अली नहिं आयो, मिली न गले ;
घन के बरसे तव काज कहा,
जब सूखी कियारी कली न खिले।
अपने जो रहे सपने नहि भूलत,
आजु भुलाने गलीन चले ;
रस केलि-कला सों वाहा हमको,
अब योगिनि-रूप धरैगी भले।

अतः अन्य आठ रस श्रृंगार-रस के अधीन है ।

पर कुछ लोग आजकल श्रृंगार-रस का बायकाट करना चाहते है । वे कहते है, इसके वर्णन मे अश्लीलता आ जाती है, जिससे बचना ज़रूरी है, क्योंकि मा-बेटियों के सामने नायिकाओ का भेद वर्णन पढ़ा कैसे जा सकता है । दूसरे, श्रृगार-रस मे मन बहँक जाने का भय रहता है ।

किसी सभ्य-समाज के बीच विविध नायिकाओ की चर्चा करना अपने को स्त्रैण और कामुक बनाना है । यदि पत्र पत्रिकाओं में इसका जिक्र हो, तो मा, बहन एव बेटियों के हाथ मे वे दी कैसे जा सकती है । इस प्रकार से अनेक दोष श्रृंगार-रस के विरुद्ध कहे जाते हैं ।

अश्लीलता

अब हम पहले अश्लीलता को लेते हैं। अश्लीलता प्रत्येक समाज द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखी और समझी जाती है । जिसको एक समाज अश्लील कहता है, उसी को दूसरा शिष्टाचार का अंग मानता है । जैसे पब्लिक मे महिला-मुख-चुंबन अँगरेज़ों के यहाँ परस्पर प्रीति और आदर सूचक है। परंतु हिंदू-समाज मे सर्व साधारण के सम्मुख परस्त्री की कौन कहे, स्वयं अपनी स्त्री का चुंबन सभ्य मनुष्य नहीं कर सकता । इसका भेद यह है कि योरपीय समाज ने चुंबन को रति का उद्दीपन ही नहीं समझ रक्खा, प्रत्युत उसके रसरांश को निर्बल बना दिया है। क्योंकि देखा जाता है कि योरपीय युवावस्था-प्राप्त पुत्र अपनी माता का मुख-चुंबन करते हैं । उसी प्रकार युवक-गण अपनी युवा बहन तथा अन्य संबधिनी युवतियो का भी मुख चूमते है । ऐसे चुंबन में, प्रेमिका के अतिरिक्त, चूमनेवाले के हृदय मे किंचित् भी कामुकता का विकार नहीं आता, वरन् उस समाज में ऐसा चुंबन भिन्न संबंधानुकूल शुद्ध प्रेम-प्रीति का द्योतक गिना जाता है । इसलिये उस समाज में चुंबन मे अश्लीलता नहीं मानी जाती । यहाँ

तक कि अपनी पत्नी का चुंबन सर्व-साधारण मे केवल प्रीति विधि की रस्म को पूरा करता है। दूसरी ओर हिंदू समाज मे चुंबन इतना अश्लील गिना जाता है कि दंपति उसको अपने विहार-स्थल रूपी सपुट ही मे बद रखते है। न नायक की और न नायिका ही की हिम्मत पड़ती है कि वह अपनी परस्पर प्रीति का परिचय किसी के भी सम्मुख चुंबन द्वारा दे।

यदि कोई ऐसा करे, तो वह समाज-मर्यादातिक्रमण-दोष से दूषित किया जाय। औरतें चवाव करने लगें, और उसे लुचा, मेहरा कहती गालियो से गला दें। दूसरे दिन वह स्वतः ऐसी हरकत करने का साहस न करे।

हिंदू-समाज में स्त्रियों का नगे पैर चलना बुरा नहीं गिना जाता, प्रत्युत धार्मिक आचार का एक अंग माना जाता है। पर योरपीय समाज में नगे पैर रहना स्त्री के लिये अपमान-जनक है। उसी प्रकार वक्षःस्थल के उत्तरीयांश को खोल रखना, जिसमे उत्तुंग स्तनो का परिचय मिले, विलायती रमणियो के लिये सविधि सभ्यता का लक्षण है। किंतु हिंदू-समाज मे तो ऐसा कर्म निर्लज्ज गणिका भी नहीं कर सकती। योरपीय समाज मे पत्नी की बग़ल में हाथ डालकर माता-पिता एवं पब्लिक में घूमना लज्जा-जनक कार्य नहीं समझा जाता, प्रत्युत उससे प्रेमातिशयता प्रकट होती है। विलायती समाज में पर-पत्नी दूसरे पति के साथ नाचकर भी पतिव्रता की सीमा के अतर्गत मानी जाती है। पर हिंदू-समाज में लोग ऐसे कर्म को व्यभिचार से कम न गिनेंगे!

सारांश यह कि अश्लीलता का दृष्टिकोण कहीं कुछ है, और कहीं कुछ। अस्तु। किसी समाज की निर्धारित अश्लीलता दूसरे समाज द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती। अतएव निज समाज के व्यवहारो को योरपीय दृष्टिकोण से न देखना चाहिए, और न यही कहना समुचित है कि योरपीय कवियों ने नायिका-भेद-प्रभेद का वर्णन नहीं किया, और उसके मर्मस्पर्शी काम-कला को सभ्यता के नाते प्रकट करना उचित नहीं समझा, क्योंकि ऐसा कहना यथार्थता रहित है। जिस समाज मे विवाह होने के पूर्व ही पूर्वानुराग के संयोग की सारी काम-कलाओं की सामग्री को स्थान मिल जाता है, और कभी-कभी ऐसे संयोग विच्छेद भी हो जाते हैं, तब ऐसी दशा में क्या सुमन पर भ्रमर के बैठ जाने से उसकी मंजरी का मधु जूठा नहीं हो जाता? क्या मेघ-बूँदों के आघात से पृथ्वी की उष्णता शांत नहीं होती? क्या कदली पत्र वायु-वेग-वश परस्पर मिलकर एक दूसरे के अक्षुण्ण स्थलों को फाड़ नहीं देते? क्या आकाश और घन-घटाओं का साथ वारि-वर्षा नहीं करता? उसी के साथ क्या विना बाँध के नदी की धारा का प्रवाह रुक सकता है? क्या पिंजड़े में बद किए विना कोकिला आम्र-बागों में विहरने से रोकी जा सकती है? दूसरी ओर हिंदू-समाज में पूर्वानुराग होने ही नहीं पाता, कली के पास मधुप आ कैसे सकता है। ग्रीष्म में आकाश मे मेघागमन होता कहाँ है? जहाँ पवन-प्रवाह नहीं, वहाँ सकृतफला के कोमल पत्र हिलकर एक दूसरे से मिलते ही नहीं, मेघाकाश का संग पावस के पूर्व भारत में होता ही नहीं। कहने का तात्पर्य यह कि योरप में तो विवाह के पूर्व ही युवक और युवती का संयोग हो जाता है, और भारतवर्ष में विवाह के पूर्व कौन कहे, उसके पश्चात् भी संयोगावसर समय पाकर ही दंपति को मिलता है। तब योरप के दृष्टिकोण से भारतीयो को न देखना चाहिए।

दूसरा आक्षेप यह है कि मा-बहन-बेटियो के सामने नायिका वर्णन पढ़ना लज्जा-जनक है। उत्तर यह है कि वह स्त्री और पुरुष के लिये शिक्षा का कारण है। इसके विना दंपति एक दूसरे को पहचान नहीं सकते कि किसमें कौन गुणावगुण हैं, और उनके

उपचार का मार्ग कौन है। यदि दंपति ऐसी शिक्षा मे दीक्षित है, तो दोनो के बीच स्नेह स्थिर रहेगा; यदि उनको इसका ज्ञान नही, तो आपस मे लडते-भिडते रहेगे। यदि कहीं नायिका-शास्त्र की शिक्षा का प्रसार योरप में होता, तो वहाँ की स्त्रियो का बहुत बडा भाग स्वकीया बन जाता। और, उनमे नारी-भूषण लज्जा भी यथेष्ट होती। यदि ऐसा होता, तो इतने विवाह-विच्छेद (Divorce), जितने वहाँ आजकल हो रहे है, न होते। क्योकि रूप-गर्विता और गुण-गर्विता तो पति को अपने साथ छाया के समान रखती है। इसी के साथ कहने में संकोच नहीं है कि नायक-नायिका-शास्त्र की शिक्षा हमारे युवको और युवतियो को भी नहीं दी जाती, और जब उनके हृदयो मे, अवस्था-प्राप्त होने पर, काम-विकार जाग्रत् हो उठता है, तो उस समय उनमें से विशेष भाग, विना किसी भेद-विचार के, दक्षिण नायक और परकीया नायिका बनने की ओर झुकने का प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि दंपति का प्रेम अनन्याश्रय नही रहता।

(आगामी अंक मे समाप्य)

दुलारे-दोहावली पर कुछ सम्मतियाँ

प्रिंसिपल चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०—गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ के सुप्रसिद्ध स्वामी श्रीदुलारेलाल भार्गव की यह दोहात्मक रचना बिहारी-सतसई के ढंग पर ब्रजभाषा में सफलता-पूर्वक रची गई है। विषय आदि रस ही नहीं, किंतु भक्ति, ज्ञान आदि पुराने विषय तथा समाज और राजनीति आदि के नवीन-से-नवीन विचार भी है। पुरानी उपमाओं के अतिरिक्त हाकी, विना तार का तार, रहँट आदि के रूपक भी दिए गए हैं। श्लेष सुंदर है। निदान प्रतिभा और स्वतंत्र विचारों से भूषित यह पुस्तिका मुझे बहुत पसंद आई है। पढ़ने में आनंद आता है।

कविराज पं० गयाप्रसाद शास्त्री, राजवैद्य, साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति, भिषग्रत्न 'श्रीहरि'—इस दोहावली में कितने ही ऐसे दोहे हैं, जो अपना सानी नहीं रखते, और जिन्हें पढ़कर कोई भी सहृदय व्यक्ति मुग्ध हुए विना नहीं रह सकता। 'दोहावली' के प्रत्येक दोहे में कोमल-कांत पदावली के साथ-साथ अनूठे भाव, अनुप्रास तथा यमक आदि शब्दालंकारों की छटा देखते ही बनती है। ब्रजभाषा के विशिष्ट कवियों में आपका तथा आपकी रचनाओं का कौन-सा स्थान होगा, इस बात का निर्णय तो अगली पीढ़ी के सहृदय समालोचक ही कर सकेंगे, किंतु इसमें कोई भी संदेह नहीं कि जब तक संसार में ब्रजभाषा के प्रेमी रहेंगे, तब तक आपकी इस अमर कृति या काव्य-सुधा का पान करते हुए अपने को कृतकृत्य अवश्यमेव मानेंगे। आपकी सर्वगुणालंकृता, नीति-रीतिशालिनी, मनोमोहिनी कविता-कामिनी की प्रशस्ति में निम्नांकित पंक्तियों के लिखने का लोभ संवरण करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ—

ऊख में, पियूख में न पाई सुर-रूखहू में, दाख की न साख त्यों सिताहू सकुचाई है,
सीठी भई मीठी वर अधर-सुधा हू जहाँ, मंद परी कंद की अमंद मधुराई है;
पीते रहे हीते पा रीते अनरीते रहे, जानि न परै धौं यह कौन-सी मिठाई है,
'श्रीहरि' अनोखी, चोखी, उक्ति-जुक्ति भाव-भरी कोई कल कामिनी कि कवि-कविताई है।

संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत लक्ष्मण शास्त्री तैलंग—मैंने दुलारे-दोहावली आद्यंत देखी। निःसंशय यह हिंदी-साहित्य-रसिकों के लिये एक संग्राह्य पुस्तक हुई है।

दुलारे-दोहावली पर कुछ सम्मतियाँ

अँगरेज़ी और हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् प्रोफ़ेसर श्रीमुरलीमनोहर गुप्तारा एम्० ए० (प्रयाग), बी० ए०, ऑनर्स (आक्सन)– पुस्तक को पढ़ मुझे बरबस अपनी (आजकल के समय में व्रजभाषा कविता की उपादेयता के विषय में) सम्मति को दोहराना पड़ा। आपने वास्तव में जादू कर दिया है। मुझे स्वप्न मे भी यह पता न था कि आधुनिक काल में भी अच्छी व्रजभाषा कविता लिखनेवाले वर्तमान हैं। पर आपने तो ऐसी उच्च श्रेणी की दोहावली प्रस्तुत की है कि मेरी तुच्छ सम्मति में तो दुलारेलाल का नाम अब सदा को हिंदी-साहित्य के इतिहास में चमकता रहेगा।

ओज, प्रसाद, माधुर्य, चमत्कार, सभी कविता के गुण एक साथ ही आपकी रचना में दृष्टिगोचर हुए। नवीन और प्राचीन का ऐसा अपूर्व संयोग बहुत ही कम दिखाई पड़ता है।

पद्य नं० १४, २१, २३, ३५, ४१, ४४, ४५, ४६, ६५, ६८, ७७, ८६, ९३, ९६, ९९, १०३, १०४, १०५, १०६, ११३, ११४, १२१, १२३, १२४, १२६, १५२, १६५, १७८, १८२, १८३, १८९, १९३, १९४, १९७—ये ३४ दोहे तो मुझे विशेष मनोहारी प्रतीत हुए, और मेरी समझ में इस जोड़ के इतने दोहे कदाचित् ही प्राचीन कवियों में मिल सकें। प्रकृति, सौंदर्य, देश-प्रेम आदि सभी रंगों में रँगी आपकी साभरण, अनिंद्यरूपशालिनी कविता-कामिनी किसी भी प्रशंसा के परे है।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई आदि तो प्रशंसनीय हैं ही, पुस्तक के चित्रों ने तो मेरा मन बिलकुल मोह लिया। इस अमूल्य मणि के लिये ऐसी ही Setting की आवश्यकता थी। आपकी दोहावली हिंदी में अमर गौरव प्राप्त करेगी, इसमें मुझे तो किंचित् संदेह नहीं। वर्तमान में आपको पर्याप्त प्रशंसा और समादर प्राप्त हुए हैं सही; पर, मुझे विश्वास है, आगे चलकर जब समवर्ती ईर्ष्या के बादल समय की हवा द्वारा कीर्ति-गगन से खदेड़ दिए गए होंगे, तब आपकी प्रखर-प्रतिभा के सूर्य का प्रकाश चिरकाल तक देदीप्यमान रहेगा।

पं० घूटर झा शास्त्री, विद्यावाचस्पति, वेदांतसाहित्याचार्य, व्याकरण-न्याय-काव्य-तीर्थ, पुराणरत्न, संस्कृत-अध्यापक लखनऊ-विश्वविद्यालय– आपके दोहे वस्तुतः मनोहर बने हैं। अतः मेरी सम्मति निम्न-लिखित है—

(१)

ललितपदाऽञ्चनमञ्जुला दोहावलिरमलैव
कविमानसमवगाहते हंसीवाकलितैव।

(२)

नवनवभावविभासिता महिताऽलङ्करणेन
दोहाली हृदयं हरति वनितेवात्मगुणेन।

(३)

व्रजभाषाहासाकृतिः कृतिरियमस्तु सदैव
कोविदवदनविभूषणं विधुभूषणकृपयैव।

टिप्पणी—सम्मति के दोहे ऐसी सरल संस्कृत में लिखे गए हैं कि शुद्ध हिंदी-पाठकों के लिये भी इनकी टीका अनावश्यक है।
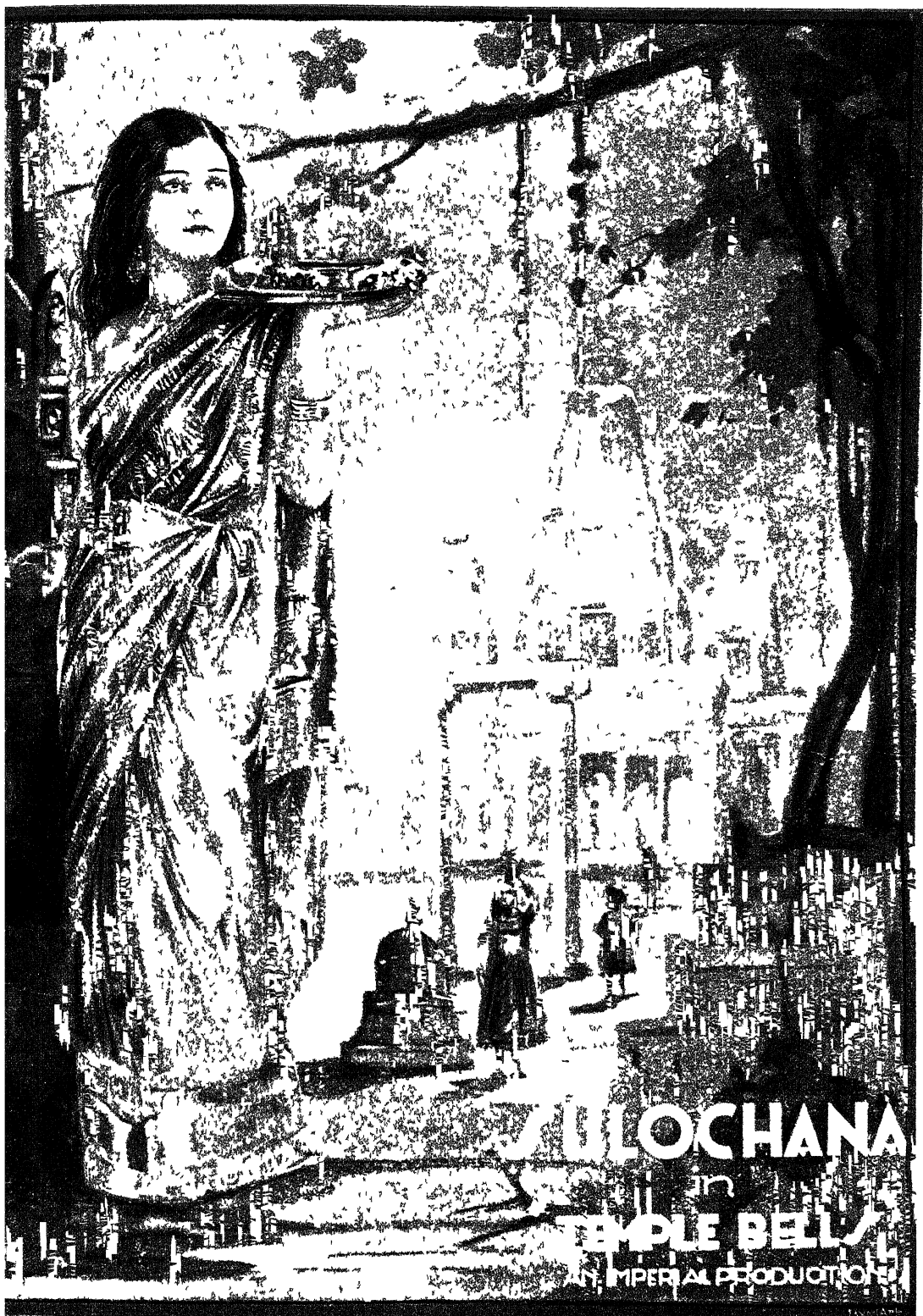
चित्र सुलोचना

ब्रह्मतत्त्व

[डॉक्टर दुर्गाशंकर नागर, सपादक कल्पवृक्ष]

हमको जगत् के पदार्थो मे स्थूल दृष्टि से दो बड़े विभाग दिखाई देते है—जड़ और चेतन। जिसको हम जड कहते है, उसमे कोई असाधारण बल काम करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह बल सर्वत्र व्यापक है। यह बल ही चैतन्य है। जड़ पदार्थो मे कोई बलवान् सत्ता ही कार्य कर रही है; इस सत्ता का उसमे अस्तित्व न हो, तो उसमे कोई सामर्थ्य प्रकट नही हो सकती।

वट-वृक्ष का बीज कितना छोटा होता है। उस छोटे-से बीज को जमीन मे बोने से महान् वट-वृक्ष उत्पन्न होता है, और फिर उसमे से असंख्य बीज प्रकट होते है। इस राई के दाने से भी छोटे बीज में कितना गुप्त बल है। प्रकृति के इस महान् चमत्कार को देखकर क्या किसी अदृष्ट, असाधारण सत्ता का उसमे अस्तित्व है, इसका विचार हमारे हृदय मे उत्पन्न नही होता?

खनिज, वनस्पति, मनुष्य, इन तीनो सृष्टियों में सूक्ष्म अवलोकन करने से जगत् मे एक सर्वव्यापक अद्भुत बल कार्य कर रहा है, इसका अनुभव होगा। प्रत्येक तत्त्व मे गहरे उतरने से यह भान होता है कि विलक्षण चेतन-सत्ता अखड जाग्रत् है। यही ब्रह्म है। 'सर्व खल्विद ब्रह्म'।

ब्रह्म ही इस चराचर विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, लय रूप आदि का कारण है। अंतर्दृष्टिवाले पुरुष इन स्थूल वस्तुओं के अतर् मे एक ही तत्त्व कार्य कर रहा है, इस बात को जानते है। जहाँ भिन्नता है, वहाँ विरोध है। सबमे एकत्व की भावना ही प्रधान है। 'सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। ब्रह्म सद्रूप है, ज्ञानरूप है, तथा अनंत है।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।"

जिस तत्त्व से यह सपूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, जिसमे इसकी स्थिति है, और विलय के समय जिसमे प्रवेश होगा, वही ब्रह्म है, उसको जान।

"तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः'।"

यह ब्रह्मतत्त्व सब विश्व के अंदर तथा बाहर व्याप रहा है। यह ब्रह्मतत्त्व वस्तुतः एक अद्वितीय पदार्थ है, और वस्तु-मात्र यही है।

ब्रह्मतत्त्व वस्तु, देश, काल, परिच्छेद से रहित है। तीनो काल एक रूप से विद्यमान है।

बाह्य दृश्य जगत् प्रकृति का ही आविष्कार है। प्रकृति अनिर्वाच्य है। प्रकृति के अधिक निकट सबंध मे आने का प्रयत्न करो। विशाल

अरण्य-प्रदेश में जाकर प्रकृति के गूढ़ सत्य को देखने का प्रयत्न करो। प्रकृति के भव्य स्वरूप के दर्शन करो। प्रकृति अपना सौंदर्य अपने सच्चे उपासक को दिखाती है। वृक्ष, वनस्पति, पर्वत-माला, पानी के झरने, वायु की शीतल, मद, कोमल लहरियों मे प्रकृति के प्राण की मनोहर गति दिखाई देती है। निर्मल झरनों मे मधुर गान सुनाई देता है। चंद्र की ज्योति मे विश्व-मोहिनी मुद्रा का दर्शन होता है। चमकते हुए तारो में रूप-राशि दरस रही है। पुष्पों की कलियों मे मोहक तारुण्य प्रभाव दरसता है। हरे-भरे वृक्षों से आच्छादित गिरि-शिखरों पर और आकाश में इंद्र-धनुष मे प्रकृति के सौंदर्य का दिव्य दर्शन होता है। प्रकृति का यह बाह्य स्वरूप कितना आकर्षक, अद्भुत एवं मनोहर है।

दीर्घकाल तक प्रकृति के सौदर्यमय प्रदेश के सहवास में रहनेवाले, निसर्ग के सूक्ष्म अभ्यासी, तत्त्वचिंतन करनेवाले, पहाड़, नदी तट और रमणीय गिरि-कदरो मे रहनेवाले एकांतसेवी, सर्वव्यापक तत्त्व से एकता का अनुभव करनेवाले निश्चय से कहते हैं—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।" यह सब ब्रह्मरूप है।

यह ब्रह्मतत्त्व ही हमारे संसार-प्रवाह का अत है, हमारी इच्छा का परम विषय है, हम सबका परम विश्राम स्थान है, हमारा सच्चा स्वरूप है, और परम प्राप्तव्य तथा ज्ञातव्य है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन-मिषत्।" (ऐतरेयोपनिषद्)

यह सब आत्मरूप ब्रह्मतत्त्व आरभ मे था, और दूसरा कोई न था। ब्रह्मतत्त्व के अतिरिक्त दूसरा पदार्थ नही।

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ;
ख़ं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य ..।"

इस ब्रह्म से ही प्राण, मन, सब इंद्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, स्थल, सबकी उत्पत्ति है।

"रसो वै सः।" (तै० २।७)

ब्रह्मतत्त्व रसरूप अर्थात् आनंदरूप है। जब हमको आनद की प्रतीति होती है, तब ब्रह्म-तत्त्व की प्रतीति होती है। यह ब्रह्मतत्त्व ही आनंदरूप है। जब वृत्ति इसमें स्थिर होती है, उस समय क्षण-भर ब्रह्मतत्त्व का आवरण दूर होने से हमे आनद की स्फूर्ति होती है।

जो ज्ञेय है, ज्ञाता है, उससे ब्रह्म भिन्न है, और जो अज्ञात है, उससे भी परे है।

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसः।"

जो ब्रह्मतत्त्व ज्ञेय नहीं, यह जानता है, वह ब्रह्मज्ञान से सपन्न है, ब्रह्म को जानता है। और, जो कहता है कि मैने ब्रह्मतत्त्व को जाना है, ज्ञान को विषयरूप किया है, वह यथार्थ मे ब्रह्म को नहीं जानता।

यह ब्रह्मतत्त्व स्वयं प्रकाश है, कूटस्थ है, सत् है, चित् है, आनदरूप है।

"Nature itself plainly intimates to us that there is such absolutely perfect Being, incomprehensible to our finite understandings, by certain passions which it hath

implanted in us, that otherwise would want an object to display themselves upon, namely, those of devout veneration, adoration and admiration together with a kind of ecstasy and pleasing horror."

Cudworth

प्रकृति स्पष्टता से सूचन करती है कि हमारी परिच्छिन्न बुद्धि द्वारा अगम्य ऐसा एक निरपेक्ष-पूर्ण पुरुष है। वह पूर्ण पुरुष न हो, तो हमारे अन्तःकरण मे सद्भाव कभी उत्पन्न नहीं हो सकते।

जो ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर, पहाड़-नदी, जल-थल, सर्वत्र सबमे एक तत्त्व का दर्शन करता है, और उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं, मै स्वयं ही हूँ, अहं ब्रह्मास्मि, अहमस्मि, इसका अनुभव कर लेता है, और वृत्ति मात्र का लय हो जाता है, तब उसे विश्वज्ञनि (Cosmic consciousness) के अपूर्व आनद की स्थिति का अनुभव होता है। इस अपूर्व स्थिति मे जगत् के जगतपन का नाश हो जाता है; और एक चिन्मय सत्ता सर्वत्र क्रीड़ा कर रही है, इस दिव्य अनुभव के प्राप्त होने पर ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है।

अध्यात्म का सूक्ष्म अभ्यासी वाल्ट ह्विटमेन कहता है--"I swear to you there are devine things more beautiful than words can tell,"

मै शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकर्ती, ऐसी अधिक सुंदर दैवी वस्तुएँ विद्यमान है।

प्रत्येक महापुरुष ने ध्यान-चितन द्वारा इस अपूर्व सत्य का अनुभव किया है।

एकत्व के यथार्थ अनुभव से सर्वात्मभाव अपने दिव्य अंतःकरण मे प्रकट होकर तदनुकूल आचरण होता है।

"सम्प्राप्यैनं ऋषयो ज्ञानतृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागा प्रशान्ताः,
ते सर्वगं प्राप्य धीरा
युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।"

इस आत्मतत्त्व को, ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करके ऋषि तृप्त होते है। जिन्होने आत्मा को अपने मे और सर्वत्र एक रूप अनुभव किया है, वे राग-रहित और प्रशांत-चित्त तथा सर्वव्यापक तत्त्व को सर्वत्र पाकर सर्वरूप होते है।

यह ब्रह्मतत्त्व अत्यंत सूक्ष्म आनदमय तत्त्व, भीतर-बाहर सब जगह भरा हुआ है।

"ॐ ब्रह्मवेदममृतं पुरस्तात् ब्रह्म;
पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण;
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं
ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।"

यह सब जगत् ब्रह्म है। ब्रह्म आगे-पीछे, दाहने-बाएँ, नीचे-ऊपर ब्रह्म ही भरा हुआ है। यह सारा श्रेष्ठ विश्व ब्रह्म ही है। सब कुछ ब्रह्म ही है। यह अखिल विश्व—ब्रह्मांड, जगत् चाहे किसी नाम से पुकारो—एक अद्वितीय तत्त्व से ही

उत्पन्न हुआ है, उसे ही शास्त्रो मे ब्रह्मतत्त्व कहा है।

श्रवणायाऽपि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः;
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा
आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।
(कठ० २, ७)

बहुतों को ब्रह्मतत्त्व के सुनने का भी अवसर नही प्राप्त होता; जिनको सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है, वे उस तत्त्व से अनभिज्ञ रहते है। ब्रह्मतत्व के उपदेश करनेवाले लाखो में से यथार्थ ज्ञाता कोई होता है, और उसके पास से श्रवण करके ब्रह्मतत्त्व की प्रतीति को प्राप्त करनेवाले विरले ही होते है।

ब्रह्मज्ञान रूप है—ब्रह्म आनदरूप है।

आनन्द ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।

ब्रह्म साक्षात्कार सबको सविकल्प समाधि की स्थिति में होता है, और निर्विकल्प समाधि मे ज्ञाता, ज्ञान तथा ध्याता और ध्यान दोनो ध्येय रूप हो जाते है। केवल ध्येय सर्वत्र रह जाता है। उस समय योगी तथा ज्ञानी शुद्ध, आनंद ब्रह्मरूप होकर कृतकृत्य हो जाता है।

ब्रह्म को आनदरूप अनुभव करनेवाला किसी से कभी भयभीत नही होता। एक चेतन-तत्त्व जो सारे विश्व मे भरा हुआ है, उसका नाम ब्रह्म है। ब्रह्म का चिंतन करने से मनुष्य सब भयों से मुक्त हो जाता है। बाहरी वृत्तियो को मोड़कर अंतर्मुख करने से विलक्षण आनद मे मग्न होता है, और ब्रह्मानंद का अनुभव होता है, तथा सर्वत्र आनद-ही-आनद का भास होता है। मै आनद-घन आत्मा हूँ, मै सत् चित् आनंद-रूप आत्मा हूँ, सदा-सर्वदा इस प्रकार ब्रह्म का चितन करते रहो, और सर्वत्र आनंद-ही-आनंद देखो। सब ओर आनंद-ही-आनद का प्रवाह फैलाओ। इस अखंड ब्रह्म-चिंतन से मनुष्य सब क्लेशों से मुक्त हो जाता है, और जन्म मरण के चक्र से छूटकर परम आनंद को प्राप्त होता है।

पदार्थ के तीन रूप

[श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त]

जाड़े का मौसम था। संतू के पिता बाहर बैठे हुए थे। उस दिन कुछ विशेष सर्दी थी। संतू अपने भाई-बहन के साथ खेल रहा था। वे तीनो अपने मास्टर साहब के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके साथ इस समय बाहर घूमने जाने की बात थी।

इतने मे मुहल्ले के कुछ लोग संतू के पिता के पास आकर बैठ गए। वे सब किसान थे। रात मे बहुत सर्दी थी, उसी की चर्चा वे लोग करने लगे। एक बूढ़ा किसान बोला—"सरकार, रात को कहीं पाला न पड़ा हो, नहीं तो सारी अरहर चौपट हो जायगी।"

संतू के पिता बोले—"पाला तो ज़रूर पड़ा है। आज हवा बहुत ठंडी है।" इतने में कुछ और किसान आए, और उन्होंने बताया कि रात मे खेतों मे सचमुच ही पाला पडा है, और अरहर को बड़ा नुकसान हुआ है।

मंटू किसानों की बात सुन रहा था। पाले का नाम तो उसने कई बार सुना था, किंतु उसकी समझ मे नहीं आया कि पाला होती क्या वस्तु है। इसलिये वह अपने भाई से पूछ बैठा—"क्यो भैया, पाला क्या चीज़ है? यह बर्फ़ होती है, या पानी?"

संतू को ये सब बातें मालूम थी। इसलिये वह तुरंत बोला—"पाला पानी का एक रूप है, और बर्फ़ भी पानी है।"

मंटू की समझ मे यह बात नही आई। वह बोला—"यह तो मुझे मालूम है कि बर्फ़ घुलकर पानी हो जाता है, क्योंकि परसाल जब हम लोग गर्मियो मे इलाहाबाद गए थे, तब वहाँ बर्फ़ का पानी रोज़ पीते थे। किंतु बर्फ़ पानी नहीं है, और पाला भी बर्फ़ कैसे हो सकता है। देखते नही, दोनो के नाम अलग है।"

संतू ज़रा शान मे आकर बोला—"अभी परसो ही तो मास्टर साहब ने मुझे पढ़ाया था। बर्फ़ और कुछ नहीं, बहुत ठंडा पानी है। पानी को खूब ठंडा-खूब ठंडा करो, तो वह जमकर बर्फ़ बन जाता है, किंतु रहेगा वह पानी ही। बात केवल इतनी है कि वह इतना ठंडा हो जाता है कि फिर बह नही पाता। और देखो, तुम्हे एक बात और बताऊँ। यदि तुम पानी को खूब गरम करो—खूब गरम, तो वह भाप बन जाता है। भाप भी पानी ही है, यद्यपि उसका रूप बदल जाता है। भाप, बर्फ़ और पानी, ये तीनो एक ही चीज़ें हैं। अंतर केवल इतना है कि भाप बहुत गरम पानी है, और बर्फ़ बहुत ठंडा पानी।"

मंटू कुछ देर तक सोचता रहा। फिर

बोला—"मगर यह तो बताओ, पाला क्या चीज़ है ? पानी से तुम पाला कैसे बनाओगे ?"

इस प्रश्न से संतू चक्कर में पड़ गया, क्योंकि इसका जवाब उसे मालूम नहीं था। उसी समय मास्टर साहब आते दिखाई दिए। उसने कहा—"चलो, यह बात मास्टर साहब से पूछें।"

मास्टर साहब घूमने के लिये तैयार होकर आए थे। संतू की बात उन्होंने सुन ली थी। उसे अपने नज़दीक आते देखकर उन्होंने पूछा—"क्या पूछना चाहते हो संतू ?"

"पानी से पाला कैसे बनता है ?"

"पानी के जमने से पाला बनता है।" मास्टर साहब ने जवाब दिया।

"तो क्या पाला और बर्फ़, ये दोनो एक ही चीज़ है ?"

"मैं समझ गया, तुम बर्फ़ और पाले का अंतर जानना चाहते हो ? अच्छा, चलो, हम लोग घूमने चलें। रास्ते में बात होती जायगी।" तीनो मास्टर साहब के साथ हो लिए, और वे अपनी बात कहते गए।

"अच्छा, देखो, पानी को साधारण तौर पर ठंडा करके जमाने से बर्फ़ बनती है। किंतु यदि तुम पानी के बहुत छोटे-छोटे कण लेकर उनको ठंडा करके जमाओ, तो पाला बन जायगा। इसे हिम या तुषार भी कहते हैं। पानी के ये छोटे-छोटे कण आकाश से गिरते हैं। और, यदि मौसम बहुत ठंडा हुआ, तो ये कण जम जाते हैं। इन कणों के इकट्ठा

"ये कण कितने बड़े होते हैं ?" संतू ने पूछा।

"बहुत छोटे होते हैं। इतने छोटे कि ख़ाली आँख से उन्हें तुम देख नहीं सकते।"

मटू ने कहा—"किंतु पाला तो हम देख सकते हैं। वरना यह मालूम कैसे हो जाता है कि रात में पाला पड़ा है ?"

मास्टर साहब—"ठीक है। किंतु पाले का प्रत्येक कण पानी की असंख्य जमी हुई बूँदों से बनता है।"

संतू कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला—"पानी के ये कण जब आँख से नहीं दिखाई देते, तब उनका पता हमें कैसे चला ?"

"उन्हें हम अनुवीक्षण-यंत्र की सहायता से देख सकते हैं। मैंने तुम्हें इस यंत्र के बारे में बताया है कि इससे चीज़ें बहुत बड़ी दिखाई देती हैं। तुम थोड़े और बड़े हो जाओ, तब पिताजी से कहकर तुम्हारे लिये इस तरह का एक यंत्र मँगवा देंगे।"

संतू ख़ुश होकर बोला—"ज़रूर मँगवा दीजिएगा। मैं तो चाहता हूँ, आप आज ही पिताजी से इसकी चर्चा करें।" और, इसके बाद फिर वही बर्फ़ और पानी की चर्चा छिड़ गई।

संतू ने कहा—"यह सचमुच ही आश्चर्य की बात है कि बर्फ़ और भाप, ये पानी के ही दो रूप हैं। एक तो इतना ठंडा और दूसरा इतना गर्म।"

इस प्रकार अपना रूप नहीं बदलता। यदि तुम लोहे के एक टुकड़े को खूब गरम करो, तो वह भी द्रव बन जायगा, अर्थात् वह भी पानी की तरह बहने लगेगा। और, यदि तुम उसे और ज्यादा गरम करो, तो भाप को तरह वह गैस बन जायगा।"

संतू—"यह तो ताज्जुब की बात है कि लोहा गलकर भाप की तरह गैस बन जाता है। क्या सीसा भी इसी तरह गैस बन जाता है?"

मास्टर साहब—"हाँ, यदि तुम उसे खूब गरम करो, तो वह पानी की तरह पतला हो जायगा। और, उसके बाद यदि उसे और अधिक गरम किया जाय, तो वह गैस बन जायगा।"

संतू बोला—"मै देखना चाहता हूँ कि खूब गरम किए जाने पर सीसा किस तरह पिघलता और गैस बनता है। मै थोडा सीसा मँगवाकर आज गरम करूँगा।"

मास्टर साहब—"सीसे को पिघलाकर गैस बनाना ज़रा मुश्किल है, क्योकि उतनी आँच का इंतज़ाम तुम नही कर सकोगे। फिर भी उसे तुम पिघला बहुत आसानी से सकते हो। लोहे का कोई भी एक छोटा बर्तन ले लो, और सीसे के टुकड़े रखकर उसे आग पर चढा दो। सीसा थोड़ी देर मे ही पिघलकर पानी हो जायगा।"

संतू खुश होकर बोला—"मै आज यह प्रयोग अवश्य करूँगा।"

जब वह घूमकर लौटा, तो सीधा भीतर पहुँचा, और मा से एक कड़ाही माँगी, और जल्दी से आग जला देने को कहा।

मा ने कहा—"आग और कड़ाही को तू क्या करेगा?"

संतू बोला—"मास्टर साहब ने बताया है कि आँच लगने से सीसा पिघल जाता है। मै वही देखना चाहता हूँ, किस तरह पिघलता है।"

मा ने कहा—"इसमे कौन-सी नई बात है? आँच लगने से सीसा पिघल तो जाता है। तू उसमे क्या देखेगा?"

सतू—"मै देखूँगा कि ठोस पदार्थ गरम होने से किस तरह पिघलकर तरल हो जाता है।"

"जो तेरे जी मे आवे, सो कर।" कहकर उसकी मा अपना काम देखने लगी, और संतू स्वयं कड़ाही की खोज करने लगा। उसके बाद उसने नौकर से थोड़ा सीसा लाने को कहा। संतू के पिता को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होने हँसकर कहा—"सीसा तो घर मे ही बहुत रक्खा है। और, अभी हम तुम्हे उसे पिघलाकर भी दिखाएँगे, क्योकि मुझे बंदूक की गोलियाँ बनानी है।"

मगर संतू ने नहा माना। वह अपने हाथ से ही सीसा पिघलाना चाहता था। इसलिये नौकर ने उसके लिये आग का इंतज़ाम कर दिया। कड़ाही आ गई, और उसे थोड़ा सीसा भी मिल गया। नौकर ने उसकी मदद करनी चाही, मगर उसने यह कहकर मना कर दिया कि "मै स्वयं देखना चाहता हूँ, सीसा किस

तरह पिघलता है।" संतू के पिता ने इसमे कोई बाधा नही डाली। बल्कि वह मन-ही-मन खुश हुए कि वह अभी से अपनी बुद्धि का इस तरह परिचय देता है।

संतू ने कड़ाही मे सीसा रखकर आग पर चढ़ा दिया। सीसा धीरे-धीरे गल चला, और अंत मे पारे की तरह पतला होकर कड़ाही मे लहराने लगा। सीसे के जलने से चारो तरफ़ एक अजीब तरह की गंध फैल गई। मंटू और शांता भी वहाँ आकर इकट्ठे हो गए।

मंटू ने कहा—"भैया, अभी यह गैस तो बना ही नही।"

संतू—"हाँ, तुमने कहा तो ठीक है। मगर शायद यह गैस नहीं बनेगा, क्योकि आँच बहुत काफ़ी नहीं है।"

मंटू—"मगर एक बात तो बताओ, सीसा तो गल गया, मगर कड़ाही ज्यो-की-त्यो बनी है, यह क्या बात है?"

संतू पहले तो चकरा गया, फिर कुछ सोच-कर बोला—"मुझे ऐसा मालूम होता है कि कुछ वस्तुओ को पिघलाने के लिये औरो की अपेक्षा ज़्यादा आँच की ज़रूरत होती है। बर्फ़ देखो न। बर्फ़ ठोस पदार्थ है; वैसा ही ठोस, जैसा लोहा या सीसा, वह बहता नहीं है। मगर बर्फ़ की कड़ाही कही से लाकर यदि आँच पर रक्खी जाय, तो वह तुरंत पिघल जायगी। इससे यह प्रकट हुआ कि कुछ ठोस पदार्थ औरों की अपेक्षा आसानी से पिघल जाते हैं।"

इसके पश्चात् संतू यद्यपि अपने भाई-बहन के साथ खेलता रहा, किंतु उसके दिमाग़ मे वही बात घूमती रही कि ठोस पदार्थ द्रव के रूप मे कैसे बदल जाते हैं। मंटू इस विषय मे कोई दिलचस्पी नही ले रहा था। फिर भी वह इस सबंध मे उससे बात करता रहा। उसने कहा—"मंटू, खूब गरम करने से हरएक चीज़ पिघल सकती है, क्यो न?"

मंटू चुप रहा, परंतु शांता ने इस बार बड़ी जल्दी जवाब दिया। कहने लगी—"यदि ऐसी बात है, तो आलू जब चूल्हे पर चढ़ाए जाते है, तो पिघल क्यो नहीं जाते?"

संतू को ताज्जुब हुआ। शांता का प्रश्न उसे बेतुका सा मालूम हुआ। फिर भी उसकी बुद्धि ने काम नहीं दिया। वह कुछ जोश मे आकर बोल उठा—

"हाँ, हाँ, यह तो सब जानते है कि आलू पिघलते नहीं है। पिघले आलू भी कहीं होते है!"

शांता बोली—"मै क्या जानूँ, तुम्ही कह रहे थे कि सब चीज़ पिघल सकती है। आलू नहीं पिघलते, घुइयाँ नहीं पिघलतीं, रोटी नहीं पिघलती—अरे, बहुत-सी चीज़े नहीं पिघलतीं।"

मंटू भी कुछ खुश होकर बोला—"और लकड़ी भी कहाँ पिघलती है। चूल्हे मे लगाने से लकड़ी जलने लगती है, पिघलती कब है?"

संतू की अक़्ल बिलकुल गुम हो गई। ये

सब बातें उसके दिमाग म आई ही न थी। वह केवल लोहा, सीसा, चाँदी, सोना तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों के विषय मे सोच रहा था।

उसने कुछ हिचकते हुए कहा—"ये चीजें पिघलती अवश्य होगी। किंतु मै ठीक नहीं कह सकता कि किस प्रकार पिघलती है।"

शांता बीच मे ही बोली—"होगा, हमें इन बातो से मतलब क्या। आओ मंटू भैया, खेलें। हाँ, अब की से तुम्हारा दाँव है।"

और, वे तीनो फिर खेलने लगे। किंतु संतू अपनी उधेड़-बुन मे लगा था। उसने निश्चय कर लिया कि मास्टर साहब के आने पर सब बातें पूछूँगा*।

---

* J W N Sullivan की 'How Things Behave'-नामक पुस्तक के आधार पर।—लेखक

कैंची का पैकेट्

[श्रीपं० गोविंदवल्लभ पंत]

"दो कैंची की सिगरेट् दे दो।" कहकर गाहक ने तीन पैसे पनवारी के हाथ मे रक्खे।

पनवारी ने एक सिगरेट् का पैकेट् उठाकर देखा, उसमे दो ही बाक़ी थे। इनामी टिकट निकालकर उसने पैकेट् ही गाहक को दे दिया।

गाहक ने डिबिया से एक सिगरेट् निकाली, और पनवारी से दियासलाई की डिबिया माँगकर ध्यान-पूर्वक सिगरेट् मे छपे हुए अक्षरों को परखने लगा।

पनवारी ने दियासलाई की डिबिया उठाकर बजाई, और गाहक को देते हुए कहने लगा—"क्या जाँच रहे हो?"

गाहक ने गंभीर होकर कहा—"देख रहा हूँ, क़ैंची की डिबिया मे तुमने फिर लालटैन-मार्का तो नही भर रक्खी है।"

पनवारी हँसते हुए बोला—"तुम्हे कैसे मालूम है?"

"सुना था।"

"हाँ, पिछले जाड़ो की बात है, मेरे ही यहाँ क्या, शहर की कम-से-कम सौ दूकानो के पाँच सौ से अधिक क़ैंची के पैकेटों मे लालटैन सिगरेटे भरी हुई मिलीं। आधे दर्जन गाहको ने लौटकर मेरी दूकान पर वे पैकेट् पटक दिए, और मुँह बना, यहाँ कभी न आने की प्रतिज्ञा कर चल दिए।"

गाहक ने सिगरेट् जला ली थी। कहानी को कुछ लंबी पाकर उसने दूकान के नीचे पड़ी हुई कुर्सी को खीच लिया, और उस पर बैठ गया।

दूकान पर पड़े हुए परदे के बाहर बढ़ते हुए ग्रीष्म का ताप था। पास ही बैठा हुआ एक बरफ़वाला बीच-बीच मे चिल्ला उठता था—"बरेफ़! बरेफ़! ठंडी बरेफ़!"

दूकानदार कहता जा रहा था—"बहुत दिन तक बात समझ मे नही आई। यहाँ की एजेंसी मे जाकर हम लोगो ने शिकायत की। एजेंट बोला—'भाई, मेरा क्या अपराध है? पैकेटो का बॉक्स जिस तरह सीसे के टाँको से जुड़ा हुआ मेरे पास आया, मैने आप लोगो के हाथ बेच दिया, मै नही जानता, यह शरारत कौन कहाँ पर कर रहा है।' एजेट से यह कोरा उत्तर पाकर पचास-साठ दूकानदारो ने सीधे कलकत्ते कंपनी को लिखा। कंपनीवाले बदनामी के डर से घबराए। उन्होने पहले वही ख़ूब जाँच-परताल की। जब कोई फल न निकला, तब यहाँ जाँच करने के लिये उन्होने कलकत्ते से अपना प्रतिनिधि भेजा। प्रतिनिधि आया, और ख़ूब लंबा बिल बनाकर कंपनी

को लौट गया। रहस्य उसी तरह अंधकार मे छिपा रहा।"

गाहक उत्सुक होकर पूछने लगा—"आखिर यह भेद खुला कैसे ?"

'ठहरो, बताता हूँ। जल्दी क्या है ?" कहकर पनवारी ने एक दूसरे मनुष्य को पान देकर बिदा किया।

गाहक ने सिगरेट् के मुँह पर जमी हुई राख को फूँक मारकर उडा दिया, और पनवारी की ओर देखता हुआ बोला —"हाँ, कैसे पता लगा ?"

"हाँ, बेईमान भूलकर दुबारा मेरी दूकान पर आ पड़ा, और इसी से बात खुल पड़ी।"

"था कौन ?"

"पूरे बाबू के वेश मे न-जाने कौन था ? ताँगे पर आया था। सडक पर ही ताँगा रुकवाकर वहीं से बोला—'छै पैकेट् क़ैंची की सिगरेट् लाओ जी! जल्दी करो, गाड़ी पकडनी है।' ठीक इसी तरह वह पहले भी मेरे पास आया था, और यही शब्द उसने कहे थे। मैं ताड़ गया, और बिल्कुल भोला बनकर छै पैकेट् निकाल उसके ताँगे के निकट जा पहुँचा। उसने छहो पैकेट् लेकर अपने ओवरकोट की दाहनी जेब मे रख लिए, और अंदर की जेब से बटुआ निकालकर कहने लगा—'दाम ?' 'एक रुपया दो आने।' 'अरे जाओ भी, पंद्रह आने मे एजेंसी मे मिलता है।' कहकर उसने बाईं जेब मे हाथ डाला, छहो पैकेट् निकालकर मेरे हाथ मे दिए, और फुर्ती से ताँगेवाले से बोला—'चलो, वहीं से ले लेंगे।' उसी वक़्त सारा रहस्य मेरी समझ मे आया। मैंने एक पैकेट् खोला, उसमे दसो लालटैन-मार्का सिगरेट् पाईं। मैंने ताँगे की ओर दौड़कर आवाज़ दी—'पकड़ो, पकड़ो, ठग है!' पर सब व्यर्थ हुआ। भीड़ से होकर रात के अंधकार मे वह अदृश्य हो गया।"

"तुमने ताँगे का नंबर भी नोट नहीं किया ?"

"नहीं।"

"और वे शेष पाँच पैकेट् ?"

"उनमे भी लालटैन सिगरेटे भरी थी।"

गाहक ज़ोर से हँस पड़ा। उसने समाप्तप्राय सिगरेट् जूते से कुचल डाली, और फिर हँसता हुआ चला गया।

तेरा रूप !

[श्रीयुत 'वीरात्मा']

शरच्चंद्रिका-स्नात झलकती तेरी कांति अनूप !
स्वर्गंगा की धारा से है निखरा तेरा रूप !!
मतवाली तानो - सा तीखा,
सम्मोहन जादू सा सीखा,
उमड रहा सरसिज-प्यालो मे आप्लावन मधु-कूप !
कुसुमो के आसव की लाली—
हँसतो होठो पर दे ताली,
बुला रहे क्यो आज मोद से मेरे घर की 'धूप' ?
'लू' - 'सौरभ' - शीतल आलिगन—
संभव है ? अयि स्वर्ग-विचुंबन !
छुपा रखो, सौंदर्य ! न मारो संकेतों के फूल !!

कल्पना *

[श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए०, बी० टी०]

(क) गर्मी के दिन है, लूएँ चल रही हैं, हम मकान के दरवाज़े बद करके बैठे है। इतने में संध्या हो गई, हम नहर के किनारे जाकर घटा भर ठंड मे बैठते है, और वहाँ की ठंडी हवा का आनंद उठाते है।

(ख) नहर के किनारे बैठे हुए हमें आज की लू की याद आ जाती है। कैसी गर्मी थी, हमारा शरीर पसीने से तर-ब-तर हो रहा था, हमने दरवाजे बद कर दिए थे, हम बाहर आने से घबराते थे, हमारे मन के सामने आज की गर्मी की, मकान की, बद दरवाज़ों की प्रतिमा उठ खड़ी होती है।

(ग) इतने में हममें से एक कह उठता है, गर्मी क्या थी, अगारे बरस रहे थे। लू क्या थी, आग की लपटे थीं। आज का दिन क्या था, नरक की एक झाँकी थी।

१. 'प्रत्यय', 'प्रतिमा' तथा 'कल्पना' मे भेद

उक्त अनुभवों से पहला अनुभव सविकल्प प्रत्यक्ष से उत्पन्न होता है। इसे 'प्रत्यय' (Percept) कहते है। दूसरा अनुभव स्मृति से उत्पन्न होता हे, इसे 'प्रतिमा' (Image) कहते है। तीसरा अनुभव कल्पना-शक्ति से उत्पन्न होता है, इसे 'कल्पना' (Imagination) कहते हैं। 'प्रत्यय' में विषय इंद्रिय के सम्मुख होता है। 'प्रतिमा' मे विषय सामने नहीं होता। 'प्रत्यय' में विषय स्पष्ट होता है, 'प्रतिमा' में उतना स्पष्ट नही होता, 'प्रत्यय' इंद्रिय पर आश्रित होता है, आँखें खोलकर और विषय की तरफ़ मुँह करके ही हम देख सकते हैं। 'प्रतिमा' मे आँखे बंद करके और विषय की तरफ पीठ फेरकर भी हम पूर्वानुभव का स्मरण कर सकते है। 'प्रत्यय' विषय के सम्मुख आते ही एकदम उत्पन्न होता है, 'प्रतिमा' धीरे धीरे उत्पन्न होती है। जिस प्रकार 'प्रत्यय' और 'प्रतिमा' में भेद है, इसी प्रकार 'प्रतिमा' और 'कल्पना' मे भी भेद है। 'प्रत्यय' से अगला कदम 'प्रतिमा' का है, और 'प्रतिमा' से अगला क़दम 'कल्पना' का है। 'प्रतिमा' का आधार 'प्रत्यय' है। पिछले 'प्रत्यय' जैसे हुए थे, वैसे ही याद आने लगते है। हम बाहर से आए, लू चल रही थी, हमने मकान में घुसते ही दरवाज़ा बंद कर दिया, इस अनुभव में आज का दिन, अपना मकान तथा अपनी क्रिया, सब 'प्रत्यय' उसी रूप मे याद आ जाते है। जिस देश तथा जिस काल में हमे अनुभव हुआ है, 'प्रतिमा' उस देश तथा काल से बँधी रहती है। 'कल्पना' का आधार 'प्रतिमा' है, परंतु 'कल्पना' 'प्रतिमा' की तरह देश, काल तथा अन्य पूर्व-सबधो से बँधी नहीं रहती, स्वतंत्र रहती है। जब हम कहते है, गरमी क्या है, आग बरस रही है, तब दिन से 'गरमी' को अलग करके उसकी जगह आग की कल्पना कर लेते है, और वर्षा से 'बरसने' के विचार को अलग करके 'आग' के साथ जोड देते हैं। 'प्रतिमा' में पूर्वानुभव को 'पुनरुत्पन्न' (Reproduce) करते है। 'कल्पना' मे हम

* लेखिका के 'शिक्षा-मनोविज्ञान'-नामक अप्रकाशित ग्रथ से। पुस्तक की पृष्ठ-सख्या ३५० तथा मूल्य तीन रुपया रहेगा। मिलने का पता यह होगा—चद्रावती लखनपाल एम्० ए०, बी० टी०, पो० गुरुकुल कागड़ी, (यू० पी०)

पूर्वानुभव के आधारों पर एक नई चीज़ 'उत्पन्न' (Produce) करते हैं। 'प्रतिमा' में 'प्रत्यय' सामने नहीं होता, पूर्वानुभव होता है, परंतु उसमें नवीनता नहीं होती। 'कल्पना' में भी 'प्रत्यय' सामने नहीं होता, इसमें भी पूर्वानुभव होता है। परंतु पूर्वानुभव वैसे का-वैसा नहीं होता, उसमें नवीनता होती है। 'प्रतिमा' का केवल भूत से संबंध होता है, 'कल्पना' का भूत, वर्तमान, भविष्यत्, तीनो से संबंध हो सकता है। 'प्रतिमा' का वर्णन स्मृति के प्रकरण में हो चुका है, हम यहाँ केवल 'कल्पना' के विषय में लिखेंगे।

२ 'कल्पना' का वर्गीकरण

'कल्पना'-शब्द का विस्तृत अर्थों में भी प्रयोग हो सकता है। स्मृति भी एक दृष्टि से 'कल्पना' ही है। 'स्मृति' तथा 'कल्पना' का निर्माण पूर्वानुभूत प्रत्ययों से ही होता है।

श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए०, बी० टी०

इस दृष्टि से 'स्मृति' तथा 'कल्पना', दोनो शुद्ध मानसिक क्रियाएँ हैं। स्मृति में पूर्वानुभव जैसे-का-तैसा होता है। 'कल्पना' में कुछ नवीनता कर दी जाती है। इस दृष्टि को सम्मुख रखते हुए 'कल्पना' का मैग्डूगल तथा ड्रेवर, दोनो ने वर्गीकरण किया है। मैग्डूगल ने 'कल्पना' के कई भेद किए हैं—

(क) पुनरुत्पादनात्मक कल्पना (स्मृति) Reproductive)

(ख) उत्पादनात्मक(productive) रचनात्मक कल्पना(Constructive) सर्जनात्मक कल्पना (creative)

'पुनरुत्पादनात्मक' उस कल्पना का नाम है, जिसमें पूर्वानुभव मानसिक प्रतिमाओं के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इसका दूसरा नाम स्मृति है। 'उत्पादनात्मक' कल्पना दो तरह की हो सकती है। हमें एक मकान बनाना है; उसका

मन मे नक्शा बना लिया जाता है। पहले से ही इसी प्रकार हमे एक कहानी लिखनी है, उसका भी प्लाट हम पहले से ही मन मे खीच लेते हे। इन दोनो मे से पहली कल्पना रचनात्मक है। हम भौतिक पदार्थों मे से एक नवीन पदार्थ—मकान—की रचना करते है। दूसरी सर्जनात्मक है। हम भौतिक तत्त्वो मे से कुछ नहीं बनाते, अपने दिमाग से ही नई-नई बाते उपजाते है।

ड्रेवर ने कल्पना पर दूसरी तरह से विचार किया है। पहले तो वह मोटा विभाग करता है, जिसमे 'स्मृति' तथा 'कल्पना' दोनो आ जाते है। स्मृति पर कल्पना के प्रकरण मे विचार करना अप्रासगिक है, इसलिये इसे वह अलग छोड देता है। शेष रह जाती है शुद्ध 'कल्पना'। इस 'कल्पना' के वह दो विभाग करता है—'आदानात्मक (Receptive) तथा 'सर्जनात्मक' (Creative)। आगे बढने से पहले 'आदानात्मक' तथा सर्जनात्मक का अभिप्राय स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

'आदानात्मक कल्पना' (Receptive Imagination) हमारे प्रतिदिन के व्यवहार मे काम आती है। अध्यापक बार-बार ऐसी बातो का वर्णन करता है, जो बालको ने कभी नहीं देखी। वह ताजमहल का वर्णन करना चाहता है, बालकों ने उसे कभी नही देखा, वह कैसे समझाए। पहले वह शहर की बडी-से-बडी इमारत का वर्णन करता है, फिर संगमरमर के पत्थर को दिखाकर उसका वर्णन करता है। इसके बाद वह कहता है, अगर हमारे शहर की यह बड़ी इमारत सारी-की-सारी संगमरमर की हो, तो कैसी दिखाई पड़े? और, अगर यह सगमरमर की इमारत बहुत बड़ी हो जाय, तब तो बस 'ताजमहल' ही हो जाय। इस प्रकार 'आदानात्मक कल्पना' मे अध्यापक अपनी बातो का आधार उन्ही चीज़ों को बनाता है, जो बालक ने देख रक्खी है, जिन्हे बालक जानता है, और धीरे-धीरे उन्हीं बातों से वह बालक के मन मे एक ऐसे विषय की कल्पना उत्पन्न कर देता है, जिसे उसने कभी नही देखा। 'आदानात्मक कल्पना' के सहारे हम नई-नई बातों, नई-नई चीज़ों को देखे बिना भी उनकी कल्पना करने लगते है। इस कल्पना में शिक्षक को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि वह ऐसी बातो की तरफ न चला जाय, जिन्हे बालक जानते ही नही। जब शिक्षक किसी बात को समझाता हुआ ऐसी बातें कहने लगता है, जो बालक की 'आदानात्मक कल्पना' को कुछ भी सहायता नहीं दे सकतीं, तब बालकों का ध्यान उचट जाता है। वे इधर-उधर देखने लगते है। हमारे जीवन मे बहुत-सा हिस्सा 'आदानात्मक कल्पना' का ही होता है। दूसरे लोग कहते हैं, और हम उनके कथन का आदान करते है। सारी दुनिया को किसने देख रक्खा है। दूसरों के कथनो के आधार पर ही तो हमारा बहुत-सा ज्ञान निर्भर है।

'आदानात्मक' के अतिरिक्त ड्रेवर ने कल्पना का जो दूसरा विभाग किया है, वह सर्जनात्मक है। 'सर्जनात्मक कल्पना' 'आदानात्मक' से ऊँचे दर्जे की है। इसमें हम दूसरे की कही बातो का आदान नहीं करते, परतु ख़ुद कुछ सर्जन करते है, उत्पन्न करते है। 'सर्जनात्मक कल्पना' के ड्रेवर ने मुख्य तौर से दो विभाग किए है—'कार्य-साधक कल्पना' (Pragmatic imagination) तथा 'सरस कल्पना' (Æsthetic imagination)। 'कार्य-साधक कल्पना' वह है, जिससे कोई उपयोगी कार्य सिद्ध होता हो। एक वैज्ञानिक किसी सिद्धांत की कल्पना करता है, एक इजीनियर किसी पुल को बनाने के लिये उसका नक्शा बनाता है—ये दोनो 'कार्य-साधक कल्पनाएँ है। 'सरस कल्पना' उसे कहते है, जो सौंदर्य-प्रधान हो। कवि कविता का पद्य रचता है, उपन्यासकार उपन्यास लिखता है, चित्रकार चित्र

खींचता है, एक और आदमी बैठा शेख़चिल्ली के हवाई किले बनाता है—ये सब सरस कल्पनाएँ हैं। 'कार्य साधक' तथा 'सरस कल्पना' में काफ़ी भेद है। 'कार्य-साधक कल्पना' का आधार भौतिक पदार्थ है। एक इंजीनियर पुल बनाने की कल्पना करता हुआ यह कल्पना नहीं कर सकता कि वह नदी में मिट्टी के खंभे खड़े करके उनके ऊपर पुल बना दे। उसे जगत् की यथार्थता को आधार बनाकर अपनी कल्पना का निर्माण करना होता है। 'सरस कल्पना' में मन को अधिक स्वतंत्रता मिल जाती है, उसे जगत् की यथार्थता का दास नहीं रहना पड़ता। कवि आसमान से अंगारे बरसा सकता है, कल्पना द्वारा चाँद को अपने पास बुला सकता है। नभोमंडल की थाह मापने के लिये अंतरिक्ष लोक में उड़ सकता है। 'कार्य-साधक कल्पना' में कार्य के पूरा होने पर आनंद आता है। 'सरस कल्पना' तो ज्यों-ज्यों चलती है, त्यों-त्यों आनंद आता जाता है।

'कार्य-साधक कल्पना' के फिर दो विभाग किए गए हैं—'विचारात्मक' (Theoritical) तथा 'क्रियात्मक' (Practical)। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धांत का निकलना बड़ी ऊँची 'विचारात्मक' 'कार्य-साधक कल्पना' है। इंजीनियर का पुल की कल्पना करना विचारात्मक नहीं, 'क्रियात्मक कार्य-साधक' कल्पना है। 'विचारात्मक कल्पना' में ऊँचे-ऊँचे सिद्धांत, ऊँचे-ऊँचे वाद आ जाते हैं। 'क्रियात्मक कल्पना' में पुल की कल्पना, नहर का नक्शा आदि क्रियात्मक बातों से संबंध रखनेवाली कल्पनाएँ आ जाती हैं। सरस कल्पना के भी दो विभाग किए गए हैं—'कला-संबंधी' (Artistic) तथा मन-तरंग-संबंधी (Phantastic)। 'कला-संबंधी' सरस कल्पना में हम व्यक्ति तथा समाज के लिये उपयोगी वस्तुओं का कल्पना द्वारा सर्जन करते हैं। कविता, नाटक, उपन्यास, चित्र, सब इसी कल्पना के अंतर्गत गिने जाते हैं। 'मन-तरंग-संबंधी' सरस कल्पना में हम व्यक्ति तथा समाज के लिये उपयोगी कल्पना का सर्जन नहीं करते। इसमें मन मौज मारता है, हवाई किले बनाता है, मन-मोदक पकाता है, और अपना जी बहलाता है, ये मन की अपनी तरंगें होती हैं।

कल्पना के संबंध में हमने ऊपर जो विवेचन किया है, उसे चित्र द्वारा प्रकट करना चाहें, तो यों कर सकते हैं—
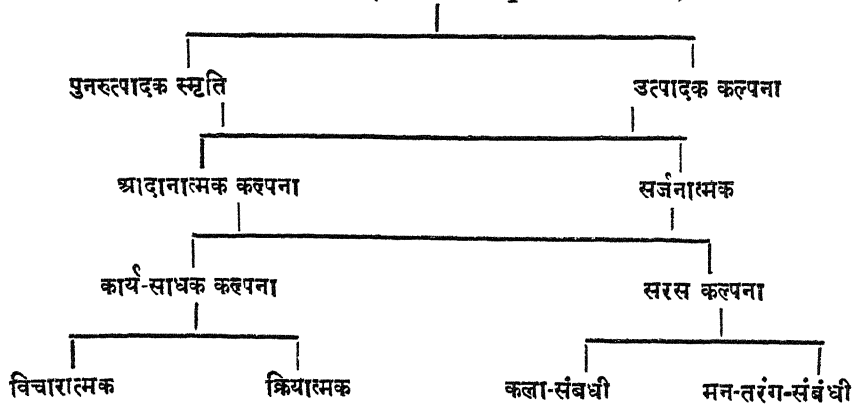
३. कल्पना तथा शिक्षा

'कार्य-साधक कल्पना' तथा सरल कल्पना मे से किसे अधिक उत्तेजन देना चाहिए, यह प्रश्न शिक्षक के लिये बडा आवश्यक है। आजकल का युग विज्ञान का युग है। जीवन-संग्राम भी दिनोदिन विकट होता चला जा रहा है। अगर बालक सांसारिक व्यवहार को समझनेवाला न हो, तो उसे जीवन में सफलता मिलनी कठिन हो जाती है। इस दृष्टि से शिक्षक को बालक मे 'कार्य-साधक कल्पना' उत्पन्न करने की तरफ़ अधिक ध्यान देना चाहिए। 'कार्य-साधक कल्पना' का विकास करते हुए उसके 'विचारात्मक' तथा 'क्रियात्मक' दोनो पहलुओ पर ध्यान देना चाहिए। बालक को जीवन में 'सामान्य ज्ञान' (generalisation) का उपार्जन करना है। उसे भिन्न-भिन्न वादों और सिद्धांतो को सीखना है। 'विचारात्मक कल्पना' के विना वह इस प्रकार का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है ? 'विचारात्मक' के साथ-साथ 'क्रियात्मक कल्पना' का भी उत्पन्न करना उतना ही ज़रूरी है। संसार क्रियात्मक लोगो के रहने का ही स्थान है।

प्रश्न हो सकता है कि 'कार्य-साधक कल्पना' को उत्पन्न करने का मनुष्य क पास क्या साधन है ? हम पहले ही देख चुके है कि 'कल्पना' का आधार 'प्रतिमा' (Image) तथा 'प्रतिमा' का आधार 'प्रत्यय' (Percept) है। प्रत्यय जितना ही स्पष्ट तथा विशद होगा, प्रतिमा उतनी ही विशद होगी, और जितनी प्रतिमा विशद होगी, उतनी ही 'कल्पना' को सहायता मिलेगी। कल्पना को सबल बनाने के लिये 'प्रतिमा' को सबल बनाना चाहिए, और प्रतिमा को सबल बनाने के लिये प्रत्यय को सबल बनाना चाहिए। 'प्रतिमा' तथा 'कल्पना' का असली आधार प्रत्यय है। इस दृष्टि से शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बालकों के प्रत्ययो के निर्माण मे जितना यत्न हो सके, उतना करे। मांटीसरी पद्धति मे बालक को नाना प्रकार के उपकरणो से घेर दिया जाता है, उसकी सब इंद्रियाँ 'प्रत्यय' ग्रहण करने में जुट जाती है। इतना ही नही, वह जितने 'प्रत्ययों' का संग्रह करता है, वे शुद्ध होते है, स्पष्ट होते हैं, निश्चित होते है। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी मानसिक प्रतिमाएँ भी शुद्ध, स्पष्ट तथा निश्चित होती हैं, और इन सबल प्रतिमाओं के आधार पर जो 'कल्पना' बनती है, वह भी सबल होती है। छोटे बालक यों ही इधर-उधर से अपना ज्ञान, अपने 'प्रत्यय' बटोरते है, और उनमे अस्पष्टता तथा अशुद्धि रहने के कारण उनकी 'कल्पना' भी अस्पष्ट तथा अशुद्ध बनी रहती है। छोटे बालकों के प्रत्ययो तथा प्रतिमाओ को मांटीसरी के उपकरणों से शुद्ध तथा घनी बनाया जा सकता है, बड़े बालकों के प्रत्ययों तथा प्रतिमाओ को विज्ञान, वस्तु-पाठ आदि के द्वारा परिष्कृत किया जा सकता है, और इस दृष्टि से इन विषयो का बड़ा महत्त्व है।

बालको का प्रारम्भिक ज्ञान स्थूल पदार्थों (Concrete objects) का होता है। इसलिये उनके प्रारंभिक 'प्रत्यय', 'प्रतिमा तथा कल्पना' स्थूल ही होते है। 'स्कूल' से अभिप्राय वे अपने स्कूल से समझेंगे, माता से मतलब अपनी माता से। शिक्षा द्वारा हम क्या करते है ? शिक्षा द्वारा हम बालक के 'प्रत्ययो' मे से 'स्थूलता' का अंश छुटाते जाते हैं, और उसकी जगह 'सूक्ष्मता' का अंश लाते जाते हैं। पहले वह 'स्कूल' सुनकर अपने ही स्कूल की कल्पना कर सकता था। ज्यों-ज्यो वह शिक्षित होता जाता है, त्यों-त्यो 'स्कूल' सुनकर उसके मन में स्कूल का सामान्यात्मक ज्ञान उत्पन्न होता जाता है। शिक्षक का कर्तव्य है कि बालक में ऐसी कल्पना-शक्ति उत्पन्न कर दे, जिससे वह 'स्थूल अथवा विशेष' (Concrete) के स्थान में 'सूक्ष्म' अथवा

सामान्य (Abstract) प्रतिमा को अपने मन में उत्पन्न कर सके। 'सामान्य प्रतिमा' हमारे मन में शब्दों द्वारा उत्पन्न होती है। हम 'पुस्तक' कहते हैं, और सब पुस्तकों के विषय मे सामान्यात्मक ज्ञान, 'सामान्य प्रतिमा' हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है ; हम मनुष्य कहते हैं, और मनुष्य-मात्र का ज्ञान हमारे मन मे आ जाता है । शिक्षक के लिये यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि शुरू-शुरू मे बालक के मन में 'सामान्य' कल्पना नहीं उत्पन्न होती, उसके मन मे विशेष कल्पना उत्पन्न होती है। बालक को उस विशेष से सामान्य (General) की तरफ़ ले जाना शिक्षक का काम है।

'कार्य-साधक कल्पना' के महत्त्व को दर्शाने से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि 'सरस कल्पना' का कोई महत्त्व नहीं है। 'सरस कल्पना' का जीवन में बड़ा स्थान है। 'जीवन में सरस कल्पना' का विकास न हो, तो भवभूति तथा कालिदास-जैसे कवि भी उत्पन्न न हों। 'सरस कल्पना' के हमने जो दो भेद किए थे, उनमे से कला-संबंधी कल्पना तो जीवन के लिये बड़ी उपयोगी है । हाँ, मन-तरंगवाली कल्पना का मनुष्य जीवन मे क्या स्थान है, इस विषय में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। मांटीसरी का कथन है कि बालकों में मन-तरंगवाली, मनमोदक बनानेवाली कल्पना बहुत अधिक मात्रा में होती है, इसलिये क़िस्से-कहानी सुनाकर इसे और अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। इसे नियंत्रित करने के लिये उसे कहानियाँ न पढ़ाकर व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक शिक्षा अधिक देनी चाहिए। ड्रेवर महोदय का कथन है कि मन की इस उड़ान से ही तो बड़े-बड़े कवि और चित्रकार बनते है, इसलिये इसे दबाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

४ बालक मे 'कल्पना' का विकास

बालक मे शक्ति बहुत होती है, परंतु वह संसार में नया ही आया होता है, इससे परिचित नहीं होता । वह अपनी शक्ति का क्या करे ? परिणाम यह होता है कि वह अपना एक काल्पनिक जगत् बना लेता है, और उसमे वैसे ही विचरता है, जैसे हम इस वास्तविक जगत् मे विचरते हैं। कल्पना के जादू से वह पत्थरों मे जान डाल देता है, और उनसे अपनी ही बोली मे बोला करता है। बच्चा जब गुड़िया से खेल रहा होता है, तो वह उसे खिलौना नहीं समझता, असली चीज़ समझता है। जब काठ के घोड़े पर चढ़ता है, तब वह अपने ख़याल से सचमुच के घोड़े पर चढ़ता है। हमारी दृष्टि से काल्पनिक जगत् बालक की दृष्टि से वास्तविक जगत् होता है। तभी तो वह एक ऐसी बात पर, जो हमारी दृष्टि से मामूली होती है, तूल खड़ा कर देता है। ६ वर्ष तक उसकी यही हालत रहती है। ६ से ८ वर्ष की आयु में वह कल्पना के हवाई क़िले बनानेवाले क्षेत्र से निकलने लगता है, और वह समझने लगता है कि राक्षसों तथा परियों की कहानियाँ सत्य घटनाओं पर आश्रित नहीं है। अब तक उससे जो कहा जाता था, मान लेता था, अब वह अपने अनुभव के आधार पर कुछ बातों को मानता है, कुछ को नहीं। ९-१० वर्ष की आयु तक वह पढ़ना सीख जाता है, अनेक वस्तुओं का उसे सामान्यात्मक ज्ञान होने लगता है। उस समय वीर योद्धाओं की कहानियाँ, बड़े-बड़े मार्मिक काम उसकी कल्पना को अधिक आकर्षित करने लगते है। उसकी इस कल्पना को इतिहास तथा भूगोल से बहुत सहायता मिल सकती है, इसलिये इन विषयों का, इस आयु में, पढ़ाया जाना अच्छा है। साहित्य भी कल्पना को अच्छा भोजन देता है। इसी का नतीजा है कि बालकों को पहले किस्से-कहानी पढ़ने का शौक होता है, फिर उपन्यास पढ़ने का शौक़ हो जाता है। उपन्यास यदि कला पर आश्रित है, तब तो बुरा नहीं, परंतु अगर बालक ऐसा साहित्य पढ़ने लग गया है, जो 'कला-संबंधी

कल्पना' पर आश्रित न होकर मन-तरग-संबंधी कल्पना पर आश्रित है, तो बालक के लिये ठीक नहीं होता। उसे ख़ाली बैठकर शेख़चिल्ली के हवाई क़िले बनाते रहने की आदत पड़ जाती है, और इस प्रकार वह अपना समय नष्ट किया करता है। शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे बालक को शेख़चिल्ली बनानेवाली इस प्रकार की पुस्तकों को हाथ न लगाने दें। बालक के लिये वे ही पुस्तकें उपयोगी हैं, जो उसकी दोनो प्रकार की 'काय साधक कल्पना' को उत्तेजित करें, और उनके साथ-साथ 'कला-संबंधी कल्पना' को भी विकसित करें।

५. 'कल्पना' पर परीक्षण

कल्पना पर अधिक परीक्षण नहीं किए गए। फिर भी दो-एक परीक्षणों का ज़िक्र कर देना अप्रासंगिक न होगा। किसी व्यक्ति को छ शब्द लिखाकर उससे कहा जाय कि इन शब्दों से उसके मन में जो-जो भी कल्पना उत्पन्न होती है, कहता जाय, तो पता चल जायगा कि उसकी कल्पना शक्ति किस प्रकार की है। इसी प्रकार कुछ आधे, अपूर्ण वाक्य देकर उन्हें पूरा करने को कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—"मैं उस समय..." इतना वाक्य देकर उससे पूरा करने को कहा जाय, तो प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न तौर से इसे पूरा करेगा। प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार इस वाक्य को पूरा करेगा, उसके आधार पर उसकी कल्पना-शक्ति का वर्गीकरण हो सकता है।

[श्रीयुत हर्षवर्धन नैथाणी एम्० ए०, बी० एस्-सी०]
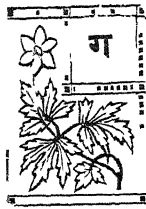
त वर्ष, जुलाई के महीने की बात है। एक दिन शाम को घूमने निकला। कुछ दूर चलने पर सोचा, आज किस तरफ़ जाना उचित होगा ? विचार आया, बरसात का मौसिम है, सरिता मे बाढ अवश्य आई होगी, वही दृश्य देखा जाय। मेरे पैर अपने आप उसी ओर बढ़ने लगे।

छात्रालय से नदी दूर नही पड़ती, करीब पंद्रह मिनट का रास्ता है। मौज से चलता हुआ भी मै शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया। गंगा का वह नज्ज़ारा सचमुच देखने योग्य था। लहर पर लहर उठ रही थी, फेन पर फेन बह रहा था। प्रचंड वेग था, भयानक प्रवाह था, भीषण अट्टहास था। और, पानी की अथाह जल-राशि एक महान् उथल-पुथल तथा घोर उत्थान-पतन के साथ आगे को धकेली जा रही थी।

मेरी आँखें उस अनंत सौदर्य (वह सौदर्य नहीं, तो और क्या था ?) को एकटक होकर देखने लगी। कलि-मल-नाशिनी का वह गँदला स्वरूप, कलकलनादिनी का वह भीषण अट्टहास तथा तरंगमालिनी का वह विकट तांडव मुझे मंत्र-मुग्ध-सा बनाने लगा। जड़ शक्ति का वह उद्दाम अभिनय अत्यत ही नयनाभिराम था। मै उसके वशीभूत हो चला। लगातार उसी को देखते रहने की इच्छा से पास ही वाले कदंब-वृक्ष का सहारा लेकर बैठ गया।

कुछ काल तक इसी मुद्रा मे लीन रहा। अचानक नयनो को भागीरथी के उस विशाल तथा हिल्लोलित वक्षःस्थल पर एक काली-सी वस्तु रेंगती हुई दिखाई दी। वह और कुछ नहीं, उस पार से इधर आनेवाली एक नाव थी। इस तरफ़ थोड़ा और बढने पर तो बिल्कुल ही स्पष्ट दिखाई देने लगी। अब तो मै उसका अत्यधिक हिलना-डुलना देखकर कभी-कभी भयभीत भी हो जाता था। परिस्थिति तो प्रतिकूल थी ही, शायद उस पर भार भी आवश्यकता से अधिक चढ़ा दिया गया था। डगमग-डगमग करती हुई उसकी अनिश्चित चाल पल-पल मे यही कहती कि अब डूबी, अब डूबी।

मैने देखा, मृत्यु सम्मुख आ जाने से भयभीत प्राणी के समान कंपित वह तरणी धीरे-धीरे मँझधार मे आ पहुँची। प्रतिकूल शक्ति के विरुद्ध सचेत होकर माँझियो ने और भी ज़ोर-ज़ोर से पतवार चलाने आरंभ कर दिए। उन लोगों की तो इस समय प्राणो की बाज़ी लग रही थी। एक लहर आई, और नाव को थोड़ा-सा कँपाकर पथ-विचलित कर गई। दूसरी आई, और कुछ क्षण तक उस प्राणिसमूह को उँगलियों पर नचाती हुई अपनी शक्ति का परिचय देकर चली गई। अब तीसरी बार एक भीमकाय तरंग उठी,

और यह कहती हुई नाव की ओर लपकी—"महाकाल की इस सर्वनाशिनी शक्ति के सम्मुख ऐसा दुःसाहस ? एक ही प्रहार से अंत कर दूँगी, एक ही ग्रास में निगल जाऊँगी।" पास आकर उसने नाव को अपने सिर तक ऊपर उछाला, और फिर नीचे फेक दिया। नैया डगमगा उठी। उस पर बैठे हुए मनुष्यो के मुख से चीत्कार निकली, और तरग-रव के साथ मिलकर शून्य में विलीन हो गई।

एक ही बार नही, कितनी ही बार ऐसा हुआ। सर्वनाश की बिभीषिका अपना विकराल रूप धरे, मुँह बाए बार-बार नाव को निगलने आई, परंतु वह बाल-बाल बच गई। 'जीवन' और 'मृत्यु' में घोर युद्ध हुआ। विजय सदा 'मृत्यु' की ही ओर भाग-भाग जाती थी, परंतु 'जीवन' का कोई कच्चा सूत उसे पुनः अपनी ओर खींच लाता था। विनाश ने भारी-भारी प्रहार किए, किंतु कोई अदृश्य हाथ 'जीवन' की रक्षा कर ही देता था।

अंत मे नाव कुशल-पूर्वक किनारे पर आ लगी। उस पर बैठे हुए लोग स्थल पर उतरने लगे। देखा, तो पता चला, उस पर कुल चौदह-पंद्रह मनुष्य थे। दो तो नाव खेनेवाले माँझी ही थे, सात-आठ गरीब लकड़हारे और सात-आठ घसियारिनें। उनके भारी-भारी गट्ठर भी उनके साथ ही थे। इनकी जीविका उस पार से घास अथवा लकड़ी काटकर इधर लाना है। मैने सोचा, इनके विपत्ति से बच जाने के कारण इतनी प्रसन्नता तो मुझे है, तब स्वयं इनका क्या हाल होगा। बेचारों को दूसरा जन्म मिला है, फूले नही समाते होंगे। भगवान् को अनेकों धन्यवाद दे रहे होंगे, और कहते होंगे कि अब कभी ऐसी दशा में नदी पार करने का साहस न करेंगे।

समय काफी हो चुका था। मै अपने स्थान से उठ बैठा। विचार उठा, चलो, होस्टल जाने से पहले इन गरीबो के हँसते हुए मुख तो देख लूँ। इसी उद्देश्य से उनके निकट जा पहुँचा। परंतु वहाँ तो कुछ और ही हाल था। अपनी धारणाओं को इस प्रकार मिट्टी में मिलते देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ज्यो ही माँझियो ने अपनी मजदूरी के कुल मिलाकर दो-तीन पैसे पाए कि तुरत पुनः उस पार पहुँचने के हेतु पतवार चलाने आरंभ कर दिए। इधर इन लोगो के मुख पर भी मैने प्रसन्नता के कोई चिह्न न देखे। सबने अपने-अपने बोझ उठाए, और कतार बाँधकर शहर को रवाना हो गए। मै भी उन्हीं के पीछे-पीछे चलने लगा। मार्ग में उन देहातियों की कुछ बातें भी सुनी।

उन सबको चिंता थी, तो इस बात की कि समय अधिक हो गया है, बाजार देर मे पहुँचेंगे, घास-लकड़ी बिके, शायद न बिके।

एक ने कहा—"भाई, अब कल से कुछ शीघ्र आया करेंगे।"

दूसरे ने उत्तर दिया—"आज क्या कुछ कम तड़के चले थे, पौ फटते ही तो गाँव से बाहर हो गए थे, और दुपहरी से पहले जंगल पहुँच गए थे। तड़के चलने की मत कहो। यह कहो कि इतनी देर तक काम न करेंगे। एक-दो पैसे

कम मिलेंगे, तो क्या हुआ। पेट-भर पाने के लोभ में पड़कर भूखे ही तो न रह जावेंगे।"

सबसे पीछे रुक-रुककर भी किसी प्रकार चल सकनेवाली बुढ़िया घसियारिन ने कहा—"भैया, यदि घास न बिकी, तो अपने छोटे-से पुतऊ (पोते) को क्या खिलाऊँगी। मा-बाप का दुख उसे जन्म से ही उठाना पड़ा। तीन महीने का भी न था कि मेरा बेटा और उसकी बहू प्लेग के कारण परलोक चल बसे। अगर वे जीवित होते, तो क्या मै जगल आती। खैर, अपना तो दुख नही, उस बच्चे का अवश्य है। पेट का भी दुख कैसे उठाएगा! जब तक हाथ-पैरों में शक्ति है, किसी से माँगते भी लाज आती है।"

बुढ़िया की ये बातें सुनकर एक बुड्ढे लकड़हारे ने कहा—"चिता न करो बहिनी, सबका राम मालिक है। मेरे पास घर में कुछ जुन्हरी का आटा बचा हुआ है। यदि शहर में आज कुछ न मिला, तो नन्हे को उसी की रोटी खिला देना। बाल-गोपाल किसी के खास थोड़े होते है, वे तो सबके है।"

कुछ काल तक वे सब चुप रहे, फिर एक युवक लकड़हारे ने उच्च स्वर से "मढ़ैया के रखवार हमार राम" गाना आरंभ कर दिया। शेष जन मस्त होकर, अपनी चिंताओं को भूलकर गीत सुनने लगे।

मेरे होस्टल का रास्ता अब पृथक् हो चला। मैने उनका संग छोड़ दिया। रास्ते-भर सोचता रहा कि मानव प्रकृति भी कैसी विचित्र वस्तु है, हममें और इनमें कितनी समानता और कितना अंतर है! हम आवश्यकताओं से अधिक की प्राप्ति के लिये कभी-कभी संकट मे पड़ जाते हैं, ये लोग केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के ही लिये सदैव संकट झेला करते है। हममे से कोई-कोई देश, ज्ञान, धर्म अथवा और किसी महान् लक्ष्य के हेतु प्राणो का मोह भूल जाते है। ये लोग जब तक जान पर न खेले, एक पैसा भी नही पा सकते। हमारे सामने मृत्यु तो एक ही बार आती है, परतु उसका भय सर्वदा खड़ा रहता है, इनके सामने मृत्यु हमेशा ही खड़ी रहती है, किंतु उसका भय कभी नही। हम लोग अपनी बेलगाम इच्छाओं के अभिमानी सवार बने घूमते है, ये लोग घोर परवशता के वीतराग तपस्वी दिखाई देते हैं। ये सब तो मामूली बातें थीं। कितु आह! एक विचार और भी उठा। वह था—हमारे सुखों के कारण ये है, और इनके दुखों के कारण हम! भावों की इतनी महान् आँधी उठी कि मै उसे देखकर घबरा उठा। अंत में करता क्या, उन्ही गरीबो की भाँति अपने पूर्व सस्कारों के अनुसार सारे दोष राम के मत्थे मढ़कर और उसी पर सबके उत्थान का भार लादकर अकर्मण्यता की मनोहर शांति को प्राप्त हो गया।

होस्टल पहुँचा, तो भोजन मेज़ पर रक्खा हुआ पाया। हाथ-मुँह धोने के उपरांत पेट-भर खाना खाया, और बिछौने पर जा लेटा। सोते समय मै बिलकुल शांत था। वे सब बातें बिलकुल भुला दी थीं, किंतु फिर भी एक बहुत ही भयानक स्वप्न देखा। ज्ञात नही, उसका कारण

आवश्यकता से अधिक भोजन कर जाना था, या किसी भावी घटना का मस्तिष्क पर पहले ही पड़ जानेवाला प्रभाव।

मैने देखा, मै शकुनी का रूप धर अपने इष्टदेव के साथ जुआ खेल रहा हूँ। वह मेरा कपट न समझ पाए, और हँसते-हँसते सब कुछ हार गए। मेरी विजय पर विजय होती गई। मैने उनके वस्त्र तक रखवा लिए। अंत में यह बाज़ी लगी कि अब की जो कोई हारे, वह सदैव विजेता का दास होकर रहे। उन्होने एक बार आश्चर्य की दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर कुछ लाचार होकर कहा—"अच्छा, फेको पॉसा।" शर्त के मंज़ूर होते ही मैने वे जाली पॉसे पुनः खड़खड़ाते हुए भूमि पर फेक दिए। इस बार भी विजय-श्री ने मुझे ही अपनाया। उन्होने दृढ़ एवं गंभीर भाव से कहा—"बहुत अच्छा, तो अब से मै तुम्हारा दास हुआ। कहो, इस समय क्या आज्ञा है?"

विजय के दभ में आकर मैने उत्तर दिया—"लो, अपनी यह तसवीर, जिसे मै हर समय वक्ष से लगाए रखता था। ले जाओ, और उस पर से यह चित्र मिटाकर अब मेरा चित्र बना दो। वह चित्र तुम्हे सदैव अपने गले में बॉधे रखना होगा।"

उन्होंने कुछ ही क्षणों में उस पर से अपना चित्र मिटाकर मेरी मूर्ति अंकित कर दी। पुनः अत्यत ही दीन भाव से पूछा—"और कोई आज्ञा है?"

मै वैभव के नशे में चूर था, हँसकर बोला—"अब तुम अपनी सारी विभूति को, जो अब मेरी हो चुकी है, मेरे चरणो पर बिखरा दो।"

उन्होने ऐसा ही कर दिया. और फिर पूछा—"अब क्या आज्ञा है?"

मैने कहा—"सुना है, तुमने देवतो को अमृत पिलाया था। जहॉ से हो, मेरे लिये भी वही लाओ।"

करुणा-कंपित स्वरो में उन्होने उत्तर दिया—"वह सब देवगण पान कर गए, अब शेष नही।"

मैने कहा—"ता जाओ, सब देव और दानवों को एकत्र कर पुनः किसी सागर का मथन करो।"

इस बार उन्होने 'सरकार' कह संबोधित करते हुए कहा—"दूसरा सागर तो तब मथा जाय, जब ब्रह्मा उसका पहले निर्माण कर दें।"

"उस बुड्ढे से कहो, वह ऐसा ही करे, और नही, तो धृष्टता का दंड दो। यदि फिर भी न माने, तो समस्त देवतो को एकत्र कर उन्हें कोल्हू में पेरो, और फिर आग में चढ़ाकर भभके से सारा अमृत खीच लो।"

"इसमें कुछ विलंब होगा, तब तक आपके मनोरंजन के लिये क्या रख जाऊँ?"

"एक सुंदर पुरानी वारुणी की बोतल, स्वर्ग की समस्त अप्सराएँ .. हॉ, और अपनी लक्ष्मी।"

"मेरा अंतिम शब्द सुनते ही वह थरथरा उठे। संभव है, कुछ क्रोधित भी हुए हों। किंतु फिर चुपचाप चले गए। इसके कुछ समय उपरांत रंभा, उर्वशी इत्यादि स्वर्ग की समस्त

अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। मैंने पूछा—"लक्ष्मी कहाँ है? उसे भी हाज़िर करो।" कहने में देर नहीं हुई कि वह भी मेरे दरबार में उपस्थित हो गई।

मैंने वारुणी की बोतल खाली करते हुए कहा—"लक्ष्मी! अच्छा, अब तुम अपना नृत्य दिखाओ।"

उसने उत्तर दिया—"पहले अमृत पी लो।"

मैंने गरजकर कहा—"तुमसे सलाह नहीं चाहता। बस, मेरी आज्ञा का पालन करो।"

लक्ष्मी ने नृत्य आरंभ कर दिया। मैं नशे में तो था ही, मस्त होकर बोला—"इधर आओ।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हारा अनंत आलिंगन करना चाहता हूँ।"

"पहले प्रण करो कि तुम मुझे कभी अपने से वियुक्त करने की इच्छा न करोगे।"

"मैंने अपनी जेब से एक श्वेत कपोत निकाला, और आकाश में उड़ा दिया, और उससे कहा, लो, विरक्ति की इच्छा को मैंने शून्य में विलीन कर दिया। अब तो तुम्हें कोई संदेह नहीं?"

लक्ष्मी मेरी ओर बढ़ी; मैंने उसका आलिंगन ही किया था कि ओफ्! तीव्र वेदना, घोर पीड़ा से मेरी आत्मा विकल हो उठी। मेरी इंद्रियाँ शक्तिहीन हो गईं। मेरा जीर्ण शरीर शुष्क पल्लव की भाँति थर-थर-थर करने लगा। मेरे चारो ओर प्रलय नाचने लगा। आकाश अंगारे बरसा रहा था। पृथ्वी पर भीषण दाह था। सागरों का जल सीसा बन-कर खौल रहा था। पर्वत प्रचंड रव करते हुए इधर-उधर उड़ रहे थे। और, फिर मैंने देखा, सबके क्रोध-पूर्ण प्रहारों का लक्ष्य मैं ही बना हुआ हूँ। मैं भयातुर होकर काँप उठा। एक बार लक्ष्मी की ओर देखा—वह एक भारी शैल उठाए क्रोध-पूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देख रही थी। मैंने उस ओर से अपनी आँखें हटा लीं। मैंने अपने इष्टदेव को पुकारा, तो ज्ञात हुआ कि वह स्वयं ही महालक्ष्मी के पैरों के नीचे दबे हुए कराह रहे हैं। मैंने उनके ये शब्द सुने—"वत्स! मैं तुम्हारा दास होते हुए भी तुम्हारी सहायता करने में असमर्थ हूँ। हाय! तुमने क्यों मुझे इस पुत्रघातिनी के पैरों-नीचे रक्खा?"

इष्टदेव का अब भी अपने ऊपर यह प्रेम देख-कर उस घोर वेदनामय परिस्थिति में भी कुछ शांति मिली। कुछ साहस भी हुआ। मैं उन्हीं का ध्यान कर मृत्यु के लिये तैयार हो गया। अंतिम समय सम्मुख आया देख मैंने अपने इष्टदेव से पुकारकर कहा—"मुझे क्षमा करना नाथ! मैंने तुम्हें कपट के पाँसों से जीता है, और अब मैं अपने उस जघन्य पाप का प्रायश्चित्त करने और घोर-से-घोर विपत्ति सहने को तैयार हूँ, क्या मुझे क्षमा करोगे देव!"

इन शब्दों का निकलना था कि ज्ञात नहीं, प्रलय का वह तूफ़ान कहाँ गायब हो गया। आराध्यदेव सम्मुख खड़े थे, और मैं उनसे वह पहलेवाली तसवीर वापस कर देने की प्रार्थना कर रहा था।

नींद खुली, तो मैस के नौकर रामू को

दरवाज़ा खटखटाते पाया। मैने पूछा, क्या है रामू, तो उसने रोते-रोते उत्तर दिया—"बाबूजी, मुझे आज की छुट्टी दे दीजिए।"

मैने पूछा—"क्या बात है?"

"सरकार, आज हमारे गाँव के कुछ लोग लकड़ी-घास लाने नदी-पार जा रहे थे कि मँझधार मे अचानक नाव डूब गई।"

"कोई बचा भी?"

"दो-तीन मनुष्य माँझी किनारे लगा पाए।"

मुझसे कुछ कहते न बना, यही कहा—"जाओ।"

कविश्रेष्ठ हितैषीजी

की

सम्मति

आपने दोहे लिखकर वह कमाल दिखलाया कि मै आश्चर्य-चकित रह गया। मै स्पष्ट कहने मे संकोच न करूँगा कि आपने बिहारी से लेकर अब तक के प्रायः सभी कवियो को पीछे छोड़ दिया। आचार्य द्विवेदीजी के सम्मान के हेतु हुए प्रयाग के द्विवेदी-मेला मे राजा साहब कालाकाँकर के और मेरे अनुरोध पर तुरंत रचना करके तो आपने मुझे मुग्ध ही कर लिया था। तब मैने ही नहीं, वरन् उपस्थित सहस्रों नर-नारियो ने मुक्त कंठ से आपकी अपूर्व कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की थी। आपकी यह दोहावली वर्तमान काल मे व्रजभाषा की अद्वितीय वस्तु है। हिंदी-संसार को इसे अपनाकर आपका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

चयन

१. इतिहासो की परंपरागत अशुद्धियाँ

जो लोग नवीन ग्रंथ निर्माण करते हैं, उनको अपने ग्रंथ की उत्तमता के लिये दूसरे ग्रंथ भी देखने पड़ते हैं। और, यदि आवश्यक हो, तो उनके आशय, विषय या अंश लेकर अपने ग्रंथ मे युक्त करने पड़ते है। यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। परंतु ऐसा करने मे कदाचित् दूसरा ग्रंथ अशुद्ध हो, तो अज्ञानावस्था मे वही अशुद्धि अपने ग्रंथ मे भी आ जाती है। इस प्रकार ग्रंथ-प्रति-ग्रंथ में होने से कई अशुद्धियाँ स्थायी बन जाती हैं, जिनका निकालना कालांतर मे कठिन हो जाता है। अतः इस प्रकार की योजना में सावधानी अच्छी है।

दूसरे ग्रंथो का आशय लेते समय अधिकांश ग्रंथकार यह अनुमान कर लेते है कि कुछ मनुष्यो के इतिहासों में अशुद्धियाँ नहीं होती, जैसे तिलक, सप्रे, ओझाजी और सरकार आदि। परतु भूल किससे नही होती। लोग तो "माखी, माछर, दुष्ट जन, जया, चींचड़ा, जूँ—भूल करी करतार ने इतने सरजे क्यूँ ?" कहकर बेचारे ब्रह्मा की रचना में भी भूल बतलाते हैं। फिर यदि विश्व-वंद्य पं० बाल गंगाधर तिलक, गौरीशकर-हीराचंद ओझा, माधवराव सप्रे, जादूनाथ सरकार और मुंशी देवीप्रसाद आदि के ग्रंथो मे कोई भूल बतला दे, तो कौन बड़ी बात है। भूल का होना और आवश्यक अंश लेना, दोनो अनिवार्य है। अतः इस विषय का कुछ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है। इससे पाठक जान सकेंगे कि परंपरागत अशुद्धियों मे असली बात किस रूप में बदल जाती है, और कालांतर मे उससे कैसे अनर्थ होते हैं—

(१) सर्वप्रथम दो-चार बातें जयपुर के इतिहास की दी जाती है। ये पाठकों को रुचिकर अथवा आवश्यक मालूम होगी, तो आगे दूसरे इतिहासों की भी दी जायँगी। आमेर के राजाओ मे 'भारमलजी' विख्यात हुए है। टाड साहब ने उन्हीं को बिहारीमल बतलाया है, और आगे जाकर अन्य लेखकों ने बिहारीमल और भारमल में अंतर डाल दिया है। सत्य तो यह है कि मुसलमान लेखकों ने उर्दू-अक्षरो मे भारमल लिखा था। उर्दू की यह तारीफ है कि उसमें कुछ-का-कुछ पढ़ा जाता है। इसलिये उर्दू के भारमल को किसी ने बिहारमल, किसी ने बहारामल, किसी ने बहरामल, किसी ने भारामल और किसी ने भाड़मल तक लिख दिया है। इस प्रकार के नामांतर से इतिहासो मे अनेक प्रकार के विकार पैदा हुए हैं, जिनका विवेचन यहाँ नहीं हो सकता।

(२) उपर्युक्त भारमल के १० पुत्र थे—१ भगवंतदास, २ भगवानदास, ३ जगन्नाथ, ४ परसुराम, ५ सारदूल, ६ सलरूदा(?), ७ सुंदरदास, ८ रामचंद्र, ९ पृथ्वीदीप और १० बिट्ठलदास। इनमें भगवतदास सबसे बड़े थे और शेष यथाक्रम छोटे। भगवंत और भगवान, दोनो सहोदर भाई थे। भगवतदास आमेर के मालिक हुए, और भगवानदास को बाँका कछवाहा की विख्याति, राजा की पदवी और लावा की जागीर मिली। इनके वंशज बाँकावत कहलाते है। उक्त दोनो भाइयो के साथ राजा-शब्द रहने से टाड ने भ्रम-वश भगवान को आमेर का राजा लिख दिया। साथ ही उनके परिवार को भी उसी हिसाब से काका, भतीजा या बेटा आदि बतला दिया। टाड का इतिहास अँगरेज़ी में था, अतः हाकिमों ने उसकी सत्यता पर विश्वास किया, और जयपुर-राजपरिवार के

चित्रों में भी भगवंत को भगवान लिख दिया। इस कारण किसी जगह भगवंत और किसी जगह भगवान हो गया। अंत में ओझाजी आदि के प्रयत्न करने पर प्राचीन काल की चिट्ठी, रुक्के और पुस्तिकाओं मे तथा रामनिवास के शिला-लेख मे भगवंतदास लिखा होने से इसे स्थिर मान लिया।

(३) आमेर नरेश महाराज मानसिंहजी के विषय मे किसी इतिहासकार ने, सामान्य रूप में, लिखा था—मानसिंह का चेहरा सुंदर नहीं था। क्यों नहीं था? इसलिये कि वह गोरे नहीं थे। उनके वीरता झलकते हुए चेहरे मे पक्का रंग प्रकाशित हो रहा था। यह बात कई एक इतिहासकारों ने विशेष प्रकार से प्रकट कर दी। उनके मत से महाराज मानसिंह काले रंग के, बुरे वर्ण के या बदशकल थे। ऐसी बातों को ध्यान मे रखकर एक आदमी ने उनका बहुत ही बेढंगा चित्र बनाया है, जो मआसिरुल्उमरा मे दिया गया है। विद्वान् लोग इस बात का विश्वास नहीं कर सकते कि मान के ऐसे बेडौल अंग-उपांग और ठूँठ-जैसे हाथ-पाँव थे। हस्त-लिखित प्राचीन चित्रों मे मान का बेडौल होना कहीं नहीं है। किसी समवयस्क ने इनको बदशकल लिख दिया होगा, और उसी आधार पर बेढंगा चित्र बना दिया होगा। जयपुर के बने हुए चित्रों में महाराज मानसिंहजी के जितने चित्र है, उनमे अंग-उपांगों की कोई ख़राबी नहीं है। केवल उनके वर्ण में श्यामता का अंश ज़्यादा है। इसी प्रकार हाथ पकड़ने की कथा को भी मान, मिर्ज़ा, सवाई और अन्य राजाओं की बतलाने में बहुत कुछ अस्त-व्यस्त बनाया है। अस्तु।

(४) इतिहासज्ञ इस बात को जानते है कि जयपुर की प्रजा के लिये संघी झूँथाराम का ज़माना बहुत बुरा था। उसने जयपुर के प्रधान मंत्री का पद पाकर अनेकों अनर्थ किए थे। राज्य के धन का अपहरण किया। सामंत-मंडल को स्थिर नहीं रहने दिया। महाराज जयसिंह तृतीय को अकाल ही में काल के हवाले कर दिया। और, इन्हीं अनीतियों के कारण कारागार में भी गया। किंतु दूर रहकर भी उसने अपनी दुर्नीति का अंत नहीं किया। उसके जाने के बाद भी जयपुर में अनेक तरह के उत्पात होते रहे। यह देखकर स्थायी शांति स्थापन करने के लिये राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल और उनके सहकारी मि० ब्लेक जयपुर आए। उस समय रावल बैरीसाल दुबारा प्रधान मंत्री बने थे। वह बड़े धीर, गंभीर, साहसी, बुद्धिमान्, न्याय-निपुण और दूरदर्शी मनुष्य थे। उनके सामने षड्यंत्र कारियों की माया लुप्तप्राय हो गई थी। किंतु उपर्युक्त साहबों के आने पर किसी कुजीव ने ए० जी० जी० पर तलवार का वार किया, जिसको ब्लेक ने रोक दिया। यह देखकर ए० जी० जी० अपने डेरे में चले गए। किंतु मि० ब्लेक रास्ते मे मारे गए। यह घटना संवत् १८९१ की है। उस समय रावल बैरीसाल ने कुचक्रियों के संपूर्ण मार्ग रोकने, उनको पकड़कर यथायोग्य दंड देने, प्रजा में शांति बनाए रखने और गवर्नमेंट को असंतुष्ट न होने देने आदि में अपनी अद्वितीय प्रवीणता एवं असाधारण पुरुषार्थ का परिचय दिया था। इस प्रकार राजा तथा प्रजा के हित मे अहोरात्र लगे रहकर संवत् १८९४ के ज्येष्ठ में आपकी मृत्यु हुई थी। इसी बात को दूसरे लोगों ने दूसरे रूप में लिखकर इतिहास के प्रामाणिक अंश को अशुद्ध और असंगत बना दिया है।

(५) संवत् १९१७ के समीपवर्ती समय में जयपुर के पोलिटिकल एजेंट कर्नल ब्रुक थे। अपने स्थिति-काल में उन्होंने 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़् जयपुर' अथवा 'जयपुर का राजनीतिक इतिहास' लिखा था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि

वह प्रमाणों के आधार पर लिखा गया था, और उसकी सत्यता में किसी को संदेह नहीं था। परंतु ब्रुक साहब ने ब्लेक साहब के मारे जाने की घटना का उल्लेख करते समय अपने इतिहास के पृष्ठ ३४-३५ में यह लिखकर लोगों को भ्रम में डाल दिया है—"इस समय (संवत् १८९१ मे) रावल बैरीसाल मर चुके थे। उनके बेटे शिवसिंह शासन-व्यवस्था में वैसे सुदृढ़ नहीं थे, और अँगरेज़ अफ़सर भी अभी उनसे असहेदे थे।" . ...इत्यादि। समझ में नहीं आता कि ब्रुक साहब ने संवत् १८९१ में रावल बैरीसालजी का मर जाना किस आधार पर लिखा है। उक्त रावलजी के मरण सजातीय कामों की हस्त-लिखित एक बही है, उसमें शुद्ध और सुंदर अक्षरो में स्पष्ट लिखा है—"सामोद-नरेश रावल बैरीसालजी का संवत् १८९४ के जेठ-सुदी ४ दीतवार को पहर दिन चढ़े परलोकवास हुआ। और, उनके चलावा मे......तीया मे...... नवाँ मे . . दशगात्रो मे... .एकादशाह मे . द्वादशाह-राज्याभिषेक और नुकता में......यह आय-व्यय हुआ, और अमुक कार्य अमुक प्रकार से किया गया।"

(६) ब्रुक साहब से २० वर्ष बाद जयपुर के तत्कालीन मंत्री ठाकुर फ़तेसिंहजी राठौर ने अँगरेज़ी में 'जयपुर का इतिहास' और लिखा था। वह संवत् १९५६ में प्रकाशित हुआ था। विद्वान् लोग जानते थे कि फ़तेसिंहजी जयपुर के मुसाहब रहे हैं, अतः आपका इतिहास अशुद्धियो से बरी रहा होगा। परंतु साद्यंत देखा, तो मालूम हुआ कि उनके इतिहास का पहला अंश वंशावलियो एव टाड के कथनो से, दूसरा अंश ब्रुक साहब की हिस्ट्री से और तीसरा अंश अपने शासन की बातों से पूर्ण किया गया है। यही कारण है कि ब्लेक साहब की उपर्युक्त घटना को ब्रुक साहब की हिस्ट्री से उठाकर अपने शब्दों में लिख दिया है। ठाकुर साहब ने पृष्ठ १३६ मे लिखा है—"ए० जी० जी० और ब्लेक साहब (सवत् १८९१ में) रावल शिवसिंहजी (भूतपूर्व रावल बैरीसालजी के पुत्र) को अधिकार देने आए थे। उसी अवसर मे किसी कुजीव ने उन पर तलवार चलाई ····।" इत्यादि। इसका यही अर्थ होता है कि रावल बैरीसाल मर गए, तब (सवत् १८९१ में) उनके पुत्र शिवसिंहजी को पदारूढ़ करने के लिये उक्त साहब आए थे। बडे खेद की बात है कि ठाकुर फ़तेसिंहजी के पास पट्टे-पर्वाने, रुक्क़े-लिखावटे और बही-खाते आदि सब कुछ होने पर भी उन्होने 'महाजनो येन गतः स पन्था।' के अनुसार ब्रुक साहब के लिखे मुताबिक़ ही आपने भी लिख दिया, और एक सुप्रसिद्ध घटना को ज्यों-का-त्यों रहने दिया। अस्तु। इस प्रकार की अशुद्धियाँ अन्य इतिहासों में भी हैं, जिनको प्रकट करना और उनकी यथार्थ सगति लगाना नितांत आवश्यक है।

(७) ओझाजी आदि विशेषज्ञ विद्वानों ने इतिहासों के संशोधन मे बहुत परिश्रम किया है। और, उन लोगो की कृपा से ही इतिहास के कई एक अंग-उपांग शुद्ध हैं। उसी प्रकार और लोग भी ध्यान दे, तो इतिहास-रसिको का बड़ा उपकार हो सकता है। इतिहासों की शोधन-सामग्री के विषय मे सीतामऊ के महाराजकुमार रघुवीरसिंह एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने मई की सरस्वती मे बहुत ठीक लिखा है कि प्राचीन काल के रुक़्क़े, पट्टे, पर्वाने और बही आदि सिक्के तथा शिला-लेखों के समान ही काम देनेवाले है। इस विषय में मेरी तो यह धारणा है कि शिला-लेखादि की अपेक्षा प्राचीन काल के काग़ज़, पत्र, पुस्तके, बही-भोज-लिखंत आदि सजीव मनुष्य के समान उपयोगी है, और उनसे इतिहास-शोधन में हर्ष-प्रद सफलता मिलती है।

हनुमान शर्मा (चौमूँ)

× × ×

२. प्रतीक्षा

उत्कंठा खेल रही है इन नयनो के आँगन मे;
प्रिय की विचित्र छवि-छाया चित्रित है मेरे मन मे।
जब मलयानिल की लहरें करती आहो से क्रीड़ा,
तब मुग्धा के यौवन-सी मुसका देती है व्रीड़ा।
निशि-वासर, प्रातः-संध्या करके प्रियतम का चिंतन—
सूखी आशा-लतिका को देती हूँ मैं नवजीवन।
यह अथक प्रतीक्षा सचमुच अब बन बैठी दीवानी,
पर कौन कहेगा उनसे मेरी यह कसक-कहानी?
कल्पना-कुसुम मुकुलित हो कब सौरभ सरसावेंगे;
कब इस उजड़े मधुवन मे मेरे साजन आवेंगे।

राजरानी चौहान

× × ×

३. सिनेमा लिटरेरी ब्यूरो (अखिल भारतीय)

सिनेमा आधुनिक जगत् के विचार-प्रचार तथा मनोरंजन की सर्वश्रेष्ठ सामग्री हो रहा है। इसका विकास द्रुत गति से होता जायगा। आज भारत-वर्ष में लगभग २०० अच्छे सिनेमा-भवन है, और प्रत्येक वर्ष नए-नए बनते चले जाते है।

सिनेमा मे प्रायः उपन्यास और नाटको का बोलता हुआ सजीव चित्रपट दिखलाया जाता हे। इसकी कहानियों और साहित्यिक कहानियो में अंतर रहता है। यदि सिनेमा की कहानियाँ प्रकाशित की जायँ, तो वे उपन्यास और नाटक दोनो के मधुर सम्मिश्रण का आनंद दे सकती है। अभी तक साहित्य मे इस ओर ध्यान नहीं दिया गया है। हाँ, सिनेमा-चित्र-पट पर अपनी कहानियो को देखने के इच्छुक लेखको की कमी नहीं है। परंतु इस कार्य में सफलता प्राप्त करना आसान काम नही है। इसके कई कारण है, जिन पर भविष्य मे प्रकाश डाला जायगा।

एक ओर लेखकगण प्रायः शिकायत किया करते है कि वे फ़िल्म-कंपनियो मे अपनी कहानियाँ भेजते हैं, परतु वहाँ से प्रायः कभी उत्तर नहीं मिलता। कई बार उनकी कहानियो के अंशो का उपयोग फ़िल्म-कंपनीवाले अपने नवीन चित्रपटों मे स्वच्छंदता से कर लेते हैं। पत्रोत्तर न देने का कारण हमेशा कार्य की अधिकता ही बतलाई जाती है। इत्यादि।

दूसरी ओर फ़िल्म-कंपनी के डाइरेक्टर लोग कहा करते हैं कि अनुभव-शून्य लेखक रद्दी-से-रद्दी कहानियाँ लिखकर भेज देते हैं, और रात-दिन चिट्ठी डालकर नाक मे दम किया करते हैं। उनके पत्रों का उत्तर देना व्यर्थ की बला अपने सिर लेना है।

कई अंशो तक दोनो ही पक्ष की शिकायते ठीक है। अतएव लेखको और डाइरेक्टरों, दोनो की सुविधा के लिये जबलपुर में अखिल भारतीय सिनेमा-लिटरेरी ब्यूरो की स्थापना लगभग छ माह पूर्व की गई है। जबलपुर भारतवर्ष के समस्त सिनेमा-केंद्रो से समान दूरी पर है, और समय-

समय पर इसके कार्य के लिये आने-जाने में सुबीता रहेगा।

लेखकों को चाहिए कि वे अपनी कहानियाँ सिनेमा-लिटरेरी ब्यूरो में भेज दें। इन कहानियों का पहले तो चित्रपट-कला के दृष्टिकोण से सशोधन होगा, लेखकों को उचित परामर्श दिया जायगा, ताकि वे कहानियों को सुंदर बना सकें। फिर ब्यूरो फ़िल्म-कंपनियों को कहानी दे देगा। प्राप्त रकम में से ख़र्च के लिये ५) रु० प्रतिशत काटकर बाक़ी रक़म लेखक के पास भेज दी जायगी। लेखक व्यर्थ की अनेकों व्यावसायिक आपत्तियों से बच जायँगे, और उनकी कृतियों के साथ कोई अत्याचार न हो सकेगा।

डाइरेक्टरों को भी लाभ है। उन्हें एक ही स्थान मे भारतवर्ष के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकों की सिनेमा-कहानियों का संग्रह प्राप्त हो जायगा, जो कला की दृष्टि से सिनेमा-ससार की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली होंगी। रद्दी कहानियों के पढ़ने के झंझट से भी वे बच जायँगे।

इस समय ब्यूरो के पास लगभग २५ कहानियाँ आ चुकी हैं। ये कहानियाँ भिन्न-भिन्न विषयों की हैं। आशा है, हिंदी-संसार के लेखकगण और फ़िल्म कंपनियों के डाइरेक्टर इस ब्यूरो से लाभ उठावेंगे। सब प्रकार का पत्र-व्यवहार—डाइरेक्टर सिनेमा लिटरेरी ब्यूरो, जबलपुर (सी० पी०) से कीजिए।

नाथूराम शुक्ल (साहित्यभूषण, एम्० ए०)

× × ×

४. मधुराई

बात बिचित्र करौ कितनौ
निज बैनन मे भरिके चतुराई,
लोगन के भरमाइबे को तुम
चाहे अनेक धरौ सुघराई;
अंतर-भाव छिपाइबे को तुम
चाहे अनेक करौ निठुराई,
पै न रहैगी बिना झलके
इन ऑखिन मे मन की मधुराई।

आनंदकुमार

परीक्षा

चित्रलेखा—लेखक, श्रीभगवतीचरण वर्मा, प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग, पृष्ठ-संख्या २६८।

चित्रलेखा सचमुच मानव जीवन की एक समस्या है, उस समस्या का पांडित्य-पूर्ण तथा कुशल अध्ययन है। पाप क्या है? इसी गहन समस्या का इस उपन्यास में विश्लेषण है। बीजगुप्त और कुमारगिरि चित्रलेखा के रूप-सौंदर्य पर अपना सारा राग-वैराग्य न्योछावर करके श्वेताक के प्रश्न "और पाप ?" का उत्तर देते है—"संसार मे पाप कुछ भी नही है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। ..मनुष्य अपना स्वामी नहीं है। वह परिस्थितियो का दास है—विवश है। वह कर्ता नहीं, वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा? मनुष्य मे ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। केवल व्यक्तियो के सुख के केंद्र भिन्न होते है। कुछ सुख को धन में देखते है, कुछ सुख को व्यभिचार मे देखते है, कुछ त्याग में देखते हैं, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है। कोई भी व्यक्ति ससार में अपने इच्छानुसार वह काम न करेगा, जिसमे दुख मिले। यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति और उसके दृष्टिकोण की विषमता है।. संसार मे इसीलिये पाप की परिभाषा न हो सकी है, और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं, न पुण्य, हम केवल वह करते है, जो हमे करना पड़ता है।"

इस उपन्यास का यही प्रमुख संगीत है, जो कदाचित् लेखक की आत्मा का स्वयं अपना सगीत है, जिससे लेखक के अनुभव और मानव-जीवन की कठिन समस्याओं के अध्ययन की एक झलक मिलती है। चित्रलेखा की भाषा बड़ी सरस है। शैली में अजब मादकता है। चरित्र-चित्रण तो ग़ज़ब का हुआ है। बीजगुप्त तथा चित्रलेखा दोनो ही के चरित्र-चित्रण में लेखक ने कमाल कर दिया है। चित्रलेखा कुछ भी हो, लेकिन अद्वितीय है, अनुपम है। चित्रलेखा में अनोखा सौंदर्य है, असीम आकर्षण है। इतनी सफल सृष्टि के लिये चित्रलेखा के रचयिता को हार्दिक बधाई! हमें पूर्ण विश्वास है, चित्रलेखा को हिंदी-प्रेमी बीजगुप्त की तरह अपनाएँगे, और आदर करेंगे।

मूल्य प्रकाशक ने छापना उचित नहीं समझा—कदाचित् यह सोचकर कि चित्रलेखा अमूल्य है।

× × ×

कपटी (उपन्यास)—श्रीपं० रूपनारायण पांडेय, प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग; पृष्ठ-सख्या २५८; मूल्य १॥)

'कपटी' श्रीपं० रूपनारायणजी की मौलिक रचना है अथवा किसी बँगला-उपन्यास का अनुवाद? 'कपटी' उपन्यास है अथवा सत्यनारायण की कथा? इन दोनो प्रश्नों का उत्तर लेखक अथवा प्रकाशक को देना चाहिए। न तो लेखक ही ने पुस्तक-परिचय देने का कष्ट उठाया, और न प्रकाशक ही ने ऐसा करना उचित समझा।

पं० रूपनारायणजी हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा सफल अनुवादक हैं। आपके अनुवाद में मूल लेखक की कला का असली स्वरूप देखने को मिल जाता है। कपटी कदाचित् किसी बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। उपन्यास बड़ा रोचक तथा मनोरंजक है। देवी ईव का चरित्र अच्छा चित्रित किया है। एक अँगरेज़-युवती एक भारतीय की पत्नी बनकर उसकी कितनी सेवा-उपासना करती है, वह भारतीय पत्नी के आदर्श से भी ऊँची उठ जाती है। देवी प्रतिमा का चरित्र-चित्रण उपन्यासकार ने अपनी दृष्टि से बहुत सफल तथा सुंदर किया है, लेकिन हमारे ख़याल से प्रतिमा की बेहद बेरुख़ी और असीम

निष्ठुरता उसे भारतीय पत्नी के आदर्श से नीचा गिरा देती है। भले ही विमलेंदु मिथ्या स्वाभिमान के मद में चूर होकर एक ग़लती कर बैठा हो, लेकिन प्रतिमा का पश्चात्ताप की अग्नि मे जलते हुए पति विमलेंदु के प्रति बराबर वही बेरुख़ी का व्यवहार रखना सर्वथा अनुचित था।

'कपटी' पढ़ते हुए जी नही उचटता। प्रेम-कहानी और फिर पांडेयजी की प्यारी तथा मुहावरेदार भाषा में—बस, पढ़ते ही बन पड़ती है।

× × ×

पद्यांजलि—संपादक, श्रीशांतिप्रसाद शुक्ल एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रकाशक, 'शंकर'-ग्रंथमाला-कार्यालय, गोंडा (अवध), पृष्ठ-संख्या १०१, मूल्य ॥)

पद्यांजलि पुस्तक-रूप में जीता-जागता कवि-सम्मेलन है। सन् १९३३ मे गोंडा में एक बृहत्कवि-सम्मेलन हुआ था। उस कवि-सम्मेलन मे प्रांत के अनेकों सुप्रसिद्ध कवियों ने अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ पढ़ी थीं। गोंडा के साहित्य-समाज ने उन रचनाओं को पुस्तक-रूप मे प्रकाशित करके १९३३ के उस कवि-सम्मेलन को अमर रूप दे दिया। पद्यांजलि मे संकलित कुछ कविताएँ बड़ी सुंदर, सरस तथा भावमय हैं—पठनीय हैं।

× × ×

शंकर-शतक—लेखक, श्रीनंदलाल माथुर, संपादक, साहित्यानुरागी श्रीशिवकुमार केडिया ; पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य ।=)

इस पुस्तक में भक्ति-रस मे शराबोर कविताओं का संग्रह है। कविताओं की भाषा, भाव तथा रंग-ढंग, सभी अपनापन लिए हुए है। मंदिरो के पुजारी, भगवान् के उपासक, देवताओं के भक्त शंकर-शतक पसंद करेंगे, यह उन्हीं की चीज़ है, उन्हें अपनाना चाहिए।

पृथ्वीपालसिंह (बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

शिक्षा और स्वराज्य—लेखक, रायबहादुर पंडित लज्जाशंकर झा एम्० ए०, आई० ई० एस्०, प्रिंसिपल ट्रेनिंग कॉलेज, हिंदू-विश्वविद्यालय, प्रकाशक, भारती-भंडार, काशी ; प्रथम संस्करण, मूल्य १॥)

इस पुस्तक के लेखक अध्यापन-कला के विशेषज्ञ हैं। शिक्षा-विभाग मे उच्च पद पर सुशोभित हैं। इस पुस्तक मे लेखक महोदय ने अपने अनेक वर्षों के क्रियात्मक अनुभव का विशद रूप से प्रतिपादन किया है। लेखन-शैली अत्यंत रोचक, विशद तथा प्रभावोत्पादक है। विषय का मनोवैज्ञानिक ढंग पर अत्यंत सरलता तथा रोचकता से वर्णन किया गया है। यह निस्संदेह रूप से कहा जा सकता है कि शिक्षण-कला पर हिंदी-साहित्य मे अपने ढंग की यह निराली ही पुस्तक है। शिक्षा से संबंधित प्रत्येक विषय पर उदार तथा विद्वत्ता-पूर्ण ढंग से विचार किया गया है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोषों पर निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करते हुए उसके उपादेय गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। समाज, साहित्य, धर्म, राजनीति, आचार, शासन-व्यवस्था आदि विषयों पर अत्यंत विचार-पूर्ण निर्देश दिए गए हैं। योग्य लेखक ने संकुचित स्वदेश-प्रेम के दोषों का निर्देश करते हुए वास्तविक स्वदेश-भक्ति का अत्यंत ही सुंदर चित्र चित्रित किया है। हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने की आवश्यकता पर बल देते हुए इस विषय मे आनेवाली कठिनाइयों का बड़ी योग्यता से समाधान किया है। नागरिक के रूप मे हमारे क्या कर्तव्य होने चाहिए, प्रजातंत्र-प्रणाली की क्या आवश्यकता है, शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या है, जातीय शिक्षा का महत्त्व, भारतीय तथा इँगलिस्तान की पाठशालाओं मे पढ़नेवाले विद्यार्थियों के गुण-दोष की विवेचना, भाषा-शिक्षण का लक्ष्य इत्यादि विषयों को अत्यंत सुंदरता से हृदयंगम कराया गया है। यदि इस पुस्तक मे वर्णित निर्देशों तथा विचारों को कार्य-रूप मे

परिणत किया जाय, तो वर्तमान शिक्षा-संबंधी अधिकांश दोष सुगमता से दूर किए जा सकते है। इतिहास और उसका महत्त्व, भूगोल सिखाने का अभिप्राय, बुद्धि मापने के वैज्ञानिक उपाय इत्यादि विषयो के विवेचन से पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ जाती है। इस पुस्तक का पढ़ना प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है। शिक्षा के क्षेत्र मे सुधार करनेवाले नेताओ के लिये भी यह मार्ग प्रदर्शक का काम कर सकती है। लेखक ने वर्तमान परिवर्तन-युग मे इस पुस्तक को लिखकर भारतीय शिक्षक वर्ग तथा हिंदी-साहित्य की अतुलनीय सेवा की है।

चंद्रावती लखनपाल (एम्० ए०)

× × ×

हिंदी शिक्षण-पत्रिका—प्रधान संपादक, श्रीयुत गिजुभाई और तारा बहन, उप-संपादक तथा प्रकाशक, श्रीयुत काशीनाथ त्रिवेदी; शिक्षण-पत्रिका-कार्यालय, ५२ कृष्णापुरा, इंदौर सिटी; वार्षिक मूल्य १)

उपर्युक्त पत्रिका का चौथा अंक हमारे सामने है। पत्रिका बालक-बालिकाओ के लिये उपयोगी विषयो से अलंकृत है। लेखों की शैली सर्वथा नई और मौलिक है। कुछ लेख आवश्यकता से अधिक क्लिष्ट और उद्देश्य से परे जान पड़ते है। आशा है, संपादक आगामी अंको में पत्रिका को इस दोष से मुक्त रख सकेंगे। पत्रिका का सादापन उसको सजीव और सुंदर बनाता है, किंतु फिर भी प्रच-लित परिपाटी के अनुसार थोड़ी तड़क-भड़क की कमी खटकती है। हाँ, एक बात और भी संपा-दकों के ध्यान देने की है। वह यह कि संपादकीय नोटों को पारस्परिक तू-तू, मैं-मैं से बचाकर किसी रचनात्मक प्रणाली का अनुसरण करें, तो अधिक अच्छा हो। प्रोपोगैंडा या आंदोलन से बचकर शिक्षा-संबंधी योजनाओ का प्रचार करना ही पत्रिका का वास्तविक उद्देश्य होना चाहिए। आशा है, आगामी अंकों मे यह कमी दूर हो जायगी। हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते है।

'अरुण' (बी० ए०)

× × ×

गया—संपादक, श्रीयुत पं० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रकाशक, पं० विद्या-भास्करजी शुक्ल दारागंज, प्रयाग, मूल्य =)

'गया'-नामक पुस्तक धर्म-ग्रंथावली की १८वीं संख्या है। गया तीर्थ भारतवर्ष के सब तीर्थों मे पवित्र माना जाता है। यहाँ पर लोग अपने पूर्वजो का पिंड दान देने आते हैं। पुराणों मे ऐसा उल्लेख है, जब तक गया मे पिंड-दान नही होता, तब तक पितर प्रेत-योनि से मुक्त नही होते। पितृ-ऋण से छूटने का मुख्य उपाय गया में पिंड-दान करना है।

इस छोटी-सी पुस्तक मे गया-संबंधी प्रायः सब बाते आ जाती है। किस-किस महीने की कौन-कौन तारीख को गया मे पिंड-दान करना चाहिए, गया जाने के मार्ग, वहाँ ठहरने के स्थान, वहाँ के मुख्य-मुख्य स्थान और वहाँ के धार्मिक कृत्य। साथ ही श्राद्ध करने की भी विधि बतलाई है। विष्णु-पद और विष्णु-पद मंदिर के दो चित्र भी दिए हैं। प्रत्येक गया जानेवाले यात्री को यह पुस्तक अपने पास रखनी चाहिए।

× × ×

रामेश्वर—संपादक, पं० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रकाशक, पं० विद्याभास्कर शुक्ल दारागंज, प्रयाग, मूल्य ।)

रामेश्वर भारतवर्ष के चार तीर्थों मे मुख्य है। इसकी रचना स्वयं भगवान् श्रीरामचंद्रजी ने अपने हाथों से की थी। जब रामचंद्रजी सीताजी के वियोग में उनकी खोज करने के लिये इधर-उधर घूम रहे थे, वृद्ध जटायु से जब सीताजी का पता मिला, सुग्रीव और हनुमान् के साथ उन्हीं की सेना लेकर लंका पर चढ़ाई करने का प्रयत्न करने

लगे, किंतु लंकापुरी मे जाना असंभव था, इसलिये समुद्र का सेतु बनाने के लिये सेना का पडाव वहीं डाल दिया गया, और सेतु बाँधने का उपाय सोचा जाने लगा। एक दिन भगवान् रामचंद्र ने बालू की शिव-मूर्ति बनाई, और उसकी विधिपूर्वक पूजा की। शिवजी ने प्रसन्न होकर भगवान् को दर्शन दिए, और कहा—"हे राम, तुम्हारा कल्याण होगा।" भगवान् ने उनसे प्रार्थना की—"आप लोगो के कल्याण के लिये यहीं निवास करे।" शंकरजी एवमस्तु कहकर अंतर्धान हो गए। तब से यह तीर्थ पवित्र माना जाता है। नल और नील ने सौ योजन लंबा सेतु बाँधा, तभी से इसका नाम सेतुबंध रामेश्वर पडा।

रामेश्वर पवित्र तीर्थ होने के कारण यहाँ दूर-दूर से यात्री आते हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में रामेश्वर पहुँचने के मार्ग, वहाँ ठहरने के स्थान, रामेश्वर का माहात्म्य आदि सभी ज्ञातव्य बाते दे दी गई है। यात्री को यह पुस्तक पढ लेने के बाद रामेश्वर पहुँचने में किसी प्रकार की कठिनाई न होगी। चार सुंदर चित्र भी दे दिए गए है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। इन चित्रो को देखकर हम अनुमान लगा सकते हैं कि रामेश्वर कितना प्राचीन तीर्थ है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

× × ×

भक्त सूरदास—लेखक, ठाकुर सूर्यनाथसिंह विशारद, प्रकाशक, प० विद्याभास्कर शुक्ल दारागंज, प्रयाग; मूल्य ।=)

सूरदासजी का जन्म ऐसे समय हुआ था, जब सारे भारत पर मुसलमानो का आधिपत्य था। किंतु उन्होंने देश मे शांति स्थापित की। सूरदासजी ने परिस्थिति अपने अनुकूल देखी, और उन्होने जनता को श्रीकृष्ण की लीलाओ द्वारा उपदेश देना उचित समझा। इसीलिये सूर के पद गाँवों के अपढ लोगों मे प्रचलित है, और वे लोग भक्तिपूर्वक उन गानो को गाते हैं।

लेखक महोदय ने सूर को जन्मांध नहीं माना, और मिश्रबंधुओ आदि की उक्तियो पर ही अपनी भी राय क़ायम कर ली है। यदि आप यह स्वीकार करते है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने सूरदास को दर्शन दिए, तो यह भी मान लेना उचित है कि वह जन्मांध थे। यदि श्रीकृष्ण मरने के बाद दर्शन दे सकते हैं, तो वह सूरदास को अनेक प्रकार की कल्पना-शक्ति भी दे सकते हैं।

पुस्तक के अंत मे कुछ अच्छे-अच्छे पद भी दे दिए है, और उनकी व्याख्या भी कर दी गई है। पुस्तक यदि सम्मेलन की परीक्षा मे पाठ्य पुस्तको मे रख दी जाय, तो विद्यार्थियों को इससे बहुत लाभ होगा। पुस्तक संग्रहणीय है।

गिरिजाशंकर द्विवेदी (विशारद)

नए फूल

इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'सिंदूर की होली'—लेखक, श्रीलक्ष्मी-नारायण मिश्र; मूल्य १।)

(२) 'चारु चरितावली'—संपादक, श्रीवेंकटेश-नारायण तिवारी; मूल्य १)

(३) 'वेनिस का बाँका'—अनुवादक, श्रीपं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, मूल्य १।)

(४) 'उमंग' (कविता)—लेखक, श्रीगोपाल-सिंह नैपाली; मूल्य १॥)

(५) 'हिंदोस्तानी कोष'—लेखक, श्रीरामनरेश त्रिपाठी; मूल्य २)

(६) 'तुलसीदास-नाटक'—लेखक, श्रीपं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, मूल्य ॥), १)

(७) 'मैंने कहा'—लेखक, श्रीलक्ष्मीकांत झा; मूल्य १।)

(८) 'सुभद्रा अथवा मरणोत्तर जीवन'—लेखक, श्रीयुत वि० दा० ऋषि बी० ए०, एल्-एल्० बी०, मूल्य १)

(९) 'सचित्र शुद्ध बोध'—संपादक श्रीनरदेव शास्त्री; मूल्य १)

(१०) 'युग-परिवर्तन'—लेखक, श्रीगोपीनाथ शास्त्री चुलैट; मूल्य २)

(११) 'शिक्षा और स्वराज्य'—लेखक, रा०ब० पं० लज्जाशंकर झा एम्० ए०, आई० एस्०; मूल्य १।)

(१२) 'स्त्री-शिक्षा-सार'—लेखक, श्रीचंद्रदीप-नारायण त्रिपाठी, मूल्य ३)

(१३) 'ध्रुव स्वामिनी'—लेखक, श्री'प्रसाद'; मूल्य ॥=)

(१४) 'दूध-बताशा'—लेखक, श्रीसोहनलाल द्विवेदी बी० ए०; मूल्य ।॥)

(१५) 'रज कण'—लेखक, श्रीचतुरसेनजी शास्त्री, मूल्य २॥)

(१६) 'गुलदस्ता'—लेखक, श्रीशंभुदयालु सकसेना साहित्यरत्न, मूल्य ≈)

सौरभ

[संपादकीय विचार]

१. हिंदी के सर्व-प्रथम डी० लिट्० श्रीयुत पीतांबरदत्त बड्थ्वाल

भारतेंदु हरिश्चंद्रजी ने जिस समय 'गुण-आगरी नागरी' के प्रचार का बीड़ा उठाया था, तथा उसके विभिन्न अंगो की पूर्ति करने का अभिनंदनीय उद्योग प्रारंभ किया था, उस समय उनको भी पता नही रहा होगा कि थोड़े ही दिनों में—लगभग आधी शताब्दी के भीतर ही—कतिपय व्यक्तियों के बोलचाल की भाषा के दर्जे से उठकर हिंदी अखिल भारत के महान् राष्ट्र की एकमात्र प्रतिनिधि-भाषा हो जायगी ! हिंदी आज हिंदी-भाषी प्रांतों की ही भाषा नहीं, बल्कि उनकी संकुचित सीमाओं का उल्लंघन कर भारत को एकमात्र राष्ट्र-भाषा के जाज्वल्यमान सिंहासन पर आसीन हो गई है। गत दस-बारह वर्षों के अंदर हिंदी-साहित्य के विभिन्न अंग जिस शीघ्रता और सुंदरता के साथ भरे गए है, उसे देखकर प्रत्येक भारतीय का हृदय-सागर उत्साह और आशा की उत्ताल तरगों से लहरा उठता है !

हिंदी की इस बहुमुखी उन्नति के युग मे हिंदी के इतिहास के बारे मे भी खोज-कार्य किया गया है । हिंदी के विद्वानो ने उसका सच्चा तथा प्रामाणिक इतिवृत्त लिख डालने का अथक प्रयत्न किया है, तथा उनमें से कई इस दिशा मे बहुत दूर तक सफल भी हुए हैं । इन्हीं तथा इसी प्रकार के उद्योगों के फल-स्वरूप हिंदी भारत के भिन्न-भाषा-भाषी प्रांतो के विश्वविद्यालयो मे भी, एम्० ए० तक की पढ़ाई के लिये, स्वीकृत कर ली गई है, साथ ही शोध-कार्य का भी प्रबंध किया गया है। पर, इतना सब कुछ हो जाने पर भी, अभी तक किसी भी विद्वान् को 'डॉक्टर ऑफ् लेटर्स' की गौरव-पूर्ण उपाधि नही मिल पाई थी। हिंदी-माता के ललाट पर कलंक का यह छोटा-सा धब्बा था, और इसे मिटाने का श्रेय एक उदीयमान नवयुवक साहित्यज्ञ के ही हिस्से मे लिखा था !

विगत दिसंबर-मास में हिंदू-विश्वविद्यालय का जो 'कनवोकेशन' हुआ था, वह चिरस्मरणीय रहेगा। उस अवसर पर आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय तथा जगदीशचंद्र बसु को 'डॉक्टर ऑफ् साइंस' और भारतीय कानून के विलक्षण पंडित सर शिवस्वामी अय्यर को 'डॉक्टर ऑफ् लॉ' की पदवियों से विभूषित किया गया था। साथ ही 'हिंदी-काव्य मे निर्गुणवाद'-जैसे कठिन और मौलिक विषय पर विद्वत्ता-पूर्ण निबंध लिखने के उपलक्ष्य मे श्रीयुत प्रो० पीतांबरदत्त बड्थ्वाल एम्० ए०, एल्० एल्० बी० को 'डॉक्टर ऑफ् लेटर्स' की उपाधि प्रदान की गई थी। हिंदी-जगत् के लिये यह समुचित गर्व करने की बात है ।

भारतवर्ष के उत्तरीय पार्श्व मे नगाधिराज हिमालय का, लगभग पंद्रह सौ मील का, विस्तार है। उसकी विभिन्न पर्वत-मालाओं मे प्रकृति ने अपने यौवन की होली खेली है। उन्हीं की कंदराओ मे बैठकर सृष्टि के प्रथम स्वर्ण-विहान मे कपिल, कणाद आदि महानुभावों ने प्रकृति के ऊपर आत्मा की विजय का शंख-नाद सुनाया था । उसी हिमालय के एक कोने में गढ़वाल का ज़िला स्थित है । वहीं

लैंसडाउन से सटे हुए सुंदर 'पाली'-गाँव में आज से प्रायः बत्तीस वर्ष पहले डॉ० बडथ्वाल का जन्म हुआ था।

उच्च कुलीन ब्राह्मण-परिवार मे जन्म लेने तथा पं० गौरीदत्त बडथ्वाल-जैसे विज्ञ ज्योतिषी तथा पौराणिक विद्वान् की प्रथम संतान होने के कारण उन्होने बहुत छोटी अवस्था मे ही 'अमरकोष' आदि ग्रथों का पारायण कर लिया। पर वर्तमान युग में राजभाषा ऑँगरेज़ी के विना हमारा काम चलना असंभव-सा हो गया है, इसलिये उनको श्रीनगर के सरकारी हाईस्कूल मे पढने भेजा गया। कुछ दिनों बाद वह लखनऊ के कालीचरण-हाई-स्कूल मे प्रविष्ट हो गए। वहीं जीवन मे सबसे पहली बार अपने प्रधानाध्यापक के रूप मे उनका परिचय हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक बा० श्याम-सुंदरदासजी के साथ हुआ। हिंदी के इन दिग्गज आचार्य के साथ उनका जो प्रेम-भाव स्थापित हुआ था, पिछले सोलह सत्रह वर्षो में उसमें निरतर वृद्धि ही हुई है। सन् १९२० मे उन्होने उसी स्कूल से एस्० एल्० सी० की परीक्षा सम्मान-पूर्वक प्रथम श्रेणी मे पास की, तथा कानपुर के डी० ए० वी० कॉलेज में नाम लिखवा लिया। दुर्भाग्य से इसी बीच उनके पिताजी का देहांत हो गया। पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, और सन् १९२२ मे इटरमीडिएट-परीक्षा भी पास कर ली।

भारतवर्ष मे साधन-हीन विद्यार्थी से कुछ आशा रखना उस पर अन्याय करने से कम नहीं। डॉ० बडथ्वाल के भी आगे पढने के साधन प्रायः शून्य थे। इसलिये विधाता का अटल विधान समझकर उन्होने घर पर रहने की ठानी। इसी बीच उनका परिचय गढ़वाल के एकमात्र सपादक स्व० श्रीगिरिजादत्त-जी नैथाणी से हुआ। उनके आग्रह से उन्होने कुछ दिनों 'पुरुषार्थ' का संपादन किया, और हिंदी के अन्य पत्रो में साहित्य-संबंधी लेख लिखे। पर वह अपनी उन्नति मे संतुष्ट नहीं थे। अंत मे आप हिंदू-विश्वविद्यालय में आ गए, तथा ऑँगरेज़ी, हिंदी और राजशास्त्र लेकर बी० ए० मे पढने लगे। एम्० ए० मे आपने हिंदी ली। सन् १९२८ में आपने वह परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की, तथा विश्वविद्यालय-भर में सर्व-प्रथम रहे। दूसरे ही वर्ष आप एल्-एल्० बी० भी हो गए।

एम्० ए० के लिये आपने 'छायावाद' पर एक निबंध लिखा था। हिंदी-विभाग के अध्यक्ष बाबू श्यामसुंदरदासजी ने उसकी बहुत प्रशसा की थी। वह उस निबंध को विश्वविद्यालय की ओर से छपाना भी चाहते थे, पर इस प्रकार का कोई नियम न होने के कारण वह अपना इच्छित कार्य न कर सके। अपने विद्यार्थी की ऐसी योग्यता देख-कर उन्होने श्रीयुत बडथ्वाल को 'रिसर्च'-कार्य के लिये नियुक्त कर दिया। सन् ३० में वह हिंदी-विभाग में 'लेक्चरर' नियुक्त किए गए, और तब से उसी पद पर कार्य कर रहे है।

संसार के प्राय. प्रत्येक देश के इतिहास में 'मध्य-युग' का नाम आता है। वह घोर निद्रा, अव्यवस्था तथा सडाँद (Stagnation) का युग था। भारतवर्ष में भी उसने अपने करतब दिखलाए, पर यहाँ के 'मध्य-युग' की एक विशेषता थी। उस समय भी भारत ने—विशेषकर हिंदी-भाषी प्रांतों ने—तुलसी, सूर, कबीर, दादू, नानक-जैसी विभूतियाँ पैदा कीं। उनमे से कुछ ने हिंदी-साहित्य की जड मे अमरता का जल चढ़ाया। औरो ने उसमे 'रहस्य-वाद' का 'इंजेक्शन' देकर विश्व के गूढ़ रहस्यो को साधारण जनता के लिये सरल कर दिया।

उन्होने देखा, धर्म के नाम पर झूठे बधनो तथा कृत्रिमताओ से मनुष्य को जकड़ा जा रहा है। उन्होने देखा, नियम, कर्म और नपी-तुली उपासना-प्रणाली का बाँध बँध जाने से ज्ञान का स्रोत रुक गया है, तथा उसमें सड़ाँद आने लगी है, जिसके

कारण सामाजिक कुरीतियो और अंध विश्वासों के भयंकर कीटाणु उत्पन्न हो गए है। उन्होंने देखा, यज्ञ, हवन, दान पुण्य, तीर्थ-व्रत आदि धन-साध्य धार्मिक कृत्यो के कारण धर्म धनिको की बपौती-सा बन गया है, और ग़रीब लोग सिर्फ़ उसकी बाहरी चमक-दमक देख पाते है; उन्होने देखा, ईश्वरीय ज्ञान का भांडार सस्कृत, पाली, प्राकृत, फ़ारसी, अरबी आदि भूतकालीन भाषाओं के तहख़ानो मे बंद कर दिया गया है, जिसके कारण कुछ गिने-चुने लोग उसके ठेकेदार हो गए हैं, तथा अधिकांश व्यक्ति बिलकुल मूर्ख रहे जा रहे हैं। उन्होंने देखा, एक ही ईश्वर और ख़ुदा के भक्त सगे भाइयों की तरह न रहकर एक दूसरे का गला काट डालने पर उतारू हो गए है। उन्होंने धर्म के नाम पर यह सब पाखंड, विषमता, अन्याय तथा भेड़ियाधसान देखा! उनसे न रहा गया। उन्होंने न्याय, मानवता, समानता, शांति और भ्रातृत्व के नाम पर इसके विरुद्ध अपनी ज़ोरदार आवाज़ उठाई!! परमात्मा के अनत ज्ञान का ख़ज़ाना उन्होने 'गागर मे सागर' की तरह हिंदी के छोटे छोटे पदो में भर दिया, और उन्हे अपढ़ तथा पद-दलित मानवता को अर्पित कर दिया!!!

पर कितने लोग आज उनके महान् संदेश को सुनते है! अधिकांश साहित्यज्ञ, इतिहासवेत्ता और पुरातत्त्वान्वेषी महानुभाव इस 'मध्ययुगीन रहस्यवाद' मे कोई शृंखला ही नही पाते। जैसे अभी तक पश्चिम के अधिकाश विद्वान् वेदों को 'गड़रियो के गीत' समझा करते थे, ठीक उसी प्रकार अधिकांश भारतीय कबीर, दादू, नाभादास तथा नानक आदि युग-निर्माताओं को आजकल के-से कनफटे जटाधारी जोगियों के समान समझा करते हैं।

पर इन 'गुदड़ी के लालों' की क़दर अब होने लगी है। 'शब्दो के चित्रकार तथा गायक' कवि-श्रेष्ठ रवींद्रनाथ पर कबीर का बहुत प्रभाव पड़ा है। उन्होंने स्वयं कबीर के एक सौ पदो का अनुवाद अँगरेज़ी मे 'One hundred poems of Kabir' के नाम से किया है। विश्वभारती के सुयोग्य अध्यापक श्रीक्षितिमोहन सेन शास्त्री पिछले सैतीस-अड़तीस वर्षो से इस दिशा मे कार्य कर रहे है। उनकी खोजों से बँगला-साहित्य को स्थायी लाभ होने की आशा है। हिंदी मे भी अब इस विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार होने लगा है। वयोवृद्ध लेखक रा० ब० श्रीतारादत्तजी गैरोला ने, कुछ वर्ष हुए, काफ़ी खोज के बाद, दादू के पदों का अँगरेजी-भाषांतर 'Psalms of Dadu' के नाम से किया था। पर अभी तक भिन्न-भिन्न महान् आत्माओं पर व्यक्तिगत रूप से ही विचार हुआ है। उन सबके साहित्य में जो एक आधारभूत विचार-धारा प्रवाहित हो रही है, उसका शृंखला-बद्ध इतिहास लिखने का प्रयास अभी तक किसी ने नहीं किया।

जब सन् १९२८ में श्रीयुत पीतांबरदत्त बड्थ्वाल 'रिसर्च'-कार्य के लिये नियुक्त हुए, तब मध्ययुगीन साहित्य को ही उन्होंने अपने लिये छाँटा। दो-तीन वर्ष तक वह इस महत्त्व-पूर्ण कार्य पर लगे रहे, तथा सन् १९३१ मे उन्होंने अपना निबंध (Thesis) 'हिंदी-काव्य में निर्गुणवाद' विश्वविद्यालय को समर्पित कर दिया। परीक्षक थे प्रयाग-विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग के प्रधान प्रो० रामचंद्र दत्तात्रेय रानाडे, ऑक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय के उर्दू-हिंदी-विभाग के अध्यक्ष डॉ० टी० ग्राहमबेली और बा० श्यामसुदरदास। डॉ० बेली ने कहा, निबध पी० एच्० डी० की 'डिग्री' के लिये उपयुक्त है, इसलिये श्रीयुत बड्थ्वाल ने उसे वापस ले लिया। कुछ समय और अधिक परिश्रम करके उन्होंने फिर दुबारा उसे जाँच के लिये भेजा। अब की बार सभी परीक्षको ने उसे डी० लिट्० की पदवी के उपयुक्त बतलाया। साथ ही उन्होंने मुक्त कंठ से परी-

क्षार्थी की योग्यता तथा परिश्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

डॉ० बड़थ्वाल सुंदर लेखक है। आजकल वह 'गुरु गोरखनाथ' पर शोध-कार्य कर रहे है। बा० श्यामसुंदरदासजी के सहयोग में उन्होने 'रूपक-रहस्य' और 'तुलसीदास' जैसी गंभीर और गवेषणा-पूर्ण पुस्तके लिखी हैं। वह सफल शिक्षक तथा समालोचक तो है ही, साथ ही एक भावुक कवि भी है। खोज, मनन तथा अनुशीलन के भार से उनकी कवि-प्रतिभा अब कुछ दब सी गई प्रतीत होती है। वह अपने को कवि मानते भी नहीं। फिर भी एक समय उनकी सुंदर और भाव-पूर्ण कविताएँ हिंदी के विभिन्न पत्रो मे निकला करती थीं। 'अंबर' उनका उप-नाम था।

उनका व्यक्तित्व भी बहुत आकर्षक है। अपने छरहरे शरीर, फुर्तीली तथा साफ़ आदतो, मृदुल व्यवहार तथा मुँह को सदा खिलाए रखनेवाली सरल हास्य रेखा द्वारा वह अपने छात्रो, मित्रों, परिचितो, अपरिचितो, सभी का मन मोह लिया करते हैं। एक धर्मपत्नी तथा तीन बालिकाओ के कुटुंब के साथ वह सबको अध्यवसाय तथा उत्साह का पाठ पढ़ाया करते है।

डॉ० बड़थ्वाल एक उदीयमान साहित्यज्ञ है। थोड़े ही समय में उन्होंने हिंदी मे अपना स्थान बना लिया है। आशा है, वह आगे भी अपनी विजय-माला में प्रतिवर्ष नई लड़ियाँ जोड़ने में समर्थ हो सकेंगे। हम उनकी उन्नति के इच्छुक हैं।

× × ×

२ समाज का पुनर्निर्माण

राष्ट्र का रूप समाज के द्वारा स्पष्ट लक्षित होता है। हिंदुओ के राष्ट्र का पतन सामाजिक कमज़ोरियो के कारण हुआ था, यह बड़े-बड़े आलोचको का कथन है। आज भी हम अपनी सामाजिक दुर्बलता के कारण आगे नहीं बढ़ पाते। समाज को स्थायी रूप दे देने से वह कभी जीवित नहीं रह सकता। उसमे ख़राबियाँ भर जाती है, और मुरझाता हुआ वह एक दिन जीवित रहने के लिये भी अक्षम हो जाता है। बँधा पानी सड जाने पर उसमें प्राण लेनेवाले जीवाणु पैदा हो जाते हैं, जो लोगों के स्वास्थ्य तथा प्राणों को भी नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार समाज भी गतिशील न रहने पर अक्षमता तथा नाश का कारण बनता है।

हम समाज को प्रगतिशील करने के लिये अनुकूल स्वतंत्रता देने के विषय मे यथेष्ट विचार पाठको के समक्ष उपस्थित कर चुके है। समाज के अंतर्जातीय भावों पर भी हमने प्रकाश डाला है। यद्यपि हम भारतीयो की अंतिम सामाजिकता का वही स्थायी रूप है, फिर भी जिन स्तरों को पार करते हुए हम वहाँ पहुँचेगे, उनका एक रूप यहाँ दिया जाता है। हिंदुओं की वर्तमान अवस्था का चित्र खींचते हुए लखनऊ-विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० राधाकुमुद मुखर्जी ने एक फ़ैसला ज़ाहिर किया है, वह यह है—

उत्तर-भारत के ऊँचे वर्णवाले हिंदुओं की संख्या दिन-दिन घटती जा रही है। इससे संस्कृति तथा राजनीतिक स्थिति को धक्का पहुँचने का भय है। पिछले कई सालों से हिंदुओं के उच्च वर्णवालो की संख्या घटती गई है। कुरमी १९, कायस्थ १०, ब्राह्मण और राजपूत ५ प्रतिशत के हिसाब से घटे है। जहाँ हिंदुओ की संख्या का ह्रास हुआ है, वहीं मुसलमानो की सख्या बढ़ती गई है। यू० पी० और बिहार में मुसलमान २१ प्रतिशत बढ़े हैं। पंजाब और बंगाल मे मुसलमान ५१ प्रतिशत और पूर्व-बंगाल में ८७ प्रतिशत बढ़े हैं। परंतु पंजाब मे हिंदू ६ प्रतिशत घट गए हैं। हिंदुओ की संख्या यू० पी० में ७, बिहार मे १५ और बंगाल में २३ प्रतिशत मुश्किल से बढ़ी है। हिंदुओ मे बढ़नेवाली सख्या नीचे वर्ण के लोगो की ज़्यादा है।

यू० पी० मे पासी और चमार क्रमशः १८ और ६ प्रतिशत बढे हैं। बिहार में राजबगसीस, नमः शूद्र, माहिष्य, कुरमी और ग्वालों की संख्या प्रतिशत क्रमशः १००, ३१, १८, १८, ६ बढ़ी है।

यह एक विषय भी समझने के लिये है—पूर्व से पश्चिम की ओर ज्यों ज्यों बढ़िए, स्त्रियों की सख्या घटती हुई मिलेगी। मेरठ मे ब्राह्मण, जाट और राजपूत-जातियों मे प्रति हज़ार पुरुषों के पीछे ७८० स्त्रियाँ ही आती है। कायस्थों में भी स्त्रियों की सख्या कम है। पजाब मे ब्राह्मण, अरोडा और खत्री-जातियों की यही दशा है। यू० पी० के अनेक बंधनो तथा दहेज़ आदि कुप्रथाओं के फल-स्वरूप प्रतिशत ४० स्त्रियों का विवाह हो पाया है, जिनका पाँचवाँ हिस्सा निस्सतान है। यू० पी० की उल्लेखनीय एक बात और है। वह यह कि प्रति हज़ार ब्राह्मण, राजपूत और कायस्थ स्त्रियों मे क्रमशः २१६, २१८, १८२ स्त्रियाँ विधवा है।

इन अंकों से हिंदुओं के भयकर ह्रास का चित्र सामने आ जाता है। इसका कारण भी गत कुछ वर्षों से सुधारक लोग बराबर बतलाते आ रहे है। प्रोफेसर राधाकुमुद का कहना है कि ऊँचे वर्णवालों को चाहिए कि तरह-तरह के दुराग्रह को दूर कर अंतर्जातीय विवाह-संबंध कायम करें। इसके विना कठिनाइयों का सामना करना कठिन होगा। इससे राजनीतिक शक्ति भी बढेगी। अनेक प्रकार की कुप्रथाएँ भी दूर होंगी। इसमे कोई संदेह नहीं कि संख्या जिसकी अधिक होगी, राजनीतिक अधिकार उसी जाति के हाथ में अधिक होंगे। राजनीतिक रक्षा भौतिक जीवन की पुष्टि के लिये पहले ज़रूरी है। हमे सोचकर शीघ्रातिशीघ्र अपनी प्राचीन रीतियों में परिवर्तन करने चाहिए। डॉ० राधाकुमुद का कहना है कि यदि हिंदू जाति तथा विवाह को दूसरा रूप न देंगे, तो राजनीतिक आक्रमणों से उनके लिये आत्मरक्षा असंभव होगी। सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्वरूपों को इस प्रकार शुद्ध कर लेना होगा कि हिंदू और मुसलमान, अमीर और ग़रीब, उच्च तथा निम्न वर्णवाले परस्पर सद्भाव बढाना सीखे—उन रूपों के प्रति आकृष्ट हो। इसके लिये पहले लोगों के मन की शुद्धि करनी होगी।

× × ×

३. राजा अवधेशसिहजी का स्वर्गवास !

मित्रवर राजा अवधेशसिहजी, कालाकाँकर, अपने महान् व्यक्तित्व का परिचय देकर केवल २७-२८ साल की उम्र मे स्वर्गवासी हो गए। केवल अवध नहीं, समस्त भारत उनके महाप्रयाण से आँसू बहा रहा है। वह जैसे आदर्श राजा तथा स्वाधीनचेता युवक थे, राजपरिवार में भारत दूसरा उदाहरण नहीं पेश कर सकता। अवध के युवकों के लिये तो वह अवधेश ही थे। उनके न रहने से अवध की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति हो नही सकती।

राजा साहब बचपन से ही तेजस्वी और लोकमत के पक्ष मे रहनेवाले युवक थे। अपने बाबा स्वर्गीय राजा रामपालसिह के उदार कार्यों की, नवीन शक्ति लिए हुए, वह सजीव मूर्ति थे। राजा रामपालसिह उन व्यक्तियों मे से थे, जिन्होंने कांग्रेस को जन्म दिया था। हिंदी-साहित्य को भी सक्रिय प्रोत्साहन देनेवाले, महामना मालवीयजी के संपादकत्व में 'हिंदोस्तान' निकालनेवाले, अनेकानेक कवि तथा लेखकों को आश्रय देनेवाले राजा रामपालसिंह एक ही पुरुष थे। राजा अवधेशसिह पर इन गुणों का पूरा प्रभाव पड़ा था। साहित्यिकों का आप समुचित सम्मान करते थे। कविवर सुमित्रानंदनजी आप ही के छोटे भाई श्रीसुरेशसिंह के पास २-३ वर्ष रहे हैं। उनके चेहरे से भीतरी भावना स्पष्ट होती थी।

देश के सम्मान्य नेतागण राजा साहब का आदर करते थे। राजा साहब भी अपने बड़प्पन के भाव

भूलकर, बिलकुल एक साधारण मनुष्य के तौर से, सबसे मिलते थे। इसका बड़े-से-बडे आदमी पर प्रभाव पडता था। महात्मा गाधी आपसे अत्यधिक स्नेह करनेवालो मे हैं। गत आंदोलन के समय अपने दल के साथ महात्माजी लखनऊ आकर कालाकाँकर भवन में ही ठहरे थे। त्याग-मूर्ति बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० जवाहरलालजी नेहरू और श्रीसी० वाई० चिंतामणि आदि प्रांत तथा देश के महामना मनुष्य आपको स्नेह तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। पं० मोतीलाल नेहरू लखनऊ इलाज कराने के लिये लाए जाकर कालाकाँकर-भवन मे ही ठहराए गए थे। वहीं उनका शरीरांत भी हुआ था। राजा साहब देश के जनबल को पुष्ट करनेवाले एक ही ताल्लुक़ेदार थे, और बराबर वही नीति ली, जिससे साधारण लोगो का हित होता दिखाई दिया।

विचारों मे राजा साहब आर्यसमाजी थे। कितनी ही विधवाओं का, आपने, वर खोजवाकर, अपने ख़र्च से विवाह कराया। राज्य मे प्रजा की दशा का बराबर विचार रखते थे। कोई भी मनुष्य उनसे मिलकर बाते कर सकता था। राजा साहब और भी अनेक तरह से दुखी देश के सहायक थे। किसानो की भलाई के विचार से आप पत्र भी निकालते थे। आपका भोजन-पान बहुत सादा था, राजवश में पैदा होकर भी आप मद्य-मांस का सेवन बिलकुल न करते थे। इससे राज्य से मिलता हुआ आपका मासिक ख़र्च अधिकांश मे बच जाता था, और वह इसी प्रकार देश की सेवा मे ख़र्च होता था। राजा साहब की अनुपम मनुष्यता को जितने भी अच्छे रंगों से रँगने की कोशिश की जाय, बराबरी नहीं हो सकती। राजा साहब को लेकर काल ने अवध के ताल्लुक़ेदारो का मुकुट ही उठा लिया! यहीं ईश्वर की दयालुता से विश्वास चला जाता है।

राजा साहब इधर कुछ महीनो से पीड़ित रहते थे। लखनऊ इलाज कराने आए थे। बडी खराब हालत हो रही थी। एक दिन उनके जीवन पर सबको शंका भी हो गई थी। पर यहाँ आप अच्छे हो गए थे। यहाँ से स्वास्थ्य-सुधार के लिये आप कलकत्ते गए हुए थे। वहाँ से लौटने पर आपकी अवस्था फिर शंका-जनक हो गई, और आप अपने प्रिय देश तथा बंधुओ को छोड़कर चल दिए। रानी साहबा तथा चिरंजीव ब्रजेश और सुरेश तथा परिवार के अन्य जनो का कौन धैर्य दे!

× × ×

४. रूस का राष्ट्रसंघ मे प्रवेश

आज सोवियट रूस ससार के राष्ट्रों का प्रकाश है। पहले किसी ने भी उसकी गति और लक्ष्य की ओर ध्यान नही दिया। जो लोग उत्थान के सपुटित कमल के लिये उसके उदय की आकांक्षा रखते थे, वे उद्दाम ऐश्वर्य के स्रोत पर तृण की तरह बहनेवाले वैषयिक नहीं—वसुंधरा पर भी भूख से मरनेवाले, चिंता से उन्निद्र किसान थे। रूस की नवीन शक्ति को प्राचीन परंपरा के अनुकूल अनेक प्रकार के विरोधो के विक्षिप्त वज्र चुपचाप सहते रहना पड़ा है। चुपचाप अपने ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए उसने उस प्रगति के द्वारा संसार के सुधारकों को, अशब्द आती हुई, फूलों का मुँह खोल देने-वाली ओस की तरह, उत्तर दिया है। आज अधिकांश शिक्षित उसी के विचारों के पक्ष मे जाति की उद्धार-कल्पना में लीन हो रहे है—आज वे विरोधी राष्ट्र भी उसे मित्र मान लेने के लिये औत्सुक्य से तत्पर हैं।

विगत महायुद्ध के समय ज़ार की राजगद्दी आबाद थी—रूस को जर्मनी के विरुद्ध लडना और शत्रु की टेढ़ी चाल में पड़कर क्षति-ग्रस्त होना पड़ा था। पश्चात ज़ार का प्रभाव रूस की रक्त-रंजित राजनीति के पश्चिम नभ में सूर्य की तरह अस्त

हो गया। मित्र राष्ट्रों को कुछ हानि पहुँची, पर अपनी-अपनी दाढ़ी के तिनके निकालते हुए सब एक तरह उलझ-से गए। इधर रूस के कृत्यों का बड़ी तेज़ी से योरप और एशिया के सुधारवादी, राष्ट्रीय भावनावाले देशों मे प्रभाव फैलने लगा, और कई राष्ट्र उसी शक्ति से बहुत कुछ पुष्ट हो भी चले। यह देखकर पहले से शक्त दूसरे राष्ट्रों ने रूस को जाति-महत्ता से च्युत हिंदू की तरह राष्ट्र की पंक्ति से अलग कर दिया। रूस ने भी झुककर सलाम करने का नाम न लिया।

पर रूस विशाल देश है। स्वार्थ के विचार से मित्र राष्ट्रों को रुख मिलाने ही मे कल्याण जान पड़ा। प्रायः दस वर्ष पूर्व उसके साथ बृहत राष्ट्रों की व्यावसायिक संधि हुई।

पर राष्ट्रसंघ से रूस अब तक अलग ही रहा। राजनीति का कुछ ऐसा चक्र चला कि रूस की तरफ़ से सब-के-सब वक्र रहे। परंतु प्रकृति किसी राजनीतिज्ञ या राष्ट्रसंघ की ब्याही हुई हिंदू-बीबी नहीं—वह—क्या कहते है नायिका-भेद मे उसे—वह नायिका है, जो स्वतंत्र रहती है। दैवयोग से जर्मनी और जापान राष्ट्रसंघ के छत्ते पर भनभनाते हुए अपनी ही शक्ति से फूलों से मधु लेकर, नया छत्ता रचकर, रहने के विशद उद्देश के गौरव पंखो से उड़कर अलग हो गए। महाशय राष्ट्रसंघ को टुटरूटूँ रूप अपनी ही आँखों अच्छा न जँचा। और बहुत सी भीतरी राजनीतिक बातें भी हो सकती है। दल-च्युत कथनक जर्मनी से जापान के लिये हृदय खोलकर मिलना संभव नहीं, क्योंकि 'पिया सात समंदर पार बसे' सार्थक है। पर महाशय रूस बिलकुल पड़ोस मे रहते है। अगर दोनो का प्रेम-संबंध सुदृढ़ हुआ, तो राष्ट्रसंघ के विशद अभिप्रायों का बागी, पुत्र रूप पैदा हो सकता है। उधर जापान भी रूस का पड़ोसी है। पड़ोसी-पड़ोसी दूरवालों की अपेक्षा लड़ते भी अधिक है, और मिलते भी दिल खोलकर हैं। इन कारणों से जाति-च्युत रूस को राष्ट्रसंघ ने अपने में मिलाने की बात सोची। आपस की बातचीत मे, बहस-मुबाहसे मे अनेक प्रकार के अभिनय के पश्चात् फ्रांस की गहरी उदारता के फल-स्वरूप रूस राष्ट्रसंघ में सम्मिलित कर लिया गया। रूस को इँगलैंड, फ्रांस आदि देशों की इज्ज़त हासिल रहेगी, यह भी मंज़ूर हुआ। रूस के प्रतिनिधि मॉशिए लिटविनाफ़ ने प्रतिनिधि होने के बाद यह फ़रमाया कि रूस को अपने आचार-विचारों की पूर्ण स्वाधीनता रहेगी।

इस दीर्घसूत्रता का यह परिणाम हुआ। अब रूस की इज्जत मे किसी को शक नहीं रहा। इज़्ज़त किस तरह हासिल की जाती है, रूस ने जैसी ख़ूबी से साबित किया है, ईश्वर मे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि दूसरे मित्र राष्ट्र भी विश्व के कल्याण के लिये वही पथ और वैसी ही कला का पाथेय ग्रहण करें। हमे पूर्ण विश्वास है, इससे किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न रह जायगी, और लोग शांति-पूर्वक रह सकेंगे।

× × ×

५ जल से पेट्रौल

एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने बड़े आश्चर्य का एक यंत्र तैयार किया है, जिसके प्रचार होने पर संसार मे एक नई स्फूर्ति फैलेगी। यह है समुद्र के जल से पेट्रौल तैयार किया जाना। इन आविष्कारक महोदय का शुभ नाम है अलबर्ट साहूर। पहले आप रात्रेन गरेज मे एक मामूली मिस्त्री थे। आपके तैयार किए हुए इस पेट्रौल की लागत बहुत कम होती है। फ्रेंच-मंत्रिमंडल के कई प्रतिनिधि आपकी प्रयोगशाला का निरीक्षण कर चुके हैं। आविष्कारक सेना-विभाग से बाईस करोड़ रुपया माँग रहे है। आपकी प्रयोगशाला के चारो ओर बिजली के तार रक्षा के लिये लगा दिए गए है। आज्ञा के विना यदि कोई जाय, तो उसे गोली मार देने की आज्ञा

है। इस आविष्कार से संसार मे बडी चहल-पहल तथा खलबली मची हुई है।

× × ×

६ जर्मन वैवाहिकों पर कुछ आज्ञाएँ

जिस तरह का विवाह-सबधी जातीय प्रोपगैंडा जर्मनी मे हुआ है, उसका उल्लेख अनेकानेक पत्रो मे आ चुका है। यह सब जर्मनी के सर्वेसर्वा हर हिटलर जर्मनो की जातीय शक्ति को बढ़ाने के लिये कर रहे है। इधर जो कुछ आज्ञाएँ विवाह करनेवालो के लिये निकली है, हम यहाँ 'सुधा' के पाठकों को उनसे भी परिचित करा रहे है। पाठकों को यह मालूम होगा, जर्मनो पर विवाह करने के लिये हिटलर की सरकार ने बडा दबाव डाला था। अब कुछ आज्ञाएँ भी निकली है। वे ये है—

(१) याद रक्खो (पुरुष हो या स्त्री) कि तुम जर्मन हो।

युवक और युवती जर्मनो को पूर्व सूचना दी जाती है कि उनका जीवन वास्तव मे जाति के लिये है, और इसलिये उनके कुल कार्य जाति के फ़ायदे के लिये होने चाहिए।

(२) अगर तुमने अच्छा स्वास्थ्य पाया है, तो अविवाहित न रहो।

तुम जो कुछ हो, तुम्हारे चरित्र से जो कुछ संलग्न है, तुम्हारा शरीर और शक्ति, विरासत में मिले हुए है—तुम्हारे पूर्वजों का दान है। तुम परंपरा की क्रमबद्ध श्रृंखला में जी रहे हो। उस श्रृखला को न तोड़ो।

(३) अपने शरीर को पवित्र रक्खो। पिता-माता से प्राप्त किए स्वास्थ्य की, जाति की सेवा के लिये, रक्षा करो।

गहन विषय को हँसकर उड़ा देने से सावधान हो जाओ। तुम अपने जोड़े के संबध में जो कुछ पूछना चाहते हो, अपने संबंध में पूछो (कि तुम स्वयं वैसे गुणों से युक्त हो या नहीं)। याद रक्खो, भविष्य के लिये तुम एक जर्मन-पूर्वज हो।

(४) अपने मन और आत्मा को पवित्र रक्खो।

जवान जर्मन युवक-युवतियाँ विदेशी प्रभावो से मुक्त रहने के लिये सतर्क किए जाते हैं।

(५) एक जर्मन का तरह अपना जोड़ा उसी ख़ून से पसंद करो, या नार्डिक ख़ून से लो।

(जर्मन-जाति को पवित्र रखने के विचार से यह भाव एक लबे व्याख्यान से स्पष्ट किया गया है।)

(६) जब जोडे की तलाश मे रहो, तब उसके कुल संबंधो की जाँच कर लो।

तुम केवल अपने जोड़े को नहीं, उसके कुल-संबंधो को भी ब्याह रहे हो। समर्थ संतान समर्थ जनक-वंश से आती है।

संतानो मे समझ उसी तरह आती है, जिस तरह बाल और आँखों का रंग।

(७) स्वास्थ्य बाहरी सौदर्य के लिये एक ही शर्त है।

शादी से पहले जर्मन युवक-युवती डॉक्टरी परीक्षा कराएँ।

(८) केवल प्यार करने के लिये विवाह करो। पर प्यार को अंधा न बनाओ।

× × ×

७. फ़्रैंकफोर्ट से यहूदियो का देश-निकाला

एक वक्त जर्मन-साम्राज्य का फ़्रैंकफ़ोर्ट-आन्-मेन सबसे अधिक धनी शहर था। परंतु आज दरिद्र होकर विपद्ग्रस्त हो रहा है। कारण, वहाँ से धनी यहूदी लोग चले गए हैं।

गत मर्दुमशुमारी के हिसाब से फ़्रैंकफ़ोर्ट की पाँच लाख पचास हज़ार कुल जन-संख्या मे पैंतीस हज़ार केवल धनी यहूदी रहते थे। मध्य युग के बाद से अभी उस दिन तक यह शहर योरप-भर में धनी यहूदियों का केंद्र समझा जाता था। वहीं, यहूदियो के कब्रिस्तान में, समाधि-शिलाएँ बारहवीं

शताब्दी के सभ्य जनो के वर्म धारण किए हुए हैं।

यद्यपि यहूदियों के प्रति बुरा बर्ताव नहीं किया गया, तो भी वे अपने विरुद्ध होनेवाले बहिष्कार का बहुत गहरा अनुभव करते हैं। इस शहर की विशेषताएँ लिए हुए, इतिहास के मुख्य पात्रो-से आते हुए फ्रैंकफ़ोर्ट के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठाता होने पर भी, वे अब यह भी सोचने को तैयार नहीं कि वहाँ के वे दूसरे दर्जेवाले नागरिक या एक दूसरी जातिवाले मनुष्य हैं। कुछ ने आत्म-हत्याएँ कीं, और हज़ारो दूसरे देशो को चले गए।

अभी-अभी की प्रकाशित एक विज्ञप्ति से मालूम होता है कि इस साल के प्रारंभ से प्रति-मास चालीस यहूदी-फ़र्मं बंद होती हैं—हर हफ़्ते दस। जून मे १०२ यहूदी-फ़र्मं बंद हुईं, और उनके प्रधान शहर छोड़कर चले गए। यहूदियों के कितने ही बको ने फ्रैंकफ़ोर्ट से अपना कारोबार उठा लिया। इनमें स्पीयर का सुप्रसिद्ध बंक भी है।

इससे शहर के कोष को बड़ी क्षति पहुँची है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। शहर की सांपत्तिक दशा के यहूदी लोग मेरु-मूल थे। उनके दिगंत-विस्तृत व्यवसाय-सबंध शहर को अपर देशों से जोड़ने के प्रधान जीवनी शक्ति-स्वरूप थे।

× × ×

८ क्या मस्तिष्क टीन का बना है ?

हमारे मस्तिष्क में बहुत-सी भिन्न-भिन्न धातुएँ और खनिज पदार्थ विद्यमान रहते हैं। पिछले कई वर्षों से फ्रांस के प्रसिद्ध डॉक्टर बर्टरैंड इस विषय में अन्वेषण कार्य कर रहे थे। अब वह इस परिणाम पर पहुँचे है कि इन खनिज पदार्थों और धातुओ का हमारे मस्तिष्क के कार्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, और वे एक आवश्यक वस्तु हैं। शरीर को स्वस्थ रखने में वे हमारी सहायता करते हैं।

उदाहरण के लिये 'जस्ता' ही लीजिए। बच्चे के उत्पन्न होने पर कुछ महीनों तक उसके मस्तिष्क में जस्ते की मात्रा कम होती जाती है, यहाँ तक कि धीरे-धीरे बिल्कुल लोप हो जाती है। ज्यो ही बच्चा अन्न खाने योग्य हो जाता है, त्यों ही उसके शरीर में जस्ता बढ़ने लगता है, और उसके पूर्ण युवा होने तक जस्ते की मात्रा भी यथेष्ट बढ़ जाती है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये जस्ता शरीर में बडा काम करता है, और उसके कारण बहुत-सी व्याधियाँ उठने नहीं पातीं।

डॉक्टर बर्टरैंड लिखते हैं कि हमारे हृदय मे थोडा ताँबा, अल्यूमिनियम और चाँदी वर्तमान रहती है। पेट की अँतड़ियों और पाचक नसों मे अल्यूमिनियम लगातार घुलता रहता है। फेफड़े, जिगर और तिल्ली मे भी इसका अस्तित्व माना गया है। मस्तिष्क मे तो टीन का अश बहुत परिमाण में उपस्थित रहता है। शरीर की हड्डियों में निकिल और काँसे का अंश भी माना गया है। हमारे शरीर मे सबसे अधिक लोहे का अंश है, उसके बाद ताँबा और फिर चाँदी का नबर आता है। मानव-शरीर-संबधी इस रहस्यमय अन्वेषण के लिये डॉक्टर बर्टरैंड धन्यवाद के पात्र हैं।

× × ×

९. पशु-पक्षी और संगीत

इँगलैड के प्रसिद्ध कवि और गायक श्रीयुत मोज़र्ट ने पशुओ की संगीत-प्रियता पर बड़े महत्त्व-पूर्ण लेख लिखे हैं। अपने अनुभवो का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा है—"जब मै छोटा था, तो मुझे वायलिन बजाने का बड़ा शौक था। अक्सर मै वायलिन को मेज़ पर छोड़कर चला जाता था। एक दिन मैने देखा, एक कबूतर उस पर बड़ी देर से बैठा हुआ अपनी चोंच से बाजे के तारो को बार-बार खींच रहा है। मै बड़े आश्चर्य से यह तमाशा देखता रहा। फिर मैंने वायलिन उठाकर जब बजाना शुरू किया, तब वह कबूतर मेरे निकट ही, थोडी दूर पर, बैठकर सुनने लगा। प्रतिदिन जब मैं वायलिन बजाता, तब वह कबूतर आ बैठता, और घटो तक सुनता रहता था। धीरे-धीरे उसका साहस बढ़ने लगा,

और जब मैं वायलिन बजाना शुरू करता, तो वह कबूतर मेरे कंधे पर आ बैठता था।"

इसमें संदेह नहीं कि कुत्ते आदि पालतू जानवर बाजे का शब्द सुनकर कान खड़े कर लेते और भूँकने लगते हैं। परंतु कबूतर-जैसे छोटे-छोटे पक्षियों का संगीत-प्रेम हमें आश्चर्य में डाल देता है। बिल्लियाँ भी बाजा सुनना बहुत पसंद करती हैं। पेयानो पर चलने से जो भाँति-भाँति के स्वर निकलते हैं, उनको सुनने का उन्हें बड़ा शौक होता है। श्रीयुत मोज़र्ट ने पेयानो के परदों पर चहलकदमी करते हुए बिल्लियों को अक्सर देखा है।

चूहे भी संगीत-प्रिय होते हैं, यह जानकर हमें आश्चर्य होगा। अमेरिका की प्रसिद्ध गायिका और अभिनेत्री मिस हे लिखती हैं—"जब वह अपने कमरे में गाना आरंभ करती थीं, तब उस कमरे में दो चूहे आकर बड़े ध्यान से बैठे रहते थे। अवश्य ही वे गाना सुनते होंगे।" मिस हे ने कई बार उन चूहों को अपने गाते समय कमरे में ही बैठा पाया। वे इतने ढीठ हो गए थे कि चाहे जितना खटका या शब्द क्यों न हो, वे गाना सुनते ही रहते थे।

लोग कहते हैं, साँपों के कान नहीं होते। किंतु वे मदारों की बीन सुनकर कैसे तन्मय हो जाते हैं। घोड़े बैंड बाजे को बहुत पसंद करते हैं। संगीत का प्रभाव गायों पर भी देखा गया है कि बाजे का मधुर शब्द सुनकर वे दूध अधिक देती हैं। संगीत की महिमा अपार है।

× × ×

१०. 'कुइन मेरी' का प्रवाह-समारोह

'कुइन मेरी' एक बड़े जहाज़ का नाम है। क्लाइड के जल पर जब बहाया गया, उस समय घोर वर्षा हो रही थी; पर लाखों दर्शक निश्चल खड़े हुए एकटक इसे देख रहे थे। इस जहाज़ को डॉक से खींचने के लिये मज़बूत ज़ंजीरें लगाई गई थीं। जहाज को बहाने में ६० मिनट से ज्यादा समय नहीं लगा।

घटना-स्थल पर सम्राट् पंचम जॉर्ज उपस्थित थे। अपनी मनोहर वक्तृता में उन्होंने बनानेवाले की बड़ी तारीफ़ की। जहाज़ की उद्देश-सिद्धि की कामना करते हुए सम्राट् ने श्रमिकों को भी प्रोत्साहन दिया। सम्राज्ञी मेरी ने माइक्रोफ़ोन में वक्तृता दी। माइक्रोफ़ोन में बोलने पर क्षीण स्वर ऊँचा होकर सुन पड़ता है।

सम्राज्ञी ने कहा—"मैंने इस जहाज का नाम 'कुइन मेरी' रक्खा है।" प्रचलित प्रथा के अनुसार सम्राज्ञी ने जब जहाज़ को बहाए जाने से पहले छुआ, तब चारों ओर सहृदय हर्ष की ध्वनि गूँज उठी। 'कुइन मेरी' के भासमान होने पर एक सुंदर दृश्य लोगों की आँखों को तृप्त करने लगा।

सम्राट् ने कहा—"तरंगों से उच्छ्वसित समुद्र को दमन कर लेना साधारण बात नहीं। समुद्र मनुष्य की शक्ति से ज़्यादा शक्ति रखता है। पर अब मनुष्य समुद्र की तरह शक्तिमान् होकर समुद्र से युद्ध करने लगा है।" सैमुएल कुनार्ड काठ की किश्ती पर अटलांटिक महासागर में दूर तक गए थे, इसको अभी सौ वर्ष भी पूरे नहीं हुए। इस समय भी जीते हुए लोगों में से बहुत कम ने सुना होगा कि एक हजार एक सौ पचास टन का जहाज़ प्रकृति पर मनुष्य की प्रभुता विघोषित कर रहा है। आशा है, अब अटलांटिक के दोनो तरफ़वाले लोग वाणिज्य तथा पारस्परिक परिचय के सुदृढ सूत्र से बँधकर एक दूसरे के नज़दीक होते रहेंगे। दो अँगरेज़ी-भाषी देशों में डाक की परिचालना के विचार से कुनार्ड ने यह जहाज़ बनवाया था। इस जहाज़ से अधिकांश लोगों को भी आने-जाने का सुबीता रहेगा। दो देश के लोग एक साथ क्षति-ग्रस्त और एक साथ लाभान्वित होंगे।

× × ×

११. लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी

भारत निवासी, कम-से-कम हिंदी-भाषी, अच्छी तरह जानते हैं, लखनऊ हिंदी-भाषा की शुद्धि के विचार से एक केंद्र है। जिस तरह दिल्ली और लखनऊ उर्दू के लिये निस्संदेह केंद्र कहे जा सकते हैं, उसी तरह हिंदी के लिये भी। कारण, आगरा, मथुरा, दिल्ली और मेरठ आदि का भू-भाग विशुद्ध हिंदी के लिये कम प्रसिद्ध नहीं। उसी तरह लखनऊ अवध की राजधानी है। अवध की हिंदी साहित्य में इतनी ही प्रसिद्ध है, जितनी दिल्ली, आगरे की। जो हाल प्राचीन अवधी और व्रजभाषा के समय रहा, वही इस खड़ी बोली के युग में भी है। इन्हीं दोनो जगहों की हिंदी आदर्श मानी जाती है। इन्हीं दो स्थानों से उत्तम हिंदी के लेखक अधिक सख्या में आए हैं। वर्तमान काल के सर्वश्रेष्ठ संपादक और गद्य-लेखक, आचार्यप्रवर द्विवेदीजी की हिंदी अवध की, विशेषतः लखनऊ-विभाग की, हिंदी है। उनका विशाल कार्य परिचय की प्रतीक्षा नहीं करता। पर जहाँ आगरा-विश्व-विद्यालय भी हिंदी को एम्० ए० की परीक्षा मे स्थान दे चुका है, वहाँ लखनऊ विश्वविद्यालय अभी चुप्पी साधे बैठा हुआ है।

हमने सुना है, लखनऊ की प्राचीन मुसलमान सभ्यता के कायल कुछ प्रतिष्ठित हिंदू मुसलमान भाइयो से इस सहयोग के लिये तैयार है कि लखनऊ में उर्दू एम्० ए० मे हो जाय। हम उर्दू के बाधक नहीं, पर हम पूछते हैं, वह कौन-सा दुर्योग है, जो हिंदी को उस कक्षा तक पहुँचने नहीं दे रहा? यहाँ के प्रोफ़ेसर बारह बारह सौ रुपए तनख़्वाह पाते है—रुपया पूरा भी हो जाता है; पर कौन-सी अड़चन हिंदी के लिये हो सकती है, जो रुपए देनेवाले यहाँ के ताल्लुक़ेदार नहीं पार कर सकते? क्या यहाँ के अधिक सख्यावाले हिंदू ताल्लुक़ेदार अपने अपने घरो में हिंदी छोड़कर उर्दू का ही उपयोग करते हैं? हमें आशा है, राजा सूर्यबख़्शसिंह-जी साहब, कुँवर राजेंद्रसिंहजी आदि जरा इधर भी ध्यान देने की दया करेंगे।

× × ×

१२. रूस में महिला-सैनिक

सोवियट रूस में महिला सैनिको की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। और, ऐसा समझा जा रहा है कि 'लाल सेना' (Red Army) की शक्ति बहुत बढ़ जायगी, यदि कुछ दिनो तक यही क्रम जारी रहा।

महिला-सैनिको को पुरुष सैनिको की भाँति ही क़वायद कराई जाती है, परंतु वे नियमित रूप से नौकर न रक्खी जाकर केवल स्वयंसेविकाओं के रूप में कार्य करती है। रूस की सेना के अधिकारी-गण महिला सैनिकों की संख्या किसी को नहीं बताते, फिर भी ऐसा अनुमान है कि पैदल, घुड़-सवार और तोपख़ाने की सेना मे कार्य करनेवाली महिलाओं की सख्या बहुत अधिक है।

अभी हाल में ही 'कज़ाक' सिपाहियो की भाँति महिलाओं के एक सैनिक दल की परेड हुई, जिसमें उनकी योग्यता, शिक्षा और फुर्ती देखकर यह मानना पड़ा कि वे पुरुष-सैनिकों की अपेक्षा अधिक कुशल और फुर्तीली है, यद्यपि सैनिक-अस्पताल तक ही उनका कार्य सीमित रक्खा जाता है।

रूस की हवाई सेना में भी कई महिलाएँ काम कर रही है। उनमें एक मुसलमान लड़की भी है, जो काकेशस-प्रांत से आई है। उसका कहना है कि अंतःपुर की कैद और बुरके से छुटकारा पाने के लिये ही वह अपना देश छोड़कर रूस के सैनिकों मे सम्मिलित हुई है।

महिलाओं के इस युग मे कुछ भी असंभव नहीं।

× × ×

१३. पुस्तकों का सबसे सुंदर संग्रहालय

अमेरिका की एक पुरातत्त्व-अन्वेषक संस्था के

डायरेक्टर डॉक्टर आर्थर अपहम पोप ने अभी ईरान से लौटने पर अपने अन्वेषण-कार्य पर भाषण देते हुए बतलाया है कि ईरान की सबसे बड़ी संपत्ति पुस्तकों का एक सग्रहालय है। वह लिखते हैं—

"लोगों को आश्चर्य होगा कि मै अमेरिकन होकर पिछले कई वर्षो से ईरानी कला कौशल-संबंधी अन्वेषण कर रहा हूँ। मै इस बार की यात्रा में मशद (Mashad) मे इमामरिज़ा के मंदिर मे, जो ईरान का सबसे पवित्र स्थान समझा जाता है, सरकारी आज्ञा प्राप्त कर गया था। स्थान-स्थान पर पहरेदार बैठे थे, जो इस मंदिर की रक्षा कर रहे थे। यह मंदिर ईरान का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। मैने अंदर जाकर देखा, हस्त-लिखित पुस्तकों का एक बड़ा ख़ज़ाना मेरे सामने है। उनका सौंदर्य और लिपि देखकर मै दंग रह गया। मुझे विश्वास है, मै पहला विदेशी था, जिसको इस पुस्तकालय में जाने की आज्ञा मिली थी। मैं चारो ओर घूमकर भिन्न-भिन्न विषयो की पुस्तकों को आश्चर्य से देखता रह गया। इस पुस्तकालय मे लगभग ६००० कुरान रक्खे हैं, जो ईरान के शासकों और भारतवर्ष के नवाबों की ओर से भेंट मे प्राप्त होते आए हैं। मंदिर के अधिकारियो से पूछने पर पता चला कि उनमें से कई प्रतियाँ १०,०००) रुपए से भी अधिक मूल्य की है। कुछ प्रतियों के पृष्ठ ऐसे मोहक रूप में चित्रित हैं कि उनको देखकर यह सोचना पड़ता है कि लेखक ने कितनी कला, कितना परिश्रम, कितने दिन लगाकर उनको सजाया होगा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि एक दूसरी पुस्तक का आवरण-पृष्ठ बनाने मे चित्रकार को सात वर्ष से भी अधिक समय लग गया था। १४वी और १५वीं शताब्दी की लिखी हुई कुछ पुस्तको को देखकर उनकी रचना-शैली और सजावट पर मै सचमुच ही मुग्ध रह गया। ईरान अपने इसी ऐश्वर्य को ससार की सबसे बड़ी संपत्ति समझता है, और मै भी यह स्वीकार करता हूँ कि ऐसी मूल्यवान् पुस्तकों का सग्रहालय संसार मे कहीं नहीं है।'

× × ×

१४ संसार के कुछ आश्चर्य

इँगलैंड मे लगभग ४ करोड ५० लाख चूहे हैं, अर्थात् वहाँ के मनुष्यों और चूहों की तादाद बराबर-बराबर है। इन चूहो से प्रतिवर्ष ५ करोड़ ५० लाख पौंड की हानि होती है। सरकारी पुलिस और सेना इस भयानक शत्रु का सामना नहीं कर सकती!

※ ※ ※

श्याम-देश के बैंकों में खोटा-खरा सिक्का पहचानने के लिये बंदर नौकर रक्खे गए है। वे पिंजडों मे बद रहते है, और ख़ज़ांची उनके सामने सिक्कों का ढेर लगा देता है, जिसमें से एक-एक सिक्के को वे अच्छी तरह परीक्षा करते है। वे बंदर प्रत्येक सिक्के को दाँतो से काटकर देखते हैं, और दाँतो से पहचानकर खोटा सिक्का उठाकर पिंजड़े से बाहर फेंक देते है। इन बदरों को पहले अच्छी तरह सिखाया जाता है, और तब ये बैंकों में पाले जाते है। इनका मूल्य बहुत अधिक होता है।

※ ※ ※

प्रेग के जर्मन विश्वविद्यालय में डॉक्टर आर्थर बी डल ने नाटे आदमियों को लंबा करने का उपाय सोच निकाला है। वह जानवरों के शरीर की किसी विशेष नस का रक्त लेकर नाटे आदमियो के शरीर मे सुई द्वारा प्रविष्ट करते हैं। अभी हाल में एक सोलह वर्ष के लड़के पर उन्होंने यह प्रयोग किया था। परिणाम-स्वरूप वह छ महीने मे लगभग ४ इंच बढ़ गया। इसी प्रकार एक स्त्री ने इंजेक्शन लिया, जिससे वह एक महीने में २ इंच लंबी हुई।

× × ×

१५. राष्ट्रीय औद्योगिक सभा

लाहौर का समाचार है कि सरदार शार्दूलसिंह

वकील की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय औद्योगिक सभा की स्थापना हुई है, जिसके मंत्री लाहौर के प्रसिद्ध रईस लाला शिवदास नियुक्त किए गए हैं। उसके उद्देश्य निम्न लिखित है—

(१) भारतीय दस्तकारी का प्रचार और उन्नति करके उनके द्वारा संसार के कला-क्षेत्र में भारतवर्ष का प्रमुख स्थान प्राप्त करना।

(२) शिक्षित-समुदाय को बेकारी और छोटी-छोटी नौकरियो से बचाकर उद्योग धधो मे उसकी रुचि पैदा करके स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने के उपायो को बतलाना तथा उसको कला-कौशल सीखने के कारखानों मे स्थान दिलाना।

(३) मिल, कारखाने और अन्य औद्योगिक संस्थाओं की स्थापना करके देशी वस्तुओं का प्रचार बढाना।

(४) कला-कौशल-संबंधी साहित्य प्रकाशित करना और हिंदी-उर्दू में दैनिक तथा मासिक पत्र निकालकर आविष्कारकों तथा व्यवसायियो को सहायता पहुँचाना।

(५) भारतवर्ष के पूँजीपतियों मे कला-कौशल के प्रचार में सहायता देने का आंदोलन उठाना और उनसे सहायता प्राप्त करके कारखाने खोलना, जिनमें उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जा सके।

(६) कला-कौशल-संबंधी सूचनाएँ देश विदेश से एकत्रित कर सभा के सदस्यों के सम्मुख उपस्थित करना और उनकी सम्मति से जनता मे उनका प्रचार करना।

(७) छोटे-छोटे व्यापारियों, पूँजीपतियों और कारीगरो का संगठन करके औद्योगिक उन्नति की योजना तैयार करना।

सभा के सारे उद्देश्य प्रशंसनीय है। हम हृदय से उसकी सफलता चाहते है।

× × ×

१६. विलायत की सौदर्य-पूजा

इँगलैंड मे सौदर्य बढाने के साधनों का आविष्कार दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। वहाँ की स्त्रियाँ अपने सौंदर्य को जीवन की एक महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक वस्तु समझती है। हाल ही मे समाचार मिला है कि पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक, केश-विन्यास का सामान—कंघे, तेल और सुगधित सेंट—बनाने के तीस नए कारखाने खोले गए है, जो लदन शहर और उसके आस-पास दक्षिणी प्रांतों मे एक ओर से दूसरी ओर तक फैले हुए है।

इस व्यवसाय के विशेषज्ञों का कहना है कि फ़िल्म अभिनेत्रियों का फ़ैशन ही इस नई उन्नति का मुख्य कारण है। इन्ही अभिनेत्रियो के पोशाक पहनने, बाल काढ़ने और शृंगार करने का ढंग दिनोंदिन जनसाधारण मे प्रचार पा रहा है, और सौंदर्य के साधनों पर दिनोंदिन व्यय बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक सुंदरी अपने बनाव-चुनाव के लिये प्रति सप्ताह एक निश्चित रकम ख़र्च करती है। इँगलैंड मे इस प्रकार सौंदर्य बढाने के द्रव्यो का व्यवसाय उन्नति कर रहा है।

× × ×

१७. क्या रबड के जूते हानिकारक है?

सभ्यता के इस युग मे जब हम सुनते है कि बचपन से रबड के जूते पहनने के कारण कितने ही मनुष्य अधे हो गए, तो हमें आश्चर्य होता है, किंतु यह एक सत्य है। जिस प्रकार बेतार के तार के लिये भूमि का स्पर्श आवश्यक होता है, उसी प्रकार मानव-शरीर को मिट्टी से अलग नही रक्खा जा सकता। रबड एक ऐसा पदार्थ है, जो पैर के तलुवों स लगकर भूमि पर दबने से बडा ही प्रतिकूल प्रभाव डालता है। रबड के जूते पहनने का प्रभाव नसों पर बडा घातक होता है। सब नसों में आँख से सबध रखनेवाले स्नायु अधिक कोमल होते है। रबड़ के जूते पहनने से उनमे क्रमशः गति-

हीनता आने लगती है, और धीरे-धीरे उनकी कार्य-शक्ति नाश होने पर मनुष्य एकदम अंधा हो जाता है। भारतवर्ष में जापान के बने हुए रबड के जूतों का प्रचार, उनके सस्ते होने के कारण, बहुत बढ गया है। पहननेवालों को परिणाम की ओर ध्यान देकर सचेत हो जाना चाहिए।

विलायत की नेशनल फिज़िकल लेबोरेटरी के एक विशेषज्ञ का कहना है कि यद्यपि अब तक कोई ऐसा सूक्ष्म अनुभवकारी यन्त्र नहीं बना, जिसके प्रयोग से उपर्युक्त प्रभाव की जाँच की जा सके, फिर भी सबसे उत्तम उपाय यह होगा कि जो लोग लगातार रबड के जूते पहनते हो, उनकी दृष्टि-शक्ति की परीक्षा की जाय। थोडे दिनों के क्रमबद्ध प्रयोग से यह सिद्ध हो जायगा कि उनकी देखने की शक्ति दिन-दिन कम होती जा रही है। आशा है, रबड़ के जूते पहननेवाले पाठक और पाठिकाएँ नेत्रों की रक्षा के विचार से उनका व्यवहार बंद कर देंगे।

× × ×

१८ विश्व की विचित्रता

अफ़गानिस्तान में, कंदहार-शहर में, श्रीशेर-अहमदखाँ की स्त्री के एक सप्ताह के अंदर तीन लडके और एक लडकी उत्पन्न होने का समाचार मिला है। माता और बच्चे जीवित हैं, और सकुशल है।

दूसरा समाचार विक्टोरिया ज़नाना अस्पताल, देहली का है। जहाँ ६ वर्ष ८ माह की एक लडकी के एक लडकी पैदा हुई। इस बाल-माता की आयु का पता लगाते हुए म्युनिसिपैलिटी ने इसकी जन्म-तिथि ८ ऑक्टोबर, १९२५ ई० बतलाई है। डॉक्टरों की एक सम्मिलित परीक्षा में भी यही आयु ठीक बतलाई गई। कलियुग की इस घटना पर विश्वास करना ही पडता है।

× × ×

१९ वेनस १९३५ कौन?

न्यूयार्क में शीघ्र ही तीस सहस्र सौंदर्य-विशेषज्ञों की एक कान्फ्रेंस होनेवाली है, जो आगामी वर्ष की सौंदर्य-प्रतियोगिता में संसार की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी अर्थात् वेनस १९३५ का निर्वाचन करेगी। वे लोग अंतर्राष्ट्रीय सौंदर्य-व्यावसायिक समिति के प्रतिनिधि हैं, और उन्होंने नीचे लिखे-अनुसार सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का आदर्श निश्चित किया है—

लंबाई	५ फुट ७ इंच
वजन	९ स्टोन ४ पौंड
वक्षःस्थल	३५ इंच
नितंब	३५ इंच
केश	सुनहला रंग लिए हुए भूरे
शरीर	गठा हुआ

संसार-प्रसिद्ध सुंदरी मिस मे वेस्ट उपर्युक्त प्रकार से अगले वर्ष पुरस्कार-विजयिनी न हो सकेगी, क्योंकि उनकी लंबाई केवल ५ फ़ुट ४ इंच है, और वज़न ८ स्टोन ७ पौंड।

× × ×

२०. मृत्यु से लड़नेवाला मनुष्य

सैन्फ्रांसिसको में कैप्टेन जॉन ड्रेयर नाम का एक व्यक्ति है, जिसका दावा है कि उसने संसार में सबसे अधिक बार मृत्यु का सामना किया है, और फिर भी उसका बाल तक बाँका न हुआ। वह कहता है—"सन् १९०६ में, जब मैं सोलह वर्ष का था, मैं इँगलैंड गया। वहाँ बंदरगाह पर जाते-जाते अचानक मेरा पैर फिसल गया, और मैं ४५ फ़ीट गहरे गढ़े में एक लकडियों के ढेर पर जा गिरा। मेरे ज़रा भी चोट नहीं आई। अगले वर्ष मैंने इटली की यात्रा की। मार्ग में दुर्घटना से मेरा जहाज़ डूब गया, और मैं ८० मिनट तक समुद्र में तैरता रहा, फिर उधर से आनेवाले एक जहाज़ ने मेरी प्राण-रक्षा की। सन् १९१२ में वैन्कोवर-द्वीप के निकट मेरा जहाज़ उलट गया, और ७० घंटे तक समुद्र में ग़ोते खाने के बाद भी मैं जीता बच गया। एक वर्ष बाद जिस इमारत में मैं रहता था,

उसमें आग लग गई। मैं सीढ़ी से उतर रहा था कि सारा मकान डगमगाकर ढेर हो गया। होश आने पर मैंने अपने को जीवित पाया। केवल कोहनी और घुटने में थोड़ा-सा छिल गया था। योरपीय महायुद्ध के अवसर पर मैं एक ट्रेन में यात्रा कर रहा था कि एकाएक शत्रुओं ने आक्रमण करके ट्रेन रोक दी। एक भद्र महिला ने भागकर मेरी गोद में शरण ली। शत्रुओं ने उसे गोली मार दी। वह मर गई। मैंने भी चार आदमियों को वहीं ढेर कर दिया। बस, फिर क्या था, सब-के-सब मुझ पर टूट पड़े, और शरीर का हलुवा बना दिया। फिर भी मैं जीता बच गया। सन् १९३१ में सैन्फ्रांसिसको में एक जहाज़ पर, जिसमें मैं यात्रा करनेवाला था, बम का धड़ाका हुआ, और उसमें आग लग गई। मैं अपने कैबिन में बंद रह गया। धुएँ से मेरा दम घुट रहा था। मैंने जहाज की छत तोड़ डाली, और भाग निकला। लोगों ने मुझे बचा लिया। एक वर्ष बाद मैं घोड़े पर सवार होकर गाँव की ओर जा रहा था कि सामने से आती हुई लारी को देखकर मेरा घोड़ा बिगड़ा, और मुझे उस पहाड़ी प्रदेशमें सौ फ़ीट नीचे खड्डे में फेंक दिया। मेरी ज़िंदगी थी, मैं बच गया।

"आजकल घर में बैठकर चैन की वंशी बजाता हूँ, और सोचता हूँ कि देखूँ, कब फिर मौत से लड़ने के लिये कमर बाँधना पड़े।"

× × ×

२१. साहित्य में समालोचना

आए दिन की हिंदी-पत्रिकाओं में जिस प्रकार के समालोचनात्मक लेख निकलते हैं, उनसे सभी परिचित हैं। किसी कवि या लेखक की उच्च स्वर में प्रशंसा या उसी प्रकार निंदा, बहुधा यही देखने में आता है। किसी पार्टी के किसी लेखक को ऊपर चढ़ाना या नीचे गिराना, आलोचकों के लिये इस लक्ष्य का दृष्टि में रखना असाधारण नहीं। आलोच्य विषय के साथ कवि या लेखक का व्यक्तित्व भी अवश्य ही घसीटा जाता है। यदि आलोचक को अमुक लेख या कवि पसंद नहीं तो उसकी कृति उसे कैसे पसंद हो? लेखक की कृति का आनंद उसके व्यक्तिगत दोषों को भूलकर हम ले सकते हैं; इस पर पाश्चात्य लेखकों ने बहुत कुछ लिखा है। फिर भी निर्विवाद एक परिणाम पर वे पहुँच गए हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। बायरन और ऑस्कर वाइल्ड के ऊपर कल तक की समालोचनाओं में आलोचकों के ऊपर उनके व्यक्तिगत चरित्र का प्रभाव स्पष्ट है, चाहे वह अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल।

व्यक्तिगत प्रोपागैंडा का दोष हिंदी-पत्रिकाओं में ही सीमित हो, ऐसा नहीं है। पाश्चात्य पत्र-पत्रिकाओं को यह रोग और भी ज़ोरों से है। वहाँ प्रतिमास, प्रतिदिन इतनी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं कि जब तक कोई पत्रिका या पत्र किसी विशेष लेखक की कृति के प्रचार का बीड़ा न उठावे, उसके प्रकाश में आने की रुपए में पाई-भर भी आशा कठिनता से रहती है। किसी नए लेखक के लिये दो-चार पत्रिकाओं में प्रोपागैंडा करने को ही बंपिंग कहते हैं। पाठकों के लिये स्वयं पुस्तकों का चुनाव करना अत्यंत कठिन होता है; अतः लाचार हो उन्हें इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं की शरण लेनी पड़ती है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं, जहाँ लेखक पत्रों के कृपा-पात्र न हो सकने के कारण अपने जीवन में उचित ख्याति न पा सके, जब कि उनसे हीन प्रतिभावालों की इन्हीं पत्रों के बल पर तूती बोलती थी।

यह सब देखकर पत्र-संपादकों और आलोचना लिखनेवालों का उत्तरदायित्व भली भाँति समझ में आ जाता है। प्रतिदिन लेखक जिस नव-साहित्य की सृष्टि करता है, उसे छानकर उसके तत्त्व को पाठकों के सम्मुख रखना आलोचक का काम है। ऐसी दशा में आलोचना को यदि पार्टी प्रोपागैंडा का एक उपाय-मात्र बना लिया जाय, तो, कहना न होगा, साहित्य की उन्नति में

भयंकर बाधा पहुँचेगी । साहित्य और समाज के प्रति अपने महान उत्तरदायित्व को समझ आलोचक को दलबंदी या वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष किंवा उसके प्रतिकूल भावों को पहले हृदय से निकाल देना होगा । अतिशयोक्ति पूर्ण निंदा व प्रशंसा साहित्य के लिये दोनो ही घातक है ।

हिंदी की किन्हीं पत्रिकाओं के आलोचना-स्तंभों पर हाथ मे तराज़ू लिए एक पुरुष का चित्र देखा जा सकता है । ऐसे चित्रों से समालोचना के प्रति जो वृत्ति स्पष्ट होती है, उसी के अनुसार आलोचक भी काम करता है । हाथ मे काँटा ले एक पलड़े मे उसने आलोच्य वस्तु रक्खी, दूसरे मे अपने सिद्धांत । तौल में जैसी वह वस्तु उतरी, वैसी ही कीमत लगा दी । ऐसी दशा मे आलोचक पहले से ही लेखक से अपने को बड़ा मान लेता है । वह चाहता है, जैसे उसके विचार हैं, उन्हीं के अनुकूल लेखक लिखे । जैसा आनद वह चाहता है, लेखक वैसा ही आनंद उसे दे । उससे भिन्न आनंद की कल्पना करना उसके लिये कठिन होता है । परंतु प्रत्येक लेखक, जो अपनी सच्ची मौलिकता से किसी कृति को जन्म देता है, अपना एक निराला वायुमंडल अपने साथ रखता है । संभव है, उसकी कृति के भीतर पैठने के लिये आलोचक को अपने सभी पूर्व विचारो को बदलना पड़े । सहृदयता-पूर्वक आलोचक जब तक ऐसा करने को प्रस्तुत नहीं रहता, वह लेखक की सच्ची आत्मा तक, जो उसकी कृति के भीतर बोल रही है, पहुँचने की आशा नही कर सकता ।

समालोचना लिखे हुए साहित्य की ही छान-बीन नहीं करती, भावी साहित्य-निर्माण के लिये वह क्षेत्र भी तैयार करती है । मैथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार समालोचना सभ्यता (Culture) के विकास का एक मुख्य यंत्र है । वह कहता है, संसार में जो सबसे अच्छा जाना या सोचा गया है, समालोचना को उसका प्रचार करना चाहिए । किसी भी साहित्य को अपनी ही सकुचित सीमाओं के भीतर न पड़ा रहना चाहिए । बाहर के विचारों की उसे सदैव जानकारी रखनी चाहिए । अपने ही ढाई चावलों की खिचड़ी पकाने से साहित्य में अनुदारता तथा संकीर्णता अवश्य आ जायगी । आर्नाल्ड ने अँगरेज़ लेखकों को सलाह दी थी, वे ग्रीक, जर्मन तथा फ्रेंच-साहित्य से परिचय प्राप्त कर अपने यहाँ नए विचारो को लावे । हिंदी-आलोचको को भी उसी प्रकार देश व विदेश के अच्छे-अच्छे साहित्यों से परिचय प्राप्त कर अपने यहाँ नए विचारो को लाना चाहिए । इससे वे स्वयं कितने आगे, कितने पीछे है, यह भी भली भाँति जान सकेंगे । अपने साहित्य का पूर्ण अध्ययन कर, अपनी संस्कृति का पूरा ज्ञान प्राप्त कर जब हम दूसरों की सस्कृति व साहित्य को पहचानेंगे, उस संघर्ष से सभ्यता का जो नया वायुमडल उत्पन्न होगा, भावी हिंदी-साहित्य की अभिवृद्धि के बीज उसी मे छिपे होंगे ।

× × ×

२२. साँप काटे की दवा

हमारे यहाँ हर साल दो लाख साँप के काटे मरते है । कहते है, ज़हरीला साँप काट ले, तो कोई काट काम नहीं करता । हमारे यहाँ ज़हरीले साँप ज्यादातर चक्रवाले है । ज़हरीले साँपो की पहचान है कि उनके चक्र होता है—वे फन काढ़ सकते है । इधर संयुक्तप्रांत मे ज्यादातर काला साँप ऐसा होता है; इसे लोग पहचानते है । पहाड़ो मे एक चक्रधर साँप होता है, उसे चंद्रबडा कहते हैं । यह फनवाले साँपो में सबसे बड़ा होता है । बंगाल में दो तरह के चक्रधर साँप और होते है । प्रायः पक्के खँडहरों में रहते हैं । इन्हें गोखुरा और खरिस कहते है ।

अमेरिका का प्रसिद्ध रैटलर भी चक्रधर है । डबल्यू वार्कले का कहना है कि विषधर सर्प एक गज़ से भी छोटे होते हैं । शायद रैटलर की यही माप हो ।

पर यहाँ के जिन साँपों का ज़िक्र ऊपर किया गया है, वे सभी गज़-भर से बड़े होते हैं, यद्यपि दूसरे साँपों को देखते हुए वे भी छोटे ही होते हैं। चद्रबडा अलबत्ता पाँच हाथ से कदाचित् लंबा होता है।

हमारे यहाँ दशक्षत पर ज़हरमोहरा रखते हैं, झाड-फूँक भी करते हैं। यद्यपि कोई अच्छी दवा अब तक ईजाद नहीं की गई ; फिर भी, कहते हैं, रोगी को एक-एक चम्मच सिरका या विनेगर तीन-तीन, चार-चार मिनट बाद दिलाते रहना तथा देह-भर में और क्षत पर विशेष रूप से उसी की मालिश करते रहना चाहिए। पेट में जलन होने लगे, तो सिरका देर से दिया जाय। यह सीधी दवा है।

सुधा-चित्रावली

श्रीयुत कृष्णानंद गुप्त

[आपका 'पदार्थ के तीन रूप'-शीर्षक लेख पृष्ठ २२१ पर प्रकाशित हुआ है । आप हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और श्रेष्ठ लेखक हैं । कहानियाँ भी सुंदर लिखते हैं । आपने अँगरेज़ी-साहित्य का ख़ूब अध्ययन किया है ।]
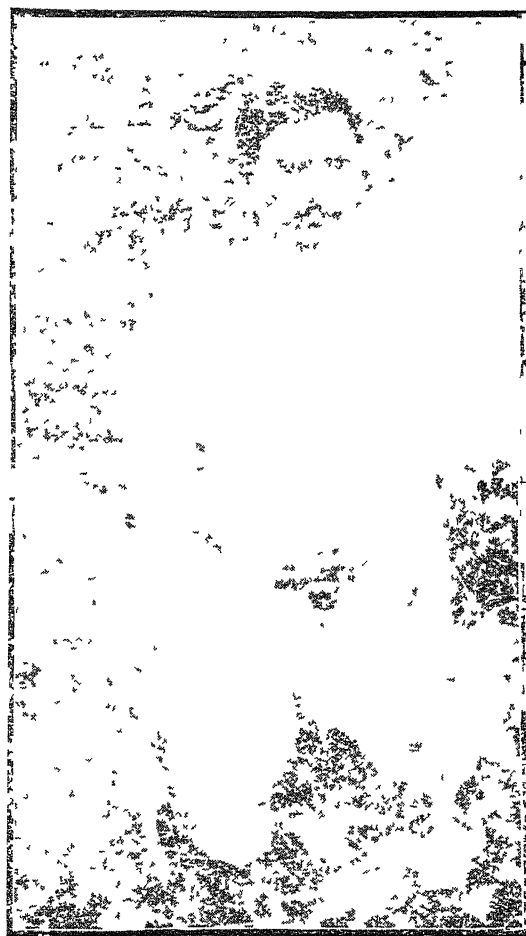
श्रीयुत हर्षवर्धन नैथाणी एम्० ए०, बी० एस्-सी०

[आपकी 'वे'-शीर्षक कहानी पृष्ठ २३६ पर प्रकाशित हुई है । आप होनहार कहानी-लेखक हैं ।]

श्रीराजरानी चौहान

[आप हिंदी की होनहार कवयित्री है। आपको प्रतीक्षा-शीर्षक कविता पृष्ठ २४१ पर देखिए।]

श्रीबुद्धिसागर वर्मा बी० ए०, एल्० टी०

[आप हिंदी के प्रतिष्ठित लेखक हैं। आपके बहुत-से लेख सुधा मे छप चुके है।]

[आप हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपकी लिखी हुई 'स्त्री-सौंदर्य और स्वास्थ्य' नामक पुस्तक शीघ्र ही गंगा-पुस्तक-माला से प्रकाशित होगी।]

श्रीपरशुराम चौबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०
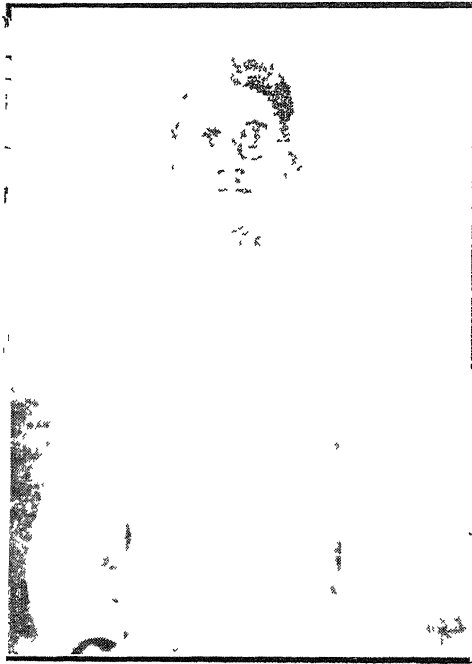
कुंवर चंद्रप्रकाशसिंह

[आप सुधा के उदीयमान कवि हैं, और लखनऊ विश्वविद्यालय मे बी० ए० में पढ़ते है ।]

[आप हिंदी के श्रेष्ठ कहानी-लेखक है। आपके कई कहानी-संग्रह निकल चुके है । सुधा मे आपकी कहानियाँ छपती रहती है ।]

श्रीपं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी
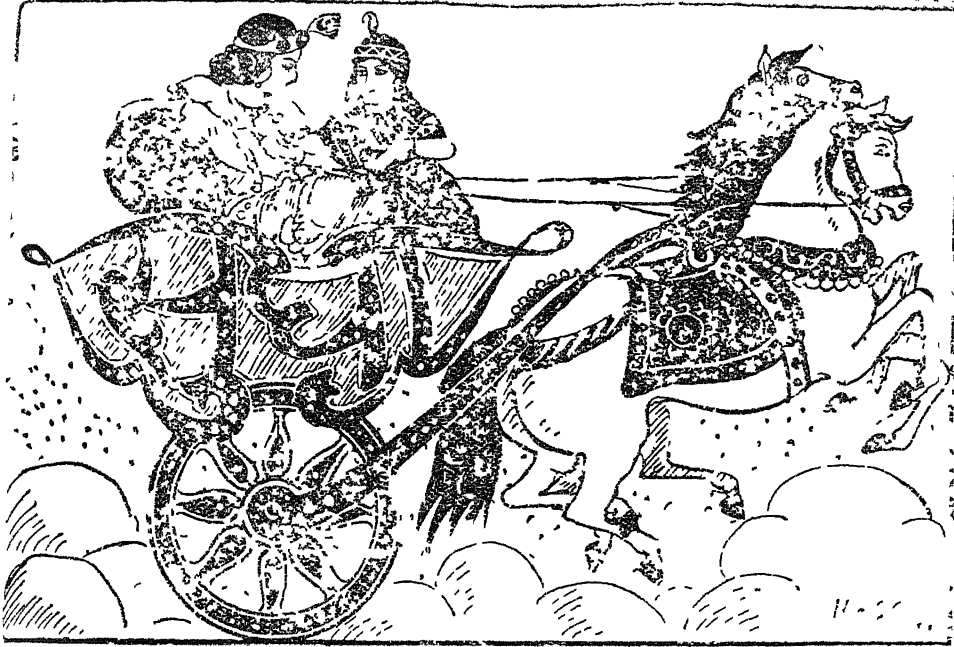
करुणा

Ganga Fine Art Press Lucknow

सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८	कार्त्तिक, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)—	संख्या ४
खंड १	नवंबर, १९३४	पूर्ण संख्या १००

किरण-गान

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा एम्० ए०]

तारे नभ मे अंकुरित हुए,
जिस भाँति तुम्हारे विविध रूप
मेरे उर मे सचरित हुए ॥तारे०॥

यह आभा है क्या कुछ मलीन —
अपने संकोचन मे विलीन ?
पर दुग्ध-धार-से किरण-गान
मुझसे मिलकर है स्वरित हुए ॥तारे०॥

देखो, इतना लघु है विकास—
मेरे जीवन के आस-पास।
पर सघन अँधेरे के समान
ही द्वार दैन्य-दुख दुरित हुए ॥तारे०॥

भीख !

[श्रीमती रामेश्वरीदेवी 'चकोरी']

निर्झरिणी की मृदु मद लहर,
सध्या का अलसाया विषाद,
उस नील व्योम की गोदी मे
शशि की मुसकानो का प्रसाद,
उस क्षितिज धरा का प्रेम-मिलन,
उन नक्षत्रों का ज्योति-जाल,
रजनी के जीवन की अतृप्ति,
सपनो का मोहक इद्र-जाल,
उस प्रकृति-प्रेयसी के मन का
मूर्च्छित-सा वह आनँद-प्रवाह
कविता की गति बन बार-बार
भर जाए जीवन मे उछाह।
मेरे गीतो मे बरस पड़े—
सौंदर्य-उदधि की सुधा-धार ;
मेरे गीतो मे चमक उठे
मन चकित करे वह चमत्कार।
मेरे जीवन का लक्ष्य मिले—
मेरे गीतो की लड़ियो मे,
मेरे कर बदी रहे सदा
इन गीतो की हथकड़ियो मे।
संगीत-सुरभि से रिक्त न हो
यह मेरे जीवन का प्याला,
भरता जाए प्रियतम इसमे
निज अमर प्रेम की मृदु हाला।
मेरे गीतो से जाग उठे
सोया वैभव, वह स्वर भर दे,
मेरे गीतो की ध्वनि-प्रतिध्वनि
जड़ को भी जीवनमय कर दे।

आजकल के चित्र तथा चित्रकार

[श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय]
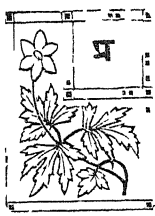
प्रकृति का यह सनातन नियम है कि अच्छा फूल देखकर सब लोगों का मन प्रसन्न होता है, और सुंदर पुष्प वाटिका सबको प्रसन्न करती है। सुंदर तथा विशाल भवन किसके हृदय को आह्लादित नही करता? अच्छा चित्र किसके मन पर प्रभाव नही डालता? इसमे लेश-मात्र भी संदेह नही, सुंदर वस्तुओ की ओर सब लोग अवश्य आकर्पित होते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन मे सुंदरता के इस आकर्षण का अनुभव करता है। इस अनुभव को हम सौदर्यानुभूति कह सकते हैं।

जब हम किसी भाव मे बिल्कुल डूब जाते है, जब हमारे हृदय मे कोई ऐसा भाव उठता है, जो हमे प्रत्येक प्रकार से अपना लेता है, जब हम लोगो का हृदय द्रवीभूत हा जाता है, जब किसी भाव अथवा विचार मे लिप्त हो जाते है, तब हम लोग एक प्रकार के अलौकिक आनंद का अनुभव करते है। इस प्रकार के अनुभव को सरस अनुभूति कह सकते हैं।

श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय

सौदर्यानुभूति तथा सरस अनुभूति ही कला की जननी

है। इसीलिये यह बात अब निर्विवाद रूप से मानी जाने लगी है कि सब प्रकार के कलाविदों में सौंदर्यानुभूति अथवा सरस अनुभूति का होना आवश्यक है। प्रत्येक प्रकार का कलाविद्—चाहे वह चित्रकार हो या कवि, संगीत-कलाविद् हो अथवा मूर्तिकार—सौंदर्यानुभूति अथवा सरस अनुभूति की ही अभिव्यंजना करता है। इसीलिये प्रत्येक कला—स्थापत्य-कला, मूर्ति-कला, चित्र-कला, संगीत-कला और काव्य-कला—ललित कला के नाम से व्यक्त की जाती है। ललित-कला में सौंदर्यानुभूति अथवा सरस अनुभूति की अभिव्यंजना की जाती है। अनुभूति तथा अभिव्यंजना सभी कलाओं में पाई जाती है, इसीलिये सब कलाएँ एक ही नाम (कला) से व्यक्त की जाती है। हाँ, उनके साधनों में अवश्य अंतर है। चित्र-कला के साधन संगीत-कला के साधन से भिन्न है। मूर्ति-कला के साधन स्थूल पदार्थ है, चित्र-कला के साधन भी स्थूल पदार्थ है, परंतु संगीत-कला तथा काव्य-कला के साधन अपेक्षाकृत सूक्ष्म है।

पूर्व तथा पश्चिम के चित्रों में एक प्रधान भेद

पूर्व तथा पश्चिम के चित्रों में एक बड़ा भारी तथा महत्त्व-पूर्ण अंतर यह है कि भारत के चित्रकार भीतरी भावों का अधिक ध्यान रखते है, और पश्चिम के चित्रकार ऊपरी तड़क-भड़क, आकार-प्रकार तथा रंगों को अपने चित्रों में प्रथम स्थान देते है। भारत के चित्रकार भावों के व्यक्त करने का अधिक प्रयत्न करते है, और पश्चिम के चित्रकार बाहरी सुंदरता को व्यक्त करना अपना प्रधान कर्तव्य समझते है। इस भेद के न समझने के कारण पश्चिम के कुछ विद्वानों में यह भ्रम फैल गया था कि भारत के चित्रकार चित्र-कला के वास्तविक रहस्य तथा सिद्धांत नहीं समझते। इन लोगों ने भारत के चित्रकारों के संबंध में यों कहना प्रारंभ कर दिया था कि ये लोग किसी के चार मुँह बनाते है, किसी का पेट बहुत बढ़ा देते है, किसी को हाथी पर चढ़ाते है, किसी को शेर पर तथा किसी को पक्षी पर। इतना ही नहीं, किसी-किसी को ये चूहे पर भी सवार करा देते है। अतएव ये चित्रकला के सिद्धांतों को नहीं समझते। परंतु ये समालोचक इस बात को नहीं जानते कि ये चित्र किन भावों को व्यक्त करते है। यदि ये इन भावों के समझने का प्रयत्न करते, तो ऐसा कभी न कहते। इस संबंध में एक उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है। यदि भारत का कोई चित्रकार श्रीकृष्णचंद्रजी तथा उनकी मुरली का चित्र खींचे, और इस भाव के दिखलाने का प्रयत्न करे कि वह आनंद में मग्न होकर मुरली बजा रहे है। ऐसी दशा में भारतीय चित्रकार के मस्तिष्क में श्रीकृष्णचंद्रजी तथा उनकी मुरली का ही विशेष ध्यान रहेगा। अतएव वह इनके अतिरिक्त अन्य पदार्थों को गौण स्थान देगा। इसीलिये, यदि वह किसी वृक्ष का चित्र भी इन्हीं के साथ अंकित करे, तो संभवतः वह श्रीकृष्णचंद्रजी से वृक्ष को छोटा

खींचेगा। भारतीय चित्रकारों का दृष्टिकोण यह है कि वृक्ष बड़ा होने से श्रीकृष्णचंद्रजी के संबंध का भाव वृक्ष के भीतर दब जायगा। भारतीय चित्रकार तो श्रीकृष्णजी तथा उनकी मुरली को चित्र में सर्वोपरि दिखलाएगा। परंतु इस चित्र को पाश्चात्य देश का चित्रकार असंगत समझेगा, और कहेगा कि ऐसा करना अस्वाभाविक है, क्योंकि वृक्ष मनुष्य से सदा बड़ा रहता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि भारतीय चित्रकार भीतरी भावों को अधिक महत्त्व देते हैं, और पश्चिम के चित्रकार ऊपरी बातों का अधिक ध्यान रखते हैं।

प्रत्येक चित्रकार को निम्न-लिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

चित्रों को सुंदर बनाने का प्रयत्न करना अत्यंत ही अधिक आवश्यक है। जिस चित्र को देखकर दर्शक वाह वाह न कर उठा, जिस चित्र को देखकर मन आनंद के मारे नाच न उठा, जिसके प्रत्येक अंग से लावण्य तथा कमनीयता न झलकती हो, वह भी क्या कोई चित्र है। चित्रों की भीतरी सुंदरता तो सौंदर्यानुभूति तथा सरस अनुभूति पर अवलंबित है, परंतु बाहरी सुंदरता के लिये रंगों का उचित उपयोग भी परम आवश्यक है। चित्रकार को इस बात का अच्छा ज्ञान होना चाहिए कि कहाँ किस रंग के भरने से चित्र की सुंदरता बढ़ जायगी। रंगों के संबंध में तूलिका का उचित उपयोग भी अत्यंत ही अधिक आवश्यक है। कौन-कौन-से रंग एक साथ खिलते हैं, और कौन-कौन-से अलग रहकर ही चित्र की शोभा बढ़ाते हैं। इन रंगों की मिलावट तथा उनके उपयोग के संबंध में विशाल प्रकृति को चित्रकार आदर्श मान सकता है। यदि कोई कलाविद् अपने चित्र में आकाश को दिखलाने का प्रयत्न करे, तो उसे चित्र में भी आकाश का वही रंग रखना चाहिए, जो वास्तव में आकाश का रंग है। रंगों की समानता तथा विषमता से चित्रकार वस्तुओं की विभिन्नता तथा विषमता भली भाँति दिखला सकता है।

अतएव जिस प्रकार कवि के लिये प्रकृति-निरीक्षण की आवश्यकता है, उसी प्रकार चित्रकार को भी। यदि वह प्रकृति निरीक्षण में कच्चा है, तो वह उसका ठीक ठीक चित्र कभी नहीं खींच सकेगा। चित्रकार को इस बात का खूब अच्छा ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि संसार की वस्तुओं में तथा उनके रंगों में क्या-क्या समानताएँ तथा क्या-क्या विषमताएँ हैं। तभी वह चित्रों में उचित रंगों का उपयोग करके उनकी सौंदर्य-वृद्धि कर सकेगा।

दूसरी बात, जिसे प्रत्येक चित्रकार को कभी नहीं भूलना चाहिए, भावों का व्यक्तीकरण है। इसी क्षेत्र में चित्रकार की कुशलता की परीक्षा होती है। कवि के लिये भावों को प्रकट करना उतना कठिन नहीं, जितना चित्रकार को। भावों को कविता द्वारा प्रकट करना सुगम है, परंतु केवल रेखाओं तथा रेखाओं और रंगों द्वारा प्रकट करना एक भारी समस्या एवं गूढ़ प्रश्न है। मान लीजिए, कोई

दो योद्धा लड़ रहे है, परंतु अभी लड़ाई नही समाप्त हुई है। दोनो मे एक जीतनेवाला है और एक हारनेवाला। इस संबंध मे अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि चित्र किस प्रकार से बनाया जाय कि केवल चित्र से ही यह पता चल जाय कि इन दोनो मे से अमुक व्यक्ति जीत जायगा। दोनो लड़ रहे है, दोनो अस्त्र-शस्त्र चला रहे हैं, दोनो की आँखे लाल-लाल है। अब यह चित्र द्वारा कैसे व्यक्त किया जाय कि अमुक मनुष्य जीत जायगा। इस भाव-प्रदर्शन मे जो चित्रकार जितना अधिक कुशल होगा, वह उतना ही अच्छा चित्रकार होगा। भाव-प्रदर्शन ही चित्र की जान है, और यही अच्छे तथा कुशल चित्रकार की पहचान है। जो भाव ऊपरी है, जिनका शरीर के ऊपर प्रभाव पड़ता है, जिन भावो के अनुकूल शारीरिक परिवर्तन स्पष्ट हो जाते है, उनको प्रकट करना चित्रकार के लिये सुगम है, परंतु उन हृदय-स्थित भावो का व्यक्त करना, जिनके अनुसार कोई शारीरिक परिवर्तन नहीं होता, बड़ा कठिन है। इन भावो को केवल कुशल चित्रकार ही व्यक्त कर सकते है। और भी बहुत बाते है, जिनकी ओर विशेष ध्यान रखना प्रत्येक चित्रकार का कर्तव्य है, परंतु उक्त दोनो बातो की कोई भी कुशल चित्रकार अवहेलना नही कर सकता।

आजकल के कुछ चित्र

आजकल पत्र तथा पत्रिकाओ मे प्रायः चित्र निकला करते है। कोई भी पत्रिका बिना रंगीन चित्रो के आजकल पूर्ण नहीं कही जा सकती। इन रंगीन चित्रो का बाज़ार इतना गर्म है कि कोई भी पत्रिका बिना रंगीन चित्रो के निकलने का साहस कर ही नही सकती। परंतु इन मे अधिक चित्र रद्दी तथा अश्लील होते है। कुछ पत्रिकाएँ तो जान-बूझकर इन अश्लील चित्रो की सहायता से जनता मे कुरुचि का प्रचार करती है, और बालको तथा बालिकाओ के हृदय एवं मस्तिष्क मे उस विष-वृक्ष को बोती है, जिसका प्रभाव हानिकारक, अवांछनीय तथा अमिट होता है। जनता को इनके विरुद्ध खूब कड़ी आवाज़ उठानी चाहिए। इसमे संदेह नहीं कि यदि कविता अश्लील हो, तो उसका भी बालक तथा बालिकाओ पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है, परंतु यदि कोई चित्र अश्लील हो, तो उसका पत्रिकाओ मे प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक अमिट तथा हानिकारक होता है। कभी-कभी तो मैंने ऐसे अश्लील चित्र देखे है, जो सभ्यता की सब सीमा के बाहर कहे जा सकते है। एक बार मैंने मीराबाई के चित्र को देखा। कोई भी नहीं कह सकता कि मीराबाई के उस चित्र की बनावट भक्त मीरा के अनुकूल है। कुछ चित्रकार बिल्कुल अनभिज्ञ की तरह चित्र बनाते है। एक बार मैंने कौशल्या का ऐसा भद्दा तथा रद्दी चित्र देखा, जो कभी एक आदर्श गृहिणी के पद को सुशोभित कर ही नहीं सकता। इस प्रकार के चित्रकार अपनी अनभिज्ञता के साथ-ही-साथ कला-ज्ञान-हीनता भी प्रकट करते हैं।

जिस प्रकार कविता के समझने और उसके भावो को हृदयंगम करने के लिये बुद्धि तथा

ज्ञान की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार चित्र के भावों के समझने के लिये भी बुद्धि तथा कला मर्मज्ञता की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी चित्रकार का सब प्रयत्न तथा उसकी कला-कुशलता, दर्शक की अनभिज्ञता के कारण, एक प्रकार से नष्ट ही हो जाती है। चित्रकार बड़ी कुशलता से एक चित्र बनाता है, और उसमे एक विशेष भाव दिखलाने का प्रयत्न करता है। यदि दर्शक इस भाव को चित्र की सहायता से नही समझ सकता, तो इसमे चित्रकार का कोई दोप नही। इससे तो चित्रकार की कला-कुशलता और दर्शक की कला-ज्ञान-अनभिज्ञता टपकती है।

उक्त बात को एक उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करना आवश्यक जान पड़ता है। 'सुधा' मे मियाँ वसंतसिह जागीरदार ने 'शतरंज'-नामक एक चित्र प्रकाशित कराया है। यह मुगल तथा राजपूत-शैली का पुराना चित्र है। शतरंज बिछी है। दो स्त्रियाँ शतरंज खेल रही है, और तीन अन्य स्त्रियाँ दूर से खेल देख रही है। बस, साधारण दर्शक चित्र मे केवल इतना ही देखेगा। इसके अतिरिक्त चित्र मे चित्रकार ने बहुत-से और भावो के दिखलाने का भी प्रयत्न किया है। परतु इन भावो को सब लोग नही समझ सकते। एक स्त्री शतरंज के बाई ओर और दूसरी दाहनी ओर बैठी है। दाहनी ओर की स्त्री इस प्रकार बैठी है, मानो वह अवश्य जीत जायगी। अच्छी तरह से ध्यान-पूर्वक चित्र के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उसे अपनी भावी विजय का केवल गर्व ही नही, प्रत्युत वह चल भी चुकी है, और बाई ओर की स्त्री की अब चाल है। इन दोनो बातो को—कौन जीतेगी, और किसकी चाल है—चित्र मे स्पष्ट रूप से दिखलाना कोई सुगम काम नहीं। इसी से चित्रकार की कुशलता सिद्ध होती है। वास्तव मे इस चित्र का बनानेवाला बहुत ही अच्छा चित्रकार रहा होगा।

इसी प्रकार का एक दूसरा चित्र 'मेघ-मलार'-नामक 'सुधा' मे प्रकाशित हुआ है। चित्रकार है श्रीईश्वरीप्रसादजी वर्मा। इस चित्र को ध्यान पूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव मे वर्माजी एक ऊँचे दर्जे के चित्रकार है। नायिका मलार गा रही है। बादल चारो ओर छाए है। इतने मे बिजली चमकती है। नायिका का मुह अकस्मात् बिजली की ओर चला जाता है, फिर भी वह पहले ही की तरह मलार गाती चली जाती है, और उसकी उँगलियाँ बाजे पर पूर्ववत् काम करती रहती है। मलार की मस्ती और बिजली की कड़क के बीच नायिका तड़फड़ा उठती है, और इसमे संदेह नही कि उसका शारीरिक आकर्षण कुछ समय के लिये बिजली की ओर हो जाता है, तथापि उसकी अंतरात्मा सदा मलार मे ही लीन रहती है। चित्रकार श्री-ईश्वरीप्रसादजी वर्मा ने इस द्वंद्व के दिखलाने का बहुत अच्छा प्रयत्न किया है, और इस में उन्हे पर्याप्त सफलता भी मिली है। जो लोग

चित्र के इस भाव को समझेंगे, वे तो इस चित्र की बड़ी प्रशसा करेंगे, परंतु जो लोग इसे न समझेंगे, वे कहेंगे कि व्यर्थ मे ही चित्रकार ने नायिका के मुँह को उल्टा सीधा खीच दिया है, जिससे नायिका का सौंदर्य नष्ट हो गया है। अस्तु।

आजकल के कुछ चित्रकार

अबदुर्रहमान चगताई

रगीन चित्रों की अपेक्षा रेखा-चित्रो का खीचना, केवल रेखाओ द्वारा सब भावो को स्पष्ट करना बड़ा कठिन है। रंगो की सहायता से चित्रकार बहुत कुछ भावो को प्रकट कर देता है, और कभी-कभी रगो को कूँचो से अपनी गलतियो को भी दबा देता है। परंतु केवल रेखा से चित्र बनानेवाले को ये सुविधाएँ प्राप्त नही है। इस लिय आजकल की पत्रिकाओ मे रंगीन चित्र तो प्रायः निकलते ही रहते है, परंतु रेखा-चित्रो का एक प्रकार से अभाव ही है। हिदी-पत्रिकाओं को इस ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

मैंने अबदुर्रहमान चग़ताई के दो-तीन रेखा-चित्र पत्रिकाओं मे देखे हैं। केवल दो-तीन चित्रों से कोई व्यापक फल निकालना सर्वदा भ्रांति-रहित नहीं हो सकता, तथापि मै यह बात तो निःसंकोच भाव से कह सकता हूँ कि इनका रेखांकन वास्तव मे प्रथम श्रेणी का होता है। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता कि रेखा-चित्र और कौन-कौन चित्रकार बनाते है, परंतु जितने रेखा-चित्र मैंने इधर पत्रिकाओ मे देखे है, उनके आधार पर यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि रेखा-चित्रो मे कोई भी दूसरा चित्रकार इनकी समानता नही कर सकता। वास्तव मे यह उन चित्रकारो मे से है, जो इस क्षेत्र मे भारत का मुख उज्ज्वल कर सकते है। सभव है, इस क्षेत्र मे चगताईजी की समानता करनेवाला कदाचित् ही कोई दूसरा व्यक्ति हो।

प्रो० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा

रगीन चित्रो मे प्रो० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा के चित्र वास्तव मे सुदर तथा मनोहर होते है। इनकी शैली प्रायः राजपूत अथवा मुगल है। अब राजपूत और मुगल-शैली मे भेद-भाव रखना एक प्रकार से कठिन-सा हो गया है। इसे हम लोग मिश्रित शैली कह सकते है। 'माधुरी' मे इनका 'रूप-सरोवर' नामक चित्र निकला है। वह चित्र 'भूपति' के एक दोहे के आधार पर बना है। इसमे सदेह नही कि जब कोई चित्रकार किसी कवि के भाव के अनुकूल चित्र बनाता है, तब उसकी स्वतंत्र कल्पना कुंठित हो जाती है, और उसे किसी निश्चित वृत्त की परिधि के भीतर से होकर ही चलना पड़ता है। तथापि यह चित्र सुंदर है। प्रो० वर्माजी के चित्र नारायण से बहुत अच्छे होते है। इनके चित्र अत्यंत ही अधिक सुदर होते है। रंगो की मिलावट भी इनकी बड़ी सुंदर होती है। 'माधुरी' मे 'वसंत-राग'-नामक इनका चित्र वास्तव मे बड़ा सुंदर है। उसमे रगो की योजना बड़ी प्रशंसनीय है।

रामप्रसादजी

रामप्रसादजी वास्तव मे एक अच्छे चित्रकार है। यह मुग़ल शैली के चित्र खींचते है। मैने 'रुबाइयात उमर ख़य्याम' मे इनके चित्र देखे है। वास्तव में इनके चित्र अत्यंत ही अधिक सुंदर होते है। इनके चित्रो के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मुगल-शैली के चित्रकारो मे इनका स्थान बहुत ऊँचा है। संभव है, इस शैली के यही सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हो। यदि इस क्षेत्र मे इनके कोई प्रतिद्वंद्वी होगे, तो उनकी संख्या अवश्य ही दो से अधिक न होगी। रंगो का उपयोग वास्तव मे यह बड़ी सुंदरता से करते है। जिस सुंदरता, ख़ूबी तथा सफ़ाई के साथ इनकी कूँची फिरती है, उसकी समानता करना इस समय असंभव नही, तो कठिन अवश्य है। पत्र-पत्रिकाओ मे इनके चित्र बहुत कम देखने मे आते है। वास्तव मे संपादको को चाहिए कि इनके चित्रो को पत्रिकाओं मे अवश्य स्थान दे, तथा प्रयत्न करके इनसे चित्र प्राप्त करे। इनके सुंदर चित्र तथा हिंदी-पत्रिकाओ के संचालको की उनके प्रति उदासीनता देखकर कहना पड़ता है—

"गुन ना हिरानो, गुन-गाहक हिरानो है।"

यह भावो को बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाते है। एक अच्छे चित्रकार मे जिन विशेषताओ का होना आवश्यक है, वे सब इनमे पाई जाती है।

रामगोपाल विजयवर्गी

रामगोपाल विजयवर्गी वास्तव मे एक अच्छे चित्रकार है। यह अभी नवीनो मे गिने जायँगे, परतु चित्रकला मे, वास्तव मे, यह अच्छा उन्नति कर रहे है। इनकी एक विशेषता यह है कि यह सभी प्रकार के चित्र ख़ूबी के साथ खीच लेते है। यह प्रायः देखा जाता है कि चित्रकार भी कवियो की तरह आलसी होते है। यदि वास्तव मे यह बात सच है, तो विजयवर्गीजी इस नियम के अपवाद है। यह बहुत-से चित्र शीघ्रता से खींच लेते है। सुना जाता है, जब यह अपने निवास-स्थान जयपुर से कलकत्ता गए, तो वहाँ कोलाहल मच गया। कलकत्ते के चित्रकारों ने इनके विरुद्ध बड़ी कड़ी आवाज़ उठाई। जिन चित्रो को वहाँ के चित्रकार महँगे दामो पर बेचते थे, उन्ही को यह सस्ते भाव बेचने लगे। इस पर कलकत्ते के चित्रकारो ने आपत्ति की, तब इन्होने उनके साथ समझौता कर लिया, और कलकत्ते के चित्रकारो ने इनके सब चित्रो को ख़रीद लिया। इससे सिद्ध होता है कि इनके चित्र कलकत्ते के चित्रकारों से यदि अच्छे नही, तो उनके समान अवश्य होते है। इसमे संदेह नहीं कि विजयवर्गीजी वास्तव मे प्रथम श्रेणी के चित्रकार है। इनका नाम भारत के चित्र-क्षेत्र मे सर्वदा अमर रहेगा। कहीं-कही पर इनके चित्रो मे जल्दबाज़ी के चिह्न अवश्य देख पड़ते है।

डी० बैनर्जी

डी० बैनर्जी वास्तव मे एक अच्छे चित्रकार हैं। इनके चित्र प्रायः पत्रिकाओ मे निकला करते है। रंगो की योजना इनकी अच्छी होती

चित्र के इस भाव को समझेंगे, वे तो इस चित्र की बड़ी प्रशसा करेंगे, परंतु जो लोग इसे न समझेंगे, वे कहेंगे कि व्यर्थ मे ही चित्रकार ने नायिका के मुँह को उल्टा-सीधा खीच दिया है, जिससे नायिका का सौदर्य नष्ट हो गया है। अस्तु।

आजकल के कुछ चित्रकार

अबदुर्रहमान चगताई

रंगीन चित्रों की अपेक्षा रेखा-चित्रो का खींचना, केवल रेखाओ द्वारा सब भावो को स्पष्ट करना बड़ा कठिन है। रंगो की सहायता से चित्रकार बहुत कुछ भावो को प्रकट कर देता है, और कभी-कभी रगो की कूँची से अपनी गलतियो को भी दबा देता है। परंतु केवल रेखा से चित्र बनानेवाले को ये सुविधाएँ प्राप्त नहीं है। इस लिये आज-कल की पत्रिकाओ मे रंगीन चित्र तो प्रायः निकलते ही रहते है, परंतु रेखा-चित्रो का एक प्रकार से अभाव ही है। हिंदी-पत्रिकाओं को इस ओर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए।

मैने अबदुर्रहमान चग़ताई के दो तीन रेखा-चित्र पत्रिकाओं मे देखे हैं। केवल दो-तीन चित्रों से कोई व्यापक फल निकालना सर्वदा भ्रांति-रहित नहीं हो सकता, तथापि मै यह बात तो निःसंकोच भाव से कह सकता हूँ कि इनका रेखांकन वास्तव मे प्रथम श्रेणी का होता है। मैं ठीक-ठीक नही जानता कि रेखा-चित्र और कौन-कौन चित्रकार बनाते है, परंतु जितने रेखा-चित्र मैने इधर पत्रिकाओ मे देखे है, उनके आधार पर यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि रेखा-चित्रो मे कोई भी दूसरा चित्रकार इनकी समानता नही कर सकता। वास्तव मे यह उन चित्रकारो मे से है, जो इस क्षेत्र मे भारत का मुख उज्ज्वल कर सकते है। सभव है, इस क्षेत्र मे चगताईजी की समानता करनेवाला कदाचित् ही कोई दूसरा व्यक्ति हो।

प्रो० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा

रंगीन चित्रो मे प्रो० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा के चित्र वास्तव मे सुदर तथा मनोहर होते है। इनकी शैली प्रायः राजपूत अथवा मुगल है। अब राजपूत और मुगल-शैली मे भेद-भाव रखना एक प्रकार से कठिन-सा हो गया है। इसे हम लोग मिश्रित शैली कह सकते है। 'माधुरी' मे इनका 'रूप-सरोवर' नामक चित्र निकला है। वह चित्र 'भूपति' के एक दोहे के आधार पर बना है। इसमे सदेह नही कि जब कोई चित्रकार किसी कवि के भाव के अनुकूल चित्र बनाता है, तब उसकी स्वतंत्र कल्पना कुंठित हो जाती है, और उसे किसी निश्चित वृत्त की परिधि के भीतर से होकर ही चलना पड़ता है। तथापि यह चित्र सुंदर है। प्रो० वर्माजी के चित्र नारायण से बहुत अच्छे होते हैं। इनके चित्र अत्यंत ही अधिक सुदर होते है। रंगो की मिला-वट भी इनकी बड़ी सुंदर होती है। 'माधुरी' मे 'वसंत-राग'-नामक इनका चित्र वास्तव मे बड़ा सुंदर है। उसमे रगो की योजना बड़ी प्रशस-नीय है।

रामप्रसादजी

रामप्रसादजी वास्तव में एक अच्छे चित्रकार है। यह मुग़ल शैली के चित्र खींचते है। मैंने 'रुबाइयात उमर ख़य्याम' मे इनके चित्र देखे है। वास्तव मे इनके चित्र अत्यंत ही अधिक सुंदर होते है। इनके चित्रो के देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मुग़ल-शैली के चित्रकारो मे इनका स्थान बहुत ऊँचा है। संभव है, इस शैली के यही सर्वश्रेष्ठ चित्रकार हो। यदि इस क्षेत्र मे इनके कोई प्रतिद्वंद्वी होगे, तो उनकी संख्या अवश्य ही दो से अधिक न होगी। रंगो का उपयोग वास्तव मे यह बड़ी सुंदरता से करते है। जिस सुंदरता, ख़ूबी तथा सफ़ाई के साथ इनकी कूँची फिरती है, उसकी समानता करना इस समय असंभव नही, तो कठिन अवश्य है। पत्र-पत्रिकाओ मे इनके चित्र बहुत कम देखने मे आते है। वास्तव मे संपादको को चाहिए कि इनके चित्रो को पत्रिकाओं मे अवश्य स्थान दे, तथा प्रयत्न करके इनसे चित्र प्राप्त करें। इनके सुंदर चित्र तथा हिंदी-पत्रिकाओ के संचालको की उनके प्रति उदासीनता देखकर कहना पड़ता है—

"गुन ना हिरानो, गुन-गाहक हिरानो है।"

यह भावो को बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाते है। एक अच्छे चित्रकार मे जिन विशेषताओ का होना आवश्यक है, वे सब इनमे पाई जाती है।

रामगोपाल विजयवर्गी

रामगोपाल विजयवर्गी वास्तव में एक अच्छे चित्रकार है। यह अभी नवीनो मे गिने जायँगे, परंतु चित्रकला मे, वास्तव मे, यह अच्छी उन्नति कर रहे हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि यह सभी प्रकार के चित्र ख़ूबी के साथ खींच लेते है। यह प्रायः देखा जाता है कि चित्रकार भी कवियो की तरह आलसी होते है। यदि वास्तव मे यह बात सच है, तो विजयवर्गीजी इस नियम के अपवाद है। यह बहुत-से चित्र शीघ्रता से खींच लेते है। सुना जाता है, जब यह अपने निवास-स्थान जयपुर से कलकत्ता गए, तो वहाँ कोलाहल मच गया। कलकत्ते के चित्रकारों ने इनके विरुद्ध बड़ी कड़ी आवाज़ उठाई। जिन चित्रो को वहाँ के चित्रकार महँगे दामो पर बेचते थे, उन्ही को यह सस्ते भाव बेचने लगे। इस पर कलकत्ते के चित्रकारो ने आपत्ति की, तब इन्होने उनके साथ समझौता कर लिया, और कलकत्ते के चित्रकारो ने इनके सब चित्रो को ख़रीद लिया। इससे सिद्ध होता है कि इनके चित्र कलकत्ते के चित्रकारों से यदि अच्छे नही, तो उनके समान अवश्य होते है। इसमे संदेह नही कि विजयवर्गीजी वास्तव मे प्रथम श्रेणी के चित्रकार हैं। इनका नाम भारत के चित्र-क्षेत्र मे सर्वदा अमर रहेगा। कहीं-कहीं पर इनके चित्रो में जल्दबाज़ी के चिह्न अवश्य देख पड़ते है।

डी० बैनर्जी

डी० बैनर्जी वास्तव मे एक अच्छे चित्रकार हैं। इनके चित्र प्रायः पत्रिकाओं मे निकला करते है। रंगो की योजना इनकी अच्छी होती

है। चाँद मे इनके कई अच्छे चित्र प्रकाशित हुए है। भावों के प्रभाव को यह खूब समझते है, परंतु भावो के अनुकूल चित्रो की नाक मे यह परिवर्तन नही करते। इसलिये इनके सब चित्रो की नाक एक ही तरह की होती है। इनके चित्रो के ओष्ठ के नीचे तथा गले के ऊपर का अंश भी सब चित्रो मे एक ही तरह का होता है। वह अंश कुछ फूल-सा जाता है, और भद्दा मालूम पड़ता है। चित्रो के इस भाग को देखकर मै शीघ्र ही पहचान जाता हूँ कि ये डी० बैनर्जी के चित्र हैं।

हकीमजी

हकीमजी एक अच्छे चित्रकार है। इनके चित्र 'सुधा' मे प्रायः निकला करते है। इनकी कूँची मे सफाई रहती है। यदि हकीमजी रंगो का यथायोग्य उपयोग करते, तो इनके चित्र इससे अधिक सुंदर दिखलाइ पड़ते। चित्रो के रंगो को देखकर मैं शीघ्र ही पहचान जाता हूँ कि ये हकीमजी के चित्र है। पिछली एक 'सुधा' के मुख-पृष्ठ पर हकीमजी का एक चित्र है। उस चित्र की बाईं बाँह का रंग विचित्र है। यदि उक्त चित्र की बाँह का वही रंग होता, जोचित्र के मुँह अथवा दूसरी बाँह का है, तो चित्र अधिक सुंदर बन जाता। मेरी प्रार्थना है कि हकीमजी रंगो के उचित उपयोग की ओर ध्यान दे। ऐसी दशा मे उनके चित्र अधिक सुंदर बन जायँगे। इसमे लेश-मात्र भी संदेह नहीं कि हकीमजी मे एक अच्छे और उच्च कोटि के चित्रकार के सभी गुण वर्तमान है। यदि यह रंगो का उचित और सौंदर्यवर्द्धक उपयोग करते, तो इनके चित्रो की सुंदरता कई गुना बढ़ जाती। रंगो से चित्रो की सुंदरता बढ़नी चाहिए। परंतु हकीमजी इस प्रकार चित्रो मे रंग पोतते है कि उनके चित्र कभी-कभी भद्दे बन जाते है।

घटना-चक्र

[श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

(१)

फ्रंटियर मेल-ट्रेन हवा से बातें करती हुई चली जा रही थी। बाबू राजीवलोचन इंटर क्लास के एक डिब्बे में बैठे हुए थे। जिस बेंच पर वह बैठे हुए थे, वह खिड़की की ओर थी। उनका सिर डिब्बे के एक छोर के तख़्ते से छूता हुआ था। बिस्तरा पूरी बेंच पर फैला हुआ था। उनके बाद उस बेंच पर केवल एक यात्री सिकुड़ा बैठा था। दूसरी बेंच पर, जो उनके ठीक सामने थी, एक युवती बैठी हुई थी। मदिर यौवन की लालिमा उसके अंग-अंग से फूटी पडती थी। सावन के मेघ जैसे गरज-गरजकर बरसते हैं, उसका सौंदर्य भी उसी भाँति गरजता हुआ दिखलाई पड़ता था।

राजीव बाबू मे गंभीरता छू भी न गई थी। हृदय-सरिता के साथ इठला-इठलाकर तैरना उनका नित्य का अभ्यास था। अपने भीतर कुछ संचित करके रखना तो उन्होंने सीखा ही न था।

बड़ी देर तक राजीव उस रमणी की सुगठित देह-राशि तथा आकर्षक वेश-विन्यास को देख देखकर उसके नयन-कटोरों में भरे हलाहल को पीता रहा। अंत मे जब उसका जी न माना, तो वह उस रमणी से यह कह ही बैठा—"शायद आप अकेली ही चल रही हैं?"

उसने मृदुल स्वर में कहा—"जी, आप ठीक सोच रहे है।"

ऐसा मोहक रूप और फिर इतना कोमल स्वर! राजीव स्तंभित हो उठा। दो मिनट तक राजीव चुप रहा, फिर बोला—"कहाँ जाना है आपको?"

"जी, मैंने तो लाहौर जाना है।" उस पंजाबी रमणी ने उत्तर दिया।

"लाहौर मुझे भी जाना है। मैंने आपको कहीं देखा भी है, पर याद नहीं आ रहा है, कहाँ देखा है।" कहता हुआ राजीव जान-बूझकर बात बढाने लगा।

अपनी अनंग-लता-सी देह-राशि के रोम-रोम को किंचित् उन्मीलन देकर बस आलुलायित-कुंतला

श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी

रमणी ने बाईं ओर की साड़ी के छोर को नीचे की ओर ज़रा-सा खिसका लिया।

अपने रेशमी कुर्ते के ऊपरवाले छपहलू सोने के बटन को खोलकर राजीव खिड़की की ओर झुककर कुछ देखने सा लगा।

तब तक उस रमणी ने कह दिया—"मुमकिन हैं, कहीं देखा हो।"

"आपका दौलतख़ाना ?" राजीव ने उस रमणी की ओर देखकर कहा।

"जी, मेरा ग़रीबख़ाना आगरे में है।" उस रमणी ने कहा।

ज़रा सा पुलक-भाव दिखलाकर राजीव बोला—"वही तो, मैं सोच ही रहा था। आगरे में मैं बहुत दिनों तक रहा हूँ। लाला यमुनाप्रसाद का नाम तो आपने सुना ही होगा, शहर के नामी रईसों में से हैं, उनके यहाँ मेरे भाई के साले की दूसरी ससुराल है।"

राजीव यह कहते हुए ज़रा भी नहीं झिझका। इस बात को वह ऐसे सपाटे के साथ कह गया, जैसे वह उस ससुराल से अभी-अभी लौटा हो। और, उधर वह रमणी ज़रा-सा मुस्किराने लगी।

राजीव बोल उठा—"क्या आप समझती हैं, मैं आपसे यह बात यों ही, झूठमूठ, कह रहा हूँ ?"

अब तो उस रमणी के दाड़िम-दशन झलक पड़े। बिहँसते हुए वह कहने लगी—"मैं ऐसा क्यों समझूँगी! आप ही फ़िज़ूल में शक डालने-वाली बात कह रहे हैं।"

कुछ देर बाद राजीव प्रसंग बदलते हुए बोला—"आपका इस्म शरीफ़ ?"

रमणी ने अपनी दृष्टि को ज़रा लहराते हुए, कुछ सिकुड़कर, कुछ शरमाकर कहा—"जी, मेरा नाम तो संध्या है।"

मुग्ध होकर राजीव मन-ही-मन कह उठा—"वाह! तुम्हारा नाम भी कैसा सुंदर है, तुम्हारी छवि के अनुरूप ही है!" फिर बोला—"मैं भी लाहौर जा रहा हूँ। मेरा यह सफ़र लाहौर के लिये पहला है। मैंने लाहौर का बड़ा नाम सुन रक्खा है। कहाँ ठहरूँ नावाकिफ़ होने के कारण, यही ज़रा दिक़्क़त है।. .धर्मशाले तो वहाँ होंगे ही ?"

संध्या बोली—"जी, धर्मशाले तो ख़ैर हैं ही, पर अगर मेरे यहाँ ठहरने में कोई हर्ज न समझें, तो मैं ही आपकी हर तरह ख़िदमत के लिये तैयार हूँ।"

राजीव का रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह मधुर कल्पनाओं के हिंडोलों में झूलने लगा।

(२)

यह भ्रमर-वृत्ति भी भगवान् की अद्भुत सृष्टि का एक जीता-जागता उदाहरण ही है। परिचय चाहे कुछ ही क्षणों का क्यों न हो, पर जनाब, किसी की तबियत को क्या कीजिएगा। जब वह मचल ही पड़ी, तो फिर किया क्या जाय।

रात हो गई है। लोग इतमीनान के साथ सो रहे हैं। पर राजीव बाबू की आँखों में नींद कहाँ। बार-बार करवटें बदल रहे हैं, नींद आती ही नहीं। एक बार संध्या की ओर देखा, तो वह भी आँखें बंद किए हुए लेटी हुई थी। वह एक झीनी रेशमी चादर से अपने को यद्यपि आपाद-मस्तक ढके हुए थी, तथापि उसके अलसाए हुए यौवन के प्रशांत अवयव भी यदा-कदा अपनी उन्मद जागरूकता प्रदर्शित कर ही देते थे।

अकस्मात् करवट बदलते हुए संध्या राजीव बाबू की ओर देखकर बोल उठी—"अरे! आप तो जाग रहे हैं! मैं तो समझती थी, आप सोए हुए हैं।"

राजीव बाबू ने ज़रा शरमाते हुए कहा—"जी, सोने की कोशिश तो करता हूँ, पर नींद भी ग़ज़ब का ग़रूर रखती है। आप सच मानिएगा, कभी-कभी घंटों इसी तरह कलपते बीत जाते हैं, लेकिन!

फिर भी जब वह नहीं आने को होती, तो नहीं आती है ।"

संध्या बोली—"बात यह है कि उसका ताल्लुक दिल से होता है ।"

"वाह ! क्या बात कह दी आपने ! लाख रुपए की बात है । बल्कि लाख रुपए भी आपकी इस बात के सामने कोई चीज़ नहीं । वाक़ई, दिल की बात दिल ही जान भी सकता है । जिसके दिल नहीं, वह इन बातों की क़ीमत क्या समझ सकेगा । लेकिन गुस्ताख़ी के लिये माफ़ कीजिएगा, आपने इस वक्त मेरे दिल की यह बात कैसे ताड़ ली ?"

संध्या मुस्किरा दी ।

और, प्रमदाओं की एक मुस्कान भी भूकंप से कम विनाशकारी नहीं होती ।

संध्या उठ बैठी, और गंभीरता-पूर्वक कहने लगी—"मुहब्बत कोई मामूली चीज़ नहीं । इसी-लिये हरएक आदमी मुहब्बत कर भी नहीं सकता । यह वह नशा है कि सर पर चढ़के बोलता है । ज़िंदगी और मौत, अमृत और विष इसके लिये एक-साँ हैं । मुझे उन आदमियों से सख्त नफ़रत है, जिनके दिल का राज़ कभी खुलता ही नहीं । ऐसे आदमी बड़े ख़तरनाक होते हैं ।"

राजीव भी अब उठ बैठा था । वह अब बग़लें झाँकने लगा । उसकी समझ ही में न आता था कि वह अब क्या कहे । जब उसे और कुछ न सूझ पड़ा, तो कहने लगा—"जान पड़ता है, आपने मनोविज्ञान (Psychology) का अच्छा अध्ययन किया है । वास्तव में प्रेम के मूल-तत्त्व को स्त्रियाँ ही अच्छी तरह से deal करने की अधि-कारिणी है ।.. अच्छा, एक बात मैं आपसे और जानना चाहता हूँ ।"

"वह क्या ?" संध्या ने कहा ।"

"आपकी शादी कहाँ हुई है ?"

"जी, मैंने अभी तक शादी नहीं की । शादी करने का मेरा विचार भी नहीं है ।" उसने बहुत गंभीरता-पूर्वक कहा ।

राजीव बोला—"आप तो, जान पड़ता है, पहेली बुझा रही है । ज्यों-ज्यों मैं आपके विषय मे जानकारी बढ़ाने की ओर बढ़ता जाता हूँ, त्यों-त्यों आप मुझे आश्चर्य-सागर मे डुबोने लगती है ।"

"जनाब, इसमे आश्चर्य की कौन-सी बात है । यह तो अपना-अपना विचार और विश्वास की बात है । हज़ारों वर्षों से पुरुष स्त्रियों पर हुकूमत करते आए हैं । स्त्रियों ने पुरुषों की हकूमत के नीचे पिसकर अपने को मिटा दिया है । स्त्रियो की हज़ारो वर्षों की ग़ुलामी का इतिहास इतना दर्दनाक है कि आजकल के पढ़े-लिखे और सभ्य कहलानेवाले लोग उस पर विश्वास तक करने को तैयार नहीं । लेकिन अब जो ज़माना आ रहा है, उसमे स्त्रियाँ पुरुषों की हुकूमत मे रह नहीं सकती । आज हरएक पढ़ी-लिखी स्त्री के सामने यह सवाल है कि वह शादी क्यो करे ।"

अब राजीव भी अत्यंत गंभीर हो उठा । उसने कहा—"आपके विचार बिलकुल पश्चिमी रंग मे रँगे हुए है । सच पूछिए, तो इन विचारों में कुछ भी सार नहीं । जिस प्रकार मानव-जीवन के लिये स्वास्थ्य की अनिवार्य आवश्यकता है, उसी प्रकार जीवन की पूर्णता के लिये उसे एक स्त्री की भी अनिवार्य आवश्यकता है । स्त्री को पाकर पुरुष मनुष्यत्व के असली मर्म को समझता है । यदि पुरुष को स्त्री के संसर्ग का कतई अवसर न मिले, तो मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि वह दीर्घजीवन प्राप्त कर ही नहीं सकता । दांपत्य जीवन मनुष्यत्व में अमरत्व की सृष्टि करता है । स्त्री के लिये पुरुष भी उतना ही ज़रूरी है, जितना पुरुष के लिये स्त्री । पुरुष को अपना हृदय दिए विना स्त्री मानव-जीवन के अमृत को पा ही नहीं सकती ।"

संध्या बोली—"परंतु दुनिया मे ऐसे कितने पुरुष हैं, जो स्त्री की इज्जत करना जानते है ?"

राजीव ने कहा—"ज़रूर बहुत कम है, परंतु मेरा तो विचार कुछ दूसरा है। मैं तो समझता हूँ कि स्त्री अपने आप अपनी मान-मर्यादा बढाने और घटाने का कारण होती है।"

"सो किस तरह ?"

"यही समझाना ज़रा मुश्किल है, क्योंकि यह व्यावहारिक बात है। अगर आप मुझे माफ़ करे, तो मै कहूँ।"

"जी, शौक़ से कहिए।"

"अगर आप मुझसे प्रेम करने लगे, और मुझे इस बात का ज्ञान हो जाय, तो आप मुझे अपना गुलाम बना सकती है। मगर शर्त यह है कि प्रेम सच्चा होना चाहिए।"

संध्या कुछ देर तक मौन रही। एक कोलाहल-सा उसके मन मे हुंकार मचाने लगा। क्षण भर में उसने कुछ स्थिर करके कहा—"क्या आप मुझे अपना पूरा परिचय देगे ?"

राजीव पहले सशंकित हो उठा, पर फिर सँभलकर गंभीरता-पूर्वक बोला—"कानपुर मे मेरे यहाँ फ़रनीचर सप्लाई का काम होता है। मेरे एक बड़े भाई है, वही सब काम देखते है। उनके दो बच्चे हैं। भाभी है, मा है, और मैं हूँ। मै अभी तक कॉलेज मे पढ़ता था। पर साल जब बी० ए० में फ़ेल हो गया, तो पढना छोड़ बैठा।"

संध्या कुछ सोचते हुए मुस्किराने लगी।

राजीव ने कहा—"सच बतलाइएगा, इस वक़्त आप क्या सोच रही है ?"

"पूछकर क्या कीजिएगा ?"

"यो ही।"

"तो मैं उसे न बतलाऊँगी।"

"और मैं बिना जाने आपको सोने न दूँगा।"

"इतनी ज़बरदस्ती !"

"फिर करूँ क्या ! लाचार जो हो गया हूँ।"

"ऐसी क्या बात है ?"

"है।"

"आख़िर, मैं भी सुनूँ।"

"अपने दिल से पूछिए।"

❀ ❀ ❀

घंटे-भर बाद।

"अभी आपने जिस बात के साथ एक शर्त पेश की थी, क्या आपको उसकी याद है ?"

"है।"

'तो क्या आप उसको उसी तरह मुझे समझाने को तैयार है ?"

"दिलोजान से।"

"तो फिर यह भी तयशुदा समझ लिया जाय कि आप लाहौर में मेरे ही यहाँ चल रहे हैं।" राजीव ने सिर हिलाकर संध्या की बात का समर्थन कर दिया। एकाएक उसे ऐसा जान पडा, जैसे वह सोते-सोते एक मधुर स्वप्न-सा देखकर अभी-अभी सजग हुआ है।

(३)

रात अधिक बीत जाने के कारण राजीव का सिर दर्द करने लगा था। थोडी देर में उसकी आँखो मे नींद का एक झोंका आ ही गया। ट्रेन लुधियाने के स्टेशन पर खडी हो रही थी। संध्या ने राजीव के बदन को ज़रा-सा झकझोरकर कहा—"बाबू, बाबू, होशियारी के साथ रहना, मै अभी आती हूँ। बडी प्यास लगी है, ज़रा शरबत पी आऊँ।"

राजीव उठने का उपक्रम करके कहने लगा—"तो मैं ले आऊँगा, आप बैठिए न।" परतु तब तक संध्या डिब्बे से उतरकर प्लेटफ़ार्म पर आ गई थी। वह बोली—"नहीं, आपको तकलीफ़ न दूँगी। मै अभी हाल लौट आती हूँ।"

संध्या का उसे छूना, उसे हिलाना और फिर

बिहँसते हुए परी की भाँति चट से उठकर, चमक-दमक के साथ तितली की तरह फुदककर चलना राजीव के मानस में हिलोर-सी उठाने लगा। वह सोचने लगा—यह नारी है कि उर्वशी, रमणी है कि स्वप्न-लोक ?

राजीव प्लेटफ़ार्म की खिडकी की ओर दृष्टि स्थिर किए बैठा रहा। धीरे-धीरे दस-बारह मिनट हो गए, पर सध्या नही लौटी। ट्रेन चलने को हुई, तो वह डिब्बे से उतरकर इधर-उधर देखने लगा। लेकिन तब तक ट्रेन चल दी। विवश होकर और यह सोचकर कि स्वाधीन रमणी ठहरी, रिफ्रेशमेंट-कपार्टमेंट में इतमीनान से बैठ गई होगी, राजीव फिर अपने डिब्बे में आ गया। कभी बैठ जाता और कभी लेट रहता। उसे चैन नहीं पड रही थी।

ज्यों-त्यों करके अगला स्टेशन आ गया। ट्रेन खडी हुई ही थी कि एक टी० टी० आई० महाशय चट आ पहुँचे। सफ़ेद-पोश लोगों पर सबसे पहले दृष्टि जाना यों ही स्वाभाविक है; फिर यह तो टी० टी० आई० ठहरे। पहला वार राजीव बाबू पर ही हुआ। बोले—"टिकट दिखलाइए।"

राजीव ने टिकट दिखला दिया।

तब उन महाशय ने कहा—"और यह सामान बुक्ड है कि नहीं ? रसीद दिखलाइए।" फिर वह दोनो बेंचों के बीच मे जो बड़ा-सा ट्रंक रक्खा हुआ था, उसे उठाने और उसका वज़न जाँचने का उपक्रम करने लगे। ट्रंक वजनी था, बडी मुश्किल से उसका एक कोना उचक सका। हैरत मे आकर बोले—"इसमे सोना है या लोहा ? बडा वज़नी है। हाँ, आपने बतलाया नहीं, इसे बुक कराया है या नही ?"

राजीव इसका क्या जवाब दे, यही तो वह सोच ही रहा था। पर उसे यह सोचते हुए देर न लगी कि यह स्थल सोचकर जवाब देने का नहीं है, उसने कहा—"देवीजी ही यह सब जानती हैं। वह पिछले स्टेशन पर शरबत पीने को उतरी थी, तब तक ट्रेन चल दी। शायद किसी दूसरे कंपार्टमेंट मे रह गई है। वह आती ही होंगी।"

"अच्छी बात है, उन्हे आ जाने दीजिए।" कह-कर वह अन्य लोगो के टिकट देखने लगे।

परंतु फिर भी देवीजी नही आईं।

टी० टी० आई० महाशय ने फिर पूछा—"क्यो साहब, आपकी देवीजी आई नहीं ?"

राजीव शर्मिंदा हो उठा। बोला—"हाँ साहब, नहीं आईं।"

"तो फिर इस सामान को यहीं उतरवाकर तुलवाना पड़ेगा। लेकिन आप यह भी तो बत-लाइए, इसमे है क्या ?"

"यह मै कैसे कह सकता हूँ; अंदाज़ से कहिए, कह दूँ, कपडे होंगे या ज़ेवरात।"

"यह देवीजी आपके साथ ही हैं न ?"

"जी।"

"आप लोग एक ही जगह जा भी रहे है ?"

"जी।"

"यह सामान इस वक्त किसके चार्ज में है ?"

"मेरे चार्ज मे।"

टी० टी० आई० महाशय उसी समय दो कुली बुलाकर उस ट्रंक को उतरवाने लगे। राजीव बाबू तब तक चित्र-लिखित-से खड़े रहे, फिर टी० टी० आई० महाशय के साथ चल दिए।

तुलने पर उस ट्रंक का वज़न दो मन के लगभग निकला। राजीव बाबू ने दस रुपए का एक नोट निकाल उन्हें दे दिया। उधर दो-चार व्यक्ति इकट्ठे देखकर सी० आई० डी० के स्टेशन-इंचार्ज भी तशरीफ़ ले आए। आपाद-मस्तक राजीव बाबू को देखकर बोले—"इसमे है क्या जनाब ?"

राजीव बाबू ने कहा—"मुझे नही मालूम।"

तब तो वह और भी सशंकित हो उठे। टी०

टी० आई० महाशय ने कहा—"यह सब इनकी देवीजी को ही मालूम है। वह शरबत पीने की बात कहकर पिछले स्टेशन से इनके डिब्बे से चली गई है, और तब से उनका इनको कुछ भी पता नहीं है।"

सी० आई० डी० इंचार्ज बोले—"मामला मशकूक मालूम होता है। लिहाज़ा ताला तोडकर ट्रंक देखना ही पडेगा।" ट्रेन अभी खडी थी। राजीव बाबू भी अब घटना के इस रूप को सावधानी से समझ रहे थे। सामान खुल जाने पर कुछ रुपए ही तो लग रहे है, अभी तक यही बात उनके सामने थी। वह सोचते थे, इस झंझट से मुक्त हो-कर फिर संध्या को खोजने की चेष्टा करेंगे। संभव है, वह उसी डिब्बे के इधर-उधर मुझे खोज रही हो।

परंतु ताला तोड़कर जब वह ट्रंक खोला गया, तो उससे इतनी बदबू फूट पडी कि सभी उपस्थित व्यक्तियो की जेबों मे पडे हुए रूमाल उनके नाक और मुँह पर जा पहुँचे। तपाक से सी० आई० डी० इंचार्ज ने कहा—"अरे! यह तो किसी शख़्स की लाश है।" कुछ लोग दो-दो कदम पीछे हट गए। तुरंत सी० आई० डी० इचार्ज ने लपक-कर बगल से जाकर उनका हाथ पकड लिया, और कहा—"अब आप अपने को हिरासत में समझें।"

(४)

फ्रांटियर मेल से उतरकर तुरत संध्या ने शरबत न पिया हो, यह बात नहीं है। उसने शरबत पिया, और ख़ूब संतोष के साथ पिया। परंतु उस ट्रेन में नहीं, स्टेशन से लगे हुए प्रीमियर होटल मे भी नहीं, वरन् सहारनपुर जानेवाली एक दूसरी ट्रेन के सेकंड क्लास के कंपार्टमेंट में। यह तो निश्चित ही था कि किसी-न-किसी प्रकार उस सारे सामान को छोड़-कर अवसर पाते ही उसे नौ-दो ग्यारह हो जाना है। परंतु एक व्यक्ति को प्रेमी बनाकर फिर उसे फँसा देने का मंशा उसका कतई नहीं था। कुछ बातचीत ही ऐसे ढंग से चल पड़ी कि घनिष्ठता बढती ही गई, और एक नया व्यक्ति, जिसने अभी दुनिया अच्छी तरह से देख भी न पाई थी, उसके निकटतम पहुँचकर उसके भीतर स्थान पाता ही गया, इसके लिये वह क्या करे। यह ठीक है कि संध्या को एक घटना की चिंता से इस समय मुक्ति मिल गई थी। परंतु इस मुक्ति के साथ-ही-साथ वह जो एक प्रेमी की जान को संकट में डाल आई है, इसका दुःख और पछतावा भी उसके हृदय मे यथेष्ट मात्रा मे था।

सहारनपुर मे संध्या की बडी बहन थी। वह एक रेलवे के इंजीनियर की पत्नी के रूप मे वहाँ रहती थी। संध्या ने सोच लिया था कि पहले वह वहीं अपने कुछ दिन व्यतीत करेगी। क्या करेगी, क्या न करेगी, इसका निश्चय करने की अभी ऐसी जल्दी ही क्या है। झुँझला-झुँझलाकर वह अपने मन ही मे उलझ पडती थी। और, इस झुँझलाहट का एक विशेष कारण यह था कि धीरे-धीरे सहारनपुर निकट आ रहा था।

पिछले दो दिनों में जो घटना घट चुकी थी, उसके कारण उसका मन अशांत था। उस अस्थिर और चिंताशील मन को बलात् स्थिर और जागरूक रखने के लिये भीतर-बाहर से अपने को कैसा कसकर रखना था, यह सोचकर वह एकाएक चकित-स्तंभित हो उठती थी। उसके जीवन मे ऐसा संयोग ही काहे को कभी आया था। इन दो दिनों में अपने को वह बहुत दुर्बल पा रही थी। और, इसीलिये जब उसकी बेचैनी कुछ बढ़ने लगती, तभी वह थोडी-सी मदिरा पी लेती थी। राजीव बाबू से लगातार वार्तालाप होते रहने मे उसे बीच मे एक बार भी फिर मदिरा पीने का अवसर नहीं मिला था। कुछ तो इस कारण और

कुछ दो दिनों की चिंता और खाने-पीने तथा सोने के असंयम के कारण उसके समस्त शरीर मे पीडा हो रही थी। और, सिर तो बहुत ही दर्द कर रहा था। तिस पर पिछली घटनाओं के चित्र बार बार उसकी कल्पना-दृष्टि के सामने घूमने लगते थे।

इस वक़्त उसके साथ केवल एक रेशमी चादर थी। उसी को ओढकर वह बर्थ पर लेट रही। बडी देर तक तो वह कुछ सोचती रही। परंतु अंत में उसे नींद आ ही गई।

संध्या वेश्या है, परंतु वैसी पेशेवर वेश्या नहीं, जिसके दर्जनों चाहनेवाले हों। वह स्थिर रूप से कुँवर नृपेंद्रसिंह की ही रखैल थी। आगरे मे उन्होंने उसकी एक कोठी बनवा दी थी। जीवन-निर्वाह के लिये उन्होंने अपनी जायदाद का एक चौथाई भाग उसके नाम बय कर दिया था। उसी की आय से संध्या का जीवन शान के साथ व्यतीत हो रहा था।

कुँवर नृपेंद्रसिंह के एक पुत्र था। और, जिस समय उन्होंने वह बयनामा लिखा था, उस समय वह नाबालिग़ था। इधर दो वर्षों से इसी के संबंध मे मुकदमा चल रहा था। कुँवर साहब के पुत्र का दावा था कि मेरी जायदाद को बय करने का मेरे पिताजी को कोई मजाज़ नही है। उन्होने विना सोचे-समझे मेरी वह जायदाद . वेश्या के क्षणिक प्रभाव में आकर उसके नाम बय कर दी है। उन्हीं दिनों यह अफ़वाह भी बहुत सरगरमी के साथ फैल रही थी कि कुँवर साहब अदालत में यह क़ुबूल करनेवाले है कि उस बयनामे पर उन्होंने नशे की हालत मे दस्तख़त किए है।

उसके बाद अभी परसों कुँवर साहब संध्या के यहाँ आए थे। रात-भर वह उसके यहाँ ठहरे भी थे, पर सबेरा होने पर वह मृत पाए गए। वह आख़िर मर कैसे गए, इसका किसी को भी कुछ पता नही चला। संध्या इस घटना से इतनी घबरा गई कि उसको ऐसा जान पडा, मानो कुँवर साहब की मृत्यु की यह घटना संध्या के जीवन को भी साथ मे ले जाने के लिये ही उसकी कोठी में हुई है। निदान, उनके शव को अपने यहाँ से गायब करना ही उसे एकमात्र अवलंब देख पडा। आज संध्या उसी शव को उस ट्रंक मे छोड आई है।

सोते सोते एकाएक संध्या उठ बैठी। प्लेटफार्म की ओर जो उसने देखा, तो सहारनपुर-स्टेशन था, और ट्रेन खडी थी। झट से संध्या ट्रेन से उतर-कर एक ताँगा करके अपनी बहन के यहाँ चल पडी। इस समय उसका मुख बहुत उतरा हुआ था, आँखे रक्त-वर्ण थीं।

(४)

कुँवर नृपेंद्रसिंह के शव की शिनाख़्त बड़ी मुश्किल से हो सकी। कारण, राजीव बाबू पकड़े गए लुधियाने मे और कुँवर साहब के संबंधियों को इस बात का क्या पता था कि कुँवर साहब अब इस संसार मे नही है।

ऐसी अवस्था मे उनकी ओर से इतनी जल्दी कोई कार्रवाई कैसे हो सकती थी। राजीव बाबू ने जब बतलाया कि वह रमणी आगरे मे अपना निवास-स्थान बतलाती थी तब आगरे की पुलिस द्वारा यह जाना जा सका कि वह कुँवर साहब का शव है। उन्होंने अपने बयान में कहा कि उस रमणी के साथ उस रात से पहले उनकी कतई जान-पहचान नही थी। अपने व्यवसाय के काम से ही वह लाहौर जा रहे थे। रास्ते मे उसके साथ उनका प्रेम हो गया। उन्हे यह भी नहीं मालूम हो सका कि वह वेश्या है। बातचीत मे जब यह तय हो गया कि वह लाहौर मे उन्हें अपने घर पर ही ठहराएगी, तब उन्होंने यह निश्चय-पूर्वक समझ लिया था कि उसने भविष्य मे उन्हे पति के रूप मे ही वरण करना स्वीकार कर लिया है। उन्हे इस बात का पूरा विश्वास था कि उसने उन्हे धोका नहीं दिया है,

और वह अगले स्टेशन पर अवश्य आ मिलेगी।

आगरा-सेशन जज की अदालत में इस सनसनीदार मामले की पैरवी देखने को दर्शकों की बड़ी भीड़ रहती थी। सध्या तवायफ़ के नाम पाँच सै का इनामी वारंट था। उसकी कोठी ख़ाली पड़ी थी, और उस पर पुलिस का पहरा था। कुँवर साहब के पुत्र राजेंद्रसिंह के यहाँ उनके संबंधियों के आने-जाने का ताँता बँधा हुआ था। उनकी ओर से पुलिस को हर प्रकार की मदद देने का पूरा प्रबंध था। क्या युक्तप्रांत और क्या पंजाब, भारत-भर मे सभी जगह संध्या के फ़ोटोग्राफ़ छपवाकर भेजे गए थे। राजीव बाबू की ओर से अलग कानपुर के दो नामी वकील पैरवी कर रहे थे। पोस्ट-मारटम से यह सिद्ध हो चुका था कि कुँवर साहब को विष दिया गया था। अब सवाल यह था कि विष खिलाया किसके द्वारा गया। पुलिस की ओर से कहा जाता था कि मुजरिम का ताल्लुक़ तवायफ़ से था, यह वह ख़ुद तस्लीम करता है। फ़र्क़ महज़ इतना है कि उसका कहना है कि ताल्लुक उसी रात को हुआ, उससे पहले कभी नहीं हुआ। मगर अदालत के सामने इस बात का कोई सुबूत नहीं कि ताल्लुक पहले से नहीं था। लिहाज़ा साफ़ ज़ाहिर है कि तवायफ़ से मुहब्बत होने की वजह से कुँवर साहब के साथ मुजरिम की दुश्मनी चल रही थी, और इसलिये उसने तवायफ़ के साथ मिलकर उन्हे ज़हर दिलवाया है। उधर राजीव बाबू की ओर से, उनके गवाहों द्वारा, यह भी साबित हो चुका था कि वह पिछले दिनों वर्षों से कहीं बाहर नहीं गए। बराबर वह कानपुर में ही बने रहे है, ऐसी हालत मे आगरे की एक तवायफ़ के साथ उनका ताल्लुक होना कभी मुमकिन नहीं। ठाकुर राजेंद्रसिंह का निजी विश्वास यही था कि जब इस तवायफ के साथ राजीव बाबू का ताल्लुक होना साबित है, तब, मुमकिन है, इसी ने उन्हे धोका देकर शरबत के साथ जहर दिलवा दिया हो। उधर ठाकुर साहब के परिवार पर, इस दुर्घटना के कारण, हाकिम की दिली हमदर्दी होना स्वाभाविक ही था। ऐसी दशा मे करीब करीब यह निश्चय था कि बाबू राजीवजीवन को सज़ा तो ज़रूर हो जायगी।

(६)

फ़ैसले का दिन था। अन्य तारीख़ों की अपेक्षा आज अदालत में भीड़ अधिक थी। सेशन जज महोदय ने तजवीज मे फोलियो-फुल्सकेप-साइज़ के आठ पेजों की बहस के बाद फ़ैसला किया था। फ़ैसला सुनाने के लिये अभी मिसिल को उन्होंने उठाया ही था कि एकाएक बाहर से, ज़ोर की हलचल के साथ, एक रमणी का आगमन हुआ। उपस्थित जन समुदाय ने उसे रास्ता दे दिया। वह एकदम हाकिम के सामने आकर कहने लगी—"पेश्तर इसके कि आप अपना फ़ैसला सुनाएँ, पहले मेरा बयान ले लिया जाय। मेरा ही नाम संध्या है।"

अदालत मे एक बार फिर हलचल मच गई। लोग एक दूसरे की ओर देखने लगे। राजीव बाबू का उदासीन मुख प्रफुल्लित हो उठा।

अब पुलिस कांस्टेबिल्स उसके पीछे हो गए थे। हाकिम ने कहा—"बहुत देर बाद आप तशरीफ़ लाईं!"

सध्या के मुँह से निकल गया—"किस्मत की बदनसीबी।"

वास्तव मे इस समय संध्या बहुत गंभीर थी। अपनी वेश-भूषा से वह इस समय एक वेश्या नहीं, वरन् एक सम्राज्ञी-सी जान पड़ती थी। उसने कहा—

"मै अगर ऐसा जानती कि अदालत मे एक दिन मुझे जाना ही पड़ेगा, तो इस मामले का न तो यह नतीजा होता, न पुलिस और अदालत को इसे समझने में इस कदर तवालत और ग़लत-

फ़हमी ही होती। लेकिन दुनिया में ऐसी कोई ताक़त नहीं, जो होनहार को रोक सके। मै किसी क़िस्म का लेक्चर देने की ग़रज़ से यहाँ नहीं आई हूँ। मेरा मंशा सिर्फ़ यही है कि इस मामले की तह तक आप पहुँच जायँ, और सच्ची बात आपसे छिपी न रहे।

"हाँ, मैं होनहार की बात कह रही थी, कौन जानता था कि जो कुँवर साहब अपनी मामूली बातचीत मे कह दिया करते थे कि मैं तुम पर जान देने को तैयार हूँ, एक दिन ऐसा भी आएगा कि वह सचमुच मुझ पर जान ही न्योछावर कर देंगे। मै यह नहीं कहती, मैं उनसे मुहब्बत करती थी। एक तवायफ़, या जो कम से कम तवायफ़ के नाम से ही मशहूर है, मुहब्बत कर ही क्या सकती है! पर हाँ, उनकी मौत ने अलबत्ता मुझे मुहब्बत करना सिखला दिया।

"शनिवार?—हाँ, शनिवार का ही दिन था। रात को करीब ग्यारह बजे कुँवर साहब मेरी कोठी मे आए। इधर तकरीबन छ महीने से, जब से मेरी जायदाद के मुतल्लिक मुकदमा चल रहा था, वह मेरे यहाँ नही आए थे। उस दिन जब वह अपनी इच्छा से मेरे यहाँ आए, तो मुझे बडा अचरज हुआ। मैंने बल्कि कहा भी था कि मुझे आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। इस पर वह बहुत शर्मिंदा हुए। इसका जवाब उन्होने सिर्फ़ एक ठंडी साँस लेकर दिया। कुछ कहा नहीं। उस वक़्त से पहले मै एक गाना गा रही थी। उन्होने कहा—'हाँ, अपना काम जारी रक्खो, बंद मत करो। मैं भी सुनूँगा।'

"बडी देर तक वह गाना सुनते रहे। अंत मे जब रात ज्यादा बीत गई, और लोग चले-चलाए गए, उन्होंने कहा—'मैं आज यहीं सोऊँगा।' मैंने उनके सोने का इंतज़ाम कर दिया। वह कुछ देर तक तो जागते रहे, मैं भी उनके पास बैठी हुई बाते करती रही। अंत मे उन्होंने कहा—'अब तुम भी सोओ।' मैं अलग एक दूसरे कमरे में सोने चली गई। सबेरा हुआ, तो यह जानकर मैं हैरत मे आ गई कि कुँवर साहब अभी सो ही रहे है। वह चाहे जब, चाहे जितनी देर से सोए हो, पर उठते सूरज निकलने से पहले ही थे। मै उनके निकट गई, तो उनको देखकर दंग रह गई। उनका मुँह खुला हुआ था, और उस पर मक्खियाँ भिनक रही थी। साँस का कहीं पता न था। बदन ठंडा पड गया था, और नब्ज़ भी एकदम बंद थी। सभी कुछ खत्म हो चुका था। देखना दूर रहा, अपनी ज़िंदगी में ऐसी हैरत-अंगेज़ मौत मैंने सुनी तक न थी। मेरा दिल दहल गया। उन दिनों मेरी जायदाद के बारे मे उनके लडके राजेंद्रसिंह से मुकदमा चल रहा था। अपनी जायदाद का चौथाई हिस्सा वह मेरे नाम से बय कर चुके थे। उसी पर राजेंद्र बाबू की उज़रदारी थी। उसी अय्याम मे यह भी अफ़वाह उडी थी कि कुँवर साहब अदालत के रूबरू यह कहेंगे कि बयनामे पर दस्तखत मैंने नशे की हालत मे किए है। मैने सोचा—मेरे खिलाफ़ उनको ज़हर देकर मार डालने का केस पूरी तरह से तैयार हो गया, अब मेरा इससे बचना मुश्किल है, इसलिये उनकी लाश को ग़ायब कर देने मे ही मैंने अपनी ख़ैरियत समझी। बाबू राजीवलोचन इस मामले मे बिलकुल बेकसूर है। अगर वह इसमें बुरी तरह से फँसे न होते, मैं अदालत में हाज़िर होती, यह मै नहीं कह सकती। लेकिन मुहब्बत की दुनिया ही दूसरी होती है। मुहब्बत की ही वजह से कुँवर साहब ने अपनी जान दे दी, और मुझ पर मुहब्बत दिखलाने की वजह से ही राजीवलोचन बाबू इस मामले मे पड गए। उन्होने मेरा पूरा विश्वास किया, यहाँ तक कि कुछ ही घंटों की बातचीत में मुझे एक पाक-दामन औरत समझकर मेरा शौहर होना मंज़ूर किया। लेकिन अब तक मेरी दुनिया दूसरे

क़िस्म की रही है। मैने कितने लोगो को धोका देकर रकमे उड़ाईं, कितने लोगों के साथ विश्वास-घात किया, उफ् ! मै उनकी बाबत क्या कहूँ !! मैंने जिस वक्त ट्रेन पर राजीव बाबू को छोडा था, उस वक्त मै यह नही जानती थी कि अपने इस काम से मैं अपनी नजरो मे खुद ही इतनी गिर जाऊँगी। ज्यों-ज्यो मैं इस मसले पर गौर करती, त्यों-त्यो मुझे अपनी ज़िंदगी से नफ़रत होती जाती थी। बार-बार यही सवाल मेरे सामने पेश हो जाता था कि क्या मेरा जन्म इसीलिये हुआ है कि मैं अपने प्रेमियों की जाने लूँ ? आख़िरकार मैंने यह तय कर लिया कि इस मामले की सचाई अदालत से ज़ाहिर किए विना मैं चैन से रह नहीं सकती। और, तब मुझे आज यहाँ हाजिर होकर अदालत के रूबरू अपनी यह दर्दनाक दास्तान सुनाने के लिये मजबूर होना पडा।''

अदालत में एकदम सन्नाटा छाया हुआ था। लोग कभी सध्या की ओर देखते, कभी हाकिम की ओर। राजीव बाबू का विचित्र हाल था। संध्या की धोकेबाज़ी पर उन्होने उसके संबंध मे जो नाना प्रकार की बाते सोच डाली थीं, उन पर उन्हे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। वह यह कभी सोच तक न सकते थे कि संध्या इतना ऊँचा उठ सकती है।

अंत में संध्या ने कहा—''अब सवाल यह है कि आखिर कुँवर साहब की मौत हुई कैसे ? पहले मैंने इस मसले पर ग़ौर नहीं किया था। मैं सोचती थी कि मुमकिन है, दिल की हरकत बंद हो जाने से ही इनकी मौत हुई हो। पर अब जब कि पोस्ट-मारटम से ज़हर का खाया जाना साबित हो ही चुका है, मुझे इस बात पर पक्का विश्वास हो गया है कि ज़रूर उन्होंने शर्म के मारे ख़ुद ही ज़हर खा लिया था। मै यह जानती हूँ कि अदालत एक तवायफ़ की हरएक बात का यकीन नहीं किया करती, लेकिन क्या उसके सामने मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि जिस तरह से सभी आदमी ख़ुदा के बंदे है, ख़ुदा की नजरों मे पापी और पुजारी, इसाफ़ के मामले मे, एक साँ हैसियत रखते है, उसी तरह से एक तवायफ की बातों पर गौर करना भी अदालत का फ़र्ज़ है।''

सेशंस जज महोदय ने कहा—''बस, इस वक्त आपका इतना बयान अदालत के लिये काफ़ी है। अब मै चाहता यह हूँ कि आप इस वक्त अपनी दस हज़ार की निजी जमानत दे दे, और इस केस की बाबत अपने बयान की सचाई साबित करने तथा अन्य ज़रूरी बाते खोज निकालने मे पुलिस को मदद करे। अब अगली पेशी तीन दिन के बाद होगी। बाबू राजीवलोचन चाहें, तो अब वह भी दो हज़ार की ज़मानत पर छोड़े जा सकते है।''

दोनो ओर से ज़मानतें दे दी गईं। कचहरी उठ गई।

(७)

अगली पेशी का दिन था। आज और दिनो से भी ज्यादा भीड थी। राजीव बाबू आज अपने असली रूप में थे—क्लीन शेव, रेशमी कुरता, मुँह मे पान भरे हुए, बंगाली कट के कुर्ते में छपहलू सोने के बटन, केश बहुत सुंदर ढंग से सँवारे हुए।

संध्या एक कामदार रेशमी साडी पहनकर आई थी। पैरों मे ऊँची एँड़ी के जूतों की जगह चप्पल थे। ललाट पर बेंदी और श्यामा रोरी थी। साडी से सिर इतना ढका हुआ था कि मस्तक के ऊपर से ही किनारी प्रारंभ हो जाती थी। उसकी आँखे रक्त-वर्ण थीं। मुँह कुछ उतरा हुआ था। ऐसा जान पडता था, जैसे वह कई दिनों से सोई नहीं है।

सेशंस जज महोदय ने ज्यो ही कुर्सी ग्रहण की, त्यों ही कोर्ट-इंस्पेक्टर ने कुँवर साहब का एक कोट अदालत के सामने पेश किया। उन्होंने बतलाया—''यह कोट मुझे तवायफ़ के यहाँ मिला है। मैंने

जो इसकी जेबें देखीं, तो इसमें कुँवर साहब की एक चिट्ठी पाई गई। इस चिट्ठी की तारीख मुजरिम की गिरफ्तारी से एक दिन पेश्तर की है। यह ज़बान हिंदी में लिखी हुई है।" यह कहकर उन्होंने वह चिट्ठी जज महोदय के सामने रख दी।

जज महोदय ने दो मिनट तक उसे देखा, फिर पेशकार को पढ़ने का आदेश किया। पेशकार ने उसे इस तरह पढ़ सुनाया—"अपनी जायदाद का चौथाई भाग मैंने अपनी तबियत से संध्या के नाम बय कर दिया था। मैंने ऐसा क्यों किया था, इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। कोई किसी को क्यों प्यार करता है, क्या इसका भी वह कोई कारण बताएगा? यह तो तबियत की बात है। मैं संध्या को कितना चाहता था, कह नहीं सकता। लेकिन चूँकि वह एक वेश्या है, इसलिये दुनिया यह सुनना नहीं चाहती। जो चीज़ मैं उसे दे चुका, चाहे जिस शकल में मैंने उसे दिया हो, दुनिया चाहती है, मैं उससे मुकर जाऊँ, मैं यह कह दूँ कि मैंने उसे नहीं दिया। मुझे दुनिया की यह बात पसंद नहीं है। जान पड़ता है, मैं इस दुनिया में रहने लायक नहीं हूँ। और, इसीलिये आज मैं उससे कूच कर रहा हूँ। मनुष्य की ज़िंदगी का कुछ ठीक नहीं है। यों भी मुझे एक दिन मरना ही है। अगर मैं झूठ बोलता, तो मेरा दिल टूट जाता। मेरी वह ज़िंदगी मेरे लिये मौत से बदतर होती। जब चार दिन के बाद दिल का टूटना ही निश्चित है, तो यही अच्छा है कि एक उसूल के लिये वह आज ही टूट जाय।"

❀　❀　❀

चिट्ठी अभी इतनी ही पढ़ी जा सकी थी। एकाएक अदालत भर में हलचल मच गई। संध्या, जो अभी खड़ी-खड़ी इस चिट्ठी को सुन रही थी, एकाएक फ़र्श पर जा गिरी। राजीव बाबू तथा उनके साथियों ने उसे सँभालने की चेष्टा की, परंतु सब व्यर्थ! जब तक डॉक्टर आए-आए, तब तक उसका शरीर निष्प्रभ-निश्चेष्ट हो गया। उसके ललाट के बीचोबीच लगी हुई श्यामा रोरी हँसने लगी।

जज महोदय अपने भीतर का उद्वेग सँभाल न सके। वह प्राइवेट रूम में चले गए। भीतर से ही उन्होंने कहला दिया—"राजीवलोचन बरी किए गए। उन्हें छोड़ दिया जाय।"

शृंगार-रस

[साहित्यरत्न श्रीपं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस']

(गतांक से आगे)

यदि लेखक स्पष्ट कथन के लिये क्षमा किया जाय, तो कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में नायिका शास्त्र से अपरिचित होने के कारण युवक और युवतियाँ मधुकर तथा मधुकरी रूप में ही अनेक पुष्पों का मकरंद चाखने की चेष्टा करती हैं। क्योंकि उनको चक और चकी की भाँति एक दूसरे के लिये प्रेमाकर्षित होने और स्वनिकेत ही मे रहने की सीख सिखाई ही नहीं गई।

सारांश यह कि यदि नायिका-शास्त्र का अध्ययन चिरकाल से छोड़ न दिया गया होता, तो आज हमारे समाज के अधिकांश भाग के स्त्री-पुरुषों का अधःपात मूक और गूँगे बनने तथा पशु-वृत्ति धारण करने के लिये न होता।

यह बात कहने को ज्यों-की-त्यों पड़ी है कि बहू-बेटियों के सामने शृंगार-रस का वर्णन कैसे किया जाय। भला कौन अपनी बहू-बेटियों को नहीं चाहता कि वे सत्कुलांगनाएँ हों, अपने पति से प्रेम करें। इसीलिये माता-पिता एवं सुहृज्जन ससुराल जाते समय पुत्री को शिक्षा देते हैं कि वह सास-ससुर तथा पति की सेवा में निरत रहे। तब शृंगार रस उनके लिये कौन-सी बला लाए देता है, जब स्वकीया नायिका का वर्णन उसके अंतर्गत पूर्ण पवित्रता के साथ किया जाता है। जैसे—

साहित्यरत्न श्रीपं० शिवरत्नजी शुक्ल

पानि चरनोदक लै उदक करत पान,
परसै पियूष पानि असन गृहेस्वरै,
पुहुमी परस पद सरस सनेह दृग,
दीठि करै पाँवडे बिमल सरवेस्वरै।
लीन लौ दरस रीझ बूझ ना छ रस एक
रस ही बरस बीते ध्यान धरमेस्वरै,
आनति गनेस्वरै न मानति महेस्वरै,
सु जानति है प्यारी प्रानपति परमेस्वरै।

यदि कोई बहू बेटी इस कवित्त को पढ़ेगी, तो उसके हृदय में अपने पति के प्रति प्रेम प्रबल होगा, यदि यह यथार्थ है, तो क्या शृंगार-रस बहू-बेटियों के लिये शिक्षण का द्वार नहीं है? यदि है, तो उनको उससे वंचित रखना बड़ी भारी भूल है।

इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि क्या सभी नायिकाओं के चरित्र इसी प्रकार के होते है। परकीया के चरित्र से तो बुराई सीखी जा सकती है ! परंतु क्या माता पिता, गुरु किसी बुरी वस्तु से संतान और शिष्य को सावधान नही करते कि अमुक स्थान, अमुक पदार्थ और अमुक विचार के मनुष्यों से बचे रहना चाहिए, अन्यथा उनके संसर्ग स दुःख पहुँचेगा। अपने हितैषी की शिक्षा का प्रभाव ऐसा पडता है कि शिक्षित व्यक्ति उनसे सदा सावधान रहने का प्रयत्न करता है, और वह उनके चक्र में नही आता। अतः यदि बहू बेटियों को पति से प्रेम करने की शिक्षा के साथ परकीया कुलटादिकों से और उनकी अंतिम यातनाओं से परिचित करा दिया जाय, तो वे अपने और अपने पतियों को उनसे बचाने मे समर्थ होंगी। चोरी से वही बचता है, जो चोरी करनेवाले की तरकीबों को जानता है। वर्तमान समय मे साधारण स्त्रियाँ बड़े-बडे घरो की बहू बेटियों को बहका ले जाती है, क्योकि वे बेचारी उन दुष्टाओं की चालों से जानकार नहीं। उसी के साथ जो स्त्री इनकी माया से परिचित है, उसके सम्मुख ये भूतनी दूतियाँ जाने का साहस नही करतीं। ऐसी शिक्षित स्त्री अपने को सब प्रकार की बुराइयों से बचाने मे समर्थ होती है। तब यह कहना कि बहू-बेटियों के सामने शृंगार रस का ज़िक्र न करना चाहिए, जोखिम से ख़ाली नही।

एक यह भी दोष लगाया जाता है कि शृंगार रस से मन बहँक जाता है। मन उसी का बहँकता है, जो अनुभव-हीन है, जिसे विधान-पूर्वक शृंगार रस की शिक्षा नहीं दी गई, जो उस वाटिका से अपरिचित है, जिसके किनारे परकीया-कुलटादि-रूपी काँटे लगे है, और जिनमे उलझकर वह जीवनानंद से दूर हो जाता है। यदि उसे शिक्षा मिली होती, तो उसे ज्ञात होता कि ये परकीयादि तो स्वकीया-रूपी फलद वृक्षावली के रक्षार्थ बाहर किनारे रक्खी गई हैं। शिक्षित व्यक्ति शृंगार-रस-वाटिका के संयम-रूपी राजद्वार से प्रविष्ट हो सीधे सदाचार रूपी मध्य भाग में पहुँच स्वकीया-आम्र-मंजरी की महँक से प्रमुदित होता है। अत. मानना पडेगा कि बिना रसराज की शिक्षा के युवक-युवतियों का अधिकांश अनर्थ कर रहा है। इस बुराई से बचाव तभी होगा, जब रसराज की शिक्षा देने के लिये समाज उद्यत होगा। दंपति रूप मे परिणत होने के लिये तो सभी अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह करते है, पर उनमे परस्पर आजन्म प्रेम रहे, इसकी चिंता नहीं की जाती। परिणाम यह होता है कि बहुधा पुरुष तो पर-स्त्री मे और स्त्री पर पुरुष में रत हो जाती है, और फिर दोनो के हृदयों मे एक दूसरे के लिये प्रीति नहीं रह जाती।

शृंगार-रस के संबंध मे एक बात यह भी कही जाती है कि नायिकाओं की चर्चा किसी सभा-समाज मे करना अपने को दूसरों की दृष्टि मे शृंगारी दिखलाना है। स्पष्ट कथन है कि जैसे वदन को छोड शरीर के सब अंग वस्त्राच्छादित किए जाते है, उसी प्रकार सभा-समाज मे शृंगार-रस का वर्णन शिष्टता-पूर्वक किया जाय, तो हानि नहीं। उसका वह भाग, जो दंपति के विहार स्थल ही मे रिज़र्व रहना चाहिए, बाहर न प्रकट करे।

यदि शृंगार रस का वर्णन शिक्षार्थ हो, तो उससे लाभ के अतिरिक्त हानि किसी काल में नहीं हो सकती। यदि उसके द्वारा पातिव्रत और पत्नीव्रत की शिक्षा दी जाय, तो स्त्री और पुरुष दोनो की प्रवृत्ति सुपथ की ओर झुक जाय, जिससे संतान भी सत्पथावलंबी हो।

पर आजकल तो पर पुरुष-पूर्वानुराग, परकीया, वचन-विदग्धा, क्रिया-विदग्धा, अनुशयनादि ही की चर्चा सुन पड़ती है। उसी प्रकार दक्षिण और शठ नायक-रूप में ही युवकगणों का अधिक भाग देखा जाता है। इसका प्रधान कारण शृंगार-रस

की विधिवत् शिक्षा का न होना है। यदि समाज-सुधारक चाहते हों कि उनके समाज में यथेष्ट सुधार हो, तो उन्हें युवकों तथा युवतियों की ऐसी शिक्षा का, जिससे वे परस्पर दंपति-रूप में एक दूसरे की ओर आकर्षित रहें, प्रबंध करना चाहिए। यदि सदाचारी वृद्ध शिक्षक एवं सदाचारिणी वृद्धा शिक्षिका युवकों और युवतियों को योग्य पति तथा पत्नी बनने के लिये शिक्षा दें, तो वर्तमान वातावरण के होते हुए भी उनके हृदयों में सदाचार एवं धर्म को स्थान अवश्य मिले। फिर जैसे स्वल्पांश रूप में ओषधि सर्व-शरीर व्याप्त रोग को समूल नष्ट कर डालती है, वैसे ही उनके हृदयों से अनात्मिकता की बाढ़ भी दूर हो जायगी।

आजकल युवक-युवतियों का अधिकांश योरपीय समाज की नकल करता है। वे केवल इतना ही विचार करते हैं कि योरप-निवासी अपने व्यवहार से सुखी हैं, इसलिये उन्हीं का हमें भी अनुकरण करना चाहिए। इसी कारण इनकी वेश-भूषा एवं विचारों में विलायती ढंग द्रुतगति से समा रहा है।

योरप के स्त्री-पुरुषों की दृष्टि बहिर्मुखी है। वे बाह्य भाग के सँवारने में कुशल हैं, पर उनमें अंतर्वेदना महाघोर रहती है, क्योंकि उनका झुकाव अनात्मिकता की ओर बढ़ रहा है। उनके स्नेह का कारण उनका स्वार्थ होता है। जहाँ उनके स्वार्थ में बाधा पड़ी, वहाँ बालू के कणों की भाँति दंपति पृथक् हो जाते हैं। क्या ऐसे समाज की हमें नकल करनी चाहिए? हमारे समाज के संस्कारांश तक धर्म से संबंध रखते हैं, जिससे दंपति का संयोग आत्म-संबंधी समझा जाता है, अर्थात् आत्मोन्नति के लिये स्त्री-पुरुष एक दूसरे के कारण होते हैं। इस जन्म में जो स्त्री-पुरुष दंपति-रूप में परिणत हुए हैं, उनके संबंध पूर्व जन्म से हैं। यदि गंगा की धारा में नाव बही चली जाय, तो एक दिन वह अवश्य समुद्र में पहुँच जायगी। अस्तु। जो दंपति धर्मानुकूल जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें अवश्य आत्म-प्राप्ति का सुख मिलेगा। सारांश यह कि हमें पश्चिमीय लोगों का अनुकरण लाभदायक नहीं। तब यह कह देना कि योरपवाले श्रृंगार-रस का वर्णन नहीं करते, तो हमें भी न करना चाहिए। उनका अनुकरण सामाजिक बातों में तो न करना चाहिए। पर यह बात सत्य नहीं है कि उनके यहाँ श्रृंगार-रस का वर्णन नहीं किया गया। कवि शेली कहता है—

At successive intervals Aristo, Tasso, Shakespeare, Spenser, Calderon have celebrated the dominion of love, planting as it were trophies in the human mind of that sublimest victory over sensuality and force

(समय समय पर अरिस्टो, टेसो, शेक्सपियर, और स्पेंसर कालडेरन ने श्रृंगार के राज्य को प्रतिष्ठित कर मानवीय मन में शारीरिक सुखासक्ति और बल के ऊपर उसका विजय-चिह्न स्थापित किया है।)

कवि स्कॉट कहता है —

Love rules the court, the camp, the grove and men below and saints above, for love is heaven and heaven is love.

(प्रेम राजशाला, सेना, उपवन में और नीचे मनुष्यों पर और ऊपर संतों पर शासन करता है, क्योंकि प्रेम स्वर्ग है, और स्वर्ग प्रेम।)

कॉलेरिज का कहना है—

He prayeth best who loveth best.

(वही भगवान् का ख़ूब भजन करता है, जो ख़ूब प्रेम करता है।)

टेनीसन का विचार है—

It was my duty to have loved

even the highest, अर्थात् मेरा कर्तव्य है कि सर्वश्रेष्ठ ईश्वर के भी साथ प्रेम करूँ।

अतः सब समाजो ने श्रृंगार-रस के आधिपत्य को माना है, क्योंकि वह प्रकृति-संबंधी है, और प्रकृति मैथुनी है। मैथुन से ही स्त्री-पुरुषों की उत्पत्ति है। तब यह स्वाभाविक ही है कि हममे श्रृंगार-रस का आधिपत्य रहे। यह हो सकता है कि भिन्न-भिन्न समाज भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से उसे अपनावे, पर वे उसके अपनाने के लिये विवश है। प्राचीन काल मे जो ऋषि-मुनि आत्मदर्शी थ, उन्होने भी श्रृंगार-रस का विशद वर्णन किया है। जैसे आदि कवि वाल्मीकिजी कहते है—

मीनोपसंदर्शितमेखलानां
नदीवधूनां गतयोऽद्य मन्दाः,
कान्तोपभुक्तालसगामिनीनां
प्रभातकालेष्विव कामिनीनाम्।

(मछली रूपी करधनी को जिन्होंने दिखलाया है, ऐसी नदी-वधुओ की गति आज मद हो गई है। जिस प्रकार पति के द्वारा उपभुक्त स्त्रियाँ प्रात.काल धीरे धीरे चलती है।)

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः,
नवसंगमसव्रीडा जघनानीव योषितः।

(शरद् की नदियाँ धीरे-धीरे अपना तीर प्रकाशित करती हैं। जिस प्रकार नवसंगम के समय लज्जा रखनेवाली स्त्री संकोच के साथ जघन खोलती है।)

तारा लक्ष्मण से कहती है—

न कामतन्त्रे तव बुद्धिरस्ति
त्वं वै यथा मन्युवशं प्रपन्नः।

(हे लक्ष्मण, आपने क्रोध किया है, इससे मालूम होता है कि आपको काम-शास्त्र का ज्ञान नहीं है।)

महर्षयो धर्मतपोभिरामाः
कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः।

(जो धर्म और तपस्या से शोभित है, जिन्होंने मोह को जीत लिया है, वे महर्षि भी कामाभिलाषी होते है।)

आधुनिक काल मे भी श्रृंगार-रस से कोई भी दूर नही देख पडता। यद्यपि श्रृंगार-रस अश्लीलता-पूर्ण कहा जाता है, पर उसी के पीछे चलने मे विवश हैं। पं० सुमित्रानंदन पत कहते है—

नाच उठता है क्या मन-मोर?
आ रहे है मेरे चित-चोर।
कौन तुम रूपसि कौन?
लाज से अरुण-अरुण सुकपोल,
मदिर अधिर की सुरा अमोल।
कहाँ जाती तुम कौन—
मधुर मंथर मृदु मौन?

कविवर पं० दुलारेलाल भार्गव कहते है—

था छलक रहा यौवन-प्याला
पोना मैंने जब शुरू किया।

श्रीमती महादेवी वर्मा वर्णन करती है—

चाहता है यह पागल प्यार—
अनोखा एक नया संसार।

चाहे कोई कितना ही छिपावे, श्रृंगार रस की झलक तो अवश्य ही देख पड़ेगी। हमारा शरीर, मन, बुद्धि, सब श्रृंगारमय है, तब हम इससे भागकर जा कैसे सकते है, और जायँ, तो बच कब सकते है। हाँ, दिखावा चाहे करे कि हम उसके विरोधी है। प्राचीन काल मे श्रृंगार-रस की युवक-युवतियों को शिक्षा दी जाती थी, इससे वे स्वयंवर मे अपने अनुकूल पति चुनने मे समर्थ होती थी। और, अन्य युवतियाँ, जिनके यहाँ स्वयंवर की प्रथा नहीं थी, पति को दीक्षित यौवन-कुशलता से वश मे रखती थी। यदि समयोचित श्रृंगार-रस द्वारा युवक और युवतियो को सदाचार की शिक्षा दी जाय, तो समाज से बहुत कुछ बुराई, जो पश्चिमीय सभ्यता के कारण प्रविष्ट हो गई है, दूर हो जाय।

(समाप्त)

योरप विनाश के पथ पर

[श्रीशीतलासहाय बी० ए०]

युद्ध के चिह्न

शस्त्रीकरण-कान्फ़्रेंस की संपूर्ण असफलता, जर्मनी और फ़्रांस की चिर-अंतर्दाहिनी विद्वेषाग्नि, योरपीय राष्ट्रों की आंतरिक अशांति-पूर्ण अवस्था और उनकी सशस्त्र बनने की घुड़दौड़ इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि अभागा योरप विनाश के पथ पर जा रहा है। संभव है, अभी साल-दो साल ये राष्ट्र आपस में युद्ध न करें, क्योंकि तैयार नहीं हैं। लेकिन इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि अगर यही हालत रही, तो एक-न-एक दिन योरप में महाभयंकर युद्ध हुए बिना न रहेगा।

२४ अगस्त को एक परिषद् में इटली के डिक्टेटर मुसोलिनी ने अपने भाषण में स्पष्ट कहा है—"योरप में कोई युद्ध नहीं चाहता, लेकिन युद्ध तो योरप के वातावरण में प्रवेश कर गया है, और न जाने किस क्षण छिड़ जाय। हम लोगों को युद्ध के लिये बिलकुल तैयार रहना चाहिए। आज नहीं, तो कल।' उस दिन जब आस्ट्रिया के चांसलर डॉ० इंजलबर्ट डालफ़स की हत्या हुई, संसार थर्रा गया कि १९१४ के समान १९३४ में भी आस्ट्रिया के झगड़े के कारण योरप में लड़ाई न छिड़ जाय।

श्रीशीतलासहाय बी० ए०

१९१४-१९३४

जिस समय योरपीय महायुद्ध चल रहा था, लायड जॉर्ज आदि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कहते थे कि यह युद्ध संसार से युद्ध को सदा के लिये समाप्त करने के उद्देश्य से लड़ा जा रहा है। जब वरसई की संधि हुई, तो आदर्शवादी राजनीतिज्ञों के बड़े लंबे-चौड़े भाषण हुए, राष्ट्र-संघ का निर्माण हुआ, और संसार के हृदय में यह आशा बँध गई कि सतयुग आ रहा है। किंतु आज हम देखते हैं कि संसार ख़ूब बेवक़ूफ़ बना। राजनीतिज्ञों के भाषण निस्संदेह बहुत सुंदर और

मनोहर थे। लेकिन उन भाषणों की बुनियाद बड़ी कमजोर थी। अमेरिका के प्रेसीडेंट विलसन की बातों से यह पता चलता था कि राष्ट्र-सघ ऐसी शक्तिशाली सस्था बनेगा कि राष्ट्रों को न लड़ने देगा, और न आवश्यकता मे अधिक उन्हे सशस्त्र होने देगा। लेकिन १९३२ मे जब जापान ने चीन के पूर्वीय भाग पर कब्जा कर लिया, और राष्ट्र-सघ कुछ कर धर न सका, उस समय सारे संसार को राष्ट्रसंघ से जो आशाएँ थी, जाती रही।

सन् १९१४ मे शांति कायम रखने के लिये केवल एक मार्ग था। वह यह कि हरएक राष्ट्र अपनी फ़ौज मज़बूत करे, और दूसरे राष्ट्रो से इस बात की संधि कर ले कि अगर दुश्मन उसके ऊपर चढ़ाई करे, तो दूसरे उसे मदद दे। जैसे इँगलैंड और जर्मनी मे महायुद्ध के पहले गहरा मनोमालिन्य था—इँगलैंड को जर्मनी से डर था, और जर्मनी को इँगलैड से। इसलिये इँगलैड ने फ्रांस और रूस से समझौता कर लिया था कि जर्मनी अगर उस पर या वह जर्मनी पर आक्रमण करे, तो ये लोग उसकी मदद करें। इस प्रकार महायुद्ध के पहले एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रो से संधि करके अपने विरुद्ध राष्ट्रो की शक्ति को सतुलित रखता था। उनका सिद्धांत यह था—"अगर शांति चाहते हो, तो युद्ध के लिये तैयार रहो।" आज १९३४ मे भी योरप की वही दशा है। आज भी योरप के सब राष्ट्र यही कह रहे है—"अगर शांति चाहते हो, तो युद्ध की तैयारी करो"।

१९१४ मे योरपीय सेना

	संगठित सेना	पौंड खर्च
रूस	५४००,०००	७८,६३८७६१
फ्रांस	५,३००,०००	४० ४२८,२२४
ग्रेटब्रिटेन	८०३,१२८	२८,६६६,२३०
इटली	३,३८०,०००	१६,००५,०४६
अमेरिका	२१३,४४५	१८,८४५,८९
जापान	१ ४००,०००	९४०७५६३
रूमानिया	५८०,०००	
बेलजियम	३४०,०००	
यूनान	१५०,०००	
पुर्तगाल	१५०,०००	
जर्मनी	५,४००,०००	५८६५७८३१
हंगरी	३,६००,०००	४७०३७८०९
टर्की	१,९२८,७१५	
बलगेरिया	५५० ०००	
	२,९१ ४५,२८८	२८,०७ २६,०५३

१९१४ में तीन समस्याएँ थी, जिनके हल न होने के कारण सारा योरप एक महीने के अंदर बारूद के ढेर के समान प्रज्वलित हो गया था। एक समस्या तो यह थी कि इँगलैड और जर्मनी मे जल सेना-संबंधी भयंकर प्रतिस्पर्धा थी, जो किसी तरह शांत नही होती था। दूसरी समस्या यह थी कि फ्रांस चाहता था, राइन प्रांत उसके वश में आ जाय। तीसरी समस्या यह थी कि रूस और आस्ट्रिया बालकन प्रांत के ऊपर अपना-अपना प्रभुत्व जमाना चाहते थे। १९३४ मे भी वैसी ही पाँच न सुलझ सकनेवाली समस्याएँ योरप के सामने पेश है। पहली समस्या यह है कि सारा योरप इस समय दो परस्पर विरुद्ध दलो मे बँट गया है। एक दल वरसई की संधि को बदलना चाहता है, और दूसरा उसे कायम रखना चाहता है। जिन लोगों ने लड़ाई जीती है, वे चाहते हैं कि जो कुछ उन्हें मिला है, उनके पास बना रहे, और जो हारे हैं, वे इस फ़िक्र में है कि युद्ध मे जो कुछ खोया है, वह किसी-न-किसी तरह वापस मिल जाय।

बरसई की संधि को जो तब्दील करना चाहते हैं, उनका कथन यह है कि बरसई-संधि ने जो घोर अन्याय किया है, वह अगर न मिटाया गया, तो योरपीय राजनीतिक क्षेत्र मे एक दिन बम के गोले की तरह धड़ाका होगा, जिसमे संभव है, संपूर्ण योरप नष्ट हो जाय। जो दल इस संधि को कायम रखना चाहता है, वह यह कहता है कि वर्तमान परिस्थिति मे जहाँ कोई परिवर्तन करने की कोई भी कोशिश की गई, झगड़े बेहद बढ़ेंगे, और स्थिति सँभालना मुश्किल हो जायगा। सबसे बड़ी बात इनके पक्ष की यह है कि कोई राष्ट्र जीता हुआ देश ख़ुशी-ख़ुशी देने को तैयार नहीं होता।

दूसरी समस्या रूस और जापान की है। इन दो राष्ट्रों मे किसी क्षण युद्ध छिड़ सकता है। जापान चीन में अपना प्रभुत्व बढ़ाता जाता है। जापान ने चीन के दशांश भाग पर अपना राज्य भी कायम कर लिया है। चीन के व्यापार का चतुर्थांश भाग इस समय जापान के हाथ मे आ गया है। रूस जापान की इस बढ़ती हुई शक्ति को अपने लिये प्राणघातक मानता है। दोनो के दृष्टिकोण और आदर्श मे ज़मीन-आसमान का अंतर है, इसलिये युद्ध की आशंका बराबर बनी है।

तीसरी समस्या है आस्ट्रिया की, जिस पर इस समय इटली यह चाहता है कि मेरा प्रभाव जम जाय, और जर्मनी चाहता है कि मेरा। आस्ट्रिया के चांसलर डॉक्टर डालफस की हत्या के पीछे अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ छिपी हुई हैं, जिसका सविस्तर हाल आगे दिया जाता है। चौथी समस्या यह है कि जर्मनी और फ्रांस मे जितना खिचाव आज है, पहले शायद ही कभी रहा हो। यद्यपि मुँह से दोनो देशों के शासक और राजनीतिज्ञ यही कहते हैं कि हम लोग युद्ध नही करना चाहते, लेकिन जिस तेज़ी से ये दोनो राष्ट्र अपने को सशस्त्र बना रहे है, उससे यही नतीजा निकलता है कि आज नही, तो कल फ्रांस और जर्मनी विना लड़े न मानेंगे। इन अनेक कारणों से योरप में जो युद्ध छिड़ेगा, उसमें केवल अनेक राष्ट्र ही नष्ट न होंगे, बल्कि इसमे सारी योरपीय सभ्यता के भस्म हो जाने की संभावना है।

१९३४ मे योरपीय सेना

	साधारण सेना	हवाई सेना	खर्च
रूस	१६२१००००	७५०	२२३७६३४००
फ्रांस	६९५२२१३	३०००	१०७०२३२८
इँगलैंड	११४१९८७	१४३४	५५६१८२८८
इटली	६४९५५२३५	१५०७	५५४१४२८९
अमेरिका	८४४६६१	२३५१	५५४१००७६
जापान	२१७८०००	१९३९	६१०३८०८०
रूमानिया	१६००८२७	७९९	११२७५१६९
बेलजियम	५९४२२४	१९५	८००८६८५
यूनान	५८३४५०	१२०	५२१३१२०
पुर्तगाल	४१९८००	१३०	४७१७३१८
जर्मनी	११००५००		३८८०००००
आस्ट्रिया	३००००		३८०८०००
हंगरी	३५०००		५२६१३४०
टर्की	६६५८००	५०	
बलगेरिया	३३०००		
	३,८८,८४,९९७	१२,२७५	६३,९०,२०,०९३

डॉ० डालफस की हत्या

डॉक्टर इंजलबर्ट डालफ़स की हत्या इस समय योरप मे सबसे अधिक सनसनीदार और दुःखजनक घटना है। डॉक्टर डालफस आस्ट्रिया के प्रमुख शासक थे। इन्होंने आस्ट्रिया में अपनी राजनीतिज्ञता से दिखावे की शांति कायम कर रक्खी थी, हालाँकि अनेक आस्ट्रियन राजनीतिक दल अंदर-ही-अंदर इनसे बहुत रुष्ट थे। डॉक्टर

डालफस का जन्म ४ ऑक्टोबर सन् १८९२ ई० मे, टेकसिंग-नगर मे, हुआ था। इसलिये योरप-भर के डिक्टेटरों मे यह सबसे कम उमर के थे। योरपीय महायुद्ध के समय इनको कोई नही जानता था। इन्होने कुछ दिन तक आस्ट्रिया मे किसानो का सगठन किया, और अनेक प्रांतों मे किसान-सभाएँ बनाई, जिनका राष्ट्र-निर्माण पर बडा अच्छा प्रभाव पड़ा। सन् १९३१ म यह कृषि-विभाग के सचिव नियत किए गए। यह क्रिश्चियन साम्यवादी दल के जन्म-दाता थे। डॉ० डालफ़स की हत्या का कारण समझने के लिये हमे आस्ट्रिया की आंतरिक और अतर्राष्ट्रीय स्थिति समझनी होगी।

डॉक्टर डालफ़स के दल के अलावा आस्ट्रिया मे इस समय तीन बहुत प्रबल दल है—पहला सोशल डेमोक्रेटिक दल, दूसरा नाज़ी लोगों का दल, तीसरा राजकुमार स्टार हेमबर्ग का दल।

डॉ० डालफस

'सोशल डेमोक्रेटिक' दल के सिद्धांत बहुत कुछ रूसी बोलशेविकों मे मिलते हैं। योरपीय महायुद्ध के बाद आस्ट्रिया का शासन इसी दल के हाथ में था। सच तो यह है कि आस्ट्रियन प्रजातंत्र के निर्माण मे इस दल ने बडी सहायता की थी। इस दल मे डॉक्टर कार्ल रीनर, डॉक्टर कार्ल सिज ऐसे अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने आस्ट्रिया के मज़दूरों और वियना के बेकारो के लिये बहुत कुछ काम किया है। इन्हीं लोगों के शासन काल मे वियना के मज़दूरो के लिये म्युनिसिपैलिटी की तरफ से बहुत बढ़िया बढिया मकान बने थे, जिनकी ख्याति योरप-भर मे फैली हुई है। इस दल को रूस से सहायता मिलती है।

दूसरा दल 'नाज़ी' लोगो का है। १९३३ के आरभ मे जब जर्मनी में नाजी-दल पैदा हुआ, आस्ट्रिया में भी उसी समय नाज़ी-दल का जन्म हुआ। इस दल के नेता जर्मन और आस्ट्रियन दोनो जातियो के है, और बड़े उत्साही तथा कुशल संगठनकर्ता है। ज्यों-ज्यों जमनी मे हिटलर-वाद प्रबल हुआ, आस्ट्रिया मे भी नाज़ी सिद्धात का प्रचार बढ़ा। नाज़ी-दल का उद्देश्य यह है कि समस्त जर्मन-भाषा-भाषी और जमन-जाति के लोग एक ही शासन के अधीन रहें। बरसई की सधि ने जर्मन-जाति को अनेक शासनो के अधीन कर दिया है। इस दल का उद्देश्य यह है कि सारे जर्मन एक सूत्र में बँध जायँ। इस दल के सफल होने पर आस्ट्रिया कहने के लिये तो एक स्वतंत्र राष्ट्र रहेगा, लेकिन वास्तव मे होगा वह हर हिटलर के घनिष्ठ ससर्ग मे और उनके अधीन। आश्चर्य की बात न होगी, यदि अवसर पाने पर आस्ट्रिया जर्मनी से मिल जाय। इस दल को जर्मनी से अनेक प्रकार की सहायता मिलती है।

तीसरा दल राजकुमार स्टार हेमबर्ग का है। राजकुमार स्टार हेमबर्ग एक संकीर्ण दल के नेता है। उनके अधीन एक निजी सेना है, जो शक्तिशाली भी कही जा सकती है। यह दल डॉक्टर डालफ़ुस के क्रिश्चियन साम्यवादी दल से भी अधिक संकुचित विचारों का है। इसका उद्देश्य है कि राजकुमार आटो, जो आस्ट्रियन सम्राट् फ्रैंसिस जोजफ के उत्तराधिकारी हैं, फिर आस्ट्रिया में लाए जाकर राजसिंहासन पर बिठाए जायँ। यह दल रूसी साम्यवादियों का घोर विरोधी है, और नाज़ियों को भी नहीं पसंद करता। इस दल को इटली से सहायता मिलती है।

डॉक्टर डालफ़ुस स्वयं क्रिश्चियन साम्यवादी दल के नेता समझे जाते थे। इनका दल नाम-मात्र को साम्यवादी दल था। यह दल बहुत प्रबल नहीं था, लेकिन चूँकि राजकुमार स्टार हेमबर्ग का दल रूसी दल का कट्टर विरोधी था, और क्रिश्चियन साम्यवादी दल भी उसका दुश्मन, इसलिये इन दोनो दलों ने मिलकर आस्ट्रिया की गवर्नमेंट बनाई, और सोशल डेमोक्रेटिक दल को नष्ट कर डाला। वियना-नगर में डॉक्टर डालफ़ुस की आज्ञा से एक हज़ार साम्यवादी लोग, जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे, पिछली फ़रवरी में मार डाले गए। इससे अनेक आस्ट्रियन लोगों को डॉ० डालफ़ुस के इस अत्याचार पर रोष था। दूसरी ओर नाज़ी लोग यह देख रहे थे कि डॉ० डालफ़ुस आस्ट्रिया के जर्मनों को अपनी मातृभूमि जर्मनी से मिलने देना नहीं चाहते, और आस्ट्रिया को दिन-ब-दिन इटली के हाथ में डाल रहे हैं, इसलिये नाज़ी लोग भी डॉक्टर डालफ़ुस के विरुद्ध थे। १९३३ के आरंभ में डॉ० डालफ़ुस ने सोशल डेमोक्रेटिक-दल को ख़त्म ही कर दिया था। केवल नाज़ी दल रह गया था। उस पर भी इन्होंने हाल में दमन शुरू कर दिया था। डॉ० डालफ़ुस ने जुलाई-मास में नाज़ी लोगों के ख़िलाफ़ अनेक क़ानून बना दिए थे। आस्ट्रिया में यह क़ायदा है कि हरएक आदमी हथियार रख सकता है, लेकिन डॉ० डालफ़ुस ने यह क़ानून बना दिया था कि नाज़ी-दल के जिस व्यक्ति के पास हथियार मिलेंगे, उसे फाँसी दी जायगी। डॉ० डालफ़ुस की नीति यह थी कि जिस प्रकार फ़रवरी १९३३ में उन्होंने वियना से साम्यवादियों को नष्ट कर दिया था, उसी प्रकार नाज़ी दल को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दें। नाज़ी लोगों ने इसलिये डॉ० डालफ़ुस की हत्या कर दी। लेकिन शासन की बाग-डोर अपने हाथ में नहीं ले सके, क्योंकि इटली ने नाज़ी लोगों के ख़िलाफ़ अपनी सेना आस्ट्रिया की सीमा पर भेज दी, और नाज़ी लोगों के बजाय राजकुमार स्टार हेमबर्ग का शासन क़ायम हो गया।

राजकुमार स्टार हेमबर्ग

किंतु नाज़ियों का अभी वहाँ ज़ोर है, और समस्त जर्मन जाति को एक सूत्र में बाँधने का आंदोलन भी प्रबल है। पाठक इसलिये अच्छी तरह देख सकते हैं कि रूस, जर्मनी और इटली आस्ट्रिया में शतरंजी चाल चल रहे हैं। रूस का मुहरा मर गया है, जर्मनी के मुहरे पर दाँत हैं। जर्मनी अपनी घात में है और इटली अपनी घात में। जर्मनी, रूस और इटली की अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों की खींच-तान

मे इस समय योरप की शाति और अशांति का प्रश्न उलझा हुआ है।

योरप मे युद्ध को तैयारियॉ

ससार को यह विश्वास दिलाया गया था कि नि.शस्त्रीकरण-परिषद् युद्ध की सभावना को सपूर्णतया नष्ट कर देगी। आज इस सस्था को बने हुए ८½ वर्ष होते है। इस दरमियान में न-जाने कितनी मरतबा इस संस्था की परिषदें बुलाई गईं, न जाने कितने व्याख्यान इस सिलसिले मे परिषद् के भीतर और बाहर हुए, और न-जाने इस विषय पर समाचार-पत्रों के कितने हज़ार स्तंभ काले किए गए। लेकिन जैसा लंदन के टाइम्स नामी समाचार-पत्र ने लिखा है कि निश्शस्त्रीकरण का आंदोलन एक कदम भी आगे नहीं बढा। इसके विपरीत हरएक योरपोय देश ही नही, बल्कि अमेरिका और जापान भी तेजी के साथ अपनी सैनिक शक्ति बढाने मे तत्पर हो गए है।

हम नीचे योरप के मुख्य-मुख्य राष्ट्रों के सैनिक बजट देते है। इससे पाठकों को स्थिति का गभीरता का पता चल जायगा —

जर्मनी का सैनिक व्यय
(लाख मार्कों में)

	१९३२-३३	१९३३-३४	१९३४-३५
हवाई सेना पर	४४० (२२ लाख पौंड)	७८० (३९ लाख पौंड)	२१०० लाख (१०५ लाख पौंड)
जल और स्थल-सेना	६७४०	६७१०	८९४०
फौजी पुलिस	×	×	२५०
	७१८०	७४९०	११२९०

फ्रास और अमेरिका

फ्रास की इस वर्ष की सैनिक योजना यह है कि वह ३ करोड २० लाख पौंड लगाकर हवाई जहाज की सेना मजबूत करेगा। इसके अलावा वह इस वर्ष १ करोड ५२ लाख ९० हज़ार पौंड हवाई सेना पर व्यय करेगा। अमेरिका ने तो सबके कान काट लिए है। उसने इस वर्ष यह निश्चय किया है कि अतर्राष्ट्रीय समझौते के अनुसार जितना अधिकार उसे सशस्त्र होने का मिला है, उससे पूरा-पूरा फायदा उठा ले, और मर्यादा की अतिम सीमा तक पूर्णतया सशस्त्र हो जाय। उसने इरादा कर लिया है कि वह १५ हज़ार टन के हवाई जंगी जहाज़, ३५ हज़ार टन के गोताख़ोर और १ हज़ार हवाई जंगी जहाज बनाए, और १५ लाख पौंड इस वर्ष इस काम पर खर्च करे। पाठको, यह स्मरण रखना चाहिए कि यह योजना केवल इस वर्ष की है। तीस लाख पौंड के हवाई जहाज और अनेक जंगी क्रूज़र तथा बेडे अमेरिका इसके पहले से बना रहा है। और, ४७ करोड ६० लाख पौंड इस काम के लिये अलग रख दिए है। इटली अपनी तरफ खूब तैयारियाँ कर रहा है—१ करोड पौंड सिर्फ हवाई जहाज़ पर लगाया है।

इँगलैंड की तैयारियाँ

इँगलैंड के राजनीतिज्ञ इन बातों को देखकर कह रहे है कि अभी तक ग्रेटब्रिटेन ने अपनी सेना नहीं बढाई, लेकिन योरप के अन्य राष्ट्रो में सेना बढाने की घुडदौड जारी है। संसार खूब ज़ोरों से सशस्त्र हो गया है। सारी क़ौमें जब अपने को सशस्त्र कर रही है, तब इँगलैंड क्यो पीछे रह जाय। इसलिये उन्होंने

अँगरेजी सैनिक शक्ति को अत्यंत दृढ करने का निश्चय कर लिया है। हवाई जहाजो मे विशेष वृद्धि की जायगी क्योंकि अँगरेजों को डर है कि हवाई आक्रमण की दृष्टि मे लंदन और इँगलैंड के अन्य व्यावसायिक नगर बहुत अरक्षित हैं। इस समय अँगरेजी हवाई सेना मे ८४० हवाई जहाज़ है। योजना यह है कि ४८० हवाई जहाज और बना लिए जायँ, और इस तरह से १३२० हवाई जहाज अँगरेजी सेना मे हो जायँ। अँगरेज-राजनीतिज्ञों को इस पर भी संतोष नही, क्योंकि इस समय रूस के पास १५०० जंगी जहाज हैं, और फ्रास के पास १६५०।

इँगलैंड का सैनिक बजट

	१९३३-१९३४ (पौंड)	१९३४-३५ (पौंड)	ज्यादती (पौंड)
जल-सना	५३,५७० ०००	५६,५५०,०००	२,९८०,०००
स्थल-सेना	३९ ४३५,०००	३९,६००,०००	१६५,०००
आकाश-सेना	१९,६३८,६००	२०,१६५,६००	५२७,०००
	११२,६४३,६००	११६,३१५,६००	३,६७२,०००

अर्थात् अपने सैनिक खर्च मे इँगलैंड ने इस वर्ष ३६ लाख पौंड पहले से अधिक खर्च करने का निश्चय किया है। वह इस वर्ष सेना पर कुल ११ करोड़ ६३ लाख १५ हजार ६ सौ पौंड ख़र्च करेगा।

योरपीय राष्ट्र जब इतने जोर के साथ सशस्त्र हो रहे है, और सेना पर अर्बों रुपया प्रतिवर्ष ख़र्च कर रहे है, तो साफ़ जाहिर है कि एक-न-एक दिन ये सब आपस मे ज़रूर लड़ेगे। इसीलिये हमने इस लेख का शीर्षक रक्खा है "योरप विनाश के पथ पर।"

नोट—१ पौंड बराबर १३।~)। के।

वह

[श्रीप्रणयेश शुक्ल]

नेह-सिंधु बीच लाज-भँवरि भँवति, कै धौं
　　साहस सँजोवति न छोर लखि यान मैं,
बिहरत तरल - तरंग - माल - जालनि, या
　　सिहरत सुधि कै सलौनो सखियान मैं।
'प्रणयेश' प्राननि कौं प्यावति पियूष, कै धौं
　　रस बरसावत बिरस भखियान मैं;
बूंद अँसुवान के ढरति, जानै का करति
　　कंज - पँखियान मैं कि मंजु अँखियान मैं।

गो-दुग्ध-महत्व

[श्रीयुत केदार आई० डी० डी०]

यों तो कई पशुओं का दूध व्यवहार में आता है, किंतु गाय, भैंस, भेड, बकरी और ऊँटनी मुख्य हैं । अनेक पशुओं का दूध चिकित्सा के तौर पर काम मे लाया जाता है—जैसे गधी, घोडी इत्यादि। परंतु इन सबमे गाय का दूध ही सर्वोत्तम माना गया है। और, ऐसा होने के विशेष कारण है ।

इस पक्ष मे सबसे पहली बडी युक्ति यह है कि गाय के दूध के रासायनिक पदार्थ स्त्री के दूध के रासायनिक पदार्थों से बहुत अंशो में मेल खाते है। नीचे की तालिका मे स्त्री और मुख्य पशुओ के दूध की तुलना की गई है—

पशु	जल	मलाई	प्रोटीन	शकर	क्षार
स्त्री	८७ ४१	३.७८	२.२९	६ २१	३१
गाय	८७.१७	३ ६४	३ ५५	४.८८	७१
भैंस	८२.८५	७.५१	५.०५	४.४४	७५
बकरी	८५.७१	४.७८	४.२९	४.४६	.७६
भेड़	८० ८२	६.८६	६.५२	४.९१	-८९
ऊँटनी	८६ ५७	३.०७	४ ०	५.५९	.७७
गधी	८९ ६४	१.६४	२.२२	५.९९	५१
घोडी	९० ७८	१ २१	१.९९	५ ६७	३५

ऊपर की तालिका से भली भाँति समझ मे आ जाता है कि सब पशुओ की अपेक्षा गाय का दूध ही स्त्री के दूध से अधिक समानता रखता है। रासायनिक पदार्थों के परिमाण के अतिरिक्त अन्य गुणों की दृष्टि से भी स्त्री और गाय के दूध में अधिक समानता है। इन्हीं कारणो से गाय का दूध माता के दूध का सर्वोत्तम रूपांतर (best substitute) माना गया है। शिशु के जन्म लेने के पश्चात् यदि दुर्भाग्य-वश उसे माता का दूध प्राप्त नहीं होता, तो गाय का दूध ही भले प्रकार से उसका स्थान लेकर शिशु की रक्षा का हेतु बनता है।

प्राकृतिक उपादानो मे स्त्री के दूध की अपेक्षा गाय के दूध मे शकर कुछ कम और क्षार अधिक रहती है। अधिक क्षार होने से कोई हानि होने की संभावना नही। और, शकर की कमी को पूरा करने के लिये उसमे साधारणतया कुछ और शकर, चीनी इत्यादि के रूप में, मिला ली जाती है। किसी गाय के दूध में मलाई अधिक होने पर उसमे थोडा पानी मिला लेने अथवा कुछ मलाई निकाल लेने से वह छोटे बालकों को पिलाने-योग्य हो जाता है।

भैंस के दूध मे गाय के दूध की अपेक्षा मलाई अधिक रहती है। साथ ही प्रोटीन पदार्थ भी ज्यादा होता है। इसके अतिरिक्त दोनो प्रकार की मलाइयो और अन्य रासायनिक पदार्थों के गुण-रूप मे भी बहुत भेद होता है। इन्हीं कारणों से भैस का दूध देर में पचता है। बालकों, रोगी व्यक्तियों और स्त्रियों के लिये विशेष तौर पर इसका उपयोग उचित नहीं।

आयुर्वैदिक दृष्टि से भी गाय का दूध अधिक आरोग्यकारक और बुद्धि वर्द्धक है। निघंटु-रत्नाकर मे लिखा है "गो-दुग्ध मीठा, रसायन और त्रिदोष-शोधक होता है।" वेदों मे इसकी गणना सात्विक भोजन में की गई है। भारतवर्ष के सारे पुराने इतिहास मे गो-दुग्ध की ही अधिक महिमा गाई गई है। अन्य पशु, विशेषकर भैस, के दूध का बहुत कम वर्णन आया है। अब तक की प्रच-

लित भाषा मे प्रायः गोपाल, ग्वाल या गूजर आदि नाम ही सुनने मे आते है । महिष-पाल या भैंस-पाल नामो का कभी प्रयोग नही हुआ। इन सब बातो से प्रकट होता है कि गाय तथा उसके दूध को ही ऊँचा स्थान और महत्त्व प्राप्त होता चला आया है।

गाय ठीक नौ मास मे बच्चा जनती है, और इतने ही समय तक शिशु अपनी माता के गर्भ मे रहता है। इस प्रकार दोनो के प्रसव-काल के उपरांत उनके दूध में भी अधिक समानता की सभावना प्राकृतिक है।

इस देश मे गाय के अतिरिक्त भैंस का दूध ही अधिक व्यवहार में आता है । अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवालों के लिये भले ही यह लाभदायक सिद्ध हो, परंतु हलका और मन तथा मस्तिष्क-सबधी कार्य करनेवालो के लिये गाय का दूध ही अधिक लाभकारी है । भैंस का दूध पीनेवालो मे भैस के गुण-अवगुण आ जाना भी अनिवार्य है। वह प्रायः गर्मी से बहुत घबराती है, और सदा कीचड, मिट्टी मे लथ-पथ रहना पसद करती है। उसमे क्रोध की मात्रा भी बहुत अधिक है। इन सब बातो का प्रभाव उसका दूध पीनेवालों पर भी अवश्य पडता है। इस बात को पश्चिमी वैज्ञानिकों ने अब भली भाँति प्रमाणित कर दिया है कि भोजन का प्रभाव मनुष्य के शरीर के अतिरिक्त मन पर भी शीघ्र या देर मे पड़ता है।

यह सर्वमान्य बात है कि भैस का दूध पीनेवालो की बुद्धि मद पड़ जाती है, और वे उष्णता से शीघ्र घबराने लगते है। घुडदौड के लिये घोड़े पालनेवालो के ध्यान मे बहुधा यह बात आई है कि जिन घोडों को भैंस के दूध और मक्खन पर पाला जाता है, वे दौड़ मे शीघ्र हाँफने लगते हैं, और पानी देखते ही दौडकर उसमें जा कूदते है। बहुत-से घोडो को इसीलिये गाय का दूध पिलाया जाता है। अमेरिका में बहुत-सी दौडो मे जीतनेवाले एक घोड़े को केवल गाय का दूध ही भोजन के तौर पर दिया गया था।

मिसेज़ ईसा टवीड, जो दूध के संबंध मे बडी जानकारी रखती हैं, अपनी एक पुस्तक 'Cow keeping in India' में यहाँ तक लिखती है—"Parents who have the welfare of their children at heart should never allow them to have buffalo milk If this milk is given to children, they will suffer from liver, bowel, and other complaints caused by biliousness and over heating of the blood. Mr. H. A. Howman in his report on Dairy work in India, submitted to Government in 1890, fully corroborates my statements. He says buffalo milk is very likely to act prejudically on the liver of both children and invalids He found that buffalo milk was used in the Scotish Orphanage in Bombay, and this milk often made the children ill"

अर्थात् "जिन माता-पिता को अपने बच्चो की भलाई का खयाल है, वे उनको भैंस के दूध का सेवन कदापि न कराएँ। यदि बच्चो को यह दूध दिया जायगा, तो उन्हे रक्त उष्णता के कारण लिवर और अँतडियाँ-संबंधी अनेक रोग हो जायँगे। मिस्टर एच० ए० होमेन ने, १८९० में, सरकार के लिये भारतवर्ष में डेरी के काम के बारे मे एक रिपोर्ट तैयार करते हुए इस सम्मति का

समर्थन किया था। उनका कहना है कि भैंस का दूध बच्चों और बीमारों के लिवर पर बहुत बुरा प्रभाव डालता है। उन्होंने देखा था कि भैंस का दूध स्काच-अनाथालय, बांबे मे व्यवहार मे लाने पर बच्चे बीमार हो गए थे।"

गाय के दूध के संबध मे विज्ञानवेत्ताओं ने हाल मे ही कई एक महत्त्वशाली बातें मालूम की है। प्रायः इसके दूध में अन्य पशुओं के दूध की अपेक्षा कुछ पीला रंग अधिक रहता है। यह रंग गाय के मक्खन में भी बराबर विद्यमान होता है। जाँच द्वारा इसका सबध कैरोटीन या ए नामी विटेमिन रासायनिक उपादान से सिद्ध हुआ है। यह पदार्थ दूध, मक्खन, अंडे की ज़रदी और कुछ हरे पत्तों को छोडकर और किसी वस्तु मे नहीं पाया जाता। परंतु जीवन और स्वास्थ्य के लिये इसकी नितांत आवश्यकता है। इसकी प्राप्ति न होने से शरीर की वृद्धि रुक जाती, और अनेक रोग हो जाने की आशंका रहती है।

मछली के तेल का इसी ए विटेमिन की कमी दूर करने के लिये अधिक उपयोग किया जाता है। और, प्रायः इसी विटेमिन के अभाव के कारण निर्बल और रोगी व्यक्तियों को डॉक्टर लोग कई प्रकार के कॉड लिवर तेलों का दैनिक व्यवहार करने की राय देते हैं। परंतु ए विटेमिन की परिभाषा और उसके गुणों की दृष्टि से ये सब तेल आदर्श नहीं कहे जा सकते। इस संबंध मे अमेरिका के डॉक्टर अलबर्ट जर्मन का एक लेख The journal of the American Institute of Homœpathy नाम्नी पत्रिका मे, हाल ही मे, प्रकाशित हुआ है। उसमें एक स्थान पर वह लिखते हैं—

"While yellow butter was the first food stuff demonstrated to contain this vital factor, it was long before the much greater potency of cod liver oil was discovered. As a result the fish oils, and particularly cod liver oil, came into prominence as potent sources of vitamin A, inspite of their notoriously disagreeable taste Thus vitamin A came to be regarded as a colourless substance, a fact that was largely responsible for the long delay in the recognition of the fundamental inportance of carotene As a matter of fact, the colourless form of vitamin A, which has been dubbed secondary vitamin A by Sharman and Smith, can not strictly be considered a vitamin at all, since it violates our fundamental conception of what vitamin is."

"यद्यपि पीले मक्खन में इस आवश्यक पदार्थ का विद्यमान होना सबसे पहले सिद्ध किया गया था, तथापि उससे बहुत पूर्व कॉड लिवर तेल की विशेष शक्ति का पता चला था, जिसके कारण मछली का तेल, विशेषकर कॉड लिवर तेल, अस्वादिष्ठ होने पर भी विटेमिन ए की प्राप्ति के लिये बहुत अधिक उपयोग में आने लगे। उसी से विटेमिन ए विना रंग का समझा जाकर कैरोटीन पदार्थ का महत्त्व जानने मे देरी लगी। यथार्थ में रग-हीन विटेमिन ए, जिसे शरमन और स्मिथ (अमेरिका के दो भोजन-सबंधी कैमिस्ट्री के प्रोफ़ेसर) ने दूसरा दर्जा दिया है, विटेमिन की परिभाषा के अनुसार विटेमिन समझा ही नहीं जा सकता।"

भैंस के दूध मे श्वेत रंग के कारण इस पदार्थ के विद्यमान होने की कम संभावना है। गाय के मक्खन और घी को इस विशेष गुण के कारण ही आयुर्वेदकारो ने बहुत-से रोगों मे हितकारी बतलाया है। अन्य किसी पशु के घी-मक्खन मे वह गुण उतना नहीं देखा जाता, इसी कारण उनका उपयोग बहुत कम होता है।

एक और पदार्थ, जो गाय के दूध मे विशेष रूप से पाया जाता है, विटेमिन डी है। जब गाय धूप में घास चरती और घूमती-फिरती है, तो सूर्य की किरणों (ultra-violet rays) द्वारा प्राकृतिक, परंतु अज्ञात रूप से दूध उत्पन्न करनेवाले ग्लैंडो मे खाए हुए चारे से विटेमिन डी पृथक् होकर दूध में मिल जाता है।

यह पदार्थ स्वास्थ्य के लिये विटेमिन ए की तरह ही अत्यंत आवश्यक है। इसके प्राप्त न होने से हड्डियों को बड़ी भारी क्षति पहुँचकर कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चेहरे पर सुर्खाहट और पीलापन आ जाता है। जो स्त्रियाँ सदा परदे मे रहती है, उनके दुर्बल स्वास्थ्य और कांति-हीन चेहरे का कारण भी सूर्य की किरणों से वंचित रहने से विटेमिन डी का प्रभाव होता है। सूर्य-स्नान (sun-bath) भी प्रकृति के इस नियम से ही संबंध रखता है।

भैंस के बाहरी चर्म मे गाय के चर्म की तरह छिद्र न होने से वह धूप मे अधिक बैठने से घबराती है। उसके दूध के ग्लैंड की बनावट भी गाय के दूध के ग्लैंड की बनावट से संभवतः कुछ अंतर रखती है। इन्ही कारणों से गाय के दूध मे डी विटेमिन अधिक रहता है। इस बारे में लंदन की सबसे बड़ी एक्सप्रेस डेरी की ओर से प्रकाशित एक छोटी-सी पुस्तिका 'Sun Ray Milk' के शब्द लिखने उचित होंगे—

"One of the most well-known sources of vitamin 'D' is cow's milk. This is due to the solar activation of the fodder, as grass and hay, etc, the vitamin being elaborated in the milk by one of the natural fat components called ergasteral It is because of this that milk plays such an important part in the propylaxis of rickets."

विटेमिन डी की प्राप्ति के लिये एक सर्वविख्यात वस्तु गाय का दूध है। सूर्य की शक्ति से यह पदार्थ घास इत्यादि मे आता है, और मलाई के किसी प्राकृतिक गुण के कारण वह दूध मे मिल जाता है। विटेमिन डी की विद्यमानता के कारण ही दूध विकट रोग से बचाने में विशेष सहायता पहुँचाता है।

प्रायः देखने में आता है कि वर्षा-ऋतु मे, जब गौओ को धूप मे जंगल की हरी घास अधिक समय तक चरने का अवसर रहता है, उनके दूध का रंग अधिक पीला और पीने में भी अधिक स्वादिष्ठ होता है। वह ए और डी दोनो प्रकार के विटेमिन के अधिक परिमाण मे होने का द्योतक है। वस्तुतः गौओ के लिये हरे चारे और धूप में घूमने-फिरने का वर्ष-भर प्रबंध रहना चाहिए। वेदों मे अनेक ऐसे मंत्र आए है, जिनमे गायों को जंगल में चराने और सूर्य के प्रकाश मे घुमाने का विधान है। ऋग्वेद में एक स्थान पर आया है —

मयो भूर्वातो अभिवातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरारिशताम्।

अर्थात् गाएँ उत्तम वायु में घूमती रहे, वे उत्तम औषधियाँ खाकर पुष्ट होवे। अथर्ववेद मे एक मंत्र आता है —

सं वो गोष्टेन सुषदा संरय्या संसुभूत्या ,
अहर्जतास्य यन्नाम ते वा वः संसृजामसि।

अर्थात् गौओं का स्थान अत्यंत स्वच्छ, पवित्र,

शोभा-युक्त तथा सुख देनेवाला होना चाहिए। और, गायों को सूर्य के प्रकाश मे अवश्य घुमाना चाहिए।

गाय बडी सुशील होती है। अच्छी और अधिक दूध देनेवाली गाय का सर्वोपरि गुण यही समझा जाता है कि वह माता की तरह स्नेह-शील हो। यदि उससे प्रीति-पूर्वक व्यवहार किया जाय, तो वह अपने प्रेम का परिचय अधिक और उत्तम दूध के रूप में शीघ्र ही देने लगती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से ऐसा दूध विशेष गुणकारी होता है। गाय स्वच्छता और शुद्धता को भी अधिक पसद करती है। इससे उसके दूध के सेवन से वैसे ही संस्कार पडने की सभावना रहती है।

बहुत-से लोगो को, महात्मा गांधी के बकरी का दूध व्यवहार मे लाने के कारण, भ्रम-सा बना हुआ है कि अवश्य ही गाय का दूध बकरी के दूध से निकृष्ट है। इसमे संदेह नहीं कि बकरी का दूध भी कई विशेष गुण रखता है, पर तु वह गो-दुग्ध से किसी प्रकार भी उत्कृष्ट नहीं माना जा सकता। महात्मा गांधी के बकरी का दूध सेवन करने का कुछ दूसरा ही कारण है, जो हम आत्म-कथा पुस्तक में लिखे हुए उन्हीं के शब्दो मे नीचे देते है —

"गाय भैंस के फूँका लगाकर दूध निकालने की क्रिया की जाती हैं। यह जानने पर मुझे दूध के प्रति तिरस्कार हो आया। और, यह तो मै सदा मानता ही था कि वह मनुष्य की ख़ूराक नहीं है, इसलिये मैने दूध का त्याग किया है।

"दूध-घी की प्रतिज्ञा लेते समय यद्यपि मेरी दृष्टि के सामने गाय-भैस का ही विचार था, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूध-मात्र के लिये गिनी जानी चाहिए, और जब तक मैं पशु के दूध-मात्र को मनुष्य की ख़ूराक के लिये निषिद्ध मानता हूँ, तब तक मुझे खाने मे उसका उपयोग करने का अधिकार नहीं है। यह जानते हुए भी बकरी का दूध लेने को मै तैयार हो गया। सत्य के पुजारी ने सत्याग्रह की लड़ाई के लिये जीवित रहने की इच्छा रखकर अपने सत्य को कलंक लगाया।

'मेरे इस कार्य का घाव अब तक नही भरा है, और बकरी का दूध छोडने के लिये सदा विचार करता रहा हूँ। बकरी का दूध पीते वक़् रोज़ मै कष्ट अनुभव करता हूँ।"

वास्तव में गांधीजी बडे भयकर रोग मे ग्रस्त हो गए थे। तब डॉक्टर ने कहा कि दूध पिए बिना उनका शरीर नही सुधर सकता। इससे उन्हें अपनी पूर्वोक्त प्रतिज्ञा के कारण बकरी का दूध पीने के लिये बाध्य होना पडा। बकरी का दूध पीते समय भी वह अनुभव करते है कि वह सत्य का पालन नहीं कर रहे। उनका ख़याल है कि दूध मनुष्य का भोजन नहीं है। हम इसमे मत-भेद रखते हुए भी इस सबध में यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक समझते हैं।

पाठको को विदित होना चाहिए कि गांधीजी के हृदय मे गोमाता के लिये विशेष श्रद्धा और भक्ति है। वह उसकी दशा सुधारने के लिये भी प्रयत्नशील रहे है। उन्होंने अपने साबरमती-आश्रम में दूध के लिये एक अच्छी गोशाला की, एक अनुभवी और शिक्षित व्यक्ति की देख-रेख मे, स्थापना कर रक्खी थी।

कुछ लोगो को गाय के दूध में क्षय-रोग के कीटाणुओ की अधिक सभावना होने के कारण इसके व्यवहार में बड़ा आक्षेप रहता है। गाय का दूध वास्तव में आदर्श और शीघ्र पचने योग्य भोजन होने से क्षय-रोग और अन्य अनेक प्रकार के कीटाणुओं के जीवित रहने, बढ़ने और वृद्धि पाने का उत्तम साधन होता है। स्वय गाय मे भी पूरी सावधानी न रखने से क्षय-रोग पैदा हो जाने की संभावना बनी रहती है। परंतु एक दोष की संभा-

वना-मात्र से सर्वोत्तम वस्तु का बहिष्कार कर दिया जाय, इसमे बुद्धिमत्ता का कोई परिचय नहीं मिलता। यदि प्रयत्न किया जाय, तो इस रोग के कीटाणुओ का दूध मे सर्वथा अभाव हो सकता है।

प्रथम तो गाय मे क्षय-रोग होकर भी यह आवश्यक नहीं कि उसके कीटाणु दूध मे चले आकर मनुष्य मे क्षय रोग उत्पन्न कर दे। दूसरे, गायों मे अधिकतर यह रोग योरप और अमेरिका मे ही देखने मे आता है, जिसका कारण मुख्य रूप से वहाँ पर अधिक सरदी होने से पशुओं को बंद शालाओ मे रखना है। यह प्रथा बंद होकर अब वहाँ पर पशुओं को खुले शेडो में रक्खा जाने लगा है। भारतवर्ष मे पशु दिन-रात का बहुत समय सूर्य के प्रकाश और खुली हवा मे बिताते है। यहाँ के पशुओं मे रोग-विनाशक शक्ति भी दूसरे देशो के पशुओ से अधिक है। इन कारणों से भारत की गाएँ बहुत कम क्षय-रोग मे ग्रस्त देखने मे आती है। और, उसके परिणाम-स्वरूप दूध मे भी प्रायः इस रोग के कीटाणुओं का अभाव रहता है।

इस संबंध मे डॉक्टर जोशी ने बांबे मे बहुत खोज की है। बहुत-से दूध के नमूनो की जाँच करने पर अपनी पुस्तक Milk Problem of Indian Cities में वह लिखते है—

"That in not a single sample could tubercle bacilli be demonstrated by animal experiments These results have been confirmed independently by those at the Bombay Bacteriological Laboratory, Parel, where 100 samples of cow's milk were recently examined for tubercle bacilli, but in no instance did the guinea pigs develop tuberculosis."

अर्थात् "एक भी (दूध के) नमूने मे पशुओ के प्रयोग द्वारा क्षय रोग के कीटाणुओं का विद्यमान होना सिद्ध नहीं किया जा सका। बांबे की बैक्ट्रियालॉजिकल लैबोरेट्री पेरल भी, जहाँ गाय के दूध के एक-सौ नमूनो की क्षय-रोग के कीटाणुओं के लिये जाँच की गई थी, स्वतंत्र रूप से इसी परिणाम का समर्थन करती है। एक भी उदाहरण मे किसी गिनी पिग (सूअर की एक जाति) को क्षय-रोग नहीं हुआ।"

डॉक्टर लैंकेस्टर, जो सरकार की ओर से क्षय-रोग के संबध मे जाँच करने के लिये नियुक्त हुए थे, स्पष्ट तौर पर मानते हैं कि भारतवर्ष में मनुष्यो के क्षय-रोग का कभी पशुओ के क्षय-रोग से संबंध नहीं हुआ। वास्तव में दूध मे किसी प्रकार के कीटाणुओं का विद्यमान होना दूध को असावधानी से निकालने और रखने का द्योतक है। बहुत करके ये सब कीटाणु दूध निकाले जाने पर अस्वस्थ मनुष्यों, अशुद्ध वायु-मंडल और गदे बर्तनो द्वारा उसमे प्रवेश करते है। यदि दूध की स्वच्छता पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय, तो उसमे कीटाणु रहने या कम-से-कम उनके बढ़ने की बहुत कम संभावना रह जाती है। योरप और अमेरिका मे ए ग्रेड दूध शुद्ध गाय का होने पर भी सब प्रकार की बीमारियो के कीटाणुओ से रहित होता है। ऐसा दूध प्रयत्न करने पर इस देश में भी तैयार हो सकता है।

हम लोग बहुधा दूध को गरम करके ही अपने व्यवहार में लाते है। इससे उसमे विद्यमान कीटाणुओ से हानि पहुँचने का भय और भी कम हो जाता है। सग्रहणी, हैज़ा, टाइफ़ाइड, डिप्थीरिया और क्षय-रोग इत्यादि सबके कीटाणु १६० डिग्री फ़ारनहीट की गरमी पर नष्ट हो जाते है। और, दूध, जो प्रायः २१४ डिग्री फ़ारनहीट पर उबलता है, एक उबाल आने पर ही इन रोगों

के उत्पन्न होने के भय से रहित हो जाता है। यदि दूध को ताज़ा सीधा गाय के थनो से ही पी लिया जाय, तो उसमे भी कीटाणु के प्रवेश करने की संभावना बहुत कम रह जाती है। ऐसे धारोष्ण दूध को अन्य गुणो के कारण भी विशेष महत्त्व प्राप्त है।

गायों मे उनके रूप, रंग और स्वभाव के भेद से उनके गुण भी भिन्न-भिन्न होते है। ऋग्वेद में एक मंत्र आया है—

या देवेषु तन्व मैरयन्त या
सां सोमो विश्वारूपाणि वेद,
ता अस्मभ्यं पयसा पीन्वमानाः
प्रजावतीरिन्द्रगोष्ठे रिरीहि।
(ऋ० १०।१६९।३)

अर्थात् गाय के दूध से प्रत्येक इंद्रिय की पुष्टि होती है। गायों के रूप-रग के महत्त्व को विद्वान् वैद्य जानते है। इसलिये सबको चाहिए कि वे गाय का दूध पीकर पुष्ट होवे। गाय को बहुत दूधवाली बनाकर बछडो के साथ रखना चाहिए।

जिस प्रकार सब पशुओं के दूध में गो-दुग्ध सर्वोत्तम है, उसी प्रकार गायो के दूध में श्यामा अर्थात् काली गाय का दूध सर्वोत्कृष्ट है। काली वस्तु पर सूर्य की किरणो का प्रभाव बहुत शीघ्र और अधिक होता है। श्यामा गाय के काले होने के कारण सूर्य की किरणे उसके रक्त को शुद्ध और निर्मल बना देती है। इस दूध मे रोग के कीटाणुओ का मुक़ाबला करने की शक्ति भी अधिक होती है। वायु-नाशक गुण के लिये तो काली गाय का दूध अतुलनीय है। काली गाय के दूध में मलाई भी अन्य रंगवाली गायो के दूध की अपेक्षा कुछ अधिक रहती है।

काली गाय से दूसरे दरजे पर लाल और पीली गाय है। इसका दूध अधिक मीठा होता है। उससे उतरकर सफेद गाय का नंबर है। इसके दूध मे प्रोटीन पदार्थ अधिक होने से दही और पनीर अच्छा और ज्यादा बनता है। इनके अतिरिक्त एक प्रकार की कपिला गाय होती है, जिसके सींग नहीं होते, अथवा छोटे और नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। ऐसी गाय का दूध अति स्वादिष्ट तथा अधिक मलाईवाला होता है।

गाय के दूध के सर्वगुण-सपन्न और अत्यंत लाभकारी होने के कारण ही आदि काल से उसे बहुत ऊँचा माता का पद प्राप्त है। सच भी तो है, जन्म देनेवाली माता के पीछे गाय ही है, जो आयु-पर्यंत अपने अमृत-तुल्य दूध द्वारा हमे स्वास्थ्य, बल और जीवन प्रदान करती है। आज पश्चिमी विद्वान् और विज्ञानवेत्ता भी उसके दूध के महत्त्व को समझकर गाय के लिये बड़े उच्च उद्गार प्रकट करने लगे हैं। एक अमेरिकन पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था—"The cow is one of the greatest blessings to the human race. She produces the best human food on the earth" अर्थात् गाय ईश्वर के अत्यधिक उपकारो मे से एक है, क्योकि वह पृथ्वी पर का सर्वोत्तम भोजन उत्पन्न करती है।
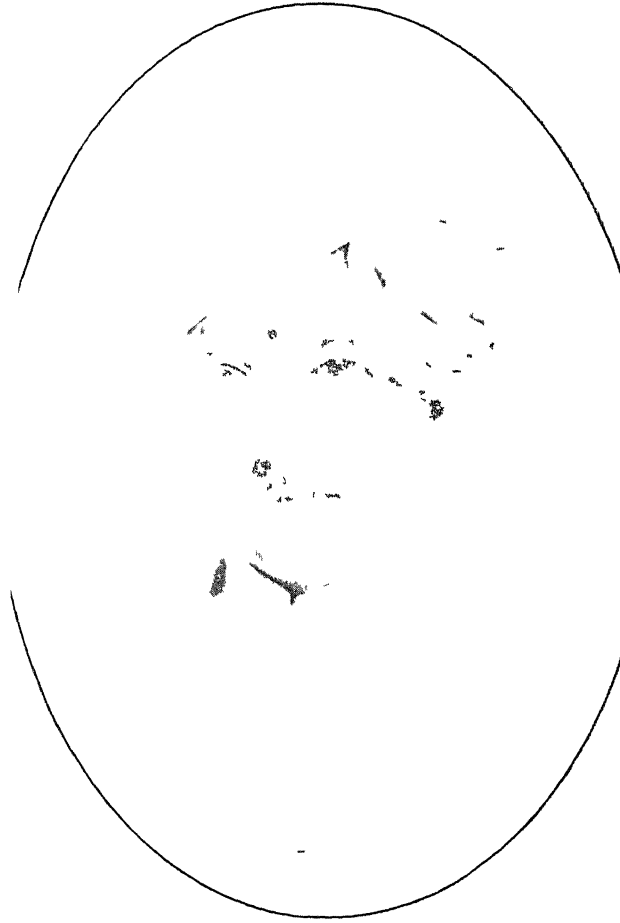
राजा बरखंडी महेशप्रतापनारायण सिंहजू देव शिवगढ़-नरेश

[आप अवध के प्रसिद्ध ताल्लुक़ेदार और सुप्रसिद्ध हिंदी-प्रेमी हैं ।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow

आविष्कारक

[श्रीओमप्रकाश भार्गव बी० एस्-सी०, विशारद]

(१)
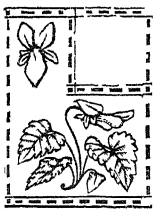
ह निर्धन था—सचमुच निर्धन था। यहाँ तक कि दोनो समय भोजन उसे एक वर्ष से न मिला था। कभी सबेरे और कभी शाम को वह बहुधा चने कुटककर ही काम चला लिया करता था। पैतृक संपत्ति के नाम पर कुछ पुस्तकों को, जिनका मूल्य उसकी आँखो मे कुछ नही के बराबर था, छोडकर उसके पास अन्य कोई वस्तु न थी। नगर के बाहर—जहाँ जन साधारण की पहुँच भय एवं निर्जनता के कारण कभी न होती थी—वह किसी सेठ की बनवाई हुई कोठरी मे रहता था। उसके इस छोटे-से गृह के सामने ही कलकल करती हुई कालिंदी बहती थी। उसका जीवन रहस्यमय नहीं था, जैसा कि ऐसे वायु-मंडल मे रहनेवाले व्यक्तियों का साधारणतः हुआ करता है, परंतु उसका व्यक्तित्व अवश्य रहस्यमय था। उसके शरीर की गठन और बनावट विचित्र प्रकार की थी। सप्ताह मे दो बार आगरे के फुलट्टी बाज़ार मे लोग उसे अवश्य एक डलिया मे रंग-बिरंगे काग़ज़ो की बतके, जिन पर बहुत ही सुंदर एवं आकर्षक चित्रकारी दिखाई पडती थी, लिए हुए देखते थे। वह पहले तो गुलदस्ते बनाकर बेचता था, पर उस व्यवसाय से पेट न भरता देख उसने अब यह कार्य आरंभ किया था। अब इससे दोनो समय भरपेट भोजन उसे अवश्य मिल जाता था।
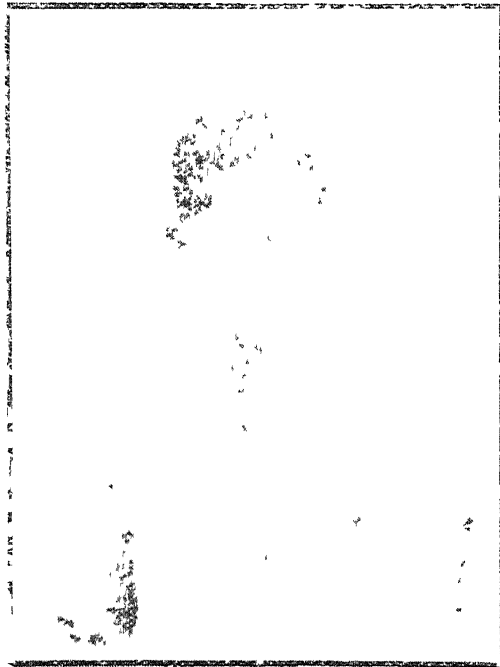
उदीयमान कहानी-लेखक
श्रीओमप्रकाश भार्गव बी० एस्-सी०, विशारद

उसका नाम था बाबूलाल।

उसका परिवार भी छोटा-सा ही था। एक मैना और स्वयं के अतिरिक्त किसी के भी पालन-पोषण का भार उस पर न था। हाँ, कभी-कभी उसके स्वर्गीय पिता के मित्र, जिन्हें वह अपने अभिभावक के समान समझता था, अवश्य कोठरी मे आ जाते थे, और एक-दो दिन रहकर, उसे सांत्वना देकर चले जाते थे। वह वृद्ध थे, और बड़े गंभीर थे। उनकी भी आर्थिक दशा कुछ अच्छी न

थी, पर लोगों ने उन्हें यह कहते सुना था—"यदि मैं चाहूँ, तो आज लाखों रुपए कमा सकता हूँ।" संभवतः उनके इस वक्तव्य को सुनकर लोगों को अनुमान हुआ करता था कि इनके पास अलाउद्दीन के चिराग के समान ही कोई वस्तु होगी। अस्तु।

आज संध्या को—जब बाबूलाल अपनी उसी कोठरी मे बैठा हस्त लिखित चित्रो की पुस्तक अपनी उसी पैतृक सपत्तिवाली संदूक से निकाल उसके पृष्ठ फाड़ रहा था-- वृद्ध ने सहसा कोठरी मे पदार्पण किया। युवक को चित्रों की यह पुस्तक फाड़ते देख वह अकचका उठा। कुछ कुछ क्रोध के लक्षण उसके मुख पर स्पष्ट हो उठे। उसने पूछा—"बाबूलाल! यह क्या है?"

वृद्ध की आकृति और ध्वनि सुनकर बाबूलाल एक बार काँप उठा। वह वृद्ध के स्वभाव को भली भाँति जानता था। आज की यह ध्वनि कुछ असाधारणता लिए हुए थी। उसने मुख नीचा कर कहा—"कल बाज़ार में बेचने के लिये इसकी बतकें बना रहा था चाचाजी!"

"इसकी!" वृद्ध के स्वर मे कुछ क्रोध की मात्रा अधिक थी।

बाबूलाल की समझ मे कुछ न आया। इन चित्रो की बतक बनाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपयोगिता और इन परिस्थितियों मे जीविका के लिये इससे अच्छा साधन उसकी कल्पना के बाहर था। वह कुछ भी उत्तर न दे सका।

वृद्ध ने कपाल पर हाथ रखते हुए कहा—"बाबूलाल! यह कार्य तुम कब से करते हो?"

"आज आठ दिन तो हुए ही है चाचाजी! पहले दिन ही फ़ुलट्टी मे ताँगे मे जाते हुए एक साहब ने मेरी बतक के ५) दिए थे। परंतु फिर वह उधर न दिखाई.....।"

"गुलदस्ते क्यों नहीं बनाते?" बात पूरी होने के पूर्व ही वृद्ध ने कहा। असंतोष का भाव स्वर से स्पष्ट था।

"उससे तो दोनो समय भोजन भी नहीं मिलता था। मैने कई बार इन रंग-बिरंगी पुस्तकों से अपनी जीविका कमाने की बात सोची, परंतु पिताजी के अंतिम शब्द—'बाबू! पुस्तकों को सुरक्षित रखना, बिगाड़ना मत।'—मुझे हर बार इसका निषेध करते रहे। चार दिन तक निराहार रहकर मेरी आत्मा काँप उठी, और उसी दिन से यह व्यवसाय ग्रहण कर लिया है...।" कहते कहते आँसू की दो बूँदे युवक के नेत्रों से टपक पड़ीं। वह वृद्ध के पैरो पर गिर पड़ा।

धूप मे रक्खे हुए कपूर की भाँति वृद्ध का क्रोध न-जाने कहाँ उड़ गया। उसने बाबूलाल को उठा अपनी छाती से चिपका लिया, और कहा—"अब भविष्य मे यह कार्य कदापि न करना बेटा! पिता के अंतिम आदेश की रक्षा शरीर मे प्राण रहते करना। तूने जो पाप किया है, उसका भी प्रायश्चित्त करना होगा। बेटा, करेग न?"

"हाँ चाचाजी!" बाबूलाल अब भी रुआसा-सा हो रहा था।

"अच्छा, तो उठो, मेरे साथ चलो।" वृद्ध ने कहा।

उस अंधकारमयी रात्रि मे बाबूलाल और वृद्ध वातायन की दीपावलियो को देखते हुए सरिता की ओर चल दिए। न-जाने किस अदृष्ट की नौका पर बैठा हुआ बाबूलाल प्रवाह मे बहा जा रहा था। पर हाँ, उसके साथ एक वृद्ध नाविक अवश्य था।

(२)

पाँच वर्ष पश्चात्।

बाबूलाल अब वह बाबूलाल न था। अब लोग उसे कहते थे मुंशी बाबूलाल साहब कुल-श्रेष्ठ। समय की बलिहारी है। विश्व मे समृद्धि, आदर, गुणों की क़द्रदानी धन के अभाव में नहीं हुआ करती है। जब तक अर्थ पर स्वामित्व न कर

लिया जाय, व्यक्तित्व का मूल्य कौन आँकता है। बाबूलाल ने भी अब धन एकत्रित कर लिया है। संसार की दृष्टि मे अब वह बडा आदमी हो गया है। उसकी ज़रा-ज़रा-सी बात कुछ मूल्य रखती है, पर वैसे उसके व्यवहार में कुछ अंतर न हुआ। वह उन धनी व्यक्तियों मे से न था, जिनका जीवन अधिकतर विलासिता की गोदी मे चैन की वंशी बजाते हुए व्यतीत होता है। वह जो कुछ था, स्वयं का बनाया हुआ था।

उसकी दिनचर्या पूर्व की अपेक्षा अब और भी कठिन हो चली थी।

प्रयोगशाला मे कम-से-कम दिन में आठ घंटे वह रहता था, और चार घंटे जंगलों मे अकेले घूमना भी उसके लिये आवश्यक था। कभी किसी के साथ उसे बाहर वन एवं उपत्यकाओं मे जाते हुए किसी ने न देखा था। यदि ज़बर्दस्ती कोई साथ हो ले, तो उसके कार्य में विघ्न पड जाता था, वह उस दिन फिर न जाता था। उसके हाथ मे होता था एक बड़ा ज़ेबदार कपड़े का थैला और कतरनी इत्यादि कुछ औज़ार।

लोगो का विश्वास था कि यह थैला ही जादू का थैला है, और बाबूलाल का सारा भाग्य इसी पर अवलंबित है। और, बात भी कुछ-कुछ ऐसी ही थी। प्रयोगशाला मे लगातार आठ घंटे उसके सामने यह थैला ही तो खुला रक्खा रहता था। वह अब एक वैज्ञानिक था।

उसकी फ़र्म थी, और बडी भारी फ़र्म। चित्रकारी की अन्य वस्तुओ के साथ वह दो प्रधान आवश्यक वस्तुएँ भी बेचती थी। और, इन्हीं के कारण वह प्रसिद्ध थी—एक तो पूर्वकाल के चित्र और दूसरी रंगो के ट्यूब। फ़र्म का दावा था कि इन ट्यूबो के अंदर जो रंग हैं, वे उसी प्रकार के हैं, जिनको आठ शताब्दी पूर्व के चित्रकार उपयोग मे लाते थे। और, उनमे विशेषता यह थी कि शताब्दियों तक इनमे चित्रित चित्र आभा मे परिवर्तित नही होते थे। वे प्राकृतिक रंग थे। उत्पत्ति-स्थान था वृक्षों की भाँति-भाँति की पत्तियाँ। प्रत्येक मनुष्य इन रगों को न बना सकता था। वृक्षों, पल्लवों, कुसुमो एवं छालों का चुनाव और मिकदार तथा मिश्रण की विधि ही भाँति-भाँति के रंगों को तैयार कर सकती थी।

बाबूलाल को फ़ैक्टरी का एक भी कर्मचारी उन फारमूलो को, जिन पर इन रंगो का मिश्रण निर्भर था, न जानता था। आठ घंटे मे प्रयोगशाला मे गुप्त रूप से बाबूलाल इन फारमूलों के आधार पर ही मिश्रण तैयार कर फ़ैक्टरी मे भेज देता था, और रग आवश्यकीय विधियो के पश्चात् ट्यूबों मे भर दिए जाते थे। कृत्रिम रंगो का व्यवसाय अब बिलकुल मंदा पड गया था। केवल भारत के ही नहीं, विदेशों के भी चित्रकारो को बाबूलाल की ही फर्म रंग भेजती थी।

व्यापारिक क्षेत्र मे इसीलिये आज बाबूलाल की तूती बोलती थी। प्रत्येक प्रकार के रगो का, जिनकी संख्या दिन-ब-दिन बढती ही जाती थी, बाबूलाल आविष्कार कर चुका था। सारे योरप की फ़र्मों मे गडबड मची हुई थी। मूल्य मे ये रंग इतने सस्ते थे कि कृत्रिम उपायो से प्राप्त रंगो को जनता अब "बड़े महँगे और टुच्चे हैं।" कहकर त्याग कर चुकी थी। फ़ैक्टरी मे एक विभाग था इंडिगो रंगो का। आल आदि लताओं से यहाँ रंग बनाए जाते थे। भारत के चार शताब्दी पूर्व के उद्योगों का यहाँ पुनर्निर्माण हो रहा था। प्रत्येक विदेशी फ़र्म का मैनेजर और पूँजीपति बाबूलाल को एक-एक फारमूले के लिये हज़ारों रुपए देने को तैयार था। भाँति-भाँति के प्रलोभन नित्य ही बाबूलाल के पथ मे बिखरे पडते थे, पर वह कसौटी पर सच्चा ही उतर रहा था, अडा हुआ था।

आज जब वह प्रयोगशाला में नवीन आविष्कारित

गुलाबी रंगों का मिश्रण नमूने (Trial) के लिये बना रहा था, नौकर ने एक विज़िटिंग कार्ड उसके सामने लाकर रख दिया।

"न-जाने क्यों ये लोग मुझे इतना तंग करते हैं ?" झल्लाकर बाबूलाल ने कहा, और फिर कुछ क्षण उपरांत बोला—"अच्छा, कमरे में बैठाओ।"

नौकर चला गया।

बाबूलाल भी प्रयोगशाला की निजी (Private) अलमारी का ताला लगा ड्राइंग-रूम मे आ गया। पदार्पण करते ही वह भौचक-सा खड़ा हो गया। उसने देखा, सामने ही कुर्सी पर एक अद्वितीय सुंदरी विदेशी रमणी बैठी थी। यद्यपि लज्जा और मधुरिमा का संयोग उसके मुख पर न था, परंतु एक शांत, सौम्य मुद्रा अवश्य नृत्य करती थी। बाबूलाल के पदार्पण करते ही रमणी उठ खड़ी हुई, और बोली—"आप ही इस फ़र्म के संभवतः मालिक हैं।"

"जी हाँ, कहिए।"

"मैं कुछ पुराने चित्र ख़रीदूँगी। क्या आप उन्हे बतला सकेंगे ?"

"जी हाँ, आप बैठिए। हाँ, तो किस समय के चित्र आप चाहती है ?"

"यह तो ठीक-ठीक नहीं कह सकती...हाँ, परंतु ..आप...दिखाइए तो।" कुछ घबराते हुए रमणी ने कहा।

"आइए मेरे साथ।" कहकर बाबूलाल आगे हो लिया।

शो-रूम में पहुँचते ही चित्रों से पूरी दीवाल ढकी हुई देखकर रमणी आश्चर्य-चकित हो गई। "यह ९वीं शताब्दी का है, और यह ११वीं का।" आदि कहता हुआ बाबूलाल प्रत्येक चित्र का परिचय कराने लगा। सहसा रमणी एक चित्र के पास रुक गई, और बोली—"क्या आप बतला सकते है कि यह चित्र अभी तक क्यों इतना आभा-पूर्ण है, और आजकल के चित्र क्यों शीघ्र ही नष्ट हो जाते है ?"

"यह तो स्पष्ट है महोदया ! वर्तमान चित्रों के रंग इन पूर्वकाल के चित्रों के रंगों से सर्वथा भिन्न और निकृष्ट कोटि के होते है। वे अधिकाधिक एक शताब्दी तक आभा-पूर्ण रह सकते हैं, क्योंकि वे कृत्रिम है, और पूर्वकाल के रंग पूर्णतया अकृत्रिम, वनस्पतियों के तत्त्व से तैयार किए होते थे।"

"क्या आप उन्ही रंगों का आविष्कार कर रहे है ?"

"जी हाँ, भारतवर्ष की यह कला किसी समय सर्वश्रेष्ठ रह चुकी है। परंतु समय की गति के अनुसार इस कला का ह्रास होता गया, और हम भी वे सब गुण भूलते गए, जिन्हे हमारे पूर्वज जानते थे। मै आजकल वे ही प्राकृतिक रंग तैयार कर रहा हूँ। कुछ का आविष्कार करना अभी बाकी है, अनुसंधान कर रहा हूँ।"

"आप किस प्रकार इनका आविष्कार कर सके ? प्रथम मिश्रण आपको कहाँ प्राप्त हुआ ?"

"प्रथम मिश्रण ? आह ! वह तो मेरे पूज्य गुरुदेव चाचाजी की कृपा का फल है। महोदया, अपने पिता के घनिष्ठ मित्र द्वारा ही आज मैं इस पद पर पहुँच सका हूँ। न-जाने भारतवर्ष के कोने-कोने में अब भी कितने ही अद्वितीय गुणी पड़े हुए है, जिनमें से प्रत्येक के पास अलाउद्दीन का एक-एक चिराग़ मिल सकता है। मेरे स्वयं के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध चित्रो का श्रेय भी उन्हीं को है। गत पाँच वर्षों में मैंने उनके ही चरणो में बैठकर कलाराधन सीखा है।" एक दीर्घ श्वास लेकर उसने कहा।

रमणी भारतीय कला पर मुग्ध थी। उसकी तन्मयता और कला-संबंधी ज्ञान देखकर बाबूलाल आश्चर्य-चकित रह गया। एक विदेशी रमणी, और भारतीय कला का इतना अध्ययन !

बाबूलाल ने कुछ साहस कर पूछा—"मैं

आपका शुभ नाम जान सकता हूँ महोदया ?''

"मेरा ? हाँ मेरा नाम है जॉर्जी लेवेगियर। क्या आप अपना नाम मुझे बतला सकेंगे आविष्कारक महोदय !''

''अवश्य। मेरा नाम है बाबूलाल।''

"परंतु मैं तो आपको आविष्कारक कहकर ही संबोधन करूँगी।'' मंद हास्य के साथ जॉर्जी ने कहा। उसके स्वर से पूर्णतया भारतीयपन टपकता था।

"आपसे एक अनुरोध है आविष्कारक महोदय !''

''कहिए, निस्संकोच होकर कहिए।'' कुछ आत्मीयता का भाव जताते हुए बाबूलाल ने कहा।

"मुझे भारतीय कला मे विशेष रुचि है। यदि आप आज्ञा दे, तो मैं कुछ दिन आपके स्थान पर आकर इन चित्रो का अध्ययन कर लूँ ?''

"शौक से आ सकती है आप।'' आँखो में आँखें डालते हुए बाबूलाल ने कहा। उसने देखा कि कुछ घबराहट के चिह्न जॉर्जी के मुख पर स्पष्ट थे।

"आपको कोई असुविधा...तो . न होगी आविष्कारक !'' बात सँभालते हुए उसने कहा।

"नहीं। आप चाहे, तो शौक़ से आ सकती है। मैं सद्वृत्तियो के विकास मे बाधा डालना नही चाहता। और, हम भारतीयो के जीवन मे अतिथि-सत्कार ही तो एक बडा भारी गुण है महोदया !'' नम्र स्वर मे बाबूलाल बोला।

''धन्यवाद ! अच्छा, तो मै कल से फिर ।''

''अवश्य।'' बाबूलाल ने उत्तर दिया।

(३)

जॉर्जी एक विदेशी रमणी अवश्य थी, परंतु उसके संसर्ग मे आने पर यह कह देना कि वह विदेशी है, ज़रा कठिन था। उसके पिता भारत के सैनिक-विभाग मे एक उच्च पद पर बीस वर्ष तक रह चुके थे, और उसकी मा इँगलैंड के उच्च घराने की बेटी थी। उसे ललित कलाओं से बड़ा अनुराग था। संभवतः जॉर्जी ने अपने पिता से भारतीयता और माता से कला-प्रेम ही ग्रहण किया था। यद्यपि उसका जन्म इँगलैंड मे हुआ था, परंतु प्रारंभिक शिक्षा को छोडकर शेष सब भारत मे ही हुआ था। वह संस्कृत की अच्छी विदुषी थी। भारतीय पंडितो के चरणो में बैठकर उसने वर्षो तक हिंदी और संस्कृत का अध्ययन किया था। पाश्चात्य ललित कलाओं पर उसने पिता की मृत्यु के पश्चात् इँगलैंड जाकर अच्छा अध्ययन कर लिया था। हाँ, पश्चिमीय रहन-सहन उसे काटने को दौडता था। वह प्रकृति के जितना समीप आना चाहती थी, इँगलैंड का बाह्याडंबर और कृत्रिम जीवन उसे उतना ही दूर खीचता था। वह अब भारत आना चाहती थी, परंतु अर्थाभाव उसके मार्ग में बडा भारी रोड़ा था। दिन बीतते जाते थे, और उसकी दरिद्रता भी बढती जाती थी। वह अब अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिये विशेष चिंतित हो उठी थी। ऐसे ही समय मे लंदन की रंग-फ़ैक्टरी का उसे निमन्त्रण प्राप्त हुआ। उसे अच्छी तनख़्वाह देने का वचन दिया गया। परिस्थितियों के वश मे आकर उसे यह नौकरी स्वीकार कर लेनी पड़ी। चार मास पश्चात् ही उसे भारत आने का आदेश मिला, परंतु विचित्र रूप मे। मैनेजर ने उसे बुलाकर पूछा था—"आप भारत मे रह चुकी है न ?''

"जी हाँ।''

"भारतीय कला और विज्ञान का अध्ययन तो आपने किया है ?''

"जी हाँ।''

"अच्छा, तो आपको भारत जाना होगा, कंपनी की जासूस होकर।''

"जासूस !'' आसमान से गिरे हुए की भाँति उसने कहा था।

"जी हाँ, आपको वहाँ जाकर उस कंपनी के मैनेजर से मिलना होगा।'' एक कार्ड हाथ में

देते हुए मैनेजर ने कहा था—"और, आविष्कारक से घनिष्ठता स्थापित कर किसी-न-किसी प्रकार उसके आविष्कृत रंगों का सौदा करना होगा। अथवा गुप्त रूप से रंगों के फारमूले और विधि लानी होगी।"

"यह तो बड़ा कठिन कार्य है महोदय! मुझसे न हो सकेगा।"

"नहीं-नहीं; आपको ही करना होगा मिस जॉर्जी! कंपनी के साथ आपका तीन वर्ष का एग्रीमेंट है। और, मैंने सुना है, आप भारत जाना भी चाहती हैं। क्या आपको राष्ट्रीयता का कुछ भी ध्यान नहीं है? सोचिए! यदि आप यह कार्य कर सकीं, तो राष्ट्र को इस व्यापार से कितना लाभ होगा। भारतीय कला के अध्ययन का भी तो आपके लिये यह अच्छा अवसर है!"

"मैनेजर साहब! दया करिए। मैं इस कार्य को नहीं कर सकूँ..।"

"आप नहीं कर सकेंगी, इसका तो कोई तात्पर्य नहीं। हाँ, यदि आप नहीं करना चाहती है, तो जुर्माने का रुपया देकर कांट्रेक्ट तोड़ लीजिए। क्या इतना रुपया आप दे सकेंगी?"

"रुपया!" कहते-कहते उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

"आप ज़िद न करिए मिस! परसों आपको भारत के लिये रवाना हो जाना पड़ेगा।" कहकर मैनेजर कमरे के बाहर चला गया।

जॉर्जी को भारत आना पड़ा। बाबूलाल से मिलने के पश्चात् उसने अपना कार्य आरंभ कर तो दिया, पर आत्मा साथ न दे रही थी। वह प्रतिदिन बाबूलाल के पास आती थी। उसे ज्ञात हो चुका था कि बाबूलाल की तूलिका में अद्वितीय शक्ति है। उसने चित्रकला सीखना भी आरंभ कर दिया था। आशा के अनुसार बाबूलाल ने शीघ्र ही अपना सारा विश्वास जॉर्जी पर रख दिया। जॉर्जी का बाह्य आवरण कैसा ही हो, परंतु वहाँ निवास करती थी एक कला-प्रेमी आत्मा। बाबूलाल के सरल, सौजन्य और स्नेहमय व्यवहार ने जॉर्जी के पथ में रोड़ा अटका दिया। उसका हृदय विश्वासघात की बात सोचते ही सिहर उठता था। परिचय बढ़ने के साथ ही दोनो का आत्मिक संबंध भी दृढ़ होता गया। घंटों दोनो बैठे कला की विवेचना में ही लगा देते थे। बिछोह अब दोनो को ही अखरता था। बाबूलाल के अनुरोध अथवा आग्रह से जॉर्जी उसकी कोठी में ही आकर रहने लगी। बाबूलाल कई बार जॉर्जी से उसकी उदासी का, जो रंगों की बातें करते समय आ टपकती थी, कारण पूछ चुका था, परंतु वह सदा टालती ही रही। कमरे में एकांत में एक-दो घंटे बैठकर रो लेना जॉर्जी की दिनचर्या में शामिल हो गया था। उधर कंपनी के तक़ाज़े पर तकाज़े आ रहे थे। एग्रीमेंट का विचारकर एक बार वह एक रंग का फ़ारमूला भेजने का निश्चय कर चुकी थी, परंतु दूसरे दिन ही बाबूलाल के अगाध विश्वास के साथ यह कहते सुनकर कि "जॉर्जी, क्या गुलाबी रंग के फ़ारमूले की दो प्रतिलिपि तैयार कर सकोगी?" उसका निश्चय डावाँडोल हो उठा। वह न भेज सकी, न भेज सकी। हाँ, एक मार्ग अवश्य निकल आया। वह ज़रा से प्रयत्न से ही शिक्षा-विभाग में लड़कियों के कॉलेज की प्रिंसिपल नियुक्त कर दी गई। और, अब उसकी तनख़्वाह का अधिकांश भाग कंपनी को जाया करता था, हर्जाने के रूप में, जो उसके एग्रीमेंट का दूसरा भाग था।

उसकी दिनचर्या अब भी पूर्ण रूप से अव्यवस्थित थी। परंतु क्यों? इसका उत्तर उसके पास न था। हाँ, प्रसन्नता अब उसके मुख पर अवश्य आ गई थी।

(४)

चार वर्ष हो चुके थे। वह अब कंपनी की ऋणी

मे न थी। परंतु एक टीस-सी अब भी उसके हृदय मे उपस्थित थी। बाबूलाल ने दो वर्ष पूर्व एक बार उससे विवाह का प्रस्ताव किया था बहुत दबे स्वर मे, और उसका हृदय भी एक अनिर्वचनीय आनंद से नाच उठा था, कुछ गुदगुदी-सी मच गई थी, परंतु मुख से कोई शब्द न निकल सका। उसकी चुप्पी देखकर बाबूलाल फिर साहस न कर सका। हाँ, उसके उत्साह मे अवश्य यथेष्ट अतर पड चुका था।

आज अकस्मात् जब प्रयोगशाला में बैठा हुआ बाबूलाल एक मिश्रण तैयार कर रहा था, और जॉर्जी उसके कार्य मे सहायता कर रही थी, सहसा निस्तब्धता भंग करते हुए जॉर्जी ने कहा—"आविष्कारक! यदि मैं तुमसे विवाह करना चाहूँ, तो?"

बाबूलाल के हाथ की शीशी ज़मीन पर गिर पडी, वह कुर्सी पर से उठ खडा हुआ, "तो!...तो! .. .. जॉर्जी!.. ..।" उसका गला काँप रहा था, वह संभवतः हर्ष-विह्वल था।

बड़े समारोह से दोनो का विवाह-आयोजन हो रहा था, और उधर लंदन की कंपनी (रंगो की) का मैनेजर निमन्त्रण-पत्र हाथ में लिए हुए सोच रहा था—"चौबेजी गए थे छब्बेजी बनने, रह गए दुबेजी!"

❀　　❀　　❀

प्रयोगशाला मे अब एक आविष्कारक नहीं, दो दो आविष्कारक काम कर रहे थे। आविष्कारक की उदासी और एकाकीपन न-जाने कहाँ विलीन हो गया था। फैक्टरी का तो कहना ही क्या था। भारतीय कला और संस्कृति के आँगन में खेलते हुए इन दो सजीव पुतलो को एक ही थैला हाथ मे लिए हुए, प्रातःकाल वायु-सेवन को वन-प्रांतो की ओर जाते हुए देखकर लोग-बाग कहा करते थे—"देखो, अलाउद्दीन के दोनो चिराग़ अँधेरा मिटाते हुए चले जा रहे है!"

श्री 'चकोरी'जी की कविता

[श्रीपं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

हिंदी की, अभिराम अलग-अलग रंगोवाली, मधु और सौरभ से भरी, सुघर काव्य की वासंतिका, दूर दिशाओं तक फैले नील आकाश के नीचे, सोते से उठी वयस्का कुमारियों की खुली आँखों मे जैसे, युगपद्, भीतर और बाहर की विपुल विश्व-विभूतियों मे विकास पाती जा रही है। एक ही शुभ समय के धाराप्रवाह मे दिव्य जिन कलियों ने पहलेपहल आँख खोलकर पलटती पारिपार्श्विक स्थिति को देखकर समझा, और अपने काव्य के नैसर्गिक सौंदर्य, रंग और गंधों से दर्शकों को चकित, प्रसन्न और उद्वेल कर दिया, उनमे श्रीमती तोरणदेवी शुक्ल 'लली', श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीमती महादेवी वर्मा एम्० ए०, श्रीमती रामेश्वरीदेवी 'चकोरी', श्रीमती तारा पांडेय आदि के नाम मुख्य है। हिंदी के नवीन युग-विकास को युवकों की तुलना मे कम शक्ति इनसे नही प्राप्त हुई। कालिदास कला-विषय पर पति के मुकाबले उन्हे "प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ" इस उक्ति से शायद प्राधान्य देना नहीं चाहते, और यह उस समय की शायद अधिक-रसिकता रही हो; पर मुझे दोनो सम, बल्कि ललित कला-विधि मे देवियाँ समधिक कुशल देख पड़ती है। अवश्य यहाँ इसका विकास समय-सापेक्ष है। वैज्ञानिक उक्ति उपाध्याय 'हरि-औधजी' की इस विषय मे मुझे अच्छी लगती है—

"नर है पीवर धीर वीर संयत श्रमकारी,
है मृदु-तन उपराममयी तरलित-उर नारी।"

'चकोरी'जी का हाथ बहुत कम उम्र मे काव्य-लेखन मे सधा, शायद हिंदी की किसी भी प्रतिभा का इतना जल्द स्फुरण नहीं हुआ, यहाँ आने पर उनके प्रशंसकों तथा परिजनो से मुझे ज्ञात हुआ। पहले उनकी बेले की ख़ुशबू-सी कोमल और शरत् की ज्योत्स्ना-रात-सी मादक केवल रचना की ओर मेरा मन गया था। तब उनका शुभ विवाह न हुआ था। तारीफ करते हुए अपने एक मित्र से मुझे मालूम हुआ कि वह मेरे बिलकुल पड़ोस—एक ही जिले की अमुक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कुल की दुहिता है। क्रमशः लखनऊ रहने के कारण, 'चकोरी'जी के प्रिय, हिंदी के सुलेखक और कवि 'अरुण'जी से मेरी जान-पहचान और घनिष्ठता हुई। मुझे उनके काव्य के अतिरिक्त कवि-जीवन का भी प्रकाश मिला। तब भी तारा, नलिनी आदि हिंदी मे न खुली-खिली थी; शायद उनके विकास की गंध उनके हृदय मे भर रही थी, और यदि वह

भीनी-भीनी बहती भी रही, तो मुझे उसका पता न था।

खड़ी बोली के काव्य का मनुष्यावास-योग्य जीवन नहीं बन पाया। अभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपो से भिन्न भिन्न कवियों के मस्तिष्क मे उप-देवताओं की तरह वह चक्कर काट रही है, जैसे उन आवर्तों से सहस्र-सहस्र शरीर निर्मित हो रहे हो, प्राण और आत्मा से युक्त सुखद संलाप भी होते जाते है। पर ये अभी कवियो के भाव-संसार मे जितने पूर्ण और संस्कृत हैं, खड़ी बोली के प्राकृत विश्व मे उतने नही। साधारण जनता इस जीवन से अभी बहुत पीछे है। शिक्षितो के यहाँ भी अधिकांश मे प्रांतीय बोलियाँ घरेलू व्यवहार मे प्रचलित है। कहीं-कही खड़ी बोली बोली जाती है, पर इसका साहित्यिक महत्त्व बहुत परिमित है। इसलिये, सृष्टि की प्राथमिक दशा की तरह, खडी बोली की कविता अभी केवल शक्ति राशि या आकार-हीन स्वर है। यह इसीलिये इस समय कवियो को शक्ति द्वारा दम्य नहीं हो रही, बल्कि उन्ही को अपनी शक्ति से कभी कभी विपत्ति मे डाल देती है। दो-एक देवियों को मै जानता हूँ, कुछ ही अच्छे पद्य लिखने के बाद उन्हे क्लिष्ट होकर इस संसार से प्रयाण कर जाना पड़ा। कुछ बहुत बुरी तरह घायल हो गईं, चकोरी और तारा इन्ही मे है। और भी कई कोकिलाएँ हृदय-व्याधि के कारण सुरीली आवाज सुनाने को कभी-कभी अशक्त हो जाती है। कवियों मे भी यह व्याधि है। श्रीसुमित्रानंदनजी पंत को हृद्रोग से दो-ढाई साल तक लिखना बंद रखना पड़ा था। प्रसादजी भी पीड़ित रहते थे। मुझे भी इसका यथेष्ट परिज्ञान हो चुका है। अस्तु, इस बीमारी के कारण 'चकोरी'जी का प्रफुल्ल, पूरे चाँदवाली रात को मनोविकास न हो सका। पर हँसी के जो फूल व्यथा से रंगे जाकर आत्मा की सुरभि लेकर आए, वे उनकी स्मृति को अक्षय रक्खेंगे। यह भी आशा है कि अच्छी होकर नए उत्साह से काव्य के खुले उत्स द्वारा वह अपने बंधु-बांधवो को पुन. स्निग्ध करेंगी—समधिक शक्ति तथा मार्जन का मनोरम परिचय देंगी। मैने इतना यह इसलिये भी लिखा कि 'चकोरी'-जी के उत्कर्ष के जो साधन अध्ययन और काव्य-पाठ आदि से थे, वे बीमारी के कारण सिद्धि रूप न पा सके, और काव्य मे उनका मुखर विकास वयस्कता मे परिणमित होने के बदले सुकुमार तारुण्य मे स्थायी हो सका। यह दूसरों को कैसा भी लगे, मुझे तो काव्य की दृष्टि से बड़ा सुंदर और पूर्ण मालूम देता है—

"भव-सागर के तट पर अजान
सुनती हूँ वह कलरव महान।
एकाकी हूँ, कोई न संग;
उठती है रह-रह भय-तरंग।
केवल यौवन का भार लिए
बैठी हूँ, सूना प्यार लिए।"

जिस हृदय मे काव्य के चरण-चिह्न अंकित रहते हैं, यह वही हृदय है। विश्व मे स्वजन-परिजनो से परिवृत भी मनुष्य भाव जगत् मे

अकेला, निस्संग रहता है। वहीं, नवजीवनोन्मेष में, तरुणी कवयित्री अपना असहाय अकेलापन प्रत्यक्ष करती है। वह पार नहीं जा सकी, इसलिये उसका हृदय शून्य है, प्रेम-सिक्त नहीं हो सका। उसका प्रेम पार्थिव पंकिलता नहीं। "केवल यौवन का भार लिए" वह बैठी है। इस पंक्ति में जितना सौंदर्य है, उतना ही दुःख। यौवन के भार से सौंदर्य व्यंजित है, पर है वह भार! इसीलिये तरुणी कवयित्री पार नहीं जा सकी, बैठी है।

इस पद्य में अनेक प्रकार के आवर्तों के बाद है—

"प्राची में अरुण मुस्कराया;
लहरों ने प्रलय-गान गाया!
मेरा नाविक बह गया कहीं;
जीवन सूना रह गया वहीं।
फिर बिखरा दी संचित उमंग;
ले गई उसे भी जल तरंग।"

पहले भावों में जो तरह-तरह के रंग देख पड़ते हैं, उनकी तह तक पहुँचने पर बड़ा मनोरंजन होता है। कहीं-कहीं, श्रीमती महादेवीजी की तरह, 'चकोरी'जी भी गाती हैं, और अपने स्वर के आरोह-अवरोह में दूर से दूर चली जाती हैं, समझते चलने पर आलोचक पाठक को बड़ा सुंदर काव्य-मिश्र मनस्तत्त्व प्राप्त होता है। उठान, उड़ान और ऊहापोह तरह-तरह के रत्नों से परिचित कराती रहती है। 'चकोरी'जी की यह कविता बड़ी सुंदर बन पड़ी है; पर उनकी परिस्थिति का ज्ञाता आलोचक ही इस 'एक घूँट' के अमृत के अर्थ कर सकता है। 'अरुण' 'चकोरी'जी के पति का उपनाम है। 'प्राची में अरुण मुस्कराया', इस पंक्ति में 'अरुण' की मुस्कान की ओर बड़ी सूक्ष्म व्यंजना जान पड़ती है, और इसी मुस्कान को कवयित्री ने अपना अरूप प्राणाधार माना है। पहले जहाँ उन्होंने लिखा है—

"अर्पण कर प्रेम-पराग तुझे
नाविक ने दिया सुहाग मुझे।"

वहाँ इस नाविक-रूप से भी उनका पति है। वह उनको नाव पर बैठाकर ले चलता है। पर वह नाव डूब जाती है। तब प्राची में 'अरुण' मुस्कराता है, लहरें प्रलय-गीत गाने लगती हैं। नाविक कहीं बह जाता है—कितना सुंदर है यह! अब पति का शरीर नहीं—आत्मा, जो पूर्ण है, अरुण की मुस्कान के रूप से, देख पड़ती है। कवयित्री का ध्यान वहीं लगा हुआ है। पर चूँकि उसका जीवन है, इसलिये वह शून्य है—अभी मुस्कान से एकात्मता प्राप्त नहीं हुई। संचित उमंगें समुद्र-जल की तरंग में कहीं बह गई है।

"मैंने ही पथ-दर्शक-विहीन
कर दिया सिंधु में आत्मलीन!
कितना अथाह! कितना अपार!
ले चली मुझे भी एक बार!
छूटें भव-बंधन, चाह नहीं;
हो जाय प्रलय, परवाह नहीं!

जाती हूँ अब उस पार वहाँ,
है मेरा प्राणाधार जहाँ!"

वास्तव मे दुनिया में अपना कोई प्रदर्शक नहीं—"जहाँ मे हाली किसी का अपने सिवा भरोसा न कीजिएगा; य' भेद है अपनी ज़िंदगी का कि इसका चर्चा न कीजिएगा।" इसलिये सिंधु मे मज्जित होना स्वाभाविक है। वहाँ, मज्जित कवयित्री संसार-दुःख से भी मुक्ति पाने की इच्छा, बहती हुई, नहीं कर रही। उसे केवल इतना आत्मविश्वास है कि वह उस पार जा रही है, जहाँ उसका प्राणाधार (प्राणो का भी कारण, आत्मा) है। यह उसी मुस्कान मे मिलने की व्यंजना है। तब देह न रहेगी, प्रिय से एकात्मता हो जायगी।

अदृश्य-प्रियता 'चकोरी'जी मे भी आधुनिक अपर श्रेष्ठ कवियो जैसी है—

"छिपकर धीरे से प्रियतम,
चुपचाप हृदय मे आओ;
मेरी वह भावुक वीणा
सोती है, उसे जगाओ।"

हृदय की वीणा अरूप प्रिय के स्पर्श से झंकृत होगी, तभी उत्तम संगीत काव्य की लड़ियो मे गूँथकर निकलेगा। कितना अच्छा भाव है—

"निर्झरिणी के अंतस्तल में
किसका सौंदर्य झलकता है?
अलसाई-सी मृदु लहरों से
किसका अनुराग छलकता है?
उस अस्फुट सी कल-कल-ध्वनि में
छिप कौन गान गाता अधीर,
जिसको सुन मचल-मचल पड़ता
चंचल विमुग्ध सुरभित समीर?"

इन पंक्तियो से 'चकोरी'जी की अरूप-प्रियता स्पष्ट होती है।

उनके काव्य में एक स्वर प्रायः बजता मिलता है। वह है 'दर्द'। 'करुणा' कह सकते है, पर दर्द अधिक उपयुक्त है। करुणा मे दुःख की अधिकता-मात्र दर्शित होती है। अवश्य कुछ ने इसमे सब रसो की सिद्धि देखी है। पर 'दर्द' मे दुःख के दलों पर शृंगार की रंगीनी भी है। 'चकोरी'जी की भाषा ऐसी ही बन गई है। वेदना के तार उनके सुख समय भी बजते रहते है। ओस की बूँद जैसे प्रभात की किरणों से चमकती हो—इधर-उधर के रंग भी जैसे उसमे फलित हुए हो।

छंद और सवैया लिखने मे 'चकोरी'जी हिंदी की कवयित्रियो मे सबसे आगे है। दो-चार सुप्रसिद्ध कवियो को छोड़कर खड़ी बोली मे इतने दुरुस्त छंद किसी के नहीं। 'उजड़ी वाटिका से' कवयित्री के प्रश्न—

"वह वल्लरियाँ लिए पल्लवो को
निज अंक मे नित्य झुलातीं न क्यो?
मदमत्त हो स्वागत में उषा के
विहगावली गान सुनातीं न क्यों?
सुमनावलियाँ मुसकाती हुई
भ्रमरो को बुला बहलातीं न क्यों?
मदिरा-सी पिए, अलसाती हुई
तितली अब चित्त चुराती न क्यों?

चरणों में महावर प्रात ही से
अब ऊषा सखी है सजाती न क्यों ?
रवि सोने से माँग न क्यो भरता ?
निशा काजल आके लगाती न क्यों ?
पहिने हरे रंग की सारी नई
सजी फूलो से तू इतराती न क्यो ?
सब साज - शृंगार कहाँ को गए,
तू व्यथा की कथा हा ! सुनाती न क्यों ?"

कितने सुंदर चित्र और मनोभाव अंकित है ! कहीं-कहीं भाषा का व्यतिक्रम है, पर वह भी उतना ही शोभन लगता है। 'न' की जगह 'नहीं' लेना चाहती है। पर 'न' की यह खूबसूरती और मादकता तब न रह जायगी। कविता मे भाषा-स्वातंत्र्य गद्य से अधिक लिया गया है, और विभिन्न भाषाओं मे आज भी लिया जाता है। उर्दू मे पद्य की भाषा भी गद्य की सी मँजी हुई शुद्ध होती है ; पर यह सार्वभौम नियम नही। उर्दू की कविता कुछ गिने-गिनाए वृत्तों मे रहती है। अभी 'Vers libre' मुक्त छंद की उसमे सृष्टि नहीं हुई, और विश्व-भर के छंदों को अपनाने की शक्ति भी उसमे नहीं, न लाने का कोई प्रयत्न किया गया ; कुछ प्रचलित वृत्त जो थे, उनमे चक्कर काटती हुई भाषा मँज गई है, तो यह आदर्श न हो गया।

'पावस' पर 'चकोरी'जी की रचना—

"कहीं श्याम चँदोवा तना नभ मे,
हरी फ़र्श बिछा दी धरा ने अहा !
तरु-पल्लवो ने हरी शाल सी ओढ़,
हरे रंग से गया विश्व नहा।
सजे वल्लरियों ने हरे परिधान,
कोई हरे तोरण बाँध रहा ;
मलयानिल ने यह पावस - आगम
का सबसे जा सँदेशा कहा।
अलि - गायकों की जुड़ी मंडली है,
कहीं नृत्य मयूर दिखा रहे है;
तितली फिरती बनी अप्सरा-सी,
जिन्हें पुष्प सुरा - सी पिला रहे है।
तरु तन्मय होकर झूमते है,
पिक गान मनोहर गा रहे है ;
बक-पाँति कहीं उड़ी जा रही है,
हलके कहीं बादल छा रहे हैं।"

'सूर्योदय' पर एक छंद—

'लाल लाल आँखे हुई रवि की, उन्हें विलोक
कालिमा कुटिल का समस्त तेज धो गया ;
छूटे तेज-पुंज के कराल बाण, निशिराज
सहित समाज समरांगण में सो गया ;
छूटे अलि बंदि से, सँयोगी बने चक्रवाक,
निशि का अँधेरा पल-भर में ही खो गया ;
स्वर्ण-युग छा गया उषा का नभ-मंडल मे,
विश्व को 'चकोरी' सुप्रभात प्राप्त हो गया।"

इन वर्णनो मे 'चकोरी'जी ने भावों के अनुकूल पुष्ट भाषा का प्रयोग किया है। देश-विषय पर भी उनकी रचनाएँ है। वे भी सुघर हुई है। यह प्रसिद्ध तथा निर्विवाद है कि हिंदी-साहित्य की वर्तमान कवयित्रियों मे उनका अपना स्थान है, जो उत्तरोत्तर स्थायी होगा। ईश्वर उन्हे पुष्ट स्वास्थ्य तथा प्रबल कांक्षा

से सदैव जाग्रत् रक्खें। उनसे देवियों के आदर्श का प्रशस्त पथ हिंदी-भाषियो मे परिचित होगा, और उनके कंठ का स्वर घर-घर सहस्रो वीणापाणियो द्वारा झंकृत होगा, जो भविष्य मे चलकर हिंदी की संस्कृति कहलाएगी।

संगीत-सुमन

(आलोचना)

[श्रीयुत नारायण-मोरेश्वर खरे]

गीत-क्षेत्र में 'संगीत-सुमन' का उदय बहुत ही आनंददायक है। इसके कर्ता हैं श्रीशिवगढ़-नरेश श्रीमान् राजा बरखंडी महेश प्रतापनारायणसिंहजू देव। निःसंदेह राजा साहब इस पुस्तक को लिखकर अपने समय-समय पर उठे हुए हृदयोद्गारों को प्रकाश में ले आए हैं। सच्चे कवि और संगीतज्ञ अपनी काव्य-शक्ति तथा संगीत के दक्षता का दावा नहीं करते, क्योंकि वे बड़े विनम्र होते हैं। वे निसर्ग के दैवी संगीत का अनुभव करते हैं, इसलिये निसर्ग के आगे वे मस्तक झुकाते हैं। शिवगढ़-नरेश उनमें से एक हैं।

'संगीत-सुमन' पर सम्मति देना मेरी शक्ति के बाहर की बात है, क्योंकि मुझमें कवित्व-शक्ति ज़रा-सी भी नहीं। राजा साहब भले कहें कि वह स्वयं कवि नहीं हैं, लेकिन मुझे तो उनकी नम्रता में कवित्व ही दिखाई देता है। राजा साहब में कवित्व और संगीत की अभिज्ञता का मिश्रण है। इसी से उनकी रचना में सोने और सुगंध का सामंजस्य होने से 'संगीत-सुमन' यह नाम भी उन्हें अच्छा याद आया। निवेदन में ठा० नर्मदेश्वरसिंहजी लिखते हैं कि राजा साहब के शब्द या पद मुझे हृदयग्राही और करुण-प्रधान प्रतीत हुए।

आपका यह कथन बिलकुल यथार्थ है। और, स्वर भी श्रीमान् के हैं, इससे तो मुझे बहुत ही आनंद हुआ, क्योंकि आजकल राजा-महाराजाओं में जहाँ इन दोनों गुणों का अभाव होता है, वहाँ राजा साहब एक अपवाद रूप हैं। राजा साहब को इसलिये बधाई देनी चाहिए। किताब देखते हुए मुझे यह निश्चय हो रहा है कि राजा साहब ने संगीत क्षेत्र में यह नया क़दम रक्खा है। उस्तादी ढंग के गीत जो आजकल गायकवर्ग में प्रचलित हैं, उनमें से अधिकांश गीत शृंगार और विकृत रस के परिचायक हैं। उस्तादी गायनों में वीर-रस बहुत ही कम पाया जाता है। साधु-संतों ने राग-रागिनी के भजनों द्वारा भक्ति-रस की झलक दिखाई है, लेकिन जनता को उत्थान देनेवाले गीतों की कमी ही रही।

संगीत-कल्पद्रुम में बहुत-से उस्तादी गायनों का संग्रह है। उन पर यदि दृष्टिपात किया जाय, तो पुराने ज़माने में बादशाहों के रंगमहल में जो ऐशोआराम चलता था, उसका असर उस समय के समाज में कैसा हुआ था, यह मालूम होता है। ऐसे तो ऐशोआराम के विकृत शृंगार से भरे हुए गीत हमारे उस्ताद लोग गाया करते हैं। वे भी क्या करें? उनके बाप-दादों ने जैसा सिखाया, वे लोग वैसा ही गाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उनकी विचार शक्ति भी नष्ट हुई, जिसे वे लोग कुछ भी नहीं समझते कि वे स्वयं कहाँ जा रहे हैं; अस्तु। राजा साहब ने इन बातों पर अच्छी तरह ध्यान दिया है। 'संगीत-सुमन' में लगभग ४५ गीत अलग-अलग राग-रागिनियों और तालों में दिए गए हैं। वे सब गीत अच्छे और हृदयस्पर्शी भी हैं, उदाहरणार्थ राग दुर्गा का पद देखिए। पद बहुत ही छोटा है, पर इसमें भाव कितना सीधा है—

दृगन देखन चहत आनन।
करन सेवा चहत कर दोऊ,
महेश सुनिबो बचन कानन।

दूसरा उदाहरण दरबारी कान्हड़ा का देखिए

प्रतिपालक, प्रभुवर, पाहि माम्।
अव्यक्त, अगोचर, अज, अकाम!
क्यों रूठे जीवन-कर्णधार!
छोड़ी नैया यह बीच धार।
दनुजारि, दयानिधि, त्राहि माम्॥ १॥
भव-निधि तरिहौं केहि भाँति नाथ,
जबलौं महेश गहिहौं न हाथ।
करुणा-वरुणालय, पुण्यधाम॥ २॥

संगीत के भी राजा साहब कैसे ज्ञाता हैं, यह देखिए। इन्होंने तालमंजरी करके एक राग लिखा है 'मंजरी'। ऊपर से आपको वसत-ऋतु याद आई, और आपने लिखा—

स्थायी

सरस बसत आली, छाया मनोहर।
पहिरि पटमंजरी फूले पलास री।

अंतरा

महेश न झपे नयन शूल उठन हूल,
तीत लगत माहिं उन बिन सजनी!
खेलन जात होरी।

आपने स्थायी मे वसंत, छायानट, पटमंजरी और भीमपलासी का दर्शन कराया, और अंतरे में झपताल, शूलताल, तीनताल और धमारताल का स्मरण कराया। और, पद की रचना भी ऐसी हुई, जिसमें साहित्य का भी रंग आ गया। राजा साहब की यह रचना बहुत सुंदर है।

कई एक स्थलों में वृत्त-दोष रह गया है, और बहुत गीतों के अनुकूल रागश्री मुझे नहीं मिली। उदाहरणार्थ—

"पालक जलचर थलचर नभचर"

पृष्ठ २० पर की दूसरी पंक्ति झपताल में आने से ठीक नही लगती*। पृष्ठ ३८ पर सोहनी मे गांधार अंश माना है, वह उत्तर रात्रि के राग में ठीक नहीं लगता। पद की रचना भी तीन ताल की जान पडती है, उसकी जगह झपताल आया है। वैसा ही 'बागेश्री' राग मे झपताल में—

नंद-नंदन खेले होरी।
आज वृषभानुनंदिनी संग लिए रा;
अरुण उदय रबि प्राची सोहत,
जिमि मुदित महेश निरखि यह जोरी।

इस पद में राजा साहब को नंद-नंदन और वृषभानु-सुता को देखकर अरुणोदय और प्राची की याद हुई। लेकिन राग बागेश्री याद आया। ऐसे बहुत थोड़े-से वादग्रस्त प्रश्नों को छोड़कर राजा साहब की यह पुस्तक संगीत को विशेष सुशोभित करती है। इतना ही नहीं, यह पुस्तक साहित्य में भी एक अपूर्व स्थान रखती है†।

---

* आलोचक ने ठीक लिखा है। देखने पर सोलह मात्राएँ आती है, और चीज तीन ताल की लगती है। पर स्वरों में प्रसार करने से ताल का रूप शुद्ध हो जाता है। जैसे—

पा+आ+ल+अ+क+
ज+ल+च+अ+र,
थ+ल+च+अ+र+
न+भ+च+अ+र।

† पं० नारायण-मोरेश्वर खरे प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० विष्णुदिगंबर के शिष्य, महात्मा गांधी के साबरमती सत्याग्रहाश्रम के भजन और प्रार्थना के प्रमुख और संगीत-विद्या में निपुण है।—संपादक

प्राची दिशा और ऊषा

[श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

(शार्दूलविक्रीड़ित)

ले के मंजुल अंक में प्रथम दो धारे सदाभामयी,
पाके नूतन लालिमा फिर मिले प्यारी प्रभा भानु की ;
ऐसा है वह कौन लोक, जिसको है मोह लेती नहीं—
लीलाएँ कर, मंद-मंद हँसके प्राची-दिशा-सुंदरी ॥ १ ॥
है लालायित नेत्र प्रीति जननी, है लालिमा से लसी,
है लीला-सरि की ललाम लहरी प्रातःप्रभा-रंजिनी ;
है प्राची-कर-पालिता प्रिय सुता, है मूर्ति माधुर्य की,
ऊषा है अनुराग-रागवलिता आलोक-मालामयी ॥ २ ॥
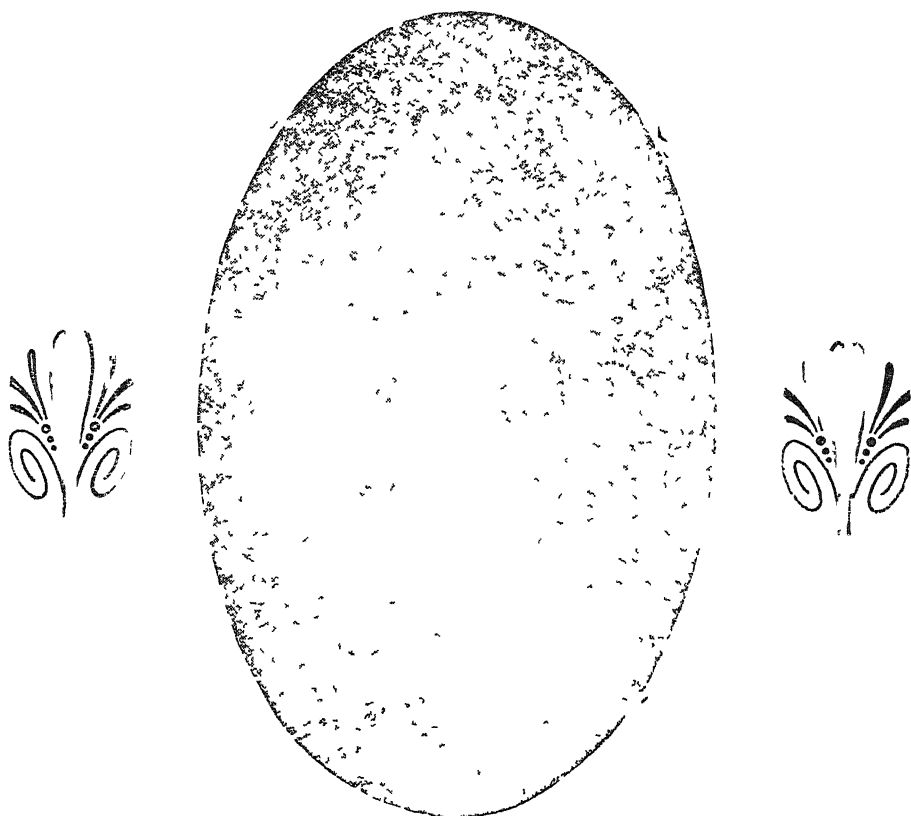
श्रीप्रो० रामकुमार वर्मा एम्० ए०

[आप हिंदी के प्रसिद्ध कवि, लेखक और आलोचक हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक हैं। आपकी कविता पृष्ठ २७३ पर देखिए।]
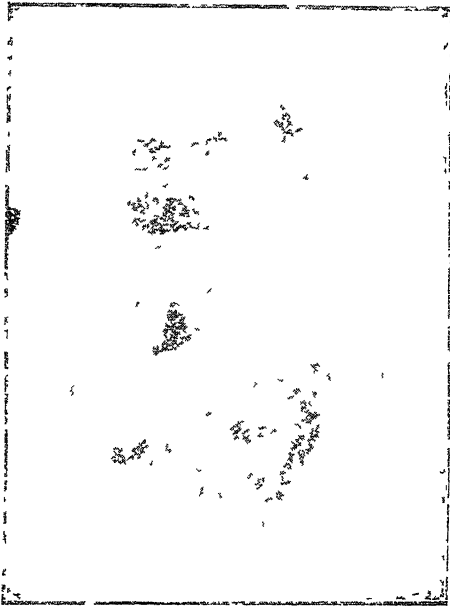
श्रीपं० सत्यनारायणजी कविरत्न

[आपको पं० बनारसीदासजी ब्रजभाषा का अंतिम कवि समझते हैं, यद्यपि इनके बाद भी रत्नाकरजी, द्विजश्यामजी, सिरसजी, सनेहीजी, उमेशजी, रसालजी, सरसजी आदि अच्छे कवि हुए और हैं।]

[आप गुजरात की उदीयमान हिंदी-लेखिका और कवयित्री हैं। आप हिंदी को सर्व-प्रिय बनाने का विशेष प्रयत्न करती रहती हैं।]

श्रीमती राजकुमारी देवी 'रमा'

श्रीनवलकिशोरजी भरतिया

[आप कांग्रेस के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता और समाज-सुधारक हैं ।]

श्रीयुत डॉ० पीतांबरदत्तजी बडथ्वाल एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०

[आप हिंदी के एकमात्र डी० लिट्०, उदीयमान लेखक और सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ हैं। आचार्य-श्रेष्ठ बाबू श्यामसुंदरदास के प्रधान शिष्य है। आपने प्राचीन हिंदी-साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया है।]

चयन

१. व्रजभाषा मे संबंध विभक्ति

श्रीपंडित वेंकटेशनारायण तिवारी का 'सरस्वती' में एक लेख निकला था, जिसका शीर्षक था 'समालोचक कौन देश को बासी।' इस पर इंदौर से प्रकाशित 'वीणा' के योग्य संपादक ने लिखा कि संबंध कारक की शुद्ध विभक्ति व्रजभाषा के व्याकरण के अनुसार 'कौ' होनी चाहिए, 'को' अशुद्ध है। इसी विषय को लेकर उक्त सपादक महाशय ने 'भारत' में एक विद्वत्ता-पूर्ण पत्र भी प्रकाशित किया, जिसमें विस्तृत रूप से इस प्रश्न पर विचार किया। 'वीणा' के संपादक का यह कहना कि व्रज में 'कौ' बोला जाता है, 'को' नहीं, सर्वथा यथार्थ है, और इस सत्य को ग्रहण करने में किसी को संकोच या दुराग्रह नहीं होना चाहिए। साथ ही एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि सूरसागर इत्यादि ग्रंथो मे—केवल मुद्रित ही नहीं, हस्त-लिखित भी—बहुधा 'को' ही छपा और लिखा मिलता है। ऐसी दशा मे 'को' को अशुद्ध कह देना भी ठीक नही। व्रजभाषा के विद्वान् तथा जिनको मातृभाषा व्रजभाषा है, उनको 'कौ' बोलते और 'को' लिखते सुना और देखा गया है। रत्नाकरजी तथा वियोगीहरिजी की मातृभाषा व्रजभाषा न थी, इसलिये उन्होने जैसा सुना, वैसा ही लिख दिया। अतएव उनके 'कौ' लिखने से इस प्रश्न की असलियत पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। बात यह है कि शब्द-शास्त्र के नियमो के अनुसार मनुष्य दीर्घ स्वरो के लिखने और बोलने मे अलसाता है। मनुष्य प्रकृति धीरे-धीरे शब्दो के उन रूपो को त्याग देती है, जिन बोलने और लिखने मे कुछ भी कष्ट मालूम पड़ता हो। इसका बड़ा अच्छा उदाहरण 'तो' के इतिहास में मिलता है। सभी लोग अभी तक 'तौ' ही बोलते है, पर तु लिखते सब 'तो' ही हैं। बीस-पचीस वर्ष पहले छपी हुई पुस्तके देखिए, आपको 'तौ' ही मिलेगा; पर अब, यद्यपि उसके उच्चारण मे कोई अतर नहीं हुआ, उसे कोई 'औ' की मात्रा लगाकर नहीं लिखता। इसी प्रकार 'कौ' की दशा भी समझनी चाहिए।

जो असली उच्चारण 'औ' स्वर का है, वैसा उच्चारण तो कोई भी 'कौ' या 'कौन' बोलते मे नही करता। बात यह है कि 'औ' के मुकाबले 'ओ' और 'ऐ' के मुकाबले 'ए' को लोग पसंद करते है, और 'औ', 'ऐ' को छोड़ते जाते है, तथा उनके स्थान पर 'ओ', 'ए' करते जाते है। हमारी आँखों के सामने यह हो रहा है। 'तो' का उदाहरण दिया जा चुका। अब देखिए, उच्चारण के लिहाज़ से ऐम्० ए० लिखना चाहिए, और पहले ऐसा ही लिखा जाता था, पर तु आजकल की प्रवृत्ति क्या है। शायद सभी 'एम्० ए०' लिखने लग गए है। 'ऐल्-ऐल्० बी०' लिखने मे तो बडा ही आलस्य आता है; लाग निस्संकोच 'एल्-एल्० बी०' लिखते है। कोई-कोई तो चाहे 'यल्-यल्० बी०' भले ही लिख दे, पर तु 'ऐल्-ऐल्० बी०' नहीं लिखेगे। हिंदी मे 'ओ' और 'औ' तथा 'ए' और 'ऐ' के बीच की एक आवाज़ और भी है, जिसे हम लोग सदा मुख मे निकालते हैं, पर तु उसके लिये कोई विशिष्ट स्वर हमारी वर्ण-माला मे नहीं। अभिप्राय उस ध्वनि से है, जो 'और' अथवा 'जैसा' मे है। 'और' को कोई उस उच्चारण से नहीं बोलता, जो बालको को वर्ण-परिचय कराते समय 'औ' का बतलाया जाता है। ऐसे ही 'जैसा' को कोई 'जइसा' न बोलता है, न पढ़ता है। यदि कोई असली उच्चारण करता भी है, तो उस पर लोग—अहले-ज़बान—नाक-भौं चढ़ाते हैं। इस

प्रकार अपने आप भाषा का, शब्दों का, ध्वनियों का परिवर्तन होता रहता है। जब सूरदास ने अपने पद बनाने आरंभ किए थे, उस समय व्रजभाषा पूर्णतया प्रौढावस्था में थी, और उस पर भाषा-विज्ञान के साधारण नियमों का पूरा प्रभाव पड़ चुका था। ऐसी दशा में यह नितांत संभव हो सकता है कि 'कौ' बोला जाता हो, पर लिखा जाता हो 'को', जैसे आजकल 'तौ' बोला जाता है, और लिखा जाता है 'तो'। प्रायः ऐसे बेमालूम परिवर्तन अपने आप ही होते रहते हैं, कोई साहित्य प्रणेता कभी सम्मेलन द्वारा एक रूप को ग्राह्य और दूसरे को वर्जित घोषित करते हुए नहीं सुना गया।

केदारनाथ भट्ट (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

२. गीत

मिल गए डगर में सहसा ही
चल तृषित नयन चिर खोज रंगे।
मृदु सिहर उठे विद्युत-से तन;
जल गया 'अहम्', भय-सीमित वन,
गुथ गई अमर, दृढ़ आत्म-ग्रंथि
उर-ज्योति - कमल - दल मुक्ति जगे।
जीवन का वांछित भेद खुला,
सत्, ज्ञान, मुक्ति की प्रेम-तुला;
अब खड़े अपल लख मुग्ध परस्पर—
चिदानंद - रस - अमृत - पगे।

गिरीशचंद्र पंत

× × ×

३. ओवरकोट का चोर

बड़ा सनसनीखेज़ मामला था। नगर के अख़बारों में विशाल हेडिंगों के साथ उसी की चर्चा हो रही थी। सब लोग ताज्जुब करते थे, आख़िर चोरी के लिये एक ओवरकोट ही मिला! मेसर्स रामजीवन ऐंड संस की दूकान में, जहाँ चोरी हुई थी, इसमें क़ीमती हज़ारों चीज़ें रक्खी हुई थीं। एक सोने का गलहार ही मार देता, तो ढाई-तीन सौ हाथ लगते। पर चोरी की भी, तो एक सड़े-से ओवरकोट की, जिसकी क़ीमत थी, सिर्फ़ तेरह रुपए पंद्रह आने!

यही आश्चर्य की बात थी!

अभियुक्त पचीस वर्ष का एक ईसाई युवक था। सेक्रेटरिएट में टाइपिस्ट था। पैंतीस रुपए मासिक पाता था। नाम था सैम्युएल डेविड। ऐसा पढ़ा-लिखा, कमाऊ युवक चोरी करने के लिये उद्यत हो, और वह भी एक मामूली ओवरकोट की! न-जाने मामले की तह में कौन-सी बात छिपी हुई है?

ख़ुसूसियत यह थी कि पहले ही दिन सैम्युएल डेविड के मुख्य ऑफ़िसर मिस्टर ओल्डफ़ील्ड की गवाही हो गई थी, जिसमें उन्होंने इस युवक के सच्चरित्र, सुशील और ईमानदार होने का बढ़िया सर्टिफ़िकेट दिया था। फिर ऐसा, सच्ची राह पर चलनेवाला तरुण चोरी-जैसा पाप करने के लिये क्यों आमादा हुआ, यह सवाल जनता को आश्चर्य-सागर में डुबो रहा था।

अख़बार-नवीसों के तर्क चलते थे, अख़बार पढ़नेवालों के भी। पुलिस-ऑफ़िसर सिर खुजलाते थे और मैजिस्ट्रेट भी। पर किसी को भी सत्य का आभास नहीं मिल रहा था।

ख़ैर, मामला चलने लगा, और अदालत दर्शकों द्वारा खचाखच भरने लगी।

❀ ❀ ❀

"आह! बेटी प्रीटा, ठंड लग रही है। ज़रा कंबल हो, तो दे दे। या फिर थोड़े कोयले ही जला दे। आह, हे ईसू!" एक वृद्धा स्त्री ने करवट लेते हुए तथा अपनी वेदनाओं पर ब्रेक कसने की कोशिश करते हुए ये शब्द कहे।

दिसंबर का जाड़ा था। रात के ग्यारह बजे थे।

रुग्णा एक पलंग पर पड़ी-पड़ी ठंड के मारे काँप रही थी। पास ही एक लैंप टिमटिमा रहा था, और अपने धूमिल प्रकाश से कमरे के वातावरण को अधिक भयानक बना रहा था। पलंग पर ही वृद्धा की तरुण इकलौती बेटी, प्रीटा जॉन्सन, उदास बैठी थी—मा के पैर दबा रही थी। मा की बीमारी के कारण उसके मुँह पर कष्ट और चिंता की छाप स्पष्ट पड़ गई थी। आँखों में गीलापन भी दिखलाई पड़ता था। तारुण्य का वरदान पाई हुई वह युवती, स्नेह और करुणा की सजीव मूर्ति दिखाई पड़ती थी।

मा की कंबल की माँग सुनते ही, बरबस अपने चेहरे पर मुस्किराहट लाते हुए, वह बोल उठी—"हाँ, ममा, अभी लाती हूँ। और कहो, तो कोयला भी जला दूँ। तूने पहले क्यों नहीं कहा?" लड़की हिरनी की चपलता के साथ उठी, और अपना ख़ुद का कंबल—मकान में बचा हुआ, ओढ़ने का अंतिम वस्त्र—ले आई, जिसमें सूती कपड़े के चार चीथड़े लगे हुए थे। उसे झटकारकर मा को ओढ़ा दिया, और उसके चेहरे पर स्नेह-युक्त हाथ फेरते हुए उसका मुँह चूम लिया। मा बेटी का अक्षय प्रेम देखकर रो उठी, और बोली—"बेटी, ईसू तुझे सुखी रक्खे!'

उस ग़रीब के साम्राज्य में प्रेम राज्य करता था, इसलिये वह निर्धन कमरा भी वृंदावन हो उठा था।

मिस प्रीटा जॉन्सन पोस्टमास्टर जनरल के ऑफ़िस में ४०) मासिक पर क्लर्क थी। आयु इक्कीस वर्ष की थी। मा की अकेली बेटी थी, उसे लेकर किराए के कमरे में, कैन्टूनमेंट मुहल्ले में, रहती थी। मा की लगातार बीमारी ने उसकी आमदनी से इतना तक़ाज़ा किया कि प्रीटा को ग़रीब कहना ही उचित है। और, ग़रीबी भी ख़ूब थी। ऑफ़िस में जाते समय पहनने की पोशाक के सिवा घर में कोई भी चीज़ सजी नहीं थी। कपड़े फटे थे, बर्तन फूटे थे, क्योंकि सारी तनख़्वाह मा की दवा और डॉक्टरों की फ़ीस में ख़तम हो जाती। पर इससे प्रीटा तनिक भी दुःखी नहीं थी। माता की सेवा में वह इतनी तत्पर थी कि उसे जीवित रखने के लिये अपना प्राण-त्याग भी उसे सौभाग्य ही लगता था। मा बेटी का प्रेम देखकर हरी हो जाती, अपने को धन्य मानती। और, बेटी माता का आशीर्वाद पाकर सब कुछ सहन करती जाती।

पर यह दिसंबर का कड़ाके का जाड़ा आफ़त कर रहा था। प्रीटा ने अपने सारे कपड़े मा को दे दिए—गरम ब्लाउज़, अंडरवेअर, सब कुछ। और ख़ुद अपनी सूती पोशाक में ही, साढ़े छ बजे सुबह ठिठुरते हुए, ऑफ़िस जाया करती। रास्ते में, यदि दूर तक कोई न दिखाई देता तो, एक दौड़ लगा देती, जिसके कारण शरीर में काफ़ी गरमी आ जाती।

इस तरह मातृभक्त प्रीटा अपने कष्टों का सामना धीरज के साथ कर रही थी। उसका सेवा-भाव और मातृ-प्रेम देखकर तो हृदय में श्रद्धा होती थी, और उसके प्रति एकाएक मस्तक झुक जाता था।

❀　❀　❀

उस समय सुबह के आठ बजे थे। मिस प्रीटा जॉन्सन दफ़्तर में काम कर रही थी। उसके हाथ में 'न्यूज़ क्रॉनिकल' का ताज़ा अंक आया, और उसकी नज़र ओवर कोट की चोरीवाले मामले पर पड़ी, जो पहले पेज पर 'स्टीमर' के साथ प्रकाशित हुआ था। अभियुक्त सैम्युएल डेविड था, यह देखकर उसका सिर चक्कर खाने लगा, और उसे प्रतीत होने लगा कि वह बेहोश हो जायगी। किंतु दौड़कर उसने अपने सिर पर ठंडे पानी के छींटे मारे, और एक कप चाय पी। फिर तबियत कुछ ठिकाने आई,

पर मन की अस्वस्थता वैसी ही बनी रही। सैम्युएल डेविड को संकट में देखकर उसका हृदय रो उठा। और, जब उसने देखा कि उस पर सिर्फ़ एक ओवर कोट की चोरी का इलज़ाम है, तो उसकी आँखें कृतज्ञता और स्नेह के कारण सजल हो उठीं, क्योंकि सैम्युएल डेविड उसका प्रियतम था, सर्वस्व था, और वह जानती थी कि यह ओवरकोट उसी के लिये चुराया गया था।

❀ ❀ ❀

आज सैम्युएल डेविड की सफ़ाई थी, इसलिये अदालत में ख़ूब भीड़ थी। मैजिस्ट्रेट साहब अपनी कुर्सी पर बैठे, और अभियुक्त सामने खड़ा किया गया। ओवरकोट के चोर ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य में कहा—

"हाँ, मैं क़बूल करता हूँ, मैंने ओवरकोट चुराया है। मुझे खेद है कि मैं उसे इच्छित स्थान पर नहीं पहुँचा सका, दुर्भाग्य-वश वह इस समय पुलिस के हाथ में है।

"मैं अत्यंत गरीब हूँ। मेरी छोटी-सी तनख़्वाह मे इस महँगे नगर मे गुज़र होना कठिन है। जिस महीने क़र्ज़ नहीं निकालता, ईसू का शुक्र मानता हूँ। पास एक कौड़ी भी नहीं बच पाती।

"मुझे भरी अदालत मे यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं कि मै एक युवती से प्रेम करता हूँ।"

अदालत मे सन्नाटा छा गया। घड़ी की टिक्-टिक् स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी।

"पर उसका नाम नहीं बताऊँगा।" सैम्युएल डेविड ने कहा—"उसके गौरव के लिये यही बेहतर है। वह भी अत्यंत ग़रीब है। शायद मुझसे भी। इस निष्ठुर ठंड में भी उसे रोटी कमाने के लिये, ठिठुरते हुए, बाहर जाना पड़ता है—बदन पर सिर्फ़ सूती कपड़ा रहता है। डॉक्टर ने आगाह किया कि इस तरह न्यूमोनिया हो जाने का डर है, और चूँकि उसके फेफड़े कमज़ोर है, मृत्यु हो जाना भी संभव है।"

मृत्यु के विचार से अभियुक्त का शरीर सिहर उठा। आध मिनट ठहरकर वह प्राण-भरे शब्दों में बोला—

"मिस्टर मैजिस्ट्रेट! उसकी मृत्यु मेरी ही मृत्यु है। उसे टालने के लिये मैंने यह ओवरकोट भेंट करना तय किया था। पास एक पैसा नहीं था। उधार लेने की कोशिश की—कामयाब नहीं हुआ। इसलिये चोरी करने की ठानी।

"और मैंने चोरी की है! मैजिस्ट्रेट साहब, आप मुझे सज़ा दे सकते हैं। रज यही है कि यह ओवर-कोट उस लड़की के पास नहीं पहुँच सका।"

अभियुक्त बयान देते देते रुक गया। दुख और निराशा के कारण उसका चेहरा उतर गया। गला भर आया। उसने रूमाल अपनी आँखों से लगा लिया।

उसी समय मैजिस्ट्रेट के नेत्र भी आर्द्र हो गए। उपस्थित महिलाओं की सिसकियाँ ज़ोर पकड़ने लगी। अदालत में अब भी भीषण सन्नाटा था।

मैजिस्ट्रेट ने दुखी अंतःकरण से कहा—"मैं अभियुक्त के अक्षर-अक्षर को सत्य मानता हूँ। उसके प्रति हार्दिक सहानुभूति भी रखता हूँ, पर चोरी का ध्येय कितना भी उदात्त रहा हो, वह चोरी ही है। क़ानून की नज़रों मे वह गुनाह है। अभियुक्त ने ख़ुद गुनाह क़बूल कर लिया है, इस-लिये उसे मै सिर्फ़ तीन महीने की कड़ी क़ैद की सज़ा देता हूँ।"

अदालत उठ गई। लोग भरा हृदय ले, एक-एक कर घर चले गए।

मिस ग्रीटा जॉन्सन के विषाद की तो कल्पना ही की जा सकती है।

मैजिस्ट्रेट सैम्युएल डेविड से मिलने जेल में गया। ओवर कोट उसकी प्रेयसी के पास नहीं पहुँच

सका, इसलिये क़ैदी अत्यंत दुखी था। मैजिस्ट्रेट ने, एकांत में, स्नेह-भरे अंतःकरण से, लड़की का नाम पूछा। कुछ आनाकानी करने के बाद उसने बतला दिया।

दूसरे दिन मैजिस्ट्रेट ने सैम्युएल डेविड के हाथ में मिस ग्रीटा जॉन्सन का लिखा पत्र दिया, जिसमे उसने एक नए गरम ओवरकोट की पहुँच लिखी थी और उसके त्यागमय प्रेम के लिये एक चुंबन लिख भेजा था।

सैम्युएल डेविड ने मैजिस्ट्रेट की तरफ़ कृतज्ञता और जल-भरी आँखों से देखा। और, दूसरे ही क्षण, गुनगुनाते हुए, वह लिफ़ाफ़े चिपकाने का काम करने लगा, मानो उसे दुनिया की सुध बुध ही न रही हो।

अनंतगोपाल शेवड़े (बी० ए०)

× × ×

४ श्याम की सुंदरता*

आजु आलो मचलि रह्यौ है जसुदा सो श्याम,
लीन्हे कर - कजनि मे माखन के दौना द्वै;
'श्रीपति' सुजान सोभा बरनि न जाइ मो पै,
जातु गह्यौ चंद कहूँ हाथनि सो बौना ह्वै।
तौऊ अवलोकि कै दृगंजन की सोभा मोहि—
जानि परै खेलत मनोज के खिलौना द्वै;
कैधो ये अमंद रस लैबे को अनंद भरै,
मानो नील - कंज पै मलिंदन के छौना द्वै।

श्रीपतिलाल द्विवेदी

---

* इस कविता पर गत दिल्ली-हिंदी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर होनेवाले कवि-सम्मेलन में कई स्वर्ण और रजत-पदक मिल चुके हैं।—सु० सं०

परीक्षा

राक्षसो की कहानियाँ—लेखक, वानर-सपादक श्रीआनदकुमार, प्रकाशक, हिदी-मदिर, प्रयाग, पृष्ठ-सख्या ८६; आकार डबल क्राउन १ । १६ ; मूल्य ।=)

इस पुस्तक मे ६ छोटी-छोटी कहानियाँ है, और सब-की-सब पश्चिमीय देशो की फोकलोर के आधार पर लिखी गई है। कहानियाँ सरस हैं। और, यदि हम इस सिद्धात को निर्विवाद स्वीकार कर ले कि पश्चिमीय संस्कृति की क़लम हिंदोस्तान की कोमल भूमि मे लग सकती है, और लगाना चाहिए, तो श्रीआनंदकुमारजी को हम इस प्रयत्न के लिये धन्यवाद देगे।

× × ×

मणि-माला—लेखक, श्रीनोखेलाल शर्मा काव्यतीर्थ, प्रकाशक, युगातर-साहित्य-मदिर, भागलपुर, पृष्ठ-सख्या ९० ; आकार डबल क्राउन १ । १६ ; कागज अच्छा ; मूल्य ॥)

मणि-माला गद्य-काव्य की पुस्तक है, और हिंदी के गद्य-काव्य के ग्रंथो को देखते हुए सराहनीय प्रयत्न है। मणि-माला मे ७१ पृष्ठ है, और हरएक कवि की विशेष भावना बोल रही है। कहीं भक्ति है, कही वैराग्य; कहीं उन्माद, कहीं पुलक। भाषा मधुर, लच्छेदार और मँजी हुई। कल्पना-संसार मे रहनेवाले मनुष्य के लिये अच्छी पुस्तक है।

स० स०

× × ×

वानर-संगीत—रचयिता, पं० रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक, हिदी-मदिर, प्रयाग, मूल्य ।)

बच्चो के खेलने, गाने, नाचने और अभिनय करने के पंद्रह गीत इसमे है। पुस्तक के अंत मे गीतो की स्वर-लिपियाँ अथवा खेलने व गाने के नियम भी दे दिए गए है। अध्यापको की सहायता से बच्चे इन गीतो व खेलो को आसानी से सीख सकते है। रचयिता ने गीतों में शिक्षा भरने का भी प्रयत्न किया है, जिसके समझने मे सिवा कष्ट के और कोई लाभ होने की संभावना नहीं। आशा है, अगले भागों मे बच्चों का मनोरंजन ही मुख्य ध्येय रखकर त्रिपाठीजी और दिलचस्प गीत बनावेगे। हिंदी मे बच्चो के योग्य पुस्तको का बड़ा अभाव हे, और इस अभाव को दूर करने का त्रिपाठीजी का प्रयत्न स्तुत्य है।

× × ×

श्रीबदरी-केदार की झाँकी (सचित्र)—लेखक, श्रीमहावीरप्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर' ; प्रकाशक, गीता-प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ सख्या १०० , मूल्य ।)

इस पुस्तक मे हिंदुओं के प्रसिद्ध उत्तराखंड के तीर्थों की यात्रा का रोचक वर्णन है। यात्रियों के बड़े काम की है। सभी जानने योग्य बाते, मान-चित्र तथा चट्टियो की सूची दी हुई है। छपाई और काग़ज़ अच्छे है। मूल्य भी, गीता-प्रेस की अन्य पुस्तको की भाँति, कम है।

× × ×

स्त्रियो और बच्चियो का व्यापार—लेखक, श्रीयुत शिवनारायण टंडन; प्रकाशक, शारदा सदन, कटरा (प्रयाग), पृष्ठ सख्या २०० , मूल्य १।)

इस पुस्तक मे संसार के सब देशों की स्त्रियों और बच्चियो के व्यापार से संबंध रखनेवाली सारी ख़ास-ख़ास घटनाओं का समावेश है। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि स्त्रियों और बच्चियों का व्यापार कैसे नियमित रूप से देश-देशांतरों में जारी है। इस कलुषित व्यापार के करनेवाले कैसे-कैसे और कहाँ-कहाँ से औरतो को फँसाते, बेचते तथा उनके द्वारा धनोपार्जन करते हैं, यह सब कहानी इसमें पढ़ने को मिलेगी। कुशल लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से इस पाप के पेशे की हालत लिखी

है। और, मनोरंजन के साथ-साथ पाठक के मन में इस प्रश्न की गंभीरता का भी पूरा-पूरा असर डालने में लेखक सफल हुए हैं। ऐसी पुस्तकें जिस सीधी-सादी भाषा में लिखी जानी चाहिए, उसका ही व्यवहार आदि से अंत तक टंडन महाशय ने किया है। ऐसी उत्तम शैली, ऐसी सर्व-साधारण की समझ में आसानी से आ जानेवाली भाषा और उस पर इतनी शुद्ध हिंदी लिखने के लिये श्रीशिवनारायण टंडन बधाई के पात्र हैं। विषय, भाषा तथा मनोरंजन, सभी दृष्टि से पुस्तक पढ़ने लायक़ है।

केदारनाथ भट्ट (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

हिंदू-जीवन—लेखक और प्रकाशक, पांडेय नित्यानंद चतुर्वेदी, फ़रुखाबाद, आकार डबल क्राउन १६ पेजी; पृष्ठ-संख्या १४६, कागज और छपाई साधारण; मूल्य १)

इस पुस्तक में हिंदू-जीवन के विविध अंगों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक ने प्रमाणों-सहित लोगों के इस भ्रम को दूर करने का प्रयत्न किया है कि हिंदुओं की सामाजिक प्रथाएँ या वर्ण-भेद ही उसकी अवनति के प्रधान कारण हैं। आपने बड़ी खोज के साथ आर्य-जाति के समय और शासनकर्ताओं का क्रमबद्ध विवरण दिया है। वैदिक शिक्षा और सभ्यता पर प्रकाश डालते हुए आपने आर्य-जाति के विस्तृत साहित्य का दिग्दर्शन किया है। हिंदू-जाति की सामाजिक प्रथाओं का आपने बड़े अच्छे ढंग से समर्थन किया है। अंत में आपने यह भी बतलाया है कि भविष्य में हिंदू-जाति की उचित नीति क्या होनी चाहिए। हिंदू-जाति की श्रेष्ठता के संबंध में आप लिखते हैं—"यह हिंदू-जाति संसार की सर्वश्रेष्ठ आर्य-जाति का रक्त है, और इस समय जो निर्बल अवस्था में पाई जाती है, उसका कारण इसकी धर्मनीति की अनुपयोगिता नहीं है। किंतु जिस प्रकार अधिक परिश्रम करनेवाले मनुष्य का शरीर श्रम के पश्चात् शिथिल अवस्था को प्राप्त होता है, उसी प्रकार विशेष उन्नति करनेवाली जाति के मध्य भी कुछ समय पश्चात् आलस्य और प्रमाद का उत्पन्न हो जाना अवश्य-भावी है। इस जाति की श्रेष्ठता यही है कि संसार के मध्य उन्नति के पथ पर प्रथम पग इसी जाति का बढ़ा, और इसकी उन्नत अवस्था अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक समय तक स्थिर बनी रही। तथा सहस्र वर्ष तक पराधीन रहकर भी अन्य जातियों के समान नष्ट नहीं हुई।" पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। प्रत्येक हिंदू को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए।

× × ×

ईश्वर और धर्म केवल ढोंग है—लेखक और प्रकाशक, श्रीभवानीशंकर दीक्षित मुक़ाम बिछलखा, पोस्ट रामनगर, ज़िला बाराबंकी, पृष्ठ-संख्या १७४; मूल्य ।।)

पुस्तक पढ़ने से मालूम होता है कि लेखक महाशय धर्म के रहस्य को बिलकुल नहीं समझ पाए हैं। हिंदू-धर्म में जो बुराइयाँ आ गई हैं, उनकी तरफ़ लेखक का ध्यान विशेष रूप से गया है, और प्रधानतः उन्हीं को लेखक ने धर्म का रूप दे रक्खा है, इसलिये लेखक को सर्वत्र ढोंग-ही-ढोंग नज़र आ रहा है। जो सज्जन धर्म के रहस्य को समझते हैं, उनको इस पुस्तक में दी हुई दलीलों को पढ़कर हँसी आए बिना न रहेगी। परंतु जिनको धार्मिक शिक्षा प्राप्त नहीं है, वे इस पुस्तक को पढ़कर अवश्य चक्कर में पड़ जायँगे। उनको इस पुस्तक में दी हुई एकतरफ़ा दलीलें सत्य मालूम होने लगेंगी। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियों पर भी इस पुस्तक का बुरा असर पड़ेगा। इस पुस्तक से किसी का लाभ न होगा।

× × ×

रक्षा-बंधन—लेखक, श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी' भारती-संपादक, लाहौर, प्रकाशक, हिंदी-भवन अनारकली, लाहौर, पृष्ठ-संख्या १३२, मूल्य ॥=)

यह एक ऐतिहासिक नाटक है। बड़े अच्छे ढंग से लिखा गया है। महाराणा विक्रमादित्य मेवाड़ के महाराणा थे। गुजरात का बादशाह था बहादुरशाह। महाराणा विक्रमादित्य ने बहादुरशाह के भाई चाँदख़ाँ को आश्रय दिया, इसलिये बहादुरशाह ने एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। राजपूत बड़ी वीरता के साथ लड़े। महारानी कर्मवती ने दिल्ली-सम्राट् हुमायूँ को राखी भेजकर इस संग्राम में सहायता देने के लिये निमंत्रित किया। हुमायूँ अपनी सेना-सहित चित्तौड़ के लिये रवाना हुआ। उसके चित्तौड़ पहुँचने के पहले ही बहादुरशाह की सेना ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया था। महारानी कर्मवती १२,००० क्षत्राणियों के साथ चिता पर चढ़ी। हुमायूँ की सेना ने अंत में बहादुरशाह की सेना को मार भगाया। इस नाटक की एक विशेषता यह है कि इसमें हिंदू-मुस्लिम एकता पर ज़ोर दिया गया है। इस उत्तम नाटक लिखने के लिये हम श्रीप्रेमीजी को बधाई देते हैं। हिंदी-प्रेमी सज्जनों को इस नाटक को कम-से-कम एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए।

× × ×

राजपूतों के जैन वीर—लेखक, श्रीअयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाशक, हिंदी-विद्या-मंदिर, पहाड़ी-धीरज, देहली, पृष्ठ ३४४; मूल्य २)

राजपूताने का निर्माण शहीदों की हड्डियों और रक्त से मिलकर हुआ है। राजपूताने में यह नियम प्राचीन काल से ही चला आता है कि प्रत्येक राजकर्मचारी को यथावसर युद्ध में भाग लेना पड़ता था। शताब्दियों से राजपूताने की रियासतों में मंत्री आदि उच्च पदों पर बहुधा जैनी रहे हैं, और उन्होंने युद्ध के अवसरों पर यथासाध्य अपने प्राण न्यौछावर किए हैं। श्रीगोयलीयजी ने मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर, मेरवाड़ा और आबू के इन जैन वीरों के चरित्रों को इस पुस्तक में एक स्थान पर संग्रह करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस पुस्तक के पढ़ने से यह विदित होता है कि भूतकाल में अहिंसा-प्रेमी जैन वीर किस प्रकार देश, धर्म और जाति की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिये प्राणों का मोह छोड़कर जूझ मरते थे। यह ग्रंथ बड़ी खोज और परिश्रम के साथ लिखा गया है। इस उत्तम पुस्तक लिखने के लिये हम लेखक को बधाई देते हैं।

× × ×

विदेशों में आर्य-समाज—प्रकाशक, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली; पृष्ठ-संख्या ९४; मूल्य ॥)

सन् १९२५ में महर्षि दयानंद के जन्म-शताब्दी के अवसर पर यह निश्चित हुआ था कि विदेशों में अब तक आर्य-समाज द्वारा जो-जो कार्य हुए हैं, उनका पूर्ण विवरण शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय। पूरी सामग्री इकट्ठी न होने के कारण आर्य-समाज के प्रचार का पूरा इतिहास तो न लिखा जा सका, जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई, उसी के आधार पर यह संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। इससे मालूम होता है कि आर्य समाज ने भारत के बाहर कितना और किस प्रकार का कार्य किया है, और अभी कितना कार्य करना शेष रह गया है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्य-समाज ने विदेश में

प्रोफ़ेसर अयोध्यानाथजी शर्मा एम्० ए० (हिंदी)—आपको इस युग का बिहारी कहना चाहिए। कहीं-कहीं पर तो आपके दोहे बिहारी के कुछ दोहों से भी श्रेष्ठ हो जाते हैं।

हिंदी का प्रचार करने का विशेष रूप से प्रयत्न किया है। अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य सम्मेलन को भी आर्य-समाज के इस पवित्र कार्य मे सहायता करनी चाहिए। प्रवासी हिंदुओ के भावी धर्म के संबंध मे इस पुस्तक में लिखा है—"यह हम दृढता और विश्वास-पूर्वक कह सकते है कि यदि आर्य-समाज का प्रचार-कार्य जारी रहा, तो प्रवासी हिंदुओं का भावी धर्म 'वैदिक धर्म' ही होगा। उपनिवेशो में आर्य-समाज के लिये सुविस्तृत क्षेत्र विद्यमान है।' आशा है, आर्य समाज के नेतागण इस क्षेत्र से पूर्ण लाभ उठावेगे।

दयाशंकर दुबे (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

कविश्रेष्ठ हितैषीजी

की

सम्मति

आपने दोहे लिखकर वह कमाल दिखलाया कि मै आश्चर्य-चकित रह गया ! मै स्पष्ट कहने मे संकोच न करूँगा कि आपने बिहारी से लेकर अब तक के प्रायः सभी कवियो को पीछे छोड दिया। आचार्य द्विवेदीजी क सम्मान के हेतु हुए प्रयाग के द्विवेदी-मेला मे राजा साहब कालाकॉकर के और मेरे अनुरोध पर तुरंत रचना करके तो आपने मुझे मुग्ध ही कर लिया था। तब मैंने ही नहीं, वरन उपस्थित सहस्रो नर-नारियो ने मुक्त कंठ से आपको अपूर्व कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की थी। आपकी यह दोहावली वर्तमान काल मे ब्रजभाषा की अद्वितीय वस्तु है। हिंदी-संसार को इसे अपनाकर आपका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

आर्थिक कठिनाई का भूत
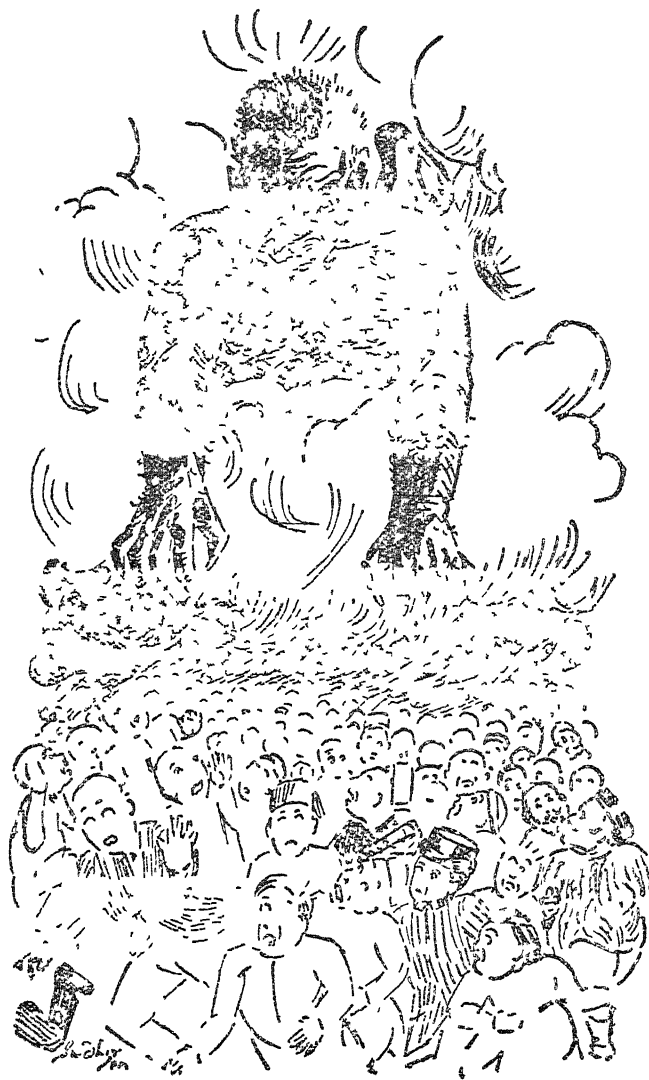
नए फूल

इस स्तंभ में हम हिंदी-प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'अंतिम आकांक्षा'—लेखक, श्रीसियारामशरण गुप्त ; मूल्य १॥)

(२) 'आहार-शास्त्र'—लेखक, पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल ; मूल्य २)

(३) 'साम्यवाद के सिद्धांत'—लेखक, श्रीयुत सत्यभक्तजी, मूल्य ॥)

(४) 'सरदार-बा'—लेखक, श्रीकुमार-हृदय ; मूल्य ॥|)

(५) 'कान के रोग और उनकी चिकित्सा'—लेखक, एक अनुभवी ; मूल्य ।)

(६) 'कालिदास और उनकी कविता'—लेखक, श्रीपं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, मूल्य १)

(७) 'भीम-प्रतिज्ञा'—लेखक, श्रीकैलासनाथ भटनागर ; मूल्य ।।≡)

(८) 'रक्षा बंधन'—लेखक, श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी' ; मूल्य ।।।≈)

(९) 'प्रबंध-प्रभाकर'—लेखक, श्रीगुलाबराय एम्० ए० ; मूल्य १।।।)

(१०) 'विक्रमादित्य'—लेखक, श्रीउदयशंकर भट्ट ; मूल्य ।।≈)

(११) 'ध्रुव स्वामिनी'—लेखक, श्रीजयशंकर 'प्रसाद' ; मूल्य ।।=)

(१२) 'मणि-माला'—लेखक, श्रीनोखेलाल शर्मा काव्यतीर्थ ; मूल्य ।।।)

(१३) 'नीलम'—लेखिका श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी ; मूल्य ।≶)

(१४) 'उलझन'—लेखक, 'चंद्र' शर्मा ; मूल्य ॥।)

(१५) 'मेरी दक्षिण-भारत-यात्रा'—लेखक, श्रीहरिकृष्ण झाझड़िया , मूल्य १)

सौरभ

[संपादकीय विचार]

१. द्विवेदी-साहित्य-संघ, रायबरेली

चार्य-श्रेष्ठ पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी हिंदी के वह रत्न है, जिनको प्राप्त कर साहित्य चिर काल तक चमकता रहता है। उन्होंने हिंदी के गद्य और पद्य के विकास को जो शक्ति दी है, वह हिम-शेखर शिखरों की नदी की तरह सदा प्रवाहिणी रहनेवाला है। आज जो अनेक रूपों मे हिंदी की आत्मा खुलती हुई देख पडती है, इसके मूल मे आचार्य द्विवेदीजी की ही अपार आराधना है। यद्यपि हिंदी-साहित्य तथा साहित्यिकों मे द्विवेदीजी को यथेष्ट सम्मान प्राप्त है, तथापि यह उनके श्रम तथा साधना के विचार से बहुत कम है। आचार्य द्विवेदीजी ने भाषा को परिष्कृत रूप देने मे जो विज्ञता पदर्शित की है, वह ससार के बड़े-बड़े साहित्याचार्यों द्वारा ही संभव हो सका है—वह स्थान, वह सम्मान हिंदी के इतिहास-निर्माताओं ने वैसी ही स्तुति से द्विवेदीजी को नही दिया। जो विद्वत्ता इस दुरूह कार्य के लिये अपेक्षित है, जिसकी शक्ति से दूसरे आचार्यों ने अपने साहित्य का सर ऊँचा उठाया है वही विद्वत्ता, बल्कि उससे भी प्रशंसनीय नैपुण्य, अपने ही अध्यवसाय से आचार्य द्विवेदीजी ने प्राप्त किया। भाषा-साहित्य का इतना बडा पंडित हिंदी मे, खडी बोली के इतिहास मे, दूसरा नहीं पैदा हुआ। आचार्य द्विवेदीजी संस्कृत, अँगरेज़ी, फ़ारसी, उर्दू, मराठी, गुजराती और बँगला आदि के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। हिंदी की विशेषता का उन्हें जितना अच्छा ज्ञान है, उतना किसी दूसरे आचार्य को नहीं। द्विवेदीजी का हिंदी मे ऐसी छाप नहीं पडती, जिससे कोई आलोचक उन्हे किसी दूसरी जबान से प्रभावित कहे। हिंदी के अच्छे-से-अच्छे आचार्य और लेखकों पर दूसरी भाषा और शैली का पडा हुआ प्रभाव प्रत्यक्ष हो जाता है। यदि द्विवेदीजी भारत मे ही बंगाल, महाराष्ट्र या गुजरात-जैसे किसी प्रांत मे हुए होते, तो आज भारत का साधारण साहित्यिक भी उनकी शुभ कीर्ति से परिचित हो गया होता। हिंदी में अपनी असाधारण शक्ति और प्रतिभा को जिस तरह साधारण जनों के हित के कार्य में सामान्य रूप से, अनुवाद आदि में, उन्होने लगाया, दूसरी जगह उसका वैसा ही असाधारण स्वरूप प्रकट होता। पर यदि द्विवेदीजी अपने वर्णनात्मक लेखों के इतने ही दायरे मे वहाँ भी रहते, तो भी उनकी विजयिनी कीर्ति भारत-समुद्र को पार कर बाहर पहुँचती। हमारे अच्छे-अच्छे साहित्यिक मित्र—जो बाहर के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों से मिल चुके है, और आचार्य द्विवेदीजी से भी घनिष्ठ भाव से मिलने का जिन्हें अवसर प्राप्त हुआ है—कहते है, द्विवेदीजी की विशेषता दूसरी जगह नहीं देख पडी। मित-व्ययता, संरक्षण, चारुता आदि सद्गुणों का द्विवेदीजी मे जो विकास और पूर्णता देखने को मिलती है, दूसरी जगह मुश्किल से प्राप्त होगी। द्विवेदीजी भारत की सबसे ज्यादा चलती हुई भाषा हिंदी की कितनी बडी विभूति है, यह हिंदीवालों की अज्ञता के कारण ज्ञात न हो सका, और इसीलिये उस विभूति का योग्यतानुरूप प्रचार भी न हो पाया। हम लोगों का वही दशा है, जिसका ज्ञान पश्चिमीय शिक्षा के पंडित शायद महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त को बाद को अपने साहित्य के रूप-दर्शन द्वारा हुआ—

"देशेर ठाकुर फेलि, विदेशेर कुकुर धरिया।" ऐसी एक पंक्ति याद आती है, जिसका मतलब है --"मैं विदेश के कुत्ते को पकड़-पकड़कर देश के देवताओं को ठुकराता फिरता हूँ।"

हर्ष की बात है साहित्य के विकास के साथ-साथ द्विवेदीजी का परिचय भी साहित्यिकों में अगाढ़ होता जा रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें 'अभिनंदन-ग्रंथ' अर्पित कर और प्रयागवासी साहित्यिकों ने 'द्विवेदी-मेला' लगाकर आचार्य का समुचित सम्मान किया। दूर दूर स्थानों से चलकर साहित्यिकों ने प्रयाग में अपने प्राचीन आचार्य के दर्शन किए। श्रद्धा समन्वित अच्छे-अच्छे कवि और लेखकों ने रचनाएँ भेजकर 'अभिनंदन-ग्रंथ' में उन्हें आदृत किया। अब आचार्य के अपने ही ज़िले में 'द्विवेदी-साहित्य-संघ' नाम की एक साहित्यिक संस्था प्रतिष्ठित की गई है। इसके लिये राजा साहब, सेमरी के दूसरे कुमार, साहित्य-प्रेमी, संस्कृत-कवि लाल वीरेंद्रबहादुरसिंहजी ने उद्योग किया। इस संघ की स्थापना गत मार्च-महीने में हुई। रायबरेली तथा बाहर के सभी साहित्यिकों ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की। आशुकवि पं० जगमोहन-नाथजी अवस्थी का परिश्रम विशेष रूप से श्लाघ्य है। हिंदी के प्रसिद्ध प्रेमी ताल्लुकदार और सुसंगीतज्ञ राजा बरखंडी महेशप्रतापनारायणसिंहजू देव ने संघ के सभापतित्व का भार लेकर अपनी साहित्य-प्रियता प्रदर्शित की। उन्होंने इसकी आर्थिक सहायता करने का भी निश्चय किया है।

आचार्य-श्रेष्ठ पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रसिद्ध हिंदी प्रेमी और संस्कृत के सिद्ध कवि

श्रीमान् लाल वीरेंद्रबहादुरसिंहजी ने उक्त संघ के लिये स्थान तथा लगभग ५००) की अर्थ-सहायता भी देने की उदारता दिखलाई है। साथ ही राजर्षि सर राजा रामपालसिंहजी, कुर्री सुदौली, ने भी आर्थिक सहायता दी है। लाल सुरेंद्रबहादुरसिंहजी, राजकुमार, सेमरी-राज्य, ने भी आर्थिक सहायता दी है। लाल राघवेंद्रबहादुरसिंहजी ने संघ को लगभग ३००) रु० की पुस्तकें देने की कृपा की है। पं० गुरुदयालुजी त्रिपाठी द्वारा भी संघ को पूर्ण सहायता प्राप्त हुई। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि साहित्यरत्न पं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस' ने अपने रचे ग्रंथों के अलावा धन से भी संघ को मदद दी और इसके उप-सभापतित्व के लिये भी वचन दिया।

संघ से सहानुभूति रखनेवाले कुछ सज्जनों के शुभ नाम—

१. श्रीमान् डॉ० एन्० एल्० डे० 'अनिल' एम्० बी० बी० एस्०, उप-सभापति
२ श्रीमान् पं० शिवगोविंदजी त्रिपाठी बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट
३. श्रीमान् पं० शिवदुलारेजी त्रिपाठी बी० ए०, एल् एल्० बी०, एल्० टी०
४ श्रीमान् पं० द्वारिकाप्रसादजी शुक्ल (सबजज)
५ श्रीमान् प० रामावतारजी शुक्ल

इस संघ का उद्देश मातृभाषा की उन्नति तथा प्रांतीय बिखरी हुई साहित्यिक शक्तियों को एकत्र करना है। इसके अंतर्गत एक समालोचक-मंडल है, जो निष्पक्ष साहित्यिक समालोचना करेगा। इसकी प्रतिमास एक बैठक होती है। संघ से सम्मिलित पुस्तकालय को आचार्य द्विवेदीजी ने अपनी लिखी हुई सभी पुस्तकें दी हैं, और आदरणीय मिश्रबंधुओं ने भी अपने समस्त ग्रंथ दिए हैं, साथ ही संघ का निरीक्षण भी किया है। अपर अनेक साहित्यिकों से सहानुभूति तथा पुस्तकों द्वारा सहायता प्राप्त हुई है।

रायबरेली उत्थान का एक मुख्य केंद्र है। उसका यह संघ-स्थापन-कार्य स्तुत्य है। इससे साधारण जनों में शिक्षा का प्रकाश फैलेगा। हमारी संघ से पूर्ण सहानुभूति है, और हम भी यथासाध्य पुस्तकों द्वारा संघ की सेवा करेंगे।

× × ×

२. बैरिस्टर ए० पी० सेन का देहावसान

महाशय ए० पी० सेन लखनऊ के नामी बैरिस्टरों में से थे। गत २६ अगस्त को एकाएक पैरालिसिस् के
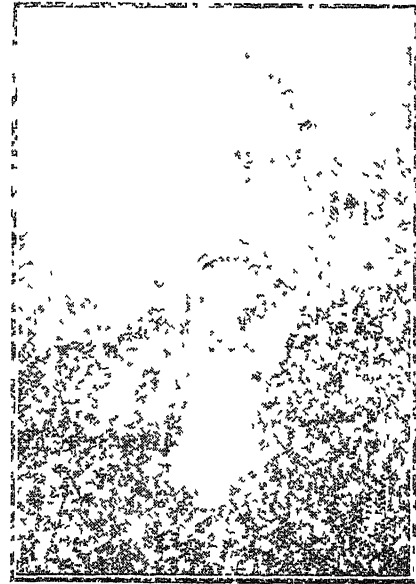
श्रीयुत ए० पी० सेन बैरिस्टर
(आपका स्वर्गवास अभी हाल ही में हुआ है। आप हिंदी-प्रेमी और समाज-सुधारक थे।)

आक्रमण से आपका देहांत हो गया। आप बंगाली होते हुए भी लखनऊ की जनता को हृदय से प्रिय थे। आपमें किसी प्रकार का भेद-भाव न था। लखनऊ के चुने हुए नामी आदमियों में से आप थे। आपकी ख्याति केवल बैरिस्टरी में ही नहीं, बँगला-साहित्य में भी प्रचुर थी। आपने दूसरे

प्रांत मे रहते हुए, अँगरेज़ी द्वारा जीविकार्जन करते हुए भी अपनी मातृभाषा बँगला की जो सेवा की, वह अमूल्य है। हिंदी के बड़े-बडे ओहदेवालो को आपके इस महान् आदर्श से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। बैरिस्टर होते हुए भी आप कवि थे, और ऐसे-वैसे कवि नहीं, यथेष्ट प्रसिद्ध। सुप्रसिद्ध नाटककार स्वर्गीय डी० एल्० राय के सुपुत्र, संसार का भ्रमण कर विश्व-संगीत का ज्ञान प्राप्त करनेवाले, व्रजभाषा के कवि श्रीदिलीपकुमार राय महाशय की सम्मति में ए० पी० सेन महोदय के गीत, बँगला की विशेषता को देखने पर विश्व-कवि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर के गीतों से बढ़कर है। यह साहित्यिक

स्वर्गीय मिस्टर ए० पी० सेन की धर्मपत्नी और पुत्र

सम्मान, एक बैरिस्टर के लिये, प्राप्त करना आसान नहीं। इससे सेन महाशय की सहृदयता का भी परिचय मिल जाता है। गत वर्ष आपने प्रवासी वंगवासियों के साहित्य-सम्मेलन मे सभापति का आसन सुशोभित किया था। आपका पूरा नाम अतुलप्रसाद सेन होता है। आपके नाम की एक सुंदर सड़क, अमलतास के सघन पेड़ों की उभय पङ्क्तियों से सजी, लखनऊ (चारबाग़) स्टेशन के पास है—वहीं अनेक मनोहर बँगलो मे आपका शानदार बँगला है।

आपके प्रयाण से लखनऊ मे खलबली मच गई। कोर्ट भी बंद हो गया। सार्वजनिक सभा हुई, जिसमे सुप्रसिद्ध बैरिस्टर और वकील तथा मिस्टर परांँजपे, वाइस चांसलर, लखनऊ विश्वविद्यालय, डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी तथा प्रोफ़ेसर सिद्धांत आदि सुप्रसिद्ध विद्वानों के शोक-भाषण हुए। सेन महाशय केवल लखनऊ या भारत के ही नहीं, विश्व के एक श्रेष्ठ नागरिक थे। डॉ० राधाकुमुद महोदय ने कहा। वास्तव में शिक्षा द्वारा जो गुण मनुष्य को मनुष्य से देवत्व पर उपनीत करते हैं, जिनसे कहीं भी जाकर मनुष्य अपनी उच्चता से चिह्नित रह सकता है, वे सभी सेन महोदय मे थे। आप जितना उपार्जन करते थे, उतना दान भी देते थे। देश की भिन्न-भिन्न संस्थाओं को आपने प्रभूत अर्थ दान किया है। प्रार्थी आपके यहाँ जाकर रिक्त न लौटता था। आपकी महत्ता आपकी कांति मे स्पष्ट व्यंजित होती थी।

आपका जन्म बंगाल के ढाका-ज़िले के फ़रीदपुर कस्बे मे, १८७२ ई० में, हुआ था। आपके पूज्य पिता रामप्रसाद सेन डॉक्टर थे। १८९८ ई० में बैरिस्टरी पास करके आप भारत लौटे, और १९०२ मे लखनऊ पधारे। आपकी शिक्षा कलकत्ते के प्रेसिडेंसी कॉलेज मे हुई थी। यहाँ अवध-बार-कौंसिल के आप प्रेसिडेंट थे, और अवध-बार-ऐसोसिएशन, ब्वॉय-स्काउट-एसोसिएशन, अवध-सेवा-समिति आदि अनेकानेक संस्थाओं से आपका घनिष्ठ संबंध था। लखनऊ-विश्वविद्यालय ने

आपको अपना फ़ेलो चुन रक्खा था। लखनऊ के प्रायः सभी स्कूलों और संस्थाओं को आपसे सहायता मिलती थी। ऐसे उदार, यशस्वी, महान् आत्मा के प्रयाण से लखनऊ की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। सेन महाशय के परिवार को ईश्वर ही आश्वासन दे।

'गीति-गुंज' नाम की आपकी गीतिका-पुस्तक से एक गीत उद्धृत किया जाता है—

"एस गो एक घरे एकार साथी!
सजल नयने बल रव कत राति ?
सुनील आकाशे चद्र त्रिकासे
तामस नाशे,
ए आँधारे हासिबे कबे तव मुख-भाति ?
तोमारे गोपन व्यथा जानाब गोपने,
तोमारे कुसुम-माला पराब यतने ;
तव सग मागि, आछि आमि जागि,
सरब-तेयागी,
तव चरण लागि, आछि कान पाति।"

(अकेले के साथी, अकेले गृह मे आओ! सजल आँखों से कहो, और कितनी राते जगती रहूँ ?

नीले आकाश मे चाँद खिलता, अँधेरा दूर होता है ; पर इस अँधेरे मे तुम्हारे मुख की कांति कब हँसेगी ?

अपनी गुप्त व्यथा तुम्हे एकांत मे सुनाऊँगी, यत्न-पूर्वक तुम्हे फूलो की माला पहनाऊँगी; तुम्हारे सग के लिये मैं जग रही हूँ—सब कुछ छोड़कर ; तुम्हारे पदों की चाप के लिये मै कान लगाए बैठी हूँ।)

× × ×

३. स्व० रायबहादुर डॉ० हीरालालजी डी० लिट्०

सुप्रसिद्ध विद्वान् रायबहादुर डॉ० हीरालालजी इस नश्वर संसार को छोड़कर वैकुंठधाम को प्रयाण कर गए है। आप हिंदी-क्षेत्र के विश्व-विख्यात पुरातत्त्वज्ञ थे। आपके जाने से हिंदी-भाषियों के गर्व का एक सर्वश्रेष्ठ रत्न खो गया। दस साल से आप बराबर अपना मृत्यु-सवाद सुन रहे थे। अपने कई मित्रों को आपने सूचित किया था, यदि साठ से पहले पहले मै संसार से चला जाता!

आपका पारिवारिक जीवन सुखमय न था। जब आप केवल ३२ साल के थे, आपकी धर्मपत्नी का देहांत हो गया। साध्वी अपने पति को दो बच्चे दे गई थी। डॉ० हीरालालजी ने आदर्श-चरित्र भगवान् श्रीरामचद्रजी के पदांकों का अनुसरण करते हुए दूसरा विवाह नहीं किया। उन्हीं बच्चो की परवरिश करते रहे। पर धर्म का मार्ग तो बड़ा ही कंटकाकीर्ण है। असमय ही उनके बच्चो को भी काल उनकी गोद मे छीन ले गया। सरस्वती की साधना का आचार्य द्विवेदीजी के साथ आप ही का समन्वय होता है। इन बाहरी प्रखर प्रहारों ने रायबहादुर को अतर्मुख कर दिया। विद्या के चमकते सितारे वह पहले से ही थे। अब गहन पाठाभ्यास तथा चिंतन मे उन्होंने अपने को मज्जित कर दिया। बाहरी वैसा कोई प्रतिबंध न रह गया। अपनी चर्चा में क्रमशः चर्चित होते हुए वह महापडित हो गए। यही अध्यवसाय आचार्य द्विवेदीजी के भी महदध्ययन और पारदर्शिता का कारण है। रायबहादुर महोदय अपने भतीजों को पुत्र-तुल्य मानकर शिक्षा-दीक्षा मे निपुण करने लगे।

हिंदी मे अभी गुणग्राहिता का अभाव है। लोगों की दृष्टि सच्चे पांडित्य तथा आत्म-विकास की ओर नहीं। यह हम केवल साधारण जनो के संबंध मे ही नहीं कह रहे है, बड़े-बड़े पदवीधर भी इस ओर से उदासीन हैं। देश मे कैसे काम के लिये तथा किसे सम्मान प्राप्त होना चाहिए, यह निगाह बड़े-बड़े चांसलर और प्रोफ़ेसरों मे भी नहीं है। आचार्य द्विवेदीजी को डी० लिट्० की उपाधि देने के लिये प्रतिष्ठित पत्रों तथा लेखकों ने

हिंदू-विश्वविद्यालय तथा प्रयाग-विश्वविद्यालय आदि का ध्यान आकर्षित किया । प्रयाग-विश्वविद्यालय की ईश्वर जाने — वहाँ शायद साहबी ठाट बहुत बढ़ा-चढ़ा है — पर हमें डॉ० गंगानाथ झा साहब की मौलिकता पर विश्वास था । हिंदू-विश्वविद्यालय भी—जहाँ महामना मालवीयजी रहते हैं, जिनकी दृष्टि देश-हित तथा लोक मर्यादा को जानती है—इस समय तक कोई निश्चय न कर पाया । गत वर्ष महाकवि रवींद्रनाथ ने खुले शब्दों मे कहा था कि विश्वविद्यालयों मे अयोग्यों को पद वियाँ दी जाती हैं । कवि बहुत गहरे गए थे । उन्होंने देश की इस गिरी मनोवृत्ति को बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया था । डॉ० हीरालाल साहब के लिये भी देश में यही भाव रहा । और तो क्या, आपको प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व भी न मिला। जब आपका नाम देश तथा विदेशों में अच्छी तरह फैल गया, तब, अभी परसाल, आपके प्रांत की नागपुर-युनिवर्सिटी ने आपकी ओर ध्यान दिया, और सहर्ष डी० लिट्०की उपाधि से आपको शोभित किया।

स्वर्गीय रायबहादुर डॉ० हीरालालजी डी० लिट्०

रायबहादुर डॉ० हीरालालजी पहली ऑक्टोबर १८६७ ई० को मुरवाड़ा में भूमिष्ठ हुए । क्रमशः शिक्षार्जन करते हुए १८८८ ई० में जबलपुर के कॉलेज से आपने बी० ए० उपाधि प्राप्त की । प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होनेवाले आप मुरवाड़ा के पहले छात्र हैं । बराबर आप छात्रवृत्ति प्राप्त करते गए । पहले आप जबलपुर के गवर्नमेंट कालजियट हाई-स्कूल में छ महीने तक शिक्षक रहे । इसके बाद हाई-स्कूलों के हेड-मास्टरों तथा सात जिलों के डिप्टी-इंस्पेक्टरों को 'पदार्थ - विज्ञान' सिखलाने के लिये नियुक्त किए गए । आपने विभिन्न प्रांतों से सहायता लेकर स्थानीय कारीगरों को वैज्ञानिक औजार बनाने मे अनेक उपकरण एकत्र कर दिए । सन् १८९१ ई० मे आप सागर-ज़िले के डिप्टी-इंस्पेक्टर ऑफ् स्कूल्स नियुक्त हुए । वहाँ केवल शिक्षण-विधियों में उन्नति-क्रम का समावेश ही आपने नहीं किया, प्रत्युत नए-नए स्कूल और कन्या-पाठशालाएँ भी खुलवाईं । लड़कों के साथ लड़कियों के पढ़ने का क्रम भी वहाँ आपने ही जारी किया । वहाँ के शिक्षा-क्रम में
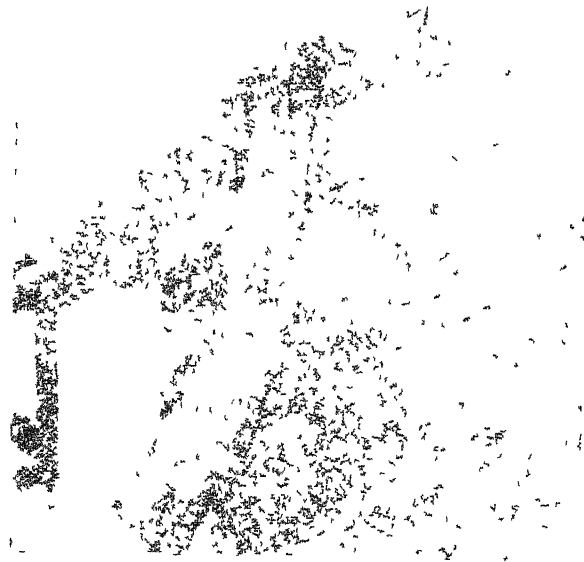
आपने शुद्ध हिंदी रक्खी, और शिक्षकों को उर्दू-मिली हिंदी न सीखने को मजबूर किया। उड़िया-भाषा की पाठ्य पुस्तकें आपकी अध्यक्षता में लिखी जाती थीं। आपका कार्य इतना अच्छा हुआ कि स्थानीय अफसरों ने आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की। १८९७ ई० में आप दुर्भिक्ष पीड़ितों के निरीक्षण के लिये रिलीफ ऑफ़िसर बना दिए गए। उस समय के चीफ कमिश्नर तक ने आपके कार्य की तारीफ की। इसके बाद आप इंस्पेक्टर ऑफ् स्कूल्स हो गए। १८९९ ई० में फिर अकाल पड़ा। बालाघाट में प्रकोप अधिक था। आप फेमिन रिलीफ ऑफिसर बनाकर भेजे गए। पर चूँकि यह छत्तीसगढ़-कमिश्नरी से बाहर था, इसलिये अपने पद से इस्तीफा देकर आपको जाना पड़ा। पश्चात् आप एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर नियुक्त किए गए। यहाँ से आप मध्यप्रदेश की मनुष्य-गणना के असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट बनाए गए। इसका कारण यह था कि आप भारत की कई भाषाओं के ज्ञाता थे। कुछ और जगहों पर रहकर आप पुनः एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर के पद पर बिलासपुर भेज दिए गए। आपका मध्य-प्रदेश के उन्नीसों ज़िलों में, गज़ेटियर की तैयारी में पहला हाथ था। इतिहास और पुरातत्त्व के अध्यायों में जो नई बातें मालूम होती हैं, वे आप ही के सश्रम अनुसंधान की विभूतियाँ हैं।

गजेटियर छपने से पहले मध्य प्रदेश के इतिहास के संबंध में लोगों को नहीं के बराबर ज्ञान था। आपके जितने लेख 'इपिग्रेफ़िया इंडिका' में निकले हैं, उतने किसी अन्य भारतवासी के नहीं निकले। योरप के प्राच्य भाषाविद् कई महानुभावों ने आपके इन लेखों की प्रशंसा की। इन लेखों के अतिरिक्त आपने पूरी सामग्री के साथ मनुष्य-विज्ञान-विषयक अनेक लेख लिखे। इनसे भिन्न-भिन्न जातियों पर प्रकाश डाला। 'मध्यदेश के भिन्न-भिन्न लोग और जातियाँ' नाम की आपकी पुस्तक का विद्वानों में यथेष्ट सम्मान तथा आदर है। पाँच साल तक आप गज़ेटियर के काम पर रहे। आपके कार्यों से संतुष्ट होकर सरकार ने आपको रायबहादुर की उपाधि से शोभित किया। १९१० वाली मर्दुमशुमारी में आपसे फिर मदद ली गई। १९११ ई० की स्पेशल रिपोर्ट में सुपरिंटेंडेंट ने आपकी ऊँचे शब्दों में तारीफ लिखी।

आप रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल; हिस्टॉरिकल सोसाइटी, पंजाब और नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, के सभासद् थे। नागरी-प्रचारिणी सभा को वैज्ञानिक कोष के निर्माण में आपसे यथेष्ट सहायता प्राप्त हुई थी। आप भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग के ऑनरेरी करेस्पांडेंट थे। भारत में इनके अतिरिक्त केवल चार विद्वानों को यह गौरव-पद प्राप्त हुआ है—सर भांडारकर, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, शमशुलउल्मा जीवानजी जमसेठजी मोदी और मिस्टर नरसिंहाचार्य, इन चार विद्वानों ने इस पद की शोभा बढ़ाई है। इनके द्वारा सूचित होता है कि डॉ० हीरालाल को पूर्वीय भाषाओं पर कितना स्तुत्य अधिकार था। यह पद प्राच्य भाषाओं का अच्छा जानकार ही प्राप्त कर सकता है।

आपने गत वर्ष योरप-यात्रा भी की थी। आप कई पुरस्कार और छात्र-वृत्तियाँ दिया करते थे—मनरो सा० का प्राइज़, एग्रिकलचर-कॉलेज, नागपुर, 'केदारनाथ-रौप्यपदक'; 'उमाबाई'-प्राइज़; पुत्री-शाला, मुरवाड़ा आदि।

आपके महाप्रयाण से भारत का और विशेष रूप से हिंदी का एक महापुरुष अंतर्धान हो गया। ईश्वर आपके परिवार-वर्ग को धैर्य दे।

× × ×

४. चलनेवाली मेज़

नारवे के ईस्ट टीटेन-नामक शहर के एक अस्पताल में चलनेवाली मेज़ के कारनामे देखकर जनता आश्चर्य कर रही है। एक मेज़ रात के समय,

अस्पताल की बत्तियाँ गुल होते ही, कमरे-भर में उछल-कूद मचाने लगती है, और प्रकाश होते ही तुरंत शांत हो जाती हैं। अस्पताल की प्रबंधक कमेटी के सदस्यों ने रात-भर एकटक बैठकर अपनी आँखों इस मेज़ की करामात देखी है, किंतु कोई कारण उनकी समझ मे नहीं आता। कहते है, अस्पताल में एक छोटी लडकी बीमार होकर आई, और उसी दिन से मेज़ ने अपनी करामात दिखलाना शुरू कर दिया। रात होते ही, ज्यों ही हाल की बत्तियाँ बुझाई गईं, मेज़ कूदने लगी, और चारो तरफ़ नाच-नाचकर वह गड़बड़ मचाया कि सारा अस्पताल जाग उठा। अधिकारियों ने आकर ज्यों ही बत्तियाँ जलाईं, त्यों ही मेज़ शांत होकर यथास्थान पहुँच गई। एक डॉक्टर ने मेज की परीक्षा करने के लिये बत्तियाँ बुझा दीं, और उस पर बैठ गया। क्षण-मात्र मे मेज़ डॉक्टर को उठाए-उठाए चारो तरफ़ उछलने-कूदने लगी, और वह बेचारा बहुत डर गया! अनेक विशेषज्ञों ने मेज़ की परीक्षा की है, लेकिन उसकी बनावट तथा लकड़ी मे कोई ख़ास बात नहीं पाई गई। हाल की दीवारों, खिड़कियों और दरवाज़ों की जाँच करने पर भी इस रहस्य का उद्घाटन न हो सका। जनता आश्चय मे है। क्या इसे हम दैवी लीला समझें?

× × ×

५. टाइपराइटर से युवती की हत्या का प्रयत्न

अभी हाल मे, मृत्यु के एक नए वैज्ञानिक साधन के आविष्कार की कथा से जर्मनी मे हलचल मच गई है। सुना जाता है, मेरी नाम की एक युवती किसी दफ़्तर मे टाइपिस्ट का काम करती थी। वह अचानक बीमार हो गई, और कई महीने तक अस्पताल मे रही। उसे हृदय-रोग, दृष्टि-क्षीणता और दौरे की बीमारी हो गई थी। चिकित्सा-विशेषज्ञों ने उसकी परीक्षा कर बतलाया कि उसे तीव्र विष दिया गया है। किंतु उसके शरीर में किस उपाय से विष पहुँचाया गया, इसे वे न समझ सके।

एक दिन मेरी के दफ़्तर के एक कर्मचारी ने उसके टाइपराइटर को इस्तेमाल करते समय उँगलियाँ रखने के अक्षरों को ध्यान से देखा, तो उसे उन अक्षरों पर फ़ासफ़ोरस के चिह्न मिले। परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि कई अक्षरों पर, जिनका टाइप के कार्य में अधिकांश प्रयोग होता है, रेडियम मल दिया गया था। इस प्रकार टाइप करते-करते उँगलियों द्वारा मेरी के शरीर में विष पहुँच गया था।

अपराधी का पता लगाते-लगाते अधिकारियों को यह मालूम हुआ कि जोज़ेफ़ नाम का उसी दफ़्तर का एक कर्मचारी, जिसके विवाह प्रस्ताव को मेरी ने ठुकरा दिया था, इस असाधारण काय का उत्तरदायी था। और, प्रतिहिंसा की भावना से पागल होकर उसने मेरी की हत्या का यही सर्वोत्तम उपाय सोच निकाला था। पकड़े जाने पर जोज़ेफ़ ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया, और कहा कि मुझे स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न था कि मृत्यु के इस प्रयोग का भी पता लगाया जा सकता है।

× × ×

६. विलायती बाप

पेरिस मे एक बालक है, जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पचास पिताओं की संतान है। और, अपनी माता की असावधानी से ५१वाँ पिता प्राप्त न कर सका। जो स्त्री अपने को उसकी माता कहती थी, आजकल फ़रार है। पुलिस बडी सतर्कता से उसका पता लगा रही है। उस स्त्री पर धोका, जालसाज़ी और आवारगी के अभियोग लगाए जा चुके है। स्त्री का नाम मार्गरेट कैमिलन है। वह विज्ञापनों द्वारा नए नए पति खोज लेती थी, और किसी-न-किसी धनाढ्य को फाँसकर उससे शादी कर लेना अपना पेशा बना रक्खा था। बच्चे की

आड़ में वह अपने पतियों को ख़ूब धमकाती और उनसे ख़ासी रक़में वसूल करती थी। पुलिस का कहना है कि बच्चा उसकी अपनी संतान नहीं है, वरन् किसी अस्पताल से लाकर पाला गया है। इसी बच्चे के द्वारा उसने अपने पचास पतियों पर ख़ूब हाथ साफ़ किया है, और उन पर मुक़दमे चला दिए। कुछ ने, जो भलेमानस थे, चुपचाप रुपया दे दिया। जिन्होंने मुक़दमा लड़ने का प्रयत्न किया, वे हार गए, और अदालत ने उनको बच्चे का बाप क़ानूनन् क़रार दे दिया। इस प्रकार पेरिस नगर के भिन्न-भिन्न भागों से इस बच्चे के ५० पिता माने गए। मार्गरेट की आमदनी २५ पौंड प्रति सप्ताह थी, और बच्चे के १६ वर्ष की अवस्था पहुँचने तक के लिये स्थायी रूप से यह रक़म उसे दिए जाने का अधिकारियों ने फ़ैसला कर दिया था। यदि मार्गरेट इतने से संतुष्ट रहती, तो कुछ न होता। लालच का फल बुरा होता है। उसने ५१वें पति को फाँसना चाहा, मगर भेद खुल गया। तभी से बच्चे को निराश्रय छोड़कर वह फ़रार है।

× × ×

७. राष्ट्र-संघ में रूस

इस विषय पर हम 'सुधा' में प्रकाश डाल चुके हैं कि रूस क्यों और कैसे राष्ट्र-संघ में आमंत्रित हुआ, और गया। उसके जाने से राजनीतिक क्षेत्र में बड़ी चहल-पहल रही, और हर्ष मनाया गया। जो रूस कभी राष्ट्र-संघ को लुटेरों की जमात कहता था, वह इस प्रकार राष्ट्र-संघ में जा डटेगा, यह किसी को आशा न थी। पुनः तारीफ़ करने और आँख दिखानेवाली उसकी द्वैध नीति का मज़ाक़ भी पत्रवालों ने काफ़ी उड़ाया। जहाँ रूस के अपर राष्ट्रों के प्रति ये शब्द थे, वहाँ उसने यह कहना शुरू किया है कि पहले राष्ट्र-संघ एक अत्याचारियों का संघटन था, पर अब उसके हृदय में शांति की सच्ची इच्छा पैदा हुई है, जर्मनी और जापान के निकल जाने से राष्ट्र-संघ शांति-प्रिय हो गया है।

रूसी राजनीतिज्ञ कहते हैं कि फिर भी अभी राष्ट्र-संघ में बहुत-से दोष हैं, और रूस के मिलने से उनका निराकरण होना संभव है। रूस ने उनके दूर करने के अभिप्राय से ही राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होने का निमंत्रण मंज़ूर किया था। साथ-साथ रूस का पत्र 'इज़वस्तिया' का कहना है कि रूस की लाल सेना ही संसार में शांति की स्थापना करने में समर्थ है।

पर राष्ट्र-संघ में स्विज़-प्रतिनिधि ने रूस की बड़ी कड़ी आलोचना की। केवल स्वीज़रलैंड ही ऐसा निकला, जिसने रूस के राष्ट्र-संघ में आने का पहले ज़ोरदार विरोध किया। उसके प्रतिनिधि मिस्टर मोता का कहना है कि हर क्षेत्र में—वह धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक कुछ भी हो—रूस हमारा विरोधी है। यह आत्मिक उन्नति नहीं मानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दुश्मन है। व्यक्तिगत जायदाद को भी नष्ट कर देता है। ज़बरदस्ती मिहनत कराकर खेतों का संघटन करता है। इसकी इच्छा है कि संसार को यह अपने साँचे में ढाले। अगर आज राष्ट्र-संघ की शिकायतें करना रूस ने बंद कर दिया है, तो इसके मानी ये हैं कि इसके पीछे एक स्वार्थ लगा हुआ है, जिसका कारण हम पूर्वीय आकाश में जलते अक्षरों में लिखा हुआ देखेंगे।

अर्थात् जापान के साथ युद्ध छेड़ने के अभिप्राय से रूस ने यह संधि की है। पुर्तगाल और हालैंड के प्रतिनिधियों ने इसका समर्थन किया। पर यह मालूम होता है कि रूस की माँग के अनुसार उसे राष्ट्र-संघ में वही सम्मान प्राप्त होगा, जो इँगलैंड, फ़्रांस और इटली को है।

× × ×

८ युक्तप्रांत में लड़कियों की शिक्षा

लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में जाँच करने के लिये नियुक्त सरकारी कमेटी की रिपोर्ट को

युक्तप्रांतीय सरकार ने मान लिया है, और उसी के अनुसार कार्य होना निश्चित हुआ है। कमेटी ने ग्रामों और कस्बों मे शीघ्र से-शीघ्र अनिवार्य शिक्षा जारी करने के लिये बहुत ज़ोर दिया है। लडको और लडकियों के एक साथ पढ़ाए जाने की अपेक्षा लडकियो के लिये पृथक् स्कूल खोले जायँ, और उनको घरो से लाने और ले जाने के लिये उचित सवारी आदि का भी प्रबंध किया जाय, इस योजना को भी कमेटी के सदस्यों ने एकमत होकर सरकार के सामने रक्खा है। इसका उद्देश्य यह बतलाया गया है कि छोटे-छोटे बहुत-से स्कूल खुल जाने पर शिक्षा के प्रचार मे उचित सहायता मिलेगी, और प्रत्येक पैंतीस लडकियो में एक शिक्षक, जो कम-से-कम दो कक्षाओं का कार्य सँभाल सके, नियुक्त किए जाने से बेकारी की समस्या भी बहुत कुछ सुगम हो सकेगी। जन-साधारण में लडको के स्कूलों मे लड़कियो को पढ़ने भेजना अनुचित और असंगत समझा जाता है, परतु लडकियो के लिये पृथक् स्कूल खुल जाने पर कोई अड़चन न रहेगी, और शिक्षा प्राप्त करनेवाली लडकियो की संख्या स्वयं बढ़ने लगेगी। स्थानीय अधिकारियों को शिक्षक और शिक्षिकाओं की नियुक्ति का भार सौंपकर भी यह प्रतिबंध रक्खा जायगा कि अधिकांश मे स्त्रियाँ ही शिक्षण-कार्य के लिये रक्खी जायँ। लडकियों के लिये अनिवार्य शिक्षा-प्रचार में विशेषतः स्त्रियो का ही हाथ रहे। इस योजना को कार्य-रूप मे परिणत करने मे ख़र्च तो अवश्य ही बढ़ेगा, किंतु हम युक्तप्रांतीय सरकार को इस योजना को सफल रूप देने के लिये प्रस्तुत देखकर धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते।

× × ×

६. हिंदी के सवाक् चित्र-पटों मे कथानक का महत्त्व

सिनेमा-युग में सवाक् चित्र-पटो का बढ़ता हुआ प्रचार हिंदी-कथानकों के आधार पर ही अवलंबित है। हमे दुःख है कि भारतीय फ़िल्म-कंपनियाँ कथानक के विषय मे सर्वथा उदासीन रहती है, क्योंकि उसके महत्त्व को समझना उनके लिये कठिन ही नही, वरन् असंभव है। जब तक किसी फ़िल्म का कथानक रोचक और हृदयग्राही न होगा, तब तक जनता उसे पसंद नहीं करेगी, और न वह व्यावसायिक दृष्टि से ही सफल हो सकेगा, इस विषय मे प्रायः सिनेमा-सबंधी पत्रो में यथेष्ट आंदोलन किया जा चुका है, लेकिन दुःख का विषय है कि हमारी अधिकांश भारतीय कंपनियाँ इस ओर ध्यान नही देतीं।

न्यू थिएटर्स, कलकत्ता द्वारा प्रस्तुत 'रूप लेखा' का कथानक रोचकता और कौतूहल से पूर्ण है, जो अत तक दर्शकों को उत्सुक बनाए रखता है, रणजीत-मूवीटोन का 'तूफ़ान मेल' एक निम्न श्रेणी का चित्र-पट होते हुए भी कथानक की दृष्टि से यथेष्ट सफल चित्र-पट है।

हमारी भारतीय कंपनियों को अमेरिकन कंपनियो की प्रतियोगिता का जरा भी ध्यान नहीं है, यद्यपि फ़िल्मों के बाज़ार में उन दोनो की काफ़ी खींच-तान रहती है। पिछले चार-पाँच महीनो में अमेरिकन चित्र-पटों ने, भारतीय शहरों में, अच्छा पैसा कमा लिया है, और इसका प्रभाव परोक्ष रूप मे भारतीय चित्र-पट-व्यवसाय पर बहुत बुरा पडा है। वही जनता, जो हिंदी-चित्र-पटों के लिये उत्सुक रहती थी, 'टारज़न'-नामक फ़िल्म को बंबई के अंदर पाँच सप्ताह तक लगातार देखती रही। 'हाउस ऑफ़् रूथ्स-चाइल्ड', 'बाल्टेयर', 'क्रिश्चियाना', 'वाइवावीला', 'फ़्लाइग डाउन टूरियो' नामक अँगरेज़ी फ़िल्मे बबई मे तथा दूसरे बड़े शहरों मे हफ़्तो चलीं, और भारतीय जनता की जेबे ख़ाली कर गईं। शहरों मे इन चित्र-पटों की धूम मच गई, और भारतीय दर्शक इन्हीं के गुण गाते दिखाई देने लगे। इन

चित्रों की उत्कृष्टता के कारण बहुतों ने इनको कई बार देखा। यह उन शहरों की हालत हुई, जहाँ हिंदोस्तानी फ़िल्मों में इनी-गिनी आमदनी से संतोष करना पड़ता था। किंग काग और किंग ऑफ् दी वाइल्ड-नामक फ़िल्मे भी हिंदोस्तानी सिनेमा-घरों मे बडी धूम से चलीं। हमे सचमुच विदेशी फ़िल्मों की सफलता पर आश्चर्य करना पडता है, जिनको भारतीय जनता केवल मात्र अच्छे और रोचक कथानक के कारण पसंद करती है।

भारतीय व्यवसायी यदि शीघ्र न चेतेंगे, और अपने आगामी फ़िल्मों के कथानक के संबंध में यथेष्ट सतर्क न रहेंगे, तो निश्चय ही एक दिन भारत का सिनेमा-व्यवसाय पूर्णतया विदेशी कंपनियों के हाथों मे चला जायगा।

× × ×

१० साँस कैसे लेना चाहिए

वृद्ध से युवा होने के वैज्ञानिक साधनों का आविष्कार हो जाने पर विद्वानों को चिकित्सा-शास्त्र की उन सूक्ष्म क्रियाओं को सर्वसुलभ तथा जन-साधारण के लिये अनुकूल बनाने की समस्या अत्यत जटिल जान पडी। भारत-जैसे निर्धन देश मे ऐसे आश्चर्य-जनक आविष्कारों से जनता लाभ नहीं उठा सकती, यह एक निश्चित और प्रमाणित सत्य है।

शिकागो-विश्वविद्यालय, अमेरिका के विख्यात डॉक्टर ई० एच्० बेकर का कहना है कि उचित रूप से साँस लेनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होकर, वृद्धावस्था के असामयिक आक्रमण से बचकर अधिक समय तक युवा रह सकता है। अमेरिका के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्मुख भाषण देते हुए डॉक्टर बेकर ने कहा—"यदि आप लोग साँस लेने मे सावधानी और सतर्कता का उपयोग करें, तो आपमे से प्रत्येक मनुष्य शताब्दियों तक जीवित रह सकता है। इसके लिये किसी भी इंजेक्शन या ऑपरेशन की ज़रूरत नहीं है। आप लोगों मे स्वयं ही वह शक्ति मौजूद है, जिसके सहारे आप बरसों तक स्वस्थ और युवा बने रह सकते हैं। अधिकांश प्राणी युवावस्था मे ही मृत्यु के शिकार बन जाते हैं, क्योंकि उनका साँस लेने का ढंग हानिकारक और अनुपयुक्त होता है। पहलवानों और जिमनास्टिक का खेल करनेवालों की आयु कम होती है, क्योंकि वे उचित रूप से साँस लेकर अपने हृदय की गति को सँभाल नहीं पाते। मनुष्य का हृदय, यदि उचित रूप से संचालित रहे तो, सैकड़ों वर्षों तक काम दे सकता है, और इसी प्रकार शरीर के दूसरे अंग भी जरा-जीर्णता से दूर रह सकते हैं। इस कारण युवा-वस्था मे ही मृत्यु को प्राप्त होना कोई अर्थ नहीं रखता। हमारी आगामी युग की संतान हमारे लघु-जीवी होने की बात सुनकर हँसेगी, इसमे संदेह नहीं।"

डॉक्टर बेकर इन दिनों संसार-यात्रा के लिये निकले हुए हैं, और भिन्न-भिन्न देशों मे जाकर वृद्ध लोगों के सीने की चौडाई की नाप ले रहे हैं। उनका विचार है कि अपने अन्वेषण-कार्य को समाप्त करने पर वह अपने आविष्कार का तत्त्व मुसोलिनी और हिटलर को समझा सकें, और इस प्रकार मानव-जाति की रचना मे क्रांति उत्पन्न करके दीर्घजीवी, स्वस्थ और बलवान् प्रजा की सृष्टि करने मे सहायक बनें।

कोलंबिया-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मार्सटन बोर्गट ने भी इसी प्रकार रासायनिक तत्त्वों द्वारा एक असाधारण मानव-जाति की रचना के विषय मे भविष्य-वाणी की है। और, लोग इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि उनके कथनानुसार पिचके गालों और फूले पेटवालों की संख्या कब तक कम होगी।

डॉक्टर बेकर भी उपर्युक्त प्रोफ़ेसर की धारणा से सहमत होकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उनके

सिद्धांतों के अनुसार आगामी मनुष्य-जाति २०० वर्ष के औसत आयुवाली होगी।

× × ×

११. फिल्म व्यवसाय, कला और हिंदी

अर्थ की दृष्टि से सभी व्यवसाय अच्छे हैं। पर अर्थ के साथ पहले परमार्थ सबत्र जोडा गया था, अब देश की भलाई का रहता है। यदि किसी व्यवसाय द्वारा देश की शक्ति का ह्रास होता हो, तो उसे या तो समझदार व्यवसायी न करेगा, या करने से रोका जायगा। इन्हीं फिल्मों मे हम देख चुके है, काले हब्शियों पर शान जमाने के इरादे गोरो ने अनेक प्रकार के मनोभाव तथा प्रक्रियाएँ प्रदर्शित की हे। गोरो की हर बात मे प्रधानता है। देश-विशेष में देखिए, युद्ध के फिल्मों मे उस देश की ही मार्के की वीरता दिखलाई जाती है, चाहे वह इतिहास तथा घटना की दृष्टि से सरासर झूठ हो। ऐसा देश की भलाई और उच्चता दिखलाने के लिये किया जाता है। इसमे साधारण देशवासियों को प्रोत्साहन मिलता है, कुछ काल के लिये मस्तक अपनी महत्ता के विचार से ऊँचा उठ जाता है, दूसरे देशवाले भी अधिक सख्या मे, मर्म को न समझने के कारण, उनसे प्रभावित हो जाते है। यहाँ, हम देखते है, व्यवसाय मे भी एकदेशीय भावना, उपयोगितावाद, आत्म-विज्ञापन आदि रहते हैं। हमारे यहाँ व्यवसाय का मूल ही नष्ट हो चुका है। हम व्यवसाय में किसी तरह स्वतन्त्र नहीं रहे। इस पराधीनता ने हमारी पारमार्थिक दृष्टि तो ले ही ली, देश की भलाईवाली कामना भी नष्ट कर दी। हम बहुतो को, जि हे हम अपना कहते है, अपने साथ मिलाकर, ऊँचा उठाते हुए चलना नही जानते, या जानते हुए भी रुपए के लालच से बाहरी और भीतरी दृष्टियों को खोकर केवल अपने ही सुख की सोचते है। प्रायः सभी व्यवसायों मे हमारा यही हाल है। दूसरे हमसे, जिन्हे वे दूसरे देशवाले समझते है, छीनकर खाते हैं, हम आपस मे एक दूसरे से छीनकर। इससे, हमारा व्यवसाय उपयोगिता मे कितना महत्त्व रखता है, सहज ही अनुमेय है। और, इससे व्यावसायिक शक्ति का विकास कहाँ तक हो सकता है, यह भी सहज ही बोधगम्य।

देश की वर्तमान दशा जैसी है, उसे देखते हुए बड़े-बड़े मितव्यय लोगो का यह कहना है कि आमोद-प्रमोद मे देश जितना ख़र्च करता है, उतना उसे आर्थिक दशा के विचार से न करना चाहिए, इससे वह और भी कमज़ोर होता जा रहा है, शारीरिक और नैतिक, दोनो रूपों से। शरीर और नीति से कम-ज़ोर आदमी मे कोई दृढ़ता नहीं रह जाती। तब लक्ष्य की ओर बढ़ने की उसकी शक्ति भी जाती रहती है। वह, सूखे पत्ते की तरह, जिधर हवा का रुख़ हुआ, उधर ही उड़ता फिरता है। हमारे यहाँ आमोद-प्रमोद जिस प्रकार असंयमित है, मनुष्यो के सर भी उसी प्रकार बहाव के कद्दू और नारियल हो रहे है। बोलते हुए छाया-चित्रों का व्यवसाय जो हिंदी मे इतना प्रसार पाता जा रहा है, इसका कारण अवश्य व्यवसायियों का राष्ट्र भाषा-प्रेम कदापि नही। इसका कारण हिंदी के बाज़ार से अधिक रुपयों का वसूल होना है। बंबई और कलकत्ते की मराठी, गुजराती और बँगला-मिली हिंदी नट और नटियो की ज़बान से सुनकर उनके हिंदी प्रेम का परिताप हमे मालूम हो जाता है। फिर जो थोडा-सा परिचय हिंदी मे लिखा हुआ कहीं-कहीं निकलता है, उसे पढ़कर उस काकुले-पुर पेचोख़म का पेचोख़म निकालकर हिंदी-भाषी भाषाविद् दर्शक हिंदी की क़ामत-दराज़ी का भरम दूर कर लेते हैं। जैसी भाषा, उससे बढ़कर उच्चारण; और कला जगह-जगह चलती तलवार की चोटों से डरकर हमेशा चौखट के अंदर। उपयोगिता आधुनिक साहित्योपदेशकों के भाषा-

विज्ञान की तरह सार्वभौम कि ताँगेवाले भी बराबर आकर फ़ायदा उठाते हैं। कुछ फ़िल्में अच्छी हैं, पर हिंदी के लिये फिर भी बहुत कुछ वहाँ अधूरा है।

हिंदी-भाषी जनता के ही रुपए से फिल्म-व्यवसाय इस कसरत से चलता है, पर हिंदी-भाषी नट-नटियों तथा लेखकों को लब्ध अर्थ का कितना हिस्सा प्राप्त होता है? बहुत थोड़ा, नहीं के बराबर। यह ठीक है कि दूसरे प्रांतों के मुकाबले हिंदी के कलाविद् पीछे हैं, पर ऐसे भी होंगे, जो समकक्ष और बढ़े हुए हों। न उनमें भाषण-कौशल सीखने की अपेक्षा की गई, न उनके गाने की मींड ली गई; और तो क्या, शुद्ध हिंदी लिखवाने का काम भी कीमती समझा गया! इंडियन शेक्सपियर ने हिंदी के किन्हीं अपर सम्राट् की तरह उर्दू में लिख दिया, हिंदी में अनुवाद कर-करा लिया, नाटक बन गया! कहीं किसी दूसरे भाषाविद् का लिखा अनुवादित कर लिया गया। क़िस्सा पहले डायरेक्टर महोदय की समझ में उतारने के लिये अँगरेज़ी में लिखा जाता है! इतनी वर्ण-मकरता पार करके हिंदी आती है। एक बार एक संसार-प्रसिद्ध डायरेक्टर कलाविद् और नट तथा उनकी वैसी ही नटी लखनऊ आए थे। नटी की प्रसिद्धि थी कि वह किसी महाराज-वंश की या कुछ ऐसी ही थी। साथ उनका फिल्म भी आया था, जिसमें प्रिया-प्रियतम के रूप से दोनों उतरे थे। बड़े ठाट-बाट रहे। लाट साहब देखने गए। सभ्य न्यौता रहा होगा। अँगरेज़ी के पत्र तारीफ़ करते हुए मूसलाधार खड़े हो गए। कुछ साहित्यिक भी गए। उक्त नट और नटी, दोनों अहलेज़बाँ बंगाली हैं; पानी अँगरेज़ी का पूरा चढ़ा, अरसे तक विलायत रहे हैं, न हिंदी कोई ज़बान, न उसके बोलनेवाले कोई जानकार, लगे बोलने; मालूम हो रहा था कि हाँ, बेपर की उड़ाना इसे कहते हैं। हिंदी क्या थी, एक दफ़ा बँगला से धकापेल होता, एक दफ़ा अँगरेज़ी से मोरचा डटता, तब कहीं पिटपिटाकर बाहर निकलती थी।

वही पुराना परमार्थ फिर आता है। वही सब साधनों को सिद्धि तक पहुँचाने में समर्थ है। उसे चाहे देश की भावना में बाँधिए, चाहे कला का विश्वजनीन रूप देकर सर्वव्यापी कर दीजिए। निष्कृति उसी के द्वारा होती है। उससे स्वास्थ्य को हानि पहुँचने की संभावना नहीं, न नैतिक पतन की शंका है। परमार्थ अर्थ का ही विराट् रूप है। वह अर्थ के साधन से परम होता है। यहीं कला का हम वह रूप देखते हैं, जो अर्थकरी होने पर भी आधिदैविक तथा पारमार्थिक है, क्रमशः जो ऊँचा उठाती गई है, और अनेक आवर्तों से सजी हुई भी है। हमें फिल्मों में इतने उपदेश मिलते हैं कि जी ऊब जाता है। यह काम हम केवल चित्रण तथा भाषण-कौशल से निकाल सकते हैं। इतनी मार-पीट होती है कि यथार्थ शौर्य का भाव दूर हो जाता है, हृदय में द्वेष, ईर्ष्या और प्रतिफल-जन्य दुर्बल वृत्तियों की जलन होने लगती है। प्रेम में कामुकता इतनी होती है कि कुमारता या सुकुमारता नष्ट हो जाती है। कथोपकथन ऐसे गिरे हुए होते हैं कि उनमें मुश्किल से कहीं साहित्यिक छटा मिलती है। देहात जाइए, और ध्यान से सुनिए, तो अच्छी-से-अच्छी साहित्यिक छटा देहातियों की बातों में दिखाई देगी। अच्छी चीज़ सरल भाषा में तैयार हो सकती है। हिंदी के फ़िल्म-व्यवसायी जो इधर ध्यान नहीं देते, यह उनके अनुभव की कमी है। अच्छी चीज़ का बराबर आदर हुआ है। 'पूरन भक्त' तथा 'चंडीदास' का काफी आदर हुआ है। यहाँ के नाटक बँगला की विशेषता लिए हुए भी अच्छे होते हैं। यदि सब तरफ़ की कमज़ोरियों को समझकर व्यवसायी तथा डायरेक्टर इस कला को ऊँचा उठाना चाहें, तो यह कोई मुश्किल काम नहीं, न हिंदीवाले ऐसे कमज़ोर हैं कि उन्हें अच्छी-से-अच्छी

इसलाह न दे सकते हों। अच्छे नाटको की सफल अवतारणा द्वारा वे देश तथा समाज का कल्याण कर सकते है।

× × ×

१२. कवींद्र रवींद्र और राष्ट्र-भाषा

कुछ दिन हुए, कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर मदरास गए थे। वहाँ उन्होंने विद्यार्थियो के सम्मुख एक व्याख्यान मे कहा कि राष्ट्र-भाषा का प्रश्न कुछ भी महत्त्व नहीं रखता, मुख्य आवश्यकता इस बात की है कि सारी प्रांतीय भाषाएँ ख़ूब उन्नति करे। प्रांतीय भाषाओं के समुन्नत होने के विषय मे दो सम्मतियाँ नही हो सकती—सभी ऐसा चाहते है। जो लोग भारतवर्ष के लिये एक राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे है, उन्होंने तो सदा स्पष्ट शब्दों में यही कहा है कि प्रांतीय भाषाओं की उन्नति मे बाधा न देकर, किसी प्रकार का रोडा न अटकाकर, एक राष्ट्र-भाषा को विकसित करना चाहिए, क्योंकि हमारे-जैसे विशाल देश मे यदि कोई ऐसी देशी भाषा हो सके, जिसमे एक प्रांत के निवासी दूसरे प्रांत के निवासियों से विचार-विनिमय कर सके, तो राष्ट्रीय उन्नति मे बडी सहायता मिले। इसी उद्देश्य को लेकर प्रायः तीस वर्ष से कुछ विचारवान् नेता आंदोलन करते आए है। जब से महात्मा गांधी ने इस प्रश्न को अपने हाथ में लिया है, तब से इस ओर बहुत कुछ कार्य भी हुआ है। इससे पहले भी महाराष्ट्र तथा गुजरात-प्रांतवालों ने 'हिंदी' को राष्ट्र-भाषा मानने व बनाने की आवाज़ उठाई थी, और अब तो प्रायः सभी प्रांतों के लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है कि राष्ट्र-भाषा का स्थान ग्रहण करने योग्य यदि कोई स्वदेशी भाषा है, तो वह हिंदी ही है। आरंभ ही से इस ओर हमारे बंगाली भाइयो की उदासीनता प्रकट होती रही है, यद्यपि उनमे भी कुछ ऐसे नेता अवश्य हुए है, और है, जो 'हिंदी' की राष्ट्र भाषा बनने की योग्यता स्वीकार कर चुके हैं, और इस ओर प्रयत्नशील भी रहे है। बंगालियों को बंगाल तथा बँगला-भाषा मे विशेष प्रेम है, और अपने प्रांत तथा अपनी मातृभाषा से प्रेम होना सर्वथा स्तुत्य भी है। परंतु यह प्रेम इतना संकुचित न होना चाहिए, जो दूसरे प्रांत तथा दूसरी भाषा का उत्कर्ष देखकर बुद्धि को भ्रष्ट कर दे। जहाँ-जहाँ और जब जब मौका मिला है, बंगालियो ने 'हिंदी' को नीचे ढकेलने की कोशिश की है। यह 'हिंदी' का गौरव है कि इतना होने पर भी उसकी प्रधानता और लोक-प्रियता मे व्याघात नहीं पहुँचा। हम समझते है, यदि बँगला को राष्ट्र-भाषा का पद सुशोभित करने का सौभाग्य मिला होता, तो कविवर रवींद्रनाथ कदापि राष्ट्र-भाषा के महत्त्व से इनकार न करते। क्या वह समझते हैं कि ऐसी भाषा की आवश्यकता ही नहीं, जिसमे एक मदरासी भाई एक पंजाबी से बात कर सके? यदि ऐसी भाषा न होती, तो वह किस प्रकार मदरासी विद्यार्थियो पर अपने विचार प्रकट करते। क्या अँगरेज़ी मे विचार प्रकट करते समय हमारे कवींद्रजी इस बात को भूल गए थे कि वह न तो अपनी प्रांतीय भाषा बँगला मे बोल रहे है, और न श्रोताओ की प्रांतीय भाषा तामिल इत्यादि मे। फिर क्यो उन्होंने इस अनावश्यक और लचर विचार को अपने मुख से निकाला कि राष्ट्र-भाषा का प्रश्न महत्त्व-पूर्ण नहीं है। हमारे चित्त मे उनके लिये बडा आदर है। उन्होंने संसार-भर मे भारत का मुख उज्ज्वल किया है, इसमे संदेह नहीं। परंतु इसी कारण से, इतने बडे आदमी के मुँह से ऐसी थोथी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य और दु.ख होता है। हम समझते है, न केवल राष्ट्र-भाषा के महत्त्व का प्रश्न, बल्कि हिंदी को राष्ट्र भाषा मानने और बनाने का प्रश्न देश-भर के लोगों मे इतना हृदयंगत हो गया है कि उसको हिलाने-डुलाने की सामर्थ्य अब किसी मे नहीं है। कवींद्र-जैसे प्रभावशाली और सम्मानित नेताओं से आशा की जाती है

कि वह उसे सहारा देकर और भी समुन्नत करेंगे, और किसी प्रसंग से भी ऐसे शब्द न निकालेंगे, जिनका असर बनते हुए काम को बिगाडनेवाला हो।

× × ×

१३ संगीत-सुमन

हमारे मित्र श्रीमान् राजा बरखंडी महेश प्रताप-नारायणजू देव, शिवगढ-नरेश ने 'संगीत-सुमन' नाम की एक गीत-पुस्तक की रचना की है। स्वर, ताल आदि की आवश्यक सूचना के साथ लगभग पचास स्वरचित गीत स्वर-लिपि-समेत आपने इसमे दिए हैं। (कागज़ तथा छपाई-सफ़ाई बहुत बढिया है, पुस्तक सुंदर जिल्द से आवृत है। मूल्य दो रुपया है। पृष्ठ-संख्या ११०।) हमारे यहाँ श्रीमान् लोगों को साहित्य से बहुत अधिक प्रेम नहीं। यह हमार लिये बड़े दुःख की बात है। राजा साहब की व्रज-भाषा में की गई इस संगीत-रचना को देखकर आपकी नाद-विद्या के साथ शब्द-विद्या की मनोहर प्रतिभा पर मुग्ध रह जाना पडता है। शब्द ललित तथा भिन्न तालों मे गति के अनुरूप आए है। आपका यह साहित्य-प्रेम यदि दूसरे श्रीमान् भी अपनाएँ, तो हिंदी के लिये विशेष गौरव की बात होगी। हिंदी में संगीत पर अच्छी रचनाएँ, उस्तादो के शब्द विद्या में अदूरदर्शी होने के कारण, नहीं हुईं, या कम हुई हैं। इसकी दूसरी आलोचना अन्यत्र प्रकाशित है। हमे आशा है, राजा साहब अपने प्रयत्न मे और आगे बढेंगे।

× × ×

१४. भावी समर की तैयारी

बहुत-से राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि भविष्य में फिर महासमर होनेवाला है। बड़े-बड़े राष्ट्रों की राजनीतिक परिस्थिति ऐसी उलझी हुई है कि उससे महासमर की स्वभावतः शंका होती है। पहले मनुष्य-घातक कैसे-कैसे अस्त्र-शस्त्र तथा गैसे तैयार की गई थीं, यह पाठकों को मालूम होगा। अब और भी वैज्ञानिक बारीकियाँ काम मे लाई जायँगी। कहते है, इन आविष्कारों के फल-स्वरूप लंदन और पेरिस जैसे शहर दस-पाँच मिनट के अंदर नष्ट-भ्रष्ट कर दिए जायँगे। साथ-साथ ऐसे आक्रमणों की बचत भी काम में लाने का विचार उठ रहा है। आज की लडाई के सबसे बडे साधन हवाई जहाज़ होंगे। कहते है, इस तरफ़ फ्रांस का काफ़ी ध्यान गया है, और उसने कुछ उपाय निश्चित भी किए है। वहाँ कृत्रिम लडाइयाँ होने लगी हैं। नीले हवाई जहाज आक्रमण करते हैं, और शहर की रक्षा के लिये नियुक्त दूसरे लाल हवाई जहाज़ बचाते हैं। बचानेवाले सीमाप्रांत तथा पेरिस के बेतार के तार की आवाज़ पकडनेवाले औज़ारों तथा दूसरे प्रकारों का प्रबध कर लिया गया है, जिससे लाल जहाजों को यथासमय सूचना दी जा सके।

आक्रमण का एक समय ९ बजे रक्खा गया था, पर वर्षा और आँधी की वजह देर हो गई। ८ बजे नीले जहाज़ों ने आक्रमण किया। हमला करनेवालो ने ऐसा उपाय किया कि ख़बर देनेवालों की उन पर नज़र न पड़े, इस विचार से वे आसमान मे बहुत ऊँचे उड़ गए। पेरिस के बिलकुल नज़दीक आकर उतरे। उन्होंने बम (रंगीन रोशनी से बम समझा गया) फेंके और भगे। ३ मिनट बाद दूसरे दल ने हमला किया। लाल जहाज़ों ने उन्हें भगाना चाहा, पर वे तब तक नहीं भगे, जब तक बिना शंका काम उन्होने पूरा नहीं कर लिया। कुछ मिनट बाद २१ जहाज़ों का तीसरा झुंड बादलो से निकला, और पेरिस पर बम (रंगीन रोशनी) की वर्षा करने लगा।

११-४९ पर रक्षा-दल के सेनापति ने चाहा कि हमला करनेवालों के केंद्र में जाकर बचाने की कोशिश की जाय। उसके जहाज़ ज़मीन से उठे भी न थे कि ५० नीले जहाजों का गरोह उत्तर से आता हुआ दिखाई दिया, और पेरिस को तबाह करके चला

गया। कई जहाज पेरिस के पास पहुँचकर भी बादलों के नीचे पेरिस के छिपे रहने की वजह घंटों भटकते फिरे। आक्रमणकारियों ने दूसरे दिन भी रक्षकों को धता बताया। फ्रेंच-सरकार हवाई जहाज़ों की गति बढाना चाहती है।

× × ×

१५. प्रतिभा

आजकल के समालोचना-साहित्य मे प्रतिभा का प्रश्न बड़े महत्त्व का है। प्रतिभा कविता की जन-यित्री है, और विना माता के परिचय के पुत्री का पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त हो सकता। कोई तो यह कहते है कि प्रतिभा पांडित्य से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। बहुज्ञता और अविरल परिश्रम के संयोग से प्रतिभा की उत्पत्ति होती है। कुछ लोगों का मत है कि प्रतिभा पांडित्य से भिन्न है, क्योंकि सब पंडित प्रतिभावान् नहीं होते। लोग केशव के पांडित्य की प्रशंसा करते है, किंतु उनकी प्रतिभा को बहुत ऊँचा नहीं बतलाते। मिल्टन शेक्सपियर से कहीं अधिक विद्वान् था, किंतु उसमे शेक्सपियर की सी प्रतिभा न थी। भारतेंदु बाबू के समय मे पंडितों की कमी न थी, किंतु उनकी-सी प्रतिभा विरले ही पुरुषों मे पाई जाती है। पंडित और प्रतिभावान् मे उतना ही अंतर है, जितना एक कंजूस और उत्साह-पूर्ण व्यवसायी मे। कंजूस अपने पूर्वजो की संपत्ति अपने घर लाकर इकट्ठा कर लेता है, और उसकी रक्षा के अर्थ उसका आवश्यकता से अधिक व्यय नही करता, व्यवसायी अपनी संपत्ति व्यापार में लगाकर उसका दुगना-चौगुना कर लेता है। जो लोग नवीनता को नहीं मानते, उनके मत से संसार मे उन्नति के लिये स्थान नही है। यदि प्रतिभावान् लोग अपनी-अपनी रचनाओं मे नवीनता न लाए होते, तो वेद भग-वान् और वाल्मीकीय रामायण के पश्चात् किसी रचना का आदर ही न होता। साहित्य-गगन में चाहे सूर्य और चंद्रमा का बाहुल्य न हो, किंतु उडुगन बहुत से हो सकते है। प्रत्येक तारे की अपनी अलग दीप्ति और छटा है। यह बात निश्चय है कि संसार में प्रतिभा है। उसके कार्य मे नवीनता आवश्यक है। पीटी हुई लकीर पर गाडी, कायर और कपूत ही चलते है। सायर (कवि), सिंह और सपूत लीक छोडकर चलते हैं। शास्त्रकारों ने भी प्रतिभा की परिभाषा मे नवीनता को प्रधानता दी है। प्रतिभा की इस प्रकार परिभाषा दी गई है—

"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।"

अर्थात् जिस प्रज्ञा द्वारा नई-नई कल्पना होती है, उसे प्रतिभा कहते है। अब प्रश्न यह है कि इस नवीनता की क्या सीमा है ? एक मत से तो कोई भाव या विचार नया नहीं है—और कुछ नही, तो भाषा तो पुरानी ही है। जितने नवीन भवन रचे जाते है, वे सब पुरानी ही आधार-शिलाओं पर खड़े किए जाते है। मनुष्य पुराने ही सूतो से नया ताना-बाना जोडते हैं। इस संसार मे नई सामग्री नहीं बनती है। दूसरे मत से, सभी चीज़े नवीन है। कोई दो मनुष्य एक-सा विचार नहीं करते। यदि मैं किसी के विचारों को दुहराऊँ भी, तो दुहराने मे भी अंतर आ जाता है। उसमें दुहरानेवाले के व्यक्तित्व की कुछ-न-कुछ छाप लग जाती है। जल चाहे एक ही हो, किंतु भिन्न-भिन्न पात्रो मे रखने से ही उसका मूल्य घट-बढ़ जाता है। जब मशीन की बनी हुई आल-पीनो मे भी सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से देखने पर अतर मालूम होता है, तब दो सजीव पुरुषों के विचार एक-से कैसे हो सकते है ? ये दोनो ही मत एक-एक छोर के हैं। इनमे पूर्णता नहीं है। दोनो छोरों को व्याप्त करनेवाला मत यह है कि न कोई रचना एकदम नई होती है, और न कोई आद्यो-पांत पुरानी हो सकती है। यदि ऐसा है, तो वह 'रचना' नहीं है। रचना-शब्द में ही बनाना अर्थात्

नवीनता लगी हुई है। जिस रचना मे प्राचीनता की अपेक्षा नवीनता अधिक होती है, उसे नवीन या मौलिक कहते है, और जिसमे प्राचीनता की मात्रा अधिक होती है, उसे प्राचीन अथवा चुराई हुई कहते है।

अब दो प्रश्न उपस्थित होते है—एक यह कि पांडित्य और प्रतिभा मे क्या संबंध है ? और दूसरा यह कि किस रचना को हम प्रतिभा का फल कहेंगे, अर्थात् मौलिक बतलावेंगे; और किसको अनुकरण या अपहरण, अर्थात् चोरी कहेंगे ?

प्रतिभा और पांडित्य के अंतर का दिग्दर्शन करा दिया गया, किंतु ये दोनो चीजे नितांत संबंध-रहित नहीं हैं। यद्यपि पांडित्य और प्रतिभा एक नही है, तथापि पांडित्य से प्रतिभा को मदद मिलती है। इसी पांडित्य और प्रतिभा के संबंध को ध्यान मे रखते हुए प्रतिभा के तीन भेद किए गए है—'सहजा', 'आहार्या' और 'औपदेशिकी'। सहजा उसे कहते है, जो पूर्वजन्म के संस्कार से प्राप्त हो। उसमे थोड़े ही पांडित्य की आवश्यकता पड़ती है। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की प्रतिभा एक प्रकार से सहजा थी, उन्होने पाँच वर्ष की अवस्था मे निम्न-लिखित दोहा बनाकर सुनाया था—

लै ब्योड़ा ठाढ़े भए श्रीअनिरुद्ध सुजान ;
बानासुर की सैन को हनन लगे बलवान।

वास्तव मे 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की लोकोक्ति भारतेंदु बाबू के संबंध मे अक्षरशः चरितार्थ होती है। उन्होंने जितना कार्य ३६ वर्ष की अवस्था में कर लिया, उतना और वैसा कार्य लोग ७६ वर्ष की अवस्था में भी नहीं कर सके। आहार्या प्रतिभा वह है, जो शास्त्रादि के परिश्रम करने से जाग्रत् हो। अँगरेज़ी मे कहावत है—"Poets are born and not made" अर्थात् कवि पैदा होते हैं, बनते नही। पैदा होनेवालो की प्रतिभा सहजा और बने हुए कवियो की प्रतिभा आहार्या कहलाती है। तीसरी प्रकार की प्रतिभा के आजकल कम उदाहरण मिलते है। औपदेशिकी प्रतिभा उसे कहते है, जो मंत्रादि सिद्ध करने अथवा वरदान से जाग्रत् हो, जैसी कालिदास की कही जाती है। सहजा और औपदेशिकी मे पांडित्य का कम काम पड़ता है, किंतु आहार्या पांडित्य के आधार पर चलती है। सहजा प्रतिभा मे यदि पांडित्य मिल जाय, तो सोने मे सुगंध का काम देती है। उसकी कृतियाँ बहुत ठोस होने लगती है। जिस प्रकार कवि बाह्य सामग्री को काम मे लाता है, उसी प्रकार वह ग्रंथस्थ सामग्री को भी काम मे ला सकता है। अनुभव द्वारा कवि का दृष्टिकोण विस्तृत हो जाता है, किंतु बिना गाँठ की अक़ल के सब पांडित्य वृथा जाता है। पांडित्य से दृष्टिकोण विस्तृत हो सकता है, किंतु प्रतिभा बनती नही है। प्रतिभा से पांडित्य का सदुपयोग अवश्य हो जाता है। जितनी पांडित्य के लिये प्रतिभा की आवश्यकता है, उतनी प्रतिभा के लिये पांडित्य की नहीं; तथापि पांडित्य निष्फल नहीं होता। प्रतिभा से पांडित्य प्राप्त करना भी सुलभ हो जाता है। यदि पांडित्य और प्रतिभा का संयोग हो जाय, जैसा गोस्वामी तुलसीदासजी मे हो गया था, तो भाषा और साहित्य के लिये परम सौभाग्य की बात है।

दूसरा प्रश्न इससे कुछ अधिक महत्त्व का है। मौलिकता क्या है ? यदि देखा जाय, तो एक प्रकार से सूर और तुलसी भी मौलिक नहीं है, किंतु हम उनको साहित्य-मडल के सूर्य और शशि मानते है। यह किसलिये ? इसीलिये कि उन्होने अपनी सामग्री का बहुत सुंदर रूप मे सदुपयोग किया। यह सदुपयोग किस प्रकार से होता है ? इसके कई प्रकार है—

१. भाव को सांगोपांग बनाकर अर्थात् मूल-भाव मे जिस बात की कमी हो, उसको पूरा करके।

२. भाव के अनुकूल भाषा रखकर और उसमें अधिक व्यंजकता लाने से।

३ भाव या विचार के भिन्न-भिन्न अंगों में अधिक परस्परानुकूलता उत्पन्न करने से ।

४. मूल-भाव को उपमान या दृष्टांत बनाकर, एक नया भाव रचकर ।

५. मूल-भाव से केवल उत्तेजना-मात्र पाकर, एक नया भाव रचकर ।

इस प्रकार जो कविगण प्राचीन सामग्री का सदुपयोग कर नई रचना उपस्थित करते है, उनकी रचना मौलिक ही कही जायगी ।

स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा ने अपनी लिखी हुई बिहारी-सतसई की समालोचना मे इस प्रकार की मौलिकता के बहुत-से उदाहरण दिए हैं । यहाँ पर एक और उदाहरण देकर इसको स्पष्ट किया जा सकता है । लक्ष्मणजी जब सीताजी को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचाकर लौट रहे थे, तब सीताजी ने श्रीरामचंद्रजी को एक उपालंभमय संदेशा भेजा था, उसका वर्णन कवि-कुल-गुरु कालिदासजी ने भी किया है, और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी । किंतु जो मार्मिक करुणा गोस्वामीजी के वर्णन में है, वह कालिदास के कथन मे नहीं है । देखिए, कालिदास का श्लोक इस प्रकार है—

नृपस्य वर्णाश्रमपालन
यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः ;
निर्वासिताप्येवमतस्त्वहं च
तपस्विसामान्यमिवेक्षणीया ।

अर्थात् सब वर्णों और आश्रमों का पालन करना मनु का बनाया हुआ राजा का धर्म है । निर्वासित होकर भी मैं सामान्य तपस्विनी की भाँति देखी जाने योग्य अर्थात् रक्षा किए जाने योग्य हूँ ।

गोस्वामीजी का पद इस प्रकार है—

तौ लौं बलि आपु ही कीबी
विनय समुझि सुधारि,
जौ लौं हौं सिखि लेउँ बन
ऋषि-रीति बसि दिन चारि ।
तापसी कहि कहा पठवति
नृपनि को मनुहारि ;
बहुर तिहि बिधि आइ कहिहै
साधु कोउ हितकारि ।
लषनलाल कृपाल ! निपटहि
डारिबी न बिसारि ;
पालिबी सब तापसिन ज्यो
राजधरम बिचारि ।
सुनत सीता-बचन मोचत
सकल लोचन बारि ;
बालमीकि न सके तुलसी
सो सनेह सँभारि ।

इसके द्वारा सीताजी अपनी परिस्थिति में इतना अंतर बतलाती हैं कि वह यह भी नहीं जानतीं कि क्या विनय के शब्द कहलाकर भेजें । इसलिये वह लक्ष्मणजी से ही कहती हैं कि आप ही जो उचित समझें, वह ठीक-ठीक बनाकर कह दीजिए। समुझि और सुधार मे जैसा राजा के प्रति आदर होना चाहिए, वैसा ही आदर बतलाया गया है । किसी प्रकार की उपेक्षा नहीं दिखलाई गई है । कालिदास के श्लोक में तो केवल इतना ही है कि निर्वासित होकर भी संबंध नहीं छूटा है । पहले भर्ता-भार्या का संबंध था, अब राजा-प्रजा का संबंध है, किंतु तुलसीदासजी केवल रक्षा की याचना में ही उस भाव की इतिकर्तव्यता नहीं समझते, वरन् उन्होंने इस बात पर अधिक ज़ोर दिया है कि सीताजी का क्या कर्तव्य है । इसमें सीताजी की बदली हुई परिस्थिति का बड़ा ज़ोरदार उल्लेख हो जाता है । अपने अधिकार से कर्तव्य का ध्यान रखना अधिक महत्त्व रखता है । इसके अतिरिक्त डारिबी, पालिबी, कीबी आदि कितने मधुर शब्द है । लषनलाल, कृपाल मे कितना सुंदर अनुप्रास है ।

दूसरो के अनुकरण के संबंध मे कवियो के चार विभाग किए गए है—

कविरनुहरतिच्छायामर्थं कुकविः पदादिकं चौरः ;
सर्वप्रबंधहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तस्मै ।

अर्थात्, जो दूसरो की छाया लेकर कविता करता है, वह कवि है (सुकवि नहीं, सुकवि वही है, जो अपनी प्रतिभा से काम ले) । जो अर्थ को चुरावे, वह कुकवि है (छाया लेने का अभिप्राय यह है कि एक भाव के सदृश दूसरा भाव खडा कर दे, अर्थ का चुराना वहाँ होता है, जहाँ भाव वही रहे, भाषा बदल जाय) । जो एक आध पद भी ले लेता है, वह चोर है, और जो दूसरे का पूरा प्रबंध-का-प्रबंध लेकर अपना कह देते हैं, उनको तो नमस्कार ही है । उनके लिये कोई शब्द ही नहीं है । बस, भाव की छाया तक ग्रहण कर लेना क्षम्य माना गया है, और यदि नए भाव मे कुछ उत्तमता पैदा कर दी जाय, तो वह प्रतिभा का ही कार्य माना जायगा ।

× × ×

१६. हिंदोस्तानी एकेडेमी की वार्षिक रिपोर्ट

हमें हिंदोस्तानी एकेडेमी की, सन् १९३३-३४ की, वार्षिक रिपोर्ट पढने को मिली है । हम कह नहीं सकते कि यह रिपोर्ट हिंदी के प्रत्येक पत्र-संपादक को पढ़ने को मिलती है या नहीं । हम समझते हैं कि मिलती होगी । परंतु हमने कभी किसी पत्र में उसका उल्लेख नहीं देखा । इसके दो कारण हो सकते हैं—या तो हिंदोस्तानी एकेडेमी के संचालक हिंदी के पत्रकारो को इस लायक़ नही समझते कि एकेडेमी की वार्षिक रिपोर्ट उनके पास भेजी जाय, अथवा हिंदी-पत्रकारों का ही यह अपराध है कि एकेडेमी की ओर उनका कभी ध्यान नहीं जाता, और हिंदी की ऐसी प्रतिष्ठित संस्था को वे इस लायक़ नही समझते कि कभी उसका उल्लेख भी किया जाय । कुछ भी हो, हम इतना जानते हैं कि ये दोनो ही स्थितियाँ खेदजनक हैं । एक बात हमारी समझ मे और आई । हिंदोस्तानी एकेडेमी का उद्देश्य यद्यपि हिंदी एवं उर्दू-साहित्य की समुन्नति है, परंतु उसकी सब कार्यवाही प्राय अँगरेज़ी मे होती है । पत्र व्यवहार के संबंध में तो हम एक बार एकेडेमी की इस नीति (या दुर्नीति !) की आलोचना कर चुके है । परतु उसकी वार्षिक रिपोर्ट भी अँगरेज़ी में छपती है । हमारा ऐसा ख़याल है कि एकेडेमी की प्रबधकारिणी समिति के सभी सदस्य हिंदी-उर्दू मे से एक भाषा अवश्य जानते होंगे, अन्यथा उनसे यह आशा करना कि वे हिंदी की प्रगति में कुछ सहायता पहुँचा सकते है, विडंबना-मात्र है । फिर भी वे लोग हिंदी या उर्दू के स्थान पर अँगरेज़ी को प्रश्रय देते हैं, और प्रत्येक अवसर पर अँगरेज़ी-भाषा का ही व्यवहार करते है, यह वास्तव में हिंदोस्तानी एकेडेमी के लिये घोर लज्जा की बात है । अँगरेज़ी को हम उसके स्थान पर यथोचित महत्त्व देते हैं । ऐसे कई अवसर होते है, जब अँगरेज़ी के विना हमारा काम नहीं चल सकता । इसलिये यदि कोई समझे कि यहाँ पर हिंदी का राग अलापकर हम अपनी झूठी आदर्शवादिता का परिचय दे रहे हैं, तो यह ग़लत है । हम आदर्शवादिता के खिलाफ़ हैं । परंतु हिंदोस्तानी एकेडेमी-जैसी साहित्यिक संस्था का सारा काम जब अँगरेज़ी में ही होता है, तब हमें ऐसा मालूम होता है कि वह मानो हिंदी की चीज़ नहीं है, हिंदोस्तान की चीज़ नहीं है, और हिंदी या उर्दू-साहित्य का उससे कोई संबंध नहीं है, एवं हिंदी और उर्दूवाले उससे कोई संबंध नहीं रखते । और, यदि सचमुच संबंध नहीं रखते, तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है ।

ख़ैर । यहाँ पर हमें पाठको को यह बताना अभिप्रेत था कि गत वर्ष हिंदोस्तानी एकेडेमी ने कितनी तरक़्क़ी की, उसने कितनी हिंदी अथवा

उर्दू की पुस्तकें छापीं, और इन पुस्तकों से उसको कितनी आय हुई, एवं कितना ख़र्च हुआ।

एकेडेमी के सदस्यों को इस बात का खेद है कि सरकार ने उनकी ग्रांट कम कर दी, जिसकी वजह से कई उपयोगी कार्य बंद हो गए। एकेडेमी को ५०,०००) की जगह अब केवल २५,०००) मिलते हैं। यह सचमुच बुरा हुआ। इससे हिंदी-साहित्य का उतना नुक्सान नहीं हुआ, जितना एकेडेमी से संबंध रखनेवाले अन्य व्यक्तियों का। क्योंकि ग्रांट का आधे से अधिक रुपया कर्मचारियों की जेब मे जाता है। ग्रांट कम हो जाने की वजह से किस मद मे कितना ख़र्च कम किया गया है, यह हम नहीं बता सकते। परंतु जो रिपोर्ट हमारे सामने है, उससे पता चलता है कि सन् १९३३-३४ के साल मे एकेडेमी ने ऑफ़िस-खर्च एवं कर्मचारियों के वेतन आदि में ही लगभग १६,०००) रुपए ख़र्च कर डाले। प्रकाशन मे वह केवल ११,३०६) रुपए खर्च कर सकी। एकेडेमी का असली उद्देश्य इससे स्पष्ट हो जाता है। मितव्ययता और समझदारी के साथ हिंदी एवं उर्दू-साहित्य की श्री-वृद्धि करना उसका कार्य नहीं। उसका पहला काम तो है थोड़े-से लोगो की जेबे भरना। ग्रांट कम हो जाने की वजह से एकेडेमी द्वारा प्रतिवर्ष व्याख्यान की जो योजना होती थी, वह गत वर्ष कार्य-रूप मे परिणत नहीं की जा सकती। परंतु हमारा ऐसा विश्वास है कि एकेडेमी यदि चाहती, तो अपने ऑफ़िस आदि के खर्च को थोड़ा कम करके इस अत्यत आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण मद के लिये थोड़ा रुपया निकाल सकती थी।

हम अपनी बात को और स्पष्ट करना चाहते हैं। हम मानते है, कई ऐसे अनावश्यक खर्च होते है, जो आवश्यक हो जाते है, और उनके कारण संस्थाओं का व्यय बढ़ जाता है। परंतु हिंदोस्तानी एकेडेमी ऐसी संस्था नही, जिसे दिखाऊ रूप से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाकर रुपए कमाने अथवा किसी और लाभ की आशा हो। वह तो एक साहित्यिक संस्था है। और, कम से-कम ख़र्च से अधिक-से-अधिक काम करना उसका उद्देश्य—उसका मोटो होना चाहिए।

हमें यह देखकर ख़ुशी हुई कि गत वर्ष एकेडेमी ने हिंदी एवं उर्दू की कुछ अत्यंत उपयोगी तथा महत्त्व-पूर्ण पुस्तके प्रकाशित की है। उनमे से श्रीजयचंद्रजी विद्यालंकार-लिखित 'भारतीय इतिहास की रूप रेखा', श्री एन्० सी० मेहता की 'भारतीय चित्रकला' एवं श्रीधीरेंद्र वर्मा एम्० ए०-लिखित 'हिंदी-भाषा और लिपि का इतिहास' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारतीय चित्रकला श्रीमेहता के उस व्याख्यान का पुस्तक-रूप है, जो उन्होने सन् १९३२ में, एकेडेमी की संरक्षता मे, इलाहाबाद में, दिया था। हम उनके इस व्याख्यान को पुस्तक-रूप मे, देखने के बहुत दिन से उत्सुक थे। दो वर्ष बाद एकेडेमी की तत्परता से यह व्याख्यान अब पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है। पुस्तक सचित्र है। भारतीय चित्रकला के इतिहास की दृष्टि से श्रीमेहता का यह ग्रंथ हिंदी के विद्वानो के लिये ही नहीं, वरन् अन्य देश के कला-प्रेमियों के लिये भी एक स्पृहणीय वस्तु है। चंद्रगुप्तजी की 'भारतीय इतिहास की रूप-रेखा' के विषय मे हमे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हमारा विश्वास है कि भारतीय इतिहास के संबंध में ऐसी ठोस वस्तु अभी तक नहीं लिखी गई। इस ग्रंथ के संबंध मे हमे पता चला है कि हिंदी-ससार ने ऊपरी रूप से इसका चाहे जितना आदर-सत्कार किया हो, किंतु अभी तक इसकी इनी-गिनी कापियाँ ही बिकी है। हिंदीवालो की इस शोचनीय अवस्था के लिये एकेडेमी वास्तव में ज़िम्मेवार नहीं। परंतु फिर भी हमें एक शिकायत है। एकेडेमी से जो पुस्तके प्रकाशित हुई है, उनके दाम

बहुत अधिक रक्खे जाते है। इतने अधिक कि साधारण पाठक उन्हें ख़रीदकर पढ़ने का स्वप्न भी नहीं देख सकते। सन् १९३३-३४ मे पुस्तकों एवं एकेडेमी की तिमाही मासिक पत्रिका की सम्मिलित बिक्री से कुल १९४१ रुपया ३ आना ८ पाई की आय हुई। यह बिक्री बहुत थोड़ी है। हमारी समझ में यह आता है कि एकेडेमी अब तक अपने को इतना लोक-प्रिय नहीं बना सकी है कि सर्व-साधारण उसके द्वारा प्रकाशित की गई पुस्तकें ख़रीदकर पढ़ने की परवा करे। ऐसी परिस्थिति से तो काम नहीं चल सकता। हम यह मानते हैं कि एकेडेमी का उद्देश्य रुपया कमाना नहीं है, उसका उद्देश्य तो साहित्य-सेवा करना है। परंतु फिर भी वह पुस्तके छापती और उनकी बिक्री करती है। ऐसी दशा में एकेडेमी की तरह की कोई भी संस्था—जिसकी आर्थिक नींव व्यापारिक दृष्टि से बहुत सुदृढ़ न हो—अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकती। एकेडेमी ने अब तक जो प्रकाशन किया है, और उसका जो स्वागत हुआ है, उसी से एकेडेमी के सदस्य, यदि चाहें, तो, बहुत कुछ सबक़ सीख सकते हैं। हिंदी के लिये शुरू मे बड़े-बडे शास्त्रीय ग्रंथों की आवश्यकता नहीं। इकाई पहली चीज़ है। उसकी अनुपस्थिति मे जितनी भी बिंदी आगे बढ़ाई जाती हैं, उन सबका मूल्य शून्य के बराबर ही होता है। इसी प्रकार हिंदी में वैज्ञानिक विषयो की जब तक छोटी-छोटी प्रवेशिकाएँ (Introductory books) तैयार न होंगी, तब तक अर्थशास्त्र, रसायनशास्त्र या चर्मशास्त्र के मोटे-मोटे पोथे हम-जैसे अनभिज्ञों के लिये व्यर्थ ही साबित होंगे। अतएव एकेडेमी जहाँ ठोस वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने की फ़िक्र करती है, वहाँ यदि वह छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ—जिनकी भाषा सुगम, लेखन-शैली आकर्षक एवं विषय गंभीर हो—भी प्रकाशित करने का प्रबंध करे, तो, हमारी समझ में, हिंदी की अधिक सेवा हो सकेगी। इस प्रकार की छोटी और कम दामों की पुस्तकें अधिक बिकेंगी भी, और उनसे साधारण पाठको का अधिक उपकार भी होगा। सत्साहित्य का प्रचार करना ही एकेडेमी का उद्देश्य होना चाहिए। अथवा प्रतिवर्ष सरकार के २१,०००) का येन केन प्रकारेण तर्पण करना ही उसका उद्देश्य हो, तो इस संबंध में हमे कुछ नहीं कहना है।

× × ×

१७ अपने को देखना

संसार मे ऐसे बहुत कम व्यक्ति है, जो अपने को देखने की सामर्थ्य रखते हों। हम अपने को दर्पण में रोज़ ही देखते हैं, परंतु वह अपने को देखना नहीं है। दर्पण में तो हम केवल अपनी प्रतिमूर्ति देखते हैं, स्वयं अपने को नहीं देखते। अपने को शायद हम कभी देख नहीं पाते, यह सचमुच हमारा दुर्भाग्य है। परंतु इस संबंध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह हमारा दुर्भाग्य ही है। यह निश्चित है कि यदि हम अपने को देख सके, यदि किसी प्रकार हमें ऐसी शक्ति प्राप्त हो सके कि जिस दृष्टि से दूसरे हमें देखते हैं, उसी दृष्टि से हम अपने को देख सके, तो इससे हमें थोड़ी मानसिक परेशानी अवश्य होगी, किंतु साथ ही उससे हमे लाभ भी बहुत होगा। यदि आप अपने को देख सके, तो आपको पता चलेगा कि आप अपने जिस काव्य की, अपने जिस नाटक की अथवा अपनी जिस कोमलकांत पदावली की इतनी प्रशंसा करते हैं, उसे पढ़कर दूसरों के सिर मे पीड़ा होने लगती है, और हम अपने पांडित्य तथा भाषा-ज्ञान का जो इतना घमंड करते हैं, उसे दूसरे लोग केवल शब्दाडंबर समझते हैं। पंडित चतुरानंद अपनी कहानियाँ फाड़कर फेक देंगे, जब वह देखेंगे कि अपनी जिन कहानियो पर इतना गर्व है, दूसरे उन्हें महज़ दो कौड़ी की समझते हैं। इसी प्रकार श्रीयुत गोवर्द्धन पांडेय

अपने बाल कटवा डालेंगे, जब वह देखेंगे कि उन बालों की वजह से वास्तव मे उनकी सूरत कैसी अजीब हो जाती है। और, हमारे मित्र शिवभूषण शर्मा भी अपनी तुकांत अथवा अतुकांत, छायावादी अथवा ठेठ कायावादी कविताओं का अभिमान छोड़ देंगे, जब वह देखेंगे कि वास्तव मे उनकी रचना स्वयं उनके लिये गूँगे का गुड़ है। इस प्रकार यदि हम सभी लोग अपने को अपने से विलग और विच्छिन्न करके देखना प्रारंभ करे, तो इससे हमें बड़ा लाभ होगा।

हम दूसरों को तो देख सकते हैं, परंतु अपने को नहीं देख पाते। हिंदी के अधिकांश लेखकों में इसकी कमी है। वे अपने को कभी नहीं देखते। उनमे आत्मनिरीक्षण का अभाव है। दूसरों की आलोचना वे धड़ल्ले से कर सकते हैं, परंतु आत्मालोचन से घबराते है। अथवा यह कहना चाहिए कि इस गुण का उनमें बहुत कम विकास हो पाता है। हम हिंदी-लेखकों को ही इसके लिये दोष दें, सो बात नहीं। संसार के अनेक महापुरुषों, कवियों और लेखकों मे आत्मनिरीक्षण के गुण का अभाव पाया गया है। वास्तव मे अपने को देखने की सामर्थ्य रखना एक दुर्लभ गुण है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ को लीजिए। अँगरेज़ी भाषा के तीन महाकवियों मे उसकी गणना होती है। स्वयं भी वह काव्य-मर्मज्ञ और कविता का पारखी था। फिर भी उसने अनेक ऐसी साधारण कविताएँ लिखी हैं, जो उस-जैसे कवि की लेखनी से कभी लिखी नहीं जानी चाहिए थीं। बात केवल इतनी है कि वह कभी इस बात को नहीं जान सका कि कब वह कविता लिख रहा है, और कब केवल तुकबंदी कर रहा है। और, इस बात को वह इसलिये नहीं जान सका कि अहम् के परदे को हटाकर उसने कभी अपने को देखने की परवा नहीं की।

हिंदी के लेखक भी अपने को देखने की परवा नहीं करते। उनमे यह बड़ा भारी दोष है। आत्म-विश्वास कहकर जिस वस्तु का वे प्रोत्साहन करते हैं, वह उन्हें केवल शेख़ीख़ोर बनाती है। जहाँ आत्मनिरीक्षण की शक्ति होती है, वहीं सच्चा आत्मविश्वास जाग्रत् होता है, अन्यथा कोरा आत्मविश्वास भयानक वस्तु है। "मैं जो कुछ लिखता हूँ, वह सुंदर है, अद्वितीय है, अनुपम है, और किसी को भी उसमें एक लकीर काटने का अधिकार नहीं है।" जो लेखक इस प्रकार धारणा अपने मन मे जमा लेता है, वह कभी अच्छा लिख नहीं सकता, क्योंकि अच्छा लिखने के लिये यह आवश्यक है कि हम अपने को विलग करके एक अन्य पुरुष की दृष्टि से उसे देखने में समर्थ हो सकें। यदि चंद्रमोहन वर्मा अपने को, अपनी रचनाओं को, अपनी सूरत-शकल को, अपने पहनावे को, अपने काव्य को एवं अपनी अन्य कृतियों को श्याममनोहर शर्मा की दृष्टि से देख सकें, तो उससे चंद्रमोहनजी को सचमुच बड़ा लाभ होगा। उससे उनके मन में उस गुण का विकास होगा, जिसे आत्मनिरीक्षण कहते हैं, और जिसका हममें से बहुतों मे अभाव होता है। आत्मनिरीक्षण का अर्थ है अपने को सबसे अलग करके देखना, यह समझ लेना कि हम अपने लिये अपरिचित व्यक्ति हैं, और हमे अपने से कोई सरोकार, कोई स्वार्थ और कोई वास्ता नहीं। इस प्रकार हम अपने को बहुत कम देख पाते हैं। आप कोई कविता लिखिए, कहानी लिखिए, चित्र अंकित कीजिए, यह निश्चित है कि आप उसकी ठीक परख नहीं कर सकते। आप उसे अपनी समझ-कर देखते हैं। उसे आप अपना ही अंग समझते हैं। आप उसे subjectively देखते हैं, जिसका अर्थ है कि आप उसे बिलकुल नहीं देखते। आप अपनी रचना को एक वर्ष के लिये संदूक़ में बंद

करके रख दीजिए, और फिर एक दिन नितांत अपरिचित की भाँति उसे उठाइए और पढ़िए, तब आपको पता चलेगा कि आपके पाठक आपकी रचना के प्रति इतने उदासीन क्यो रहे। इसलिये नहीं कि उन्होंने आपकी प्रशंसा नहीं करनी चाही, बल्कि इसलिये कि वे आपकी चीज को देखने में समर्थ हुए, और आप उसे देख नहीं सके।

अपने को देखने के लिये – जैसे हम सुदूर विदेश में जाकर अपने घर को अच्छी तरह देख पाते हैं, वैसे ही—कभी-कभी अपने से दूर जाकर रहने की आवश्यकता होती है। और, फिर वहाँ से हम अपने को बिलकुल ही ताज़ी और निर्लिप्त दृष्टि से देखे, तभी अपने को देख सकते हैं।

हिंदी के अनेक लेखकों को अपने से दूर जाकर रहने और फिर वहाँ से अपने को देखने की आवश्यकता है।

× × ×

१८. भावी महासमर

बहुत दिनो से सुनते आ रहे है कि योरप और एशिया मे गहरी ठननेवाली है। जापान इस बात पर तुला हुआ है कि पूर्व में वह अपना प्रभाव बढ़ाता तथा पुष्ट करता जाय। इधर कुछ दिनों से रूस और जापान मे युद्ध की संभावनाएँ की जा रही है, और संभव है कि वह हो जाय, क्योकि जब से रूस ने अपने को एशियाई घोषित किया है, जापान चौकन्ना हो रहा है। रूस को अपनी पुरानी पराजय का खिसियानपन है, और जापान भी पुरानी विजय की स्मृति में विभोर हो रहा है, परंतु क्रांति के तप्त रक्त ने जो दुर्धर्ष शक्ति रूस को दी है, वह उपेक्षा की वस्तु नही।

पाठकों को मालूम होगा कि इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जापान ने मंचूरिया पर अधिकार किया है, और इससे संसार में जापान के बड़े-बड़े शत्रु उत्पन्न हो गए है। इनमे सबसे बड़े अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन है।

जापान, इँगलैंड और अमेरिका, तीनो देश पूर्व के व्यापार पर जीवित हैं। चीन के पूर्वीय तट के सभी शहरो मे, और कही कहीं तट से हटकर भीतर के प्रदेशों मे भी, सबसे अधिक व्यापार ब्रिटेन और अमेरिका का ही है। केवल व्यापारिक प्रभुता के कारण ही ये दोनो देश चीन के पूर्वीय समुद्री तट पर मालिक-जैसे बने हुए हैं। मंचूरिया में एक नया राष्ट्र बनाकर जापान ने गोया इन दोनो देशों को चुनौती दी है, और उनके इस अधिकार मे दखल देने की धृष्टता की है।

इन तीनो देशो का परस्पर विरोध-भाव कुछ काल से भीतर-ही-भीतर चल रहा था, परंतु इधर जापान ने दो नए प्रश्न खड़े किए है। प्रथम तो मंचूरिया के पेट्रोल को उसने हथियाने की चेष्टा की है। दूसरी बात यह कि जापान वाशिंगटन की सन् १२ में की गई संधि का भंग किया चाहता है। इससे वह ब्रिटेन तथा अमेरिका के समान ही अपना बल बनाए रखना चाहता है। ब्रिटेन और अमेरिका उसका यह दावा मानने को तैयार नहीं। इन सब कारणों से लोगों का अनुमान है कि भावी महासमर के बादल उमड़े चले आ रहे है।

राजनीतिज्ञों का यह भी कहना है कि इन सब उद्योगो की जड में जापान का रूस से एक बार लोहा लेने का इरादा है। जापान बड़ी तेज़ी से तैयारी भी कर रहा है, पर उसे भय यह हो रहा है कि रूस के पास साइबेरिया की अगम्य तेल की खानें है। इसलिये उसे कभी पेट्रोल का घाटा नहीं रह सकता। जापान के पास इन सब चीज़ों की कमी है, इसीलिये उसे मंचूरिया की यह नवीन योजना करनी पडी है।

इस समय इँगलैंड और अमेरिका जापान का ख़ूब विरोध कर रहे है। देखिए, किस करवट ऊँट बैठता है।

हाल ही में लंकाशायर का एक डेपुटेशन व्यापारिक बोर्ड के अध्यक्ष मि० कार्समेन से मिलने की तैयारी में है। पाठकों को स्मरण होगा कि कुछ दिन पूर्व भारत-सरकार ने जापान के साथ एक व्यापारिक संधि की थी, उस समय उसने यह आश्वासन दिलाया था कि वह ब्रिटिश सरकार से भी नई संधि करेगा। और, अब मालूम हुआ है कि इस संधि की बातचीत चल रही है।

थोड़े दिन पूर्व भारत-सरकार ने सारे भारत के विरोध करने पर भी मोंटी विलियम समझौते को स्वीकार कर लिया था। पर, मालूम होता है, लंकाशायर को उससे संतोष नहीं हुआ। अब ईश्वर जाने, यह संधि भारतीय व्यापार पर क्या मुसीबत ढाएगी, और जापान का क्या परिणाम होगा।

× × ×

१६. शास्त्रीजी की नई पुस्तक और कांग्रेसवालों की संकीर्णता

हाल ही मे आचार्य श्रीचतुरसेनजी शास्त्री ने एक नई पुस्तक लिख डाली है। पुस्तक का नाम है 'पराजित गांधी'। महात्मा गांधी इस समय कांग्रेस से पृथक् हुए है, जिसके वह लगभग गत १५ वर्षों से एकमात्र कर्णधार थे। इसका कारण उन्हीं ने यह बताया है कि देश उनके साथ दौड़ने से थक गया है, और उनके मन-माफिक चल नहीं सकता। शास्त्रीजी ने पुस्तक में इसी संबंध की विवेचना की है। इस पुस्तक मे उन्होंने महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से लेकर उनके सिद्धांतों तक अपने स्वतंत्र विचार प्रकट किए है। शास्त्रीजी की भाषा ओज-पूर्ण और तीखी होती ही है। इस पुस्तक मे भी है। परंतु महात्माजी का जहाँ भी विरोध है, सौजन्य और मैत्री भाव लिए हुए है। महात्माजी की प्रशंसा भी पुस्तक मे कम नहीं है।

सुना गया कि बंबई-कांग्रेस-नगर मे जब यह पुस्तक बेचने को ले जाई गई, तो कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने बेचनेवालों के काम में बाधाएँ दीं, उन्हें रोका, गालियाँ दीं, और पोस्टर फाड़ फेंके, तथा उन लोगों के साथ पूरा अशिष्ट व्यवहार किया।

यह जानकर हमें दुःख हुआ। एक तो कांग्रेस देश-भर की सभा है, किसी खास दल की नहीं। फिर महात्माजी तो विरोधियों के पूरे-पूरे क़द्रदान है, उनके सेवकों को तो और भी ज्यादा उनका कद्रदान तथा सहनशील होना चाहिए। स्वतंत्रता से विचारना और कहना, यह प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। यदि यह समाचार सत्य है, जो कि हमें एक प्रामाणिक व्यक्ति के द्वारा मालूम हुआ है, तो इसमें संदेह नहीं कि कांग्रेस के लिये यह लज्जाजनक है।

साहित्याचार्य पं० मुकुंदमुरारीजी रेउ

[आप हिंदी-ससार के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ के पिता हैं। आप सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इतिहास से आपको विशेष प्रेम था। ३० नवंबर सन् १९३४ को, ८५ वर्ष की अवस्था मे, आपका स्वर्गवास हो गया !]
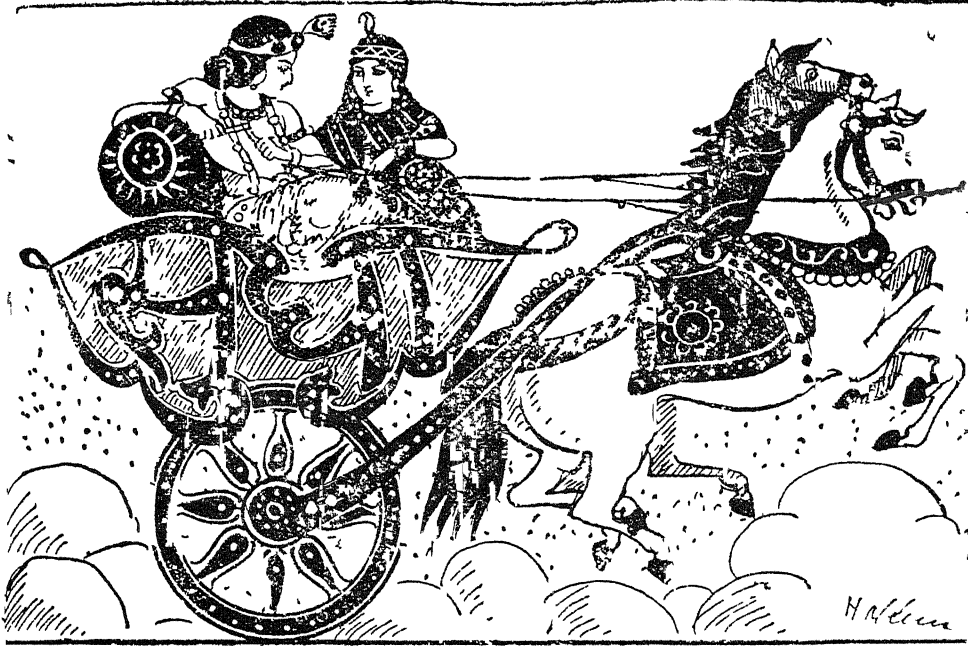
सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८ खंड १	मार्गशीर्ष, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)— दिसंबर, १९३४	संख्या ५ पूर्ण संख्या १०१

नवचंद्र

[महाकवि पं० गयाप्रसादजी शुक्ल 'सनेही']

बध दिनराज का हुआ है, पन्छी रो रहे है,
पश्चिम मे रुधिर - प्रवाह अभी जारी है;
दिशा - वधुओं ने काली सारी पहनी है, नभ-
छाती छलनी है, निशा रोती सी पधारो है।
तड़प-तडपके वियोगी प्राण खो रहे हैं,
कैसी चोट चौकस कलेजे पर मारी है,
तमराज नहीं, जमघट यमराज का है,
नवचंद्र नहीं, क्रूर काल की कटारी है।

परस्पर

[श्रीयुत सियारामशरण गुप्त]

कूप, तृपातुर हो यहाँ आया मैं।
तेरे पास जल है,
शीतल है, मृदु है, सुनिर्मल है;
तेरा निधि - कोष तलातल है,
और बड़ी माँग नहीं लाया मैं।

उत्तर मे कूप यह कहता—
बधु, यहाँ नीचे मै रहता।
धन्य तुम आए! इस नीचे के थल से
मुझको उबार लो निजस्व गुण बल मे।

हाय! अरे कूप, गुण पाऊँ कहाँ?
गुण के विना भी यहाँ
तीक्ष्ण तृषा लगती,
ऐसी यह जगती!

कूप फिर कहता—
बंधु, यहाँ नीचे मै रहता,
ऊपर है ऐसे भी सलिल-स्रोत
ओत-प्रोत,

जो गुण विना ही नित्य अविरल
दान किया करते है स्वच्छ जल;
किंतु हाय! ऐसा कहाँ मेरा रूप?
मै हूँ यहाँ नीचे का कृपण कूप।

निज गुण से ही तुम आके यहाँ
मेरे पास,
मेरे निम्न जीवन को ऊपर उठाके वहाँ
शांत करो बंधुवर, उच्चता की मेरी प्यास।

श्रीरामचरित-मानस में दास्य-रस

(मानस का एक महान् उद्देश्य)

[प्रोफ़ेसर रामदास गौड़ एम्० ए०]

१. दास्य-मनोवृत्ति

मूल गोसाईं-चरित से पता चलता है कि मानसकार ने अपनी ७८ वर्ष की अवस्था में मानस की रचना आरंभ की थी। और, ऐसा प्रौढ़, पुष्ट एवं अद्वितीय काव्य ऐसी अनुभवी और परिपक्क अवस्था में ही हो सकता था। मानस की रचना भी जिन उद्देश्यो से हुई है, वे भी ऐसी ही परिपक्कता मे विचारे गए थे। उस समय संप्रदायवाद की धूम थी, शैवों-वैष्णवों में पारस्परिक विद्वेष था, और निर्गुणवाद फैला हुआ था। मुसलमानो की तो बात ही अलग है, उनके आतंक से मूर्ति पूजा और अवतारवाद का सीधे खडन न करके भी निर्गुणवाद उनकी ऐसी अवहेलना करता था, जिससे प्रत्यक्ष निंदा और खंडन की गंध आती थी। वैष्णवों ने भी राम नाम और रामचरित को गौण स्थान दे रक्खा था, और भागवत सप्रदाय के ही अनुयायी, किसी-न किसी रूप मे, वैष्णव-मत चला रहे थे। अछूतो से घृणा थी, समाज में उनका तिरस्कार था। इन सबका सुधार तो मानस का उद्देश्य था ही, परंतु इन सबसे अधिक एक बात थी, जिसे हम मानसकार का विशेष लक्ष्य कह सकते हैं। वह बात थी उस समय फैली हुई दास-मनोवृत्ति। ब्राह्मणो द्वारा म्लेच्छों का बहिष्कार होने पर भी मुसलमान बादशाहो की नौकरी करने के लिये असंख्य हिंदू पहुँचते थे। सभो मुसलमानी पोशाक पहनने लगे थे। पीर-पैग़ंबर की पूजा होने लगी थी। हिंदू देखते थे, हम तीन बार में से एक बार भी संध्या नहीं करते, पर मुसलमान पाँच बार नमाज पढ़ता है। इसका प्रभाव यह नहीं हुआ कि लोग सध्या करें, बल्कि अनुकरण ने यहाँ तक ज़ोर पकड़ा कि हिंदू भी नमाज पढने लगे, रोजा रखने लगे, ईद मनाने लगे, ताजिएदारी करने लगे। पढाई मकतब की होने लगी, और श्रीगणेशाय नम. एवं 'ॐ नमः सिद्धम्' का स्थान 'बिस्मिल्लाह' ने और पडित का स्थान मौलवी ने ले लिया। विद्यारंभ-संस्कार का नाम हो गया 'मकतब'। ख़ुशामद की भी हद हो गई। मुसलमान भाई उस समय अन्नदाता थे, फ़क़ीर* सर्वशक्तिमान् था, हाकिम ख़ुदा का नायब था, और बादशाह के लिये तो कुछ कहना नहीं, वह तो साक्षात् ईश्वर ही था।

"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"

इस दरजे की ख़ुशामद, इस दरजे का अनुकरण बड़ी कठिन दास-मनोवृत्ति का परिचायक है। इसकी घोर व्यापकता ने सनातन धर्म का तो जनता से लोप ही कर दिया। और यदि जाति-पाँति, छूतछात का उस समय ब्राह्मणों ने प्रचार न किया होता, और मुसलमान गो ब्राह्मण हिंसा छोड देते, तो आज हिंदू-मुसलमान मे भेद न दिखाई पडता।

२ दास-मनोवृत्ति का दोष कैसे मिटाया जाय ?

एक सच्चे सुधारक के निकट यह भारी समस्या थी। सच्चा सुधारक भीतरी सुधार करता है, मनो-

* फ़क़ीरों का हिंदुओं पर कैसा प्रभाव था, यह बंकिम बाबू के 'सीताराम राय'-नामक उपन्यास के आरंभिक भाग से विशेष स्पष्ट हो जाता है। — लेखक

वृत्ति को बदलता है, मानसिक शक्तियों को ठीक दिशा में लगा देता है। गोस्वामीजी की पैनी बुद्धि और एक दीर्घ जीवन के विस्तृत अनुभव ने रोगी समाज की नाड़ी ठीक-ठीक परखी, और उसके लिये रामबाण ओषधि सोची। प्रोफ़ेसर फ़्रुइड ने अपने अनुसंधानों (Inferiority Complex) से जिस दास-मनोवृत्ति के संबंध की खोज आज की है, साढ़े तीन सौ वर्ष पहले के इस दूरदर्शी ऋषि ने न केवल इस मनोवृत्ति का पूर्ण रूप ही देखा, बल्कि इस पर पूरा अधिकार करने के उपाय दरसाए, और किए। उन्होंने देखा, अनुकरण या अनुगमन का स्वाभाविक भाव मनुष्य में अत्यंत प्रबल शक्ति है। यह शक्ति आज कुमार्ग में लग रही है। उसके पीछे-पीछे सारी शक्तियाँ उसी स्रोत में बहकर नष्ट हो जाती है। एक उपाय यह था कि बारंबार उनके कानों में यह ध्वनि पहुँचाकर कि यह दोष है, इसे दूर करो, इसे दूर करने का उद्योग किया जाता। परंतु मानव-स्वभाव बड़ा हठीला होता है। इस प्रकार का उपदेश प्रभावोत्पादक नहीं होता। दूसरा उपाय, इससे अधिक सुकर, यह था कि नीच प्रकार के दास्य भाव को नष्ट करने का प्रयत्न न कर उसे ऐसे स्रोत में बहाया जाय कि वह सबसे अधिक उपयोगी हो सके। इसके लिये कोरी शिक्षा, कोरा उपदेश फलदायक नहीं है। उपदेशक का जीवन ही जीता जागता उपदेश हो, उसी से शिक्षा ग्रहण की जा सके, तभी शिष्य के आचरण में उस शिक्षा का प्रवेश हो सकता है। गोस्वामीजी ने अपने जीवन को दास्य-भाव की भगवदुपासना में लगा दिया था, और उसके सब तरह के अनुभव उन्हें हो चुके थे। उन्होंने देखा, इस बड़ी शक्ति का निराकरण मानवता का निरसन है। प्राणिमात्र में ये शक्तियाँ आत्मरक्षा के लिये होती है। यदि इस उद्देश्य से हटकर विनाश-मार्ग पर चलें, तो उनकी दिशा बदलने की ही आवश्यकता है, और यही एकमात्र उपाय है। स्वाभाविक शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती। इसीलिये उन्होंने यह स्पष्ट देखा कि उसे आत्मरक्षा के मार्ग पर लगाना ही कर्तव्य है। मुसलमान धर्म भक्तिप्रवण है। अनन्य भक्ति उसका रहस्य है। उपासना ही उसका मार्ग है। निराकार मानते हुए भी उसका ईश्वर व्यक्त हुआ है। वह पैग़ंबर को, फ़रिश्तों को, संतों को मानता है। बादशाह को ख़ुदा का नायब मानता है। फिर भी ये सारी धार्मिक बातें—जैसे ऊँचे आदर्श के साथ चाहिए, उससे भी कहीं ऊँचा और अनुकरण या अनुगमन के लिये सर्वोत्तम आदर्श मौजूद होते हुए भी—संस्कृत-भाषा में होने के कारण हिंदू को अलभ्य हैं। फिर हाकिमों और बादशाहों की ख़ुशामद छुड़ाकर उनको सन्मार्ग में लगाने के लिये व्यक्त सगुण शासक या राजा का अनुकरणीय आदर्श भी रामराज्य में ही मिल सकता है। ख़ुशामदी दरबारी के सामने शासन-धर्म, राजनीति, प्रजा-पालन, समाज संगठन, राजस्व और अर्थ-नीति का यथोचित आदर्श भी रामचरित से ही उपस्थित हो सकता है। निदान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैयक्तिक, सभी तरह के अनुकरणीय एवं अनुगमनीय आदर्श रामचरित में मिल सकते है। इसीलिये संवत् १६३१ की पुण्यपर्वा श्रीराम-नवमी को उन्होंने इस विमल कथा का भाषा में लिखना आरंभ किया। और, इस व्याज से उन्होंने उचित प्रकार के दास्य रस की शिक्षा दी। समाज के इस महान् सुधार में ही मानसकार-जैसे महात्मा के अंतःकरण को सुख हो सकता था, इसीलिये ऐसे महदुद्देश्य का व्यक्तीकरण उन्होंने केवल छोटे-से "स्वान्त.सुखाय"-शब्द से किया है।

३. सांप्रदायिकता का निरसन

गोस्वामीजी ने खंडन-मंडन के कंटकाकीर्ण और टेढ़े-मेढ़े पथ का अनुसरण नहीं किया। उन्होंने देखा, संप्रदायवाद का दोष जगद्व्यापी है। इस

लोकमत ने वेदमत को ढँक लिया है, इसीलिये अविरोधी अनन्य भक्ति का उन्होने प्रतिपादन किया। सच पूछिए, तो अपने दीर्घ जीवन में गोस्वामीजी सांप्रदायिकता के दोषो से ऊब गए थे, इसलिये उन्होने स्पष्ट और व्यावहारिक रीति से इसका विरोध किया। उनका स्पष्ट विरोध तो इसमे है कि कलि-धर्म-वर्णन में साफ़ कह डाला—

कलि-मल ग्रसे धरम सब, लुप्त भए सद् ग्रथ,
दभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पथ।

परंतु यह कहने के पहले ही सार्वभौम असांप्रदायिक हिंदू-धर्म के अनुसार ही ग्रंथ का मगलाचरण किया। गणेश, सरस्वती, भवानी, शंकर, गुरु, विष्णु, सूर्य, शक्ति आदि सभी भगवद्विभूतियों की समान आदर से वदना की। उस समय शैवो और वैष्णवो मे घोर विरुद्ध था, एक दूसरे के ख़ून के प्यासे रहते थे। स्वय गोस्वामीजी भुक्त-भोगी थे। इन्हे लोग दो नावों पर सवार समझते थे। परंतु गोस्वामीजी ने भगवान् शकर से तो राम-कथा कहलाई, और राम की उपासना कराई। साथ ही अपने परमाराध्य देव भगवान् रामचद्रजी के हाथों श्रीरामेश्वरजी की स्थापना कराई, और जहाँ श्रीमुख से माहात्म्य कहलाया, वहाँ तो राम और शंकर को बिलकुल अभिन्न बताया। वैष्णव और शैव दोनो के लिये शास्त्रार्थ की रत्ती-भर गुंजाइश न रक्खी। कागभुशुडि के प्रकरण मे इन बातों को बिलकुल साफ़ कर दिया। निदान गोस्वामीजी सांप्रदायिकता के भारी विरोधी थे। इस उदार भाव का यह प्रभाव पडा कि आज सभी संप्रदायवाले समान भाव से रामचरित-मानस को अपनाते है। अपने संप्रदाय के विशिष्ट भाव से कुछ भेद होने पर भी उसके विरुद्ध आग्रह नहीं करते।

संप्रदायो की विशेष भूल भी इसी के साथ-साथ दिखाई गई है। सप्रदायवाला जिस विशेष रूप से अपने परमाराध्य को देखता है, जिस विशेष नाम से पुकारता है, उसका जो कुछ विशिष्ट ध्यान करता है, उसकी जैसी लीलाओ का कीर्तन करता है, उसकी जैसी धारणा उसके मन में है, गोस्वामीजी प्रत्येक का आरोप पूर्ण परतम सीताराम मे करते है, और समान भाव से सबकी ठीक वैसी ही पूजा करते हैं। न किसी की उन्नीस और न किसी की इक्कीस। इस प्रकार गोस्वामीजी दिखा देते है कि एक ही प्रभु को अनेक नाम, रूप, लीला, धाम धारणा से उनके सेवक मानते और जानते है। वह तो कहते हैं—

सीयराममय सब जग जानी—
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

और, यही उनका व्यवहार है। इस व्यावहारिक तर्क के सामने सांप्रदायिक वाग्वितंडा और विवाद चुप हो जाता है। और, गोस्वामीजी एवं उनके अनुयायी तो—

निज प्रभुमय देखहि जगत,
कासन करहि बिरोध ?

सप्रदायवादी अपनी अनन्य उपासना का दम भरते है, और इस नासमझी की अनन्यता से अपने परमोपास्य देव-भाव को अत्यंत संकुचित कर देते है। वैष्णव विष्णु की उपासना करता हुआ शिव को अन्य मानता है। इसी तरह शैव विष्णु को अन्य मानता है। इन पक्तियो के लेखक से तो उसके अनेक मुसलमान पढे-लिखे मित्रो ने अनेक बार कहा है—"हिंदू तो एक अल्लाह को नहीं मानते, बहुत-से देवताओं को मानते हैं, कोई किसी को मानता है, कोई किसी को!" इस पर हँसते-हँसते कहा गया—"क्या अल्लाह तआला क़ादिर मुतलक़ नहीं है? सभी नाम-रूप उसी के नहीं है? क्या वह किसी ख़ास रूप या ख़ास नाम या ख़ास ख़याल में ही महदूद है?" परतु पक्षपात का परदा ज़बरदस्त होता है। आँखे खुलने नहीं देता।

गोस्वामीजी ने भी 'अनन्य' की परिभाषा की है, और वह है भी बडी अनमोल—

सो अनन्य, जाके असि मति न टरइ हनुमंत,
मै सेवकु, सचराचर-रूप स्वामि भगवंत।

"सचराचर अपने स्वामी को ही देखना", यदि अनन्य उपासना है, तो सभी धर्म और संप्रदाय के प्रकृत अनन्य उपासक परस्पर सहमत हैं। कौन किससे विरोध कर सकता है? आस्तिक-मात्र, जो परमात्मा को सर्वव्यापक मानते है, इस तरह के भाव से कभी विरोध नही कर सकते।

अनन्य का अर्थ साधारणतया लोग और ही ढंग पर समझते हैं। लोग समझते है, एक परमात्मा का ही भरोसा रखना और किसी देवता अथवा समर्थ का भरोसा न करना अनन्यता है। परंतु गोसाईंजी की अनन्यता और ही चीज़ है। जैसे अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञानी के निकट आत्म-अनात्म सब कुछ ब्रह्म ही है, वैसे ही गोस्वामीजी के निकट आत्म तो दास है, और सब अनात्म स्वामी है; क्योंकि गोस्वामीजी ज्ञानी और अनन्यदर्शी भक्त है।

निज प्रभुमय देखहि जगत,
कासन करहि बिरोध?

और फिर अपने प्रभु के अतिरिक्त कुछ हो, तभी तो विरोधी संप्रदाय खड़ा होगा, यहाँ तो प्रभु के सिवा दूसरा कुछ नहीं।

४ दास्य-रस के आदर्श

रामचरित-मानस मे दास्य-रस का सर्वोत्तम निर्वाह है। उसके आदर्श भरे पड़े हैं। भक्ति के पाँच रसो मे दास्य ही मुख्य है। भक्ति-शब्द (भज्=सेवायाम्) स्वय दास्य-रस का ही द्योतक है। शांत में, शृंगार मे, सख्य मे, वात्सल्य मे, मणिकाओ के भीतर सूत की तरह, एक दास्य-रस ही पिरोया हुआ है। भुशुंडि कहते हैं

सेवक - सेव्य - भाव बिनु
भव न तरिय उरगारि!

यह सेवा-भाव क्या है? मुख्यतः अपने सेव्य का निरंतर ध्यान बना रहना, उसका सतत स्मरण। देश की सेवा करनेवाला देश को, रोगी की सेवा करनेवाला रोगी को, यात्री की सेवा करनेवाला यात्री को भूल नहीं सकता। भूल जाना ही सेवा मे त्रुटि का मुख्य कारण होता है। सेव्य की याद रक्खे, तो सेवा मन, वचन, कर्म में व्याप्त रहेगी। साहब बहादुरों के सेवकों को सपने मे भी साहब देख पड़ते है। परमात्मा को अखिल विश्वेश्वर, सच्चिदानंद घन ईश्वर और अपने को जीव मानकर शांति से समाधि में पड़ा भक्त भी अपने सेव्य को स्मरण करता रहता है। तत्सुख और स्वसुख, दोनो मार्ग का संयोग शृंगारी भी अपने प्रियतम को निरंतर स्मरण करता रहता है। वियोगी के लिये तो स्मरण अनिवार्य ही ठहरा। सख्य में तो सखा का स्मरण और सेवा दस्तूर ही ठहरा। वात्सल्य मे भगवान् को जो अपना माता-पिता मानता है, वह तो सेवा करता ही है; और वह, जो भगवान् को गोद में खेलाने का सौभाग्य पाता है, अपने प्रभु बालक की वही सब सेवा करता है, जो साधारण बच्चों की की जाती है। इस पर विस्तार करना यहाँ संभव नही है। इस प्रकार भक्ति में दास्य भाव सर्वोत्कृष्ट है—और भव सागर से तरने का एकमात्र उपाय है। श्रीराम चरित मानस में इस दास्य रस के सर्वोत्तम आदर्श भगवान् मारुति है। भगवान् शकर, जो—

सेवक स्वामि सखा सिय-पी के।

हैं, अपने सेवा-भाव का सर्वोत्तम आदर्श दिखाने को हनुमान्‌जी होकर अवतरे है। या यो कहना चाहिए कि भक्तो के हित के लिये साकेतविहारी के चतुर्व्यूह मे जैसे सख्य और वात्सल्य के आदर्श श्रीलक्ष्मणजी है, और सख्य तथा शृंगार का आदर्श श्रीसीताजी है, और पाँचो रसो के आदर्श भगवान् स्वय है, उसी तरह दास्य, सख्य, वात्सल्य

और शांत रसो के परमादर्श भगवान् मारुति हैं।

श्रीमद्भागवत मे भक्ति के नव प्रकार इस तरह बताए है—

श्रवणं कीर्त्तन विष्णोः स्मरण पादसेवनम्,
अर्चन वन्दन दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।

ये सभी सेवा भाव के अंतर्गत हैं । सख्य मे भी सेवा है, परतु गोस्वामीजी ने तो दास के जीवन का चित्र खींच दिया है। भगवान् पदल गए हैं, इसलिये भरतजी सब सामग्री रहते भी पैदल मनाने जा रहे है । श्रीरामत्रिमूर्ति तो मज़े-मज़े से धीरे-धीरे गई, परंतु भरतजी को तो एक-एक क्षण दूभर हो रहा है, जल्दी-जल्दी रास्ता तय कर रहे हैं, पाँवों में छाले पड गए है, परतु कहते है—

सिर भरि जाउँ, उचित अस मोरा;
सबतें सेवक - धरमु कठोरा।

दास्य-भाव कोई दिल्लगीबाज़ी नहीं है । दास तो सदा अपनी नालायक़ी का इकरार करता रहता है। यह ख़ूब जानता है कि मुझसे जैसी चाहिए, वैसी सेवा बन नहीं पड़ती, मेरा चरित्र इतना अधम है कि प्रभु को रिझा नहीं सकता, मेरे अपराध इतने है कि मुझे जो-जो यातनाएँ हो, थोडी है, मालिक भी मुझे निरा निकम्मा समझता है, समझो। लोग कहते है, बेवफ़ा है, नमकहराम है, विश्वासघाती है, कहने दो। मुझे तो बस यह चाहिए कि मेरे मन में मालिक के चरणों मे अनुराग दिन पर-दिन बढ़ता ही रहे ।

जानहु राम, कुटिल करि मोही;
लोग कहउ गुरु-साहिब-द्रोही।
सीताराम-चरन रति मोरे-
अनुदिन बढउ अनुग्रह तारे।
जलदु, जनम भरि सुरति बिसारउ,
जाचत जल पबि-पाहन डारउ।
चातक रटनि घटे घटि जाई;
बढ़े प्रेमु सब भाँति भलाई।
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे;
तिमि प्रियतम-पद-प्रीति निबाहे।
(अवध० २०५—१-३)

दास का आदर्श भरत और हनुमान् की-सी निष्काम सेवा ही है, तो भी दास मे इस निष्कामता की ऐंठ बिलकुल नहीं है। हनुमान्जी कितनी भारी सेवा करते है कि भगवान् बोल उठते हैं—

सुनु सुत, तोहिं उरिन मै नाहीं;
देखेउँ करि बिचार मन माहीं।

इस भारी क़द्रदानी पर हनुमान्जी मुग्ध हो चरणों पर सिर रखकर पड जाते है, जल्दी उठते नहीं। कहते है—"भगवन्, यह क्या कह रहे हैं! क्या वानर, पशु ऐसे पराक्रम कर सकता है ? वह तो आपके प्रताप से, सरकार के इकबाल से, सब कुछ किया, वरना एक नीच पशु क्या कर सकता है?"

ताकहुँ प्रभु, कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल;
प्रभु-प्रताप बड़वानलहिं जारि सकइ खलु तूल।

इतना कह झट भक्तिवर माँगते हैं, अविरल सेवा-वृत्ति माँग लेते है, जिससे कही मन में गर्व का अंकुर न उगे कि "वाह, मैंने ऐसी सेवा की कि मालिक ने सराहा, वाह रे मै!" इस गर्व से एक-मात्र रक्षिका 'भक्ति' ही है।

गोस्वामीजी का अपना दास्य-भाव तो कार्पण्य से ओत-प्रोत है। राम-कथा कहने बैठे है, पर सूझ-बूझ काम नहीं करती, कैसे क्या करे ?

सूझ न एकउ अंग उपाऊ;
मन-मति रंक मनोरथ राऊ।
मति अति नीच ऊँच रुचि आछी;
चहिअ अमिअ जग जुरइ न छाछी।

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती,
जासु कृपा नहि कृपा अघाती।
* * *
राम सुस्वामि, कुसेवक मो-सो,
निज दिसि देखि दयानिधि, पोसो।
* * *
रीझत राम सनेह निसोते;
को जग मद मलिन-मति मोते?
सठ सेवक की प्रीति रुचि रखिहहि राम कृपालु;
उपल किए जलजान जेहि सचिव सुमति कपि-भालु।
हौंहु कहावत सब कहत राम सहत उपहास;
साहेब सीतानाथ-से, सेवक तुलसीदास!
अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी,
सुनि अघ नरकहुँ नाक सिकोरी।
समुझि सहम मोहि अपडर अपने;
सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने।
सुनि अवलोक सुचित चखु चाही;
भगति मोरि मति स्वामि सराही।
कहत नसाइ होइ हिय नीकी;
रीझत राम जानि जन जी की।
रहति न प्रभु-चित चूक किए की;
करत सुरति सय बार हिए की।

और भरतजी से कहलाते हैं —

जौ परिहरहिं मलिन मन मानी,
जौ सनमानहि सेवक जानी।
मोरे सरन राम कइ पनही;
राम सुस्वामि दोषु सबु जनही।
* * *
जौ करनी समुझइँ प्रभु मोरी,
नहि निसतार कलप सत कोरी।
जन-अवगुन प्रभु मान न काऊ;
दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ।

और लक्ष्मणजी वन गमन के प्रसंग पर जब घर रहने का उपदेश सुनकर घबरा जाते हैं—

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ;
नाथ, दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू;
कहउँ सुभाउ नाथ, पतिआहू।
जहँ लग जगत सनेह सगाई—
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।
मोरे सबहि एक तुम्ह स्वामी,
दीनबंधु उर अंतरजामी।
धरम-नीति उपदेसिअ ताही,
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।
मन क्रम बचन चरन-रत जोई,
कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई?

इस प्रकार की उक्तियों से 'रामचरित-मानस' भरा पड़ा है। दास अपने को दोषों का आगार समझता है, और स्वामी को अत्यंत दयालु, क्षमा-शील, आँख के देखे अपराधों को भूल जानेवाला, एक बार के कभी के किए अच्छे विचार को सुनकर वारवार स्मरण करनेवाला और माता, पिता, गुरु की तरह हितचिंतक और सुखी रखनेवाला जानता है। उधर गीता में भी तो इक़रार है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्;
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।
क्षिप्रं भवति धर्म्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति;
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।

और रामायण में भी—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते;
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।
(वा० रा० यु० का० १८। ३३)

कैसा ही खोटा क्यों न हो, एक बार भगवान् को 'अनन्य' भाव से भजे, तो वह खरा सिक्का हो जाता है, वह तो साधु—परम साधु, बड़ा धर्मात्मा, शांति-स्वरूप हो जाता है। वह तो उन्हीं के रूप में मिल जाता है। उसकी रक्षा को तो कड़ी प्रतिज्ञा है।

मगर यहाँ अनन्यता की कड़ी -- बहुत कड़ी—शर्त है। शायद इसे पूरी न कर सका, तो उधर भगवान् रामचंद्रजी तो इससे कहीं अधिक सरल शर्त रखते हैं। कभी भूलकर एक बार भी शरणार्थी कह बैठे कि भगवन्, मै तेरा हूँ—तेरा क्या ? "दास सखा वाहनमासनं ध्वजो, यस्ते वितानं व्यजनं त्रयीमयः" कुछ भी हूँ, चरण की धूल ही हूँ — बस, समस्त प्राणियों मे अभय-पद उसे दे ही देता हूँ। यमदूत, यमराज भी तो प्राणी हैं ! फिर क्या मजाल कि इनका भय हो। वह शरण मे आनेवाला कैसा ही घोर पापी क्यों न हो—

कोटि बिप्र-बध लागइ जाहू, आए सरन तजउँ नहिं ताहू।
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं, जनम कोटि अघ नासउँ तबहीं।

जीव तो केवल सम्मुख होता है, पर स्वामी की ओर से यह कृपा कि कोटि जन्मों के पापों का नाश कर दिया ! स्वामी भी ऐसा संकोची, ऐसा शील-वान् कि अपने नीच-से-नीच दास को—

तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई !

बार'बार कहते नही अघाता। नीच सेवक को अपना छोटा भाई बनाकर वात्सल्य और सख्य, दोनो के अमृत रस की वर्षा करता रहता है। हिंदू-समाज आज शूद्रों-मजूरो के उत्थान से घबराता है। लोग कहते है, अब सभी उन्नतिशील हो रहे है, तो नौकर मजूर कहाँ से मिलेंगे ? इसीलिये उनको पद-दलित ही रक्खो। परंतु भगवान् अपने नीच दासो को—वानरो, भालुओं, राक्षसो, निषादो को—अपने वात्सल्य-भाजन छोटे भाई का पद देते है, और अपने साकेतलोकीय विग्रह में किसी को मुकुट मे, किसी को आँखों पर किसी को कुंडल पर स्थान

देते है । दासों का इतना उत्थान ! यह तो सायुज्य मुक्ति की बात हुई । सालोक्य, सारूप्य और सामीप्य में तो वह अपना ही 'पद' अपना ही 'ओहदा' (परमात्मापन) दे देते है, और भक्त के इस सान्निध्य से स्वय मस्त होकर प्यार से कहते है—

मुझसे न समझ अपने को जुदा,
तुम और नही, हम और नहीं।

दास्य हमारी ओर से है, पर मालिक की ओर से है शुद्ध साम्यवाद। इस अखिल विश्वरूपी मिल का मालिक अपने मजूरों को अपना शिरो-मुकुट, अपना सिरताज बना लेता है, अपना मुसाहब, अपना दोस्त, अपना भाई बना लेता है, और अपनी मालिकी का उन्हे अपने बराबर का हिस्सेदार बना लेता है, बल्कि हनुमान्‌जी-जैसे मजरों का तो वह ऋणी बन जाता है। उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता।

पुराणो मे लिखा है कि कलियुग में शूद्रो का राज्य होगा। दासो का—मजूरों-किसानों का—राज्य होगा। उसके लिये भारत की भावी प्रजा की समुचित शिक्षा होनी चाहिए। सुदूर भविष्य को अपनी दिव्य दृष्टि से देखनेवाला कवि दास्य-रस के वास्तविक आदर्श की शिक्षा देता है। वह अपने काल से हज़ारो वर्ष पहले के इतिहास की प्रगति से देखता है कि राष्ट्र किस प्रकार धीरे-धीरे दासता के स्रोत मे बहा जा रहा है। वह अपने वर्तमान काल से भी निष्कर्ष निकालता है। देखता है कि सुदूर भविष्य इन्ही पद-दलित दासो के हाथ मे आवेगा। उनके लिये ऊँचे-से-ऊँचे आदर्श की शिक्षा उस गॅवारू भाषा में होनी चाहिए, जो दासों की शिष्ट भाषा होगी। इसीलिये गाँवो की प्यारी भाषा से उस भारी भूपति—ज़मींदार—की कथा लिखी गई, जिसने अपने अनुचरो—असामियो—को अपने बराबर ऊँचा उठाने मे कोई हिचक नहीं की।

प्रभु तरु-तर, कपि डार पर, ते किय आपु-समान,
तुलसी कहूँ न राम-से साहिब सील-निधान।

विनयपत्रिका मे प्रभु के शील-स्वभाव का एक पद मे यो वर्णन किया है—

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल,
सो नर खेहर खाउ।
सिसुपन ते पितु, मातु, बधु, गुरु,
सेवक, सचिव, सखाउ।
कहत, राम-बिधु-बदन रिसौहै
सपनेहु लखेउ न काउ।
खेलत संग अनुज बालक नित
जोगवत अनट अपाउ।
जीति-हारि चुचुकारि दुलारत,
देत-देवावत दाउ।
सिला साप-संताप बिगत भइ
परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरख हिय,
चरन छुए को पछिताउ।
भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगु-
नाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाइँ परि
इतौ न अनत समाउ।
कहेउ राज, बन दिएउ नारि-बस,
गरि गलानि गयो राउ।
ताकु मातु को मन जोगवत जिमि
निज तनु मरमु कुघाउ।
कपि सेवा-बस भए कनौड़े,
कहेउ पवन-सुत आउ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं,
धनिक तु पत्र लिखाउ।
अपनाए सुग्रीव बिभीषन,
तिन न तजेउ छल छाउ।

भरत - सभा सनमानि सराहत,
होत न हृदय अघाउ।
निज करुना करतूति भगत पर
चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत,
सुनत कहत फिरि गाउ।
समुझि-समुझि गुन - ग्राम राम के
उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम - पद
पाइहै प्रेम पसाउ ॥ १०० ॥

ऐसे मालिक ने अपने दासो को भक्ति-मार्ग का उपदेश देते हुए भी कहा है—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी;
कहउँ न कछु ममता उर आनी।
नहि अनीति, नहि कछु प्रभुताई;
सुनहु, करहु जो तुम्हहि सुहाई।
सोइ सेवक, प्रियतम मम सोई,
मम अनुसासन मानइ जोई।

दासो को पूरी आज़ादी दी गई। पसंद आवे, सो करे। मजूरी घटाने या काटने की धमकी नहीं दी गई। सरल स्वभाव, कुटिलता का अभाव, यथालाभ सतोष, विषय से हटाकर भजन मे मन लगाना, सत्संगति और सबसे बडी बात यह कि भगवान् मे ही पूरा भरोसा करना, यही भक्ति का सरल मार्ग है।

मोर दास कहाइ नर - आसा
करइ, त कहहु काह बिस्वासा?

मेरा दास कहलाकर मनुष्य का आसरा ताके, तो उसका विश्वास ही क्या ठहरा! परमात्मा मे विश्वास करना ही तो स्वावलबन है। यही तो स्वाधीनता है। यही तो स्वतंत्रता है। वह मालिक तो हर मजूर के हृदय के अंतस्तल मे बैठा है, अंतर्यामी है। वही तो 'स्व' है। उसी के अवलंब में, अधीनता मे, तंत्र मे रहना स्व-राज है। जब तक पूर्वोक्त अत्यंत दुःसाध्य अनन्य भाव नहीं आया है, तब तक प्रत्येक अन्य प्राणी 'पर' है। 'पर' की अधीनता में, अवलंब में, तंत्र मे ही रहना 'पर' की दासता है, जिसने आज भारत को दलदल मे बेतरह फँसा रक्खा है। भारतवर्ष मे आज बत्तीस करोड दास अपने को इस दलदल से उभारने मे यत्नवान् हैं। परतु उनके दिमाग़ मे भरी पराई दासता उन्हे उभरने नही देती। स्वावलबी, स्वाधीन, स्वतत्र नहीं होने देती, अपने पाँवों खड़े नहीं होने देती। भक्ति के सच्चे दास्य-भाव से ही उसके पाँवो मे बल आ सकता है। वही सच्ची भगवद्भक्ति गोस्वामीजी ने इन हज़ारों वर्ष के पद-दलित दासों को सिखाई है। उसी से इनका उद्धार होगा। जब बनियों का राज मिटकर दासों का, मजूरों और किसानों का राज्य—वास्तविक स्वराज्य— भारत मे होगा, तब और तभी जाकर मानसकार गोस्वामीजी का मिशन पूरा होगा। जब मालिक और मजूर, ज़मींदार और किसान आपस में स्वामी और दास-भाव के साथ-ही-साथ बंधुत्व, सख्य और वात्सल्य भाव को सच्चे मन से सच्चे वचन से, सच्चे व्यवहार से बरतेंगे, और संघर्ष के बदले परस्पर प्रेम, स्वार्थ-त्याग और सहानुभूति का भाव हो जायगा, मानस का उद्देश्य उसी दिन पूरा होगा। भगवान् वह दिन जल्दी दिखावे।

परिचय-हीन यात्री

[श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

वैसे तो मै रेल के तीसरे दर्जे मे सफर करने पर विश्वास करता हूँ, और वह भी इसलिये कि रेल के अधिकारियों के ध्यान मे यह बात अभी तक नही आई कि इस गरीब-परवर हिंदुस्थान मे रेल के चौथे दर्जे की भी आवश्यकता है। पर उस दिन इंटर क्लास मे बैठा था। मेरे साथ मेरे एक मित्र भी थे, और यहाँ यह बतला देना उचित ही होगा कि अपने टिकट के साथ उन्होने मेरा टिकट भी खरीद लिया था।
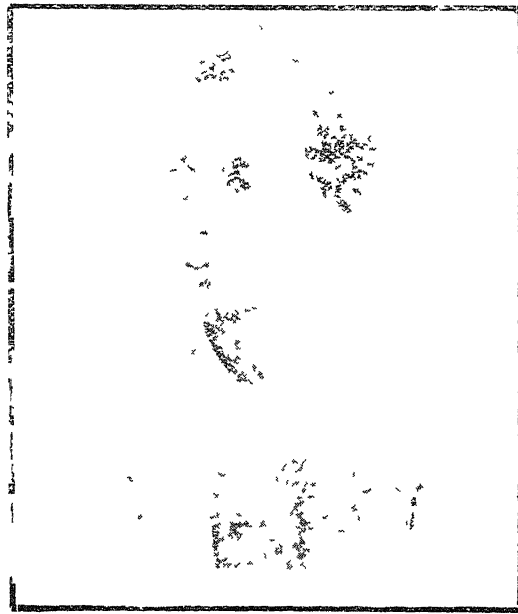
श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा बी० ए०, एल्०-एल्० बी०

कानपुर से लखनऊ अधिक दूर नही है। फासला पैतालीस मील और रास्ता तय करने का समय एक्सप्रेस से नब्बे मिनट। पर पैतालीस मील के सफर मे भी मनुष्य बहुत कुछ देख सकता और नब्बे मिनट मे बहुत कुछ सीख सकता है। इंटर क्लास और थर्ड क्लास में कोई विशेष अतर नही रहता। पूरी गाड़ी मे इंटर क्लास का एक ही डब्बा होने के कारण वह इतना भरा रहता है, जितना थर्ड क्लास। रहा इंटर क्लास का गद्दा, उसका होना या न होना बराबर ही है। यदि ध्यान से देखा जाय, तो इंटर क्लास को हम लोग वह थर्ड क्लास कह सकेंगे, जहाँ कुछ अधिक दाम देकर मध्य श्रेणी के मनुष्यो के बीच मे बैठे हुए हम सफर कर सकते है, और जहाँ न हमे चरस और गाँजे का धुँआ ही परेशान करेगा, और न कपडो से निकलनेवाली भयानक दुर्गंध।

जनाना डब्बा अलग होते हुए भी उस डब्बे मे स्त्रियाँ थी। और, प्राय. लोगो को स्त्रियो के उनके साथ बैठने पर आपत्ति के स्थान पर प्रसन्नता ही होती है। पर ऐसी अवस्था मे स्त्री कुरूप न

हो, और जहाँ तक हो सके, जवान हो। जितने व्यक्ति वहाँ बैठे थे, सबकी नज़रे स्त्रियों पर गड़ी थी। एक साहब ने एक किशोरी को घूरने के लिये धूप का चश्मा चढ़ा लिया, दूसरे महोदय ने अखबार की आड़ का सहारा लिया। थोड़ी देर बाद, वहाँ बैठे हुए जितने व्यक्ति थे, सबो की ऑखे मेरे बर्थ के कोने पर गड गई। मैने अभी तक उस कोने को न देखा था। वहाँ पर एक स्त्री बैठी थी। वह हरे रेशम की साड़ी पहने थी, जिस पर ज़री का काम था। उसके हाथ सु दर, भरे हुए और गोरे-गोरे थे, जिनमे कॉच की दो-दो चूड़ियाँ थी। साड़ी के ऊपर रेशम की चादर थी, जिसने उसके पैरो को ढक रक्खा था। एक विचित्र बात यह थी कि उस स्त्री के मुख पर लबा घूँघट था। उस स्त्री के बगल मे कुछ थोड़ी-सी जगह खाली थी, जिस पर एक अटेची केस था।

उस दिन कुछ कॉलेज के लड़के भी जा रहे थे, और कॉलेज के लडके अनुभव-हीन होते है। अखबार की ओट से घूरनेवाले वकील साहब और धूप का चश्मा लगाकर घूरनेवाले डॉक्टर साहब जीवन मे काफी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। पर कॉलेज के लड़के सीधे-सादे ढग से अपनी तीव्र दृष्टि से घूँघट को चीरकर उसके अदर छिपे हुए सौंदर्य को देखने का प्रयत्न करने लगे।

गाड़ी ने सीटी दी, और एक और सज्जन ने कंपार्टमेंट मे प्रवेश किया। वह उस स्त्री के बगल में खाली जगह पर बैठ गए। इसके बाद उन्होने कंपार्टमेंट मे बैठे हुए लोगो पर एक सरसरी नज़र दौड़ाई।

यह सज्जन जवान थे, और खूबसूरत थे। गोरे, तंदुरुस्त और कद्दावर आदमी, दाढ़ी-मूछ साफ, रेशमी शेरवानी और गरारेदार पाजामा, पैर मे मोज़ा नदारद, लेकिन पेटेंट का ग्रोशियन पप।

गाड़ी चल दी थी। कुछ लोगो ने इन सज्जन को उस स्त्री के पास बैठा देखकर अपनी आँखें उधर से हटा ली थीं, पर अधिकांश रहस्य भेदन करने का लगातार प्रयत्न कर रहे थे। जिन्होने ऑखे हटा ली थीं, वे भी तिरछी दृष्टि से इस आशा पर उस स्त्री को रह-रहकर देख लेते थे कि देखे, शायद घूँघट हट जाय, और देवीजी के दर्शन हो जायँ।

आनेवाले सज्जन कुछ देर तक मौन भाव से कुछ सोचते रहे, इसके बाद वह मुस्किराए। वह खडे हो गए, और उन्होंने कहा—"असहाब! पहले मै आप लोगों से आप लोगो को जो तकलीफ हुई है, उसके लिये चमा माँग लूँ। आप लोग इन देवीजी को बहुत देर से देखने का प्रयत्न कर रहे है, पर देख नहीं पाते, और मै जानता हूँ कि इस नाकामयाबी पर आप लोगो को तकलीफ भी होती होगी। मै यहाँ यह बतला दूँ कि यह देवीजी मेरी धर्मपत्नी है, और साथ ही यह भी बतला दूँ कि मै परदा-प्रथा का विरोधी हूँ। मेरे खयाल से सौदर्य को परदे मे रखना एक घोर अपराध है—अमानुषिक है। सौदर्य मनुष्य को सुखी बनाता है, इसीलिये तो हम सब सौदर्य

के पीछे दीवाने रहते है। जिस सौदर्य से हमे सुख मिलता है, उस सौदर्य से दूसरे को वंचित रखना यदि पाप नहीं है, ता क्या है ? हम एक सुदरी स्त्री को देखते है, हृदय प्रसन्न हो जाता है, आत्मा पुलकायमान हो उठती है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सौदर्य को छिपाना मनुष्यता के प्रति एक घोर अपराध है, दड-नीय है !"

कुछ रुककर उन्होने फिर कहा—"पर यहाँ यह भी बतला देना अनुचित न होगा कि कुरूपता को प्रदर्शित करना उतना ही बडा अपराध है, जितना सौदर्य को छिपाना। हम एक कुरूप व्यक्ति को देखते है, और एक घृणा की विद्युत् हमारे सारे शरीर मे प्रवाहित हो जाती है। तभी तो हम कुरूपता को छिपाते है। हमारे घरो का सुंदर भाग सामने बनाया जाता है, कुरूप भाग पीछे की ओर, जहाँ किसी की दृष्टि न पहुँचे। आप सब लोग इसे मानते ही होगे।

"मै कुरूपता को छिपाए था, पर आप उस कुरूपता को देखने के लिये इतनी देर से उत्सुक है। मुझे दुःख है कि मै कुछ क्षणो के लिये मनुष्यता के प्रति एक बहुत बड़ा अपराध करने जा रहा हूँ। पर मुझे सतोष इस बात का है कि मेरा यह अपराध आप लोगों के अनुचित और व्यर्थ के कौतूहल के दंड रूप मे होगा।"

इतना कहकर उन सज्जन ने उस स्त्री के मुख का घूँघट जबरदस्ती हटा दिया। उस स्त्री को देखते ही लोगों ने उधर से अपनी आँखें हटा लीं, पर मै अपनी आँखे हटा न सका। वैसा कुरूप मुख मैने शायद नही देखा। ऐसा मालूम होता था, मानो मास को थोपकर वह मुख बना दिया गया था। आँखे छोटी-छोटी, नाक नही के बराबर—गाल, ठोढ़ी, मत्था, सब एक साँचे मे ढले हुए। मुख बहुत चौडा और दो दाँत बाहर की ओर निकले हुए। और, वह स्त्री निश्चल भाव से नीचे दृष्टि गड़ाए बैठी थी।

वह सज्जन बैठ गए।

उन्नाव आया, और पार हो गया। मै उन सज्जन के विचित्र व्यवहार पर आश्चर्य कर रहा था। मुझसे न रहा गया। मैने उन सज्जन से कहा—"आप बड़े विचित्र प्रकार के मनुष्य है, क्या मै आपका परिचय पा सकता हूँ ?"

उन्होने थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा। इससे बाद वह मुस्किराए—"आप ठीक कहते है, क्योकि मै विचित्र प्रकार का मनुष्य हूँ। और, आपको यह बात भी विचित्र ही लगेगी कि मेरा कोई परिचय नहीं। पर जहाँ तक मै समझता हूँ, आप मेरी पत्नी के विषय मे ही प्रश्न करना चाहते है। आपमे कौतूहल है, और कौतूहल को पूरा करना मै अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।"

मै आश्चर्य में था। सोचने का मौका ही न था, मैने पूछा—"आप काफी अधिक सुसस्कृत तथा शिक्षित मालूम होते है, फिर आपने इस स्त्री से विवाह क्यो किया ?"

"इसलिये कि मेरे विवाह मे मेरे पिता का हाथ था।"

"क्या आप अपनी पत्नी से प्रेम करते है ?"

"हॉं ?"

"इतनी कुरूप होने पर भी ?"

"हॉं, इतनी कुरूप होने पर भी ! इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? मेरी स्त्री मेरे लिये बडा-से-बड़ा त्याग करने को तैयार है, मेरी प्रत्येक बात का वह ध्यान रखती है, मुझे तनिक भी कष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति मेरे लिये इतना कर सकता है, मै उससे न प्रेम करूॅंगा, तो किससे ? अभाव की पूर्ति का नाम ही प्रेम है—मेरा जीवन भरा हुआ है, मुझमे अभाव नहीं है। एक ऐसा व्यक्ति मुझे मिल गया, जिसमे मेरे हर्ष और रुदन प्रतिबिंबित होकर मेरी आत्मा को कर्तव्य-पथ पर रत करते है।"

"क्या आपकी पत्नी को आपका यह व्यवहार अच्छा लगा होगा ?"

"अच्छा तो न लगा होगा, पर बुरा भी न लगा होगा। मुझमे और मेरी पत्नी मे कोई अतर ही नही। जो बात मुझे अच्छी लगती है, वह मेरी पत्नी को अच्छी लगती है, और जो बात मुझे बुरी लगती है, वह मेरी पत्नी को बुरी लगती है। क्या आप समझते है कि अपनी पत्नी का मुख दिखलाने मे मुझे प्रसन्नता हुई ? उसकी कुरूपता तो विधि का विधान है, वह उसकी कुरूपता नही है, वह हम दोनो की कुरूपता है, हमारे जीवन की कुरूपता है। जीवन मे कुरूपता का कहीं भी न होना तो असंभव है। प्रश्न यह है कि वह कुरूपता ऐसे स्थान पर तो नहीं है, जहॉं उसे हमारी आत्मा को दूषित करने का अवसर मिलता हो। मै और मेरी पत्नी—हम दोनो जानते है कि हमारे जीवन मे विषमता नही है, सघर्ष नही है। रहीं ऐसी छोटी-छोटी बाते, उनकी न तो मै परवा करता हूॅं, और न मेरी पत्नी ही परवा करती है।"

हम दोनो मे फिर कोई बात नही हुई।

लखनऊ-स्टेशन आ रहा था, एकाएक मैने उनसे पूछा—"एक प्रश्न और है। अगर वह अनुचित हो, तो आप मुझे क्षमा करेंगे। क्या आप बतला सकते है कि आप अपने को परिचय-हीन व्यक्ति क्यो कहते है ?"

शात भाव से उन सज्जन ने उत्तर दिया—"परिचय-हीन हूॅं, इसीलिये अपने को परिचय-हीन कहता हूॅं। इस दुनिया मे कौन-सा ऐसा व्यक्ति है, जो अपना परिचय दे सकता हो ? हम सब परिचय-हीन है, एक क्षण आए, और दूसरे क्षण चले। हम स्वय अपने को नहीं जानते, फिर दूसरो को हम अपना परिचय किस प्रकार दे ? और, फिर परिचय की आवश्यकता ही क्या है ? हम सब चलती-फिरती और बोलती तसवीरे है, जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं "

गाडी रुक गई, और बात अधूरी ही रह गई। उन सज्जन से फिर कभी मिलना न हुआ। मै आज तक यह बात नहीं समझ पाया हूॅं कि वह सज्जन पागल थे, दार्शनिक थे, या बने हुए थे।

श्मशान-सौंदर्य*

[महाकवि पुरोहित प्रतापनारायण]

भूतनाथ का, भूतगणों का, भय का भीषण वासस्थान—
अरे श्मशान ! हो गया होगा तुझ पर कितनो का अवसान ?
कैसा निर्दय, हृदय-हीन बन तू करता है पापाचार,
जिसे देखकर भीषणता भी रो देती कर हाहाकार ॥ १ ॥
जिनकी देख दुर्दशा होते कंपमान भूगोल-खगोल,
ऐसे लालो को तू खाता, लालो से भी जो अनमोल।
भुवनविमोहन माना जाता जिनका तनु-सौंदर्य-विकास,
ऐसी रमणी-मणियो का भी तू कर देता पल मे नाश ॥ २ ॥
जिनके सम्मुख रण मे आकर यम भी भय खाता भरपूर,
ऐसे धीर-सुवीरो को भी तू कर देता चकनाचूर।
करता है तू काम भयंकर, दृश्य दिखाता है विपरीत,
जिनकी देख बिभीषणता को भय भी हो जाता है भीत ॥ ३ ॥
कही चिताएँ चुनी जा रही, कही ले रहे जन विश्राम,
कही कपाल-क्रिया होती है, कही अस्थि-संचय का काम।
कही धनंजय† धक-धक करता, कहीं पड़ रहा उस पर पाथ,
कही पुत्र को पिता जलाता, कही प्रिया को उसका नाथ ॥ ४ ॥
कही काक को बलि देते है, होता कहीं तिलांजलि-दान,
कहीं स्नान, हरि ध्यान हो रहा, कहीं छिड़ रहा है विज्ञान।
कही शवो को गाड रहे हैं, कहीं खोदते गर्त महान,
कही-कहीं बैठे रोते है धैर्यवान-बल-साहसवान ॥ ५ ॥
अरे पितृवन‡ ! गर्व न करना, शक्ति नहीं कुछ तेरे पास,
खूब याद रख, तू कर सकता नश्वर का भी कभी न नाश।
पल-पल का यह परिवर्तन है, रूप-भेद है इसका सत्त्व,
कभी दीखते एक, कभी है अलग-अलग ये पाँचो तत्त्व ॥ ६ ॥

* अप्रकाशित 'मन के मोती'-पुस्तक से उद्धृत। † अग्नि। ‡ श्मशान।

विवाह—वाह—आह

[श्रीयुत जंगबहादुरसिंह बी० ए०, असिस्टेंट एडिटर ट्रिब्यून]

वाह का अर्थ है दो दिन की वाह-वाह और जन्म-भर की आह-आह। यह अर्थ आधुनिक नहीं है, सर्वथा सनातन है।

दशरथ के तीन रानियाँ थीं। बच्चों के गीतवाले तीन ताल—दो सूखे, एक मे पानी ही नहीं—की तरह तीन की तीनो बाँझ थीं। कदाचित् दशरथ स्वयं ही पुत्र रत्न अथवा पुत्री-मणि उत्पन्न करने मे अशक्त थे। परंतु दोष तो सदा स्त्रियो के ही सिर मढ़ना चाहिए न। कुछ हो, वह विवाह के जुए में अतृप्त जुआरी की तरह तीन बार भाग्य का पाँसा फेकने पर भी म्लान-मुख ही रहे। फिर उन्होंने रानियो को कोई चमत्कारी खीर खिलाकर गर्भ धारण करवाया। इस खीर-संतान ने प्रारंभ मे भले ही दशरथ की ऐनक तोड़कर या उनकी नाक में उँगली डालकर उन्हे कुछ सुख पहुँचाया हो, परंतु अपने वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने में दशरथ अंत मे बुरी तरह विफल हुए। खीर खानेवाली त्रेता की देवी कैकेयी ने उसी तरह नागिन बनकर दशरथ को डसा, जिस तरह खिचड़ी खानेवाली कलियुग की देवी अक्सर नागिन बनकर अपने पति को डस लेती है। प्रियतमा स्त्री की क्रूरता की चोट खाकर, प्रियतम पुत्र की वियोगाग्नि मे पड़कर दशरथ ने जान दी।

क्या बेटे का अनुभव बाप के अनुभव से कुछ कम कड़वा सिद्ध हुआ? सीताराम-विवाह का अँगरेज़ी में लव-मैरिज (प्रेम-विवाह) अनुवाद करना कुछ बहुत अनुचित नहीं होगा। मुँह से न सही, परंतु आँखों से तो अवश्य ही दोनो ने एक दूसरे से विवाह होने के पहले प्रेम-वार्ता की थी। इससे क्या, यदि वे बीसवीं सदी के प्रेमियों की तरह एक दूसरे को चूम भी लेते, तब भी वैवाहिक घटना-चक्र उसी बेतुकी तरह चलता, जिस तरह चला। राम को बराबर शंभु धनु तोड़ना पड़ता, और परशुराम से चख-चख करनी पड़ती। विवाह का सूत्र-पात होते ही रामचंद्र के सामने मुसीबतो का ताँता लग गया। एक मुसीबत गई, तो दूसरी तुरंत आई। यदि राम बैचलर अर्थात् अविवाहित रहते, तो वनवास उनके लिये जल-वायु के परिवर्तन के समान स्वास्थ्यप्रद और सुखकर हो जाता। सीता ने रामचंद्र का पसीना पोछकर, पंखा झलकर तुलसीदास के कथनानुसार यदा कदा उनकी थकान अवश्य दूर की होगी, परंतु यह सौदा राम को बहुत महँगा पड़ा। जो समय वह स्वाध्याय और व्यायाम में लगाकर अपनी मानसिक और शारीरिक अवस्था की उन्नति कर सकते थे, वह उन्हे रावण के साथ निरर्थक युद्ध मे व्यय करना पड़ा। न राम के पास स्त्री-धन होता, न डाका पड़ता, न कोहराम मचता, न रक्त-पात होता। लक्ष्मण का तो विवाह करना ही बेईमानी था। उनकी स्त्री

बेचारी को अपनी जवानी आसमान के तारे गिन-कर काटनी पड़ी।

रहा हूँ। मैं तो सीता के जीवन के बहीखाते में अंकित उन विशाल अंकों की ओर संकेत कर रहा हूँ, जिनमें यह साफ़ प्रकट होता रहा है कि विवाह घाटे का सौदा है। सीता को रावण की क़ैद से छूटकर अपने सतीत्व की पुष्टता का प्रमाण बाज़ारी का एक भयंकर तमाशा दिखाकर देना पड़ा। यदि सीता के अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने से राम को सीता के अखंडित सतीत्व में विश्वास हो जाता, तब भी कोई बात थी। पर गर्भवती सीता को संदेह ग्रस्त राम ने अंत में एक अति भयावह अरण्य के गर्भ में डाल दिया। उस समय यदि कोई विवेकी मनुष्य सीता का करुण क्रंदन सुनता, तो वह विवाह की प्रथा का कट्टर शत्रु बन जाता! और उदाहरण लीजिए। वही दमयंती, जिसके विना नल को अपना

'सुधा' के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक —
श्रीयुत जंगबहादुरसिंह बी० ए०, असिस्टेंट एडिटर ट्रिब्यून

और, विवाह करके सीता के क्या पल्ले पड़ा? मैं मुँह-दिखलाई के पैसों की ओर संकेत नहीं कर

जीवन भार मालूम देता था, उनकी बीवी बनकर स्वय भार बन गई ! यदि भार न होतीं, तो क्या नल कभी जगल मे उन्हे सोती छोडकर खिसक जाते ?

वैवाहिक जीवन प्राचीन काल के केवल राजा-रानियो के लिय ही काँटो की सेज नहीं बन गया था, बल्कि जन-साधारण के लिये भी कष्टप्रद हो गया था। राम-राज्य में गृहस्थो के घर मे अवश्य कलह होती थी । एक धोबी की झोपडी से ही तो कलहानल की एक चिनगारी ने उड़कर राम के आनंद-भवन के रहे-सहे भाग को नष्ट कर दिया था । इस पर विवाद करने से क्या लाभ कि धोबिन रानी आधी रात को घर से बाहर गीले कपड़े सुखाने गई थी, या अपने किसी प्रेमी के सूखे ओंठ गीले करने । यह बात तो निश्चित है न कि उनके स्वामी को उनकी यह अर्धरात्रि की गमन-नीति अच्छी न लगी । उन्होंने घोषणा की कि मै कोई राम-ऐसा नीच व्यक्ति थोड़े ही हूँ, जो अपनी सीता का पडोसी रावण से यारी करते देखूँ, और फिर घर बिठला लूँ । कलियुग की बात जाने दीजिए, यदि कोई सतयुग, द्वापर और त्रेता के सकुचित विचारवाले मृत पतियो और पत्नियो की प्रेतात्माओ की कान्फ्रेंस हो, तब भी विवाह की प्रथा को मिटाने का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से तुरंत पास हो जाय । जली-कटी, कटी-भुनी वक्तृताएँ हों । राम-राज्य मे रहनेवाली धोबिन कहे कि मै ऐसी ही सती थी, जैसी सीता, मैं विना चूँ-चरा किए बच्चा पैदा करने की मशीन बनी हुई थी । परंतु कभी-कभी इस हाड़-मांस की मशीन को स्वच्छ वायु-सेवन करने की इच्छा होती थी, यह बात मेरे पति देवता को एक आँख भी न भाती थी, और मौक़े-बे-मौक़े वह मुझ पर बरस पडा करते थे । बच्चो का बढता हुआ भार, पति की गाली की बौछार, हृदय मे अंधकार-ही-अंधकार, ऐसी अवस्था मे जीवन-यात्रा दूभर हो जाय, तो क्या आश्चर्य है । विवाह की प्रथा ही इस विषमता की जड है । सुख की प्रतिष्ठा के लिये यह विषमता की जड़ बिलकुल काट डालनी चाहिए । दशरथ कहते, मैं इस अनुपम प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ । यदि कौशल्या और सुमित्रा के एक-एक सहस्र और कैकेयी के दो सहस्र बच्चे हो जाते, तब भी मेरे लिये कोई चिंता की बात नहीं थी । उन सबके एक साथ चेचक निकल आतीं, तब भी चिकित्सा का संतोष-जनक प्रबंध हो सकता था, राज वैद्य के पास वैद्यों की एक भारी सेना थी । परतु कैकेयी की क्रूरता से—उस कैकेयी की क्रूरता से, जिसे मै संसार की सबसे मीठी भाषा की सबसे मीठी गीता, हलाहल को अमृत बनानेवाली विचित्र बूटी, समझता था—कहाँ छुटकारा था ; मेरे एक सहस्र पुत्रो को वनवास मिलता, उनके साथ मेरे एक सहस्र और पुत्र वनवास करने के लिये उतारू हो जाते, मुझे प्राण त्यागने में एक सहस्रगुना अधिक कष्ट होता । मैंने तीन बार अनुभव करके देखा, विवाह दुख का आवाहन है । मै तो एक ऐसे महायज्ञ का प्रतिपादक बन गया हूँ, जिसकी प्रत्येक आहुति के साथ अनुभवी पडित उच्च स्वर मे कहते हैं—"ओ विवाह स्वाहा, ओं दुःखं स्वाहा ।" राम कहते, मैं पिताजी से सर्वथा सहमत हूँ । सीता कहती, मै धोबिन बहन से सर्वथा सहमत हूँ ।

दलित, व्यथित, द्रवित हृदयो ने समय-समय पर विवाह की प्रथा का विरोध किया । और, इस विरोध के फल-स्वरूप विवाह का नाग-फाँस कभी-कभी कुछ ढीला भी पड़ा । परंतु इसके ढीला पड़ने से संसार का उद्धार नहीं हो सकता ; संसार को परमानद तो इसके टूटने ही से मिल सकता है । ब्रह्मांड के सबसे महान् अविवाहित व्यक्ति (confirmed bachelor) नारद का जीवन इस कथन की प्रगल्भता, प्रबलता और सत्यता का द्योतक है । वह कितने स्वच्छद और कितने सुखी है, इसकी कथा उनकी वातुल वीणा सुननेवालो को

सदा सुनाती रहती है। लेकिन अधिकतर लोगों ने तो अपने कानों में जिहालत का तेल ही नहीं डाल रक्खा है, बल्कि अपनी आँखों में किरकिरी रूढ़ियों की धूल भी झोक रक्खी है। नारद के जीवन की पुस्तक में सबसे पहले और सबसे अच्छे पाठ का शीर्षक है 'विवाह मत करो'। नारद के जिन मित्रों ने इस पाठ की अवहेलना की, उनको उन्होंने ब्याह के चक्कर में फँसाकर ख़ूब चकरघिन्नी बनाया, और उनकी अक़्ल ठिकाने कर दी। कैलास-पर्वत का रोड़ा और हिम-गिरि-गृह की ईंट को मिलाकर नारद ने जो महादेव और पार्वती का जोड़ा बनाने का प्रबंध किया था, उससे संतप्त होकर पार्वती की मा ने उनको जी भरकर कोसा था—"साँचेउ उनके मोह न माया, उदासीन धन-धाम न जाया।" नारद से बढ़कर सहृदय और कौन हो सकता था? वह तो जाया की माया की नीरसता और निस्सारता सिद्ध करना चाहते थे, ताकि संसार दुःख के जाल से मुक्त हो जाय। इसीलिये ऐसे खेल रचा करते थे। नारद विवाह की प्रथा के ऐसे विरोधी थे कि उनके सम-कालीन महान् नागरिकों को यह भ्रम हो गया कि उनका सारी सुंदर और असुंदर स्त्री-जाति से वैर है। विष्णु ने उन्हें विवाह के फंदे में फाँसने की योजना की, और कदाचित् वह क्षणिक मानसिक दुर्बलता - कारण उस फंदे में फँस भी जाते, परंतु विष्णु अपने बिछाए हुए फंदे में स्वय फँस गए। और, उस क्षणिक झूठमूठ के विवाह के कारण उन्हें क्षीरसागर छोड़कर दुःख-सागर में डुबकी लगानी पड़ी। रामायण इसका प्रमाण है। नारद, जिनको विष्णु ने सारी सुंदर और असुंदर स्त्री-जाति का वैरी समझ रक्खा था, उसके उपासक भी सिद्ध हो गए, और निर्द्वंद्व, निर्लेप 'बोहीमियन' (Bohemian)-के 'बोहीमियन' बने रहे। विवाहित संसार की अश्रु-सिंचित गलियों में वह मस्त मौला की तरह कभी-कभी चक्कर लगाया करते थे, लोगों को ऊँच-नीच समझाया करते थे, अपने जीवन का मर्मस्पर्शी संदेश सुनाया करते थे, परंतु विवाह के विरुद्ध उस समय तक स्पष्ट विद्रोह नहीं हुआ, जब तक लोगों के दिल एकदम पक नहीं गए।

आख़िर विद्रोह का स्रोत फूटा, वह वैवाहिक स्वतंत्रता की गंगा बनकर बहा, और अपने साथ बहुत-सी कुप्रथाओं के कूड़ा-करकट को बहा ले गया। एक नया युग आया। इस नए युग के अतुलनीय प्रवर्तक कृष्ण ने प्रस्तुत जनता को अपने आचरण द्वारा और भविष्य की जनता को गीता तथा मुरली की तान द्वारा अमिट सुख प्राप्त करने के अमूल्य उपाय बतलाए। गीता मेरे विषय के लिये असंगत वस्तु है। मैं तो कृष्ण की उन कृत्यों का यहाँ संक्षिप्त उल्लेख करना चाहता हूँ, जिनकी नींव पर एकमात्र सच्चे समाज मंदिर का निर्माण हुआ। जज लिंडसे ने आज विवाह की प्रथा का लचरपन पहचाना है, कृष्ण ने शताब्दियों पहले इसके लचरपन को पहचान लिया था। वह मानव-प्रकृति के प्रखर बुद्धिवाले पारखी थे, इसलिये उन्होंने समाज सुधार-संदेश का बीज ग्वालों के बंजर पाषाण-हृदयों में नहीं बिखेरा, बल्कि गोपियों के उर्वरा कोमल वक्षःस्थल में बोया। और, उन्होंने सहस्रों, शायद लाखों, गोपियों को स्वतंत्र प्रेम-मत का अनुयायी और विवाह-दुराचार का वैरी बना दिया। उन्होंने स्वय भिन्न-भिन्न गोपियों के साथ एक समय-विशेष तक विहार करके यह निश्चय किया कि किसका स्वभाव और मन उनके स्वभाव और मन में मिश्री और मक्खन की तरह मिल सकता है। यह निश्चय करने के बाद भी न वह राधा को रोग बनकर लगे, न उन्होंने राधा को अपने लिये रोग बनने दिया। वह अपने क्वाँरेपन की रँगीली चादर पर गोपियों के क्वाँरेपन की रँगीली चादर ओढ़कर सहस्रों बार सोए होंगे। परंतु उनका रंग फीका नहीं पड़ा, न वे गिजमिज होकर

बुरी मालूम देने लगीं। विवाह की प्रथा उड जाने से मानव-जीवन मे यह चमत्कार पैदा हो गया।

मैं अनुमान करता हूँ कि महाभारत-काल मे विवाह-व्यभिचार बहुत कुछ मिट गया। इसका श्रेय कुछ तो कृष्ण के महान् व्यक्तित्व को मिलना चाहिए, और कुछ उस समय की क्रांतिकारी विचार-धारा को। यह क्रांतिकारी विचार धारा धीरे-धीरे प्रबल बनी थी—असीम काल के धुँधले कोनों से सत्य-सुधा-बिंदु टपक-टपककर इसको प्रबल बना रहा था। किसी को याद है कि ऋषि-पुत्र श्वेतकेतु की रूपवती माता को जब एक मनचला ब्राह्मण उड़ाकर ले चला, तो क्षुभित और क्रोधित श्वेतकेतु से उनके पिता ने क्या कहा? स्त्री और पुरुष के सर्वकालीन और सर्वदेशीय पारस्परिक संबंध की यथार्थता को भली भाँति समझनेवाले उस ऋषि ने कहा—बेटा, क्रोध न करो, कोई स्त्री किसी पुरुष की स्थिर संपत्ति नहीं बन सकती। महाभारत-काल मे पुरुष और स्त्री सुख संचय करने के लिये स्वतंत्र हो गए थे। यद्यपि पति-पत्नी शब्दो का प्रयोग करना पाप नहीं समझा जाता था, परंतु उनमे अब दासता की दुर्गंध नहीं रह गई थी। वे प्रेमियो के सुरभित रूमाल की तरह चित्त प्रसन्न करनेवाले थे। प्राचीन संस्कृत-नाटककारो के राजो की रानियों की तरह पत्नियो को अपने पतियो के लिये नई-नवेली औरते ढूँढ़ने का काम नही करना पड़ता था। न पति ही पत्नियो को केवल रात क बिछौने की चादर समझते थे। विवाह की प्रथा उठ-सी गई थी। ऐसा न होता, तो कुंती कैसे सूर्य को अपने घर बुलाकर उनके साथ समागम करतीं, और युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव नाम की पाँच महाभारती तलवारे एक म्यान में पड़तीं?

आज लाहौर मे कोई माई की मुन्नी कुंती की नक़ल करे, और कोई माई के पाँच लाल पांडवो की प्रणाली को अपनावे, तो वह तोबा-तिल्ला मचेगी कि लखनऊ-निवासी गृहस्थो की नींद हराम हो जायगी। मुझे किसी की नींद हराम होते देखकर मज़ा नहीं आता। परंतु हिंदू-समाज जिस नींद के नशे में झूम रहा है, वह उस नींद के समान प्राणघातक है, जो साँप के काटने पर किसी को घेरती है। कुछ समाज-सुधारको की यह धारणा है कि यदि विवाह होने के पहले प्रेम का टीका लगवा लिया जाय (प्रेम का टीका भी चेचक के टीके के समान ज्वरोत्पादक है), तो विवाह-विष असर नही करता। यह बात कुछ हद तक ठीक भी है। जब तक कोर्टशिप (प्रेम-व्यवहार) का प्रभाव नही मिटता, तब तक विवाह-विष का प्रभाव दबा रहता है। परतु दिलदारी के झूलने को टूटते बहुत देर नहीं लगती। सारी जवानी की उमंगें जवानी में ही चकनाचूर हो जाती है, और सारा दांपत्य-गुड़ गृहस्थ-गोबर हो जाता है।

हिंदोस्तान में तो युवको और युवतियो को शास्त्र प्रेमोपचार से कोसों दूर रखते हैं। इसलिये उन्हें तो सुख का एक दिन भी देखने को नसीब नहीं होता। विवाह की वेदी लाँघते ही उन्हे नरक के भयंकर दृश्य दिखाई देने लगते है। परतु प्रायः लोग कहते यही हैं कि स्वर्ग के दृश्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ताकि और भी लोग नाक कटाकर उनके गिरोह मे सम्मिलित हो जायँ। बेढंगे जोडे बनते हैं। मैना के साथ अरना भैंसे का ब्याह हो जाता है, और मोर के साथ गदही की शादी हो जाती है। मैना क्षय-रोग के पंजे में पड़कर जान देती है, और मोर चिताग्नि मे जलकर मरता है। परतु संस्कार-विधि से न तो विवाह-सस्कार संबंधी श्लोकों का बहिष्कार होता है, न समाज के ताने-बाने को जीर्ण-शीर्ण बनानेवाले पुरोहितो को फाँसी लगाई जाती है।

विवाहित जीवन कितना वाहियात होता है! न

इस जीवन में कला है, न कौशल । पुरुष दफ़्तर से लौटकर क्षण-भर के लिये विश्राम करता है, फिर भोजन करता है, फिर धूम्र-पान करता है, या पान-पान करता है, और फिर स्त्री-पान करता है। तांबूल के बाद पत्नी—पत्नी एक प्रकार की अनुपान हुई न ! पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री का इस बुरी तरह से प्रयोग करता है कि स्त्री की मिट्टी पर्लीद हो जाती है, और मियाँ का स्वयं कचूमर निकल जाता है । प्रयोग-क्रिया तो कोल्हू की गति के समान खेद-जनक बन ही जाती है । पुरुष का पुरुषत्व और स्त्री का स्त्रीत्व सर्वथा नष्ट हो जाता है । धीरे-धीरे पुरुष को यह अनुभव होने लगता है कि उसकी स्फूर्ति लोप हो गई है, और उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । वह गृहस्थी की टमटम में बँधे हुए खच्चर के समान है, जो मरुभूमि से होता हुआ एक अनिश्चित ध्येय की ओर चला जा रहा है, और स्त्री उस ढीलमढाल टमटम में शव की भाँति पड़ी हुई है ।

बहुतों का तो वैवाहिक जीवन सोहाग-रात से ही ख़राब हो जाता है । पुरुष को बहुधा रँगरेलियाँ करने के लिये समाज मृत शरीर दान देता है, और स्त्री को बहुधा तृषित अंग-प्रत्यंग की प्यास बुझाने के लिये समाज आबनूस का कुंदा भेंट करता है । फिर छोटी-छोटी बातें, छोटी-छोटी फाँसों की तरह, पति-पत्नी को निरंतर बेचैन किए रखती हैं । अतिथि, मित्र, संबंधी, नौकर, नाटक, सिनेमा, साड़ी, आभूषण इत्यादि विकट समस्याओं का रूप धारण करके जीवन को आफ़त बना देते हैं । इतने अतिथि कहाँ से आ जाते हैं ? क्या हमारा घर कोई सराय है ? रोज़ नाटक देखना, रोज़ सिनेमा-घर में जाकर आँख फोड़ना, यह कोई सदाचारी आदमी का काम है ? सौ-सौ रुपए की साड़ी और हज़ार-हज़ार का आभूषण ? ऐसी ही शौक़ीन थी, तो कुबेर से क्यों नहीं विवाह किया ? इन समस्याओं को हल करने में इतना समय लगता है कि स्त्री और पुरुष को अपना पूर्ण विकास करने के लिये अवकाश ही नहीं मिलता । और, यदि कहीं दो-चार बच्चे हो गए, तब तो यह बात निश्चित समझ लेनी चाहिए कि विकासवाद का परिच्छेद समाप्त हो गया, और विनाशवाद का परिच्छेद प्रारंभ हो गया । माता-पिता को बच्चों की हँसी अनेक चंद्रमाओं की चाँदनी-सी प्यारी लगती है, परंतु बच्चे सदैव हँसते नहीं रहते, वे रोते भी हैं । वे केवल रोते ही नहीं हैं, रुग्ण भी हो जाते हैं । और, केवल रुग्ण ही नहीं होते, मर भी जाते हैं । तब तो जीवन अखंड अमावस्या की रात्रि-सा अखरने लगता है ।

यदि बच्चे न भी मरें, और उनकी एक पक्की सेना तैयार हो जाय, तब क्या जीवन सुखद हो सकता है ? उनके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के लिये माता-पिता को अपनी आत्मा, अपना शरीर, सब कुछ गिरवीं रखना पड़ता है । फिर भी ये विवाहित जीवन के फल संसार के लिये लाभदायक सिद्ध होने के बजाय भार सिद्ध होते हैं ।

मैं जिस विवाह-रोग-रहित जगत् की कल्पना करता हूँ, उसमें माता-पिता भी होंगे, और उनके संतान भी होगी । परंतु न तो वे माता-पिता विवाह के कफ़न में लिपटे हुए मुर्दों के समान होंगे, न उनकी संतान मुर्दों के समागम से उत्पन्न हुए घिनौने मांस-पिंड के समान होगी । विवाह की प्रथा मिटा देने से मेरा यह आशय नहीं है कि संसार के सारे पुरुष स्वामी दयानंद की तरह ब्रह्मचारी रहकर, जयपुर या जोधपुर के महाराज की बग्घी रोककर लोगों को ब्रह्मचर्य का चमत्कार दिखाते घूमें, न मेरा यह आशय है कि भूमंडल की सारी रमणियाँ मीरा की तरह ब्रह्मचारिणी बनकर "मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई" गीत गाती फिरें । मैं तो मानव-

शक्तियों को विना विघ्न-बाधा के बहने देना चाहता हूँ। वे सहज स्वभाव से मिलें, और पृथक् हों, इसी से संसार का कल्याण होगा।

विवाह की प्रथा प्रचलित होने के कारण लोगों की कामुकता बढ़ गई है। और, उस कामुकता की आग ठंडी करने के लिये लोग अपने घरों को वेश्याओं के घरों से बदतर बनाए हुए हैं। स्त्रियाँ—जो पुरुषों की दासी हैं, क्योंकि उनको रोटी-कपड़े के लिये पुरुषों का मुँह ताकना पड़ता है—अपने सुकुमार शरीरों को एकदम उनके अर्पण कर देती हैं। स्त्रियों के अर्पण और पुरुषों के तर्पण का परिणाम यह होता है कि पुरुष नपुंसक बनकर वेदांती बन जाते हैं, और स्त्रियाँ टूटी हुई कुर्सियों और फटे हुए आसनों की अवस्था को प्राप्त होकर वेदांत का सार बन जाती हैं। यदि विवाह की शृंखला से पुरुष और स्त्री एक दूसरे के साथ जकड़कर बाँध न दिए जायँ, तो कभी इस प्रकार का अनाचार न हो। कोई भी स्त्री अपने फूल-से शरीर का इस प्रकार दिन-रात दलन-मलन करवाने के लिये कभी तैयार न हो, वह तुरंत ऐसे दानव को तिलांजलि दे दे। और, न मनुष्य ही इस प्रकार का अमानुषिक व्यापार करे। उसे इस बात का भय हो न कि कहीं मेरे सुख का आधार ही विलुप्त न हो जाय।

विवाहित स्त्रियाँ, चाहे चंद्र-रश्मि और चंपक-सुरभि की ही क्यों न बनी हों, अपने पतियों के लिये मिट्टी की मूर्तियों के समान होती हैं। परंतु अन्य पुरुषों के हृदय वे एक ही चितवन से आंदोलित कर देती हैं, और उनकी धमनियाँ फड़का देती हैं। विवाह की प्रथा मिटते ही मरी हुई छवि, शोभा और सुंदरता की पुतलियाँ जी उठेंगी, और श्मशान उद्यान बन जायगा। परंतु प्रभुत्व के पुजारी इस प्रथा को शीघ्र मिटने न देंगे। आख़िर कब तक ये मरघट के रखवाले विप्लव होने से रोक सकते हैं? स्त्रियाँ आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर रही हैं। वे पुरुषों के शयनागार की सामग्री में अपनी गिनती करवाने से इनकार कर देंगी। आधुनिक काल के नवयुवकों में भी परिवर्तन हो रहा है। न तो वे स्त्रियों से केवल पैर दबवाना, सिर में तेल लगवाना और अपना काम-ज्वर उतरवाना पसंद करेंगे, और न वे बच्चे पैदा करके उनके टट्टू बने रहने के लिये तैयार होंगे।

एक नए संसार की सृष्टि होनेवाली है। यह नया संसार नैसर्गिक संसार होगा। इसमें प्रभुत्व और दासत्व—सारे दु:खों के मूल-कारण—का लेश भी न होगा। लोग वीणा के विभिन्न तारों को कोमल गति से बजाएँगे, और जिस तार की झंकार से उनका कंठ-स्वर मिल जायगा, उसे अपना लेंगे। जीवन-संगीत बेसुरा होने पर वे फिर नए सिरे से उपयुक्त वाद्य-ध्वनि की खोज करने के लिये स्वतंत्र होंगे। सारी स्त्रियाँ और सारे पुरुष एक विराट् परिवार के संयोजक होंगे। उनकी प्रवृत्तियाँ स्वतंत्र वायु-मंडल में विकसित होकर नियंत्रित हो जायँगी। उनमें वह विकार न होगा, जो आजकल के विवाहित स्त्री-पुरुषों की प्रवृत्तियों में पाया जाता है। उनके जीवन में रस, गंध और रंग का अभाव न होगा। उनका जीवन करवाचौथ का भद्दा चित्र न होगा, उसमें व्रत और उपवास की शिथिलता न होगी। उनका जीवन अविराम तरंगित गुदगुदी के समान होगा।

इस नए संसार के निवासी बच्चे पैदा करेंगे, परंतु बेतहाशा नहीं। बरसाती कीड़ों की तरह लड़के-लड़कियाँ पैदा करने की रीति तो केवल आजकल के विवाहित स्त्री-पुरुषों के बल पर ही चल सकती है। स्वतंत्र स्त्री-पुरुष एक तो अपनी इंद्रियों के दास न होंगे, दूसरे राष्ट्र उन्हें संतान-निरोध करना सिखाएगा। क्यों? उनकी संतान के पालन-पोषण

और शिक्षा दीक्षा का भार राष्ट्र पर होगा । राष्ट्र जितना भार उठाने के योग्य होगा, उतना ही भार लोगों को अपने सिर पर लादने देगा ।

'सुधा' के सभी अविवाहित पाठक और पाठिकाओं को इस नए संसार के रचने मे आधुनिक ब्रह्मा की दिलोजान से सहायता करनी चाहिए । इसके बनते ही 'सुधा' के सभी विवाहित पाठक और पाठिकाएँ विवाह बंधन तोड़कर इसमे बसने के लिये दौड़ पड़ेंगे । यही तो वह स्वर्ग है, जिसका स्वप्न अनादि काल से लोग देखते आए हैं* ।

* श्रीयुत जगबहादुरसिंह हिंदी के उन लेखकों में है, जिनकी कलम में ज़ोर है । उनके सामाजिक विचार क्रांतिकारी हैं । अपने पहले लेखों की तरह ही इस लेख में भी उन्होंने एक ख़ास मसले पर प्रकाश डाला है । विचार-स्वातंत्र्य को दृष्टि में रखकर हमने इस लेख को सुधा में स्थान दिया है । इसके पक्ष या विपक्ष में जो तर्क-पूर्ण, सुंदर लेख आएँगे, उन्हें भी हम सादर प्रकाशित करेंगे ।—सुधा-संपादक

हाथ का कुटा चावल

[श्रीयुत महात्मा गाधी]

चावल दूर-दूर के शहरों मे बेचा या देसावर को भेजा जाता है, उसे मशीनो से कूटकर खूब मुलायम तथा चमकदार बना देते है। ऐसा करने से चावल की तमाम भूसी और जीवाणुओ का सर्वनाश हो जाता है। गेहूँ या मकाई के जीवाणुओं की तरह चावल का जीवाणु सूक्ष्म तहवाला होता है, और वही नए जीव-तत्त्व की सृष्टि होता है। चावल में यही संपूर्ण आहारप्रद तत्त्व है। चावल मे जितनी चर्बी रहती है, वह करीब-करीब सब इसी मे होती है, और वह छोटे छोटे जंतुओ तथा बड़े-बडे प्राणियो का अधिक पोषण करता है। यह बात मशीन के कुटे चावल मे नहीं होती, उसमें तमाम पोषक जीवाणु नष्ट हो जाते है। १६२३ में हमाडा ने कहा था कि चावल के जीवाणु मे रहनेवाला 'प्रोटीन' बहुत ही पौष्टिक होता है। हाथ का कुटा चावल जब गरम जल-वायु में बहुत दिनो तक रक्खा रहता है, तब उसकी चर्बी पुरानी पड जाती है, और गधाने लगती है। मिल के कुटे चावल में व्यापारी को इस तरह के नुक्सान का कोई डर नहीं रहता।

मैकफरी (सन् १९२३) इस निर्णय पर पहुँचे थे कि यंत्र मे कूटे जाने के पहले धान मे 'बिटामिन ए' (एक पौष्टिक तत्त्व) होता है। वह कहते है, उसाने में जब धान को भाप लगती है, तब उस तत्त्व का अधिकांश नाश हो जाता है।

चावल की मशीन मे पॉलिश करने का यह काम इसीलिये शुरू हुआ कि वह बहुत दिनो तक ज्यो-का त्यो ताजा रक्खा रहे, और उसमें जो दूध के फेन की तरह सफेदी आ गई, इससे उसकी मॉग और भी कायम हो गई। सफेद चावल, मैदा और मकाई का सफेद आटा लोगो को जो इतना अधिक भा रहा है, इससे यही प्रकट होता है कि आहार की पसंदगी में मनुष्य की मनोवृत्ति काम नहीं देती। उपर्युक्त दृष्टांतो से कम-से-कम पुष्टिकर वस्तुओ की बाहरी सुंदरता से ही मनुष्य मोहित हो जाता है।

मशीन के द्वारा कृत्रिम सफेदी लाने का रिवाज इसी कारण चल निकला है कि बाजार मे चॉदी-जैसे सफेद चमकदार चावल की ही खपत ज्यादा हो रही है। पॉलिश करने के साथ-साथ चावल पर सफेदा की बुकनी चढाई जाती है, और 'ग्लुकोज' की पतली परत के सहारे वह सफेदा चावल पर चिपका रहता है। चावल को जब धोते है, तब दूध-जैसा जो उसका धोवन दिखाई देता है, उसका कारण उस पर चढ़ी हुई यह सफेदी ही है।

मिल के कुटे-बने चावल मे चारो पौष्टिक तत्त्व बहुत ही कम होते है। उसके 'प्रोटीन' मे बहुत ही थोडा पौष्टिक तत्त्व होता है। शरीर की बाढ मे जिन खनिज द्रव्यो की जरूरत होती है, वे भी उसमे बहुत ही कम होते है, और बिटामिन 'बी' तो करीब-करीब होते ही नही। इस बात का चूहो पर प्रयोग किया गया, तो उससे यह साबित नही हुआ कि मिल के इस चावल मे बिटामिन 'सी' नही है। इस चीज की मनुष्य के आहार मे आवश्यकता नही।

महात्मा गांधी

१९२४ मे केनेडी के जगली चावल मे दूसरे किसी भी अनाज का अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक मालूम हुई, पर इस प्रोटीन मे पौष्टिक तत्त्व कम थे। दूसरे अनाजो को देखते हुए इसमे कुछ ऐसे निरवयव द्रव्य भी है, जिनसे प्राणियो के शरीर का विकास नही हो सकता। उसमे बिटामिन की मात्रा यद्यपि कम होती है, पर 'बेरोथेल्मिया'-नामक रोग रोकने के लिये वह काफी है। असल मे मिल के कटे चावल की अपेक्षा इस जंगली चावल मे पौष्टिक तत्त्व अधिक है, क्योंकि उसका प्रोटीन उच्च कोटि का है। शरीर की पुष्टि के लिये बिटामिन 'बी' की मात्रा इसमे काफ़ी है।

अपने शत-प्रति-शत स्वदेशी के लेख मे मैने यह बताया है कि उसके कुछ अग तो तुरत हाथ मे लिए जा सकते है, और इस तरह भूखो मरनेवाले देश के करोडो लोगों को आर्थिक तथा आरोग्य की दृष्टि से लाभ पहुँच सकता है। देश के धनाढ्य-से-धनाढ्य लोगो को इस लाभ मे भाग मिल सकता है। चावल को ही लीजिए। अगर धान को गॉवो मे उसी पुरानी रीति से उखली-मूसल से कूटा जाय, तो कूटनेवाली बहनो को तो रोजी मिले ही, साथ ही करोड़ो मनुष्यो को, जिन्हे मशीन का कुटा चावल खाने से निरा 'स्टार्च' मिलता है, हाथ के कुटे चावल से कुछ पौष्टिक तत्त्व भी मिलने लगे। हमारे देश के जिन भागो मे धान की फसल होती है, वहॉ प्रायः सब जगह धान कूटने के बड़े-बड़े कल-कारखाने खुल गए है—इसका कारण है मनुष्य की लोभ-वृत्ति।

मनुष्य की यह भयानक लोभ-वृत्ति न तो स्वास्थ्य का विचार करती है, न संपत्ति का। अगर लोकमत प्रबल हो, तो वह हथकूटे ही चावल के उपयोग का आग्रह कायम रक्खे। चावल के मिल-मालिको से वह लोकमत अनुरोध करे कि उस हानिकर धधे को वे बद कर दे, जो राष्ट्र के स्वास्थ्य को चौपट कर रहा है, और गरीब लोगो के हाथ से ईमानदारी से गुजर-बसर करने का एक जरिया छीन रहा है, और, इस तरह वह धान कूटने की मिलो का चलना असंभव कर दे।

किंतु आहार-तत्त्वो के मूल्य के विषय मे एक साधारण मनुष्य की बात भला कौन सुनेगा! इसलिये मेरे एक डॉक्टर मित्र ने, जिनसे मैने इस संबंध मे सहायता मॉगी थी, अपनी सम्मति के साथ कालम और सिमंड्ज की लिखी 'दि न्यूअर नालेज ऑफ् न्यूट्रीशन' (पोषण का नया ज्ञान) नाम की एक अँगरेजी पुस्तक मेरे पास भेजी है। उसका एक उद्धरण मै यहॉ देता हूँ—

"आधी से भी अधिक मनुष्य-जाति के आहार मे चावल सबसे अधिक महत्त्व का अनाज है। खासकर उन प्रदेशो मे चावल की बहुत ज़्यादा खपत है, जहॉ सबसे ज्यादा नमी या तरी रहती है। अमेरिका के संयुक्त राज्यो मे चावल ऐसा अधिक पसद तो कभी नहा किया जाता, पर थोडी मात्रा मे वहॉ भी लोग इसे काम मे लाते है। जगली और पिछडी हुई जातियो मे हथकुटा चावल उपयोग मे लाया जाता है। उसे लाल चावल कहते है, पर साधारणतया उसे कुछ इस तरह कूचते है कि उसके जीवाणुओ का अधिकाश मे नाश हो जाता है। यह जीवाणु-नाश धान को बड़ी-बड़ी कॉड़ियो (ओखली) मे कूटने से होता है। पर इस क्रिया मे भूसी की एक परत तो रही जाती है, जिसमे खनिज क्षार अधिक मात्रा मे होते है।"

रश्मि और नीहार

(आलोचना)

[श्रीरामविलास शर्मा एम्० ए०]

बिरहिन बैठी रंगमहल में मोतिन की लड़ पोवै ;
इक बिरहिन हम ऐसी देखी, अँसुवन माला पोवै।

(मीरा)

नीहार की कविताएँ इसी विरहिन के आँसू है । विरह की पीड़ा ने उनमे एक अपूर्व सौंदर्य को जन्म दिया है। प्रेमी का प्रथम दर्शन, उसका सहसा चला जाना, वियोग की पीड़ा, आशा, संदेह, उत्सुकता आदि-आदि भावो को कवयित्री ने अपने गीतो की सीमा मे बाँध लिया है। जिस साधारण ससार मे हम नित्यप्रति विचरते है, 'उसने अपने भीतर एक और इससे अधिक सु दर, अधिक सुकुमार संसार बसा रक्खा है' (रश्मि—अपनी बात)। यहाँ के 'चित्रो का आधार छूने या चर्म-चक्षु से देखने की वस्तु नही'। यह ससार कल्पना का है, कल्पना की ही आँखो से उसे देखिए। इस लोक में चाँदनी, निशा, निद्रा, स्वप्न, पीड़ा अपने आकारो मे एक मनुष्यता का आभास देते हुए मनुष्य के समान ही आचार-व्यवहार करते हैं। जहाँ—

मधुर चाँदनी धो जाती है
ख़ाली कलियों के प्याले।

तथा—**बहती जिस नक्षत्र-लोक मे**
निद्रा के श्वासो से बात,
रजत-रश्मियों के तारो पर
बेसुध-सी गाती थी रात !

और—**जलने मे विश्राम जहाँ**
मिटने मे हो निर्वाण।

वह ससार स्वप्न के समान बाह्येंद्रियों के बेसुध होने पर ही कल्पना-चक्षुओं के सामने खुलता है। वह विचित्र रगो से रँगा हुआ है, पर मानो ससार का स्थूल आलोक पड़ते ही नीहार के समान धुल जायगा।

प्रकृति अपने पूर्ण सौंदर्य मे प्रस्फुटित जिस क्षण एक अपूर्व छाया धारण कर रही थी, उसी समय प्रियतम आया था—

रजत-करों की मृदुल तूलिका
से ले तुहिन-बिंदु सुकुमार—
कलियो पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार।
वे आए चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान !

जिस अपार्थिव सौंदर्य की खोज में 'शेली' दीवाना था, उसका दर्शन उसे ऐसे ही एक क्षण मे हुआ था।

'At the sweet time when winds are wooing

All vital things that wake to bring
News of birds and blossoming,—
Sudden, thy shadow fell on me,

(उस सुहावने समय, जब हवाएँ सभी जीवित वस्तुओ से प्रेम-सलाप करती है, जो जागकर विहगो और खिलते वसंत का समाचार लाती है, सहसा तेरी छाया मेरे ऊपर पड़ी) ।

कन-कन में जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
तभी—गई वह अधरो की मुस्कान—
मुझे मधुमय पीडा मे बोर ।

बिरहिनी उस समय लाज के मारे आँखों-भर प्रियतम को देख भी न पाई, दो बातें भी न कर पाई कि वह चला गया—

इन ललचाई पलको पर
पहरा था जब व्रीडा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला—
उस चितवन ने पीडा का !

फिर क्या हुआ ?—

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले ।

बिरहिनी को सिवा रो-रोकर विरह की घड़ियाँ बिताने के अब कोई काम नहीं । उसके विरह को जाग्रत् तथा मिलन के लिये उसे आशान्वित रखने के लिये मानो अब भी प्रियतम उसे बुलाता है—

आज किसी के मसले तारो
की वह दूरागत झंकार—
मुझे बुलाती है सहमी-सी
झंझा के परदो के पार ।

वियोग की घड़ी से वह प्रियतम को ढूँढ़ रही है, पर वह मिलता नहीं, दूर-दूर-सा दिखाई देता है । पर जहाँ वह उसे पकड़ने की चेष्टा करती है, वह कहीं अतर्धान हो जाता है—

उजियारी अवगुंठन मे
विधु ने रजनी को देखा,
तब से मैं ढूँढ़ रही हूँ—
उनके चरणो की रेखा ।
मैं फूलो में रोती, वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ,
वे सौरभ मे उड जाते ।

मृत्यु के बाद भी क्या उसका प्रियतम उससे मिलेगा ?—

साथ लेकर मुर्झाई साध
बिखर जाएँगे प्यासे प्राण ।
हृदय होगा नीरव आह्वान,
मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ?

धीरे-धीरे उसे विरह से प्रेम होने लगता है । इस विरह का ही नाम तो सयोग नहीं—

विरह है या अखंड संयोग,
शाप है, या यह है वरदान ?

उसका विरह एक साधना, उसका एकात एक तपोवन हो जाता है ।

न कर हे निर्झर ! भंग समाधि,
साधना है मेरा एकांत !

उसे अपनी पीडा की व्यापकता का अनुभव होना है—

कन-कन में बिखरा है निर्मम
मेरे मानस का सूनापन !

उसने साधना ही ऐसी की है—

कितनी रातों की मैने
नहलाई है अँधियारी,
धो डाली है संध्या के
पीले सेंदुर से लाली।
नभ के धुँधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैराकर
रजनीकर पार उतारे।

इसीलिये आज वह अभिमान-पूर्वक कह सकती है—

विश्व छा लेगी छोटी आह—
प्राण का बंदीखाना त्याग।

यद्यपि वह अकेली है, लघु है, पर उसी लघुता में उसे विश्व की विशालता भासित होती है—

काँपता-सा आँसू का विंदु
बना जाता है पारावार।

अब वह इस पीडा को क्यो छोड़े ? पीड़ा ने ही उसकी महत्ता का उसे ज्ञान कराया है। जैसे सच्चा भक्त भगवान् को उतना नहीं, जितना सच्ची भक्ति को चाहता है, जिस प्रकार फल की आशा त्याग कर्म-योगी केवल कर्म करना चाहता है, उसी प्रकार यह बिरहिनी मिलन की चिता छोड़ अपने विरह मे ही मग्न होती है। प्रियतम अब आवे भी, तो वह अपनी पीड़ा न छोड़ेगी—

इच्छाओं की कंपन से
सोता एकांत जगा दो,
आशा की मुस्काहट पर
मेरा नैराश्य लुटा दो।
मेरे बिखरे प्राणो मे
सारी करुणा ढुलका दो,
मेरी छोटी सीमा मे
अपना अस्तित्व मिटा दो।
पर शेष नहीं होगी यह
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा मे ढूँढ़ा,
तुममे ढूँढूँगी पीड़ा।

विरह की यह सर्वोत्कृष्ट दशा है, विरहिनी की सर्वोच्च अभिलाषा।

रश्मि मे यही भाव और भी स्पष्ट रूप मे रक्खा गया है—

तुम अमर प्रतीक्षा हो, मैं
पग विरह पथिक का धीमा,
आते-जाते मिट जाऊँ,
पाऊँ न पंथ की सीमा।

रश्मि की जिन कविताओ में प्रेमी के दर्शन, वियोग, विरह आदि का वर्णन है, वे नीहार की कविताओ से कम उत्कृष्ट नहीं, प्रेमी जब उसे छोड़ सहसा चला गया, तो—

रह गई पथ मे बिछकर दीन
दृगों की अश्रु-भरी मनुहार—
मूक प्राणो की विफल पुकार !

अपने विरह की उस मिलन से तुलना कर वह कहती है—

अब नीरव मानस अलि-गुंजन,
कुसुमित मृदु भावों का स्पंदन
विरह-वेदना आई है बन
तम तुषार की रात !

किंतु जब प्रियतम की सुधि आती है, तब—

घुल-घुल जाता यह हिम दुराव,
गा-गा उठते चिर मूक भाव,
अलि, सिहर-सिहर उठता शरीर !

नीहार और रश्मि की तुलना करने पर नीहार अधिक Mystical ठहरता है, तथा रश्मि अधिक Metaphysical एक मे रहस्यमय प्रेम और विरह है, दूसरे मे दार्शनिकता। मै क्या हूँ, जिसे मै खोजती हूँ, वह कौन है, यह संसार क्या है, आदि प्रश्न किए जाते है। फिर भी प्रत्येक विचार के ऊपर कविता का गहरा रग चढा होता है। यह दार्शनिकता एक कवि-हृदय से निकली है, उसका महत्त्व उसके कवित्वमय होने के ही कारण है।

सृष्टि के पूर्व प्रेमी के हाथ मे वीणा थी, प्रेमिका के हाथ मे फूल। फूल के सौरभ से ससार बना, वीणा बजा प्रेमी ने उसमे जीवन डाला—

और तारों पर उँगली फेर
छोड़ दी जो तुमने झंकार,
विश्व-प्रतिमा मे उसने देव !
कर दिया जीवन का सचार।
हो गया मधु से सिंधु अगाध,
रेणु से वसुधा का अवतार ;
हुआ सौरभ से नभ वपुमान,
और कंपन से बही बयार।
उसी में घड़ियाँ-पल अविराम
पुलक से पाने लगे विकास ;
दिवस, रजनी, तम और प्रकाश—
बन गए उसके श्वासोच्छ्वास।

किंतु अब—

वही कौतुक रहस्य का खेल
बन गया है असीम अज्ञात।

प्रथम सयोग और फिर वियोग का यह एक नए रूप में वर्णन है।

वह अपने को और प्रेमी को जानना चाहती है। पहले असफल होती है—

किसी नक्षत्र-लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात
ढुलक जो पडी ओस की बूँद—
तरल मोती-सा ले मृदु गात ;
नाम से, जीवन से अनजान
कहो, क्या परिचय दे नादान !

इसी भाँति—

वक्ष पर जिसके जल-उडुगण
बुझा देते असंख्य जीवन,
उसी नभ-सा क्या वह अविकार—
और परिवर्तन का आधार ?
पुलक से उठ जिसमें सुकुमार
लीन होते असंख्य संसार !

जब उसे सत्य का ज्ञान होता है, तब मै और तुम का विभेद मिट जाता है—

क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद प्राण
तुम्हीं मे सृष्टि, तुम्हीं मे नाश !

और—

तुम असीम विस्तार ज्योति के,
मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखा रूप-हीनता
है जिसमें साकार।

मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता देख उससे उसकी सार्थकता मे भ्रम होता है। वह पूछती है—

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों की कंपन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्न लोक की परियाँ इसमें
भूल गईं मुस्कान !
सिकता में अंकित रेखा-सा,
वात-विकंपित दीप-शिखा-सा,
काल-कपोलों पर आँसू-सा
ढुल जाता हो म्लान !

धीरे-धीरे उसे मृत्यु के रहस्य का ज्ञान होता है। मृत्यु का अर्थ है विकास।

विश्व-जीवन के उपसंहार !
तू जीवन मे छिपा वेणु में ज्यों ज्वाला का वास,
तुझमें मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास,
पतझड़ बन जग में कर जाता
नव - वसंत संचार !
कलियों में सुरभित कर अपने मृदु आँसू अवदात,
तेरे मिलन पंथ मे गिन-गिन पग रखती है रात,
नव-छबि पाते ही जाती मिट
तुझमें एकाकार !

इतना ही नही—

तुझ बिन हो जाता जीवन का सारा काव्य असार !

मृत्यु ही जीवन के काव्य को स्पंदित करती है। रश्मि की कई कविताओं मे श्रीमहादेवीजी वर्मा ने अपने दुःखवाद की सार्थकता सिद्ध करने के लिये कई तर्क दिए है। सुख की पहली खराबी तो यह है कि वह दुखियो की ओर देखता नही—

गर्वित कहता—'मै मधु हूँ,
मुझसे क्या पतझर से नाता ?'

किंतु दुःख इस संसार मे अपनी-अपनी एकता को लिए अलग-अलग विचरनेवाले मनुष्यों के लिये एक 'सूत्र सबके बंधन का' बन जाता है। रश्मि की 'अपनी बात' मे उन्होंने लिखा भी है—'मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परंतु दुःख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना मे अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र मे मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।' पर चाहे सुख के रास्ते से चलो, चाहे दुःख के, सीमा पर न दुःख रह जाता है, न सुख। दुख-सुख की उपयोगिता मार्ग मे ही है। विरोधी भावनाओ की सीमाएँ एक ही स्थान पर मिलती है। जहाँ—

अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास

वहाँ—

है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख बन जाना !

महादेवीजी की महत्ता यह है कि उन्होंने मानव-हृदय की अस्पृश्य और सूक्ष्म भावनाओं को, उसके अस्थिर, मोहक सौंदर्य-स्वप्नों को

अपनी कविता में चित्रित किया है। भावों को चित्र का रूप देने में वह अत्यंत कुशल है। विस्मृति को कैसा साकार किया है—

> जहाँ है निद्रा मग्न वसंत,
>
> तुम्हीं हो वह सूखा उद्यान;
>
> तुम्हीं हो नीरवता का राज्य,
>
> जहाँ खोया प्राणों ने गान!

उनकी कविता में रंगों का बाहुल्य है, किंतु चित्रों में हलका रंग ही फेरा गया है—

> कनक-से दिन, मोती-सी रात,
>
> सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात;

और—अवनि-अंबर की रुपहली सीप में

> तरल मोती-सा जलधि जब काँपता,
>
> तैरते घन मृदुल हिम के पुंज-से—
>
> ज्योत्स्ना के रजत-पारावार में।

इस सौंदर्य को आप पकड़ नहीं सकते। वह इस संसार की वस्तु नहीं।

> बरसते थे मोती अवदात—
>
> जहाँ तारक-लोकों से टूट,
>
> जहाँ छिप जाते थे मधुमास—
>
> निशा के अभिसारों को लूट।

ऐसे संसार का अस्तित्व हमारी कल्पना में ही है।

कीट्स के अनुसार—

> Ever let the fancy roam,
>
> Pleasure never is at home
>
> At a touch sweet pleasure melteth,
>
> Like to bubbles when rain pelteth,

(सदा कल्पना को उड़ने दो, सुख कभी घर में नहीं रहता। एक स्पर्श से ही मीठा सुख घुल जाता है, जैसे बुल्ले, जब पानी गिरता है)।

हिंदी-कविता के वर्तमान युग में जिन लोगों ने कल्पना को मुक्त करने के लिये अपने कवि-हृदय के द्वार खोले हैं, उन्हीं की श्रेणी में श्रीमहादेवीजी वर्मा का भी स्थान है।

भक्त और भगवान्

[श्रीप० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला']

(१)

भक्त साधारण पिता का पुत्र था। सारा सांसारिक ताप पिता के पेड़ पर था, उस पर छाँह। इसी तरह दिन पार हो रहे थे। उसी छाँह के छिद्रों द्वारा रश्मियों के रंग, हवा में फूलों की रेणु-मिश्रित गंध, जगह-जगह ज्योतिर्मयी जल में नहाई भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखता रहता था। स्वभावतः जगत् के करण कारण भगवान् पर उसकी भावना बँध गई।

पिता राजा के यहाँ साधारण नौकर थे। उसे इसका ज्ञान रहने पर भी न था। लिखने के अनुसार उसकी उम्र का उल्लेख हो जाता है। इस समय एक घटना हुई। गाँव के किनारे, कुएँ पर, एक युवती पानी भर रही थी। पकरिए के पेड़ के नीचे एक बाबा तन्मय गा रहे थे—"कौन पुरुष की नार झमाझम पानी भरे ?" युवती घड़ा खींचती दाहनी ओर के दाँतों से घूँघट का छोर पकड़े, बाएँ झुकी, आँखों में मुस्किरा रही थी। तरुण भक्त की ओर मुँह था, बाबाजी की ओर दाहने अंगों से पर्दा।

भक्त का विद्यार्थी-जीवन था। उसने पढ़ा। विस्मित हो गया। देवी को मन में प्रणाम कर आगे बढ़ा। गाँव की गली में साधारण किसानों की भजन-मंडली जमी थी। खँझड़ी पर लोग समस्वर से गा रहे थे—

"कहत कोउ परदेसी की बात—
कहत कोउ परदेसी की बात।
वइ तरु-लता, वई द्रुम-खंजन,
वइ करील, वइ पात;
जब ते बिछुरे स्याम साँवरे,
ना कोउ आवत - जात!"

तरुण युवक खड़ा हो गया। अच्छा लगा। एक पेड़ की जड़ पर बैठकर एकचित्त सुनता रहा। कितने भाव प्राणों में जगकर उथल-पुथल मचाने लगे—"यह परदेशी की बात कौन कहता है ? क्या कहता है ? तरु-लता-द्रुम-खंजन-करील आदि वही सब अब भी हैं, पर श्याम बिछुड़ गए हैं, इसीलिये क्या वह सब सूना हो रहा है ? वहाँ कोई नहीं आता-जाता ?—यह परदेशी की कैसी बात है ?" कितने तत्त्व, कितने विचार बह गए। वह सुनता रहा - अज्ञात भी कितना कह गए। फिर सब भूल गया। एक होश रहा—यह परदेशी कौन है—क्या कहा—यह साँवरे श्याम कैसे बिछुड़े ?—फिर भी परदेशी की बात कहने में इनका अस्तित्व है!

चुपचाप उठकर वह चला गया। गाँव से बाहर एकांत में, एक रास्ते के किनारे, चढ़ी मालती के बड़े पीपल के नीचे बँधे पक्के चबूतरे पर, महावीरजी की सुंदर मूर्ति स्थापित थी, वहीं जाकर बैठ गया। विशद विचार का नशा था ही। लड़ी आप फैल चली। तुलसीदास की याद आई। महावीरजी, तुलसीदासजी और श्रीरामायण से हिंदी-भाषी पठित हिंदू-मात्र का जीवन संबंध है। मन सोचने लगा। तुलसीदास की सिद्धि के कारण महावीरजी हैं। सामने सिंदूर की सजी सुंदर मूर्ति पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। देखकर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। अर्थ कुछ नहीं समझा। पर उस पत्थर की मूर्ति पर प्राण मुग्ध हो गए। यह एक संस्कार था—एक मूर्ख संस्कार, जिसे ब्रह्म-भाव के लोग आज कुसंस्कार कहते हैं, बृहत्तर भारत के निर्माण के लिये प्रयत्नपर हैं।

'खमी माल मूरति मुसकानी' वह नहीं समझा, पर खसो मालवाली—बिना माला की मूर्ति मुस्किराई। उसने केवल देखा—सामने एक क़लमी पुराने माला गूँथकर महावीरजी को पहनाए। सामने केले लगे थे। एक पत्ता बीच से तोड़कर पैनी लकड़ी से काट लिया, और पेड़ पर चढ़कर, उसी के

आम के पेड़ पर नई जंगली बेले की लता पूरी फूली हवा में हिल रही थी। तरुण भक्त की इच्छा हुई, बनाए दोने में फूल तोड़-तोड़कर रखने लगा। फिर गुर्च-जैसी एक लता की पतली लड़ी तोड़कर,

उसी चबूतरे पर बैठकर माला गूँथने लगा। पूरी होने पर महावीरजी को पहनाकर देखा। कोई हँस दिया—वह नहीं समझा। प्रणाम कर चला गया।

वह विवाहित था। घर आया। सिंदूर का सुहाग धारण किए नवीन पत्नी खड़ी थी, आँखों में राज्य-श्री उतरकर अभिनंदन कर रही थी—वह मुस्किराई; पर वह फिर भी नहीं समझा।

(२)

भक्त की ऋतुएँ बहुत धीरे-धीरे वेश बदलती हुई चलती हैं। पर इतनी सुंदर हैं, इतनी कोमल और इतनी मनोरम कि वहाँ प्रखरता का कोई भी निर्झर-स्वर नहीं, जो शैलोच्च प्रकृति से उतरता हुआ हरहराता हो, वहाँ केवल मर्मरोज्ज्वल तरंगभंग है।

भक्त का नाम निरंजन था। संपत्ति के संबंध में भी वह निरंजन था। केवल भक्ति थी। भक्ति बुद्धि नहीं, पर पूजा चाहती है। पूजा के लिये सामग्री एकत्र करने की विधि वह नहीं बताती, विधि आप विधान देती है।

भक्त ने देखा, राजा का सरोवर सरोरुहों से पूर्ण है। नील जल-राशि पर हरे पत्र, उनके बीच वृंत उठे, उन पर डोलते हुए कमल, उन पर काँपती हुई किरणें। भक्त ने देखा—ये श्वेत-कमल श्वेत होकर भी कैसी अंजलि बाँधे हुए हैं! इच्छा हुई, इन्हें महावीरजी पर चढ़ावें। लाँग मारकर पानी में कूद पड़ा। जल 'छल-छल' कहता, छलकता हुआ, तरंगों से वर्तित हो चला। वह तैरने लगा। नाल और नालों के काँटे रोकने लगे—लिपटकर, छिदकर, खँरोचते रहे; पर उसे केवल महावीरजी, पूजा और कमलों का ध्यान था—तैरता तोड़ता, तट-जल पर फेंकता रहा। फिर निकलकर उठा लिए। चबूतरे पर जाकर भक्ति-भाव से सजाने लगा। मूर्ति वीर-मूर्ति न थी। हाथ जोड़े हुए थी। दोनो बग़लों में, कंधों के बीच कानों के नीचे, पैरों से लेकर ऊपर तक मूर्ति को श्वेत-कमलों से सुवासित कर दिया। सिर के लिये एक सनाल कमल की गुड़री बनाई। पहनाने लगा, आगे भार अधिक होने के कारण अर्द्ध-विकच कमल गिरने लगा—सँभालकर, दबाकर पहना दिया। देर तक तृप्ति की दृष्टि से देखता रहा, जैसे कमल उसी के हों, इस सारी शोभा पर उसी की दृष्टि का पूरा अधिकार है।

घर आकर बड़ी प्रसन्नता से रात के भोजन के बाद सोया। मस्तिष्क स्निग्ध था। बात-की-बात में नींद आ गई। रात पिछले पहर की थी। स्वप्न देखने लगा। इसे आजकल के लोग संस्कार कहेंगे। पर इसकी पूरी व्याख्या करते नहीं पड़ा गया। देखा, महावीरजी की वही भक्त-मूर्ति सामने मुस्किराती हुई खड़ी है। कह रही है—"बंधु, तुमने अपनी पूजा का स्वार्थ देखा, पर मेरे लिये कुछ भी विचार नहीं किया। कमल-नाल की गुड़री इतने ज़ोर से तुमने दबाई कि उसके काँटे मेरे सर मे छिद गए है, दर्द हो रहा है।" भक्त वज्रांग की वाणी सुनकर चकित था, साथ आनंद मे मस्त वज्रांग इतने कोमल हैं!

वह मूर्ति धीरे-धीरे अदृश्य हो चली। साथ भक्त की पत्नी अँधेरे के प्रकाश में उठती हुई सामने आई। सिर पर सिंदूर चमक रहा था। महावीरजी अदृश्य होते हुए वाणी में बदल गए—"इनके मस्तक पर क्या है!" भक्त को ताज्जुब में देखकर पत्नी बोली—"प्रिय, महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ।" स्वप्न में भक्त ने पूछा—"मै नहीं समझा—अर्थ क्या है?" बड़ी रहस्यमयी मुस्कान आँखों में दिखाई दी। "उठो", पत्नी ने कहा, "अर्थ सब मैं हूँ—मुझे समझो।" भक्त की आँखें खुल गईं। जगकर देखा, पत्नी घोर निद्रा में सो रही है। उसका दाहना हाथ उसके हृदय पर रक्खा है, जैसे उसके हृदय के यंत्र को स्वप्न के स्वरों मे उसी ने बजाया हो। खिड़की से ऊषा की अंधकार पार करने-

वाली तैरती छवि, दूरागत मधुर ध्वनि की तरह, अस्पष्ट भी स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। भक्त ने उठकर बाहर जाना चाहा। धीरे से, हृदय से प्रिया का हाथ उठाकर चूमा; फिर सघन जाँघ पर सहारे मे प्रलंब कर एक बार मॅह देखा—खुले, प्रसन्न, दिव्य भाल पर, अंधकार बालो को चीरनेवाली माँग मे वैसा ही शोभन सिंदूर दीपक-प्रकाश में जाग्रत् था। कमल-आँखें मुँदी हुई। कपाल, भौंह, गाल, नाक, चिबुक आदि के कितने सुंदर कमल सोहाग-सिंदूर पर चढ़े हुए हैं! देखकर, चुपचाप उठकर बाहर चला गया।

(३)

भक्त की भावना बढ़ चली। प्राणो मे प्रेम पैदा हो गया। यह बहुत दूर का आया प्रेम है, यह वह न जानता था। क्योंकि वह जाग्रत् लोक मे ज्यादा बँधा था। उसकी मुक्ति जाग्रत् की मुक्ति थी। खाने-पीने, रहने-सहने की मामूली बातो से निवृत्त हो, इतना ही समझता था। स्वप्न के बाद तमाम दिन एक प्रसन्नता का प्रवाह बहा—पहलेपहल जवानी मे ब्याह होने पर जैसा होता है।

आज फिर अच्छी पूजा की इच्छा हुई। सरोवर के किनारे से, दूसरों की आँख बचाकर, ऊँची चार-दीवार की बग़ल-बगल जाने लगा। बारहदरी के पिछवाड़े, एक दूसरे सरोवर के किनारे, गुलाब-बाग था। दाहने आमों की श्रेणी। बीच से बड़ा रास्ता। राहियों की नजर से ओझल पड़ता था। चुपचाप, केले का एक वैसा ही आधार लिए, बाग़ में पैठा। बसरा, वलायत, फ्रांस आदि देशों के, तरह-तरह के, घन और हल्के लाल, गुलाबी, पीले गुलाब हिल रहे थे, जैसे हाथ जोड़े आकाश की स्तुति कर रहे हों—'खे संभवं शंकरम्'—खे संभवं शंकरम्' मौन वीणा बजा रहे हों, सुगंध की झंकारें दिशाओं को आमोद मुग्ध करती हुई।

क्षण-भर शोभा देखकर गुलाब तोड़ने लगा। ध्यान महावीरजी की ओर बह रहा था। साक्षात् भक्ति जैसे वीर की सेवा में रत हो।

लौटकर आज लाल को लाल करने चला। सिंदूर पर गुलाब की शोभा चढ़ी। सुंदर सब समय सुंदर है। सजाकर देर तक देखता रहा। यही पूजा थी।

घर आया। पत्नी ने नई साड़ी पहनी थी, गुलाबी। देखकर भक्त हँसा। रात का स्वप्न मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगा। पूछा—"तुम मन की बात समझती हो।"

सहज सरलता से पत्नी ने कहा—"तुम जैसा पसंद करते हो, मैं वैसा करती हूँ।"

भक्त की इच्छा हुई, रात की बात कहे, पर किसी ने रोक दिया। सर झुकने लगा—न झुकाया। पत्नी सर झुकाए मुस्किरा रही थी। मस्तक का सिंदूर चमक रहा था। देखकर भक्त चुप हो गया।

उसकी पत्नी का नाम सरस्वती था। पति को चुप देखकर बोली—"मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर तुम्हारी लक्ष्मी बन गई हूँ।" यह छल भक्त को हँसाने के लिये किया था, पर भक्त ने सोचा, यह मुझे समझाना है कि तुम विष्णु हो। वह और गंभीर हो गया। मन मे सोचा, यह सब समझती है।

(४)

कुछ दिनो बाद एक आवर्त आया। भक्त के घरवाले ईश्वर के घर चले गए। धैर्य से उसने यह प्रहार सहा। पहले उसकी पत्नी मरी थी। घर बिलकुल सूना हो गया।

एक दिन पड़ोस की एक भाभी मिलीं। कहने लगी—"भैया, ऐसी देवी तुम्हें दूसरी नहीं मिल सकती, चाहे तुम दुनिया देख डालो। उसने दो साल पहले मुझसे कहा था, दीदी, मै दो साल और हूँ।" भक्त दंग हो रहा—पहले के उसके भी संस्कार उग-उगकर पल्लवित हो चले। वह नहीं समझा कि एक दिन अपनी जन्म-पत्रिका पढ़ने

हुए पत्नी से उसने कहा था कि दो साल बाद दारा और बंधुओं से वियोग होगा, लिखा है; इसे उसकी पत्नी प्रमाण की तरह ग्रहण किए हुए थी, और इसी के आधार पर डीदी से भविष्य-वाणी की थी।

पत्नी की समझ को उसी के सिंदूर की तरह सिर पर धारण कर वह महावीरजी की सेवा में लीन हुआ। अब रामायण भी उन्हें पढ़कर सुनाया करता था। रामायण के ऊँचे गूढ़ अर्थ अभी मस्तिष्क में विकास-प्राप्ति नहीं कर सके। पत्नी के बाद पिता तथा अन्य बंधुओं का भी वियोग हुआ था। राजा ने दया करके एक साधारण नौकरी उसे दी।

उन्हीं दिनों श्रीपरमहंसदेव के शिष्य स्वामी प्रेमानंदजी को राजा के दीवान अपने यहाँ ले गए। राजा की परमहंसदेव के शिष्यों पर विशेष श्रद्धा न थी। वह समझते थे, साधु-महात्मा वह है ही नहीं, जिसके तीन हाथ की जटा, चिमटा न हो, चिलम भी होनी चाहिए, और धूनी। तभी राजा भक्ति-पूर्वक गाँजा देने को राज़ी होते थे। परंतु राजा के पढ़े-लिखे नौकर पुराने महात्माओं को जैसा घोंघा समझते थे, राजा को उससे बढ़कर खाजा।

स्वामी प्रेमानंदजी का बड़े समारोह से स्वागत हुआ। भक्त भी था। दीवान साहब भक्त की दीनता से बड़े प्रसन्न थे। भक्त ने स्वामीजी की माला तथा परमहंसदेव की पूजा के लिये ख़ूब फूल चुने। स्वामीजी मालाओं में भर गए। हँसकर बोले—"तोरा आमाके काली करे दिली।" (तुम लोगों ने मुझे काली बना दिया।)

भक्त नहीं समझा कि उस दिन उसके सभी धर्मों का वहाँ समाहार हो गया—ब्रह्मचारी महावीर, उनके राम, देवी और समस्त देव-दर्शन इन जीवित संन्यासी में समाकृत हो गए।

बड़ी भक्ति से परमहंसदेव का पूजन हुआ। दीवान साहब कबीर साहब का बँगला-अनुवाद स्वामीजी को सुना रहे थे, राज्य के अच्छे-अच्छे कई अफ़सर एकत्र थे, भक्त तुलसी-कृत रामायण सुनाने को ले गया, और स्वामीजी की आज्ञा पा पढ़ने लगा। स्थल वह था, जहाँ सुतीक्ष्ण रामजी से मिले हैं, फिर अपने गुरु के पास उन्हें ले गए हैं। स्वामीजी ध्यान मग्न बैठे सुनते रहे। "श्याम-तामरस - दाम - शरीरम्, जटा-मुकुट-परिधन - मुनि-चीरम्।" आदि साहित्य-महारथ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की शब्द स्वर गंगा बह रही थी, लोग तन्मय मज्जित थे। स्वामीजी के भाव का पता न था। भक्त कुछ थक गया था। पूर्ण विरामवाला दोहा आया, स्वामीजी ने बंद कर देने के लिये कहा।

फिर तरह-तरह के धार्मिक उपदेश होने लगे। स्वामीजी ने दीवान साहब से हर एकादशी महावीर-पूजन और राम नाम-संकीर्तन करने के लिये कहा।

(५)

भक्त को नौकरी नहीं अच्छी लगती थी। मन पूजा के सौंदर्य-निरीक्षण की ओर रहता था। तहसील-वसूल, जमा ख़र्च, ख़त-किताबत, अदालत-मुक़द्दमा आदि राज्य के कार्य प्रतिक्षण सर्प-दंशवत् तीक्ष्ण ज्वालामय हो रहे थे, हर चोट महावीरजी की याद दिलाने लगी। मन में घृणा भी हो गई, राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है! प्रजा का रक्त-शोषण ही उसका धर्म है!

उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय कर लिया। उस रोज़ शाम को महावीरजी को प्रणाम करके चिंता-युक्त घर लौटा। घर में दूसरा कोई न था, भोजन स्वयं पकाता था। खा-पीकर सोचता हुआ सो रहा।

समय समझकर महावीरजी फिर आए। उसने आज महावीरजी की वीर-मूर्ति देखी। मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा; पर यह भारत न था—साक्षात् महावीर थे, पंजाब की ओर मुँह, दाहने हाथ में गदा—मौन शब्द-शास्त्र, बंगाल की तरफ़ से गए बाएँ पर हिमालय-पर्वत-श्रेणी, बंगाल के नीचे बंगोपसागर बना हुआ, एक

घुटना वीर-वेश का सूचक—टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलंब—अँगूठा कुमारी-अंतरीप, नीचे राक्षस-रूप लंका-कमल- समुद्र पर खिला हुआ।

ध्वनि हुई—"वत्स, यह वीर-रूप समझो।" इसके बाद स्वामी प्रेमानंदजी की प्रशांत मूर्ति ऊषा के अरुण प्रकाश की तरह भक्त के उच्च मन के आकाश मे भी ऊँचे उगी। ध्वनि हुई—"वत्स, यह सूक्ष्म भारत है, इससे नीचे नही उतर सकते; इनका प्रसार समझ के पार है।" एक बार सूर्य दिखाई दिया, फिर अगणित तारे, प्रकाश मंद से मंदतर होता विलीन हो गया।

फिर उसके पूजित महावीरजी की वही वीर-मूर्ति आई, हाथ जोडे हुए। उसी मुख से निर्गत हुआ—"मै इसी तत्त्व को हाथ जोडे हुए हूँ—यही मेरे राम हैं; तुम इसी तरह रहो। किसी कार्य को छोटा न समझो, न किसी की निंदा करो।"

अंधकार जल पर एक कमल निकला, हाथ जोड़े हुए, बोला—"मै राजा का था, तुमने मुझे क्यों तोडा?" फिर गुलाब खिलकर कहने लगे—"मुझे छूने का तुम्हें क्या अधिकार था?" हाथ जोडे हुए महावीरजी बोले—"वत्स, यहाँ कौन सी चीज़ राजा की नहीं है--यह मूर्ति किसकी ख़रीदी है? कौन पुजवाता है?"

स्वप्न मे आतुर होकर भक्त ने कहा—"ये ग़रीब मरे जा रहे हैं—इनके लिये क्या होगा?"

"ये मर नहीं सकते, इनके लिये वही है, जो वहाँ के राजा के लिये है, इन्हे वही उभारेगा, जो वहाँ के राजा को उभारता है, तुम अपने मे रहो। दूर मत आओ।"

मन धीरे-धीरे उतरने लगा। देखा, आकाश की नीली लता में सूर्य, चंद्र और ताराओं के फूल हाथ जोडे खिले हुए एक अज्ञात शक्ति की समीर से हिल रहे है, पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल हाथ जोडे आकाश को नमस्कार कर रहे हैं—आशीर्वाद की शुभ्र हिम-धारा उन पर प्रवाहित है, समुद्रों की फैली लता में आवर्तों के फूल खुले हुए अज्ञात किसी पर चढ़ रहे है; डाल-डाल की बाँह अज्ञात की ओर पुष्प बढ़ाए हुए है। तृण-तृण पूजा के रूप और रूपक है। इसके बाद उन्हीं-उन्हीं पुष्पों के पूजा-भावों मे छंद और ताल प्रतीयमान होने लगे—सब जैसे आरती करते, हिलते, मौन भाषा में भावना स्पष्ट करते हों, सबसे गंध निर्गत हो रही है, सत्य की समीर वहन कर रही है, पुष्प-पुष्प पर अज्ञात कहाँ से आशीर्वाद की किरणें पड रही हैं, इसके बाद उसकी स्वर्गीया प्रिया वैसे ही सुहाग का सिंदूर लगाए हुए सामने आई।

"वत्स, यह मेरी माता देवी अंजना हैं। इनके मस्तक पर देखो," उसी भक्त मूर्ति की ध्वनि आई।

मस्तक पर वीर-पूजा का वही सिंदूर शोभित था। मुस्किराकर देवी सरस्वती ने कहा—"अच्छे हो?"

आँख खुल गई, कहीं कुछ न था।

सरिता

[पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

दृग कौन विमुग्ध न होगा
अवलोकनीय छवि द्वारा ?
है सदा लुभाती रहती
सरिता की सुंदर धारा ॥ १ ॥

ऊषा की जब आती है
रंजित करने की बारी,
किसके तन पर लसती है
तब लाल रंग की सारी ? २ ॥

है मिला किसे रवि - कर से
सुरपुर का ओप निराला ?
किरणें किसको देती हैं
मंजुल मणियों की माला ? ३ ॥

सर्गी प्रभात के किसको
है प्रभा - रंग मे रँगते ?
किसकी रंजित साड़ी मे
है तार सुनहले लगते ? ४ ॥

भरकर प्रकाश किसको है
दर्पण - सा दिव्य बनाता ?
दिन किसकी लहर - लहर में
दिनमणि को है दमकाता ? ५ ॥

चाँदनी चाहकर किसको
है रजतमयी कर पाती ?
किस पर मयंक की ममता
है मंजु सुधा बरसाती ? ६ ॥

जगमग - जगमग करती है
किसमें ज्योतिर्मय काया ?
है किसे बनाती छविमय
तारक - समेत नभ - छाया ? ७ ॥

जब जलद - विलंबित नभ मे
पुरहूत - चाप छवि पाता,
तब रंग - बिरंगे कपड़े
पावस है किसे पिन्हाता ? ८ ॥

पावस मे श्यामल बादल
जब नभ में है घिर आते,
तब रुचिर अंक में किसके
घन रुचि तन है मिल जाते ? ९ ॥

है किसे कांत कर देते
बन - बन अंतस्तल - मंडन —
रवि अंतिम कर से मंडित
सित, पीत, लाल, श्यामल घन ? १० ॥

जब मंजुलतम किरणों से
घन विलसित है बन जाता,
तब किसे वसन बहु सुंदर
है साध्य गगन पहनाता ? ११ ॥

जब रीझ - रीझ सितता की
है सिता बलाएँ लेती,
तब किसे रंजिनी आभा
राका - रजनी है देती ? १२ ॥
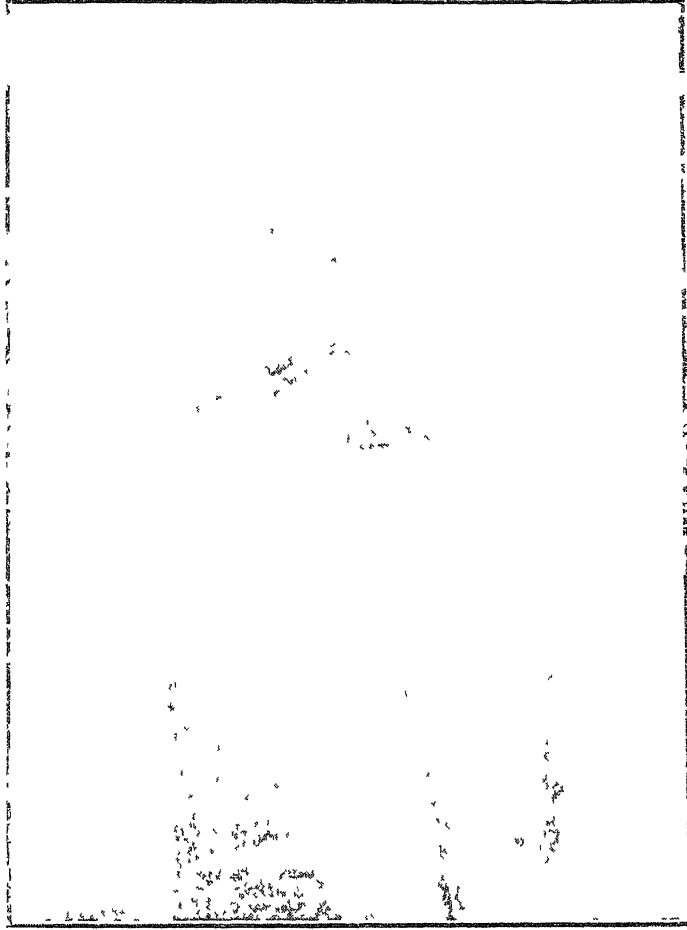
अवध के गण्य-मान्य नरेश, क्षत्रिय-कुल-भूषण

श्रीमान् राजा युवराजदत्तसिंहजी ओयल व कैमहरा-नरेश

[आप बड़े हिंदी-प्रेमी और देश-भक्त नरेश हैं । आपने अपने राज्य का सारा कार्य हिंदी ही में कर दिया है ।]

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

स्वर्गीय राजा अवधेशसिंहजी (कालाकाँकर-नरेश)

[आपका स्वर्गवास अभी हाल ही मे हुआ है। आप सुप्रसिद्ध हिंदी-प्रेमी, राष्ट्र-नेता, समाज-सुधारक और अवध के नवयुवक-ताल्लुक़दारो के लिये पथ-प्रदर्शक थे। पिछले किसी अंक मे हम आपकी जीवनी लिख चुके हैं।]

लंडी-द्वीप

[प्रोफ़ेसर मुरलीमनोहर गुप्तारा एम्० ए० (प्रयाग), बी० ए० ऑनर्स (ऑक्सन)]

ब्रिस्टल चैनेल (खाड़ी) के द्वार पर, इँगलैंड और वेल्स से लगभग समवर्ती, यह प्रहरी द्वीप विलायत के समीपतम भागो से क्रमशः १२, २० और २४ मील की दूरी पर है। आधुनिक काल मे—जब कि समस्त पाश्चात्य ससार मनबहलाव नाम के देवता का अनन्य उपासक हो रहा है, और 'छुट्टियाँ' वर्ष-भर की महत्तम घटना समझी जाती है—शांति और निर्जनता की खोज अधिकाधिक कठिन होती जाती है। यात्री को सदा सर्वत्र छुट्टी मनानेवालो की भीड दिखाई देती है। दूर-से-दूर, निभृत-से-निभृत, दुष्प्राप्य-से-दुष्प्राप्य स्थानो से भी निस्तब्धता का साम्राज्य छिनता जाता है, और प्रकृति की स्वाभाविक छवि के दर्शन दुर्लभ होते जाते है।

पश्चिम मे इस छुट्टी-व्यसन का (निजी मोटर यदि न हुआ, तो) सर्वजन-प्रिय साधन है 'शैराबांक' (साधारण बोलचाल मे केवल 'शैरा'), अर्थात् किराए पर दौड़नेवाली बड़ी आरामदेह रग-बिरंगी मोटर-'कोचें', जिनकी कृपा से विलायत की मनोमोहक देहात-छवि का शायद ही कोई हिस्सा छूटा हो। पर वरुणदेव की अनुग्रह से कम-से-कम मोटर और शैराबांक तो लंडी-द्वीप से सदा को बहिष्कृत कर दिए गए है।

लंडी-द्वीप एक निराला-सा अनुपम देश है, जहाँ, इन जन-सत्तात्मक दिनो मे भी, एक आदमी का अनियत्रित शासन चलता है। जहाँ मोटर

[प्रोफ़ेसर मुरलीमनोहर गुप्तारा]

नहीं, टैक्स नहीं, चुंगी नहीं, पुलिसमैन नहीं, वकील-बैरिस्टर नहीं, कचहरी नहीं, दलाल नहीं, बाइसिकले नहीं, और सबसे बडी बात जहाँ इस तगहाली के युग मे भी बेकारी का नाम नहीं!

पूर्व ऐतिहासिक काल के स्मारकों, समुद्री लुटेरो, डाकू-सरदारो आदि की कहानियाँ और जल-पथो द्वारा आए माल पर सरकारी जल-चुंगी का महसूल बचानेवाले 'स्मग्लर्स' के कार्य कलाप की जनश्रुतियाँ आज भी उस देश मे ठीक ही जँचती है, जहाँ सन् १९३३ ई० मे कोई सिनेमा, थिएटर या नाच-गृह नहीं था।

पहली जून से सितंबर के अंत तक लडी के इल्फ्रैकूंब-नामक सुंदर डेवन-प्रांतीय बंदरगाह से (तथा और भी बंदरगाहो से, यद्यपि कम) सप्ताह में नियमित ढंग से दो बार स्टीमर का आवागमन होता है। लडी जाते-जाते स्टीमर को लगभग दो घंटे लग जाते है। साधारणतः समुद्र स्वागत मे सदा हिचकिचाहट दिखाता है, और कभी-कभी तो उसके विकट मिज़ाज से डरकर किसी भी जहाज़ की हिम्मत उसके पास जाने की नही होती। राह मे उत्तरी डेवन-जल-तट का अद्भुत, हृदयहारी दृश्य दिखाई देता है।

लंडी-द्वीप ग्रेनिट नाम के कठोर पत्थर की एक बड़ी शिला है, जिसका जन्म संभवतः ज्वालामुखी पर्वतों के किसी अति-प्राचीन काल के निर्यात से हुआ है। समुद्र से लगभग ५०० फ़ीट ऊँची सीधी चढाई की चट्टानें-ही-चट्टानें चारो ओर है। द्वीप की अधिकतम लंबाई ३॥ मील और अधिकतम चौड़ाई लगभग आध मील है; संपूर्ण वर्गफल कोई १०५० एकड़ कहा जाता है। लंडी के वर्तमान स्वामी मिस्टर हारमैन नाम के एक धनाढ्य व्यापारी है, जिन्होने इसे २०,००० पौंड में ख़रीदा था। दिलचस्पी की बात है कि सन् १२६४ ई० में एक पंचायत ने समस्त द्वीप का मूल्य ११ पौ० ३ शि० २ पें० आँका था।

इस देश की समूची जन-सख्या—मि० हारमैन की राजभक्त प्रजा—के लिये मदु मशुमारीवालो को अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ता। सारी आबादी कुल २५ है, जिसमे २ बच्चे भी शामिल है। यहाँ की जल-वायु सम-शीतल-सुखद है, और दृश्यमाला कहीं हृदयग्राही तो कहीं बड़े-से-बड़े जीवटवाले को भी सहमा देनेवाली है। प्रकृतिदेवी के विराट् दिगबर रूप के उपासको को यहाँ की यात्रा अवश्य करनी चाहिए। इस द्वीप में, जाड़े मे भी, बर्फ और पाला बहुत ही विरले वर्षों में होता है। वृक्ष तो कम है, पर सुंदर वन्य पुष्पो की बहुतायत है। झरने प्रचुर मात्रा मे ताज़ा, मीठा पानी प्रदान करते है।

द्वीप का बहुत छोटा-सा भाग ही कृषि-भूमि है, पर लगभग एक चौथाई चरागाह के काम मे आता है। भूतकाल के एक स्वामी ने लडी मे हिरन पहुँचाए थे, पर अपने छोटे-से फेरे में मुझे तो कोई दृष्टिगोचर हुए नहीं। अब तो बैल और मेड़े यहाँ सफलता-पूर्वक पैदा की जा रही है, साथ ही बकरियाँ और घोडे-घोड़ियाँ भी। यहाँ विशेषकर पक्षियों और जल-पक्षियो का आधिक्य है। अगणित भाँति के पक्षी इन निर्जन तटों पर अपनी नीड़े बनाते और अपने बच्चों की रक्षा एवं पालन-पोषण करते है। यहाँ की कई पक्षी-जातियाँ बहुत बिरली होने के कारण उनके प्रजनन-काल में वहाँ चौकीदार

रक्खे जाते है। 'सील'-नामक जल-जतु अक्सर द्वीप के समीप दिखाई दे जाते है, और 'सील्स् होल' नाम्नी समुद्र-तट की गुफा मे सहवास और प्रजनन करते है।

द्वीप के उच्चतम शिखर पर एक पुराना परित्यक्त प्रकाश-गृह है, पर आजकल दोनो सिरो पर के प्रकाश-गृह राह-चलते जहाजो के निमित्त पथ-निर्देश के लिये काम मे लाए जाते है। रात को क्षण-क्षण विराट् विद्युत्-नेत्र निमिष मारते है, और कुहरा होने पर दिन मे एक दुःख-भरा कराहने का-सा शब्द मिनट-मिनट बाद किया जाता है।

कारण यह कि लडी समुद्र से क्षत-विक्षत तट बड़ा चट्टानी और विकट आपद्-स्थल है। और, हजारो छोटे-बड़े जहाज—अनुमान से ग्रेट-ब्रिटेन के सारे जहाज-ट्रैफिक की पॉचवी सख्या—इस द्वीप के निकट होकर गुजरते है। तूफान मे लंडी-मल्लाहो को स्वागत अवश्य बहुत प्रिय लगता होगा, जैसा एक स्थानीय पुरानी तुकबंदी कहती है—

"दिन हो या रात,
पैडस्टो बंदर से लंडी
है जानजोखों की बात।"

और, बुरे मौसम मे कभी-कभी एक साथ ही १०० जहाज तक लडी के पास लगर डाले पडे रहते है। द्वीप के दक्षिण-पश्चिम की ओर 'शैतान की चूने की भट्ठी' नाम्नी एक ३७५ फीट गहरी बोतल के आकार की गुफा है, जिसके पास 'शटर रॉक' है। इस विशाल शिला-खड का वर्णन प्रसिद्ध अँगरेजी-लेखक किंग्स्ले ने अपने सुविख्यात उपन्यास 'वेस्टवर्ड हो!' में किया है। इसी चट्टान पर, सन् १९०६ ई० में, 'मॉन्टेग्' नाम का प्रथम श्रेणी का समरी जहाज एक कुहरे मे टकराकर डूब गया था, जिससे अँगरेजो को लगभग पौने तीन करोड़ रुपए का घाटा हुआ।

पूर्व की ओर 'टेपलर रॉक' नाम की एक शिला है, जिसमे मानवीय चेहरे से बड़ा सादृश्य पाया जाता है। टेम्स-नदी के 'एमबैंकमेंट' (विशाल सुदृढ़ बॉध) तथा अन्य इमारतो के लिये लंडी से ग्रैनिट नाम का पत्थर खोदकर ले जाया गया था।

लंडी का नाम स्कैंडिनेवियन भाषा के दो शब्दों से बना है—'लड' (Lund)='पफिन'-नामक एक जल-पक्षी और 'ई' (ey)=द्वीप। इतिहास मे इसका सर्वप्रथम वर्णन बादशाह 'जॉन' के शासन-काल मे, सन् ११९९ ई० में, मिलता है। प्राचीन काल में लंडी समुद्री डाकुओं का एक बहुत प्रिय अड्डा था। विशेषकर १६३५ मे अल्जीरिया देश के समुद्री डाकुओ ने यहॉ एक पड़ाव डाल रक्खा था। हेनरी तृतीय के राजत्व-काल (१२१६-१२७२) मे विलियम डी मैरिस्को-नामक एक अमीर का यह निवास-स्थान था। उसने यहॉ एक छोटा-सा किला बनाया, जिसके ध्वसावशेष चिह्न आज भी पाए जाते है। उसने बादशाह के, जो उसका निकट संबंधी था, विरुद्ध कई बार षड्यंत्र किए, और कई लूट-मार के छापे मारे, पर अंत मे बदी कर मार डाला

गया। सबसे पहले सन् १८९७ मे यहाँ एक गिरजा बनाया गया, और आजकल प्रति रविवार को यहाँ इँगलैंड से एक पादरी धर्मोपदेश के लिये आता है। यहाँ के एक भूतपूर्व स्वामी ने अपना सिक्का चलाने की कोशिश की थी। आज भी द्वीप में स्थानीय सिक्के चलते है, पर अँगरेज सरकार की कृपा से द्वीप के बाहर उनका प्रचलन निरुद्ध और निषिद्ध है।

यहाँ डाक हफ्ते मे एक बार आती है। लँडी को कोई टेलीफोन नहीं कर सकता, पर यहाँ के लोग बाहरी ससार से टेलीफोन कर सकते है। द्वीप में एक भोजन गृह है। पर वहाँ का मुख्य तुहफा है बड़े-बड़े लाल लाल 'लाब्स्टर', जो बड़ी संख्या मे समुद्र मे पकड़े जाते है। शाकाहारी होने के कारण मै उस तुहफे का स्वाद वर्णन न कर सकने की क्षमा चाहता हूँ।

ऐसा है यह विचित्र देश, जहाँ सभ्यता की बीमारी का अभी तक न्यूनतम संपर्क है। क्या कोई आश्चर्य है कि उसकी पहाड़ियो पर चढते मुझे एक अद्भुत स्फूर्ति और देश-प्रेम का अनुभव हुआ, साथ-ही-साथ एक नई वस्तु को ढूँढ निकालने का किंचित् गर्व भी ?

भारतीय संगीत

[श्रीबी० सुब्बाराव एल्० ए-जी० और श्रीरामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०]

भारतीय संगीत का महत्त्व

रत में संगीत-कला का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। विद्वज्जनों के मत से यह कला तीन भागों में विभाजित की जा सकती है—(१) गान, (२) वाद्य और (३) नृत्य। प्रस्तुत लेख में केवल गान और वाद्य पर ही किंचित् विचार किया जायगा। हमारे पूर्वजों की दृष्टि में संगीत-कला कितने आदर की वस्तु थी, इसका अनुमान केवल एक ही बात से किया जा सकता है कि इस विषय में एक विशिष्ट वेद ही बना लिया गया था, जिसे गांधर्व वेद अथवा उपवेद कहते थे। हमारे सप्तस्वर सामवेद के समय के हैं। इससे यह प्रकट है कि जिस ज़माने में भारत की संगीत-कला के सप्तस्वरों की सृष्टि हो चुकी थी, उस ज़माने में योरपीय देशों में संगीत-कला के वैज्ञानिक विकास का आरंभ भी नहीं हुआ था। क्रमशः भारतीय संगीत और भारतीय वाद्य-यंत्रों का प्रचार योरप में हो गया। आज भी स्पेन के मार्ग्यार-संगीत में हिंदोस्तानी संगीत का बहुत कुछ आभास मिलता है। वीणा, वंशी और मृदंग, ये तीन वाद्य-यंत्र क्रमशः तार छेड़कर, फूँककर और थापी देकर बजाए जाते हैं। इन तीनों यंत्रों के आद्य नायक तीन देवता—सरस्वती, कृष्ण और नंदी—हैं। इससे यह भी मालूम होता है कि संगीत पर केवल पुरुष-समुदाय का ही एकांत अधिकार नहीं है।

स्वरमंडल या स्वरगत एक सौ तारोंवाला प्राचीन वाद्य-यंत्र है। आधुनिक पियानो को उसी का अनुकरण समझना चाहिए। यूनानियों का प्रिय बाजा हार्प किसी ज़माने में भारत ने ही तैयार किया था। किंतु भारतीय संगीत के प्राण-स्वरूप गमकों से रहित होने के कारण इन वाद्य-यंत्रों का व्यवहार धीरे-धीरे बंद हो गया। यह सभी जानते हैं कि पुराने ज़माने में भारत ने जन-समाज की ज्ञान-वृद्धि में बहुत सहायता पहुँचाई। और, यह हमारे लिये गौरव का विषय है कि वाद्य-यंत्रों के निर्माण में भी वह संसार का पथ-प्रदर्शक ही रहा है। बहुत-से पश्चिमी बाजे भारतीय बाजों के ही आधार पर बने हैं।

भारत में संगीत तीन दशाओं में रह चुका है—पहली दशा है द्राविड़ी। द्राविड़ी संगीत इस देश की प्राचीनतम श्रेणी का संगीत है। इस श्रेणी में विस्तार को बहुत महत्त्व दिया गया था। यह विस्तार-प्रियता कट्टर करनाटकीय संगीत में आज भी पाई जाती है। उसके बाद आर्य श्रेणी के संगीत का आगमन हुआ, जिसमें रीति की अपेक्षा स्वर को विशेषता दी गई। धीरे-धीरे द्राविड़ी और आर्य-संगीतों का

पारस्परिक सम्मेलन हो गया। इस सम्मिश्रण के फल-स्वरूप जिस संगीत का प्रादुर्भाव हुआ, वर्तमान कर्नाटकीय संगीत उसी का स्वरूप समझा जा सकता है। संगीत का यह स्वरूप किसी समय समस्त भारत मे प्रचलित था। फारस तथा अन्य विदेशी आक्रमणकारी जातियो के आगमन से उत्तर-भारत के संगीत मे तो कई परिवर्तन होते गए, पर दक्षिण-भारत की भौगोलिक परिस्थिति के कारण वहाँ का संगीत सम्मिश्रणो से बचा हुआ उन्नति करता गया। अनेक संस्कृतियो के सम्मिश्रण के कारण उत्तर-भारतीय संगीत मे बहुत गड़बड़ी फैल गई थी। अतएव यहाँ के हिंदू और मुसलमान राजो को भारतीय संगीत पर प्रामाणिक ग्रंथ लिखकर उसकी वास्तविक रूप रेखा निश्चित करने के लिये दक्षिण-भारत से भावभट्ट-सरीखे संगीत-विद्या-विशारद को आमंत्रित करना पड़ा। सच पूछिए, तो भारतीय संगीत तत्त्वतः एक ही है। एक ही आधार-शिला पर उत्तरीय और दक्षिणीय संगीत के प्रासादो का निर्माण हुआ है। दोनो पद्धतियो का ध्येय भी एक ही है। परंतु उत्तर मे संगीत के सूक्ष्मतर अंगो पर मुसलमानी और विशेषतः फारसी कला की जबरदस्त छाप दृष्टिगोचर होती है। हम यहाँ पर यह बतलाना चाहते है कि पश्चिमीय पद्धति का प्रवेश हो जाने के कारण हमारी क्या हानि हुई।

किसी जाति की आत्मा उस जाति की कला और विशेषकर संगीत-विद्या के रूप मे प्रकट होती है। हमारे संगीत-शास्त्र के अनुशीलन से दूसरी जातियाँ हमारे मनोविज्ञान का पता सहज ही लगा सकती है। वास्तव मे हमारा संगीत हमारी एक बहुमूल्य बपौती है, जिसकी शुद्धता की रक्षा हमे ध्यान-पूर्वक करनी चाहिए।

संगीत का प्रभाव

संगीत सब ललित कलाओ मे श्रेष्ठ समझा जाता है। यह हृदय को स्पर्श करता हुआ आत्मा मे झंकार पैदा करता है। संगीत के अनेक आश्चर्य-जनक प्रभाव नित्यप्रति देखने मे आते हैं। माताओ की मधुर लोरियाँ हठी-से-हठी बच्चो को निद्रा की सुखमयी गोद मे बेखबर कर देती है। वीणा, सितार और सरंगी-सरीखे तारोवाले वाद्य-यंत्रो की मृदु झंकारो से अनिद्र रोग के रोगी अच्छे हो जाते है। तूमड़ी बजाकर मोहित सर्पों को पकड़ लिया जाता है। प्रतिदिन भोजन करने के बाद गान-वाद्य का श्रवण वैद्यक-शास्त्र मे स्वास्थ्यवर्द्धक माना गया है। गाने से फेफड़ो, कंठ और उदर का व्यायाम होता है। प्राचीन यूनानियो मे जिम्नास्टिक की शिक्षा के साथ साथ संगीत की शिक्षा भी अनिवार्य थी।

सेनाएँ जुझाऊ बाजो की ताल पर चलकर युद्ध करती थीं। आजकल की पल्टने बैंड की उत्साहोत्पादक ध्वनि पर मार्च करती है। संगीत का मर्मस्पर्शी निनाद योद्धाओ को प्राणो की ममता से छुड़ाकर तुमुल संग्राम मे सन्नद्ध करता है।

संगीत की कुछ ऐसी आश्चर्य-जनक शक्तियो के विषय मे भी कथाएँ प्रचलित है, जिन पर

प्रत्यक्ष प्रमाणाभाव के कारण लोग साधारणतः विश्वास न करेंगे। कहते हैं, दीपक राग गाकर रागी लोग बुझे हुए दीपक जला दिया करते थे, और मेघ-मल्लार रागिनी गाकर इच्छानुसार वृष्टि की जा सकती थी। किंतु आजकल ऐसे रागी देखने-सुनने मे नही आते। संभव है, आगे चलकर—संगीत-कला के उत्तरोत्तर विकसित होने पर—संगीत की उपर्युक्त प्रसुप्त शक्तियाँ भी जाग्रत् हो उठे। सुना जाता है, अभी हाल मे, अहमदनगर के पास किसी योरपीय महिला ने चिकित्सा से कोढ़ियो को अच्छा किया है। विज्ञान के ये नवनवाविष्कार, जिन पर कल हमारा विश्वास न था, आज व्यावहारिक जगत् मे इतने प्रचलित हो गए है कि उन्हे देखकर हमे कुतूहल भी नहीं होता।

पश्चिमीय देशो मे नाद की तरगो की धारा मे कीटाणुओं के कुछ ही मिनटो मे मरने की परीक्षा की गई है। रेडियोफोन की संगीत-लहरी से गायो को रिझाकर उनका दूध दुहा गया है। आशा है, आगे चलकर चिकित्सा-शास्त्र मे नाद-विज्ञान की और अधिक प्रभावशाली शक्तियो का उद्घाटन होगा। हमारे शास्त्रो मे तो नाद-शक्ति के निरंतर अभ्यास से लययोग की प्राप्ति का विधान है। भक्ति-पूर्वक हरि-कीर्तन से समाधि की दशा एव भगवद्दर्शन की प्राप्ति तक का होना भी हमारे धर्मशास्त्र संभव बताते है। भगवान् ने स्वयं नारद से कहा है—

"नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ;
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद !"

(विष्णुपुराण)

भारतीय संगीत के भेद

जिस प्रकार पाश्चात्य संगीत का आधार स्वरैक्य (Harmony) है, उसी प्रकार भारतीय संगीत का आधार स्वर-माधुर्य (Melody) है। जब अनेक संगीतज्ञ एक साथ अनेक स्वरो मे गाते है, तो उस संगीत का सामूहिक प्रभाव 'Harmony' कहलाता है। भारतीय संगीत मे एक ही गानेवाला अथवा बाजा बजानेवाला रस की सृष्टि कर सकता है। उसकी मदद के लिये यदि साथी और साज न भी हो, तो कोई हर्ज नहीं। भारतीय संगीत के मुख्य दो भेद है—(१) हिंदोस्तानी अथवा उत्तर-भारतीय और (२) करनाटकीय अथवा दक्षिण-भारतीय। जैसा कहा जा चुका है, उपर्युक्त दोनो विधानो के मुख्य सिद्धांत समान है, फिर भी देश-काल के भेद के कारण दोनो मे कुछ पारस्परिक भिन्नताएँ आ गई है।

उत्तर मे प्रारंभिक सरगम का अभ्यास कल्याण-राग के द्वारा होता है, और वही दक्षिण मे होता है मायामालव गौड़-राग के द्वारा, जिसे उत्तर-भारत मे भैरव कहते है। 'म' कल्याण-राग मे तीव्र और मायामालव-राग मे कोमल होता है। संगीत-शास्त्र की कठिन भूमिकाओं मे पदार्पण करने की योग्यता बढ़ाने की दृष्टि से हिंदोस्तानी विधान की शिक्षा मे स्वर-ज्ञान को विशेष महत्त्व दिया

जाता है। बरसे, यति, गीत, स्वरयति, वर्ण आदि का दक्षिण में पूर्ण विधि-पूर्वक अभ्यास कराया जाता है। यही कारण है कि वहाँ राग-अलापन, पल्लवीगायन और स्वरों का इतना अधिक अभ्युदय हो सका है। खेद है, उत्तर-भारत में इस प्रकार की शिक्षा की उपेक्षा की जाती है। संतोष इस बात का है कि इस दिशा में उत्तर-भारत में भी उन्नति आरंभ हो गई है।

हिंदोस्तानी संगीत में प्रायः गाते हुए जाँघ पर जोर की थपकियाँ लगाने का रिवाज नहीं है। यदि कोई दक्षिण-भारत-निवासी उत्तर-भारत में आकर हिंदोस्तानी संगीत सुने, तो पहलेपहल उसे यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि हिंदोस्तानी संगीतज्ञ ताल अथवा समय की माप पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। पर वास्तव में ऐसी धारणा नितांत भ्रम-मूलक है। उत्तर-भारत में गानेवाले प्रायः तबले के साथ गाते हैं, और वही उनकी ताल या ठेके का आधार रहता है। प्रायः प्रत्येक गायक तबले की ध्वनि से परिचित रहता और तबले के ठेके के अनुसार ही प्रत्यावर्तन में उसे अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान रहता है। उत्तर-भारतीय संगीत में तालों की अति अधिक प्रचुरता और दुरूहता को ध्यान में रखकर यह मानना पड़ेगा कि हिंदोस्तानी संगीतज्ञ समय और ताल के विषय में बड़े प्रवीण होते हैं। उनकी निःशब्द विधि से संगीत में एक प्रकार की स्वाभाविकता आ जाती है। प्रत्येक संगीतज्ञ के लिये तबला या मृदंग-वादन के ज्ञान की अनिवार्यता उत्तरीय संगीतज्ञ की एक अनुपम विशेषता है। खेद है, दक्षिण-भारत में इस प्रकार की शिक्षा की उपेक्षा की जाती है।

दक्षिण-भारत के ७२ मेलकर्त रागों या ठाटों की महिमा प्रायः सुनने में आती है। दक्षिण के इस ७२ मेलकर्ता का विधान अत्यंत बुद्धिमत्ता-पूर्ण और गणितानुमोदित उत्तम विधान है। पर इन ७२ रागों में से बहुत-से केवल गिनती के ही लिये हैं। पक्के कटहल के भक्ष्यांश के समान साधारण व्यवहार के लिये इनमें से केवल कुछ थोड़े-से ही काम में आते हैं। अलापों में रागों के गाने की कला वास्तव में दक्षिण-भारत की एक उच्चतम विशेषता है। उत्तर-भारत में इसकी ओर कम प्रयास किया जाता है। उत्तर में अलाप का प्रयोग केवल गीत में, मध्य में, किया जाता है। दक्षिण-भारत में अलाप का प्रयोग गीत के आरंभ में होता है, न कि मध्य में। ताल के साथ अलाप का उपयोग करना दूसरी ही बात है, उसका उस राग-अलापन से कोई संबंध नहीं जिस पर ताल की कोई कैद नहीं। राग-अलापन के लिये राग के भाव अथवा रस का प्रदर्शन होता है।

संगीत के उस अंग का, जिसे स्वर-संगीत कहते हैं, दक्षिण-भारत में बहुत प्रचार है। यह मुक्त संगीत की वह विधि है, जिसका अभ्यास स्वर, ताल, यति और लय के पूर्ण ज्ञान के

बिना संभव नहीं। यदि इसका अभ्यास एक सीमा के अंदर हो रहे, तो सचमुच संगीत की यह विधि बड़ी चित्ताकर्षक होती है। कैसा अच्छा हो, यदि उत्तर-भारतीय संगीत मे भी इस विधि का प्रवेश हो जाय। प्रसन्नता की बात है कि इस दिशा मे प्रोफेसर नारायणराव व्यासजी ने श्रीगणेश कर दिया है। अलाप के ही ढंग पर स्वर गायन का होना उचित नहीं। उसका टेक्निक् बिलकुल भिन्न है। हाल मे प्रोफेसर अब्दुलकरीम ने जो रेकार्ड दिए है, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने स्वर-गायन का प्रयत्न कुछ-कुछ दक्षिणीय स्वर-गायन-पद्धति के अनुसार किया है।

एक शिकायत—जो उत्तरीय और दक्षिणीय दोनो स्कूलो के संगीतज्ञो मे प्रायः पाई जाती है—यह है कि गायक लोग गाते समय गीत के शब्दार्थ पर बिलकुल ध्यान नहीं देते। प्रत्येक गीत मे एक भाव होता है, जिसकी छाप श्रोता के हृदय मे भले प्रकार बैठा देने मे संगीत का बड़ा महत्त्व रहता है। यदि गीत के भाव के अंतर्गर्भ मे पैठकर गायक अपना कार्य नहीं करता, तो उसका कार्य प्रभावशाली नहीं हो सकता।

वाद्य-यंत्र

थोड़ा-सा विचार वाद्य-यंत्रो पर भी करना अभीष्ट है। आजकल जहाँ देखो, वहाँ प्राचीन वाद्य-यंत्रों के स्थान पर हारमोनियम का ही बोलबाला है। इसमे संदेह नहीं कि हारमोनियम के साथ गाने मे गायक के छोटे-मोटे ऐब छिप जाते है। परंतु हारमोनियम मे मींड और गमक कहाँ ? वे गुण तो तार की तंत्रियो मे ही मिलते हैं। इसके कारण वे मानवीय कंठ से साम्य स्थापित करने मे समर्थ हो सकती है। गायक के साज मे ऐसी ही तंत्रियों की आवश्यकता रहती है। ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय संगीत की मुख्य विशेषता गमक मे है। वीणा, गोटबीन, सरगी और बेला की आवाजे कितनी मधुर होती है ! बेला या वायोलिन इटली देश का बाजा है। इसका प्रचार भारत मे लगभग ७०० वर्ष से है। दक्षिण-भारत मे यह बाजा प्रत्येक संगीत-मंडली के साथ रहता है।

कुछ ही महीने पूर्व लेखको को प्रोफेसर केशवमूर्ति का लोकोत्तर आनंददायी वीणा-वादन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस कला मे उनकी कुशलता असाधारण है। अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन के किसी अधिवेशन मे उन्हे निमंत्रित कर उनकी योग्यता की परीक्षा संगीत-प्रेमी जनो को अवश्य वांछनीय होनी चाहिए।

हारमोनियम या पियानो मे एक खूबी है। वह रंगमंचीय संगीत मे बड़े काम का है। क्योंकि वहाँ एक तो ऊँचे दर्जे का संगीत अपेक्षित नहीं, और दूसरे जो काम अकेला हारमोनियम करता है, वह अनेक सरगियो, इसराजो और वायोलिनो से पूरा नहीं हो सकता। सुनने मे आया है कि पूना के प्रो० अचरेकर ने एक ऐसे हारमोनियम की ईजाद

की है, जिसमे से गमके भी निकाली जा सकती हैं। यदि यह सच है, तो यह भारत के लिये एक बड़े गौरव की बात है। उत्तर-भारत की अपेक्षा दक्षिण-भारत मे प्राचीन भारतीय वाद्य-यंत्रो का अभ्यास अधिक प्रचलित है। वहाँ वीणा, गोटवाद्य, वेणु और शहनाई आदि बाजो के अधिकार-पूर्वक बजानेवाले बहुलता से पाए जाते है। दक्षिण-भारत की अनेक म्युनिसिपैलिटियो ने नागरिको को सप्ताह मे एक बार संगीत का आनद देने के लिये शहनाई बजानेवालो को तनख़्वाह देकर नौकर रख छोड़ा है।

रंगमंचीय संगीत को उच्चता प्रदान करने मे मराठी रंगमंच ने सबसे अधिक सफलता पाई है। महाराष्ट्र के अच्छे-से-अच्छे गायनाचार्य रंगमंच पर आते है। यह वास्तव मे बड़े हर्ष का विषय है। रंगमंच और विशेषकर सवाक् चित्रपट मे हमारे संगीतज्ञो को अपनी कला को प्रस्फुटित करने की बहुत गुंजाइश है। ऊँचे दर्जे का संगीत कही भी हो, अवश्य पसंद किया जायगा। संगीतज्ञों को धनोपार्जन के इन नवीन द्वारो से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

संगीत-शिक्षा

यह एक बड़े संतोष की बात है कि कुछ समय पहले जो भाव सगीत के पेशे के संबंध मे जन साधारण के थे, वे अब उत्तरोत्तर तिरोहित हो रहे है। अब सच्चरित्र गृहस्थों को संगीत की विधिवत् शिक्षा के महत्त्व का अनुभव होने लगा है।

बालको और विशेषकर बालिकाओ को विद्यालयो मे सगीत की शिक्षा दिलाने की सुविधाएँ धीरे-धीरे बढ़ रही है। संगीत-शिक्षा के सबंध मे एक बड़े महत्त्व की बात यह है कि जिन गीतो को गाने की शिक्षा विद्यार्थियो को दी जाय, वे ईश्वर-भक्ति, देश-भक्ति अथवा ऐसे ही चरित्र-उन्नायक विषयो के गीत होने चाहिए। चरित्र भ्रष्ट करनेवाले उन ठुमरी, टप्पों या ग़ज़लो को गाना एकदम (बेहतर हो कि क़ानूनन) बंद हो जाना चाहिए, जो या तो सड़क पर अललटप्पू ताँगेवालो के मुखो से सुनाई पड़ते है, अथवा जिन्हे कुछ ताल-स्वर के साथ प्रायः वारांगनाएँ ही गाती है। ये गाने एक प्रकार का घृणित वायु-मंडल पैदा करते है, जिसका प्रभाव निर्दोष बालक-बालिकाओ के अथवा साधारण गृहस्थो और उनकी कुल-ललनाओ के हृदयो पर अनिष्टकारी होता है। हमारे यहाँ ऊँचे भावो से भरे हुए अच्छे गीतो की कमी नही। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास-सरीखे महात्माओ के गीत साहित्य के कोष मे भरे पड़े है। इस संबंध मे प्रयत्न करनेवाले दो स्वर्गीय सज्जनो का हमे श्रद्धा-पूर्वक स्मरण हो आता है। वे है श्रीविष्णुदिगंबर पलुस्कर और श्री-गोपालराव बर्वे।

पृथ्वीराज-परिवार

[श्रीहनूमान शर्मा]

आमेर के राजो मे महाराज पृथ्वीराज नर-राज और भक्त-राज, दोनो प्रकार से विशेष विख्यात हुए थे। नर राज होने की हैसियत से एक बार उन्होने उदयपुर के राना संग्रामसिह को (जो अज्ञात-वास मे थे) आश्रय दिया था। और, ईश्वर मे दृढ़ विश्वास रखनेवाले भक्त-राज होने से आमेर मे रहकर ही उन्होन द्वारकाधीश के दर्शन किए थे। जयपुर के इतिहास मे उनका चारु चरित्र विस्तार से लिखा गया है। यहाँ उनके परिवार का परिचय प्रकट करना ही अभीष्ट है, क्योंकि कछवाहो के सबंध की कई एक ज्ञातव्य बातें इसमें दी गई है।

महाराज पृथ्वीराज के ९ रानी और १९ पुत्र थे—

(१) पहली रानी गोवड़ी के भोजराज की बेटी 'तँवरजी' थी। राजा 'पूरणमल' इसी के उदर से उत्पन्न हुए थे।

(२) दूसरी रानी 'बीकावतजी' बीकानेर के लूणकरण की बेटी 'बालाबाई' थी। इस पर महाराज की कृपा थी। सम्मान भी ज्यादा था। अब भी उसका माल (?) का सम्मान किया जाता है, जानेवाले ताज़ीम देते है। विवाह-कार्य उसी मे आरंभ होता है। उस भाग्यवती के उदर से १२ पुत्र उत्पन्न हुए। पहले पुत्र 'भीम' आमेर के राजा हुए। उनके वंशज नरवर के कछवाहे है। दूसरे 'भारमल' थे। गोपालजी ने सब भाइयों को समझाकर उनको आमेर का राज्याधिकारी बनाया था। तीसरे 'गोपाल', जिनको भारमल ने अनेक प्रकार से सम्मानित किया—(१) राज्य की सार्वजनिक पचायत का मुखिया, (२) फौजों का सेनापति और (३) राज्य का पटेल बनाया, तथा दरबार मे दाहने बाज़ू की पहली बैठक दी। और, उन दिनो वह भी महाराज के नाम से विख्यात रहे थे। उनके बडे बेटे नाथाजी थे। 'नाथावत' उन्ही के वशज है। चौथे 'पचायन', जिनके पचानोत है। पाँचवे 'साँगा', जिनका साँगानेर है। छठे 'सुलतान', सातवे 'जगमाल' और आठवें 'बलभद्र' थे। इनके वंशज अचरोल के बलभद्रोत है। नवें 'रायमल', दसवे 'चतुर्भुज', ग्यारहवे 'सहस्रमल' और बारहवें 'तेजसी' थे।

(३) तीसरी रानी देवती के राजा की बेटी 'बड़गूजरजा' थी। उसके एक 'प्रताप' और दूसरे 'रामसिह' थे।

(४) चौथी उदयपुर के राना रायमल की बेटी 'सीसोदनीजी' थी। उसके 'कल्याण' और 'भीखा' दो पुत्र हुए।

(५) पाँचवीं मारोठ के गौड की 'गौड़जी' थी। उसके 'रूपसी' हुए, जिन्होंने वैराग्य धारण कर लिया था। पीछे गृहस्थ हो गए थे। अजमेर के पास का रूपनगर उन्होंने बसाया था। उनके वंश मे अब भी कई एक योगी-बैरागी कछवाहे है।

(६) छठी 'सोलंखनीजी' थी। उसके 'साई-दास' हुए।

(७) सातवी 'निर्वाणजी',

(८) आठवी दूसरी 'निर्वाणजी' और

(९) नवी 'हाड़ीजी', ये तीनो अपुत्र थी।

उपर्युक्त रानियों और पुत्रो के साथ मे जो एकादि सख्या है, वह उनके पहले दूसरे की परिचायक नहीं है। उदाहरणार्थ 'गोपाल' को ही देखिए। इनको किसी ने पहला, किसी ने चौथा, पॉचवॉ और सातवां तथा किसी ने ग्यारहवॉं लिखा है। इसी भॉति दूसरों को भी मान लिया है। इस बात का वास्तविक निर्णय रानियों के विवाह और पुत्रों के जन्म की मिती से किया जा सकता है। उनका मिलना असंभव है। बहुत-से विद्वानो ने अपने-अपने इतिहासों मे इनके नाम दिए है। उनमे अधिकांश नाम यथाक्रम है, और परस्पर साम्य भी है। प्रतीति के लिये यहॉ एक तालिका दी जाती है। इससे सर्व-साधारण भी अनुमान कर सकेंगे कि वास्तव मे अमुक पहले और अमुक दूसरे, आदि है—

पृथ्वीराजजी के १९ पुत्रों का क्रम और जुदा-जुदा निर्णय	भींवजी	भारमलजी	सुलतानजी	गोपालजी	पिथ्वराजजी	जगमालजी	सहसमलजी	साँगाजी	बलभद्रजी	रायमलजी	रामसिंहजी	प्रतापसिंहजी	साईं दासजी	चतुर्भुजजी	कल्याणजी	भीखाजी	तेजसीजी	प्रद्युम्नजी	रूपसीजी
बहुस्वीकृत क्रम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
देवीप्रसाद का मत	१	४	६	५	३	७	१३	२	८	९	१२	१४	११	१०	१५	१६	१७	१८	१९
इतिहास राजस्थान का	१	४	३	५	२	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
वीरविनोद का	२	३	९	४	७	८	१७	६	११	१९	४	१०	१२	१४	१३	१८	१६	१	१५
बालावक्षजी का	१	२	५	४	३	७	१४	१९	६	१५	१२	११	१३	८	९	१६	१७	१८	१०
मूतानेणसी का	१४	१	५	४	०	०	१३	०	३	०	७	९	१२	६	८	११	०	२	१०
जयवंशप्रकाश का	२	३	९	४	७	८	१८	५	११	१९	४	१०	१२	१५	१३	१४	१७	१	१६
सार्ट हिस्ट्री का	२	३	५	४	९	७	१५	१९	६	१६	१३	१२	१४	८	१०	१७	१८	१	११
'ग' वंशावली का	१	४	६	५	३	७	११	२	८	९	१४	१३	१२	१०	१५	१६	०	१८	१७
बहुमत के पोषक कितने हैं	५	२	२	६	१	२	२	२	२	२	२	३	४	३	४	५	५	५	३

[महाराज पृथ्वीराजजी के १९ पुत्रों मे पहला, दूसरा आदि कौन था, यह जानने के लिये ऊपर के कोष्ठक मे पहला कोठा बहुमत-निर्णीत क्रम का है। शेष आठ अपने इच्छित या यथालब्ध क्रम के बोधक है। जन्म के संवत् न होने से अवसर आने पर पहला, दूसरा जानने की कठिनाई होती है, अतः इस चक्र से उक्त क्रम जानने में सुविधा मिलेगी।]

जो लोग अधिकार-लाभ की लालसा से अपने को पहला, चौथा या सातवाँ आदि प्रमाणित करते है, उनका कथन प्रत्येक पुत्र की जन्मपत्री से प्रामाणिक कहा जा सकता है। अन्यथा उपरि-लिखित तालिका मे जिनका क्रम अधिकाश ने स्वीकार किया है, वह मान्य हो सकता है। परंतु उसमे भी कई एक अज्ञात कारण ऐसे है, जिनके पूर्वापर का विचार किया जाय, तो प्रत्येक की जन्म मिती के सिवा दूसरा उपाय हो नहीं सकता। इसका विशेष विवरण 'नाथावतों के इतिहास' मे दिया गया है। परंतु वह अभी अमुद्रित है। क्या ही अच्छा हो, यदि जयपुर-इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् इस विषय को विशेष रूप से प्रकाशित करे, और पहले-दूसरे बननेवालो को भ्रमाधकार या हठधर्म से हटावे।

उदार-हृदय पृथ्वीराजजी ने आमेर-राज्य को १२ भागो मे बाँटकर अपने १२ बेटो को दे दिया था, और उनकी 'बारा-कोटड़ी' बना दी थी। परतु उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। उनके मरने के बाद २० ही वर्ष मे आमेर के कई राजा बन गए, और कइयो को चाहकर मार डाला या चाहकर गद्दी से उठा दिया। ऐसे अवसर मे दुश्मनों को मौका मिल गया। वे आमेर-राज्य को हडपने लगे। अकेले कर्मचद ने ४० गाँव दाब लिए थे, जिनको साँगाजी ने १० वर्ष बाद वापस लिया था। इस प्रकार के असंगत व्यवहार और खोटी व्यवस्था देखकर गोपालजी ने भारमलजी को राजा बनाया, और 'बारा-कोटड़ी' दुबारा कायम की। उनमे पहलेवालो को घटा-बढाकर उन सबको यथायोग्य जागीरे दीं, सलाह-मशविरा मे शामिल होने का अधिकार दिया, और उनको राज्य के अधीन कर दिया। ऐसा करने पर सर्व-सम्मति से महाराज भारमल-जी ने सदा के लिये उनको सर्वोच्च अधिकार दिए, और सम्मान बढ़ाया। 'बारा-कोटडी'वालो मे (१) बाँसखोह के 'कूँभाणी', (२) नींदड़ के 'स्योब्रह्मपोता', (३) वाटका के 'बनबीर-पोता', (४) महार के 'कूँभावत', (५) साँभरा के 'पिच्याणोत', (६) काणोता के 'सुलतानोत', (७) चौमूँ-सामोद के 'नाथावत', (८) डिग्गी के 'खंगारोत', (९) अचरोल के 'बलभद्रोत', (१०) बगरू के 'चतुर्भुजोत', (११) कालवाड़ के 'कल्याणोत' और (१२) नीमैडा आदि के 'पूरणमलोत' है। विशेष के लिये 'बारा-कोटड़ी' निबध देखना, जो सुधा मे शीघ्र ही छपेगा।

सिनेमा की सैर

[श्रीयुत 'बेढब' बनारसी]

'चित्रा' मे 'दिल का सौदा' खेल हो रहा था। नगर मे इसकी खासी धूम थी। दस दिन से लगातार खेल हो रहा था, पाँच दिन और होनेवाला था। जब चौक से गुज़रता था, दिल मसोसकर रह जाता था। तेईम तारीख़ थी। भला, महीने के इस वक़्त किसी नौकरी करनेवाले के पास सिनेमा देखने के लिये पैसे हो सकते है? एक बार सिनेमा-हाउस के कंपाउंड का चक्कर रोज़ शाम को लगा लेता। शायद कोई मित्र मिल जायँ, और पूछ बैठें—"क्यों दोस्त, चलोगे?" मगर जैसे प्लेग में मकान से चूहे गायब हो जाते हैं, कोई मित्र दिखाई नही दिया। कोई मिलता भी, तो कहता, कहो यार, देखने जा रहे हो। अभी तक नहीं देखा! बड़ा अच्छा खेल है। यह सुनकर जी में आता, दो घूँसे मुहँ पर दूँ। और, अपनी हालत क्या कहूँ। मालूम होता था, क़ैसर मैं ही हूँ, और जरमनी की लड़ाई हार गया हूँ। पर क्या करता।

जैसे कालरा के, मलेरिया के और फ़ाइलेरिया के जर्म अनजान, विना आपसे पूछे, आपके शरीर मे घुस जाते है, यह नहीं देखते कि 'नो ऐडमिशन' की तख़्ती बदन पर लगी है कि नहीं, उसी प्रकार न-जाने कैसे इस खेल की सूचना श्रीमतीजी को मिल गई। मै स्कूल से आया, तो देखा, भोजन तैयार है, और श्रीमती भी एक बढ़िया जंपर पहने हुए है। मैंने अभी कपड़े उतारे ही थे कि मेरे कान में ये शब्द सुनाई पड़े—"आज बड़ा अच्छा खेल है। चलो, देख आएँ।"

सिनेमा के विरोध में जितनी दलीलें मुझे उस समय सूझ सकती थीं, मैंने सुनाईं। मैंने कहा—"महात्मा गांधी नहीं देखते, आर्य-समाज इसके खिलाफ़ है। तंदुरुस्ती पर बड़ा बुरा असर पड़ता है, आँख खराब हो जाता है", इत्यादि। परंतु 'मरज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की'। मेरी सारी दलीलों के लिये कोई-न-कोई जवाब मौजूद था। फिर मैंने कहा—"'टाकी' में कोई कला नहीं है, साइलेंट' मे, असल मे, कला होती है। ऐक्टिंग का मज़ा तो वहीं आता है। मनोभावों का चित्रण अहाहा! कैसा होता है। अकबर ने ठीक कहा है—

'हमारा उस दिले-पुर-फ़न पे कुछ काबू नहीं चलता,
जहाँ बंदूक चलती है, वहाँ जादू नहीं चलता।'"

पहले दलीलें थीं, फिर त्योरियों पर बल आया। चर्चिल की आवाज़ मे लगीं कहने—"तुमको ले जाना नहीं मंज़ूर है, तो साफ़-साफ़ कह दो। अपन तो मालूम नही, महीने मे कितनी बार देख आते हो। आज बोरिस कारलाफ है। कल ग्रेटा गारबो हे, परसों यह है, वह है। आज जब एक बढ़िया हिंदी का खेल आया, तब सिनेमा में लाख ऐब होने लगे।" फिर धीरे से सर सैमुएल होर की आवाज़ मे बोलीं—"कल मनोरमा के यहाँ पार्टी है। वहाँ सभी आएँगी। कोई कहेगी, तीसरा सीन बड़ा सुंदर था; कोई कहेगी, दूसरे ऐक्ट में सुलोचना ने बड़ी ख़ूबी की ऐक्टिंग की, और मै उल्लू की तरह मुँह देखूँगी। तुमको ज़रा भी हमारी 'प्रेसटिज' का ख़याल नहीं है।"

मैंने कहा—"मै इस घर का होम मेंबर हूँ। जो मैं कहूँगा, वह होगा। परिवार के हक़ में इस समय सिनेमा जाना लाभकर नहीं है।" श्रीमती बोल उठीं—"अच्छा, तो मैं इस घर की 'फ़ाइनेंस

मेंबर' हूँ। आगे से बजट में 'कट'-ही 'कट' होगा।' यह जबरदस्त धमकी थी। असेंबली के सदस्यों के हाथों में भी ऐसा हथियार नहीं है। वह सफ़ेद चाँदी का गोल टुकड़ा ऐसा जादू-भरा है कि इसके लालच से जिसे चाहे लुभा लो। मैने हँसकर कहा—"बात यह है कि इस समय महीने का आख़ीर है, रुपए कहाँ से आएँगे ?" इस पर मुस्किराकर बोलीं—"अब रुपए का बहाना करने लगे।' मै क़सम खाकर कहता हूँ, ऐसी मुसकान पर मुसोलिनी भी दिल मसोसकर नाचने लगते, और मेरी क्या हक़ीक़त! मैं चुप था। अरेबियन सागर मे जहाज़ के ऊपर लहरों की बहार ले रहा था। एकाएक ख़ामोशी टूटी, और आप बोली—"अच्छा, फ़ाइनेंस मेंबर प्रबध करेगा।" फिर क्या था, टाँगा आया, और हम लोग 'चित्रा' के फाटक पर चट से पहुँचे।

चार रुपए उन्होंने मेरे हाथ मे रक्खे, और मैं टिकटवाली खिडकी की ओर रवाना हुआ। सामने गया, दाएँ गया, बाएँ गया, पर लोगो ने खिडकी को ऐसा घेर रक्खा था, जैसा आजकल नौजवानों के मुँह को मुँहासे। मै कोई जेनरल था नहीं, स्कूल मे भी ड्रिल के समय फाटक के बाहर, तमोली की दूकान पर, रहता था। भीड़ मे घुसना भरतपुर का क़िला लेना था। उधर श्रीमती खड़ी थीं। क्या करता, उनका भी लिहाज़ था। परंतु वहाँ एक टिकट लेकर निकलता, तो दूसरा घुस जाता। मेरे बाद के आनेवाले भीतर घुसकर खिड़की के क़रीब पहुँच गए, और मैं हिंदोस्तान की भाँति जहाँ-का तहाँ रह गया। अंत में कुछ हिम्मत करके लौट आया, और कहा—"अब कल या सेकंड शो मे देखा जायगा। इस समय तो बड़ी भीड है। किसी भले आदमी का खिड़की तक गुज़र नहीं है।" मालूम पड़ता है, यह वाक्य श्रीमतीजी को बुरा मालूम हुआ। बोलीं—"अपने को आदमी नाहक कहते हो। इतने आदमी टिकट लेकर चले गए, तुम रह गए! जो सिनेमा का टिकट न ले सका, वह स्वराज्य क्या लेगा। लाओ रुपए, मैं लाती हूँ।" अब आगे कोई उत्तर न था। मैं फिर खिड़की की ओर लौटा। बीवी के कहने से कुछ तो जोश आ ही गया था, और मै समझ चुका था कि युद्ध के मैदान मे जा रहा हूँ। किसी तरह घुसा। बीवी का हिम्मत दिलाना कुछ और ही चीज़ है। मेरा यह निवेदन है कि जितने विवाहित लोग हैं, उन्हे यदि किसी ऐसे ख़तरे की जगह जाना है, जहाँ जाने का डर है, तो बीवी से जरा साहस का पुट ले लिया करे। अवश्य सफलता मिलेगी।

मै भीड मे घुस गया, परतु खिड़की तक पहुँचने मे अभी देर थी। मालूम होता था, चारो ओर से कसा जा रहा हूँ। दाहने ओर एक सज्जन (?) की केहुनी मेरे सीने में धँसी आ रही थी। मैं ज्यो ज्यों एक आध इच बाएँ ओर सरकता था, केहुनी और धँसी आ रही थी। मेरी पसली की हड्डियों और सीने के चमड़े के बीच मांस का उतना ही हिस्सा है, जितना हिंदोस्तानियों को स्वराज्य मिला है। माइक्रासकोप से देखने पर शायद मांस की एक आध तह दिखाई दे। मुझे विश्वास हो गया कि पसली की दो-एक हड्डियाँ आज टूटीं, और फेफड़े में पंक्चर हुआ। इतने मे एकाएक फ़्रांस की राज्य-क्रांति की तरह हलचल हुआ। एक आदमी टिकट लेकर निकलने लगा। मै भी आगे हो गया। केहुनी के इंजेक्शन से जान बची, परंतु तुरंत ही मालूम हुआ कि मुझे फाँसी हो रही है। मेरे दुपट्टे का एक छोर पीछे फँस गया था, और मेरी गर्दन तथा कपड़े की मज़बूती की परीक्षा हो रही थी। वे सारे मिल और करघेवाले धन्यवाद के पात्र है, जो कमज़ोर कपड़े बुना करते हैं। अगर मेरा दुपट्टा मज़बूत होता, तो मैं वहीं ढेर हो चुका था। दुपट्टे के एक

चौथाई हिस्से ने पूर्ण असहयोग कर दिया। जान बची, समझा, दूसरा विवाह हुआ।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने टिकट ले लिया। हाँ, इतना अवश्य किया कि दो-दो रुपए का टिकट न लेकर एक-एक रुपए का लिया। टिकट लाकर मैंने श्रीमती के हाथों मे दिया। पसीना इतना बह रहा था, मानो मै स्पज हूँ, और कोई निचोड रहा है। श्रीमतीजी ने पूछा—"यह एक-एक रुपए का क्यो लाए?" मैने कहा—"मैंने कॉलेज मे अर्थ-शास्त्र पढा है, उसी का उपयोग किया है। इन दो रुपयो से फिर दूसरा तमाशा देखा जायगा।' ज्यों ही सीढ़ी की ओर मैं घूमा, श्रीमतीजी ने मेरे चरणो की ओर देखकर कहा—"और यह क्या?" नज़र नीचे ले जाता हूँ, तो दाहने पॉव का जूता ग़ायब। अभी पहली तारीख़ को फ़्लेक्स का फुल स्लीपर ख़रीदा था। मुश्किल से तीन सप्ताह हुए होंगे, और पहना भी कम था। आधा दाम भी देना बाक़ी था। फिर भीड मे घुसना पड़ा। अँगरेज़ी मे कहावत है, 'प्रैक्टिस मेक्स परफ़ेक्ट।' एक बार हो आने से कुछ हिम्मत हो गई थी। फिर अपना जूता था, वह भी नया, और जिसका आधा ही मूल्य दिया गया था। मै फिर घुसा। और, किसी-न-किसी प्रकार लोगो की त्योरियो की परवा न करके, जूता ढूँढ लाया। उसकी क्या हालत थी? टो तो बिलकुल सोल से मिल गया था। सारे जूते की शक्ल सूखे पराठे की-सी हो गई थी—जूता ब्राउन था। किसी तरह से उसे पैर में डाला। ऊपर पहुँचा। जगह मिल गई—ज़रा कोने मे। मगर वहाँ से दिखाई देता था। दो भाग 'कामिक' के तब तक समाप्त हो चुके थे। श्रीमतीजी बोली—"तुम्हारी वजह से पूरा 'कामिक' भी न देख पाई।"

हम लोग बैठे थे। और, एक बड़ा सुंदर गाना आरंभ हुआ कि नीचे चार आनेवाले दर्जे से किसी ने ज़ोर से चिल्लाकर पुकारा—"अरे इलहिया, अलीजनवाँ कहाँ है?" इतने में गाने का एक चौथाई समाप्त हो गया। उधर अलीजान के पुकारनेवाले चुप हुए ही थे कि पीछे 'बे' से किसी का बच्चा चिल्लाया, जैसे किसी बिगडे पियानो की रीड किसी ने एका-एक दबा दी हो। बच्चे को उसकी मा चुप कराने के लिये और भी बोलने लगी। सारा गाना इसी मे ख़त्म हो गया। रुपए का जो टिकट ख़रीदा था, वह एक-एक मिनट अखर रहा था। इसके बाद कोई मजाक का पार्ट कर रहा था। उसने कोई ऐसी बात कही, जिससे बेतरह हँसी आई। सब लोग हँसी मे लोट-लोट गए। मैंने उसी भाव में अपना हाथ पटका, मगर मेरा हाथ बजाय मेरे पैर पर आने के मेरे दाहनी ओर की कुर्सी पर एक स्त्री बैठी थी, उसकी जाँघ पर थप से जाकर बैठ गया। मै तो घबरा गया। उसने बडे जोरों मे कहा—"ह्वाट्स दिस?" अर्थात् यह क्या? उसकी आवाज सुनकर मेरी श्रीमती की भी निगाह उधर गई। पीछे बैठनेवाले भी समझ गए, कोई बात है। मुझे काटो, तो लहू क्या, पानी भी न निकलता। मैंने बड़ी माफ़ी माँगी। वह स्त्री चुप हो गई।

इंटरवल मे मैने फिर अनेक शब्दों में क्षमा-याचना की। उसने कहा—"कोई बात नहीं, जाने दीजिए।" प्रकाश में उसका चेहरा देखने पर पता चला कि उसकी अवस्था कोई इक्कीस-बाईस साल की होगी। गोरा रंग, गोल चेहरा बतला रहा था कि कोई पंजाब का इंपोर्ट है। मै डरा कि कहीं इसके साथ कोई हो, और मेरी हरकत को समझ ले कि जान-बूझकर ऐसा किया, तब तो बिना पैसा दिए सर की 'शेविंग' हो जाय। परंतु देखने मे कोई उसके साथ न दिखाई दिया।

उससे जब मै बहुत क्षमा-याचना की बाते करने लगा, तब मेरी श्रीमती बोलीं—"अरे रहने भी दो कि सारी डिक्शनरी आज ही ख़त्म कर दोगे?"

यह सुनकर उसने हँस दिया। श्रीमतीजी को शायद यह बहुत ही नागवार मालूम हुआ। उन्होंने कहा—"अब मैं तमाशा न देखूँगी।" मैंने बहुतेरा कहा। ज़ोर से कुछ कह नहीं सकता था। धीरे-धीरे समझाता था। परतु वह उठीं, और बाहर की ओर चलीं। इंटरवल समाप्त होने में दो ही तीन मिनट रहे होंगे। मैने बाहर बहुत समझाया। तीसरी घंटी बज चुकी थी। मैंने कहा—"अच्छा चलो, दूसरी सीट पर बैठा जाय।" इस पर वह किसी प्रकार राज़ी हुईं। आकर हम लोग दूसरी जगह बैठे।

बीच में जब प्रकाश हुआ, तब मैं क्या देखता हूँ कि वही स्त्री मेरे दाहनी ओर बैठी है। मैं और मेरी बीवी साहबा, दोनो अवाक् हो गए।

वह स्त्री बोल उठी—"अरे, मैंने समझा कि आप लोग वहाँ बैठेंगे, इसलिये मैं यहाँ चली आई।"

उस दिन से जब मै सिनेमा का नाम लेता हूँ, श्रीमती कहती हैं—"मैं जानती हूँ, तुम क्यों सिनेमा जाते हो।" और, जहाँ तक मेरे प्रोग्राम में विघ्न-बाधा हो सकती है, उपस्थित करती हैं।

शिशु-पालन

[डॉ० छैलविहारीलाल एम्० डी०, डी० सी० एच्० एम्०]

शिशु-पालन कितना आवश्यक विषय है, यह प्रायः बहुत कम लोग समझते है। इसी पर हमारी भावी संतान (Coming generation) और हमारे देश का दारोमदार है। हमारे भारतवर्ष मे प्रत्येक वर्ष कितनी बडी संख्या मे छोटे बच्चो की मृत्यु होती है, कितने कमजोर और रोगी बच्चे पैदा होते है, जो सदैव रोगी बने रहते है—यह बात किसी से छिपी नही है। बच्चो का कमज़ोर और रोगी पैदा होना माता-पिता की मूर्खता और निर्बलता पर निर्भर है। अतः जो दंपति यह लालसा रखते हों कि उनकी गृह-फुलवारी मे सुंदर फूल नज़र आऍ, उनको शिशु-पालन-ऐसे आवश्यक विषय का भले प्रकार अध्ययन करना चाहिए। मै इस लेख में इसी विषय पर कुछ बतलाऊँगा।
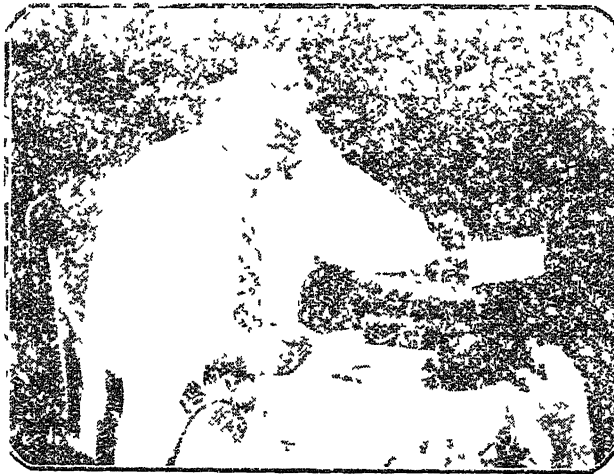
डॉ० छैलविहारीलाल एम्० डी०, डी० सी० एच्० एम्०

आजकल बहुधा लोग अपनी जिम्मेदारी से दूर भागते है। ऐसे लोगो को अपने सिर पर ऐसा बोझ कदापि न लादना चाहिए, जिसे वे सँभाल न सकें। गृहस्थाश्रम मे मनुष्य पर बहुत-सी जिम्मेदारियो का बोझ आ पड़ता है। जो व्यक्ति इन जिम्मेदारियो के निभाने मे अपने को असमर्थ समझे, उसको गृहस्थाश्रम मे आने का कोई अधिकार नही है। शिशु-पालन भी गृहस्थाश्रम की एक बडी जिम्मेदारी है। विवाह होने पर बच्चो का पैदा होना और उनके पोषण का भार सिर पर आना अनिवार्य-सा है। हॉ, यदि विवाह हो ही गया हो, और तब शिशु-पालन से दंपति घबराऍ, तो उनको वाजिब है कि संतानोत्पत्ति की ओर कदापि ध्यान न दे। निर्बल बच्चे पैदा करना या बच्चे पैदा करके उनके पोषण और शिक्षा का प्रबंध न कर सकना, कहॉ की बुद्धिमानी है? लोग सोचते होगे, विवाहित

अवस्था मे भला यह कैसे सभव है, बच्चे तो ईश्वर की देन है, स्त्री और पुरुष क्या कर सकते है? यह खयाल बिलकुल गलत है। स्त्री-पुरुष यदि चाहे, तो कभी बच्चा न पैदा करें। यह उनके ही हाथ है। इसके कुदरती तरीके (Natural methods) है, जिनको व्यवहार मे लाने से इस कार्य मे सफलता प्राप्त हो सकती है। इन तरीको का बयान करना इस लेख से बाहर की बात है, इसलिये इसको यहाँ छोडकर मै आगे बढ़ता हूँ।

यह तो हुआ उन लोगो के विषय मे, जो शिशु-पालन-जैसे धार्मिक कार्य से घबराते है, या उसमे असमर्थ है। अब रहे वे लोग, जो खूबसूरत फूलो के समान बच्चो से अपनी गृहस्थी-रूपी फुलवारी सुसज्जित करना चाहते है। उनको नीचे-लिखी बातो पर ध्यान देना चाहिए —

सबसे पहली और आवश्यक बात यह है कि माता-पिता का स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए, क्योंकि ऐसा न होने से बच्चे भी रोगी पैदा होगे। स्वस्थ होने पर ही सतानोत्पत्ति का खयाल करना चाहिए।

शिशु-पालन का कार्य गर्भ स्थापित होने के बाद से ही शुरू हो जाता है। गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष के हृदय मे जो खयालात रहते है, उनका बच्चे पर बहुत बड़ा प्रभाव पडता है। अतः जैसा बच्चा आप पैदा करना चाहें, वैसे ही विचार उस समय आपको अपने में रखने चाहिए। इसके बाद गर्भ के बालक को माता जैसा चाहे, वैसा बना सकती है। यह पवित्र कार्य माता का ही है। इसमे बड़ी सावधानी की जरूरत है। यदि माता चाहे कि बालक सुंदर पैदा हो, तो उसे सुंदर-सुंदर चित्र अपने सामने रखकर गौर से देखना चाहिए। यदि वीर बालक पैदा करने की इच्छा हो, तो माता को वीर-गाथाओ का अध्ययन करना चाहिए। और, यदि बालक को धर्मात्मा बनाना हो, तो धार्मिक पुस्तको का पढ़ना ठीक होगा। गर्भावस्था मे माता को अपने स्वास्थ्य का पूरा खयाल रखना चाहिए। जहाँ तक हो सके, प्राकृतिक नियमों का पालन करना चाहिए। हलका और बलकारी भोजन खाना और शुद्ध, शीतल जल पीना चाहिए। थोड़ा-बहुत व्यायाम भी आवश्यक है, यानी बिलकुल काहिल बनना ठीक नहीं। सफाई से रहना, साफ वस्त्र धारण करना ओर साफ, खुली जगह मे सोना लाभदायक है। ऐसी अवस्था मे पुरुष-सहवास तो सर्वथा हानिकर एवं त्याज्य है।

बालक उत्पन्न होने पर प्रसूति-गृह मे बड़ी चौकसी की जरूरत है। प्रायः घर की सबसे गंदी और अँधेरी कोठरी इस काम के लिये चुनी जाती है। यह भारी भूल है। इसके लिये जहाँ तक हो सके, स्वच्छ और हवादार जगह से काम लेना चाहिए। वहाँ जितनी चीजे प्रयोग मे लाई जायँ, वे सब साफ और सुथरी हो। नाल काटने की छुरी को खौलते हुए पानी मे धोना आवश्यक है। छुरी खूब तेज भी हो। जिस पानी से बच्चा धोया जाय, उसे थोड़ा गरम कर लेना चाहिए। बच्चे को साफ और मुलायम बिस्तरे

पर लिटाना उचित है। ऐसी छोटी-छोटी बातों पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रसूति-गृह से बाहर निकलने पर बच्चे को ऐसी जगह रखना चाहिए, जहाँ हवा और धूप काफी आती हो। बच्चे के पहनने के कपड़े साफ होने चाहिए। यह आवश्यक है कि बालक को माता से पृथक् लिटाया जाय। आम तौर से माताएँ जब तक बच्चे बहुत बड़े नहीं हो जाते, अपने साथ ही सुलाती है। ऐसा करना हानिकर है।

बच्चे के लिये सबसे उत्तम भोजन दूध है। जब तक वह छोटा है, उसे माता का दूध ही पिलाना ठीक है। पर यदि बाहर का दूध पिलाना ही पड़े, तो बकरी के दूध में आधा पानी मिलाकर तथा पकाकर देना चाहिए। यदि बकरी का दूध न मिल सके, तो पानी के साथ पके हुए गाय के दूध मे थोड़ा चूने का पानी (lime water) मिलाकर देन चाहिए। माता को अपना दूध पिलाते समय बैठे रहना चाहिए। लेटकर दूध पिलाना हानिकर है। दूध पिलाते समय माता को अपना चित्त प्रसन्न रखना चाहिए। इसका बच्चे के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। दूध पिलाने के समय नियत करके नियत समय पर ही दूध पिलाना चाहिए—हर समय नहीं। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाय, उसको देर-देर मे दूध पिलाना चाहिए, यहाँ तक कि उसके काफी बड़े होने और कुछ खाने-पीने लगने पर केवल एक या दो बार दूध पिलावे, और फिर धीरे-धीरे पिलाना ही बंद कर दे। इस तरह बच्चे का दूध छुड़ाना भी आसान हो जायगा, जो माताओ को बडा कठिन मालूम होता है।

जब बच्चा खाने-पीने लगे, तब उसे सादा और जल्द पचनेवाला भोजन नियत समय पर देना चाहिए। जब बच्चा तीन-चार महीने का हो जाय, तो उसे थोड़ा-थोडा पानी भी पिलाना चाहिए। पर बालक की इच्छा बिना उसे कभी न खिलावे-पिलावे। बाज़ार की मिठाइयाँ बालक को बजाय फायदा पहुँचाने के नुकसान ही करती है। इन चीजो पर माताएँ जितना पैसा खर्च करती है, उससे कहीं कम लागत पर स्वादिष्ठ खाने तैयार कर सकती है, पर स्वादिष्ठ भोजन की आदत डालना बालक के लिये अच्छा नहीं।

बच्चे को मौसम के अनुसार कपड़ा पहनाना चाहिए। ज़रूरत से ज्यादा कपड़ो का बोझ लादना नुकसान पहुँचाता है। माताएँ बहुधा बच्चों को जाड़ों मे चार-पाँच और कभी-कभी इससे भी ज़्यादा कपडे पहनाए रहती है, और सरदी लगने के भय से कभी उतारती नहीं है। यह बड़ी भूल है। एक तो इतने कपड़ों की ज़रूरत नहीं, दूसरे, जो लड़के सदा कपड़ों से ढके रहते है, उनको ज़रा-सी भी हवा लगने से ज़ुकाम और सरदी हो जाती है। कभी-कभी, जब मुमकिन हो, बच्चे को बिलकुल नंगा कर देना चाहिए, जिससे तमाम बदन पर खूब हवा और धूप लग सके। बच्चे के कपड़े साफ और ढीले होने चाहिए। कसे कपड़े स्वास्थ्य को बिगाड़ते है। बच्चे के बदन को खूब साफ़ रखना चाहिए।

पाँच-छ महीने का हो जाने पर बच्चे को रोज़ एक बार शुद्ध जल से स्नान कराना चाहिए, और इसके पहले कुछ गर्म पानी से।

बच्चों की नींद और आराम की ओर भी ध्यान देना चाहिए। छोटे बच्चे ज़्यादा देर तक सोते है, और ज्यों-ज्यों बढ़ते है, कम सोते हैं। सोते से बच्चे को जगाना न चाहिए। जितनी अच्छी नींद आवेगी, उतना ही अच्छा होगा। मच्छड़ और मक्खियो को दूर रखने के लिये मसहरी, पखे आदि का प्रबंध करना चाहिए।

बच्चे को खेल-कूद में काफी आजादी देनी चाहिए। उसके खिलौने कैसे होने चाहिए? नुकीली चीज़ें या ऐसे खिलौने—जिनमें बच्चे की उँगलियो के फँस जाने का डर हो, या जिनको बच्चा मुँह मे डाल ले—बच्चे को न देना चाहिए। कागज़ या लकड़ी के सादे खिलौने सर्वोत्तम होते है। गटापार्चा और रबर के खिलौने, जिनका आज-कल बड़ा रिवाज है, बच्चे के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हे। जब बच्चा चलने-फिरने लगे, तो उसे गोद मे न लिए रहना चाहिए, बल्कि उसको इधर-उधर खेलने देना चाहिए, और दूर से केवल देख-रेख करनो चाहिए। हाँ, एक बात और है—आजकल माताएँ बच्चे को नौकर के सिपुर्द कर बेख़बर हो जाती है। ऐसा करने से बच्चे ख़राब हो जाते हैं। बेपढ़े-लिखे, मूर्ख नौकर बच्चो को बुरी बाते सिखाते है, जिससे बच्चो का भविष्य सदैव के लिये बिगड़ जाता है। मेरा यह मतलब नहीं कि माताएँ हर समय बच्चों को लटकाए रहे। हाँ, जहाँ तक हो सके, उनको अपनी आँख के सामने रक्खे। बच्चे बहुधा जब कोई नई चीज़ देखते है, बहुत-से सवाल पूछते है। इनके जवाब में नौकर अपनी बदमाशी के कारण, हँसी के लिये या मूर्खता के कारण उलटी-सीधी बाते बता देते है, जो बच्चों के दिमाग से उम्र-भर नहीं निकलती। एक मिसाल देता हूँ। मेरे बच्चे के नौकर ने उससे कह दिया—"बादल गदहे है, पहाड़ पर जाकर चरा करते है, और वहाँ से पानी भर-भरकर लाते हैं, और यहाँ बरसाते है।" बेचारा बच्चा बादल और गदहे की शक्ल एक-सी न पाकर परेशान हुआ, और मेरे पास आकर कहने लगा—"सूरजबली (नौकर का नाम) कहता है, बादल गदहा है। वह कैसा बेवकूफ है। भला, बादल के कान कहाँ है?" मैने तब बच्चे को असलियत समझा दी। बच्चों से झूठ कभी न बोलना चाहिए। जो कुछ वे पूछें, उन्हें साफ़-साफ और ठीक बता देना चाहिए। क्योंकि यदि उनको एक बार भी पता चल गया कि आप उनसे झूठ बोलते है, तो फिर वे आपका कभी एतबार न करेंगे, और उन पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। बच्चों को समझाया भी इस तरह जाय कि वे अच्छी तरह समझकर यकीन कर लें।

बच्चो को बुरी सोहबत से बचाना चाहिए। शरीर लड़कों के साथ कदापि न रहने देना चाहिए। मेरी राय मे जब तक लड़का काफ़ी समझदार न हो जाय, उसको बजाय स्कूल भेजने के घर पर ही पढ़ाना ज़्यादा ठीक होगा, क्योकि हिंदोस्तानी स्कूलों मे, जहाँ छोटे बच्चे पढ़ाए जाते हैं, सिवा इसके कि मास्टर लड़कों की ख़ासी

मरम्मत करते रहे, और कुछ नहीं होता। अलावा इसके बच्चे बुरे लड़कों से बुरी आदतें सीखते है, क्योकि देख भाल तो कोई करता ही नहीं। हाँ, अगर स्कूल भेजना ही है, तो उन स्कूलो मे भेजना चाहिए, जहाँ आजकल के नए ढग पर तालीम दी जाती हो, लड़कों की आजादी पर विशेष ध्यान रक्खा जाता हो, और उनकी काफी देख-रेख का भी प्रबध हो।

माता-पिता का कर्तव्य है कि बालक के आचरण पर सदैव कड़ी दृष्टि रक्खे। बच्चे का चरित्र शुरू से ही बनता है। इस कार्य मे माता का सबसे बडा भाग है। उसे शुरू से बच्चे को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उसका चरित्र बने। उसको ऐसे वातावरण मे रखना चाहिए, जहाँ का प्रभाव अच्छा ही पड़े। बच्चे को धर्म का ज्ञान भी कराना चाहिए। उसे ऐसी कहानियाँ सुनानी और ऐसी बातें बतानी चाहिए, जो उसे सच्चा और निडर बनावे। बच्चे को आज्ञाकारी और देश-भक्त बनाने के लिये उसको ऐसी कथाएँ सुनानी चाहिए, जिनसे वैसा असर पड़े। उसे भारत के आदर्श पुरुष तथा देवियो के कारनामे सुनाने चाहिए। इस प्रकार बालक का चरित्र भी आदर्श बनेगा, और वह बढ़कर अपने देश का रक्षक, समाज का सच्चा सेवक और कुल की मान-मर्यादा का बढ़ानेवाला बनेगा। ऐसे बालक के माता-पिता अपने कर्तव्य के पालन करने मे सफल कहे जा सकते है। यह सौभाग्य प्रत्येक दपति को प्राप्त हो सकता है—यदि वे चाहे, और यदि वे स्वयं सुशिक्षित हों।

पूर्ण चंद्र

[श्रीयुत भूपनारायण दीक्षित एम्० ए०, एल्० टी०]

प्रतिबिंब है क्या ललना-मुख का, जिसमे लगा दाग दृगंजन का,
जग को निज तेज से धोता हुआ यह चाक है या रवि-स्यंदन का।
मकरंद - सुधा - भरपूर सदा अरविंद है या यह नंदन का,
यह इंदु है, प्राची-दिगंगना के शुभ भाल मे बिंदु या चंदन का।

उपलक्षित भाग - सोहाग - भरा निशा - सुंदरी का यह भाल है या,
जग की रमणीयता की निधि संचित है जिसमे, वह थाल है या।
जिसने है अजेय बनाया उसे, मकरध्वज की वह ढाल है या;
तम का महाकाल कराल है या, मघवा - नगरी की मशाल है या।

बड़वानल छद्म स्वरूप - धरे या मनोज्ञ छटा सरसा रहा है,
वसुधा के समुद्र तो जीत चुका, नभ - सागर जीतने जा रहा है।
मणि कौस्तुभ है या, अपांपति से जो अभी निकला हुआ आ रहा है,
लगने से जहाँ-तहाँ शैवल-खंड जो शोभा विलक्षण छा रहा है।

विधि का हुआ उद्भव था जिसमे, कमलेश का पंकज क्या यही है,
कमलावलि देख जिसे इस लोक की आदर से सकुचा रही है।
मथने से समुद्र के प्राप्त हुआ सुधा का घट जो, यह क्या वही है,
जिसके सुधा - सिक्त कलेवर से जग मे सुधा की सरिता बही है।

परिवेश है चक्र सुदर्शन का, अथवा प्रतिभा सरसाता हुआ—
प्रहरी, जो प्रजागर देवतों का सदा स्वर्ग की फेरी लगाता हुआ,
जग का तम-तोम मिटाता हुआ, सित रश्मियों को बरसाता हुआ,
रजनी-रमणी की हमेल के बीच का हीरा है या छवि छाता हुआ।

मणियो से जड़ा सुर-नारियो का यह गेंद या व्योम मे राजता है,
सुकुमार करो से प्रताड़ित हो फिरता नभ - बीच जो नाचता है।
उठता है कभी, कभी है गिरता, फिर आप ही होता जो लापता है;
झड़ने से कहीं-कहीं माणिको के जिसके जरा बीच मे श्यामता है।

अथवा इस व्योम - सरोवर मे कलहंस अनोखा विराजता है,
बिखरे सित मोतियो के हित से उसको नही छोड़ना चाहता है।
वहता रहता सुर - नारि - सँदेश, नही थकना कुछ जानता है;
निज पंखों के बीच मे चोच छिपा टुक नींद मे लो, अवगाहता है।

प्रतिभा या पुरातन भारत की परलोक से होड़ लगा रही है;
जग मे प्रतियोगी न कोई कही, इससे उस देश को जा रही है,
निज धाम के छोड़ने की दुख-ज्वाल कराल उसे जो जला रही है,
इससे घने धूम की श्यामलता उसके उर - बीच समा रही है।

सुध कैरवो की भला आती किसे, जग मे तू उन्हे अपनाता न जो;
मरती बिना मारी चकोर - चमू, उसको सुधा पान कराता न जो।
रह जाती विरंचि की सृष्टि अपूर्ण, तुझे वह चंद्र! बनाता न जो;
जग नीरस था, प्रति रात को तू उसमे नया रंग लगाता न जो।

सुधा-चित्रावली

कविवर श्रीपं० जगदंबाप्रसादजी मिश्र 'हितैषी'

[आप खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि हैं। आजकल 'सुकवि' का संपादन करते हैं।]

श्रीयुत प्रोफ़ेसर रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०

[आपका 'भारतीय संगीत'-शीर्षक लेख पृष्ठ ४१३ पर प्रकाशित हुआ है।]

महाकवि श्रीयुत बा० सियारामशरणजी गुप्त

[आप खड़ी बोली के प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित कवि, नाटककार, उपन्यास लेखक और कहानी-लेखक हैं। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपकी 'परस्पर'-शीर्षक सुंदर, उत्कृष्ट कविता पृष्ठ ३७० पर देखिए।]
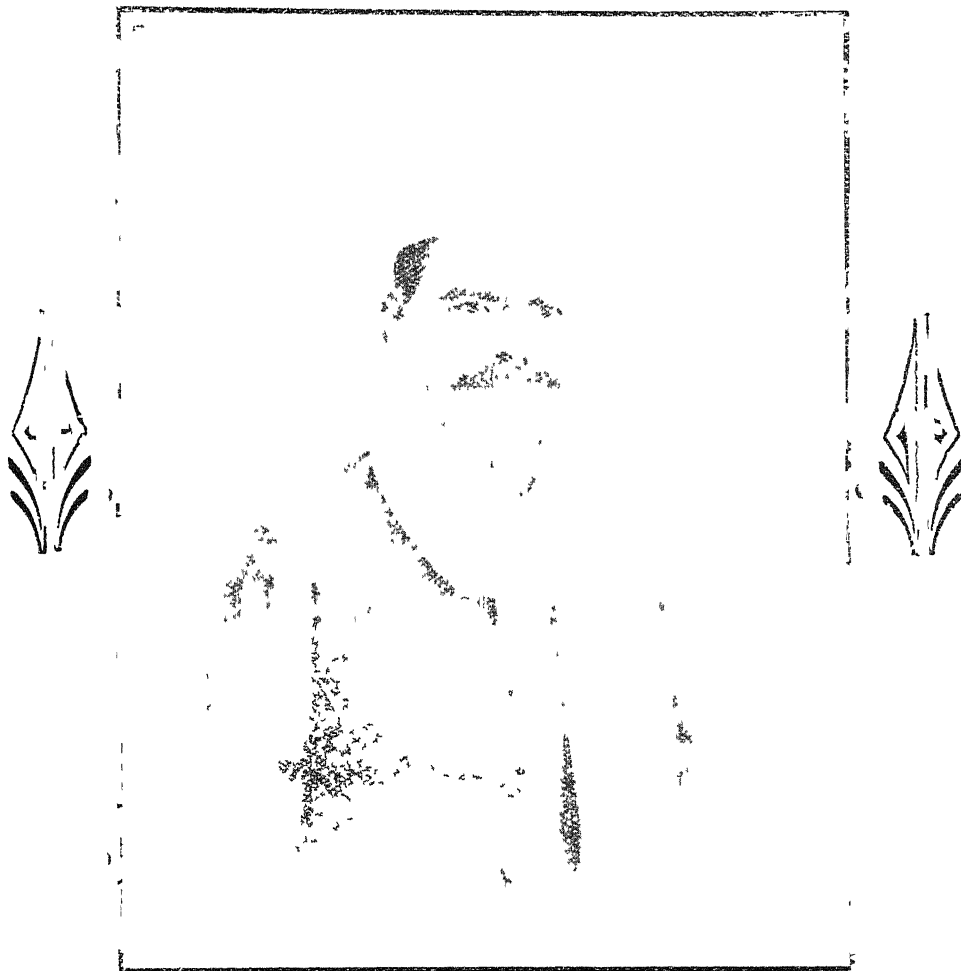
महाकवि श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

[आप कई वर्ष से 'सुकवि' मासिक पत्र निकाल रहे हैं। आपकी 'नवचन्द्र'-शीर्षक श्रेष्ठ कविता पृष्ठ ३६१ पर देखिए।]

पु० प्रतापनारायणजी कविरत्न

[आपकी 'श्मशान - सौंदर्य' - शीर्षक कविता पृष्ठ ३८४ पर देखिए । खड़ी बोली के 'नल नरेश'-नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्य के रचयिता आप ही हैं ।]

कु० पद्मावती चिन्नपा

[आप कुर्ग-प्रांत की रहनेवाली हैं । ग्रामोद्धार की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप टाटा की छात्रवृत्ति पाकर इँगलैंड गई हैं ।]

१ विश्व-कवि गेटे की कुछ कहावते

"He, who is ignorant of foreign languages, knows nothing of his own."

'Goethe'

वह, जो विदेशी भाषाओं से अपरिचित है, अपनी भाषा के बाबत कुछ नहीं जानता।

महाकवि गेटे की उपर्युक्त कहावत भले ही कितने ही व्यक्तियो को बीसवीं शताब्दी के सबसे बडे और क्रांतिकारी वैज्ञानिक प्रो० इंसटाइन का 'सापेक्षवाद' प्रतीत हो, किंतु यदि हम सत्य की खोज मे चले, और भली भाँति मनन करे, तो गेटे की कहावत 'इंसटाइन' के 'सापेक्षवाद' की तरह एक सत्य की कसौटी मे जकड़ी हुई है। महात्मा गांधी के मतानुसार जैसे विदेशी वस्तुओ का त्याग राष्ट्र-हित के लिये है, वैसे ही साहित्यिक महात्मा गेटे के मतानुसार विदेशी भाषाओ से अपरिचित रहना व्यक्तिगत अज्ञानता है।

आधुनिक हिंदी के साहित्योद्यान में अनुवादो की बेल अक्सर लगाई जा रही है, जो पीछे फूलती-फलती भी है, किंतु अधिकांश मे नव-विकसित पुष्प भी बासी रहते है। कारण, अनुवादकों को अँगरेज़ी-भाषा छोड़कर अन्य विदेशी भाषाओ का ज्ञान नहीं के बराबर रहता है। किंतु जब तक हमें विदेशी भाषाओं को सीखने की सुव्यवस्था और अवकाश नहीं मिलता, तब तक बासी ही द्वारा हिंदी-साहित्य की उदर-पूर्ति करनी पड़ेगी।

हिंदी-साहित्य अभी भेड़ियाधसान की चाल में मस्त है। एक तरफ लगा, तो दूसरी तरफ़ चाहे उसे सोना ही क्यो न मिल रहा हो, कुछ भी परवा नहीं करता। अँगरेज़ी, फ्रेंच और रसियन को तो ख़ूब अपनाया, किंतु बीच में जर्मन की ओर, जहाँ विश्व-कवि गेटे का एक अथाह साहित्यिक धन गडा है, उसने झाँका तक नहीं!

अतः यहाँ महाकवि गेटे की कुछ कहावते, जो विश्व-साहित्य के अनमोल हीरे हैं, हिंदी-साहित्य की हाट मे प्रदर्शित करते है। आशा है, इनका उचित मूल्य आँका जायगा—

"Wisdom lies only in truth"
ज्ञान केवल सत्य में रहता है ।

❀ ❀ ❀

"Everything that is worth saying has already been thought, we must only try to think it again."
हरएक बात, जो कहने लायक है, प्रथम ही सोची जा चुकी है, केवल हमे फिर से विचारने की आवश्यकता है ।

❀ ❀ ❀

"By blowing alone, you cannot play the flute, you must-also use your finger."
केवल फूँक मारने ही से तुम बाँसुरी नहीं बजा सकते, तुम्हें अपनी उँगलियाँ भी इस्तेमाल करनी पड़ेगी ।

❀ ❀ ❀

"Work makes the companion."
काम साथी बनाता है ।

❀ ❀ ❀

"Beauty can never learn clearly to understand itself."
सौंदर्य स्वयं ही अपने को कभी भली भाँति नहीं समझ सकता ।

❀ ❀ ❀

"Clever persons are always the best encyclopaedia"
चतुर मनुष्य सदा उत्तम कोष है ।

❀ ❀ ❀

"Of all people the greeks have dreampt the dream of life the best."
जीवन के स्वप्नों को यूनानियों ने सबसे अच्छा देखा है ।

❀ ❀ ❀

"Hope is second soul of unhappy."
आशा दुखी की दूसरी आत्मा है ।

❀ ❀ ❀

"It is less troublesome to sow than to reap"
बोना काटने से कम दुःखदायी है ।

❀ ❀ ❀

"Modern poets add a lot of water to their ink."
आधुनिक कवि अपनी स्याही में बहुत पानी मिलाते हैं ।

❀ ❀ ❀

"Contradiction and flattery are, both of them, poor materials for conversation."
खंडन और चापलूसी, दोनो बातचीत करने के कच्चे मसाले है ।

ललिताप्रसाद नैथाणी

× × ×

२. मिलन

(१)

काले मधुपो के सनेह मे
पड़ जाता है नलिनी सुंदर;
नीले नभ से मिल लेती है
नव - प्रभात मे उषा मनोहर।
श्यामल जमुना से मिलता है
गंगा का निर्मल जल पावन;
सघन बादलों का करती है
रूपवती चपला आलिंगन।

(२)

रजनी का मुख नित्य चूमते
हिममय पर्वत-शिखर मनोरम;

नील जलधि के साथ खेलती है
प्रकाश की किरणे अनुपम।
नही देखता है यह कोई,
है किसका कितना सुंदर तन.
हृदय-हृदय के मधुर मिलन मे
होते है तन्मय प्रेमी जन।

आनंदकुमार

× × ×

३. वीणा का उपहार

हुए जर्जर वीणा के तार।
टूटी वीणा का उपहार ले आई मै तेरे द्वार;
प्रभुवर ! तुम्हे समर्पण है यह, कर लेना स्वीकार।
टूटे तार, गई झकार।
मेरी वीणा के स्वर पर अब हँसता है ससार;
तुम्हे छोड तब मेरे प्रभुवर ! जाऊँ किसके द्वार?

(कुमारी) सरस्वती त्रिपाठी (विदुषी, विशारद)

× × ×

४ हिंदी मे सौंदर्य साहित्य

प्रसिद्ध फ्रेंच कवि जोजेफीन पेवाद ने एक जगह लिखा है—

"सौंदर्य मे ही हमारी मुक्ति निहित है।"

भारतवर्ष आध्यात्मिक देश है, आधिभौतिक नहीं, एवं इसी मे इसका गौरव है। इस बात को हम अभिमान के साथ स्वीकार करते हैं, पर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' या 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' कहने की नही, अपितु अनुभव करने की बाते है। फिर समय भी तो कोई चीज़ है। एक समय था, जब वेद अपौरुषेयता के बल पर प्रभु-सम्मत आदरणीय थे, एक समय मे वे ही धूर्त, भाँड और निशाचरों की रचनाएँ कहलाकर तिरस्कृत किए जाने लगे! एक समय था, जब शरीर-रक्षार्थ ऋण ग्रहण करके भी घृत-पान पवित्र समझा जाता था। एक समय था, जब शरीर नश्वर समझकर सम्राट् भी वन्य बनने मे गौरव का अनुभव करते थे। अब प्रश्न यह उठता है कि यह सब हुआ क्यों? इसका उत्तर हम संक्षेप मे सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री भगवान् चाणक्य के शब्दों में दे देना उपयुक्त समझते है—'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। जब कोई भी वस्तु अस्वाभाविक रूप से बढ़ या घट जाती है, तभी नष्ट कहलाती है। यदि युक्ति-कौशल से दोनो का समन्वय कर दिया जाय, तो नाश होना अनिवार्य भी न रह जाय। हमे तो 'शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्' एवं 'एकान्तविध्वसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु' का एकीकरण समुचित एवं सुष्ठु प्रतीत होता है।

हाँ, भारत मे अवांछनीय वेदांत-वाद के प्रचार से राष्ट्रीय स्वास्थ्य की जो क्षति हुई है, उसके लिये आवश्यकता है किसी समुचित प्रयोग द्वारा पुनरपि प्राण प्रतिष्ठा एव नव रस-संचार करने की। इस समय हम केवल एक बात का उल्लेख कर, जो नितांत आवश्यक एव मूलभूत है, समझदार व्यक्तियो का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इसका नाम है—सौंदर्य।

भले ही कुछ लोग इसे पाश्चात्य शैली का अनुकरण कहकर वेदांत-वाद की दुहाई देकर कोसें, पर हम एक ओस तथ्य के सामने टनो तर्कों का त्याग युक्त एवं संगत समझते है। हम सौंदर्य को केवल मनोरंजक कहना उसके साथ घोर अन्याय करना समझते हैं। हमारे यहाँ एक कहावत चिर-प्रचलित है—'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' अर्थात् He handsome is who handsome does भगवान् रामचंद्र (जो मर्यादा-पुरुषोत्तम थे) का सौंदर्य जगद्विमोहक प्रसिद्ध ही है, लीलावतार भगवान् कृष्ण सुंदर होने के कारण ही मोहन कहे जाते थे। जगज्जननी भगवती सीता एवं लीलामयी जग-विमोहिका भगवती राधा अथवा अन्यान्य देवियों की

सौंदर्य-गाथा विश्व विश्रुत ही नहीं, अपितु बाहुल्येन प्रचलित है। इनके गुणों का उल्लेख करके परिचय देना भगवान् भास्कर को दीपक लेकर परिचय कराने से भी अधिक उपहासास्पद है। अस्तु। कहने का आशय यह कि इतने महत्त्व-पूर्ण विषय पर हिंदी में एक भी ऐसी पुस्तक नहीं, जिसका हम गर्व के साथ नाम ले सकें!

प्रथम तो यह विषय काम-शास्त्र से संबद्ध माना जाता है। है भी, अतएव इसका वर्णन काम-शास्त्र-संबधी पुस्तकों में अनिवार्य-सा माना गया है। प्रायः प्रत्येक काम-शास्त्र की पुस्तक में इसका वर्णन मिलता भी है। काम-शास्त्र एक नितांत नाज़ुक एवं उपयोगी विषय है। इस पर लिखने के लिये किसी उत्तरदायी व्यक्ति को कलम उठानी चाहिए। संस्कृत मे इस पर कई किताबें हैं, जिनमें महर्षि वात्स्यायन का 'काम सूत्र' विशेष रूप से अर्हणीय एवं प्रचार्य माना जाता है। हिंदी में भी कई पुराने ढंग की सुंदर एवं बाजारू किताबें है। इधर एक दो नए ढंग की पुस्तकें भी निकली है, इन पर फिर लिखा जायगा।

इधर स्वतंत्र पुस्तकों में सर्वप्रथम मेरी दृष्टि ठाकुर श्रीनाथसिंह की 'यौवन, सौंदर्य और प्रेम'-नामक पुस्तक पर पडती है। इसमें कई जगह मतभेद रखते हुए भी हम इसे एक सुंदर पुस्तक समझकर आदर की दृष्टि से देखते हैं। दूसरी श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर की 'स्त्री और सौंदर्य' सुंदर पुस्तक है। अस्तु।

इधर पत्र पत्रिकाओं मे श्रीबुद्धिसागर वर्मा बी० ए०, एल्० टी०, विशारद एवं श्रीरमेशप्रसाद बी० एस्-सी० ने भी कुछ लेख लिखे है। वर्माजी ने प्रत्येक अंग के सौंदर्य पर लेख लिखे हैं। इनमें से अधिकांश 'सुधा' में प्रकाशित हुए हैं, अतएव मुझे आशा होती है कि हिंदी के प्रकाशकों मे अनन्यतम स्थान रखनेवाले श्रीदुलारेलालजी भार्गव शीघ्र ही इन्हें प्रकाशित कर हिंदी संसार को अनुगृहीत करेंगे। सचमुच ही यह हिंदी मे अपने विषय की अनोखी पुस्तक होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। यद्यपि इन प्रबंधों मे कुछ ऐसे पैरे भी रहते हैं, जिनका न होना भी हानिकर नहीं कहा जा सकता, जैसे कविताओं के नोटस् देना, पर इससे कविता-रसिक कुछ-न-कुछ लाभ उठाते ही होंगे, अतएव ठीक ही है। हाँ, यदि इनमे अप्राकृतिक उपायों का भी सन्निवेश कर दिया जाता, तो बेहतर था, क्योंकि—

उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैंवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति;
दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।

अब वैज्ञानिकों ने अथक परिश्रम करके सौंदर्य-संबधी वस्तुओं का निर्माण किया है, तो उनसे लाभ क्यों न उठाया जाय। अभी हम रमेशप्रसादजी के लेखों की संख्या कम होने की वजह से उन पर विशेष रूप से नहीं लिखना चाहते। हाँ, सुंदर एवं उपयोगी हैं, इतना कहकर फ़ुर्सत माँगते हैं*।

त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी

* लेखक की 'सौंदर्य-विज्ञान'-नामक अप्रकाशित पुस्तक की भूमिका के आधार पर।—लेखक

सवाक् चित्रपट मे सगीत का स्थान

कुछ ही समय पहले हमारे यहाँ नाटक-कपनियो का अधिक प्रचार था। परंतु जब से सवाक् चित्रपट तैयार होने लगे है, तब से जनता का ध्यान नाटक की ओर से हटकर सवाक् चित्रपट की ओर आकृष्ट हो गया है। क्योकि जिस प्रकार नाटक मे पात्र आपस मे वार्तालाप करते तथा गाते है, उसी प्रकार सवाक् चित्रपट मे भी करते है। किंतु फिर भी कुछ नाटक-प्रेमियों का कथन है कि जो आनंद अभिनयकर्ताओ के हूबहू सम्मुख आने से प्राप्त होता है, वह सवाक् चित्रपट पर छाया-घोडे के सदृश पात्रो तथा पात्रियो के आने से नही, यद्यपि इनमें भी वार्तालाप तथा संगीत रहता है। नाटक-प्रेमियों की यह धारणा अक्षरशः सत्य नही। यदि कोई सवाक् चित्रपट समय, स्थान, वातावरण, कथानक आदि का ठीक-ठीक ध्यान रखकर तैयार किया जाता है, और यदि उसमे जीवन की वास्तविक अनुभूति का प्राधान्य रहता है, तो वह नाटक की अपेक्षा जन-साधारण के लिये अधिक प्रभावोत्पादक होता है। कितने ही ऐसे दृश्य है, जो नाटक मे पूर्णतया प्रदर्शित नही किए जा सकते। नाटक होते समय दर्शको के हृदय मे एक धारणा-सी बनी रहती है कि अमुक बात का दिखलाना संभव नही। परतु सिनेमा मे ये असंभव वस्तुएँ भी संभव हो जाती है। यदि नाटक मे कुछ विचित्र बाते प्रदर्शित की जाती है, तो दर्शक विश्वास करने को तैयार नही होते। कह देते है—"कृत्रिमता है।" हमारे भारतीय सवाक् चित्रपटो मे नाटक की भाँति यही 'कृत्रिमता' अपना सिक्का जमाए हुए है। बोलते हुए सिनेमा मे इसका प्रादुर्भाव मुख्यतया असामयिक गानो से होता है। प्राय. देखा जाता है कि किसी का पुत्र तो मृतक पड़ा हुआ है, और माता बैठी ताने ले-लेकर गा रही है*। कोई किसी से पिटकर आता है, और आकर अपने साथियों से भाग चलने को कहता है, तथा भाग चलना भी गाने मे ही कहता है, साथ मे ताने लेकर अपनी उस्तादी छाँटता है †।

* 'मायामच्छींद्र' और 'अयोध्या के राजा' में देख लीजिए।

† 'सौभाग्य-सुंदरी' में।

ऐसे स्थानो पर कृत्रिमता तथा अस्वाभाविकता की परा काष्ठा हो जाती है, जिसे कलाविज्ञ तो क्या, जन-साधारण भी न फूटी आँखों देख सकते, न बहरे कानो सुन सकते है। सुतरां भारतीय चित्रपट में स्थान के अनुपयुक्त गानों के कारण ही -यह कृत्रिमता बहुरूपेण आ जाती है।

सवाक् चित्रपट मे आजकल तीन प्रकार से संगीत का समावेश किया जाता है—(१) वाद्य-यंत्रो का बजना तथा साथ-साथ अलग गाना भी, जिसका कथानक से कोई सबंध न हो, (२) वे गाने, जो कहानी से सबधित होते है, और (३) वे गायन, जो बीच-बीच मे गायको को बुलवाकर गवाए जाते है। भारतीय फ़िल्मो मे तीसरा प्रकार बहुत काम मे लाया जाता है। हम प्रायः देखते है कि लगभग जितने बोलते फिल्म तैयार होते है, उनमें यदि दरबार का दृश्य हुआ, तो नर्तकियों का नाच करवा देते है, यदि कोई साधारण महफिल हुई, तो गायकों या वेश्याओं का गाना करा देते है, यदि कुछ मित्रो की गोष्ठी हुई, तो उनमे से कोई मित्र ही गाने लग जाता है। 'डाकू की लड़की', 'भोला शिकार', 'मिस १६३३' आदि फिल्में इसके उदाहरण-स्वरूप है। इस तीसरे प्रकार में अस्वाभाविकता की अधिक सभावना रहती है।

दूसरे प्रकार के गाने वे है, जो हमें न्यू थिएटर्स के 'पूरण भक्त' मे मिलते है। इन तीनो प्रकारों मे दूसरा ही सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। 'पूरण भक्त' मे जितने गाने है, सब कथानक से संबंधित है। केवल दो एक स्थानों पर इसमे तीसरे प्रकार का अनुसरण किया गया है। इसमें पद्धति तथा प्रणाली के कारण ही ऐसा हुआ है।

जब अभिनयकर्ता अपने भाव प्रदर्शित करता है, तो उस समय वाद्य यत्र बजते है। इससे पात्र को अभिनय करने मे एक सहारा मिल जाता है। परंतु यह तभी होता है, जब भावानुरूप कोई राग या रागिनी बजाई जाती है। यदि कारुणिक भाव-प्रदर्शन के समय 'सोहनी' आदि गंभीर रागिनियों की गत बजाई जाती है, तो अधिक उपयुक्त होती है। समयानुरूप रागिनी न होने से वाद्य-यत्र भी कानो को खटकनेवाले हो जाते है।

बहुत-से लोग कहा करते है कि सवाक् चित्रपट में सगीत का समावेश केवल सौदर्य-वृद्धि के लिये किया जाता है। परतु यह कथन सर्वथा सत्य नहीं। गाने किसी विशेष मंतव्य को साथ लेकर रक्खे जाते है। उनका पहला उद्देश्य है कहानी तथा दर्शको के बीच यथायोग्य समन्वय उपस्थित करना। दूसरे, अभिनय-कला का कसौटी-रूप से वर्तमान रहना। सगीत हृदय-भाव-द्योतक आनन की आकृति परिवर्तित करने मे पूरा सहयोग देता तथा अभिनयकर्ता की पूर्णतया परीक्षा ले लेता है। संगीत से जितना आनंद कर्ण-कुहरो को प्राप्त होता है, उतना ही नेत्रो को भी। सवाक् चित्रपट 'पूरण भक्त' में जब अतिम गाना गाया जाता है—"जाओ-जाओ ऐ मेरे साधो, रहो गुरू के संग।" इत्यादि, उस समय की ध्वनि, अभिनय, स्थान की नीरवता, गाने का

समयोचित होगा आदि का ऐसा सामजस्य हो जाता है कि दर्शक अपने को भी भूल जाता है, तथा उसी संगीत तथा दृश्य के प्रति विचारार्णव मे गोते लगाने लगता है। उसे एक असीम आनद प्राप्त होता है। उसे मालूम होने लगता है कि वहाँ का जन-समुदाय, राजमहल और प्राकृतिक सृष्टि भी उसी सगीत मे लीन है। औचित्य-पूर्ण सगीत का बस यही आनंद है। तत्पश्चात् इसी विषय मे किसी ऊहापोह की आवश्यकता नहीं रहती।

किसी भी फिल्म-निर्माता के लिये अपने चित्रपट मे कला-पूर्ण* सगीत लाना उस समय तक व्यर्थ है, जब तक उसे समय, स्थान, कथानक आदि के पूरे संबंध का ज्ञान न हो। वह अपने चित्रपट मे संगीत इसलिये रखता है कि कहानी मे धारा-प्रवाह रहे, वातावरण या वृत्त दर्शकों के सम्मुख स्वच्छ दर्पण की भाँति उपस्थित हो, एक दृश्य से दूसरे दृश्य का नित्य-सबध रहे, तथा समवेदनात्मक होकर जनता के हृदय पर चोट पहुँचाता हुआ उसे मत्र-मुग्ध कर बुत बना दे। परंतु ऐसा न होना चाहिए कि संगीत के आनंद मे दर्शक कहानी के प्लाट को ही भूल जायँ। संगीत के साथ-साथ उन्हे कहानी का ध्यान अवश्य रहना चाहिए। इससे उन्हे द्विगुण आनद मिलेगा।

* कला-पूर्ण संगीत का तात्पर्य गलेबाजी से नहीं, वरन् आकर्षण से है।

'राजरानी मीरा'* एक धार्मिक एवं भक्ति-भाव से परिपूर्ण चित्रपट है। भक्त-हृदय को तो इसमे अलौकिक आनंद मिलेगा ही; पर कलाविज्ञ भी आनंद-प्राप्ति से वचित नहीं रह सकता है, क्योकि इसमे अभिनय-कला की न्यूनता दृष्टिगोचर नहीं होती। इसमे संगीत का जो उपयोग किया गया है, उसे हम उदाहरण-स्वरूप रखकर कह सकते है कि हमे प्रायः सभी स्थानों पर सगीत के अक्षुण्ण औचित्य की अनुभूति प्राप्त होती है। अस्तु।

सवाक् चित्रपट-निर्माता को संगीत का उपयोग धड़ाके के साथ कहानी से सबध रखते हुए गानों के द्वारा करना चाहिए। इससे अस्वाभाविकता तथा कृत्रिमता नाम को भी न रहेगी।

यशोदानंदन शर्मा 'सेवक' (विशारद)

* न्यू थिएटर्स, कलकत्ता का तैयार किया हुआ।
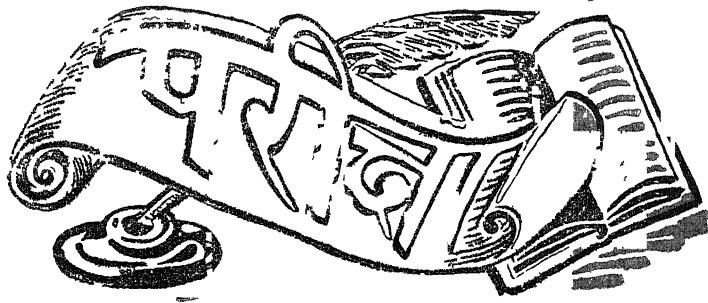
बिस्मिल की शायरी—लेखक, श्रीसुखदेवप्रसाद सिनहा 'बिस्मिल', प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागज, प्रयाग, पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य १॥), सजिल्द।

बिस्मिल साहब उर्दू के श्रेष्ठ कवि हैं। परंतु उनका उर्दू तथा हिंदी, दोनो ही मे बराबर मान है। उनकी कविता बड़ी चुटीली, व्यंग्य-पूर्ण तथा रसमय होती है। भाषा बड़ी सरल होती है—

"सहल लिख-लिखकर यह क्या
अच्छा तमाशा कर दिया,
हज़रते बिस्मिल ने तो
उर्दू को भाषा कर दिया!"

वास्तव मे बिस्मिल साहब ने उर्दू को भाषा ही बना दिया है। उनकी कविता का यही गुण है—लाख रुपए की बात दो शब्दों मे कह जायँगे। और, वे दो शब्द इतने सीधे तथा सरल होंगे कि एक देहाती भी समझ जाय। कविता की कसौटी पर किसी कवि की रचना पूरी नही उतर सकती, जब तक उसकी भाषा सरल तथा सर्व-साधारण के समझने योग्य न हो। बिस्मिल की कविता इस दृष्टि से पूरी उतरती है। तभी तो 'बिस्मिल' आज 'बिस्मिल' है—उनका नाम है, उनकी तारीफ है।

उर्दू के शायरों में जो स्थान अकबर को प्राप्त हो चुका है, वह साधारण नहीं है। बिस्मिल की कविता स्वर्गीय अकबर साहब की कविता से किसी हद तक टक्कर लेती है, इसमे भी संदेह नही है। बिस्मिल साहब उर्दू-साहित्य मे अकबर के बराबर ही आसन प्राप्त करेंगे—हमारी यही आशा है, यही अभिलाषा है।

थोड़े ही समय मे बिस्मिल साहब की कलम ने क्या गज़ब ढाया है, वह प्रस्तुत पुस्तक में संकलित कविताओ की प्रत्येक पंक्ति से विदित है। 'भविष्य' के 'केसर की क्यारी'-शीर्षक स्तभ मे बिस्मिल की मज़ेदार रचनाएँ हिंदी-प्रेमियो को ख़ूब ही पढ़ने को मिलती थी। ऐसा कौन है, जो बिस्मिल से तथा बिस्मिल की कविता से परिचित न हो। जिसने बिस्मिल को एक बार सुना है, वह आज भी उन्हे याद करता है। जो बिस्मिल को एक बार पढ़ लेगा, वह हमेशा दाद देगा। बिस्मिल की कविता मे अजीब सादगी है, और उस सादगी मे अद्भुत लुत्फ। प्रस्तुत पुस्तक बिस्मिल साहब की कुछ मज़ेदार रचनाओं का एक अपूर्व सुंदर संग्रह है। आशा है, हिंदी-संसार में इस पुस्तक का समुचित आदर होगा।

पृथ्वीपालसिह
(बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

आदर्श-कथा-मंजरी—लेखक, श्रीयुत हंसराज एम्० ए०, प्रकाशक, मेहरचंद्र-लक्ष्मणदास, लाहौर, पृष्ठ-संख्या २४४ ; मूल्य सजिल्द २॥)

इस पुस्तक मे ग्यारह कहानियाँ एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई है। प्रत्येक कथा में हिंदू-सभ्यता के एक-न-एक प्रधान अंग के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया गया है। मुख्यतः लेखक का उद्देश्य यही है कि पुस्तक विद्यार्थियो के लिये कोर्स मे निर्धारित हो जाय। किसी विशेष उद्देश्य को दृष्टि मे रखने से पुस्तक मे मनोरंजकता की मात्रा कुछ कम अवश्य हो जाती है, परंतु, आशा है, इससे विद्यार्थियों का मनोरजन उचित मात्रा मे हो सकेगा। कहानियाँ बिलकुल मामूली हैं, और मौलिक होने पर भी उनमे पाठकों के हृदय पर उतना प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति नहीं, जितना हिंदी के अन्य कई लेखकों की कहानियाँ करती है। पुस्तक की भाषा सरल है, और प्रांतीयता के दोषों से प्रायः मुक्त है। पुस्तक बालको और स्कूल के विद्यार्थियो के पढ़ने योग्य है। छपाई साधारणतः अच्छी है, परंतु मूल्य कुछ अधिक मालूम होता है।

केदारनाथ भट्ट (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

त्रिदोष-मीमांसा—लेखक, स्वामी हरिशरणानंद वैद्य, प्रकाशक, आयुर्वेद - विज्ञान - ग्रंथ माला-ऑफ़िस, अमृतसर, पृष्ठ-संख्या २३१, मूल्य १)

इस पुस्तक को पढ़कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। लेखक एक मननशील, निष्पक्ष तथा सत्यान्वेषण-प्रेमी वैद्य है। आयुर्वेद का त्रिदोष-सिद्धांत ही वह नीव है, जिस पर हमारी संपूर्ण वैद्यक-चिकित्सा-प्रणाली की इमारत खडी है। और, वर्षों से लोग त्रिदोष-वाद के तथ्य का विचार करते आ रहे है। लेखक ने एक आलोचक की दृष्टि से त्रिदोष का वास्तविक इतिहास, रूप और विकास बतलाते हुए कुछ आधुनिक वैज्ञानिक प्रमाण भी मुकाबले मे रख दिए है, जो उस सिद्धांत के विरुद्ध पडते है। जिज्ञासुओ को दोनो पक्षों की सबलता तथा निर्बलता देखकर अपनी सम्मति स्थिर करने की सुविधा है। जो वैद्य पुराने ग्रंथों के बाहर की किसी भी बात को मानने के लिये तैयार नहीं, अथवा जो त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) का हौआ दिखलाकर ही आयुर्वेद की महत्ता प्रमाणित करना चाहते है, उन्हे चाहिए कि स्वामी हरिशरणानंद के आधुनिक ढंग पर लिखे हुए इस ग्रंथ का शांति पूर्वक मनन करे। और, यदि इसमें प्रतिपादित युक्तियाँ उन्हे सार-हीन मालूम हों, तो उनका खडन कर आगे अनुसधान जारी रक्खे। दूसरे पक्ष को केवल इसी कारण से हेय न समझ ले कि उसमे उनके पुराने विश्वासों को हिला डालनेवाली बाते हैं। आयुर्वेद भी विज्ञान है, और उसमे सदा यह शक्ति रहनी चाहिए कि नित्य नई खोज हो, और उसके द्वारा जो सत्य प्राप्त हो, उसका उचित आदर किया जाय। ऐसा करने से ही रोगो का नाश और प्राणों की रक्षा हो सकेगी। आशा है, वैद्यगण त्रिदोषवाद की वैज्ञानिक व्याख्या करने मे इस पुस्तक पर भी एक समालोचनात्मक दृष्टि अवश्य डालेंगे। और, केवल शब्द-प्रमाण के भरोसे न रहकर आधुनिक विज्ञान के प्रयोगो तथा अनुसंधानों द्वारा अपनी चिकित्सा-प्रणाली को समुन्नत बनावेंगे।

एक आयुर्वेद-प्रेमी

× × ×

आज का रूस—लेखक, नित्यनारायण बनर्जी, अनुवादक, व्रजमोहन वर्मा, प्रकाशक, विशाल भारत-बुक-डिपो १९५। १ हरिसन रोड, कलकत्ता, पृष्ठ-संख्या २४०, मूल्य ३)

आधुनिक संसार के क्रांतिमय परिवर्तनों मे रूस का राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। इसी कारण रूस के विषय

मे सभी देशों मे बडी भारी जिज्ञासा है, जिसकी पूर्ति के लिये प्राय सभी भाषाओं मे एक से-एक नवीन ग्रंथ प्रकाशित होते रहते है। और, वहाँ की विलक्षण स्थिति से अभिज्ञ होने की सभी को उत्कंठा रहती है। हिंदी मे रूस-संबंधी साहित्य की बहुत कमी है। इस पुस्तक द्वारा पाठकों को रूस की वर्तमान स्थिति की अनेक महत्त्व-पूर्ण बातों का ज्ञान होगा। लेखक महाशय ने रूस को आँख खोलकर देखा है, और भारतवासियों के जानने योग्य सभी बातों का समावेश अपनी पुस्तक मे कर दिया है। अनुवादक ने बड़े परिश्रम से, बडी अच्छी भाषा मे अनुवाद ही नहीं किया है, बल्कि पुस्तक मे चित्रों की संख्या तथा अन्य कई आवश्यक विषय भी बढा दिए है। इस प्रकार पुस्तक पूर्ण रूप से पठनीय तथा संग्रहणीय हो गई है। छपाई-सफाई और जिल्द से पुस्तक की शोभा और भी बढ़ गई है। कोई पुस्तकालय इस पुस्तक के विना न होना चाहिए, और सभी पुस्तक-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

× × ×

कृषक से राव साहब—लेखक, ठाकुर दिलीपसिंह; प्रकाशक, दिलीप-सुचित्ताश्रम, गहरेंदा, पो० आ० धनुहीखेरा, जिला उन्नाव, पृष्ठ-संख्या १५२, मूल्य १)

यह पुस्तक राव साहब ठाकुर गंगासिंह भूतपूर्व एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर सी० पी० की संक्षिप्त जीवनी है। उक्त राव साहब ने साधारण स्थिति से जीवन-यात्रा आरंभ की थी, परंतु अपने अध्यवसाय और चरित्र के बल से प्रधान मंत्री, अजयगढ़-राज्य, के पद तक पहुँचे। ठाकुर दिलीपसिंह ने अपने पिता का जीवन-चरित बडी श्रद्धा के साथ लिखा है, और उससे अनेक उपदेश मिलते हैं। पुस्तक की छपाई, कागज इत्यादि बहुत अच्छे है। ६ चित्र भी हैं।

× × ×

साम्यवाद की ओर—लेखक, दीवान रामचंद्र कपूर, प्रकाशक, सामयिक साहित्य-भवन, काशी, पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य ।~)

लेखक 'साम्यवाद' पर एक पुस्तक लिखना चाहते हैं, यह पुस्तिका उसी की भूमिका-मात्र है। इसमे 'साम्यवाद' की ओर समाज का क्रमागत विकास दिखलाया गया है। लेखक इस विषय के मनस्वी विद्यार्थी प्रतीत होते है, और उनका प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है। आशा है, वह शीघ्र ही हिंदी-भाषियों तक 'साम्यवाद' के संपूर्ण सिद्धांत पहुँचाएँगे। पुस्तक की छपाई अच्छी है, और लेखन शैली साफ़-सुथरी।

× × ×

निरुद्देश्य—लेखक, दीनानाथ मिश्र एम्० ए०, बी० एल्०, प्रकाशक, डा० एन्० शर्मा १२७ एफ् बलराम दे स्ट्रीट, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या ७२; मूल्य ।।)

यह एक छोटा-सा उपन्यास है। छपाई अच्छी नहीं है। कथानक त्रुटि-पूर्ण, भाषा दोष-पूर्ण और सचमुच निरुद्देश्य है। लेखक महाशय शिक्षित सज्जन हैं, यदि इसे छपाने से पहले अपने किसी साहित्यिक मित्र को दिखलाते, तो शायद इसके छपने की नौबत न आती। चाहे जो कुछ लिख डालना और बात है, उस पर लेखक का पूर्ण अधिकार है, परंतु अपने 'उमड़ते' हुए भावों को सर्व-साधारण के सामने, पुस्तक-रूप में, पेश करना बिलकुल दूसरी बात है। यह काम काफ़ी सोच विचार के बाद ही करना चाहिए।

× × ×

दूध-बताशा—लेखक, सोहनलाल द्विवेदी बी० ए०, प्रकाशक, भारती-भंडार रामघाट, काशी, पृष्ठ-संख्या ४६, मूल्य ।।।)

यह सचित्र और सुंदर पुस्तक बालकों के लिये लिखी गई कविताओं का संग्रह है। कवि है हिंदी के उदीयमान नक्षत्र पं० सोहनलाल द्विवेदी। पद्यों के भाव और विषय बालकों की समझ के अनुकूल है, तथा भाषा बड़ी सरल है। सभी कविताएँ ऐसी

हैं, जिन्हे बालक चाव से पढ़ ले, और आसानी से कंठस्थ कर लें। बालकों के लिये अवश्य इस पुस्तक को संग्रह करना चाहिए। छपाई-सफ़ाई, रंगीन और सादे चित्रों की योजना प्रकाशक की योग्यता तथा सुरुचि साबित करती है।

केदारनाथ भट्ट (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

ज्योत्स्ना—लेखक, श्रीसुमित्रानदन पंत, प्रकाशक, श्रीदुलारेलाल भार्गव; प्राप्ति-स्थान—गंगा-ग्रंथागार ३६, लाटूश रोड, लखनऊ, मूल्य १), राजसंस्करण १॥)

श्रीयुत पंतजी किन्हीं-किन्हीं आलोचकों के मत से आधुनिक हिंदी-कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि है। आपकी पाँच पुस्तकें निकल चुकी है—१ 'पल्लव', २ 'वीणा', ३ 'ग्रंथि', ४ 'गुंजन' और ५ 'ज्योत्स्ना'—जिनमें चार काव्य है, पाँचवीं नाटक।

हिंदी का नाटक-साहित्य कितना अल्प है, इस पर भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा बहुत बार बहुत कुछ कहा जा चुका है। अतएव इस पिष्टपेषण की ज़रूरत नहीं। सचमुच हिंदी में वास्तविक नाटक कहलाने की अधिकारिणी पुस्तकें अत्यल्प हैं। संतोष का विषय है कि हमारे पतजी-जैसे कलाकार ने इस ओर बढने का कष्ट किया है। यह हमारी आशा-लता को सिंचन करने के लिये पर्याप्त एवं उपयुक्त जल है।

संसार के नाटक-साहित्य से तो अभी हमारा परिचय नगण्य-सा है, पर हिंदी में इस शैली का कोई नाटक शायद नहीं है। हाँ, Sheely की एक नाटिका अवश्य मुझे मिली है, पर वह तो अँगरेज़ी में है। पंतजी की ज्योत्स्ना सचमुच स्वच्छ एवं विशद ज्योत्स्ना है। इसमे हमारे कलाकार की मधुर कल्पनाओं एवं पवित्र भावनाओं अथच काव्य-आदर्शों के ऐसे मोहक चित्र है, जिन्हे देखकर अरसिक और हृदय-हीन भी 'आह' करने को बाध्य हो जाते हैं, फिर रसिकों एवं सहृदयों की कौन कथा! जेहि मारुत गिरि मेरु उडाही, कहौ तूल केहि लेखे माहीं।

संसार का साहित्य मध्यकालीन युग मे 'बनिया-पन' के विषाक्त वायु से चंचल हो उठा था, उसकी कसौटी का आधार बन गए यश, अर्थ वग़ैरह-वग़ैरह। जिसके वशवर्ती होकर गोस्वामीजी-जैसा कलाकार भी 'स्वान्तःसुखाय' की प्रतिज्ञा करके शिक्षा और आदर्श के गहरे गर्त मे गिर पडा है। ससार के प्रायः सभी साहित्य-लक्षणकार सफल रस-संचारक को सफल कलाकार मानते आए हैं, पर रस सिद्धि पर ध्यान देनेवाले सफल रससिद्ध गिने-चुने ही कलाकार हुए हैं।

पंतजी की कांतकलेवरा कृति पाँच भागों मे विभक्त सुंदर एवं मोहक है। हम इस सुंदरतम कृति के उत्पादक श्रीयुत पंतजी को शतशः बधाइयाँ देकर पुस्तक प्रचरित हो, यह कामना करते हुए विश्राम करते हैं।

त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी
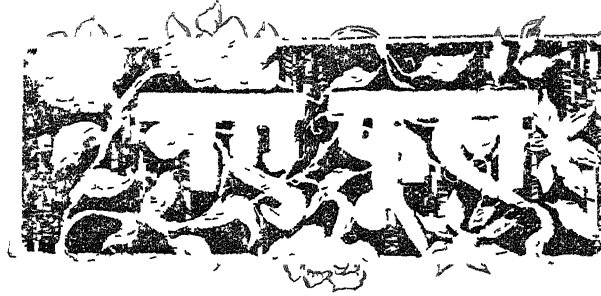
इस स्तंभ में हम हिंदी प्रेमियों की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तकों के नाम देते हैं। पिछले महीने में निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—

(१) 'आयल इंजन'—लेखक, मास्टर कुंदनसिंह; मूल्य १।)

(२) 'तरकस'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी; मूल्य ॥)

(३) 'प्रेम-लोक'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, मूल्य ॥।)

(४) 'वानर-संगीत'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी; मूल्य ।)

(५) 'जयंत'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी; मूल्य ॥।)

(६) 'हिंदुस्तानी कोष'—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, मूल्य २)

(७) 'राक्षसों की कहानियाँ'—लेखक, पं० आनंदकुमार त्रिपाठी; मूल्य ।≈)

(८) 'स्वामी के पत्र'—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर, मूल्य २॥)

(९) 'बोध-कहानियाँ'—लेखक, श्रीयुत व्यथित हृदय, मूल्य १)

(१०) 'आदर्श पाक-शिक्षा'—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर; मूल्य २॥)

(११) 'ऊमर काव्य'—लेखक, कवि ऊमर-दान; मूल्य १।)

(१२) 'तिब्बत में सवा बरस'—लेखक, राहुल सांकृतायन, मूल्य ३)

(१३) 'पराजित गांधी'—लेखक, श्रीचतुरसेन शास्त्री; मूल्य १)

(१४) 'महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह'—लेखक, श्रीकमलनारायण झा 'कमल'; मूल्य ।)

(१५) 'संक्षिप्त भूषण'—लेखक, श्रीशंभुदयालु सकसेना, मूल्य ॥।)

(१६) 'नवीन भाषा-पत्र-विज्ञान'—लेखक, मुंशी मुन्नीलाल राठौर, मूल्य ≈)
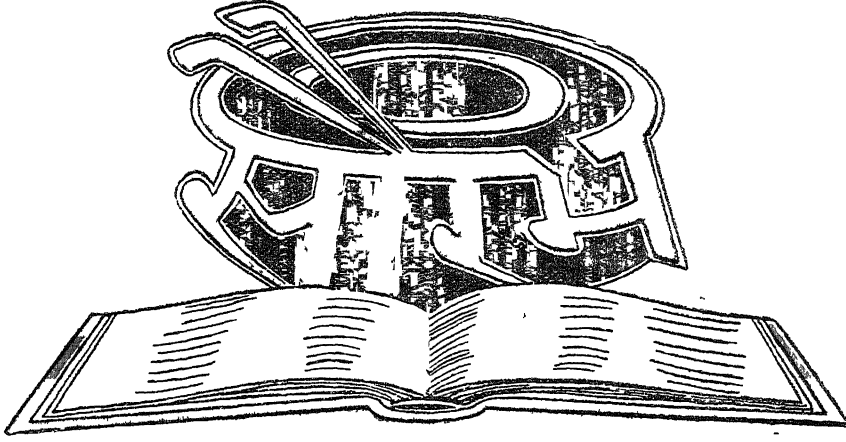
[सम्पादकीय विचार]

१. साहित्य का चरित्र

हित्य का चरित्र वह बुनियाद है, जहाँ से अनेक प्रकार के भाव उत्तमोत्तम भाषा से सजकर निकलते हैं। ज़मीन का अच्छा होना, ख़ूब जोता जाना, खाद पड़ना जिस तरह अच्छी खेती होने का कारण है, उसी तरह साहित्य के लिये भी कहा जायगा। साहित्य के चरित्र का पहला भाग है शिक्षा और अध्ययन। इसी उपाय से मन विषय-विशेष में प्रवेश करके अपने कोमलत्व से उसे ग्रहण करता है, अपने मे खाद को मिट्टी की तरह मिलाता है। समस्त अध्ययन जब जीवनी-शक्ति मे बदल जाता है—केवल रटी बात नहीं रहती, तब उसे उस विषय की शिक्षा का प्राण-स्पंद हुआ कहते है। आत्मा यह भी नहीं, आत्मा अपनी मुक्ति का रूप उसी विषय की मौलिकता पैदा करके प्रदर्शित करती है। यह मौलिकता या आत्मा वह बीज है, जिसकी उत्पत्ति का कारण नहीं, या स्वयं जो अपनी उत्पत्ति का कारण है।

यह आत्मावाली मौलिकता हमारे साहित्य में चारित्रिक उत्कर्ष से ही विस्तार प्राप्त करेगी। अभी जो दो ही चार अच्छे साहित्यिकों मे यह बात पाई जाती है, तब अधिकांश में, भिन्न-भिन्न विषयों के भिन्न-भिन्न रूपो मे, प्रत्यक्ष होगी। पर यह निश्चित है कि पहले उस विषय का साहित्यिक चरित्र सुदृढ़ हो। बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि हिंदी मे अच्छे-अच्छे विद्वान् और धनाढ्य व्यक्ति हैं, पर हिंदी से उन्हे प्रेम नहीं। विद्वान् अँगरेज़ी-साहित्य के माया-जाल मे फँसे हुए हैं, धनी जड़ अर्थ-साहित्य के। जो केवल धनी और साधारण कोटि के शिक्षित हैं, वे अवकाश का कुछ भी समय हिंदी की शिक्षा के लिये नहीं देना चाहते। देश, जाति, शिक्षा, समाज, उन्नति के विधान आदि पर उनका एक प्रकार प्रवेश है ही नहीं; वे अपने ग़रीब पड़ोसी की सेवा करना जानते ही नहीं—जिस तरह अर्थ द्वारा ज्ञान देकर दारिद्र्य दूर किया जाता है, बल्कि भला-बुरा जो

भी उपाय सामने आया, अपने लाभ के विचार से उसे ही अख्तियार करने पर तुल जाते हैं। यह धनिकों की कितनी गिरी वृत्ति है, इसका उल्लेख नहीं किया जा सकता। विनिमय ही संसार के चलते रहने का कारण है। यह संबंध सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता आइनस्टीन के साबित करने से पहले भी था, और सदा रहेगा। पहले भी सोने-चाँदी के द्वारा मिट्टी या ज़मीन ख़रीदी जाती थी, देश जीते जाते थे, और मिट्टी के दाम में सोने-चाँदी तथा अन्न और रसद द्वारा विजय प्राप्त होती थी, यह पारस्परिक संबंध अब भी है। इस प्रकार अर्थ के द्वारा ज्ञान का विनिमय होता है। धनिकों की यही महत्ता है कि वे एक उत्तरदायित्व अपने पास रखते हैं। यदि इसकी ओर उनका ध्यान न जाय, अपना फ़र्ज़ वे अदा न करें, तो संसार के संबंध-वाद को धक्का पहुँचने के कारण साहित्य को भी हानि पहुँचेगी। हमारे साहित्यिक चरित्र के उत्कर्ष के लिये यह पहली रुकावट है, विद्वानों द्वारा दूसरी। हमारे यहाँ ऐसे अनेक विद्वान् हैं, जो सरकारी नौकरी, वकालत, डॉक्टरी आदि से अपने जीवन-निर्वाह के लिये काफ़ी उपार्जन कर लेते हैं। वे चाहें, तो सीखकर, अपने प्रिय विषय की अच्छी-अच्छी चीज़ें हिंदी को दे सकते हैं। उनके सामने इतने बड़े-बड़े उदाहरण आ चुके हैं कि इस देश में आकर, इस देश की भाषा सीखकर पश्चिमीय विद्वानों ने यहाँ के साहित्य का उद्धार किया। इतना ही नहीं, संसार के साहित्य के फूलों को चुन कर उन लोगों ने अपनी भाषा को सैकड़ों मालाएँ पहनाईं। उनके पद-चिह्नों पर चलते हुए बंगाली, मराठी, गुजराती विद्वानों ने अपनी भाषा को समुन्नत और लोक-प्रिय बना दिया। पर हमारे यहाँ के उच्च शिक्षा-प्राप्त विद्वान् हिंदी को देखकर नाक भौं सिकोड़ते हैं। पिता-पुत्र में पत्र-लेखन का अँगरेज़ी माध्यम है। यह साहित्यिक चरित्र के पतन की हद है। यहाँ विद्या नहीं, अविद्या का साम्राज्य है।

साधारण पढ़े-लिखे साहित्यिक ही ज्यादातर हिंदी में हैं, जिन्हें साहित्य के उत्कर्ष-साधन की अपेक्षा अपने नाम के माहात्म्य की ओर अधिक ध्यान है। एक विद्वान् ने एक बार कहा था, हिंदी में पाठकों की उतनी संख्या नहीं, जितनी लेखकों की है। यह सर्वांशतः सत्य है। कुछ विद्वान् तथा अपने विषय के मर्मज्ञ लेखक और कवि हैं अवश्य, पर इनसे विशाल साहित्य की भूमि भरती नहीं। कुछ हैं, जो एक अँगरेजी का पैराग्राफ उद्धृत करके, उस तरह का विचार—वैसी विचारणा हिंदी में नहीं कहकर साहित्य तथा लेखकों को अभिशाप देते रहते हैं। हमारे साहित्य के ये तीसरे और चौथे प्रकार के चरित्रोद्गत साहित्यिक हैं। फलतः ये चरित्र स्पष्ट हैं।

सच्चे साहित्यिक कला में मूल तक पहुँचते हैं, केवल फूलों में नहीं भूलते। तभी मूल से फूल और फल तक, साहित्यिक चरित्र की साधना के कारण, कला की कल्पलता पूरी-पूरी उतार देते हैं। केवल फूल को देखनेवाले फूल इसलिये नहीं खिला सकते कि वे फूल को अच्छा और पत्ते को खराब मानते हैं। माली या कृषक ऐसा नहीं समझता। उसकी दृष्टि में मिट्टी, खाद, बीज, पौधा, पत्ता, सभी का बराबर महत्त्व है। इन्हीं के उत्कर्ष का परिणाम फूल और फल है, वह जानता है। ऐसा ही एक सच्चरित्र साहित्यिक की दृष्टि में है। सभी के चित्रण में उसे बराबर कौशल प्राप्त करना पड़ता है, इसलिये सभी उसके पास क़ीमती हैं। अच्छी तरह देखिए, तो पत्ता फूल से कम ख़ूबसूरत नहीं, न डाल, न तना, न जड़, यह उसे मालूम है। यही दृष्टि पठित साहित्यिक को, बाद को, प्राप्त होती है, वह साहित्योपवन का मौलिक माली होता है।

रघुवंश में महाकवि कालिदास का एक पद्य है—

"कुसुमजन्म ततो नवपल्लवा-
स्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्,
इति यथाक्रममाविरभून्मधु-
द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।"

"कलियाँ आईं, तदनंतर नए पल्लव ; तत्पश्चात् भौंरे गूँजने लगे, और कोयल कूकने लगी। इस तरह, यथाक्रम, द्रुमोंवाली वनस्थली पर उतरकर, वसंत आविर्भूत हुआ।"

पद्य के शब्द-शब्द में कला है। संपूर्ण पद्य में कला का जो विकास है, वह उच्च कोटि का कवि ही समझ सकता है। महाकवि ने कहीं भी व्याख्या नहीं की। पर इतने अच्छे ढंग से कहा है कि कला में उनकी सहृदयता के साथ बुद्धिवाद का परिपूर्ण विकास लक्षित होता है। साधारण विद्वान् यहाँ तक नहीं आ सकते। यह शृंगार का सजीव चित्र है। मधु यहाँ पुरुष है, और जिस पर वह उतरता है, वह वनस्थली स्त्री। दोनो एक साथ लिपटकर एक हैं। ऊपर कलियाँ हैं, पर यह नहीं कहा कि ये उरोज हैं ; फिर नए पल्लव हैं, इनके लिये भी नहीं कहा कि वनस्थली का अरुण हृदय है ; भौंरे और कोयल गूँजते-कूजते हैं, इनका अर्थ भी स्पष्ट नहीं हुआ कि यह नायिका का प्रेमालाप है ; फिर वनस्थली द्रुमवती है, इसके लिये भी स्पष्टीकरण नहीं कि उठी बाँहों में प्रिय को भरे हुए है। ऐसी वनस्थली पर मधु अवतरित है। पूरा दृश्य है—नायिका वनस्थली शयित है ; नव-कुसुम कुच हैं, नवीन पल्लव उसका अरुण हृदय ; द्रुम की बाँहों में प्रिय वसंत को भरे हुए, भौंरे और कोयलों की मंजु गूँज और कूक से प्रणय संलाप कर रही है। पुनश्च एक ही वनस्थली की यौवनोद्भावना में अदृश्य प्रिय वसंत दृश्य हो रहा है, महाकवि जयदेव का जैसे—

"विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ;
नृत्यति युवतिजनेन समं
सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।"

यह साहित्य के पुष्ट चरित्र-भूमि पर खिली पूर्ण कला है। हिंदी में इसी की मननशीलता आवश्यक है।

× × ×

२. आगामी हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

इस बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का शुभ अधिवेशन इंदौर में होगा। सभापति के चुनाव के विषय में पिछले सालों लोग उद्ग्रीव रहते थे कि किसे स्वागतकारिणी ने सभापतित्व प्रदान किया। संवाद-पत्रों में पुनः पुनः आया करता था कि पहले से सभापति का निर्णीत हो जाना अत्यावश्यक है। इससे भाषण लिखने की सुविधा तो प्राप्त होती ही है, साहित्यिक भी अपने चलने के संबंध में निश्चय कर लेने का अवसर पा लेते हैं। हमने कई साल यह सलाह दी, पर नहीं मालूम किन कारणों से महाजनों के प्राचीन पथ का अनुसरण होता रहा। बड़े हर्ष की बात है कि इस बार पहले से सभापति का शुभ नाम घोषित कर दिया गया। इस बार सम्मेलन के सभापति भारत के सुप्रसिद्ध नेता, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का दो बार सभापतित्व कर चुकनेवाले महामना पंडित मदनमोहनजी मालवीय हैं। मालवीयजी के संबंध में प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं, वह स्वप्रकाश होकर भारतीयों के हृदय के आलोक, मस्तिष्क के ज्ञान की तरह परिचित हैं। उनके सभापतित्व में हिंदी-साहित्य की धारा उचित दिशा की ओर प्रवाहित होगी, इसमें अणु-मात्र भी किसी को संदेह न होगा।

हमें यह जानकर भी अत्यंत हर्ष है कि स्वागतकारिणी के सभापति हैं इंदौर-राज्य के अवसर-प्राप्त डिप्टी दीवान, सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता किबे साहब। आप वर्षों से हिंदी-भाषा की उन्नति के लिये प्रयत्नशील हैं। श्रीमती किबे हिंदी की उत्तम लेखिका हैं। हमें पूरा विश्वास है कि

इस बार इंदौर में सम्मेलन को पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। भिन्न विषयों के सभापति के रूप से

महामना पं० मदनमोहन मालवीय

जितने विद्वान् चुने गए हैं, वे भी अपने-अपने विषय के धुरंधर आचार्य हैं। किबे साहब तथा इंदौर की स्वागतकारिणी की यह भी दूरदर्शिता है।

भारत-भर में डॉ० भगवानदास दर्शन-शास्त्र के श्रेष्ठ विद्वान् माने जाते हैं। उनकी-जैसी दूसरे की प्रसिद्धि नहीं। वह अपने विषय के इतने बड़े स्तंभ हैं कि हम उन्हें अपर देशों के किसी भी बड़े दार्शनिक के मुकाबले, हिंदी के उत्कर्ष के रूप से, प्रतिष्ठित कर सकते हैं। डॉ० भगवानदास दर्शन - शाखा के सभापति निर्णीत हुए हैं।

साहित्य के सभापति हैं सुप्रसिद्ध विद्वान् और कवि पंडित रामचंद्रजी शुक्ल। काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में शुक्लजी हिंदी-विभाग के छात्रों के परम प्रिय आचार्य हैं। वहाँ के एम्० ए० क्लास के विद्यार्थी शुक्लजी की अगाध विद्वत्ता पर मुग्ध हो जाते हैं, और सदा के लिये उनके प्रति श्रद्धा लेकर बाहर निकलते हैं। हिंदी में शुक्लजी ने जो कार्य किया है, वह

साहित्यिकों तथा पाठकों में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। शुक्लजी हिंदी के एक ही विद्वान् हैं, यह सर्ववादि-सम्मत है। उनका साहित्य-शाखा का सभापति होना सर्वथा उपयुक्त हुआ है।

इतिहास-परिषद् के सभापति हुए हैं भारत के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता बैरिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल। बैरिस्टर जायसवाल अपने विषय के संसार-प्रसिद्ध विद्वान् हैं। गत वर्ष बिहार-प्रांतीय सम्मेलन के आप सभापति मनोनीत हुए थे। आपके द्वारा पुनश्च कोई अच्छी बात मालूम होने को है, जैसे बिहार-सम्मेलन के सभापतित्व में पंडित त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन से मिलकर आपने दोहा और चौपाई की बुनियाद सिद्ध करते हुए हिंदी-साहित्य के इतिहास को दो सौ वर्ष और प्राचीन दिखलाया था।

विद्वद्वर डॉ० भगवानदासजी एम्० ए०

विज्ञान-शाखा के सभापति हैं सर जे० पी० श्रीवास्तव। युक्तप्रांत के शिक्षा मंत्री सर श्रीवास्तव महोदय ने अपने सद्गुणों से इधर यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। हमें आपसे भी विज्ञान के वर्तमान संबंध को साहित्य में स्थायी करने की उचित योजना मिलने की पूरी आशा है। ऐसे-ऐसे विचक्षण व्यक्तियों के समागम से सम्मेलन पूर्ण सफल होगा, इसमें संदेह नहीं।
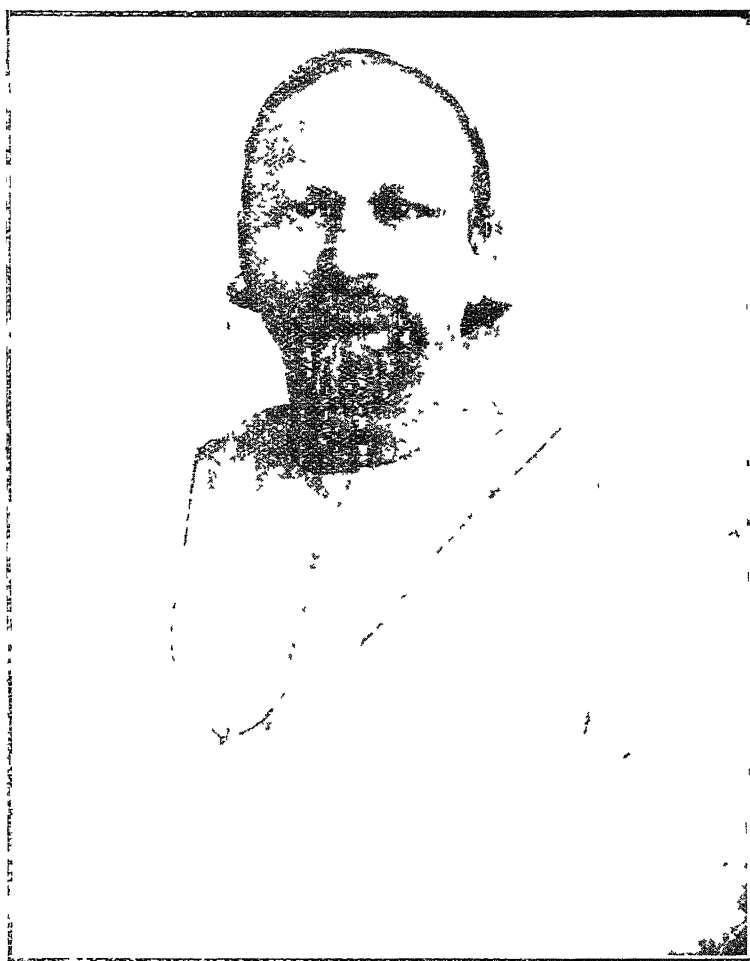
× × ×

हिंदी के प्रसिद्ध लेखक, कवि और आलोचक
अध्यापक श्रीरामचंद्रजी शुक्ल

३ जोधपुर मे एक विद्वान् का स्वर्गवास !

हमको यह प्रकाशित करते हुए हार्दिक खेद होता है कि वि० सं० १९९१ की कार्तिक बदि ८, मंगलवार (ता० ३० नवबर, १९३४) को हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक तथा मर्मज्ञ ऐतिहासिक विद्वान् साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ के पूज्य पिता और मारवाड़ के एक वयोवृद्ध विद्वान् पंडित श्रीमुकुंदमुरारिजी रेउ का, ८५ वर्ष की अवस्था में, स्वर्गवास हो गया !

आपके पूर्वज कई शताब्दियो से काश्मीर की राजधानी श्रीनगर मे रहते थे। और, उनमे से कई अपने समय के संस्कृत और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् समझे जाते थे। वहीं पर वि० स० १९०६ की माघ सुदि १३ को आपका जन्म हुआ। यद्यपि इनकी १२ वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता पंडित शकरनाथजी का स्वर्गवास हो गया, तथापि आपने अपनी पूज्या माताश्री के उत्साह दिलाने से विद्याभ्यास मे किसी तरह की शिथिलता न आने दी। साथ ही चित्रकला से प्रेम होने के कारण कुछ ही काल मे उसमे भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इस प्रकार २० वष की अवस्था मे अध्ययन कार्य समाप्त होने पर आप संस्कृत के और खास तौर पर कर्मकांड के अच्छे विद्वान् माने जाने लगे। इसके बाद कुछ काल तक यह अपने पैतृक कार्य को सँभालते और अपने दो लघु भ्राताओ को शिक्षा देते रहे। वि० सं० १९३५ मे, जब इनके भ्राता गृह-प्रबंध की देख भाल में समर्थ हो गए, घर का सारा काम उन्हे सौंप आप देशाटन के लिये रवाना हुए। और, अनेक तीर्थों तथा नगरो में घूमते हुए मारवाड की राजधानी जोधपुर-नगर मे पहुँचे। यहाँ पर कुछ ही दिनो मे अपनी योग्यता, विद्वत्ता, मिलनसारी और सरलता से आपने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इसके बाद कुछ मित्रो और हितैषियो के आग्रह से इन्होने वहीं पर स्थायी रूप से निवास कर लिया। प० विश्वेश्वरनाथजी रेउ की प्राथमिक शिक्षा भी आपके तत्त्वावधान में ही हुई थी। वैसे तो आप प्रारभ से ही धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे, और वेदाध्ययन तथा हरि-सेवा में ही अपना अधिक समय लगाते थे, परतु कुछ वर्षों से आपने सांसारिक बंधनों को तोड़कर पूर्ण रूप से हरि-स्मरण मे चित्त लगा लिया था। और, अंत तक "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर-मंत्र का उच्चारण करते हुए, बड़ी शांति के साथ, पुत्र-पौत्रो के समक्ष, इस

असार संसार से बिदा लेकर, स्वर्ग को प्रयाण किया ।

ईश्वर ऐसी श्रेष्ठ आत्मा को सद्गति और पं० विश्वेश्वरनाथजी तथा उनकी वृद्धा माता और कुटुंब को सहन-शक्ति प्रदान करे ।

× × ×

४. योरप की घबराहट

गत युद्ध के परिणाम एवं फल-भोग के बाद योरप के किसी भी देश में युद्ध के लिये उत्साह है, ऐसा नहीं जान पड़ता । फिर भी, शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र हो, जो इस ओर से असावधान हो । अपनी-अपनी शक्ति-वृद्धि में सभी तत्पर हैं । एक प्रकार से समस्त योरप में युद्ध की भावना ही गतिशील है । और, फ्रांस तो जर्मनी की समर-सामग्री के जुटाने एवं तैयारी से अत्यंत भयभीत है । फ्रांस बीच-बीच में जर्मनी की इस तैयारी का उल्लेख एवं प्रचार भी करता रहता है । यह बात बिलकुल निराधार भी नहीं है । जर्मनी पिछले युद्ध मे हार चुका है, इसलिये स्वभावतः उसमें विजय की लालसा है । क्षमता भी है । संभव है, पूरी शक्ति और बल संचित करके शीघ्र ही वह अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिये मैदान मे आ जाय । वहाँ हिटलर की प्रधानता है । यद्यपि तूफ़ानी सेना का हिटलर पर अत्यधिक विश्वास नहीं है, फिर भी सेना के पुन. संगठन के लिये हिटलर एक आवश्यक व्यक्ति है । उसके द्वारा ही जर्मनी को अपनी पूर्व-स्थिति प्राप्त होने की पूर्ण आशा भी है । वहाँ सैनिको को इस समय एक प्रकार से तप-साधन करना पड़ रहा है । देश को छोड़िए, विदेशों से भी विलासिता की सामग्री वहाँ नहीं जाने पाती । वह गत युद्ध के हर्जाने की रकम चुकाना नहीं चाहता—इनकार कर गया है, और निजी अर्थ एवं साधनों का उपयोग वह अस्त्र-शस्त्रो की वृद्धि एवं क्रय में व्यय कर रहा है । यह सब पूर्व-स्थिति की प्राप्ति के लिये ही हो रहा है । समस्त योरप उसके इस एकाग्र-प्रयत्न को भय-त्रस्त दृष्टि से देख रहा है । उसकी इस महत्वाकांक्षा से योरप की शांति भंग हो जाय, कुछ आश्चर्य नहीं ! योरप के जर्मनी के विरोधी राष्ट्रों मे आपसी मनमुटाव और संदेह है । साथ ही वहाँ की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मे ब्रिटेन का पहले का सा स्थान भी नहीं । प्रभाव बहुत ही घट गया है । प्रमाण से ब्रिटेन के अलग रहने की ही शंका होती है । जर्मनी की ऐश्वर्य-वृद्धि पर सबसे अधिक दृष्टि फ्रांस की रही है । परंतु कुशल परराष्ट्र-सचिव मो० बरथो के अभाव से फ्रांस शिथिल हो गया है । और, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, युगोस्लेविया, पोलैंड आदि राष्ट्रों को अपना मित्र बनाने का प्रयत्न भी कर रहा है । ऑस्ट्रिया की मैत्री पर ही जर्मनी का भविष्य निर्भर है । योरप की समस्याओं का आधार भी यही है । अब देखना है, जर्मनी इस प्रयत्न में कहाँ तक सफल होता है ।

× × ×

५. फिल्मो के कुछ आश्चर्य

सिनेमा-फिल्मों मे दर्शकों की प्रशंसा और उनकी करतल ध्वनि का कारण बननेवाले दृश्यों का रहस्य क्या है, और फ़ोटो-कैमरा किस प्रकार असंभव को संभव बनाता है, इसका ज्ञान अधिकांश सिनेमा-प्रेमियों को न होगा । वास्तव मे फ़ोटो-ग्राफी के एक साधारण चमत्कार से भी चित्रपट मे आकर्षण और रोचकता आ जाती है । और, जो व्यक्ति ऐसे दृश्यों को चुनता है, सजाता है, और उनका क्रम निश्चित करता है, उसे भी यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है । उस व्यक्ति को हम निर्देशक या डाइरेक्टर के नाम से संबोधित करते है, जिसके संकेतो पर कैमरामैन या फ़ोटोग्राफ़र अपनी कार्य-कुशलता दिखाता है । चित्रपट की उत्तमता और रोचकता डाइरेक्टर पर ही निर्भर रहती है । भिन्न-

भिन्न दृश्यों के टुकड़े काटकर उनको क्रमानुसार जोड़ना और कहानी के प्रवाह के अनुकूल बनाना उसी का कार्य होता है। कहना न होगा कि विदेशी डाइरेक्टरों में यह कला पूर्णता की सीमा तक पहुँच चुकी है, परंतु हमारे भारतीय डाइरेक्टर उसका आंशिक ज्ञान प्राप्त करके ही फूले नहीं समाते ! ईस्ट-इंडिया फ़िल्म कंपनी, कलकत्ता द्वारा प्रस्तुत 'सीता' की असफलता का मुख्य कारण यह है कि डाइरेक्टर फ़िल्म का संपादन उचित रूप से नहीं कर सका। जहाँ एक ओर सीता नील कमलों को जल मे विसर्जन करते हुए प्राण छोडने को उद्यत होती है, दूसरी ओर उसे बचाने के लिये वाल्मीकि रथ पर रवाना होते है। पहली घटना का कुछ भी महत्त्व न समझकर डाइरेक्टर ने एक बड़ी भयानक भूल की है। वाल्मीकि का रथ बड़े इतमीनान से धीरे धीरे चलता हुआ आता है, यद्यपि वाल्मीकि जानते है कि सीता के प्राण छोड़ने में कुछ ही क्षणों की देर है। क्या डाइरेक्टर वाल्मीकि के रथ को तेज नहीं दौड़ा सकता था ? वास्तव मे न सही, परंतु कैमरा द्वारा ही रथ को भागता हुआ दिखाया जा सकता था। श्रीयुत देवकी बोस की कला की प्रशंसा करते हुए भी हमे उनकी यह भयानक भूल बहुत खटकती है। दृश्य की सारी रोचकता, सारा आकर्षण एक सूक्ष्म असावधानी से नष्ट हो जाता है।

सिनेरियो और उसका क्रम निश्चित हो जाने पर डाइरेक्टर का कार्य तब बड़े उत्तरदायित्व का आ जाता है, जब उसे फ़िल्म-शूटिंग के समय कथानक के निर्वाह का ध्यान रखना पडता है। हज़ारों फ़ीट की फ़िल्म टुकड़े-टुकड़े काट डाली जाती है, और भिन्न-भिन्न दृश्य पृथक्-पृथक् अवसरों पर लिए जाकर क्रमानुसार बाद में जोड़े जाते हैं। कहानी को अनेक भागों मे बाँटकर एक-एक प्रकार के दृश्य अलग कर लिए जाते हैं। तब डाइरेक्टर अपना काम शुरू करता है। जिस तैयार फ़िल्म को हम सिनेमा के पर्दे पर देखते है, वह अनेक टुकडो से बना हुआ, भिन्न-भिन्न दृश्यों का एक क्रमागत समूह है। डाइरेक्टर की सारी कुशलता और कला इसी क्रम को निर्धारित करने में ही प्रकट होती है। यदि वह दृश्यों का क्रम उचित रूप से जुटा सका, तो कथानक की रोचकता नष्ट नहीं होने पाती, अन्यथा उसकी ज़रा-सी भूल सारे चित्रपट की असफलता का कारण बनती है।

थोडी देर के लिये मान लीजिए, एक व्यक्ति अपनी मिल मे दुर्घटना होने का समाचार पाकर मोटर पर मिल की ओर रवाना होता है, और यह सब फ़िल्म मे दिखाना है। यदि हम मोटर को रास्ते पर चलते-चलते और मिल तक पहुँचते हुए लगभग दस-पाँच मिनट तक देखा करे, तो फ़िल्म की रोचकता घटती हुई मालूम होगी। कुशल डाइरेक्टर ऐसा न करके, मोटर पर व्यक्ति विशेष का बैठना, मोटर का चलना एक दृश्य में, मोटर मे बैठे हुए व्यक्ति की भाव-भंगी और उत्सुकता दूसरे दृश्य में, दौड़ती हुई मोटर तीसरे दृश्य मे, मिल में दुर्घटना और कर्मचारियो की घबराहट चौथे दृश्य मे और मोटर का मिल के द्वार पर पहुँचना पाँचवें दृश्य में दिखाएगा। प्रत्येक दृश्य में दो या तीन सेकेंड से अधिक का समय न लगेगा, और साथ ही जिस समय फ़िल्म सिनेमा के परदे पर चलेगा, दर्शको की रोचकता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायगी।

और भी, यदि किसी आदमी को मोटर से कुचल-कर मरते हुए दिखाना है, तो एक दृश्य मे सड़क, जहाँ एक मोटर तेज़ी से आ रही है, दूसरे दृश्य में मोटर-ड्राइवर का घबराया हुआ चेहरा, तीसरे क्षणिक दृश्य मे वह आदमी, जो दुर्घटना से बचने के लिये घबराकर चीख़ उठता है, और चौथे दृश्य मे वह आदमी मोटर के आगे औंधा पड़ा हुआ और मोटर ठहरी हुई दिखाई पड़ेगी। यह सब कैसे हुआ, और

डाइरेक्टर ने क्या किया, यह एक पहेली है। दर्शक आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि वास्तव में आदमी मोटर के नीचे कुचल गया, और मर गया। परंतु डाइरेक्टर पहले एक आदमी को मोटर के आगे पड़ा हुआ दिखाता है, बाद में आदमी उठकर एक ओर चला जाता है, और यह दृश्य कैमरे मे नहीं खींचा जाता। अब फिर कैमरा चलता है। मोटर तेज़ी से दूर तक पीछे की ओर चलाई जाती है। बाद मे इस फ़िल्म को उलटा करके फ़िल्म-रील में इस प्रकार लगा देते हैं कि बाद में आनेवाली घटना पहले और पहले की घटना बाद में परदे पर दिखाई देने लगती है, और दर्शक यह समझते हैं कि एक आदमी मोटर से कुचलकर मर गया, जब कि वास्तव में फ़ोटो लेते समय ऐसी कोई भी दुर्घटना नहीं होती। सिलोलाइड फ़िल्म के भिन्न-भिन्न टुकड़ों का क्रमानुसार संकलन और मिलान असंभव दृश्यों को सिनेमा के परदे पर संभव करके दिखाता है। किंतु इसकी सारी सफलता डाइरेक्टर की सावधानी और फ़िल्म के उचित संपादन पर ही निर्भर है।

इसी प्रकार कोई अभिनेता केवल एक गज़ की ऊँचाई से कूदता है, मगर सिनेमा के परदे पर वह ६ मंज़िल की इमारत से नीचे कूदता हुआ दिखाई देता है। और भी उदाहरण हैं। मान लीजिए दृश्य नं० १ में एक नवयुवक बाईं ओर से दाहनी ओर आता दिखाई देता है, दृश्य नं० २ में एक युवती दाहनी ओर से बाईं ओर आती है। दृश्य नं० ३ में वे दोनो एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। नवयुवक एक ओर संकेत करता है। दृश्य नं० ४ में एक ऊँची इमारत दिखाई देती है, जिसमे सामने की ओर एक लंबा ज़ीना चला गया है। दृश्य नं० ५ में वे दोनो ज़ीने पर चढ़ते हुए दिखाई देते हैं। सब भिन्न-भिन्न टुकड़ों का चलित चित्र ले लिया गया, और उनको क्रमानुसार एक दूसरे से जोड़ दिया गया। जब यह चित्र सिनेमा के परदे पर आया, तो आपने देखा कि एक युवक और युवती की भेंट हुई, युवक ने युवती को निमंत्रित किया, और दोनो एक ऊँची इमारत के निकट आकर उसके भीतर चले गए। यह सब दृश्य भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और स्थानों में लिए जाने पर भी एक संबद्ध रूप में परदे पर आने के कारण एक ही मालूम होते हैं।

सचमुच ही फ़िल्मों के आश्चर्यों की सीमा नहीं।

× × ×

६. विचित्र और शानदार जुलूस

जुलूस का इतिहास पुराना है। शायद इसका ठीक निर्णय कर लेना बहुत आसान न हो। योरप और ग्रीक में जुलूस की प्रथा विजय के बाद थी। अपने सेनापति और देश को उत्साहित करना ही इसका मुख्य ध्येय था। सभ्यता की अंग-पुष्टि के साथ इसमे भी सुधार हुए, और अब जुलूस सीमित नहीं। प्रत्येक देश मे मांगलिक आयोजनों और शुभ अवसरों पर समाज एवं देश-व्यापी भिन्न-भिन्न जुलूस होते ही रहते हैं। भारत में इसके अनेक प्रमाण प्राचीन काल से विद्यमान हैं। हिंदू-जाति के कितने ही त्योहार इसी के प्रमाण-स्वरूप आज भी हैं। बेल्जियम में माटेग्यू एक नगर है। यहाँ जुलूस की एक विचित्र प्रथा है। कहते हैं, कई सहस्र वर्ष पूर्व यहाँ एक बार महामारी का प्रबल प्रकोप था। उस समय एक कुमारी किशोरी ने इस भयानक प्रकोप को दूर कर दिया था। उसी की स्मृति में प्रतिवर्ष एक जुलूस निकलता है। यह जुलूस मोमबत्तियों का होता है। इस साल के जुलूस में अपार भीड़ थी। जुलूस सड़कों पर घूमता हुआ चर्च पहुँचा, और वहाँ लाखों मोमबत्तियों का प्रकाश हुआ। अपूर्व दृश्य था।

× × ×

७ नग्न सौंदर्य और इटली के मुसोलिनी

मि० गुस्टाव मैशेटो योरप के एक प्रसिद्ध फ़िल्म-डाइरेक्टर हैं। यह महाशय जैकोस्लोवेकिया के रहनेवाले हैं। इन्होंने आज से दो साल पहले एक फ़िल्म तैयार किया था। भूमिका की प्रधान नटी थी मिस हेडी कीसलर। इस फ़िल्म में इनकी ऐक्टिंग का अधिकांश नग्न सौंदर्य से पूर्ण था। फ़िल्म का नाम 'एक्टस्टेसी' है। इसके प्रदर्शन के लिये सेंसर ने आज्ञा नहीं दी। फिर भी योरप में इतनी चर्चा हुई कि यह युवती अपने अपूर्व सौंदर्य के लिये समस्त योरप में अनुपम समझी गई। अन्यान्य फ़िल्मों में युवती के अपूर्व सौंदर्य और ऐक्टिंग की कुशलता का परिचय भी लोगों को मिला। जनता मुग्ध थी। परंतु इसका वह फ़िल्म, जिसमें इसके सौंदर्य की पूर्णता लक्षित हुई थी, देश तथा अन्य देशों में प्रतिबंध के कारण नहीं दिखाया जा सका। इसके थोड़े दिनों बाद मिस हेडी की भेंट मध्य योरप के प्रसिद्ध एवं अस्त्र-शस्त्र के विशाल व्यापारी मि० फ़्रिट्ज़ मैंडेल से हुई। राजनीतिक क्षेत्र में इनका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यह ऑस्ट्रिया के फ़ैसिस्ट-लीडर प्रिंस स्टार हेमबर्ग के अभिन्न-हृदय मित्र हैं। इन्होंने ऑस्ट्रिया की राष्ट्रीय सेना नेशलिस्ट मिलिशिया 'हेमवेर' की प्रचुर धन से सहायता भी की है। यह मिस हेडी के अपूर्व सौंदर्य पर मुग्ध हो गए। धीरे-धीरे दोनो में प्रेम-भाव बढ़ा, और प्रेमी के अनुरोध से प्रेमिका फ़िल्म-व्यवसाय छोड़कर उनकी हो गई। वह उसके सौंदर्य को इतना सुरक्षित करना चाहते थे कि उसके अब तक के प्रकाशित फ़िल्मों और चित्रों को ख़रीदकर उसकी फैली हुई फ़िल्म कीर्ति का अंत कर देना चाहते थे। सफलता भी मिली। वह फ़िल्म, जो मिस के नग्न सौंदर्य से पूर्ण था, बंद हो गया।

इस बार वेनिस की प्रदर्शिनी में अन्यान्य प्रसिद्ध फ़िल्मों के साथ इसके प्रदर्शन का भी प्रबंध हुआ। मि० मैंडेल को इसकी ख़बर हुई, वह तुरंत सपत्नीक पहुँचे, और इसकी रोक का प्रबंध करने लगे। उन्होंने मि० मुसोलिनी को लिखा। अन्यान्य मित्रों से भी सहायता माँगी, पर सब विफल हुआ। मुसोलिनी ने इसे निर्दोष कला कहकर प्रदर्शन की आज्ञा दे दी।

जिस समय प्रदर्शन हो रहा था, अपार भीड़ थी। मिस हेडी और मि० मैंडेल भी उपस्थित थे। भूरि-भूरि प्रशंसा से उपस्थित जनता का कंठावरोध हो गया। खिन्न-चित्त मि० मैंडेल लौट गए। इटली में यह फ़िल्म अब तक दिखाया जा रहा है। जनता की इच्छा है कि मिस हेडी अपनी इस अक्षय कीर्ति का इस तरह अंत न करें।

मुसोलिनी के कला-प्रेम से संसार चकित हो गया है।

× × ×

८ रहस्यमयी चिट्ठी

यह एक चिट्ठी का अपूर्व इतिहास है। पूर्वीय पोलैंड में रोनो-नामक एक गाँव है। इस गाँव के एक निवासी ने अपने एक निकट संबंधी को, जो ब्राज़ील में रहता है, एक पत्र भेजा। परंतु वह पत्र नियत स्थान पर न जाकर अब पुनः भेजनेवाले के पास लौट आया है। चिट्ठी १२ साल तक संसार में घूमती रही। अब तक उसने समस्त संसार की तीन परिक्रमाएँ की हैं। पत्र-प्रेषक अब संसार में नहीं, उसका पुत्र है। पत्र के लिफ़ाफ़े का अनेक व्यक्ति सौदा करना चाहते हैं। अब तक इस पर दो सौ पौंड मूल्य लग चुका है।

× × ×

९. जापान और रेशम

संसार में जापान ने सबसे अधिक प्रसिद्धि अपनी व्यापार कुशलता के लिये प्राप्त की है। व्यापार के नए तरीके, तैयार माल की खपत और सस्तापन ही उसकी ख्याति के मुख्य कारण हैं।

इधर जापान के वैज्ञानिकों ने कीड़ों से रेशम निकालने का एक नया तरीका निकाला है। इससे विदेश में—खासकर लंकाशायर में—बड़ा आतंक फैल गया है। टोकियो-रेशम-अनुसंधान-प्रयोगशाला के डाइरेक्टर मि० होशिनो ने यह नया आविष्कार किया है। और, अब वहाँ बढ़िया और सस्ते रेशम तैयार करने की पूर्ण सफलता पर पूरा विश्वास जम गया है। सहूलियत यह है कि रेशम की उपज अब नन्हे नन्हे कीटों पर नहीं, मनुष्य पर निर्भर रहेगी। पहले रेशम की उपज कीड़ों से एक तरल पदार्थ के

द्वारा होती थी, परंतु अब तत्काल रेशम तैयार किया जा सकेगा।

× × ×

१०. विचित्र बालिका

यू० पी० के बहराइच-ज़िले में एक चार साल की बालिका पूर्व-जन्म की बातें करती है। वह अपने को लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर की पुत्री बतलाती और उस जन्म की अनेक बातें सविस्तर कहती है। वह कहती है, उसका विवाह उस जन्म में काशी के एक ब्राह्मण से हुआ था। उसके तीन पुत्र थे, जिनके नाम क्रमशः मोतीलाल, चुन्नीलाल और बिल्लर थे। सबसे छोटा बच्चा उसकी मृत्यु के समय दूध ही पीता था। दो लड़कियाँ भी थीं, जिनमें एक का नाम लीलावती और एक का पद्मावती था। वह अपने लड़कों और पति की आवाज भी सुनती है।

× × ×

११. जापान की नाविक-शक्ति

जापानी प्रतिनिधि श्रीयामामोटो ने पहली दिसंबर को, लंदन में, ब्रिटेन के प्रथम सामुद्रिक लॉर्ड से भेंट की, और आकड़ों-सहित अपना मसविदा भी पेश किया। यह मसविदा उन्होंने इसलिये पेश किया है कि अभी हाल के उठे हुए नाविक-प्रश्न में नाविक-समीकरण का उत्तर वह आसानी से दे सकें। साथ ही प्रेस-प्रतिनिधि से बातें करते हुए श्रीयामामोटो ने कहा—मुझे इस बातचीत से कोई विशेष सफलता की आशा नहीं है। पर मुझे अब यह विश्वास अवश्य है कि मैं अँगरेज़ों के दृष्टिकोण को भली भाँति समझ गया हूँ। इस मामले में जिन उपकरणों का सहारा लिया जा रहा है, संभवतः मैं पहले ही उन्हें सामुद्रिक लॉर्ड के सामने पेश कर चुका हूँ। और, उसके बाद, अब तक चूँकि कोई नई बात नहीं उठी, इसलिये जापानी प्रस्तावों पर इसका कोई प्रभाव भी न पड़ेगा। आज की नाविक बातचीत से यह भी साफ़ हो गया कि भविष्य में जापान और ब्रिटेन का दृष्टिकोण क्या होगा? निस्संदेह अब जापान की नाविक-शक्ति में परिवर्तन होगा। अब तक तो जापान अपनी नाविक-शक्ति कम करने की चेष्टा में था, पर अब उसे भय है कि वह शीघ्र ही इस विचार को काम में न ला सकेगा।

× × ×

१२. आसाम और संस्कृत

संसार में अपनी सभ्यता के लिये जिन प्राचीन देशों का नाम लिया जाता है, उनमें भारतवर्ष का नाम सर्व-प्रथम आता है। यहाँ की संस्कृत-भाषा की प्राचीनता और पूर्णता भी संसार में सिद्ध हो चुकी है। आज भी जर्मन में संस्कृत की महत्ता का बोलबाला है, यहाँ तक कि संस्कृत की शिक्षा वहाँ अनिवार्य कर दी गई है। ऐसी दशा में संस्कृत को मृत भाषा समझकर उसकी उपेक्षा करना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। संस्कृत का प्रचार देश के लिये हितकर है। प्रसन्नता की बात है कि आसाम प्रांत में नलबारी इसका केंद्र है। यहाँ के पंडितों ने गवर्नर को मान-पत्र दिया, और संस्कृत-प्रचार के लिये सहायता की प्रार्थना की। गवर्नर ने प्रसन्नता प्रकट की, और परि-स्थिति-वश सहायता करने की असमर्थता दिखाई। फिर भी सरकार से संस्कृत-बोर्ड को सहायतार्थ जो रक़म मिलती है, उसमें वृद्धि करने का आश्वासन दिया। साथ ही भूमि-कर में रुपए में तीन आने की छूट मंज़ूर हुई है। आशा है, अपर प्रांत भी संस्कृत प्रचार की ओर ध्यान देंगे।

× × ×

१३. सभ्यता का रोग

आजकल के सभ्यता-प्रेमी जनों का ख़याल है कि सभ्यता का पूर्ण विकास पाश्चात्य देशों में हुआ है। और, सबसे अधिक सभ्य देश इँगलैंड है। परंतु

वहाँ के बीच-बीच में प्राप्त समाचारों से जान पड़ता है कि वहाँ सभ्यता की कैसी दुर्दशा हो रही है।

गत २९ नवंबर का समाचार है कि लंदन के किसको-नामक गिरजाघर में कैथोलिक-संप्रदायवालों और अधिकारियों के बीच भयंकर दंगा हो गया। दंगा इसलिये हुआ कि अधिकारी जन गिरजाघर से कुछ पवित्र चिह्नों को हटाना चाहते थे, और कैथोलिक संप्रदायवाले इसके विरुद्ध थे। बस, इस क्षुद्र घटना को लेकर दोनो दलों मे मार पीट हो गई। फलतः ७ मरे, और १४ घायल हुए। कारण, पुलिस ने शांति-स्थापना के लिये गोली चला दी थी।

× × ×

१४. अर्थ-नीति मे क्रांति

वर्तमान युग में भू-मंडल का प्रत्येक भाग आर्थिक कष्ट के अनुभव से संतप्त है। हर जगह के उर्वर मस्तिष्क आर्थिक समस्या सुलझाने मे जी-तोड़ श्रम कर रहे हैं। पर सफलता की कुंजी अब तक हाथ नहीं लगी। संभव है, निकट भविष्य मे कुछ फलदायक विचारों का सूत्रपात हो।

अमेरिका मे रूजवेल्ट ने इस ओर अच्छी सफलता प्राप्त की है। उसे देश से काफ़ी उत्साह भी मिला है। अब अपर देश भी उसकी प्रशंसा और अनुसरण की चेष्टा मे है।

रूजवेल्ट अमेरिका का युगप्रवर्तक समझा जाता है। चुनाव में उसके विजयी होने का मुख्य कारण उसकी अर्थ-नीति है। इसने विचारक-मंडल की स्थापना की है, जिसके सदस्य विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर और कुछ विशेषज्ञ हैं। इसने देश की आर्थिक दशा के सुधार मे जिस सत्य-नीति का परिचय दिया है, उससे राजनीति की खोखली बुनियाद एक प्रकार से ढह गई है। इसने एक प्रकार से विज्ञान और राजनीति का इस मामले में विश्वास उठा दिया है। कारण, इन दो विषयों के अधिकारियों के दाँव-पेचों से ही देश की यह दुर्दशा हुई है।

इसका उदय उस समय हुआ, जब व्यापार की गति शिथिल हो गई थी, किसानों का हृदय टूट गया था, और बेकारों की संख्या असंख्य हो चली थी। परंतु धैर्य के साथ निर्धारित नीति पर चलकर देश के दुःख-दारिद्रय को इसने सामने से हटाया। देश को सफलता की झलक मिली। अपने इस सुधार के लिये इसने राज-व्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप भी नहीं किया।

इसके सुधारों को दो भागों में बाँटा गया है—

(१) किसानों का सुधार।

(२) उद्योग-धंधों की पुनः रचना एवं बेकारी का अंत।

किसी भी देश की समुन्नति के लिये किसानों का सुखी होना अत्यावश्यक है। उनकी उपज की वृद्धि ही इसका मूल-कारण है। अमेरिका के किसानों की दशा ठीक भारतीय किसानों की-सी थी। गत पाँच वर्षों मे उनकी आय ४० से ६० प्रतिशत घट चुकी थी। पिछले ४ साल के आँकड़ों से पता चलता है कि उपज का मूल्य १ अरब २० करोड़ डालर से घटकर ५० करोड डालर हो गया है। इसी तरह सन् १० से सन् ३२ तक के आँकड़ों से ज्ञात होता है कि वहाँ के किसानों का ऋण ३ अरब ३० करोड डालर से बढ़कर ८ अरब ५० करोड डालर हो गया है, और आवश्यकताओं मे सिर्फ़ २५ प्रतिशत की ही कमी हुई है। इस तरह ऋण और कर की दूनी वृद्धि हुई। व्यापार के गिरने एवं बेकारी का मूल-कारण किसानों की यह हीनावस्था ही है। इसीलिये सबसे पहले रूजवेल्ट ने किसानों की हित-चिंता की। इसने उपज की भूमि को सीमित करने की चेष्टा की। कारण, उपज की कमी से भाव मे महँगी की पूर्ण आशा है।

कपास की ४० प्रतिशत, गेहूँ की १५ प्रतिशत,

धान की २० प्रतिशत तथा अन्य अन्नों की उपज में भी इसी तरह न्यूनता की एक सूची-सी तैयार की गई है। उसी क्रम से भूमि में कमी होगी। इस नीति-प्रचार के लिये कृषकों पर किसी तरह का दबाव नहीं डाला जाता। उलटे उन्हें कोष से कुछ सहायता दी जाती है, जिसे किसान उपहार समझकर ग्रहण करते हैं। इस उपहार के लिये कोष में ४० करोड़ डालर की एक निश्चित रक़म मंज़ूर हुई है। कोष अपनी पूर्ति शिल्प और उद्योग की वसूली से करेगा। अनुमान है, इस तरह किसानों की आय में ५० से ६० करोड़ डालर तक की वृद्धि होगी।

उनकी ऋण-मुक्ति के लिये 'इमर्जेंसी-फार्म-मार्गेज-ऐक्ट' की रचना हुई है। इस ऐक्ट के द्वारा बैंकों को दो अरब डालर के कर्ज़ के कागज निकालने का अधिकार दिया गया है। ब्याज की ज़िम्मेदारी राष्ट्र ने ली है। ब्याज दर चार प्रतिशत है। बैंकों को इससे अच्छा लाभ है, और रकम-वसूली की पूरी सहूलियत। वह क़र्ज़ की रकम क़िस्तों से वसूल करेगी।

रूज़वेल्ट के कार्यारंभ करने के पहले तीन वर्षों में व्यापार बेजान हो गया था। उत्पादकों की वस्तुओं में ७६ प्रतिशत और खपत की वस्तुओं में ३२ प्रतिशत की कमी हो चुकी थी। अर्थात् व्यापार में ६० प्रतिशत की कमी आ चुकी थी। ४४ प्रतिशत मज़दूर बेकार हो चुके थे। शेष के वेतनों में ६६ प्रतिशत की कमी हुई। बेकारों की संख्या एक करोड़ चौसठ लाख थी, और इनके जत्थे से देश में हाहाकार मच गया था। परंतु रूज़वेल्ट ने राष्ट्रीय उद्योग-धंधों के सुधार-संबंधी क़ानून पास करके मज़दूरों और मालिकों के बीच का मनमुटाव, आपसी प्रतिद्वंद्विता की मर्यादा बाँध दी है। दोनों दलों की सम्मिलित सलाह से साप्ताहिक काम के घंटों और वेतन की रिपोर्टें तैयार की गई हैं। इस तरह मजदूरों की बहुतेरी उलझनें मिट गई हैं। साथ ही नए उद्योग-धंधों के खोलने एवं बेकारी दूर करने के लिये ३ अरब ३० करोड़ डालर का कर्ज और उसके भुगतान की ज़िम्मेदारी स्वयं ली है। उसी क़ानून द्वारा यह रकम पब्लिक वर्क्स में लगाई जाय, निश्चित हुआ है। सड़कों एवं इमारतों में बेकारों को काम मिल जाने की उम्मीद थी, ऐसा ही हुआ भी।

इसके सिवा रूज़वेल्ट ने और भी कई सुधार किए हैं। उन सुधारों से देश की आर्थिक नीति में संतोष-प्रद सुधार हुआ है। इससे उपज में ४८ प्रतिशत, मूल्य में २५ और मज़दूरी में ६१ प्रतिशत की वृद्धि हुई, और इस अल्पकाल में ही ३४ लाख बेकारों को काम भी मिल गया है!

× × ×

१५. चाय से होनेवाली हानियाँ

आजकल हमारे देश में चाय का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। भारत के समुद्रीय किनारों में चाय प्रचलित हो गई है, पर भीतर के देशों में उतनी नहीं, इसलिये उसके प्रचार का उद्यम किया जा रहा है। जगह-जगह मुफ़्त चाय पिलाकर चाट लगाने के प्रबंध जारी हैं। हमारे यहाँ तबाकू, सुर्ती जैसी हानिकारक, ज़हरीली; साबुन, सेंट जैसी विलासिता-वाली चीज़ें और भ्रष्ट कथानक के शृंगार-व्याधि-वाली फ़िल्में लाभ पहुँचानेवाली समझी जाती हैं, उसी तरह चाय का भी व्यवसाय है। चाय में एक प्रकार का नशा रहता है। उसका असर दूसरे नशों की तरह नहीं पड़ता, पर क्षति दूसरों से कम नहीं होती। कुछ दिन तक चाय पीते रहने से एक प्रकार की खुश्की हमेशा चेहरे पर छाई रहती है, जिससे सुंदर भी असुंदर मालूम होने लगता है। कसैली होने के कारण आँत के भीतर के पर्दे को सख़्त कर देती है। इससे रस के चूसने की शक्ति घट जाती है। हाज़िमा बिगड़ जाता है। यह अन्य अनेक रोगों का कारण है। इससे कई प्रकार की उदर-व्याधियाँ होती हैं। नींद कम आती है।

यह स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकर है। इससे अग्निमांद्य, गुर्दे के रोग, शारीरिक और मानसिक दुर्बलता भी पैदा होती है। योरप और अमेरिका मे कैंसर-नामक असाध्य रोग का कारण भी चाय समझी जाती है। भारत के जिन प्रदेशों में चाय अधिक प्रचलित है, वहाँ के बहुसंख्यक लोग मंदाग्नि से पीड़ित रहते हैं। यह नशा बड़े जोरों से शिक्षितों में फैल रहा है। चाय पिलाना सभ्यता का एक अंग हो गया है। पर इसका परिहार हमारे लिये, देश के दुर्बल मनुष्यों के लिये, अत्यावश्यक है। लोग स्वयं तो चाय छोड़ें ही, दूसरों को भी छोड़ने को बाध्य करें। सभ्यता का व्यवहार इलायची और लौंग से और सुघर होता है।

× × ×

१६ कुँवर गणेशसिंहजी भदौरिया का निधन!

तारीख़ २६ दिसंबर की रात को, आगरे मे, कुँवर गणेशसिंहजी भदौरिया बी० ए० का स्वर्ग-वास हो गया! श्रीमान् कुँवर साहब मनुष्यों मे रत्न थे। इस नोट के लेखक को उन्हे बहुत पास से देखने का मौका मिला था। और, यह बिना किसी अत्युक्ति के कहा जा सकता है कि कुँवर साहब (आगरे मे वह इसी नाम से विख्यात थे) एक असाधारण व्यवसाय-बुद्धिवाले, एक असामान्य उदार हृदयवाले और एक स्वात्माभिमानी सच्चे क्षत्रिय थे। सनातन धर्म के पक्के अनुयायी, हिंदी के परम भक्त तथा कुशल लेखक, सत्कार्यों मे मुक्त-हस्त हो दान देनेवाले, क्षत्रियोचित वीरता के आगार, अदम्य उत्साह की मूर्ति, मित्रता के दृढ़प्रतिज्ञ निबाहनेवाले, गंभीर और निरभिमान कुँवर साहब सदा अपने मिलनेवालों के हृदय मे प्रेम का संचार करते थे, तथा सबको सदा उनका भरोसा रहता था। आर्थिक संकट के समय में भी उनका धैर्य एक देखने की चीज़ था। और, अपने संकल्प को पूरा करने में अपना सर्वस्व तक स्वाहा कर देना उनके लिये मामूली-सी बात थी।

उनका जन्म एक ग़रीब, परंतु गौरवान्वित क्षत्रियकुल मे, इटावा नगर के समीप के पछायाँ-नामक ग्राम मे, हुआ था। उनकी शिक्षा ग्वालियर तथा मेरठ में हुई। बी० ए० पास करने पर कुछ दिन इधर-उधर भटककर उनके जी मे कलकत्ता जाने की उमंग आई, और कलकत्ते जा पहुँचे। पास मे पूरे तीन रुपए भी न थे। वहाँ लड़के पढ़ाए, मार-वाड़ियों के यहाँ पत्र लिखने की नौकरी की, वंग-वासी के संपादन में सहायता दी, कलकत्ता-समा-चार निकलवाया, और उसके संपादक हुए। संपादन-कार्य के दिनों में प्रायः कलकत्ते के कुछ व्यवसायी उनके पास आते तथा अमेरिका इँगलैंड से आए हुए व्यापार-संबंधी तारों की ख़बर जल्दी-से जल्दी उनसे पूछ जाते, और उसी पर कुछ सौदे कर डालते। इस तरह कुँवर साहब के मित्रों को तो लाभ हुआ ही, साथ-ही-साथ कुँवर साहब का ध्यान भी व्यवसाय की ओर खिंचा, और वह भी स्वयं कुछ व्यवसाय करने लगे, और उसमे थोड़े ही समय में विशेष लाभ उठाया। बड़े बड़े व्यवसायियों को कुँवर साहब की योग्यता तथा व्यवसाय-बुद्धि की प्रखरता का कायल होना पड़ा, और उनकी बैठक में संध्या को बाक़ायदा दरबार लगने लगा। इसी बीच में धन-कुबेर दरभंगा-नरेश की दृष्टि कुँवर साहब पर पड़ी, और उन्होंने उन्हें अपने फ़र्म मे साझी कर लिया। रुपए की सहूलियत मिलने से कुँवर साहब की बुद्धि ने बड़े बड़े चमत्कार दिखाए, और एक सौदे मे तो कुछ ही दिन के अंदर अठारह लाख रुपया मिला। कलकत्ते के बाज़ार मे कुँवर साहब की तूती बोलने लगी। युक्त प्रांत मे जो भी जीविकार्थी जाता, कुँवर साहब से मिलता और सहायता पाता। कुछ दिन बाद महाराज दरभंगा ने उन्हे आगरा-यूनाइटेड-मिल्स की मैनेजिंग एजेंटी करने आगरे भेजा। मिलों

की दशा उस समय बड़ी खराब थी, और उनके मेनेजिंग एजेंट मि० पी० एस्० टीनारी उनसे अपनी जान छुड़ाना चाहते थे। कुँवर साहब मेनेजर हो गए, और धनाभाव दूर होने से मिलों का काम चलने लगा, परंतु कुछ दिन बाद बड़ी मंदी का जमाना आया, और दशा बिगड़ गई। उस समय कुँवर साहब-से धीर-वीर का ही काम था कि अनेक भवरों से मिलों को बचाया, और उनको बना रखने के लिये अपनी हानि का कुछ भी ख़याल न किया। तब से मिलों का पूरा भार कुँवर साहब पर ही आ पड़ा, और उन्होंने बड़ी मनस्विता के साथ उसे उठाया। अंत समय तक मिलों से संबंध रहा, और वही उनके जीवन का अंत हुआ। मिलों के मज़दूरों को ऐसा मालिक फिर कभी मिल सकेगा या नहीं, इसमें संदेह है। आगरे के हितुओं को ऐसा नेता कितने दिन में फिर मिलेगा, यह कहना संभव नहीं। कुँवर साहब का जीवन अत्यंत शिक्षा-पूर्ण है, और हम उनके अग्रज, अपने मित्र रा० ब० ठाकुर उमानाथसिंहजी तथा उनके प्रिय भतीजे कुँवर सुरेंद्रबहादुरसिंहजी से प्रेम-पूर्वक अनुरोध करते हैं कि स्वर्ग-गत आत्मा का विस्तृत जीवन वृत्तांत अवश्य प्रकाशित करें। उनका हिंदी-भाषी प्रांतों पर बड़ा एहसान होगा।

अंत में हम जी कड़ा करके उनके भाइयों, भतीजों तथा कुटुंबियों से धैर्य धारण करने की प्रार्थना करते हुए उनके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

१. संस्कृत-संसार के प्रकांड पंडितों की राय

(१) संस्कृत और अँगरेज़ी के प्रकांड पंडित डॉक्टर गंगानाथ झा, भूतपूर्व वाइस-चांसलर प्रयाग-विश्वविद्यालय—आजकल तो बेचारी ब्रजभाषा ऐसी दुर्दशा में गिरी है कि अभिनव साहित्य-धुरंधरों द्वारा प्रायः उसकी निंदा ही सुनने मे आती है। ऐसी दशा में आपने वृद्धा को हस्तावलंब देने का साहस किया, तावन्मात्रेण आपका उद्योग सराहनीय है । उस पर भी जब आपने प्रत्यक्ष दिखा दिया कि ब्रजभाषा की कविता अब भी उत्तम कोटि की—मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि सर्वोत्तम कोटि की—हो सकती है, तब तो आप धन्यवाद ही नहीं, पूर्ण आशीर्वाद के पात्र हैं ।

पंडितों का नाम 'दोषज्ञ' भी है—'विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः' ऐसा अमरकोष मे है । इसलिये एक दोष भी बतलाता हूँ । चित्रों की सख्या बहुत कम है । 'चटनी' का काम तो देते हैं, पर लाभाल्लोभो हि जायते' इस न्याय के अनुसार 'और चित्र हों', ऐसी अभिलाषा उत्कट हो उठती है । फिर भी धन्यवाद !

नोट—चित्र तो दोहों पर सैकडों तैयार है, किंतु मूल्य अधिक बढ जाने से केवल १२ दिए है, और २० फ़ार्म की पुस्तक होने पर भी मूल्य २॥) रक्खा है। हिंदी में यह सबसे सस्ती पुस्तक है। पूज्यपाद डॉक्टर झा के आदेशानुसार ही दोहावली का आगामी कोई संस्करण निकाला जायगा, जिसमें ५०० दोहे और २५० चित्र होंगे। मूल्य कोई ५०) रहेगा।—प्रबंधक गंगा-ग्रंथागार

(२) संस्कृत के वर्तमान समय मे संसार के सबसे बड़े विद्वान्, जयपुर-राजसभा के प्रधान पंडित, महामहोपदेशक, समीक्षाचक्रवर्ती, विद्यावाचस्पति श्रीपं० मधुसूदन शर्मा ओझा जयपुर-निवासी —मैं तो आज श्रीयुत दुलारेलालजी भार्गव-प्रणीत 'दोहावली' को पढ़कर यह निस्संदेह कहूँगा कि यह दोहावली बिहारी-सतसई से स्पर्धा करनेवाली ही नहीं, किंतु कई भावों में उसके टक्कर लगानेवाली पैदा हो गई है। इसमे नयन-वर्णन, सामाजिक विचार और शांत रस आदि के कई दोहे बिहारी से बढ़कर है।

भार्गवजी की रचना के चमत्कार और मौलिकता तो प्रधान गुण हैं। आपकी कोमलकांत पदावली बड़ी ही श्लाघ्य है। इस कार्य के लिये मैं भार्गवजी को हार्दिक धन्यवाद देकर उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ कि वह अपने इस ग्रंथ को आगे और भी बढ़ाकर हिंदी-साहित्य का उपकार करें।

(३) संस्कृत-संसार के सर्वश्रेष्ठ काव्य-मर्मज्ञ, विद्वच्छिरोमणि पूज्यपाद पं० बालकृष्णजी मिश्र महाराज, हिंदू-विश्वविद्यालय मे संस्कृत-साहित्य-विभाग के माननीय अध्यक्ष—कविकुल-कुमुदकलाकरेण श्रीदुलारेलालभार्गवेण कृतां दोहावलीमाकलयन् अतितमानन्दमनुविन्दामि। यदस्यां रसानुसारिणा छन्दसा रीत्या कोमलतया मांसलत्वेन च मनोरमतास्पदानि विद्यन्ते पदानि।

अभिधया लक्षणया चाप्रधानवृत्त्या प्रतिपादिताः पदार्थाः प्रायेण विच्छित्ति विशेषाधायि व्यङ्ग्यव्यञ्जकतया पदकदम्बकानीव गुणपदवीं नातिशेरते सत्यपि समुदये विना प्रयासमायातानां शब्दार्थालङ्कृतीनाम् । रसेषु शृङ्गार एव प्राधान्येन ध्वनेरध्वनि पथिकतां दधाति । इयं किल सहृदय-हृदयहारिणी विहारीसतसईप्रभृतिमपि पुरातनी दोहावलीं विस्मारयति स्म, तस्मात् स्तोकतोऽपि नास्ति विप्रतिपत्तिरस्या अत्युपादेयतायाम् । किन्तु व्यङ्ग्यालङ्कारप्रकाशकं विवरणमस्यात्यन्तमा-वश्यकम्, येनाल्पमतीनामपि मानसे प्रमोदः पादमादधीनेति ।

(कवि-कुल-कुमुद-कलाकर श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा प्रणीत दोहावली को पढ़कर मुझे अतितम (अतुल) आनंद हुआ । इसके पद रसानुसारी छंद, रीति, कोमलता और पुष्टता से युक्त होने के कारण मनोरमता के सदन हैं । विना प्रयास आए हुए शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के साथ-ही-साथ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना से प्रतिपादित अर्थ द्वारा वैचित्र्य-विशेष प्रदर्शित करते हुए ये पद गुण-पदवी का भी अनुसरण करते हैं । रसों में शृंगार ही प्रधानतया ध्वनि के मार्ग का अनुगामी है । सहृदय जनों का हृदय हरण करनेवाली इस 'दोहावली' ने बिहारी-सतसई आदि पुरानी दोहावलियों को भी भुला दिया है, अतः इसकी अत्यंत उपादेयता रंचक-मात्र भी अस्वीकार नहीं की जा सकती । किंतु इसके व्यंग्यालंकार का स्पष्टीकरण अत्यत आवश्यक है, जिससे थोड़ी बुद्धिवाले भी इसका रसास्वादन कर सकें ।)

नोट—थोडी बुद्धिवालों के लिये भी विस्तृत टीका और व्याख्या-सहित पंचम सस्करण निकाला जा रहा है । टीका काव्य-मर्मज्ञ सिलाकारीजी ने की है ।—प्रबंधक गंगा-ग्रंथागार

(४) **आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक-चूड़ामणि राजवैद्य पं० मधुसूदन शास्त्री**—श्रीमान् कविवर दुलारेलालजी की 'दोहावली' पढ़ी, बार-बार पढ़ी, फिर भी पढ़ने की इच्छा है । "ज्यों ज्यो निहारिए नेरे ह्वै नैनन, त्यों-त्यो खरी निकरै सी निकाई ।" यह मतिरामजी का पद्य पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रहा है । 'दुलारे-दोहावली' जैसी मनोहर है, वैसी ही गूढ़-गंभीर भी । जितने ध्यान से पढ़ी जाय, उतना ही चमत्कार देख पडता है । यह दोहावली 'बिहारी-सतसई' के समकक्ष ही नहीं, कहीं-कहीं पर उससे बढ़कर है । मेरी सम्मति में "सतसैया के दोहरा, ज्यो नावक के तीर ।" के स्थान पर "दोहावलि के दोहरा, ज्यो नावक के तीर ।" कर देना ही उचित होगा । हमें तो पूर्ण आशा है कि अब की बार 'देव-पुरस्कार' की अधिकारिणी आधुनिक बिहारी दुलारेलालजी की दोहावली ही ठहराई जायगी । यह निस्सदेह मै कहने को तैयार हूँ कि आपकी 'दोहावली' सतसई से बढ़कर ही साबित होगी । इस समय ईर्ष्या-वश भले ही कोई निंदा करे, उससे इसका महत्त्व कम नहीं हो सकता ।

---

२. हिंदी-विद्वानों और काव्य-मर्मज्ञों की राय

(१) ब्रजभाषा-काव्य के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ और कविश्रेष्ठ, रत्नाकरजी के 'ऊधव-शतक' और हरिऔधजी के 'रस-कलस' के भूमिका-लेखक तथा सर्वप्रधान प्रशासक, वर्तमान समय में ब्रजभाषा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक **विद्वद्वर पं० रमाशंकरजी शुक्ल 'रसाल' एम्० ए० (हिंदी-अध्यापक प्रयाग-विश्वविद्यालय)** दुलारे-दोहावली को आधुनिक ब्रजभाषा-काव्यों से ही नहीं, बिहारी-सतसई तक से ऊँची रचना बतलाते हैं। सम्मति पढ़िए—

आपकी 'दोहावली' बड़े ही चाव से आद्योपांत देखी। कुछ तो इसके बहुत-से दोहे आपने 'द्विवेदी-मेला' के अवसर पर सुनाए थे। और मैंने उनकी तभी मुक्त कंठ से श्लाघा की थी। साथ ही 'दोहावली' को शीघ्र ही प्रकाशित करने का आग्रह भी किया था। आज इसे इस सौंदर्य के साथ प्रकाशित देख मुझे वास्तव में बहुत अधिक प्रसन्नता हुई है। यह तो आपको स्मरण ही होगा कि मैं आपकी 'दोहावली' को साहित्य-सदन की 'रत्नावली' कह चुका हूँ। दोहे वास्तव में अपने रंग-ढंग के अप्रतिम हैं। ये बड़े ही ललित, काव्य-कला कलित एवं ध्वनि-व्यंजना-वलित हैं। जैसा अन्य विद्वानों ने इस 'दोहावली' के संबंध में कहा है, वैसा प्रत्येक काव्य-कला-कौशल-प्रेमी सहृदय व्यक्ति कहेगा। इसकी महत्ता-सत्ता दिन-प्रति-दिन बढ़ेगी। सत्काव्य के सभी लक्षण इसमें सुंदर रूप में प्राप्त होते हैं। यों तो सतसइयाँ कई हैं, किंतु आपकी यह 'दोहावली' अप्रतिम ही है। भाषा-भाव, काव्य-कौशल, सभी दृष्टि से यह सर्वथा सराहनीय है। आप इस अमर रचना से अमर हो गए। ब्रजभाषा-काव्य के रसाल-वन में कल कंठ से ककुभ कूजित करनेवाला कोकिल यदि आपको इस रचना के लिये कहा जाय, तो सर्वथा उपयुक्त ही होगा। यदि इस रचना को मुक्तक-माला की मंजु मणि-मनका कहें, तो अत्युक्ति न होगी। यदि विद्वानों ने इसके दोहों को बिहारी के दोहों के समकक्ष या उनसे भी कुछ उन्नत कहा है, तो ठीक ही कहा है। ब्रजभाषा-काव्य-क्षेत्र में इस समय इस रचना तथा आपको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया है। मुझे पूर्ण आशा है कि इसके बाद जब आपकी पूरी सतसई प्रकाशित होगी, तब हिंदी-संसार अन्य सतसइयों को सर्वथा भूल जायगा। आपने ब्रजभाषा-काव्य को इस रचना के रसामृत से सिंचित कर नव-जीवन प्रदान कर दिया है। अब यह कहना, जैसा कुछ लोग कहते हैं, कि अमुक कवि (सत्यनारायण, हरिश्चंद्र आदि) ब्रजभाषा का अंतिम कवि था, सर्वथा भ्रममूलक और भिन्न-रुचि-मात्र-सूचक ठहरता है। कि बहुना? निष्कर्ष यह है कि इसमें वाक्य-लाघव, अर्थ-गौरव, माधुर्य एवं मंजु मार्दव सर्वत्र चारु चातुर्य-चमत्कार के साथ मिलते हैं। वर्तमान समय में प्रकाशित काव्यों में यह सबसे उत्कृष्ट है।

(२) ब्रजभाषा के विद्यावयोवृद्ध कविश्रेष्ठ रायबहादुर लाला सीतारामजी बी० ए० —

सतसैया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर ;
देखत को छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर ।
तिनसे बढ़ि दोहा रचे सुकबि दुलारेलाल !

(३) आचार्य-श्रेष्ठ बाबू श्यामसुंदरदास के सर्वश्रेष्ठ शिष्य, हिंदी के एकमात्र डी० लिट्०, हिंदी के उदीयमान लेखक और सुकाव्य-मर्मज्ञ डॉक्टर पीतांबरदत्तजी बड़थ्वाल, जिन्होंने प्राचीन हिंदी-साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया है—'दोहावली' पढ़कर यत्परो नास्ति आनंद हुआ । आप अपनी रचना को 'नीरस' कैसे कहते है ? यदि ऐसी सरस रचना को नीरस कहा जाय, तो सरस रचनाओं की गिनती में कितनी आ पावेंगी ? आपकी अनोखी सूझ-बूझ, ललित शब्द-साधना, चमत्कारी संबंध-गुंफन, सब सराहनीय हैं । आप सचमुच वाग्देवी के दुलारे लाल है । उसने काव्य-प्रणयन के भृगु-पंथ* को आपके लिये देहली का पैंडा बनाकर आपके भार्गवत्व की रक्षा की है । मैं राष्ट्रीय विषय ले आने-मात्र के लिये आपकी प्रशंसा नहीं करूँगा, बल्कि इस कारण कि राष्ट्रीय घटनाओं को भी आपने काव्य के साँचे मे ढाल दिया है ।

इस रूखे ज़माने मे भी आपने पुरानी रसिकता के मुग्धकर दर्शन कराए हैं । इसमे संदेह ही नहीं कि आप इस युग के 'बिहारी' है । वह समय दूर नहीं जान पडता, जब 'बिहारीलाल' कहते ही हठात् दुलारेलाल भी मुँह से निकल पडेगा । सिलाकारीजी ने अपनी बृहत् प्रस्तावना लिखकर इस संबंध मे कहने के लिये कुछ छोडा ही नहीं है, इसी से अधिक कुछ नही लिखता ।

(४) काव्य-कल्पद्रुम के यशस्वी लेखक, धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ, कविवर श्रीयुत कन्हैया-लालजी पोद्दार—जब कि खड़ी बोली के मेघाच्छन्न, अंधकारावृत नभोमंडल मे विरल नक्षत्र की भाँति ब्रजभाषा-काव्य लुप्तप्राय हो रहा है, ऐसे समय में दुलारे-दोहावली की भाव-पूर्ण, रमणीय, चित्ताकर्षक रचना वस्तुतः चंद्रोदय के समान है ।

दुलारे-दोहावली की शैली ब्रजभाषा के प्राचीन दोहा-साहित्य के अनुरूप कोमलकांत पदावली-युक्त, रस, भाव, ध्वनि, अलंकार आदि सभी काव्योचित पदार्थों से विभूषित है । कुछ दोहे तो बड़े ही चित्ताकर्षक हैं । वे तुलनात्मक आलोचना में महाकवि बिहारीलाल के दोहों की समकक्षता उपलब्ध कर सकते हैं ।

निस्संदेह दुलारे-दोहावली अपनी अनेक विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा-साहित्य में उच्च स्थान उपलब्ध करने योग्य है ।

(५) हिंदी-संसार मे व्याकरण के सबसे बड़े पंडित, व्याकरणाचार्य कविवर पं० कामता-प्रसादजी गुरु—आपकी रचना प्रशंसनीय है । आपके रचे हुए दोहे पढ़ने से अनेक स्थानों में

* भृगु-पंथ बदरीनारायण से आगे है, जिस पर चलना असंभव ही-सा है। संभवत, इस मार्ग से ही भृगु मुनि नारायण के दर्शन के लिये अपने आश्रम से उतरते होंगे ।

बिहारीलाल का स्मरण हो आता है ..। कुछ दिनों मे 'दुलारे-सतसई' तैयार होकर हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ाएगी। . आपकी दोहावली व्याकरण की भूलों से सर्वथा मुक्त है।

(६) विद्वद्वर रायबहादुर डॉक्टर हीरालालजी डी० लिट्० सभा—इसमें संदेह नहीं कि आपके दोहे बिहारी के दोहों से स्पर्धा करते है। इस प्रकार के सात शतक तैयार होने पर बिहारी की सतसई के समान 'दुलारे-सतसई' प्रस्तुत हो जायगी। सुनता हूँ, किसी दूसरे संस्करण के लिये आप एक विस्तृत भूमिका भी लिख रहे है, जिसमें ब्रजभाषा-काव्य पर अच्छा प्रकाश डाला है, सो योग्य ही है।

(७) हिंदी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सुधींद्रजी वर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०—वास्तव मे बिहारी को मात देकर आपने अपना 'अभिनव-बिहारी' नाम सार्थक किया है। एक-एक दोहा पद-लालित्य, अर्थ-गौरव तथा रचना-सौष्ठव का उत्तम उदाहरण है। प्राचीन कवियों की मौलिक कविता-शैली पर आधुनिक विज्ञान, समाज-शास्त्र, राजनीति, देश-दशा तथा साहित्यिक आदर्श को लेकर आपने वर्तमान हिंदी-काव्य का जो पथ-प्रदर्शन किया है, उसके लिये हिंदी-साहित्य का आगामी युग आपका अत्यंत आभारी होगा। वास्तव मे आपका स्थान इस युग मे न केवल सर्वश्रेष्ठ पुस्तक-प्रकाशक, सफल संपादक तथा उत्तम कलाकार की दृष्टि से ही, अपितु एक युग-प्रवर्तक महाकवि की दृष्टि से भी सर्वोपरि रहेगा। हिंदी को केवल इतना ही देकर आप चुप न रह जाइएगा।

(८) एक सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ—इस सांगोपांग, सचित्र, कला-कौशल-पूर्ण प्रकाशन के लिये आपको बधाई है। पुस्तक की भूमिका बडी पांडित्य-पूर्ण है। उसमें साहित्य-शास्त्र के प्रधान तत्त्वों तथा ब्रजभाषा के महत्त्व का बड़े सुंदर रूप से दिग्दर्शन कराया गया है।

भाव-गांभीर्य और अर्थ-व्यंजकता के लिये दोहे-जैसे छोटे छंद ने जो प्रसिद्धि पाई है, उसे आपने पूर्णतया स्थापित रक्खा है। आपने यद्यपि प्राचीन परंपरा का अनुकरण किया है, तथापि उसमे एक सुखद नवीनता उत्पन्न कर दी है। बाजी उपमाएँ कम-से-कम मेरे लिये बहुत नवीन और उपयुक्त प्रतीत होती है। आपने जो नई लगन की अमरबेलि से उपमा दी है, वह बडी सुंदर है। अमरबेलि स्वयं बढ़ती है, और जिसके आश्रय रहती है, उसको सुखा देती है। यही हाल प्रेम की लगन का है। वह स्वयं बढ़ती रहती है, किंतु जिसमें लगन पैदा होती है, वह सूखती या सूखता जाता है। अमरबेलि के जड नहीं होती है, प्रेम की भी कोई जड नहीं है, तब भी उसकी बेलि हरियाती है। कालों की बुराई तो सूरदासजी ने ख़ूब की है, और उन्होंने भ्रमर, कोयल और काक, सबको एक चटसार के बतला दिया है—

सखी री! स्याम कहा हित जानै;
सूरदास सर्बस जो दीजै, कारो कृतहि न मानै।

यद्यपि सूरदासजी के पद का लालित्य तथा उसकी मीठी कसक अनुकरण से परे है, तथापि आपने काले की कृतघ्नता का वैज्ञानिक कारण देकर उसमे एक नवीनता उत्पन्न कर दी है—

ले सबकौ उर-रंग सोखत, लौटावत नहीं;
कपटी, कान्ह, त्रिभंग, कारे तुम ताते भए।

कुछ सीधे-सादे दोहे बहुत सुंदर लगते हैं—

पागल कौ सिच्छा कहा? साधू कौ तरवार?
कहा अंध कौ आरसी? त्यागी कौ घर-बार?

❀ ❀ ❀

मिलत न भोजन, नगन तन, मन मलीन, पथ-बासु;
निर्धनता साकार लखि ढारत करुना आँसु।

बड़ा सुंदर चित्र है। वर्तमान नृपतियों का भी आपने अच्छा चित्र खींचा है। अछूतोद्धार, गांधी महिमा आदि सामयिक विषय भी हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी काव्य-प्रतिभा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे, और उसके द्वारा ब्रजभाषा की बेलि लहलहाती रहे।

(६) सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ और समालोचक, कविवर पं० किशोरीदास वाजपेयी—फिर आप मुझे अपनी 'कवि-कुटीर' पर लिवा ले गए। कविजनोचित स्थान तथा ठाट बाट देखकर तबीयत ख़ुश हो गई।... . ...'दुलारे-दोहावली' की चर्चा छिड़ी। यह कितने सौभाग्य की बात है कि इस ज़माने में भी ब्रजभाषा में ऐसे-ऐसे रत्न पैदा हो रहे हैं! यह जानकर किसे प्रसन्नता न होगी कि भार्गवजी की ब्रजभाषा-कविता पर खड़ी बोली के स्तंभ श्रीनिरालाजी भी क़ुर्बान हैं, और श्रीसिलाकारीजी उसका एक बृहत् भाष्य बना रहे हैं! 'रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।' स्वागत है! इसी सिलसिले में आपने अपनी दोहावली के कुछ उत्तम दोहे सुनाए। मैंने भी दाद दी। तब आपने बतलाया कि "ये दोहे तो चुने हुए नहीं हैं, जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।" यह सुनकर और भी आश्चर्य हुआ। इसी समय आपने बतलाया कि 'लाज-लगाम'वाले दोहे को तथा इसी प्रकार के अन्य कितने ही दोहों को प्रखर समालोचक ठाकुर श्रीनाथसिंहजी बिहारी की कृति से भी बहुत बढ़कर समझते हैं। यह सुनकर मेरी छाती गर्व से तन गई, क्योंकि मैं तो ब्रजभाषा का पक्षपाती हूँ ही। ठाकुर श्रीनाथसिंहजी हरिऔधजी को भी कुछ नहीं समझते, जो सपार्टी ब्रजभाषा को मुर्दा भाषा बतलाते हैं, जब 'दुलारे-दोहावली' की ब्रजभाषा-कविता पर इस तरह लट्टू हैं, तब और क्या बाकी रहा? जादू वह, जो सिर पर चढ़कर बोले। मैंने भी आपकी कविता की तारीफ़ की; ख़ूब की। अब आपने बढ़िया ख़रबूज़े और शर्बत मँगाया। परंतु मुझे ख़रबूज़ों मे कुछ स्वाद ही न आया! यह ख़रबूज़ों का दोष न था, वे तो बढ़िया थे। बात यह थी कि पहले तो भार्गवजी की मीठी-से-मीठी कविता का स्वाद लिया, जिसके आगे 'दाख दुरी, मिसरी मुरी औ' सुधा रही सकुचाय।' उसके बाद वे ख़रबूज़े आए। तब भला, कैसे अच्छे लगें? अंगूर चखकर निबौरी कौन-सी जीभ पसंद करेगी? परंतु भार्गवजी के निर्हेतुक प्रेम ने उनमें और अधिक मिठास पैदा कर दी। बड़े स्वाद से खाए, मैंने भी और भार्गवजी ने भी। फिर एक-एक गिलास शर्बत पिया। अब मैंने बिदा माँगी। खड़े-खड़े भी कुछ ऐसी ही बातें होती रहीं। बड़े प्रेम से आपने बिदा किया।

(१०) हिंदी के प्रसिद्ध लेखक ठा० रामसिंहजी एम्० ए०, डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग (बीकानेर)—जब बड़े-बड़े विद्वानों और कवियों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, तो फिर मैं क्या सम्मति दूँ; परंतु इतना अवश्य कहूँगा कि हिंदी के इस नए युग में ऐसे रसीले दोहे देखने मे नहीं आए। अँगरेज़ी मे कहावत है—"New wine in old bottles." आपने भी कहीं-कहीं ब्रजभाषा की पुरानी बोतल में नए विचारों की मदिरा भरकर उसे और अधिक चमका दिया है। पुस्तक की सजधज और छपाई सराहनीय है। मै समझता हूँ, यह पुस्तक लोक-प्रिय होगी। देव-पुरस्कार भी इसी पुस्तक के निर्माता को मिलेगा, ऐसी मेरी भविष्यद्वाणी है, जो यदि सच्ची निकले, तो आप हमे क्या देंगे?

(११) सुप्रसिद्ध लेखक और कवि पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी—आपके दोहों मे काव्य के सर्वोत्कृष्ट गुण मौजूद है। मुक्तक काव्य वर्तमान समय में बहुत ही कम हिंदी-कवियों ने लिखने का साहस किया है, और जिन लोगों ने लिखा है, उनमें आपकी रचना मुझे तो भाई, बहुत सुंदर जँची है। क्योंकि अन्य लोगो की रचना मे ऐसे अर्थ-गांभीर्य, भाव-सौंदर्य और काव्यालंकार मुझे दिखाई नहीं दिए। थोड़े-से शब्दों में बहुत-सा अर्थ भरने के कारण यद्यपि किसी-किसी मुक्तक मे प्रसाद-गुण की थोड़ी-सी हानि ज़रूर हुई है, पर शब्द-सौष्ठव में भिन्न-भिन्न काव्यालंकारो के कारण नीरसता कहीं नहीं आने पाई है। बिहारी के दोहों से मैं आपके दोहो की तुलना नहीं करना चाहता, जैसे अन्य कई सम्मतिदाताओं ने की है, तथापि इतना मैं भी कह सकता हूँ कि आपके कई दोहे बिहारी से श्रेष्ठ ज़रूर उतरेंगे। और, बिहारी के दोहों मे जो कहीं-कहीं अश्लीलता का दोष लगाया जाता है, सो आपके दोहो में कही नही है। आपकी सुरुचि, प्रतिभा, विदग्धता, रचना-चातुरी और ब्रजभाषा पर आपका इतना अधिकार देखकर कौतूहल होता है।

हि० सा० सम्मेलन के पद्य-संग्रह मे आपकी दोहावली से कुछ दोहे मै रखवा रहा हूँ।

(१२) सुप्रसिद्ध समालोचक श्रीयुत कृष्णानंदजी गुप्त—आपकी रचना के संबंध में चतुर्वेदीजी की सम्मति पढ़ी। उनकी जो राय है, उसके संबंध में तो कुछ कहना व्यर्थ है। मगर विश्वास रखिए, उनकी उस सम्मति को कोई सुनेगा नही, जब कि आपकी रचना के विषय में सारा हिंदी-जगत् एकमत है। ऐसी दशा मे किसी के नापसंद करने से क्या होता है। मैं तो समझता हूँ, देव-पुरस्कार यदि किसी ब्रजभाषा के काव्य पर दिया जाय, तो वह आपकी सुंदर रचना को ही मिल सकता है।

मैने तो आपके दोहे, स्वयं आपके मुँह से, अनेक बार सुने हैं। फिर भी उनको बड़े चाव से पढ़ा। वे मुझे आशातीत रूप मे अद्भुत जान पड़े। स्वयं बिहारी आजकल मौजूद होते, तो इस प्रकार के दोहे शायद ही लिख पाते। उस ज़माने मे तो ऐसे दोहे उन्होंने लिखे नहीं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आपके दोहो मे प्राचीनत्व, नवीनत्व, निजत्व का अद्भुत और आश्चर्य-जनक सम्मिलन हुआ है।

(१३) पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान्, स्त्री-शिक्षा के स्तंभ तथा कन्या-महाविद्यालय के संस्थापक लाला देवराज—मैं समझता था, अब ब्रजभाषा में वैसी रस-भरी रचना नहीं हो सकती, पर आपकी दोहावली को देखकर मैं कुछ और ही समझने लगा हूँ। क्या आपके रूप में बिहारी ने अवतार तो नहीं ले लिया ? 'दुलारेलाल' और 'बिहारीलाल' नाम बहुत मिलते हैं। काम में भी सादृश्य है। नामों के अक्षर और मात्राएँ भी समान। आप बिहारी के आधुनिक संस्करण तो नहीं ? दोहे सर्वथा अच्छे हैं। दोहावली क्या सतसई में परिणत होगी ? हो !

(१४) हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका कुमारी अमृतलता स्नातिका, प्रभाकर—मैं 'दुलारे-दोहावली' की कितने दिनों से प्रशंसा सुनकर देखने को लालायित हो रही थी। मेरे अहोभाग्य है कि मुझे भी इस पुस्तिका का पीयूष पान करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके एक-एक पद्य में अलंकारों की झड़ी तथा ब्रजभाषा का सौष्ठव निहारकर श्रीभार्गवजी की अलौकिक कृति पर मन गद्गद हो जाता है। मैं तो समझ रही थी कि कवि बिहारीलाल के साथ ही ब्रजभाषा की कविता लुप्त हो गई। पर मेरा मनोभाव ही ग़लत निकला। दुलारे-दोहावली के ६६, ६७ नंबर के दोहे बिहारी से भी भावों में कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। मैं इस कविता कानन के मधुकर की काव्य-कुशलता पर उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ।

(१५) पंजाब के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्रीयुत संतरामजी बी० ए०—मित्र, आपने तो सचमुच कमाल कर दिया। मैं नहीं समझता था, आप ऐसे अच्छे दोहे लिख सकते हैं। मैं न तो कवि हूँ, और न काव्य-मर्मज्ञ, केवल मनोरंजन के लिये कभी-कभी कविता का रसास्वादन कर लिया करता हूँ। आपकी दोहावली पढ़कर मुझे बड़ा ही आनंद आया। कोई-कोई दोहा तो इतना अच्छा है कि पढ़ते ही अनायास 'वाह-वाह' निकल पड़ती है। पुराने कवियों के दोहों में जो-जो उत्तम गुण माने जाते हैं, वे सब आपके दोहों में मिलते हैं। अब यह कहना कठिन है कि केवल प्राचीन कवि ही अच्छे दोहे लिख गए हैं, नवीन कवि वैसे नहीं लिख सकते। मेरी स्त्री ने भी आपकी दोहावली को बहुत पसंद किया है।

(१६) दुलारे-दोहावली के प्रणेता के शिक्षा-गुरु श्रीकालीचरण चटर्जी एम्० ए० हेड-मास्टर—आपको इस अनुपम कृति के लिये हार्दिक बधाई। यह असंभव है कि इस उत्कृष्ट रचना को पढ़कर कविवर श्रीबिहारीलाल की 'सतसई' का ध्यान न आवे। आपकी कविता मर्मस्पर्शी तथा अत्युच्च कोटि की है। कितने ही दोहे तो हिंदी-साहित्य में बेजोड़ हैं ! इनमें थोड़े-से ही शब्दों में गहन विचार कूट-कूटकर भरे गए हैं। मुझे विश्वास है कि जब तक हिंदी-भाषा इस संसार में प्रचलित रहेगी, तब तक आपके दोहे हिंदी-साहित्य-भांडार के अमल, अमोल रत्न बने रहेंगे। साहित्य-सम्मेलन आदि की परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में इस पुस्तक को शीघ्र ही स्थान मिलना चाहिए।

(१७) पं० जीवनचंद जोशी एम्० ए०—आपने 'दोहावली' लिखकर हिंदी-संसार में अच्छी हलचल मचा दी है। जिस रचना में श्रीसुमित्रानंदन पंतजी को 'प्राचीन काव्यादर्श' के सर्वोत्कृष्ट उदा-

हरण मिलते हैं, जिस रचना को श्रीसूर्यकांत त्रिपाठीजी ब्रजभाषा-साहित्य की सर्वोत्तम कृति समझते है, जिस रचना के दोहे रायबहादुर श्रीहीरालालजी की सम्मति में बिहारी के दोहों से स्पर्धा करते हैं, जिन दोहो मे ठाकुर श्रीनाथसिंह-से दोहा-विरोधियों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति है, जिन दोहो पर श्रीलोकनाथजी टीका लिखना चाहते है, ऐसी रचना के बारे में दो सम्मतियाँ हो ही नहीं सकतीं। जो श्रेय अन्य कवियो को सप्तशती लिखकर प्राप्त हुआ है, वह, ज्ञात होता है, आप शतक लिखकर ही पा लेगे। इस सफलता के लिये बधाई देता हूँ। मैं कभी-कभी यह सोचता हूँ कि आपकी 'दोहावली' (शतक) पर ही जब काव्य-मर्मज्ञ इस प्रकार मुग्ध हैं, और भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं, तो आपकी सप्तशती के प्रकाशित होने पर हिंदी-संसार मे न-जाने कैसी क्रांति उपस्थित होगी! पदार्थवाद के इस युग में जब कि पुराने विचार, पुरानी परिपाटी, पुराने आदर्श, और तो और, पुराण पुरुष के अस्तित्व पर भी आक्रमण हो रहे हैं, आपका प्राचीन आदर्श को अपनाना और भारतीय संस्कृति के इस उपेक्षा-काल मे "नंद दुलारेलाल" से हृदय मे निवास करने की प्रार्थना वास्तव में बडे ही साहस का कार्य है। आपने अंध-अनुकरण, अनुवाद और अनुराग से दूर रह स्वकीय अनुभवो को ही सरल, सुगम रूप मे हिंदी-संसार के समक्ष रक्खा है। यह सर्वथा प्रशंसनीय है। हिंदी को अभी आपसे बहुत आशाएँ हैं।

(१८) प्रसिद्ध उपन्यास और कहानी-लेखक पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक—बिहारी के पश्चात् ब्रजभाषा में दोहे लिखने का यह आपका प्रयत्न बहुत सफल रहा। वैसे तो सभी दोहों में कुछ-न-कुछ अनोखापन है, परंतु कुछ दोहे तो वास्तव में बिहारी से भी बाज़ी मार ले गए हैं। दुलारे दोहावली के रूप में आपने हिंदी-संसार को वह चीज़ भेंट की है, जिससे वह आपका चिरऋणी रहेगा।

(१९) प्रोफेसर अयोध्यानाथजी शर्मा एम्० ए० (हिंदी)—आपको इस युग का बिहारी कहना चाहिए। कहीं-कही पर तो आपके दोहे बिहारी के कुछ दोहों से भी श्रेष्ठ हो जाते हैं।

(२०) विद्वद्वर प्रोफेसर विद्याभास्करजी शुक्ल एम्० एस्-सी०, साहित्यरत्न, वनस्पति-विज्ञान-अध्यापक, नागपुर-विश्वविद्यालय—दुलारे-दोहावली को आद्योपांत पढकर मैं यही कहूँगा कि यह अपने ढंग की एक अनोखी रचना है। दोहों की रोचकता, उनके चुभते हुए भाव और उनका सुंदर शब्द-विन्यास, उनकी पद-योजना तथा उनका प्रवाह देखकर तो कोई भी यह कह उठेगा कि ये दोहे बिहारीजी के दोहों से कहीं अच्छे है, परंतु सबसे अनोखी बात जो मुझे इस रोचक रचना में पसंद आई, वह यह थी कि इसमे कितने दोहे ऐसे हैं, जिनमे उच्च कोटि के विज्ञान की झलक है। ये साइंटिफ़िक दोहे लेखक की विज्ञान की योग्यता पर झलक डालते है। मुझे तो आश्चर्य है कि इतनी थोड़ी अवस्था मे ही एक श्रीदुलारेलालजी में कितनी बाते है! उच्च कोटि के संपादक, लेखक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस आदि के एक-मात्र संचालक होते हुए भी एक धुरंधर कवि और उस पर भी विज्ञान की ऐसी योग्यता! मुझे

तो इस रूप मे साइंटिफ़िक रचनाएँ पहली ही बार हिंदी-संसार में दिखाई दी है। मैंने आपके कुछ अप्रकाशित दोहे भी सुने हैं, और कितनों मे ही विज्ञान के विविध उच्च कोटि के विषयों का सार पाया है।

(२१) हिंदी के सुप्रसिद्ध समालोचक, विद्वद्वर डॉक्टर हेमचंद्र जोशी—आपकी दोहावली चमत्कार-पूर्ण है। इस समय जब कि हिंदी-साहित्य के ऊपर रहस्य या छायावाद के घनघमंड बादल अपने अनर्थकारी अंधकार की छाया फैलाकर कविता-प्रसाद और रसवती वाक्यावली को लोप करने का सतत प्रयत्न कर रहे है, आपकी ब्रजभाषा की ललित, कांत पदावली रस की धार बहाने में समर्थ हुई है। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ कि इस विषय पर हिंदी के साहित्यज्ञ एकमत हैं।

(२२) विद्वद्वर प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी०—ब्रजभाषा को मृतप्राय समझनेवालो की आँखे अब खुलेगी। खड़ी बोली के इस युग मे ब्रजभाषा की इतनी उच्च कोटि की कविता हो सकती है, यह बात बहुत कम लोगो की समझ में आती है। आपके अनेक दोहे, प्रायः वे सभी, जिनमें आपने वैज्ञानिक उपमाएँ दी है, और कुछ अन्य भी, ऐसे है कि बिहारी और मतिराम को मात करते हैं।

लै सबको उर-रंग, सोखत, लौटावत नहीं;
कपटी, कान्ह, त्रिभंग, कारे तुम तातें भए।

यह दोहा वही लिख सकता है, जो प्रकाश-विज्ञान का मर्मज्ञ हो। इससे आगे का दोहा भी इसी प्रकार का है। नं० ६६ के दोहे में जो हीरे के गुणो की ओर इशारा किया है, वह भी साधारण साहित्य-कवि के लिये कठिन है। भूकंप और ज्वालामुखी का संबंध भी नं० ८८ के दोहे मे बड़ी चतुराई से बताया है।

नं० ८६ मे रहट की, ८९ में कुरंड की, १०१ में ज्वार-भाटे की, ११८ में शून्य की, बिजली-घर (Electric power house) की १२० में, annealing की ११४ में, २६ में चकमक और ईस्पात की, ३४ मे वायुयान की, ६७ मे अंधविंदु की, हीरे की ६८ में, आतिशी काँच की ८२ में जो उपमाएँ दी गई हैं, वे आपका वैज्ञानिक अनुभव पूर्णतया बतला रही है।

शृंगार-रस के दोहो में भी आपने अद्वितीय प्रतिभा दिखाई है। देश-प्रेम, देशोद्धार, समाज-सुधार, राजनीति, वेदांत, भक्ति, वीर आदि रस तथा समकालीन इतिहास (Contemporary History) पर भी आपने अनुपम दोहे लिखे हैं। आपके इस रस-पूर्ण सर्वांग-समन्वित संग्रह पर बधाई है! आशा है, ऐसे ही और दोहों की रचना करके आप हिंदी-साहित्य में नए जीवन का संचार कर देंगे।

---

३. हिंदी-कवियों की राय

(१) सबसे वृद्ध काव्य-मर्मज्ञ, छंद-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् कविश्रेष्ठ पं० जगन्नाथ-प्रसादजी 'भानु' लिखते हैं—

"कवि-सम्राट् श्रीदुलारेलाल भार्गव

सुहृद्वर,

'दुलारे-दोहावली' की प्रति मिली। अनेक धन्यवाद। पुस्तक पढ़कर चित्त अत्यंत प्रसन्न हो गया। इसके पहले भी मैं माधुरी या सुधा मे प्रकाशित चित्रो के नीचे छपे आपके बनाए हुए दोहो को पढ़कर आपकी प्रशंसा किया करता था, और मित्रो से कहा करता था कि इन भाव-पूर्ण दोहो को पढ़कर बिहारी कवि का स्मरण हो आता है। सचमुच मे जैसे वह कोमल पर मार्मिक, ललित पर अनूठे, सरस और सजीव दोहो के लिखने में समर्थ और सिद्धहस्त थे, जान पड़ता है, वे ही सब बाते माता सरस्वती ने आपकी लेखनी में भी भर दी हैं। ब्रजभाषा के वर्तमान काल के कवियों मे ······सर्वश्रेष्ठ कवि मानता हूँ।

आपने यह बहुत अच्छा किया, जो इन सब दोहों को क्रमबद्ध करके उनका संग्रह, सचित्र और सजावट के साथ, प्रकाशित कर डाला। यह अब हिंदी-साहित्य की बहुमूल्य चीज़ हो गया है।"

(२) महाकवि शंकरजी—महाकवि पं० नाथूराम शंकरजी शर्मा ने, सन् १९२२ में, माधुरी मे प्रकाशित दुलारे-दोहावली के प्रारंभिक और अपेक्षाकृत साधारण दोहों पर ही मुग्ध होकर बिना जाने ही कि ये श्रीदुलारेलाल के लिखे है, उन्हे लिखा था—"माधुरी बड़े ठाट-बाट से निकली है। परमात्मा उसे उत्तरोत्तर उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ावे। . .. दोहा लाजवाब निकला है। दोहा के प्रणेता की सेवा में मेरा प्रणाम पहुँचे।...... कविता है, तो यह है!"

नोट—सुप्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ, संपादक-प्रवर, कविवर पं० हरिशंकर शर्मा का कथन यह है कि पूज्य पिताजी शंकरजी महाराज दुलारे-दोहावली के दोहों की सदा प्रशंसा करते रहते थे, और 'माधुरी' में प्रकाशित कुछ दोहों पर उन्होंने "बहुत ख़ूब" लिख रक्खा था!

(३) महाकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त—'दुलारे-दोहावली' की रचना जिस परंपरा को लेकर की गई है . ,वह आजकल के लिये विलक्षण वस्तु है, इसमे संदेह नहीं, किंतु मुझे आशा नहीं कि वह परंपरा फिर भी आगे बढ़ सकेगी। उसे आयत्त करने की शक्ति सहज नहीं। दुलारेलालजी ने पूर्व जन्म के संस्कार से ही उसे पाया होगा। उनका शब्द-शिल्प देखकर आनंद के साथ-साथ कौतूहल और विस्मय भी होता है। उनकी इस प्राचीन शैली की सफलता में ही एक नूतनता भरी है। उनकी सूझ-बूझ की नवीनता का कहना ही क्या? आज लोग भले ही उन पर टीका-टिप्पणी करें,

परंतु हिंदी काव्य के दोहा-साहित्य के इतिहास में प्राचीनों के साथ उनका भी एक विशेष स्थान होगा ही। एक मित्र के नाते उसके लिये मैं उन्हे सहर्ष बधाई देता हूँ।

(४) छायावाद के श्रेष्ठ महाकवि पं० सुमित्रानंदनजी पंत—प्रायः प्रत्येक दोहा आपने मौलिक प्रतिभा, कोमल पद-विन्यास एवं काव्योचित भाव-विलास से सजाया है। शृंगार तथा प्रकृति-प्रधान दोहे मुझे अधिक पसंद है। तुलनात्मक दृष्टि से मध्यकालीन महारथियो की रचनाओ से वे होड लगाते है। आपकी सफलता के लिये मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

(५) हिंदी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार, सुप्रसिद्ध समालोचक, विद्वद्वर रायबहादुर पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०—पं० सुमित्रानंदनजी पत ने दुलारे-दोहावली के सबंध मे जो कुछ लिखा है, उससे मैं अक्षरशः सहमत हूँ।

(६) कवि-सम्राट् पंडित अयोध्यासिहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—

काके दृग बिलसे नही लहे सु-मुकुता-हार,
देखि दुलारेलाल-कृत दोहावली-दुलार ?
बनी सरस दोहावली, बरसि सुधा-रस-धार,
कौन दुलारेलाल के दिल कौ लहे दुलार ?

(७) कविवर प्रोफेसर रामदास गौड़ एम्० ए०—२०० दोहो तक आँखे पहुँच गई। बढ़े चलिए। ७०० पूरे कीजिए। बड़े बाँके दोहे है। राजनीतिक दोहे महत्त्व के है। रचनाकाल के अंतः-साक्षी भी है। मुझे तो आपके कई अनुपम दोहे बिहारी से भी चोखे लगते हैं। आजकल के विषयो का समावेश करके आपने इन्हे समयानुकूल बना दिया है। रत्नाकरजी ऐसा नहीं कर सके।

(८) सरस्वती-संपादक कविवर ठाकुर श्रीनाथसिहजी—आपका 'स्मर-बाग़' दोहा बिहारी के दोहों से बाज़ी मार ले गया है! थोड़े शब्दो मे बड़ी बात व्यक्त करने के लिये बिहारी प्रसिद्ध है। पर, जान पड़ता है, आप उनकी इस प्रसिद्धि पर चोट करेंगे।...मैं दोहो का विरोधी था.., पर आपके दोहो ने इस दिशा में भी मेरी रुचि उत्पन्न कर दी है।...मैं सप्रमाण सिद्ध कर सकता हूँ कि आपकी दोहावली बिहारी-सतसई से बाज़ी मार ले गई है।

(९) महाकवि सनेहीजी—श्रीदुलारेलालजी के दोहे हिंदी-संसार में अच्छी प्रसिद्धि पा रहे हैं। प्राचीन कवियों में 'बिहारी', 'रसलीन' और 'रहीम' आदि के दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। 'रहीम' इन दोहो के विषय में कहते हैं—

दोहा दीरघ अरथ के आखर थोरे माहि,
ज्यो 'रहीम' नट कुंडली सिमिटि, कूदि कढ़ि जाहि।

श्रीदुलारेलालजी के दोहो मे भी यही ख़ूबी पाई जाती है। नमूना देखिए—

नख-सिख-देस लग्यो चढ़न इत जोबन-नरनाह,
पदनि-चपलई उत लई जनु दृग-दुरग पनाह।

तपत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत बिकलता-मेह;
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत बहुरि अछेह।
चित-चकमक पै चोट दै, चितवन-लोह चलाइ,
हित-आगी हिय-सूत मैं ललना गई लगाइ।
लरैं नैन, पलकैं गिरैं, चित तड़पै दिन-रात;
उठै सूल उर, प्रीतिपुर अजब अनोखी बात।

शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों के दोहों मे भी अच्छा काव्य-कौशल है।

(१०) कविश्रेष्ठ हितैषीजी—आपने दोहे लिखकर वह कमाल दिखलाया कि मैं आश्चर्य-चकित रह गया। मैं स्पष्ट कहने मे संकोच न करूँगा कि आपने बिहारी से लेकर अब तक के प्रायः सभी कवियों को पीछे छोड़ दिया। आचार्य द्विवेदीजी के सम्मान के हेतु हुए प्रयाग के द्विवेदी-मेला में राजा साहब कालाकाँकर के और मेरे अनुरोध पर तुरंत रचना करके तो आपने मुझे मुग्ध ही कर लिया था। तब मैंने ही नहीं, वरन् उपस्थित सहस्रों नर-नारियों ने मुक्त कंठ से आपकी अपूर्व कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की थी। आपकी यह दोहावली वर्तमान काल में ब्रजभाषा की अद्वितीय वस्तु है। हिंदी-संसार को इसे अपनाकर आपका उत्साह बढ़ाना चाहिए।

(११) आचार्य रामकुमार वर्मा एम्० ए०, हिंदी-विभाग, इलाहाबाद-युनिवर्सिटी—मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि दोहावली में कल्पना और अनुभूति का जितना सजीव चित्रण हुआ है, उतना आधुनिक ब्रजभाषा के किसी भी ग्रंथ मे नहीं। यह आधुनिक ब्रजभाषा में सर्वोत्कृष्ट रचना है। विशेषता तो यह है कि इस दोहावली में ब्रजभाषा ने नवीन युग की भावना उतने ही सौंदर्य से प्रदर्शित की है, जितने सौंदर्य से राधाकृष्ण के शृंगार की भावना। इसमें संदेह नहीं कि आपकी यह कृति अमर रहेगी। . ... ब्रजभाषा में लिखनेवाले आधुनिक कवियों के लिये दुलारे-दोहावली आदर्श रचना होगी।

(१२) खड़ी बोली के महाकवि बाबू भगवतीचरणजी वर्मा—प्रत्येक युग की कविता उस युग की प्रतिनिधि कविता होती है। बीते हुए युग की विचार-धारा, उसकी संस्कृति और उसकी कला को अपनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त करना वर्तमान युग के किसी भी व्यक्ति के लिये दुःसाध्य कार्य है। यह युग देव, बिहारी और मतिराम को पढ़कर उनके शब्द-विन्यास और वाक्-पटुता पर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा कर सकता है। पर देव, बिहारी अथवा मतिराम की-सी प्रतिभा का व्यक्ति उत्पन्न करना इसके लिये कठिन काम है। आपने असंभव को संभव कर दिखाया। पुराने आचार्यों की धारा को अपनाकर और कला की उस व्याख्या को ठीक मानकर, जिसे पुराने आचार्यों ने अपनाया था, आपने उन पर विजय पाकर पूर्ण सफलता प्राप्त की है। शब्द-कौशल और अर्थ-कौशल आपकी दोहावली मे जितना सुंदर है, उतना शायद बिहारी-सतसई मे भी नहीं है। नई उपमाएँ, नए अलंकार और नए विचार—इन सबका एक विचित्र सम्मिश्रण है। एक बार दोहावली पढ़कर कोई भी व्यक्ति आपके पांडित्य का क़ायल हो जायगा।

इतने महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ पर अपने अमूल्य समय और अपनी प्रतिभा का सदुपयोग करने पर मैं आपको बधाई देता हूँ।

पुनश्च—आपकी नए युग की कविताओं के संग्रह की भी हिंदी-संसार में बड़ी आवश्यकता है—उसे भी जल्दी-से-जल्दी छापकर हिंदी-संसार के सामने लाने का मैं आपसे अनुरोध करूँगा।

(१३) कविवर श्रीयुत गुरुभक्तसिंहजी 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी०—खड़ी बोली के इस युग में ब्रजभाषा में कविता लिखकर आपने ब्रजभाषा के स्वर्णयुग के कवियों से सफलता-पूर्वक टक्कर ली है। आपके दोहे पद-लालित्य, अर्थ-गौरव, शब्द सौष्ठव एवं माधुर्य में कहीं तो महाकवि बिहारीलाल के समकक्ष और कहीं बढ़कर ठहरते हैं। इस दोहावली को देखकर क्या अब भी कोई कह सकता है कि ब्रजभाषा Dead Language हो चली है।

सहज बिमल सित किरण-सी पदावली प्रतिएक—
बुध-बिचार-घन लहत ही प्रगटत रंग अनेक।
कण - से लघु यद्यपि लगैं दोहे सरस अखंड,
बिश्लेषण के होत ही प्रगटे शक्ति प्रचंड।

(१४) विद्वद्वर, कविश्रेष्ठ और हास्य रस के सुप्रसिद्ध लेखक पं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम्० ए०—जब मैंने पहले-पहले यह पुस्तक उठाई, तो विशेष चाव के साथ नहीं, क्योंकि लोगों ने पहले से मशहूर कर रक्खा था कि इसमें कुछ विशेषता नहीं है। जो कुछ है, वह बिहारी की नक़ल है। परंतु ज्यों-ज्यों मैं आगे बढ़ा, मैंने देखा, श्रीयुत दुलारेलालजी के साथ सरासर अन्याय किया गया है। आरंभ में शृंगार-रस के जो दोहे हैं, उनमें बिहारी की झलक है। बिहारी ही के दोहों में अन्य कवियों की झलक है। परंतु पुस्तक में काफ़ी मौलिकता और नवीनता है। प्रायः सभी रसों का समावेश है, और राजनीति भी नहीं छूटने पाई है। मेरा तो ख़याल है कि 'रत्नाकर' के बाद यही ग्रंथ ब्रजभाषा में निकला है।

कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी—

बिहारी-सतसई से कुछ नहीं कम—
दुलारेलाल की दोहावली भी।

(१५) कविराज पं० गयाप्रसाद शास्त्री, राजवैद्य, साहित्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति, भिषग्रत्न 'श्रीहरि'—इस दोहावली में कितने ही ऐसे दोहे हैं, जो अपना सानी नहीं रखते, और जिन्हें पढ़कर कोई भी सहृदय व्यक्ति मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। 'दोहावली' के प्रत्येक दोहे में कोमल-कांत पदावली के साथ-साथ अनूठे भाव, अनुप्रास तथा यमक आदि शब्दालंकारों की छटा देखते ही बनती है। ब्रजभाषा के विशिष्ट कवियों में आपका तथा आपकी रचनाओं का कौन-सा स्थान होगा, इस बात का निर्णय तो अगली पीढ़ी के सहृदय समालोचक ही कर सकेंगे, किंतु इसमें कोई भी संदेह नहीं कि जब तक संसार में ब्रजभाषा के प्रेमी रहेंगे, तब तक आपकी इस 'अमर

कृति या काव्य-सुधा का पान करते हुए अपने को कृतकृत्य अवश्यमेव मानेंगे। आपकी सर्व-गुणालंकृता, नीति-रीतिशालिनी, मनोमोहिनी कविता-कामिनी की प्रशस्ति में निम्नांकित पंक्तियों के लिखने का लोभ संवरण करने मे मैं सर्वथा असमर्थ हूँ—

ऊख मैं, पियूख मैं न पाई सुर-रूखहू मैं, दाख की न साख त्यो सिताहू सकुचाई है,
सीठी भई मीठी वर अधर-सुधा हू जहाँ, मंद परी कंद की अमद मधुराई है;
पीते रहे ही ते पर रीते अनरीते रहे, जानि न परै धौं यह कौन सी मिठाई है,
'श्रीहरि' अनोखी, चोखी, उक्ति-जुक्ति भाव-भरी कोई कल कामिनी कि कबि-कबिताई है।

(१६) व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि श्रीश्यामनाथजी 'द्विजश्याम'—

सुधुनि, सुलच्छन, गुन-भरे, भूषन-धरे, रसाल,
शत दोहा रचि सत सुयश लह्यो दुलारेलाल।

(१७) व्रजभाषा के कविवर पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०—I am extremely delighted with its freshness, strength, originality and in my opinion it is a work of permanent interest, wonderful power and marked genius. You have originated a new style of your own in Brija Bhasha and I consider you to be the Post of the foremost rank.

(१८) कविवर श्रीलक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण' बी० ए०—आधुनिक व्रजभाषा की पुस्तकों मे इस दोहावली का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। सभी दोहे सुंदर और सुललित हैं। विषय-निर्वाह, पद योजना, ध्वनि और अलंकार के लक्षणों से युक्त इस रचना का हिंदी-संसार यथेष्ट आदर करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। आपकी भाषा मे सरसता है, प्रवाह है, और एक अनूठापन है, जो प्राचीन कवियो की रचनाओं मे भी पूर्ण रूप से नही मिलता। बिहारी और मतिराम के दोहो से भी आपके कुछ दोहे, भाव और सरसता की दृष्टि से, बहुत बढ़ गए है। चमत्कार और मौलिकता आपकी रचनाओं का प्रधान गुण है! आशा है, आपकी दोहावली व्रजभाषा-साहित्य के भांडार का एक अति उज्ज्वल रत्न बनेगी।

(१६) व्रजभाषा के कविश्रेष्ठ पं० शिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस'—रूपकालंकारादि से दोहे पूर्ण हैं। आपने बिहारी के साथ कविता की समानांतर-रेखा खींची है। संकुचित स्थानो में, जहाँ कहीं आप बिहारी से मिलते देख पड़ते हैं, वहाँ भी आपने भिन्न भावांकन के साथ पृथक् ही रहने का अच्छा प्रयास किया है। आपके दोहो में भाव बढ़िया हैं, और वे अनुप्रास तथा यमक से जगमगा रहे हैं। दोहा की सकरी गली मे साधारणतः सिकुड़कर चलना पड़ता है, पर वहाँ भी आपने कविता को भूषित वेश मे निकाला है।

(२०) खड़ी बोली के महाकवि पं० रामनरेशजी त्रिपाठी के सुपुत्र, वानर-संपादक श्रीआनदकुमारजी—महारानी व्रजभाषा आप-जैसे 'दुलारे लाल' को पाकर अत्यधिक गौरवान्वित

हुई है। बिहारी के दोहे तो अशर्फ़ियों के मोल के थे, किंतु आपके दोहों का मूल्य आँका ही नहीं जा सकता। मुझे आपके एक-एक दोहे में एक सच्चे कवि का हृदय सागर लहरें मारता हुआ दिखाई पड़ता है।

(२१) कविवर पं० हरिशंकरजी शर्मा—कितने ही दोहे तो बड़े गज़ब के हैं। उनमे चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा और कवित्वमय मौलिकता है। खड़ी बोली के आधुनिक युग मे, ब्रजभाषा की ऐसी रुचिर रचना, वास्तव में, अभिनंदनीय है। दृढ़ विश्वास है कि विश्व-विश्रुत ब्रजमाधुरी आपको, इस सुधास्पंदिनी कोमलकांत पदावली के लिये, अपना अमोघ आशीर्वाद प्रदान करेगी।

(२२) आशुकवि पं० जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'—

अलंकार - रूपक - सहित भाव भिन्न दरशात ;
अनुप्रास अरु यमक की जुक्ति - जोति सरसात।
शब्द - शिल्प शुचि सूक्ष्म युत सरल - सरस उपहार—
भूषित भूषण भूरि भल दोहावली दुलार।
गागर मे सागर लखो कोमल पद - बिन्यास ;
मौलिक प्रतिभा को मिल्यो दोहावली सुबास।
खरी गुन - भरी चुनि धरी मञ्जुल मुकता - माल ;
सुधुनि - सुधुनि लागी रहै सदा दुलारे लाल।
बनक१, उक्ति२ अरु मधुरई३, जुक्ति४, पदावलि५ धन्य ;
यह रसनीति६, सुविज्ञता७, रीति८ न अबलौं अन्य।
आठ ठाट को मेल करि सबको कियो निहाल ;
विरचि दिव्य दोहावली अमर दुलारे लाल।
भई सतसई - रूप में दोहावली विशाल ;
जनम बिहारीलाल को लहेउ दुलारे लाल।

संध्या

दिनकर-पुट-बर-बरन लै, कर-कूँचीन चलाइ,
प्रकृति-चितेरी रचति पटु नभ-पटु साँझ सुभाइ।
(दुलारेलाल भार्गव)

Ganga Fine Art Press, Lucknow

सिंधु मथैं सुर ही लही नैंकु जु सतजुग माँहि,
सहज सुलभ सोई सुधा सबै समै सब काँहि।

(दुलारेलाल भार्गव)

वर्ष ८ खंड १	पौष, ३१२ तुलसी-संवत् (१९९१ वि०)— जनवरी, १९३५	संख्या ६ पूर्ण संख्या १०२

गीत

[श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी']

अली री ! यह बालू की भीत—
युग-युग से सहती आई है आतप, वर्षा, शीत।
कण-कण कर मैंने जोड़ा था जीवन के अंतर मे,
इसमे मिला हुआ है मेरा मादक, मधुर अतीत।
शशि-सभवा विभा आकर इन पुलिनो पर इठलाती,
गाती इनको चूम-चूम लहरियाँ मिलन के गीत।

मोती से इसका दामन शुक्तियाँ भरा करती है,
पहनाता प्रवाल की माला रत्नाकर-सा मीत।
बिखर न जावें सपनो के सुमनों की नव-पंखुरियाँ,
दुखिया ने जोड़ी है इस छाया से कोमल प्रीत।
अली री! यह बालू की भीत।

सौंदर्योपासना

[श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद']

है उषा रँगीली, किंतु सजनि, उसमें वह स्थिर अनुराग नहीं;
निर्झर मे अक्षय स्वर-प्रवाह है, पर वह विकल विहाग नही।
ज्योत्स्ना मे उज्ज्वलता है, पर वह प्राणो की मुसकान नहीं;
फूलो मे है वे अधर, किंतु उनमे वह मादक गान नही।
तुममे जग पाया था मैने, जग में अब तुम्हे न पाता हूँ;
इस असमंजस मे मै वियोग की घड़ियाँ देवि, बिताता हूँ।

* * *

व्रत-साधन मे पाते है साधक जिसे समझ आराध्य प्रिये!
जो ज्ञान-ध्यान का गहन तत्त्व, जो विज्ञों का है साध्य प्रिये!
जो 'सत्य' और 'शिव' ऋषियो का युग-युग का है अभिमान प्रिये!
नयनो में, उर मे रखा उसे मैने तो 'सुंदर' मान प्रिये!
उस रात तुम्हारे वंशी-रव ने नभ मे जो खीची रेखा,
उसके छवि-अंकन मे 'अनत' को सर्व-प्रथम मैने देखा।

समालोचक

[श्रीयुत गुलाबरायजी एम्० ए०]

किसी देशी राज्य के वृद्ध राजा बहुत दिन से बीमार थे। बीमारी के कारण वह इतने अशक्त हो गए थे कि बहुत धीरे से दो एक बात कह पाते। सौभाग्य-वश उनको एक अच्छे वैद्य मिल गए। उनकी अवस्था कुछ सुधरने लगी। जब उनमे और ज़रा शक्ति आई, तो उन्होने अपने नौकरो को गाली देना शुरू किया। कुछ नौकरों ने बुरा माना; किंतु एक बहुत वृद्ध नौकर ने ईश्वर को धन्यवाद दिया, और प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"ईश्वर की बड़ी दया हुई। मालिक में इतनी शक्ति तो आई कि वह गाली दे सके।" यही हाल हिंदी मे समालोचना-साहित्य का है। यद्यपि आजकल की बहुत-सी समालोचनाओं मे बहुत कुछ तू-तू, मैं-मैं और अशिष्टता भी रहती है, तथापि यह जाति की सजीवता का शुभ चिह्न है। इसलिये प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को इस पर प्रसन्नता प्रकट करना चाहिए। यद्यपि अभी हिंदी में समालोचना-साहित्य का पूर्ण विकास नहीं हुआ है, तथापि अब उस साहित्य की शैशवावस्था नहीं रही, जो वह नियम और शासन से बाहर समझा जाय। उसके लिये आत्म-संयम की आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में यदि समालोचकों के उद्देश्य, उनकी योग्यता और उत्तर-दायित्व पर थोडा विचार किया जाय, तो अनुपयुक्त न होगा।

श्रीयुत गुलाबरायजी एम्० ए०

जिस प्रकार 'यशसे', 'अर्थकृते', 'व्यवहारविदे', 'शिवेतरक्षतये', 'स्वान्तः-सुखाय' आदि काव्य के उद्देश्य बतलाए गए है, उसी प्रकार आलोचना के भी कई उद्देश्य हो सकते है।

उद्देश्य

समालोचना का मुख्य उद्देश्य तो पुस्तक का परिचय कराकर पाठको की सहायता करना है—यदि पुस्तक मे कुछ ऐसे गुण हैं, जो सहज मे दृष्टिगोचर नहीं होते, तो उनसे पाठकों को अवगत करा देना, जिससे वे कृति के सौंदर्य का भले प्रकार आस्वादन कर सके, और यदि पुस्तक वास्तव मे दूषित है, और पाठक उससे लाभ नहीं उठा सकते, तो पाठकों के धन और समय का अप-व्यय रोक देना। समालोचक इस कार्य की पूर्ति

के लिये कई प्रकार के साधनों का प्रयोग करते है, और काव्य की उत्तमता के निर्णय करने में कई प्रकार की कसौटियों से काम लेते है। उनका वर्णन करना इस लेख का विषय नहीं है। इस उद्देश्य के अतिरिक्त और भी कई उद्देश्य है। उनमें कुछ क्षम्य है, और कुछ अक्षम्य। कुछ लोग 'अर्थकृते' समालोचनाएँ लिखते है। जो कार्य कर्तव्य-बुद्धि से संपादन किया जाय, यदि उससे कुछ अर्थ-लाभ हो जाय, तो कर्ता दोषी नहीं ठहराया जा सकता। कर्ता दोषी तभी ठहराया जाता है, जब उसका उद्देश्य केवल अर्थ-लाभ होता है, और अपने उद्देश्य की पूर्ति में कर्तव्य का ध्यान नहीं रखता।

कुछ लोग यश के लिये ही समालोचनाएँ लिखते हैं। दूसरों के गुण-दोष निकालने से लोग सहज में जनता का चित्त आकर्षित कर लेते हैं। यद्यपि कविता करना एक बात है, और समालोचना लिखना दूसरी बात, तथापि कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि किसी महाकवि की कविता में दोष दिखला देने से लोग उनको उस कवि से अधिक काव्य-मर्मज्ञ समझने लग जायँगे। लेकिन वे लोग यह भूल जाते है कि जब तक जिस कवि के हम दोष निकालते है, उसकी-सी कविता स्वयं न कर लें, तब तक हम उस कवि की बराबरी या उससे बढ़ जाने का दावा नहीं कर सकते। अस्तु। समालोचना लिखना ख्याति का साधन अवश्य है। जो लोग ऐसी समालोचनाएँ लिखते है, उनके नाम का बार-बार उल्लेख होने लगता है। और, इस कारण कभी-कभी वे लोग उस विषय के अधिकारी और ज्ञाता भी समझे जाने लगते है। ख्याति प्राप्त करने की सब लोगों में कमज़ोरी होती है। इसलिये समालोचना का यह उद्देश्य भी क्षम्य हो जाता है, किंतु इसमें प्रश्न यही रहता है कि एक की ख्याति के लिये दूसरे का क्यों बलिदान किया जाय। ऐसी समालोचनाएँ यदि प्राचीन कवियों के संबंध में लिखी जायँ, तो विशेष हानि नहीं, क्योंकि कालिदास, सूर और तुलसी को कोई सहज में उनके उच्च आसन से डिगा नहीं सकता, और समालोचक की हविस भी निकल जाती है। किंतु किसी जीवित लेखक को अपनी ख्याति के उद्देश्य से पब्लिक की दृष्टि में गिरा देना उसके प्रति अन्याय है। इसका यह भी मतलब नहीं कि पुरानों की बेधड़क बुराई की जाय!

कुछ लोग समालोचनाएँ अपने दल के पक्ष को बढ़ाने और प्रतिद्वंद्वी पक्ष को गिराने के अर्थ लिखते है। यदि कोई लेखक खड़ी बोली के पक्ष का है, तो वह ब्रजभाषा की पुस्तकों में अश्लीलता का दोष दिखाता है। और, इसके विपरीत यदि लेखक ब्रजभाषा के पक्ष में है, तो प्रत्येक खड़ी बोली की पुस्तक में नीरसता, कर्ण-कटुता आदि दोष दिखाने की फिक्र में रहता है। यही हाल धार्मिक दल-बंदियों का है। यह उद्देश्य नीचा अवश्य है, किंतु बहुत नीचा नहीं है।

जहाँ पर समालोचना में व्यक्तिगत ईर्षा-द्वेष का भाव आ जाता है, वहीं समालोचना का पतन होने लगता है। यदि मैं किसी ऐसे पद को नहीं प्राप्त कर सका, जिसे दूसरे ने प्राप्त कर लिया हो, ऐसी अवस्था में उस दूसरे की कृतियों में दोष दिखाने लग जाऊँ, तो मैं समालोचक के पद का दुरुपयोग करता हूँ। समालोचना का सबसे अधिक पतन तब होता है, जब समालोचना का विषय कवि की कृति न रहकर कवि या लेखक का व्यक्तित्व हो जाता है। सच्चा निर्णायक वही है, जो कर्ता की ओर ध्यान न रखकर कृति की ओर ध्यान देता है। चित्रकार की कुरूपता से उसकी कृति में कोई अंतर नहीं पड़ता, लेकिन यह अवश्य है कि यदि चित्रकार भी सुंदर हो, तो सोने में सुगंध की बात हो जाती है; जैसे गोस्वामीजी की कविता के ही अनुकूल उनका चरित्र भी था।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग 'स्वान्तःसुखाय' के

ऊँचे उद्देश्य से भी समालोचना करते हैं। समालोचना लिखने से जो ज्ञान-वृद्धि और रुचि का परिमार्जन होता है, वही इनके लिये सब कुछ है। ऐसे लोग समालोचना के कार्य को ऊँचा उठा देते हैं। वे लोग स्वयं ही आनंद नहीं लेते, वरन् दूसरों की रुचि को ठीक रास्ते पर लाने का भी श्रेय पाते हैं।

समालोचना के लिये समालोचक को ऊँचे उद्देश्यों को ही लेकर प्रवृत्त होना चाहिए, किंतु समालोचक का ऊँचा उद्देश्य होते हुए भी वह अपनी अयोग्यता के कारण लेखक के प्रति अन्याय कर सकता है। इसलिये जब तक अपने कार्य में दक्षता न हो, समालोचक को किसी की समालोचना करने की अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

समालोचक मे किन-किन गुणो का होना आवश्यक है ?

पहला गुण है पैंठ (Insight)—यह बहुत अंश में दैवी देन होती है। जिस प्रकार कविता के लिये प्रतिभा आवश्यक है, उसी प्रकार भावक या समालोचक होने के लिये पैंठ का होना ज़रूरी है। पैंठवाला मनुष्य सहज ही कवि के अभिप्राय को ग्रहण कर सकता है। जिस प्रकार कवि मानव-जीवन की अंधतम गुफाओं मे प्रकाश डालकर 'जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि' की लोकोक्ति को सार्थक कर देता है, उसी प्रकार भावक या समालोचक कवि के अंतस्तल मे प्रवेश कर उसमें रक्खे हुए रत्नों को प्रकाश मे लाता है। यह गुण यद्यपि दैवी देन के रूप मे प्राप्त होता है, तथापि अध्ययन और सत्संग से भी थोड़ा-बहुत मिल सकता है।

इस गुण की प्राप्ति के लिये सहृदयता की आवश्यकता है। यदि भावक सुहृद्-दृष्टि से किसी रचना को देखता है, तो उसके मर्म को वह सहज में समझ सकता है, किंतु जो लोग छिद्रान्वेषण के लिये ही रचना को हाथ में लेते हैं, उनको छिद्र तो अवश्य मिल जाते हैं, किंतु वे रत्नों के स्थान में शून्यता को अपनाते हैं। सुधार के लिये छिद्रान्वेषण बुरा नहीं, किंतु गुणों को छोड़ देना लेखक को निरुत्साह कर देना है, और उसके द्वारा भविष्य में होनेवाली साहित्य-सेवा मे बाधक बनना है। इसीलिये कुछ भावक लोग गुणों की खोज करते हैं, दोषों की नहीं। देखिए—

'गुणदोषौ बुधो गृह्णन् इन्दुक्ष्वेडाविवेश्वरः;
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति।"

अर्थात् शिवजी की भाँति बुधजन गुण और दोष दोनों का ग्रहण करते हैं, किंतु चन्द्रमा की भाँति गुणों को शिर पर रख प्रकाशित करते हैं, और दोषों को विष की भाँति गले के भीतर ही रखते हैं। यदि दोषों को दबाया न जाय, तो उनको उसी अनुपात में रखना चाहिए, जिसमें वे पुस्तक में हों। दोषों को बढ़ाकर लिखना और गुणों को दबा रखना लेखक के साथ अन्याय है। यदि पुस्तक में दोषों का अनुपात अधिक है, तो उनको उसी अनुपात मे रख देना चाहिए।

दूसरा गुण है बहुज्ञता—जो समालोचक के लिये आवश्यक है। जिसको साहित्य-शास्त्र का ज्ञान होता है, वह कवि के अभिप्राय को भली भाँति समझ सकता है, वह साहित्य के संकेतों, रूढ़ियों और कवि-समयों को भली भाँति जानता है। वह जान लेता है कि कवि कहाँ पर परंपरा का अनुकरण कर रहा है। वह यदि उसमे दोष देखेगा, तो कवि के व्यक्तित्व का नहीं, वरन् उस परंपरा का, जिसका उसने अनुकरण किया है। वह सब श्रृंगारी कवियों के चरित्र पर लांछन लगाने के लिये बद्धपरिकर न होगा। वह कवि के समझने मे भूल न करेगा। प्रत्येक ज्ञान प्राप्त करने के लिये कुछ घर का ज्ञान आवश्यक रहता है। पुरातत्त्व-वेत्ता लोग ही खँडहरों में ऐतिहासिक महत्त्व की चीज़ें खोज सकते हैं। रत्न की परीक्षा बादशाह कर सकता है अथवा जौहरी, घसि-

यारा नहीं। 'बंदर क्या जाने अदरक का सवाद।' रचना का मूल्य पंडित ही आँक सकता है—

"विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्"

बहुज्ञ समालोचक किसी कवि या लेखक की कृति पर विचार करते हुए यह भी जान लेगा कि उसने कहाँ तक परंपरा का अनुकरण और कहाँ तक किसी विशेष कवि की विशेष बात की चोरी की है। जो बातें साहित्य-संसार की संपत्ति है, उनका लिखना चाहे चमत्कार का अभाव समझ लिया जाय, चोरी नहीं कहला सकता। वायु की कोई चोरी नहीं करता, निजी संपत्ति की ही चोरी होती है।

बहुज्ञ समालोचक न तो सहज में किसी कवि से प्रभावित ही होगा, और न वह सहज में किसी को चोर ठहरावेगा। ज्ञानी समालोचक छिपे हुए रत्नो को खोज निकालेगा, उत्तम रत्नों पर मुग्ध हो जायगा, किंतु वह साधारण रत्नो की प्रभा से प्रभावित नहीं होगा। जिसने बहुत नहीं पढ़ा है, वह साधारण-सी-साधारण बात को अनूठी कहने को तैयार हो जायगा। समालोचक के लिये बहुज्ञता के अतिरिक्त विशेषज्ञता की भी आवश्यकता है। प्रत्येक समालोचक प्रत्येक कृति की समालोचना नहीं कर सकता। अर्थ-शास्त्र-संबंधी पुस्तक की समालोचना करने के लिये समालोचक को उस विषय का ज्ञाता होना चाहिए। बहुज्ञता और विशेषज्ञता के साथ समालोचक के लिये रचना-रीतियों का ज्ञान भी आवश्यक है। उसको गति (Movement), अनुपात (Proportion) और ऐक्य (Unity) की जाँच करने का अभ्यास होना आवश्यक है, जिससे वह यह कह सके कि अमुक स्थान में शैथिल्य आ गया है, अथवा अमुक स्थान में आवश्यक बात के लिये कम स्थान दिया है, और अनावश्यक बात को अनावश्यक विस्तार दे दिया गया है। ऐक्य, संगति वा निर्वाह का गुण तो सभी रचनाओं मे होना चाहिए। विवेचनात्मक ग्रंथो के लिये तो समालोचक को तर्कशास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है।

तीसरा गुण है धैर्य और निष्पक्षता—जो समालोचक के लिये आवश्यक है। इसके लिये समालोचक को वैज्ञानिक और जज की मनोवृत्ति रखनी चाहिए। वैज्ञानिक हमेशा यह देखता है कि वह अपने उत्साह मे भूल तो नहीं कर रहा है। वह अपनी रुचि का बिलकुल निराकरण कर देता है। वह अपने पक्ष के विपरीत उदाहरणों को उसी तत्परता से देखता है, जिसमे अनुकूल उदाहरणों को। समालोचक को न्यायाधीश की भाँति पक्षपात-रहित होना चाहिए। समालोचक को वकील बनने की आवश्यकता नहीं। यदि वकालत भी करे, तो अपनी वकालत न करे। लेखक की वकालत करने मे इतना दोष नहीं। समालोचक के लिये दल-बंदी तथा व्यक्तिगत राग-द्वेष के भावों को अपने से दूर रखना वांछनीय है।

समालोचक का उत्तरदायित्व

समालोचक का सबसे पहला उत्तरदायित्व पाठक के प्रति है। आजकल बहुत-सी रोक-थाम होने पर भी अवांछनीय साहित्य निकल जाता है। बहुत-से लेखक और प्रकाशक आकर्षक नाम देकर लोगों को ठगने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी पुस्तक का जरूरत से ज्यादा मूल्य रख दिया जाता है, और छोटी छोटी किताबो के साथ बड़े-बड़े सूचीपत्र रखकर वी० पी० पैकैट का आकार बढ़ा दिया जाता है। ऐसे लेखकों और प्रकाशकों की जितनी जल्दी कलई खोल दी जाय, उतना अच्छा है। जिस प्रकार राजा लोग अपने चरो अर्थात् गुप्तदूतो की दृष्टि से देखते हैं, उसी प्रकार पाठक पुस्तकों को समालोचकों की दृष्टि से परखते है। समालोचक भोले-भाले पाठकों को जिधर चाहे

उधर ले जा सकते हैं। जनता की रुचि निर्माण करना समालोचकों के हाथ में है। इस रुचि-निर्माण का कार्य समालोचकों को बड़ी सावधानी से करना चाहिए। जनता की रुचि को अच्छे साहित्य की ओर आकर्षित कर समालोचक लोग साहित्य का ही उपकार नहीं करते, वरन् देश-सुधार में भी सुधारकों का हाथ बँटाते हैं। समालोचकगण जनता के शिक्षक हैं। वे नई रचनाओं के समझने में सहायक होते हैं। सत्समालोचकों के अभाव में अच्छे-से-अच्छा साहित्य जनता तक नहीं पहुँचने पाता। समालोचकगण नई रचनाओं के तत्त्व को अवगत करा सकते हैं। अभी तक जो छायावाद के प्रति लोगों की द्वेष-भावना है, उसका मुख्य कारण यही है कि छायावाद की व्याख्यात्मक समालोचनाएँ नहीं निकली हैं। समालोचक लोग जनता की ज्ञान-वृद्धि में भी बहुत कुछ सहायक हो सकते हैं। आज-कल इतना साहित्य निकल रहा है कि यदि मनुष्य उसको ही पढ़ता रहे, तो प्राचीन काल के कर्मनिष्ठ ब्राह्मण की भाँति उसे संसार का कोई काम न रह जायगा। ऐसी अवस्था में समालोचकों का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पाठकों को पुस्तकों के चयन में सहायता दे। समय-समय पर वह पाठकों को नई पुस्तकों में आई हुई नवीन विचार-धाराओं से भी परिचित करा दे, जिससे पाठक लोग समय की गति को जानते हुए 'अप-टू-डेट' बने रहें। स्त्रियों और बच्चों की पुस्तकों के संबंध में समालोचक का और भी उत्तरदायित्व बढ़ जाता है (यह वाक्य पढ़ी-लिखी समझदार स्त्रियों के लिये नहीं लागू होता)। इस अंतिम कर्तव्य का पालन करने में समालोचक को प्रकाशकों के हित का भी ध्यान रखना चाहिए। समालोचना इतनी विस्तृत न हो कि पुस्तक अनावश्यक हो जाय, और प्रकाशक तथा लेखक को आर्थिक हानि पहुँचे। प्रकाशक के दृष्टिकोण से तो पुस्तक की थोड़ी-सी बानगी देकर पाठकों की रुचि को उत्तेजित कर देना ही काफ़ी होगा। किंतु समाचार-पत्रों के संपादक कभी-कभी इससे कुछ अधिक करते हैं। अपने पत्रों को लोक-प्रिय बनाने के लिये वह इस बात का पूरा ख़याल रखते हैं कि पाठकों की जितनी ज्ञान-वृद्धि हो सके, उतना ही अच्छा। समालोचक को संपादक और प्रकाशक की आवश्यकताओं के बीच का मार्ग खोजना चाहिए। समालोचक का उत्तरदायित्व जितना पाठक के प्रति है, क़रीब-क़रीब उतना ही लेखक के प्रति। समालोचक जो बात कहे, उसे अच्छी तरह तोल ले। असावधानी से की हुई समालोचनाओं द्वारा लेखकों की बहुत हानि होती है। भूल-चूक से गोली मार देनेवाले को फाँसी नहीं, तो असावधानी के लिये थोड़ी-बहुत सज़ा हो जाती है, किंतु कुसमालोचक के लिये कोई दंड-विधान नहीं। जहाँ पर दंड-विधान नहीं होता, वहाँ पर नैतिक उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। कुसमालोचकों के कुचक्र में आकर बहुत-से नवीन लेखक साहित्य-क्षेत्र से निकल भागते हैं, और अपनी प्रतिभा के दीपक को बिना प्रकाश दिए ही बुझ जाने देते हैं। भवभूति-ऐसे धीर, वीर लेखक तो कह देते हैं—

चूक चाकरी में कबहुँ करनी चहिए नाहिं;
सब प्रकार निरदोप कहु को पदार्थ जग माहिं?
कुटिल मनुज सों रहि सकत भला कौन निस्संक,
सद्‌बनिता कबितान में जो नित लखत कलंक?

किंतु सब लेखक भवभूति नहीं होते। 'जे बिनु काज दाहिने-बाएँ' समालोचकों से स्वयं कवि कुल-चूड़ामणि तुलसीदास भी डरते थे, तो अस्मदादिकों का क्या कहना! समालोचकों को पाठकों के समय और धन का ख़याल रखते हुए लेखक के परिश्रम का भी ख़याल रखना चाहिए। इसीलिये कुछ लोगों का मत है कि समालोचक को लेखक

भी होना चाहिए। यदि समालोचक लेखक में यह दोष न आ जाय कि 'हम चुना दीगरे नेस्त' अर्थात् मेरी-सी रचना कोई कर ही नहीं सकता, तो समालोचक का लेखक होना परम वांछनीय है, क्योंकि बाँझ प्रसव की पीड़ा को नहीं जान सकती—
"जाके पाँव न फटी बिवाई, सो का जानै पीर पराई ?"

समालोचक का कुछ उत्तरदायित्व अपने वर्ग के प्रति है। यह उत्तरदायित्व बड़े महत्त्व का है। समालोचक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह समाज में समालोचना का बुरा आदर्श तो नहीं उपस्थित कर रहा है ! जिससे अन्य समालोचक लोग अपने कर्तव्य से गिर जायँ। समालोचकों को अपने पेशे का गौरव रखना चाहिए। किसी को अनावश्यक रूप से गिरा देना अथवा किसी को आसमान पर चढ़ा देना समालोचक के गौरव के विरुद्ध है। जो समालोचकगण किसी की भलाई-बुराई करने में संयम नहीं रख सकते, वे अपने वर्ग की बदनामी करते है। समालोचक लोग पाठकों के उप-नेत्र हैं, लेखकों के लिये दीपक है। वास्तव में समालोचकगण ही सच्चे 'प्रकाशक' हैं। वे ही लेखक को प्रकाश मे लाते है। लेखको की शोभा समालोचकों से ही है। आचार्य राजशेखर ने तो कहा है कि भावक कवि का स्वामी, मित्र, मंत्री, शिष्य और आचार्य, सब कुछ हो सकता है। देखिए—
"स्वामी मित्रं च मन्त्री च शिष्यश्चाचार्य एव च ,
कवेर्भवति हि चित्रं किं हि तद्यन्न भावकः।"

शिक्षा और सदाचार

[श्रीयुत बुद्धिसागर वर्मा विशारद, बी० ए०, एल्० टी०]

चारो ओर से हमारे कानो मे यह आवाज आ रही है कि शिक्षा के विना कोई भी जाति सभ्य नही हो सकती । यदि हमे आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक, किसी भी प्रकार की उन्नति करनी है, तो आवश्यक है कि पहले हम शिक्षित बनें। इसी एक लक्ष्य को लेकर सारे मत-मतांतर, सारी जातियाँ और उप-जातियाँ पृथक्-पृथक् अपनी शिक्षा-सबंधी सस्थाएँ खोल रही है। किंतु हमें देखना यह है कि इस आधुनिक शिक्षा-प्रणाली ने हमारे सदाचार को कहाँ तक उन्नत बनाया है ? यह एक प्रश्न है, जो स्वभावत: हमारे हृदयो में उत्पन्न होता है, जब हम आधुनिक संसार के सभ्य-समाज के जीवन और आचरण पर दृष्टिपात करते है ।

श्रीयुत बुद्धिसागर वर्मा विशारद, बी०ए०,एल्०टी०

इँगलैंड मे रस्किन १९वी शताब्दी का एक प्रसिद्ध समालोचक और धुरंधर साहित्यवेत्ता माना जाता है। उसका कथन है—"मुझे इस बात की परवा नही है कि लड़कों को लिखना या पढना अवश्य ही सिखाया जाय, क्योकि संसार में बहुत थोडे व्यक्ति ऐसे है, जिन्हे इससे कुछ भी लाभ होता है। अधिकांश मे प्रत्यक्ष रूप से तो यही देखा जाता है कि मूर्ख लोग जो कुछ भी पढ़ते है, उससे उन्हे हानि ही होती है। तथा जो कुछ उनकी लेखनी से निकलता है, उससे दूसरों को हानि पहुँचती है।"

हर्बर्ट स्पेंसर का कथन, स्वय एक स्कूल-मास्टर का पुत्र होते हुए, इस सबंध में रस्किन से भी अधिक मान-नीय है—

"So far indeed from proving that morality is increased by education, the facts prove, if anything, the reverse. It has been shown from Govt. returns that the number of juvenile offenders in the metropolis area has been steadily increasing every

year since the institution of the Ragged School Union, and that the number of criminals who can not read and write has decreased and the number of those who can read and write imperfectly has increased."

अर्थात्, यह सिद्ध करने की अपेक्षा कि शिक्षा से सदाचार की उन्नति होती है, वास्तविक परिस्थिति इसके विपरीत जा रही है। सरकारी रिपोर्ट से प्रकट है कि Ragged School यूनियन-नामक संस्था की स्थापना से लंदन मे नवयुवक अपराधियो की संख्या मे प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। और, प्रतिकूल इसके, उन अपराधियों की संख्या घट गई है, जो नितांत निरक्षर है। किंतु साथ ही अपूर्ण रूप से कुछ-कुछ लिखना-पढ़ना जाननेवालो की संख्या मे वृद्धि हो गई है।

आगे चलकर साउथ वेल्स मे लोहे और कोयले की कानो मे काम करनेवाली स्त्रियो का उदाहरण लेकर हर्बर्ट स्पेंसर ने सिद्ध किया है कि साधारण शिक्षा की व्यवस्था और सदाचार मे कोई पारस्परिक संबध स्थिर नहीं किया जा सकता। बुद्धि का विकास कठिनता से आचरण के लिये उपयोगी कहा जा सकता है। बुद्धि स्वय एक शक्ति नहीं है, बल्कि एक साधन है। बुद्धि स्वय कार्य नहीं करती, बल्कि अन्य शक्तियों द्वारा इससे उचित या अनुचित काम लिया जा सकता है। यह कहना कि मनुष्य विवेचना-शक्ति या बुद्धि द्वारा शासित है, इतना ही भ्रमात्मक है, जितना यह कहना कि मनुष्य पर नेत्रेंद्रिय शासन करती है। असल मे बुद्धि वह नेत्र है, जिसके द्वारा कामनाएँ अपनी तृप्ति का मार्ग खोज निकालती है। आगे स्पेंसर महोदय पुनः कहते है—यदि अधिक विद्या और तीव्र बुद्धि ही मनुष्य को सदाचारी बनाने के लिये पर्याप्त होती, तो Bacon को इतना कुटिल और मिथ्यावादी तथा नेपोलियन को इतना अन्यायी न होना चाहिए था।

सद्‌गुणो से हीन दुश्चरित्र व्यक्ति समाज के लिये अधिक भयानक सिद्ध होते है, यदि उनकी बुद्धि को शिक्षा द्वारा तीव्र होने का अवसर मिल जाता है। यदि इन दभी तथा मिथ्याचारी व्यक्तियो को शिक्षा से दूर रक्खा जाय, तो कदाचित् इनके भयकर विषैले प्रभाव से समाज बहुत कुछ बचा रहे।

एक पाश्चात्य अनुभवी विद्वान् का कहना है कि लदन नगर के बड़े-से-बड़े घराने से लेकर एक ग्रामीण साधारण दुकानदार तक का व्यापारिक जीवन छल-कपट और मिथ्याचार से ओत-प्रोत है। वहाँ इस कपट-जाल एव कुटिल नीति का बाजार इतना गर्म है कि एक शुद्ध सत्याचरण-शील व्यापारी आधुनिक व्यापारिक संघर्ष मे कोई स्थान ही नहीं रखता। वहाँ प्रत्येक स्थान पर झूठी नाप, झूठी तौल, मक्कारी और अधमता का दौरदौरा रहता है। अस्तु। हमारे सामने एक बड़ा भारी प्रश्न यह है कि क्या बड़े-से-बड़े अपराधी जेलो की चहारदीवारी के अंदर ही

पाए जाते है ? साधारण रूप से हम देखते है कि छोटे-छोटे कपट-पूर्ण व्यवहार तथा आचरण दडित होते रहते है, परंतु बडे-बडे दुर्व्यवहारो और मिथ्याचारो को कभी कोई पूछता भी नहीं। विविध कंपनियो की व्यवस्था तथा बडे बडे व्यापारिक क्षेत्रो मे सैकड़ो निरपराध मनुष्यों का रक्त चूसकर धन-राशियाँ कमाई जाती है। उनमे ऐसे-ऐसे उपायो का अवलंबन किया जाता है, जो कपट-पूर्ण, अन्याय-युक्त होते हुए भी कानूनी शिकजे से दूर रहते है। अधिकतर यह विकट अपराध उन्हीं शिक्षित व्यक्तियो द्वारा किए जाते है, जिन्हे समस्त सुविधाएँ तथा आनद भोगने के सारे साधन प्राप्त है। फिर भी मजा यह कि आधुनिक सभ्य-समाज उनके कुकृत्यों का समर्थन करता है।

अब भारत की ओर दृष्टिपात कीजिए। यहाँ भी वही निराशा-जनक स्थिति सामने है। वकील, डॉक्टर और देश के नेतागण, सभी निस्सदेह शिक्षित होते है, किंतु उनमे से कितने पवित्र और सत्याचरण एवं ईमानदारी के पक्ष-पाती है, और कितने निष्काम भाव से देश की सेवा करने मे समर्थ है। कितने वकील या बैरिस्टर ऐसे है, जो इस बात को भली भाँति जानकर कि अमुक व्यक्ति वास्तव मे चोर अथवा हत्यारा है, उसकी पैरवी करने से घृणा करते है। कितने डॉक्टर ऐसे है, जो स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हुए नहीं हिचकते कि उनसे अमुक रोग के निदान मे भूल हो गई, और उन्होने अनुचित इलाज करके रोगी की दशा और भी भयंकर कर दी। कितने प्रोफ़ेसर और मास्टर ऐसे है, जो छात्रो के सामने अपनी भूल स्वीकार करते हुए लज्जित नही होते। और, इस प्रकार होनहार नवयुवको को अशुद्ध मार्ग का अवलंबन करने से बचा लेते है। क्या हम प्रत्यक्ष नहीं देखते कि बड़े-बडे धुरधर नेता अपनी नीति और सिद्धांतो को समय-समय पर बदलते रहते है। इसलिये नहीं कि उन्हें अपने पूर्व-निश्चित सिद्धानो मे कोई दोष दृष्टिगोचर होता है, बल्कि केवल इसलिये कि या तो समाज में अपना नाम और अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रख सकें, अथवा राज-नीतिक क्षेत्र में किसी शत्रु को नीचा दिखा सकें। इस देश मे कतिपय प्रसिद्ध नेताओ के ऐसे उदा-हरणो की कमी नहीं है, जिन्होने अधीनस्थ कमेटी अथवा परिषद् पर अपने वैयक्तिक विचारो की अन्याय-पूर्ण छाप लगाने मे तनिक भी संकोच नहीं किया, और साथ ही उन व्यक्तियों का घोर अपमान किया गया, जिन्होने उनका विरोध करने का प्रयत्न किया।

शिक्षा-विभाग का पवित्र क्षेत्र भी इस विषाक्त वातावरण से मुक्त न रह सका; वहाँ भी कपट, अन्याय और पक्षपात की तूती बोल रही है। विश्वविद्यालयो की उच्च परीक्षाओ मे दिए जानेवाले अंको (Marks) के व्यापार को जाने दीजिए, इस पर समाचार-पत्रो मे आलो-चनाएँ होती ही रहती है। इंट्रेंस की परीक्षा के विविध केंद्रो पर निरीक्षको (Guards) के कदाचार के पर्याप्त प्रमाण विद्यमान है। क्या ये निरीक्षक सभी सभ्य और शिक्षित नही होते ?

उनमें से कोई वकील होते है, कोई अध्यापक। फिर भी कितनी लज्जा की बात है कि वे परीक्षार्थियो को गुप्त रूप से पुस्तकें देकर, प्रश्नो का उत्तर बताकर अक्षर-रचना की अशुद्धियों (Spelling Mistakes) की ओर संकेत करके, जामेटरी की शक्लों को बतलाकर तथा अन्य उपायो द्वारा परीक्षा-हाल मे उनकी सहायता करते है। इस दुराचार के सुधार का कोई भी प्रयत्न सफल नही होता, क्योकि सहायक और सहायता पानेवाले, दोनो ही समान रूप से कलुषित वृत्ति रखते है। अतः सच्चाई पर सफलता-पूर्वक पर्दा डालना आसान होता है। परिणाम-स्वरूप यह पापाचार वर्षों से चला आ रहा है, जिसे छोटे से बड़े तक सभी जानते हैं, किंतु कोई भी उँगली उठाने का साहस नही करता। विक्टोरिया-कॉलेज, जैसोर के प्रसिद्ध विद्वान् मि० रमेशचद्र बनर्जी एम्० ए० लिखते है—सन् १९२८ में उनके एक मित्र को, जो एक परीक्षा-केंद्र मे एक निरीक्षक का कार्य-सपादन के लिये भेजे गए थे, कुछ विद्यार्थियो ने इसलिये पीटा था कि उन्होंने एक अन्य निरीक्षक के इस अधम कार्य का विरोध किया था, क्योकि वह एक परीक्षार्थी को प्रश्नों के उत्तर लिखा रहा था। ३-४ वर्ष हुए, लेखक के एक मित्र को एक परीक्षा-केंद्र में, निरीक्षक के रूप में, विशेषकर इसलिये भेजा गया था कि वह दो-चार निकटतम विद्यार्थियो की परीक्षा-हाल मे सहायता कर सकें। यह है स्थिति, और ये है इस कदाचार के कुछ नमूने, जो सदाचार (Morality) का गला घोट रहे है।

सार्वजनिक जीवन के इस अधकारमय दृश्य की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करना ही इस लेख का मुख्य प्रयोजन है। इस विषय मे सुधार की कितनी आवश्यकता है, यह विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते है। ये ही कारण है, जो शिक्षा-प्रणाली को बदनाम किए हुए है। निस्संदेह हमारे शिक्षित-समुदाय ने ऐसे-ऐसे उच्च कोटि के सराहनीय कार्य किए है, जिनके लिये हमे अभिमान होना चाहिए, किंतु फिर भी उपर्युक्त दूषणो और त्रुटियो को दूर करने की आवश्यकता है। अन्यथा कोरा प्रकृति-वाद हमे न-जाने कहाँ से कहाँ बहा ले जायगा।

सभी बातो पर हर पहलू से पूर्ण विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचने के लिये बाध्य होते है कि देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली, जिसमे केवल बुद्धि की शिक्षा और उसके विकास पर ही जोर दिया जाता है, सदाचार की उन्नति के लिये पर्याप्त नहीं है। जब तक बचपन ही से सदाचार, आस्तिकता और अध्यात्मवाद की छाप बालको के मस्तिष्क पर न लगाई जाय, तब तक कोरा बुद्धि का विकास पाप-पूर्ण वृत्तियो की सामर्थ्य की ही अभिवृद्धि करेगा, इसमे तनिक भी सदेह नहीं। एक शिक्षित डाकू अथवा हत्यारे के लिये कानून के शिकंजे से बचकर सार्वजनिक जीवन व्यतीत करते हुए भी पापमय वासनाओ को तृप्त करना कहीं सुगम होगा। अतः हमे शिक्षा का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

छोटे बाबू

[श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी]

“भैया मेरी दशा देखकर बहुत दुखी रहते थे। मेरे लिये उन्होंने अपनी जीवन-भर की कमाई तक लुटा देने का भयकर संकल्प कर लिया था। डॉक्टर आचार्य को मेरी चिकित्सा के लिये उन्होंने पाँच सौ रुपए महीना देना स्वीकार किया था। डॉक्टर साहब दिन-भर मे तीन-चार बार मुझे देखने आते थे। मेरी देख-भाल मे वह अपना अधिक-से अधिक समय देते थे। उनकी तल्लीनता का मेरे स्वास्थ्य पर प्रभाव भी पड़ रहा था। अब मैं उनके साथ दो-चार फ़रलाग तक टहल लेने लगा था। प्रातः-काल तो वह पहले से ही टहलाने ले जाते थे, पर इधर जब से वसत-ऋतु अपने यौवन पर आ रही थी, तब से तो वह सायंकाल को भी टहलाने ले जाने लगे थे। ऐसा जान पड़ने लगा था कि धीरे-धीरे मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है। परंतु फिर भी मेरी दशा मे जो प्रतिकूल परिवर्तन ही होते गए, वे अकारण नहीं हैं।” राजीव जब इतना कह चुका, तो मैंने कहा—“आप अब लेट जाइए। बैठे-बैठे आपको कष्ट हो रहा होगा।”

श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी

“कष्ट! यह आप क्या कह रहे हैं बिहारी बाबू! जिस दिन मै बीमार पड़ा था, उसी दिन मैने यह तय कर लिया था कि अब मुझे अपनी इहलीला समाप्त कर देनी है। इतने दिनों तक बीच में जो झूलता रहा—हिंडोले में ही सही—सो तो भैया का स्नेहातिरेक का कारण समझो, और कुछ नहीं। मै ख़ुद भी तो दुविधा मे पड़ गया था। मै स्वय भी तो

यही सोचने लगा था कि क्या बुरा है, यदि दो-चार वर्ष और बना रहूँ, मुन्नू को पढ़ा-लिखा लूँ। मैंने जीवन मे बड़े-बड़े कष्ट झेले है। आप तो उनकी कल्पना-मात्र से काँप उठेंगे। यह कष्ट तो उनके सामने कोई चीज नही है। आज आपको इसीलिये बुलाया भी है। चलाचली का समय ठहरा। पता नहीं, किस दिन प्रस्थान कर बैठूँ। इसीलिये भीतर जो कुछ भी सचित कर रक्खा है, जिसे अब तक कहीं भी, किसी के भी सामने उपस्थित नहीं किया, आज उसे आपको समर्पित कर देना चाहता हूँ।”

इतना कहकर राजीव ने शीशे के एक छोटे गिलास मे थोड़ी-सी मदिरा ढालकर कंठ से उतार ली। उसके जर्जर शरीर-भर मे उसका एक मुख ही ऐसा था, जिसमें थोड़ी-सी कांति शेष रह गई थी। अब वह और भी प्रदीप्त हो उठी। तश्तरी के रजत-पत्र-गुंफित पानों को मेरी ओर बढ़ाते हुए राजीव के मुख पर ज़रा सी मुस्किराहट दौड़ गई, जैसे वह मेरी आँखों को देखकर मेरे भीतर के भाव को ताड़ गया हो। मैंने जब पान ले लिए, तो उसने कहा—

"मैं जानता हूँ, मुझे मदिरा-पान करते हुए देखकर आपके हृदय मे मेरे प्रति एक प्रकार की अप्रीति सी मुखरित हो उठी है। परंतु बिहारी बाबू, दो दिन बाद ही जब आपके साथ मेरी ये बातें ही रह जायँगी, तब आप यह अनुभव करेंगे कि मैं इसके लिये कितना विवश था! आप सोचेंगे कि राजीव ऐसी स्थिति में सचमुच तिरस्कार और घृणा का नहीं, एकमात्र दया का ही पात्र था।

'अभी डेढ़ वर्ष पूर्व की बात है। भैया बंबई चले गए थे। यहाँ घर पर अम्मा थीं, और 'करुणा' नाम की मेरी छोटी बहन। यद्यपि करुणा का विवाह हो चुका था, पर वह भी उन दिनों यहीं थी। मेरा यह मकान ही केवल मेरी संपत्ति मे शेप रह गया था। सो इस पर भी महाजन के गरल दंत जा लगे थे। तीन वर्ष के कठोर कारागार-वास के पश्चात् जब मै लौटा, तो मेरी आँखो के समक्ष अंधकार था। तीन हजार रुपया तो मूल-ऋण था, परंतु ब्याज पर ब्याज लगने के कारण रकम पाँच हज़ार के लगभग हो जाती थी। और, उस समय मेरे पास ऋण चुकाने के नाम पर फूटी कौड़ी भी देने को न थी। जिस दिन से लौटकर आया था, उसी दिन से चिंता के मारे सोना हराम हो गया था। अगर मै जेल न गया होता, तो मेरी यह दुर्गति न हुई होती। बारंबार मैं यही सोचता था। देश-भक्ति-जैसे पवित्र धर्म-पालन का यह पुरस्कार मेरे लिये कैसे संतोषकर होता, जब कि अम्मा जब देखो, तब मुझसे यही कहा करती थीं—'चलो, अब पुरखे तो तर जायँगे। एक पूत बंबई में काला मुँह कराने गया है, दूसरा यहाँ ज़मीन-जायदाद बिकवा रहा है। सेवा करने के लिये कोई मना थोड़े ही करता है, पर भैया, सेवा भी तो अपनी शक्ति-भर ही की जाती है। जब घर मे खाने को नहीं है, तो सेवा का कार्य कैसे हो सकता है।' इन्हीं प्रश्नों पर अन्य लोगों को तर्क में हराया करता था, पर अम्मा की इन बातों के आगे मेरी कुछ भी न चलती थी! मैं यहाँ तक तैयार था कि कोई इस मकान को रेहन रख ले, और पाँच हज़ार रुपए मुझे दे दे, ताकि उस महाजन के ऋण से तो एक बार मुक्ति पा जाऊँ। पर जिससे कहता, वही जवाब देता था—'समय बड़ा नाज़ुक लगा है, इसलिये मैंने यह काम कुछ दिनों के लिये स्थगित कर रक्खा है।' पर असल बात यह थी कि लोग सोचते थे—संभव है, नीलाम होने पर और भी सस्ता हाथ आ जाय। इसलिये अपना सीधा हिसाब ही अच्छा है, झंझट का काम ठीक नहीं।

"इस प्रकार जब मै सब तरह से निराश हो गया, तो अंत में एक भयानक संकल्प कर बैठा। सोचा—करुणा अपने घर की ठहरी, उसकी ज़िम्मेदारी से मुक्त ही हूँ। रह गईं अम्मा, सो उनके पास कुछ आभूषण हैं ही। उन्हीं से वह अपने शेष जीवन का निर्वाह कर लेंगी। अस्तु। अगर इस जीवन को उत्सर्ग ही कर बैठूँ, तो भी कुछ बुरा न होगा। अपमान और ज़िल्लत की ज़िंदगी से मौत तो हज़ार दरजे अच्छी चीज़ है। निदान मैंने विष लाकर रख लिया, और यह तय कर लिया कि कल जब मकान अपने हाथ से निकल जायगा, तब विष-पान कर सदा के लिये सो रहूँगा। यह ग्लानि मुझसे सही न जायगी।

❀ ❀ ❀

"उसी रात को एक बार जीवन-भर की प्यारी-प्यारी स्मृतियों के पृष्ठ उलटने लगा। सन् १६२१ की १वीं मई का दिन है। उन दिनों भैया यहीं पर थे। बेला बजाने में नाम कमा रहे थे। ताल्लुक़दारों तथा राजों के यहाँ से उनके पास निमंत्रण आया करते थे। भेंट और पुरस्कार ही उनके जीवन-निर्वाह का एकमात्र अवलंब रह गया था। अपने हिस्से की सारी संपत्ति मिस विमलाबाई पर न्यौछावर कर चुके थे। 'भैया के लड़का हुआ था', कहने मे कितना बुरा लगता है! परंतु उन दिनों कुछ ऐसी ही बात थी। अम्मा उनके हाथ का छुआ पानी तक नहीं पीती थीं। और, मुझे भी उनका रुख़ देखकर रहना पड़ता था। परंतु माता का हृदय बड़ा विशाल होता है। जब सुना कि नाती हुआ है, तो जी न माना। वहाँ कुछ खाया-पिया तो नहीं, पर दिन-रात के चौबीस घंटों में यो समझ लीजिए कि बीस-बाईस घंटे वहीं बिताए। यही हाल कई दिनो तक रहा। लगभग ढाई सौ रुपए अपने पास से ख़र्च भी कर आई थीं।

"हाँ साहब, जाने दीजिए इन बातों को। ख़ास बात यह हुई कि विमलाबाई मय अपनी छोटी बहन के उनके यहाँ ख़ुशियाँ मनाने आई थी। उसकी उस छोटी बहन का नाम था मायावती। विमला खिला हुआ गुलाब का फूल थी। उसके विलास-भरे नयन-कटोरों में यौवन की मस्ती धूप-छाँह की झिलमिली-सी उत्पन्न करती थी। और, मायावती? उसके भोले यौवन मे अभी मदिर अनंग-वल्लरियों ने, वासना के वातायन से, प्रवेश तक न कर पाया था। वह मृग-छौनी जिस ओर दृष्टि डालती, ऐसा जान पड़ता, जैसे वहाँ उसका कौतूहल उछल-उछलकर चौकड़ी भर रहा है। वह दुर्व्यसन की दुनिया न थी, वहाँ तो दिली अरमानो और हौसलों को पूरा करने का सवाल था। नतीजा हुआ था, भैया की ख़ुशी मे और साथ ही अपनी ख़ुशी में आनद मनाने की बात थी। हालाँकि उन दिनो भी कांग्रेस का कार्य धूम के साथ कर रहा था, परतु उत्सव के इस अवसर को मैं छोड न सकता था। बहुत दिनों से विमला का नाम सुन रक्खा था, परतु उसे देखने का संयोग नहीं प्राप्त हुआ था। उस दिन उसे भी देखा, और 'और भी कुछ'। उस 'और कुछ' में जो कुछ देखा, उसे फिर कभी देख न सका। वे दृश्य सोचने को ही रह गए!

"रात के दस बजने का समय था। मकान की बाहरी चौक मे महफिल जमी हुई थी। चुपके से आकर मै भैया के निकट बैठ गया। उपस्थिति मे एक लहर-सी दौड गई। सब लोगों का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हो गया। नगर-कांग्रेस के सैनिक मंडल का वीर सरदार राजीवलोचन यहाँ कैसे? बैठते ही चश्मा उतारकर, क्रीनर से उसके राइट लेंस को साफ करके, अभी मैंने उसे नाक और कानों पर फिट किया ही था कि विमला ने संकेत से माया का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट करके चुपके-से उसके कान में कह दिया—'छोटे बाबू हैं।' इतना कहने के बाद विमला ने मुझे देखा, और मैंने माया को। भोली माया ऊपर से थोडा शरमाई, भीतर से बहुत। चुलबुलाहट-भरे वे मृग-शावक-लोचन अधोमुखी हो पड़े। मैंने मन-ही-मन कहा—'यह अच्छा नहीं हुआ राजीव। और, मैं गंभीर हो गया।

"अब मैंने जो विमला की ओर देखा, तो उसके रोम-रोम बिहँस रहे थे। उसके मद-भरे आनन पर उस समय उसके भीतर की भीम भावना मुखरित हो उठी थी।

"वातावरण शांत हो गया था। उपस्थित लोगों में से एक ने कहा—'हाँ बाईजी, शुरू कीजिए।'

"विमला बोली—'अब तक मैंने आप लोगों की इच्छा से गाया था, अब मैं अपनी इच्छा से गाऊँगी।'

"लोगों ने कहा—'वाह ! इससे अच्छा और क्या होगा।'

'"लेकिन एक शर्त है।' विमला ने कहा।

'"वह क्या ?' जवाब दिया गया।

"उसने कहा—'सरकार मेरी इस चीज पर खुद बेला बजा दें।'

"भैया ने बहुत नाहीं-नूदी की, लेकिन लोग किसी तरह न माने। आखिरकार उनको मजबूर हो जाना पड़ा। विमला ने दिल की घुंडी खोलकर गाया—

'सजनवाँ, जिया न मानत मोर।'

"उल्लास की उद्दाम भावना से ओत-प्रोत उसके लहरीले कंठ का मृदुल गायन आज भी इन कानों में जैसे गूँज सा रहा है। और, भैया ने भी उस दिन अपनी जो कलामयी तन्मयता बेला बजाने में दिखलाई, वह मेरे स्मृति-पटल पर चिर-स्थिर होकर रह गई।

"मैं वहाँ सिर्फ़ आध घंटे ठहरा था। ऐसे आनंद का संयोग फिर जीवन में कभी नहीं आया। मैं जब उठने लगा, तो माया ने एक बार फिर मुझे देखा। देखा क्या, मेरी नस-नस के भीतर जैसे विद्युत्-संचरण कर दिया। विमला बोली—'बैठिए छोटे बाबू, ज़रा देर और बैठिए।'

'"क्या करूँ, अपनी आदत से मजबूर हूँ, इस समय सो जाता हूँ। बल्कि आज तो कुछ देर भी हो गई।' मैंने कहा।

"भैया बोले—'हाँ, ज्यादा जगने पर इसकी तबियत खराब हो जाती है।'

❀ ❀ ❀

"पन्ने उलट रहा हूँ।

"सन् १९३० की २६वीं जुलाई का दिन है। भारतीय दंड-विधान की १२४ ए का आमन्त्रण प्राप्त कर पुनः . . के कारागार में जा पड़ा हूँ। जिस दिन से आया हूँ, उसी दिन से प्रातःकाल राष्ट्रीय गायन का क्रम चल पड़ा है। इसमें मेरे जेल के अन्य सहयोगी भी सहायक हैं। सुपरिंटेंडेंट महोदय तक शिकायत पहुँच चुकी है। उनका हुक्म आ गया है कि अगर क़ैदी हुक्म की तामील न करे, तो उसे बीस बेत की सज़ा दी जाय। मैंने जब सज़ा की बात सुन ली, तो उस समय मुझे कितना सुख मिला, कह नहीं सकता। मित्रों ने समझाया—'बात मान लेने में कोई हर्ज नहीं। महात्माजी का कथन है कि जेल के नियमों का उल्लंघन करना क़ैदी का धर्म नहीं।'

"मैंने तपाक से उत्तर दिया—'बको मत। निजी मामलों में मैं किसी भी व्यक्ति के सिद्धांत को वेद-वाक्य मानकर, अपनी अंतरात्मा को कुचलकर चलना पसंद नहीं करता। जो व्यक्ति स्वतः अपनी दृष्टि में पतित होकर जीवित रहता है, मैं उसे मनुष्य नहीं, उसकी सड़ी लाश समझता हूँ!'

"तब तो अन्य कामरेड्ज़ में से एक बोल उठा—'तुम सचमुच वीरात्मा हो। तुम्हारा विचार तुम्हारे अनुरूप ही है। तुम्हारी यह दृढ़ता हमारे लिये नाज़ की चीज़ होगी।'

"चेतनावस्था में नौ बेत तक मैंने सहन किए। प्रत्येक बेत के बाद मैं 'वंदेमातरम्' कह उठता था। इसके बाद अचेतना ने मुझे अपनी गोद में ले लिया। आँखें खुलीं, तो अपने को हॉस्पिटल में पाया। पीड़ा की विकलता को दबाकर मैंने पूछा—'कोई गड़बड़ी तो नहीं हुई डॉक्टर साहब ?'

"मेरा मतलब सिर्फ़ यह जानने का था कि कहीं पेशाब पाख़ाना तो नहीं हो गया था !

"परंतु वह बोले—'तुम सच्चे बहादुर आदमी हो, किसी ज़िंदा मुल्क में होते, तो आज तुम्हारे नाम पर सल्तनत में जलज़ला बरपा हो जाता। तुम्हारे पाक दामन पर कहीं दाग़ आना मुमकिन था! मैं तुम्हें 'कांग्रेचुलेट' करता हूँ!'

"सुख इस जीवन में क्या वस्तु है, बिहारी बाबू,

इसको लोग जानते नहीं। जिसको लोग घोर कष्ट कहते है, अंतरात्मा की प्रतिध्वनियाँ यदि उसमे संतोष और शांति का अनुभव करे, तो वही—वह घोर कष्ट—जीवन का चरम सुख है।

'वे घड़ियाँ भी मेरे लिये चरम सुख की थीं।

❀ ❀ ❀

"पन्ने उलट रहा हूँ।

"कई वर्ष हुए, यमद्वितीया के दिन की बात है। भैया की एक छोटी साली थी। नाम था 'शशि'। संयोग की बात, एक बार ससुराल मे भैया, भाभी, मै और शशि, सभी एकत्रित थे। शशि का विवाह नहीं हुआ था। उसके लिये ददुआ (ससुरजी) वर खोज रहे थे। यमुना-स्नान की ठहरी। दो ताँगे किए गए। ददुआ भी साथ थे। एक पर बैठे ददुआ और मैं, दूसरे पर भैया, भाभी और मुन्नू। भैया बोले—'शशि, तू भी इसी में आ जा।'

'जान पड़ा, शशि के मन में कुछ और है। तब तक ददुआ ने कह दिया—'उसमे जगह नहीं है, शशि, इसमें आ जा।'

"शशि इसी ताँगे मे आ गई। कुछ शरमाई हुई-सी थी। उसे देखने और मिलकर, एक साथ बैठकर उससे बातचीत करने का मेरा यह पहला संयोग था। मैंने सोचा, अगर आज भी इससे वार्तालाप न की, तो फिर मज़ा क्या आएगा इस ट्रिप का।

"वह बैठ गई थी, और ताँगा भी चल पड़ा था।

"ददुआ शुरू से ही बड़े बातूनी रहे हैं। अब बुढ़ापा आ गया है, तो इससे क्या! शुरुआत उन्हीं से हुई। बोले—'राजीव बाबू, सुनते हैं, तुम्हारी स्पीच बड़ी जोशीली होती है।'

"मैने कहा—'जोशीली तो क्या होती है, किसी तरह अपना काम चला लेता हूँ।'

"'एक दिन तुम्हारी स्पीच सुनना चाहता हूँ। बड़ी लालसा है।'

"'जब कहो, तब सुना दूँ। मुझे तो बकने का मर्ज़ ही है। घंटे-आध घंटे का नुसख़ा है।'

"'यों नहीं सुनना चाहता। तुम्हारी स्पीच सुनने मे मुझे मजा तभी आएगा, जब कम-से-कम पाँच हज़ार की भीड़ हो।'

"'अच्छी बात है। जब कभी ऐसा संयोग आने को होगा, आपको सूचित कर दूँगा।'

"'हाँ, यही ठीक है।'

"मैंने देखा, जान पड़ता है, यात्रा का सारा समय ददुआ ने ही हड़प लेने का निश्चय किया है। शशि ताँगे मे मूर्तिवत् स्थिर होकर बैठी है। ज्यों ही ददुआ के ऊपर लिखे वाक्य से एक बात का यह क्रम समाप्त हुआ, त्यों ही मैंने पूछा—'शशि, तुम किस क्लास मे पढ़ती हो आजकल ?'

"'इस वर्ष टेंथ की परीक्षा में बैठूँगी।' उसने कहा।

"'तुम्हारा यह स्कूल तो अभी हाल ही में हाई स्कूल हुआ है। पहले तो मिडिल स्कूल था।'

"'जी हाँ।'

"'मुख्याध्यापिका कौन है, मिस बनर्जी ?'

"'हाँ।'

"'कैसे विचार और मिज़ाज हैं उनके ? सुनते है, अजीब ख़ब्त है उनमें, मैरिड मिस्ट्रेसेज़ अपने स्टाफ़ मे रखना वह पसंद नहीं करतीं।'

"शशि मुस्किराने लगी। बोली—'आश्चर्य है, आप इतनी दूर की और इतनी भीतर की इनफ़ारमेशन रखते है !'

"'ख़ैर, इनफ़ारमेशन रखने की कोशिश तो मै नही करता, परंतु एजुकेशनल लाइन की बाते कभी-कभी सुनने को मिल जाती है। बात यह है कि हमारे एक साथी है मिस्टर तसद्दुक हुसेन। अपने साथियों मे एक ही एडवेंचरस स्पिरिट का आदमी है। उन्ही के बड़े भाई मिस्टर नियाज़ुल हुसेन साहब आगरा-डिवीज़न के असिस्टेंट इंस्पेक्टर हैं। इसीलिये

तसद्दुक़ भाई के ज़रिए से मुझ भी अक्सर उड़ती हुई ख़बरें मिल जाती हैं।'

"'तो क्या ए० आई० साहब तक यह ख़बर पहुँच चुकी है ?'

"'ख़बर ही नहीं, मैंने ख़ुद भी उनको इस मसले पर इतनी खरी-खोटी सुनाई कि उन्हें कभी भूलेगी नहीं। मौक़ा आते ही मिस बनर्जी पर ऐसी डाँट पड़ेगी कि वह भी याद करेगी।'

"अभी मेरी बातचीत का क्रम भग न होता, यदि इसके बाद ही ददुआ यह न कह बैठते—'काफ़ी भीड़ आज भी जान पड़ती है। आने में ज़रा देर हो गई, और पहले आना चाहिए था। ठहरो, हाँ, सँभलकर झट से उतरो तो। जल्दी से नहा लेना होगा।'

"भाभी मुन्नू को साथ लिए हुए मेरी ओर आ पहुँचीं। भाभी, शशि और मुन्नू एक साथ होकर उस ओर चल दिए, जिधर महिलाओं के स्नान करने का प्रबध था। इसी समय स्थानीय कांग्रेस-कमेटी के मंत्री पं० श्यामाश्याम मिश्र मेरे निकट आकर 'वदे' करने लगे। सन् १९१९ के आंदोलन में यह मेरे साथ छ महीने कारागृह-वास कर चुके थे। तभी से उनसे परिचय हो गया था। खड़े-खड़े देर तक उनसे बातचीत करता रहा। आजकल आंदोलन का क्या रुख़ है, भविष्य कैसा प्रतीत होता है, आदि बातों पर बराबर विचार-विनिमय होता रहा। उसी समय एकाएक चारो ओर एक प्रकार की हलचल-सी देख पड़ी। एक स्वयंसेवक ने बतलाया, कोई लड़की डूब रही है। मैंने आव गिना, न ताव, कोई भी हो, किसी की भी लड़की हो, वह डूब रही है, यही कौन कम संकट की बात थी। मैं झट से कपड़े उतार, एकमात्र हाफ़पैंट बदन पर रखकर, यमुना में कूदकर आगे बढ़ गया। प्रवाह बहुत तीव्र था। और भी दो युवक पहले कूद चुके थे, परंतु वे बहुत शिथिल गति से अग्रसर हो रहे थे। मैं आगे बढ़ गया। अनेक बार तैराकी-रेस में पुरस्कार पा चुका था। लड़की बही जा रही थी। कभी-कभी एक-आध डुबकी लग जाती थी, और फिर ऊपर आ जाती थी। लड़की यदि एकदम से तैरना न जानती होती, तब तो डूब ही गई होती, परतु वह तो ऊपर आने पर हाथ-पैर मारने लगती थी।

"निकट पहुँचना था कि मैंने तट की ओर को एक जोर का धक्का जो दिया, तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उसको एक बहुत बड़ी सहायता मिल गई हो। उस समय मेरा कोई सहायक भी साथ में न था। साथ के तैराक पीछे पड़ गए थे। लड़की तट की ओर थोड़ा घूम गई थी। अब मैंने धक्कों के द्वारा ही उसे तट की ओर बढ़ाना प्रारभ कर दिया था। परंतु प्रवाह इतना तीव्र था कि जितना ही मैं उसे धक्का देकर तट की ओर को बढ़ा पाता था, लड़की प्रवाह में उतना ही आगे बढ़ जाती थी। संयोग से उसी समय सहायता के लिये नाव पहुँच गई। फिर क्या था, मैंने एक हाथ से नाव पकड़ ली, दूसरे से लड़की की कुंतल राशि। नाव पर से एक स्वयंसेवक भी उसी समय कूद पड़ा। उसने कहा—'आप नाव पर चले जाइए। तब तक मैं इसको रोकता हूँ।' मैं नाव पर आ गया। स्वयंसेवक ने सहारा देकर लड़की का हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। नाव लंगर डालकर कुछ स्थिर कर दी गई थी। सावधानी के साथ उस लड़की को मैंने नाव पर ले लिया। एक बार उसे ध्यान से देखा, तो आँखों के ज्ञान पर विश्वास न हुआ, और ग़ौर से देखा, तो उसे शशि पाया। तुरंत मैंने उसके नग्न अगों को उसकी धोती से ढक दिया। अब मैंने तट पर उसकी नाड़ी की गति देखते हुए ददुआ और भाभी की ओर दृष्टि डाली। नाड़ी में अभी गति थी। उधर ददुआ और भाभी दोनो रो रहे थे। भैया उन्हें

समझा रहे थे। वह कह रहे थे—'घबराने की बात नहीं। राजीव उसे पा गया है। वह देखो, वह नाव पर उसे लिए आ रहा है।'

"लंगर खींच लिया गया था, और नाव को मल्लाह लोग तट की ओर लिए जा रहे थे। मैं सोचने लगा, विधि का विधान तो ज़रा देखो! जो शशि मुझसे बात करती हुई झिझकती और शरमाती थी, आज मेरे ही द्वारा उसका इस प्रकार उद्धार हो रहा है। किंतु उसी क्षण मैंने नाव पर ही शशि को पेट के बल लिटाकर, उसके दोनो कंधो को स्वयंसेवको के बाहुओं पर अवस्थित कर उसके दोनो पैरो को ऊपर की ओर उठा दिया। पेट ज़रा ऊपर की ओर हुआ ही था कि उसके भीतर का पानी 'अललल' करता हुआ, मुँह से, धारा के रूप में, गिरने लगा। नाव जब तक तट पर आवे आवे, तब तक पेट का सारा पानी गिर गया।

"तट पर पहुँचने पर पेट की पीड़ा के कारण शशि कराहने लगी। अब उसमें चेतना आ रही थी। हम लोग तुरत ताँगे पर बिठाकर उसे घर ले आए। घर आते-आते पीडा के साथ-साथ चेतना भी बढ़ती गई। दद्दुआ डॉक्टर को लेने चले गए। थोड़ी देर मे डॉक्टर महोदय आ गए। आते ही उन्होने शशि की परीक्षा की। बोले—'घबराने की बात नहीं। पानी भर जाने से पेट की नसे, अँतडियाँ और फेफड़ो में ईंचा-खींची उपस्थित हो गई थी, इसी कारण दर्द हो रहा है। सेक से उसे शीघ्र से शीघ्र ठीक दशा में कर दिया जायगा। जो थोड़ा ज्वर हो आया है, वह भी स्वाभाविक है। दो दिन बाद आप इसको बिलकुल चंगे रूप में पाएँगे।'

"डॉक्टर साहब ने चिकित्सा का समस्त प्रबंध ठीक करा दिया। दद्दुआ और भैया के सामने उन्होने यह भी कहा—'अगर राजीव बाबू ने तुरंत इसके पेट का पानी न निकाल दिया होता, तो पाँच मिनट के बाद फिर इसके जीवन की कोई आशा न रहती। उन्होने इसे प्रवाह से निकाल-कर बहादुरी का कार्य किया है, परंतु सच पूछिए, तो उसके बाद भी जिस ढंग से उन्होने इसके पेट का पानी निकालने में तत्परता दिखलाई है, वह भी एक अनुभवी और कर्तव्य-परायण डॉक्टर से कम कौशल का काम नहीं।'

"डॉक्टर साहब जिस समय ये बातें कह रहे थे, उस समय शशि की आँखो मे आँसू भर आए थे। यह एक बात उस समय और भी विचित्रता की हो गई। मैंने जो उसको इस दशा में देखा, तो मेरा उर स्पंदित हो उठा। मैं सोचने लगा, यह घटना-क्रम तो देखो। मैंने कभी सोचा तक न था कि इन चार घंटों के भीतर ही मैं अपने को एक नवीन जगत् मे पाऊँगा।

"दो-तीन दिन मुझे वहाँ और रहना पड़ा। अब शशि बिल्कुल चंगी हो गई थी।

"भैया वहीं बने रहे। मैं चला आया। चतुर्थी का चंद्रमा अस्त हो रहा था। रजनी का अंधकार मंथर गति से बढ रहा था। भैया के निकट बैठा हुआ मैं अपने अगले कार्य-क्रम की उधड़े-बुन में तल्लीन था। इसी समय मुन्नू ने मेरे निकट आकर कहा—'चच्चू, अले ओ चच्चू, तुमें नञो बुआती है।'

"मैंने उसे उठाकर गोद में ले लिया। उसकी चुंबी लेकर उसके सिर के बिखरे बालों को अपनी उँगलियो से सुलझाते हुए मैंने कहा—'तुम बड़े राजा बेटा हो। कल मैं यहाँ से चला जाऊँगा। तुम भी चलोगे न, मेरे साथ।'

"उसने कहा—'अम बी तलेंगे।'

"चलने के एक दिन पूर्व की बात है। शशि की माता ने, जिन्हे हम लोग 'अम्मा' कहा करते थे, मुझे एकांत में बुला भेजा। मुझे आदर के साथ बिठाकर उन्होंने कहा—'छोटे बाबू, आज मैं तुमसे

कुछ बाते करना चाहती हूँ। मै चाहती थी कि मुझे तुमसे उन बातो के कहने की आवश्यकता न पड़ती। परंतु कुछ संयोग ही ऐसा आ गया है कि कहना ही पड रहा है। मै उस संबंध में तुम्हारे भाई साहब से भी राय ले चुकी हूँ। बड़ी बिटिया भी राजी हैं। अब केवल तुम्हारी ही स्वीकृति लेनी बाकी है। बात यह है कि अपने ददुआ को तो तुम जानते ही हो, एक आलसी आदमी हैं। कई वर्ष से हम शशि के लिये वर खोजने मे बेतरह परेशान है। अनेक बार उनको महीना-पद्रह दिन तक लगातार इसी काम के लिये भेज चुकी, सबंधियो के द्वारा भी काफी खोज करा चुकी, परंतु मैं जैसा वर चाहती हूँ, वैसा मिल नहीं रहा है। उनकी तो हिम्मत जैसे पस्त सी हो गई है। कहते है, यह मेरे बस का राग नहीं। अब तुम्हीं बताओ, छोटे बाबू, मैं तो नारी हूँ, मैं क्या करूँ। ये काम स्त्रियो के बश के तो है नहीं। कई दिन से इस विषय मे सोचती रही। जब और कोई उपाय न सूझा, तो आज तुम्हारे आगे अपनी इस व्यथा को रखना ही उचित समझा। तुम चाहो, तो मेरा उद्धार कर सकते हो।'

"मैंने पहले ही बहुत कुछ समझ लिया था। कई दिन से इसी प्रकार का वातावरण मैं स्वयं भी देख रहा था। परंतु इस विषय में इतनी शीघ्रता की जायगी, यह मै नहीं सोच सका था। अब मेरे सामने इस समय मुख्य प्रश्न अपने आत्म सतोष का था, इसीलिये मैने उत्तर दिया—

"'परंतु मेरा जीवन किस प्रकार का है, इसका तुमको जरा भी पता नहीं है अम्मा! मेरे इस युवक हृदय में एक प्रकार की आग सुलगा करती है। मुझे रात-दिन नींद नहीं आती। मैं सोते-सोते चौक पड़ता हूँ। देश के काम को छोड़कर और किसी काम मे मेरा मन नहीं लगता। मुझे कभी देहात मे, कभी शहर में, कभी ट्रेन पर, तो कभी जहाज़ पर, कभी धूप में, तो कभी झमाझम वर्षा और शीत में, अर्धरात्रि के समय अपनी कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर चल देना पडता है। मेरे जीवन का कुछ भी ठीक नहीं। मालूम नहीं, मै किस दिन जेल मे ठूँस दिया जाऊँ। इसका भी कुछ निश्चय नही कि मेरी मृत्यु कहाँ हो। संभव है, मुझे जीवन-भर कारागार में ही रहना पड़े। अब तक के इसी जीवन में तीन बार जेल हो आया हूँ। जो आदमी वर्षों अपना जीवन जेल में बिताने का अभ्यासी हो गया हो, ससार मे वह कितने दिनों तक अपनी इच्छा से हँसता-खेलता हुआ रह सकेगा! घर मे अम्मा जब मुझे अधिक तग करती है, और मुझसे सहा नहीं जाता तब मै तो स्पष्ट रूप से कह देता हूँ—'तुम यही समझ लो कि मेरा एक बच्चा मर गया!' अस्तु। मेरे साथ शशि के जीवन की ग्रंथि बाँधने की इच्छा करके तुमने दूर-दर्शिता का काम नही किया। अब तुम्हीं सोच देखो अम्मा, शशि मुझे पाकर जीवन की कौन-सी सफलता अर्जित कर सकेगी।'

"मेरे इस कथन का अम्मा ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। एक ठडी साँस लेकर उन्होने केवल इतना कहा —'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

"उस समय मैंने अपने आप पर कैसी विजय पाई, और बिहारी बाबू, सच जानो, उससे मैं कितना सुखी हुआ, कह नहीं सकता।

"दिन बीतते गए। मै फिर जेल चला गया। अब की बार मैं 'बी'-क्लास में रक्खा गया था। किसी प्रकार का कष्ट मुझे न था। उसी जेल-जीवन में भैया भाभी और शशि को लेकर एक बार मुझे देखने भी आए थे। भैया और भाभी के चरणों की रज अपने मस्तक पर जब मैं लगा चुका, तो भैया की आँखों में आँसू भर आए। भरे हुए कंठ से वह बोले—

"'कैसे हो राजीव ?

"मैंने कहा—'अच्छा हूँ। किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।'

"अपने को कुछ स्थिर करके वह बोले—'शशि तुमसे कुछ बात करना चाहती है। इस बार इसी-लिये उसे ले आया हूँ। हम लोग उस ओर बैठ जाते है।'

"मैंने जवाब दिया—भैया, I am very sorry to say that . (मुझे बहुत दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ..) मै अभी इतना ही कह पाया था कि उन्होंने कहा—But I wish that you must have a talk with her. (लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम उससे अवश्य बात कर लो।)

"मै अब विवश हो गया।

"मैं एक ओर अलग आ गया। शशि भी मेरे निकट आ गई। एक मार्मिक पीड़ा से उसका शरीर-भर जैसे पीत वर्ण का हो गया था। आते ही उसने कहा—'मैंने बहुत दूर तक सोच लिया है। मै आपके गले का फंदा नहीं बनना चाहती; मैं तो आपके प्रेम की भिक्षा-मात्र चाहती हूँ। मेरी यह आंतरिक कामना है कि आपके जीवन-पथ के कंटकों को भस्मसात् करती हुई उसे प्रशस्त बनाने मे ही अपने को उत्सर्ग कर दूँ।'

"मै सोचने लगा— नारी 'माया' का प्रत्यक्ष रूप है। विवश होकर जो बाते की जा रही है, जब उन्हीं में इतनी शक्ति है कि मेरे हृदय मे कोलाहल मचा दे, तब स्नेह का उद्रेक होने पर मेरी स्थिति क्या होगी! मैंने कहा—'तो इसके लिये प्रेम अथवा विवाह करने की क्या आवश्यकता है? मै जिस ओर जा रहा हूँ, उसी ओर चल दो। भिक्षा मेरे प्रेम की नहीं, राष्ट्रीय जागरण के उन आदर्शों की लो, जिन पर इस देश के स्वर्ण युग का निर्माण हो सके। दांपत्य प्रेम के कीटाणु तुम्हारे शरीर मे कुल-बुला रहे हों, पहले ऐसा एक हलाहल पी लो, जिससे उनका अस्तित्व तक न रह जाय। और, तब तुमको मेरे निकट मुझसे भेंट करने के लिये आने की आवश्यकता न होगी, जेल की एकांत कोठरी में बैठी हुई अपने आप ही तुम मुझे अपने निकट पाओगी।'

"उसी क्षण 'आपकी इस इच्छा का मैं अक्षरशः पालन करूँगी।' कहकर प्रणाम करती हुई वह मुझसे पृथक् हो गई।

"उसका मुख एक तेजोमयी आभा से दमक उठा था। अंतरात्मा के उल्लास का आलोक उसकी आँखों मे ज्योतिर्मय हो उठा था।

"बस ये ही, इतने ही, दो-चार क्षण मेरे जीवन मे सुख के थे।

"और दुख के?

❀ ❀ ❀

"पन्ने उलट रहा हूँ।

"शशि मुझसे मिलकर कितनी उत्साहित होकर गई थी! मैंने सोचा था, जब मैं इस बार जेल से छूटूँगा, तो सुनूँगा—शशि पर राजद्रोह का अभि-योग चल रहा है, अथवा यह कि वह अमुक जेल मे है। परंतु जब मैं घर पहुँचा, तो सुना यह कि शशि का विवाह हो गया है। कलेजे में जैसे पत्थर अड़ गया हो। अपने को बहुत समझाया, परंतु किसी भी प्रकार आत्मा को शांति न मिलती थी। ऐसा जान पडता था, जैसे अपना कुछ खो गया है। दिल बैठ गया था! कभी कभी जी मे आता था, अपने को क्या कर डालूँ। इस शशि का मैंने कितना विश्वास किया था। मैं नहीं जानता था कि उसकी यह रूप-रेखा कृत्रिम है।

"भाभी उन दिनो अपने पिता के यहाँ थीं। शशि का गौना होने जा रहा था। भैया ने बंबई से लिखा—'राजीव, मेरा जाना तो हो न सकेगा, तुम्हीं चले जाना। वापसी मे सबको लिए आना।'

"एक प्रबल इच्छा लेकर मैं आगरे गया था।

जी में आता था, एक बार शशि से बातें तो करूँगा ही। अधिक-से-अधिक यही न होगा, वह मुझसे सैद्धांतिक मतभेद का सहारा लेकर लड़ पड़ेगी! उँह, देखा जायगा।

"परंतु हुआ इसका उल्टा। शशि से दूर-ही-दूर बना रहा। विदा होते समय भी मैं मौका टाल गया, उससे मिल न सका।

"शशि के पति सब-इंस्पेक्टर ऑफ् पुलिस होने जा रहे थे। जब मुझे यह मालूम हुआ, तो मेरे बदन में जैसे सहस्र बिच्छुओं के दंश की-सी जलन हो उठी। कोई मेरे कानों में कहने लगा—'यह सब मुझे अपमानित करने के लिये किया जा रहा है।'

"घर लौटे हुए अभी तीन ही दिन हुए थे। एकाएक भैया के पास दद्दुआ का एक तार आ पहुँचा। उसमें लिखा था—Shashi committed suicide with a revolver (शशि ने रिवाल्वर से आत्मघात कर लिया।)

"और उसी दिन मुझे शशि का एक पत्र मिला। वह इस प्रकार था—

"मेरे प्रभु,

"मैं तुम्हें पा न सकी। तुम इतने आगे बढ़ गए कि तुम्हारी धूलि भी मुझे नहीं मिल सकी। चर्म-मात्र पहनकर मैं सिंहिनी कैसे बनती, आत्मा में वैसा तेज और दर्प भी तो होना आवश्यक था। हाँ, तुम मुझे वैसा बनाते, तो मैं बन अवश्य जाती। इसके लिये तुम्हें कुछ त्याग करना पड़ता, परंतु तुम उसके लिये तैयार न थे। एक समय ऐसा आएगा, जब तुम अपनी यह गलती महसूस करोगे।

"तुमने सुना ही नहीं, अपनी आँखों से देख भी लिया कि मैं दूसरे की हो गई। परंतु मैं उनके साथ छल न कर सकी—वास्तव में मैं तुम्हारी हो चुकी थी। एक बार तुमने मृत्यु की अगाध निद्रा से उठाकर मुझे जीवन दिया था, परंतु दूसरी बार मेरे उसी जीवन को—जो तुम हृदय रखते, तो जानते कि एकमात्र तुम्हारे प्रेम पर अवलंबित था—तुमने ठुकरा दिया। ऐसा करना था, तो उस दिन मुझे बचाया ही क्यों था प्यारे!

"संभव है, मुझी से भूल हो गई हो, और मैंने ही अपनी परिवर्तनशीलता से तुम्हारे हृदय में प्रेम की अपेक्षा घृणा के भाव जाग्रत् कर दिए हों। अपने इस पतन की पीड़ा मैं सह न सकी। इसीलिये जिसमें तुम मुझे समझ सको, मुझे न अपनाने का पश्चात्ताप एक क्षण-भर के लिये भी अपने हृदय में ला सको, मैं अपने इस जीवन की इति किए डालती हूँ। क्या मैं आशा करूँ कि अगले जन्म में तुम्हें पाऊँगी?

तुम्हारी ही—शशि

"तब से मैं बराबर यही सोचता हूँ कि मैंने ही उसे खो दिया है।

"और साथ ही तब से मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैंने अपने को भी खो दिया है।

❀ ❀ ❀

"रात-भर यही सब सोचता रह गया।

"सबेरा हुआ, चिड़ियाँ चहकने लगीं। मैंने सोचा, कल भी सबेरा होगा, और कल भी चिड़ियाँ इसी प्रकार चहकेंगी। परंतु तब उनका यह चहकना मैं न सुन सकूँगा। मैंने अपने दिल पर पत्थर रख लिया। यह तय कर लिया कि जो कुछ भी होगा, उसे इन आँखों से देखूँगा। देखूँगा कि कैसे मकान पर बोली बोली जाती है, कैसे वह अपने हाथ से जाता है। आख़िर दुनिया में और भी ऐसे बहुतेरे आदमी हैं, जिन पर आए दिनों इसी तरह की मुसीबतें आया करती हैं। वे भी तो सब कुछ सहन करते हैं। फिर मेरे लिये ऐसा अधीर होने की क्या आवश्यकता है।

"इस प्रकार मैं अपने जी को समझाने की भरपूर

चेष्टा करता था, परंतु फिर भी एक अदमनीय ग्लानि का भाव मेरे जी से जाता न था।

"ग्यारह बजने का समय था। मै मकान के ऊपर के कमरे में बैठा हुआ नीचे का दृश्य देख रहा था। पुलिस के दो-तीन कांस्टेबिलों को लेकर 'बेलिफ़' महाशय आ गए थे। ताशे का स्वर मेरे कानों से होकर हृदय की तह तक पहुँच रहा था। शहर के और भी दस-बारह ख़रीदार दिखाई पड़ने लगे थे। मेरे दिल की धड़कन बढ़ रही थी। मैंने देखा, लोग इधर-उधर गुट्ट बनाकर कुछ परामर्श करने लगे हैं। बस, अब कार्रवाई प्रारंभ ही होनेवाली है। एक बार अपने संकल्प की भीषणता की कल्पना करके मैं काँप उठा। सोचने लगा—अरे, एक बात तो रही गई थी। मैं क्यों आत्मघात कर रहा हूँ, इसका कारण तो एक पत्र मे लिखकर पाकेट मे रख ही लूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरी इस भूल के कारण और लोग परेशानी में पड़े।

"मैं वह पत्र लिखने लगा।

"दो ही पक्तियाँ लिख पाया था कि स्वप्न-सा देखने लगा। ऐसा मालूम हुआ कि किसी कारण वश दरवाज़े पर सन्नाटा छा गया है। सोचा, उँह, कोई बड़ा आदमी आ गया होगा। पत्र लिखकर मैने जो खिड़की से नीचे की ओर देखा, तो आँखो पर एक परदा सा पड़ गया। ऐं! यह हो क्या गया! क्या सारी कार्रवाई समाप्त हो गई! और इतनी जल्दी!!

"नीचे उतरा, तो एक बुड्ढा आदमी उधर से जा रहा था। मुँह पोपला हो गया था, बाल सन की तरह। पान की लालिमा ओठो की परिधि लाँघकर सफ़ेद मूछों तक जा पहुँची थी। प्रसन्नता से जैसे दीवाना होकर मुझसे कहने लगा—'छोटे बाबू, तकदीर का खेल इसी को कहते है। मकान आख़िर बच गया न। हे-हे! माया ने पाँच हज़ार का एक चेक देकर उस महाजन के मुँह पर कालिख पोत दी। हे-हें! छोटे बाबू, आज जी में आता है, सत्यनारायण की कथा कहला डालूँ। दो-चार रुपए ही ख़र्च हो जायँगे न! मालिक, मैने तुम्हारा बहुत नमक खाया है। इस शरीर की हड्डियों मे वही अब तक डटा हुआ है।'

"और सुनिए बिहारी बाबू, माया मुझसे मिली तक नहीं! उस दिन के बाद फिर आज तक नही।"

इसी समय राजीव को खाँसी आ गई, साथ ही ख़ून के कुछ गाढ़े-गाढ़े क़तरे कोच के नीचे फ़र्श पर आ पड़े।

गीत

[प्रिंसिपल महादेवी वर्मा एम्० ए०]

प्राण-पिक प्रिय-नाम रे कह !

एक प्रिय - दृग - श्यामता - सा,
दूसरा स्मित की विभा-सा ;
यह नहीं, निशि-दिन इन्हें
प्रिय का मधुर उपहार रे कह !

ले गया जिसको लुभा दिन,
लौटती वह स्वप्न बन-बन,
है न मेरी नींद, जागृति
का इसे उत्पात रे कह !

दुख अतिथि का धो चरण-तल,
विश्व रसमय कर रहा जल,
यह नहीं क्रंदन हठीले !
सजल पावस मास रे कह !

साँस में स्पंदन रहे झर,
लोचनों से रिस रहा उर,
दान क्या प्रिय ने दिया
निर्वाण का वरदान रे कह !

चल क्षणों का क्षणिक संचय,
वालुका से बिंदु - परिचय ;
कह न जीवन, काल का
इसको निठुर उपहास रे कह !

मैं मिटी निस्सीम प्रिय में,
प्रिय गया बँध लघु हृदय में ;
अब विरह की रात को तू
चिर-मिलन का प्रात रे कह !

राज्य-क्रांति से पूर्व फ्रांस की दशा

[मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-विजेता श्रीसत्यकेतु विद्यालंकार]

एकतंत्र राजा

राज्य-क्रांति से पूर्व फ्रांस में स्वेच्छाचारी राजा राज्य करते थे। ये राजा वंश क्रमागत होते थे, और अपने को ईश्वर के सिवा किसी अन्य के सम्मुख उत्तरदायी न समझते थे। इनकी इच्छा ही कानून थी। ये जिसे चाहते, राजकीय पद पर नियत करते; जिसे चाहते, पद-च्युत करते। राजा अपनी इच्छा से जनता पर कर लगाता था, और राजकीय आमदनी को अपने इच्छानुसार ही ख़र्च करता था। संधि और विग्रह का अधिकार केवल राजा को था। वह अपनी इच्छा से, प्रजा से किसी प्रकार की भी सलाह लिए बिना, किसी राजा व देश से लड़ाई शुरू कर सकता था। वह जिसे चाहे, क़ैद कर सकता था; जिसे चाहे, सज़ा दे सकता था। लुई १४वाँ अभिमान से कहा करता था—"यह क़ानून है, क्योंकि मेरी ऐसी ही इच्छा है। राज्य की प्रभुत्व-शक्ति एकमात्र मुझमें निहित है। क़ानून बनाने का हक़ केवल मुझे है। इसके लिये मुझे किसी पर आश्रित रहने या किसी का सहयोग लेने की आवश्यकता नहीं।" फ्रांस के राजों का शासन-संबंधी मूल-सिद्धांत यह था कि राजा पृथिवी पर परमेश्वर का प्रतिनिधि है। वह राजा है, क्योंकि परमेश्वर ने उसे राजा बनाया है। जिस प्रकार संपूर्ण ब्रह्मांड पर परमेश्वर ब्रह्मांड के विविध प्राणियों से किसी प्रकार की भी सम्मति लिए बिना स्वेच्छा से शासन करता है, उसी प्रकार राजा अपने राज्य में प्रजा की सम्मति पर ज़रा भी आश्रित हुए बिना अपनी इच्छा से शासन करता है। यदि राजा दयालु है, तो प्रजा का सौभाग्य है; यदि राजा अत्याचारी है, तो किसी का क्या बस है? परमेश्वर के शासन में आँधियाँ आती हैं, तूफ़ान आते हैं, महामारियाँ फैलती हैं, भूकंप आते हैं—इन सब ईश्वरीय विधानों के सम्मुख मनुष्य क्या कर सकता है? कुछ नहीं। अपने पापों का फल समझकर चुप रह जाने के सिवा मनुष्य की गति ही क्या है? इसी प्रकार यदि राजा अत्याचार करता है, कर से जनता को पीड़ित करता है, निरपराधियों को शूली पर चढ़ाता है, तो इन सब राजकीय विधानों के सम्मुख मनुष्य का क्या बस

मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-विजेता
श्रीसत्यकेतु विद्यालंकार

है ? मनुष्य को यह राजकीय प्रकोप भी चुपचाप सहना चाहिए।

फ्रांस के राजा इसी पुराने सिद्धांत को माननेवाले थे। अधिकांश जनता भी यही विश्वास रखती थी। जनता का संपूर्ण जीवन राजा पर आश्रित था। राजा बड़ी शान-शौकत से, हज़ारों पार्श्वचरों और अनुचरों के साथ, बर्साइल के राजप्रासाद में निवास करता था। पेरिस से बारह मील दूर, राजा के और उसके दरबारियों के भोग-विलास का केंद्र, यह बर्साइल-नगर विराजमान था। इसकी कुल आबादी ८० हज़ार थी। ये इतने लोग राजा और उसके दरबार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये ही इस सुंदर नगरी मे एकत्रित थे। राजा का महल ३० करोड़ रुपयों की लागत से बनाया गया था। यह विपुल धन-राशि जनता से कर के रूप मे वसूल की गई थी। राजदरबार मे पंद्रह हज़ार आदमी थे। अकेली रानी के नौकरों की संख्या ५०० से ऊपर थी। राजा के ख़र्च की कोई हद न थी। राजा की अपनी घुड़साल पर ही सालाना १ करोड़ रुपए से अधिक ख़र्च होता था। ५० लाख के लगभग रुपए खाने-पीने मे उड़ा दिए जाते थे। राजा के आमोद-प्रमोद, शान-शौकत और भोग-विलास का ख़र्च ६ करोड़ रुपया सालाना से कम न था। यह सब धन कहाँ से प्राप्त होता था ? जनता के टैक्सों से, ग़रीब जनता के पसीने की मेहनत से।

यह भोग-विलास-प्रधान, स्वेच्छाचारी, एकतंत्र शासन जनता के लिये असह्य न होता, यदि इसमें क्षमता होती। एकतंत्र शासन दुनिया में रहे है, हज़ारों साल तक रहे हैं, पर वे तभी सफल हुए, जब वे मज़बूत थे, जब उनमें शक्ति थी। पर फ्रांस का इस समय का शासन बहुत ही ढीला-ढाला तथा विश्‍ृंखल हो गया था। राजा तथा उसके कर्मचारियों को शासन की कोई परवा न थी। उन्हें परवा थी, अपने आमोद-प्रमोद की, अपने सम्मान की और अपनी आराम की ज़िंदगी की। ऐसा शासन देर तक क़ायम नहीं रह सकता था। जब उसे क्रांति का धक्का लगा, तब वह मुक़ाबला नहीं कर सका। वह पुराने खोखले वृक्ष की तरह लड़खड़ाकर गिर गया।

राजा की स्वेच्छाचारिता और मुद्रित पत्र

राजा की स्वेच्छाचारिता अनेक अशों में सीमा को लाँघ चुकी थी। फ्रांस के राजा जिसको चाहते, गिरफ़्तार कर सकते थे। केवल राजा को ही नहीं, उसके रिश्तेदारों, कृपा-पात्रों, कर्मचारियों और अन्य सरदारों को भी यह अद्भुत अधिकार प्राप्त था। राजा एक क़िस्म के 'मुद्रित पत्र' जारी किया करता था। इन पर राजा की मुद्रा लगी होती थी, और किसी भी व्यक्ति को गिरफ़्तार करने तथा सज़ा देने का हुक्म जारी किया गया होता था। किसको गिरफ़्तार किया जाय, उसके नाम की जगह ख़ाली रहती थी। कितनी और क्या सज़ा दी जाय, इसका स्थान भी ख़ाली रहता था। जिस आदमी के पास यह 'मुद्रित पत्र' मौजूद हो, उसे इन ख़ाली स्थानों को भर देना होता था। वे 'मुद्रित पत्र' की ख़ानापुरी कर जिसे चाहते, गिरफ़्तार करवा देते, और जो सज़ा चाहते, दिलवा देते। राजा को यह जानने की ज़रूरत भी नहीं थी कि किसे और क्या सज़ा दी जा रही है। ये 'मुद्रित पत्र' भी एक सौग़ात थे, एक उपहार थे, एक कृपा थी, जिसे राजा बड़ी उदारता के साथ अपने कृपा-पात्रों को प्रदान किया करते थे। कितने निरपराध इन 'मुद्रित पत्रों' से कष्ट भोगते थे, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। जो आदमी राजा की कृपा से यह 'मुद्रित पत्र' प्राप्त कर ले, उसके दुश्मनों की ख़ैर न थी। न्याय और स्वतंत्रता का ख़ून करने के लिये इससे उत्तम अन्य साधन क्या हो सकता था ? उनका जीवन राजा और उसके कृपा-पात्रों के हाथ में रहता था।

अन्याय-युक्त टैक्स

फ्रांस की जनता पर जो टैक्स लगाए जाते थे, वे दो प्रकार के थे—प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्ष टैक्सों में नमक, शराब, तंबाकू और आयात तथा निर्यात माल पर लगाए गए टैक्स प्रमुख थे। नमक पर कर की मात्रा बहुत अधिक थी। इस कर से जनता बहुत कष्ट में थी। नमक-जैसी उपयोगी वस्तु उन्हें बहुत ही ज़्यादा कीमत से प्राप्त होती थी। इन करों को वसूल करने का तरीका बहुत ही अजीब था। अमीर आदमियों व कंपनियों को टैक्स वसूल करने का ठेका राज्य की तरफ़ से दे दिया जाता था। ये ठेकेदार एक निश्चित धन-राशि देकर मनमाना टैक्स वसूल करने का हक़ प्राप्त कर लेते थे। इन्हें अपनी जेब भरने से मतलब था। जनता की अवस्था की ज़रा भी परवा किए विना ये अपने स्वार्थ को दृष्टि मे रखकर टैक्स वसूल करते थे।

विविध करो से जो आमदनी होती थी, राजा उसका उपयोग अपनी इच्छा से करता था। राजा के निजू ख़र्च और राज्य के ख़र्च मे कोई भेद न था। राजा जितना चाहे, ख़र्च कर सकता था। वह जो बिल बना दे, राजकर्मचारियो को आँख मीचकर उसे स्वीकार करना पडता था। वे कोई आपत्ति न कर सकते थे।

लोक-सभाओं का अभाव

फ्रांस मे क़ानून बनाने या राजकीय विषयो पर विचार करने के लिये कोई ऐसी लोक-सभाएँ न थीं, जिनमें जनता के प्रतिनिधि एकत्रित न हो सकें। निस्संदेह पुराने समयों मे फ्रांस में भी एक इस प्रकार की सभा थी, जिसे 'एस्टेट्स जनरल' कहते थे। पर सन् १६१४ के बाद उसका एक भी अधिवेशन नहीं हुआ था। लोग यह भी भूल गए थे कि इस 'एस्टेट्स जनरल' के क्या संगठन और नियम थे। अब तो फ्रांस पर राजा का अबाधित शासन था। उसने अपनी मदद के लिये कुछ सभाएँ बना रक्खी थीं। पर ये राजा की अपनी सृष्टि थीं। ये राजा के सम्मुख उत्तरदायी थीं, उसकी इच्छा पर अवलंबित थीं। इनका प्रयोजन यही था कि राजा अपने सामान्य राजकीय कार्यों से भी निश्चित हो सके। वह सब चिंताओं से मुक्त होकर मौज से अपने कृपा-पात्रों के साथ आमोद-प्रमोद मे विलीन रह सके।

फ्रांस अभी एकराष्ट्र नहीं बना था

फ्रांस पर राजा का अबाधित शासन था। इसमें ऊपर से देखने पर तो यह मालूम होता था कि फ्रांस एक देश है—एक राष्ट्र है, पर वास्तविकता यह नहीं थी। फ्रांस में राष्ट्रीयता का अभी उदय नहीं हुआ था। जनता में एकराष्ट्र की भावना का सर्वथा अभाव था। भिन्न-भिन्न प्रदेशो के लोग अपने को फ्रांसीसी न समझकर उस-उस प्रांत का निवासी समझते थे। पुराने ज़माने में फ्रांस में अनेक राजों व सामंतों का शासन था। फ्रांस अनेक छोटे छोटे राज्यो में विभक्त था। अब ये विविध राज्य नष्ट हो चुके थे, पर उनकी स्मृति मौजूद थी। यह स्मृति केवल मनुष्यो के हृदयों में ही नहीं, अपितु देश के कानूनों और विविध संस्थाओं मे भी विद्यमान थी। अब तक भी इन प्रदेशों में से बहुतों की सीमा पर आयात और निर्यात-कर लगते थे। अगर कोई व्यापारी फ्रांस के दक्षिणीय समुद्र-तट से माल लादकर उत्तर मे जाना चाहे, तो रास्ते में अनेक स्थानो पर उसे अपने माल की तलाशी देनी पड़ती थी। अनेक स्थानों पर चुंगी देनी पड़ती थी। ये आयात और निर्यात-कर स्पष्ट रूप से यह जनाते थे कि फ्रांस अब भी एक-देश नहीं है, अनेक देशों का समूह है। इन विविध प्रदेशों में टैक्स वसूल करने के नियम तथा ढंग भी एक दूसरे से पृथक् थे। फ्रांस अभी एकराष्ट्र नहीं बना था, इसका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उसमें क़ानून की कोई एक पद्धति प्रचलित नहीं

थी। दक्षिणीय फ़्रांस में विशेषतया रोमन क़ानून का प्रचार था। पर उत्तरीय, पश्चिमीय और पूर्वीय फ़्रांस में २८९ क़िस्म के कानून प्रयोग में आ रहे थे। ये विविध कानून फ्रांस के मध्यकालीन विभेदों के अवशेष थे। इन भिन्न-भिन्न कानूनों के रहते हुए फ्रांस में एकराष्ट्र की भावना कैसे उत्पन्न हो सकती थी?

सामाजिक रचना और श्रेणी-भेद

फ्रांस की सामाजिक रचना स्वतंत्रता पर आश्रित न होकर स्थिति-जन्म-मूलक स्थिति पर आश्रित थी। सब फ्रांस-निवासियों के अधिकार एक समान न थे। कुछ लोग विशेष अधिकार रखते थे, और कुछ के कोई भी अधिकार न थे। कुछ लोग बड़े थे, और कुछ छोटे। कुछ लोग कुलीन समझे जाते थे, और कुछ नीच। फ्रांस में सामाजिक संगठन का आधारभूत सिद्धांत यह था कि सब मनुष्य समान रूप से एक समान और स्वतंत्र नहीं हैं। कुछ लोग स्वभावतः ही बड़े हैं, विशेष अधिकार रखते है, और अमीर है, तथा दूसरे स्वभावतः ही छोटे हैं, अधिकार-रहित हैं, और गरीब है। रूसो का प्रसिद्ध सिद्धांत—"परमेश्वर ने सब मनुष्यों को एक समान और स्वतंत्र उत्पन्न किया है"—उस समय के फ्रांस में केवल कुछ विचारकों के दिमागों में ही था, क्रिया मे नहीं।

फ्रांस की जनता को हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते है—कुलीन-श्रेणी, पुरोहित-श्रेणी और सर्व-साधारण जनता। इनमें से पुरोहित और कुलीन-श्रेणियाँ विशेष अधिकारों से युक्त थीं, ऊँची समझी जाती थीं। सर्व-साधारण जनता की उनके मुक़ाबले मे न कोई स्थिति थी, और न कोई अधिकार।

कुलीन-श्रेणी

फ्रांस की संपूर्ण भूमि का एक चौथाई भाग कुलीन-श्रेणी की संपत्ति था। ये कुलीन लोग मध्यकालीन सामंत-पद्धति के अवशेष थे। इनकी राजनीतिक स्थिति अब क्षीण हो चुकी थी, पर सामाजिक और आर्थिक अधिकार वैसे ही क़ायम थे। राज्य, सेना और चर्च के सब उच्च पद इन्हीं के लिये सुरक्षित थे। अनेक प्रकार के टैक्सो से ये बरी थे। ये समझते थे, हमे रुपए-पैसे के रूप मे टैक्स देने की क्या ज़रूरत? हम तो अपना टैक्स तलवार से देते है। जो कुलीन लोग अमीर होते थे, वे बड़ी शान-शौकत के साथ, राजदरबार मे, राजा के इर्द-गिर्द निवास करते थे। वहाँ इनके भोग-विलास की कोई सीमा न थी। इनका पेशा केवल मौज उड़ाना ही न होता था, दरबार की साज़िशो से भी इन्हे फ़ुरसत नहीं मिलती थी। इनकी ज़मीन किसान लोग जोतते थे। ज़मीन की फ़िक्र करने की इन्हें कोई ज़रूरत न थी। राज्य के बड़े-बड़े पद—खासतौर पर आमदनीवाले पद—नीलाम हुआ करते थे, और ये कुलीन लोग उन्हें खरीदने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। ये पद इनकी शान को ही नही बढ़ाते थे, साथ ही आमदनी को बढ़ाने मे भी सहायक होते थे, क्योंकि उस समय के फ़्रांस मे रिश्वतख़ोरी का बाजार बहुत गरम रहता था।

परंतु कुलीन-श्रेणी के सभी लोग अमीर न थे। बहुत-से अमीर लोग जुए-शराब तथा इसी प्रकार के अन्य व्यसनों में फँसे रहने के कारण ऋणी होकर तबाह हो गए थे। एक कुलीन के मरने पर उसकी संपत्ति का दो तिहाई हिस्सा सबसे बड़े लड़के को मिलता था, बाकी तिहाई हिस्सा छोटे लड़कों में बाँट दिया जाता था। विरासत के इस क़ायदे से भी बहुत-से कुलीन लोग ग़रीब हो गए थे। पर ग़रीब होने पर भी इनके अधिकारों में कोई कमी न आती थी। इनका रहन-सहन मामूली किसानों-सा ही था। अनेक कुलीनों की आमदनी साधारण किसानों से भी कम थी। पर इनके अधिकार अक्षुण्ण थे। लोग इन्हें मज़ाक़ में कहा करते थे—

"ये कबूतरख़ाने या जोहड़ के महान् और शक्तिशाली सामंत है।"

पुराने कुलीन लोगो मे से बहुतो की ऐसी दशा हो रही थी। दूसरी तरफ राजा की कृपा ने अनेक अकुलीन लोगों को श्रीमंत बना दिया था। स्वेच्छाचारी एकतंत्र राजो के कृपा-कटाक्ष से बहुत-से साधारण आदमी कुलीनों की श्रेणी में पहुँच गए थे। सर्व-साधारण लोगों मे ऊँचे घरानो के लिये एक विशेष प्रकार का आदर-भाव होता है। वे उन्हे अपने से अच्छी स्थिति मे देखने के लिये अभ्यस्त होते हैं। उन कुलीनों के विशेष अधिकारो का उपभोग करना उन्हे नहीं चुभता। पर जब कोई उन्हीं की तरह का मामूली आदमी विशेष अधिकारो को प्राप्त कर लेता है, तब वह उन्हें सह्य नही होता। राजा की कृपा से कुलीन बने हुए इन मामूली लोगो के विशेष अधिकार फ्रांस की जनता की दृष्टि में काँटे की तरह चुभते थे। इसी प्रकार कुलीनता के रोब को कायम रखने के लिये आर्थिक समृद्धि अत्यंत आवश्यक होती है। गरीबी की हालत मे कुछ समय तक तो ख़ानदान का रोब काम करता रहता है, पर कुछ समय बाद ही वह काफ़ूर की तरह उड़ जाता है। फ्रांस के ग़रीब कुलीनों का रोब भी इसी प्रकार निरंतर क्षीण हो रहा था। पर कुलीनता के सब विशेष अधिकार इन्हे प्राप्त थे, और जनता को ये सह्य न थे।

पुरोहित-श्रेणी और चर्च

धार्मिक सुधारणा का युग इस समय समाप्त हो चुका था, पर फ्रांस में रोमन-कैथोलिक-चर्च का ही अभी आधिपत्य था। यह चर्च राज्य के अंदर एक दूसरे राज्य के समान था। इसकी अपनी सरकार और अपने राजकर्मचारी थे। फ्रांस की बहुत-सी भूमि चर्च की मिल्कियत थी। किसी-किसी प्रदेश मे तो ४० फ़ीसदी ज़मीन चर्च की संपत्ति थी। इस ज़मीन से चर्च को भारी आमदनी थी। इसके सिवा चर्च सब लोगों से कर वसूल करता था। ज़मीन की उपज का दसवाँ हिस्सा चर्च को कर रूप में जाता था। हिसाब लगाया गया है कि चर्च की कुल आमदनी ३० करोड रुपए वार्षिक के लगभग थी। चर्च की जमीनो और संपत्ति पर राज्य कोई कर न लेता था। चर्च जो टैक्स वसूल करता था, वह केवल रोमन-कैथोलिक लोगो से ही नहीं, अपितु प्रोटेस्टैंट और यहूदी लोगों से भी लिया जाता था। इन सब कारणों से चर्च के प्रभाव और शक्ति की कोई सीमा न थी। राज्य के बाद उसी का स्थान सर्वोच्च था। इस अत्यंत प्रभावशाली चर्च के सचालकों का महत्त्व उस समय मे कितना अधिक होगा, इसका अनुमान कर सकना कठिन नहीं है।

चर्च का संचालन करनेवाली पुरोहित-श्रेणी को हम दो भागों मे बाँट सकते है—उच्च पुरोहित और सामान्य पुरोहित।

उच्च और सामान्य पुरोहित

उच्च पुरोहितों की संख्या ६००० के लगभग थी। ये आर्क बिशप, बिशप, एबट आदि चर्च के ऊँचे पदो पर नियत थे। इनके प्रभाव और समृद्धि की कोई सीमा न थी। ये बडे बड़े कुलीन श्रीमंतों की तरह शान-शौकत और भोग-विलास से जीवन व्यतीत करते थे। धार्मिक कर्तव्यो की तरफ इनका कोई ध्यान न था। इनमें से बहुत-से राजदरबार मे मौज किया करते थे, और कुलीन लोगो की तरह राजदरबार की अंदरूनी साज़िशो में महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त करने में ही अपने जीवन की सफलता समझते थे। इनमें से बहुतों की आमदनी लाखो रुपए साल थी। इस आमदनी का उपयोग अकालों और पीड़ितों की सहायता मे न होकर सहभोजो और शराबों की दावतों में होता था। बहुत-से उच्च पुरोहितों को परमेश्वर मे विश्वास तक न था, फिर भी वे चर्च के ऊँचे-से-ऊँचे पदो पर विराजमान थे।

चर्च के वास्तविक धार्मिक कर्तव्यों का संपादन

सामान्य पुरोहित करते थे। इनकी संख्या सवा लाख के लगभग थी। ये सर्व-साधारण जनता से लिए जाते थे। देहातों में इनका निवास था। ये ही धार्मिक विधि-विधानों और कर्मकांडों का संपादन करते थे। लड़कों को पढ़ाते और मामूली लोगों की तरह सुख या दुःख में दिन काटते थे। इन्हें बहुत थोड़ा वेतन मिलता था। सारा काम ये करते थे, पर बेफ़िकरी से पेट भर सकना भी इनके लिये दूभर था। चर्च की विशाल आमदनी का बहुत थोड़ा हिस्सा इनके पल्ले पड़ता था। उसका फल तो वे लोग प्राप्त करते थे, जो राजा के साथ वर्साइल में मौज उड़ाते थे। यही कारण है कि सामान्य पुरोहितों के हृदयों में उच्च पुरोहितों के प्रति विद्वेष की भावना थी, और राज्य-क्रांति के समय उन्होंने जनता का साथ दिया।

इस काल में फ्रांस के अंदर जनता को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त न थी। यद्यपि फ्रांस की अधिकांश जनता रोमन-कैथोलिक धर्म को माननेवाली थी, पर यहूदियों और प्रोटेस्टैंटों की संख्या भी कम न थी। फ्रांस के क़ानून के मुताबिक़ प्रत्येक आदमी के लिये, चाहे वह यहूदी या प्रोटेस्टैंट धर्म को माननेवाला क्यों न हो, चर्च—जो कि रोमन-कैथोलिक था—के अधीन होना आवश्यक था। सब आदमियों को चर्च का सदस्य होना और चर्च के करों को देना होता था। रोमन-कैथोलिक लोगों के अतिरिक्त अन्य लोगों के विवाह तक ग़ैर क़ानूनी समझे जाते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके कैथोलिक रिश्तेदार संपत्ति के मालिक बनने के लिये दावा कर सकते थे, और इस प्रकार उनके वास्तविक उत्तराधिकारियों से विरासत के हक़ को छीन सकते थे। विधर्मियों को अपने विश्वासों के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक धार्मिक कृत्यों तक को करने का अधिकार नहीं था। जब भी धार्मिक स्वतंत्रता के लिये फ्रांस में कोशिश की गई, पुरोहितों ने उसका विरोध किया।

एक तरफ़ जब फ्रांस के क़ानून के अनुसार धार्मिक स्वतंत्रता को पूर्णतया रोक दिया गया था, दूसरी तरफ़ नास्तिकता की प्रवृत्ति बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ रही थी। सर्व-साधारण जनता में ही नहीं, पुरोहितों और उच्च पुरोहितों में भी नास्तिकता की लहर बड़ी तेज़ी से चल रही थी।

विशेषाधिकार

इन कुलीन और पुरोहित (निस्संदेह उच्च पुरोहित) श्रेणियों के विशेषाधिकार अनेक प्रकार के थे। ये अपनी-अपनी ज़मींदारियों से कई क़िस्म की आमदनी रिवाज के आधार पर प्राप्त करते थे। विवाह आदि विशेष अवसरों पर किसी ख़ास ख़र्च के आ पड़ने पर ये बड़े ज़मींदार अपने असामियों तथा अपनी ज़मींदारी के निवासियों से तरह-तरह के नज़राने वसूल करते थे। जो माल इनके इलाक़े में आता था, उस पर ये कर लेते थे। स्वतंत्र किसानों से उनकी उपज का ख़ास हिस्सा प्राप्त करते थे। इनके इलाक़ों में कई क़िस्म के कारोबार—जैसे आटे की चक्की, शराबख़ाना आदि—इनके सिवा दूसरा न कर सकता था, और सब लोगों के लिये आवश्यक था कि उन कामों को इन्हीं के कारख़ानों में करावें। ज़मीन के क्रय-विक्रय के समय में उसकी क़ीमत का पाँचवाँ हिस्सा ये बड़े ज़मींदार प्राप्त करते थे। शिकार इनका ख़ास अधिकार था। इसके लिये बहुत-सी ज़मीन सुरक्षित रक्खी जाती थी, जहाँ जानवर संख्या में ख़ूब बढ़ सकें। नज़दीक के किसान शिकार के इन जानवरों को किसी क़िस्म का नुक़सान नहीं पहुँचा सकते थे, चाहे वे खेतों को तबाह ही क्यों न कर दें। ज़मींदारों के कबूतरख़ानों में पले हज़ारों कबूतर किसानों के खेतों को उजाड़ते फिरते थे, पर किसी की क्या हिम्मत थी, जो इन्हें उड़ा भी सके। तरह-तरह के जानवर—जिनका शिकार खेलकर ज़मींदार आनंद प्राप्त करता था—खेतों की तबाही मचाते फिरते थे, पर कोई किसान इन्हें मार न

सकता था। जमींदारों के इन विशेषाधिकारों से लोग तंग आ गए थे, पर वे सर्वथा बेबस थे।

सर्व-साधारण जनता

फ्रांस में कुलीन और पुरोहित-श्रेणी के लोगों की आबादी दो या ढाई लाख से अधिक नहीं थी। शेष जनता—जिसकी आबादी ढाई करोड़ के लगभग थी—किस दशा में थी ? इस सर्व-साधारण जनता को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—मध्य श्रेणी के लोग, शहरों के मज़दूरी-पेशा लोग और देहातों के किसान लोग।

मध्य श्रेणी

मध्य श्रेणी में वे लोग सम्मिलित हैं, जो कुलीन व पुरोहित-श्रेणी के न थे, और जो हाथ से मेहनत किए बिना अन्य तरीक़ों से आमदनी प्राप्त करने में समर्थ थे। जैसे वकील, चिकित्सक, साहित्यिक, लेखक व कवि, व्यापारी, साहूकार, कलाविज्ञ, नट-नर्तक, सरकारी नौकर और तरह-तरह के कारख़ानों के मालिक। ऐसे लोगों की आबादी २० लाख के लगभग थी। फ्रांस की संपत्ति, दिमाग़, विद्या और कारोबार इसी मध्य श्रेणी के लोगों के पास थे। तरह-तरह के कारोबार और तिजारत से ये लोग लगातार अमीर होते जाते थे। राजा और कुलीन श्रीमंत लोग इनसे रुपया क़र्ज़ लेते थे। महाजन के तौर पर इनकी शक्ति और प्रतीक्षा निरतर बढ़ रही थी। इसी श्रेणी के लोगों में बहुत-से विचारक, दार्शनिक तथा लेखक उत्पन्न हुए थे, जो फ्रांस में पहली बार 'लोक-मत' नाम की नई वस्तु को पैदा कर रहे थे। सांसारिक दृष्टि से सब प्रकार उन्नत तथा सफल होते हुए भी इनके राजनीतिक अधिकार कोई न थे। राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से इनकी वही हैसियत थी, जो एक नंगे-भूखे किसान की थी। यही कारण है कि इनमें निरंतर असंतोष बढ़ रहा था। ये लोग अपनी वर्तमान दशा में दोष अनुभव कर रहे थे। योग्यता और संपत्ति की दृष्टि से ये कुलीन श्रेणी की बराबरी के थे, पर अधिकारों की दृष्टि से इनकी कोई गिनती न थी। जब फ्रांस में राज्य-क्रांति हुई, तो इन्हीं लोगों ने उसका सबसे अधिक साथ दिया। क्रांति में इन्हें स्पष्ट रूप से अपनी इस दुरवस्था के अंत होने की संभावना नज़र आ रही थी।

मज़दूर लोग

शहरों के मज़दूरी-पेशा लोगों की संख्या २५ लाख के लगभग थी। शहरों का व्यावसायिक जीवन उस समय या तो आर्थिक श्रेणियों (Guilds) में संगठित था, या छोटे-छोटे कारख़ानों में। जो मज़दूर इन श्रेणियों के सदस्य थे, उनकी हालत बहुत बुरी न थी। पर श्रेणियों के कड़े क़ायदे उनकी स्वतंत्रता के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट थे। जो मज़दूर कारख़ानों में काम करते थे, उनकी दशा बहुत ख़राब थी। उन्हें बहुत थोड़ा वेतन मिलता था। उन्हें बहुत अधिक समय तक काम करना पड़ता था। उनकी मेहनत बहुत ही थकानेवाली तथा कष्टप्रद होती थी। इन मज़दूरों का किसी प्रकार का संगठन नहीं था। पर ये अपनी हालत से बहुत संतुष्ट थे। जब राज्य-क्रांति हुई, तो यही मज़दूरी-पेशा लोग थे, जो बड़े उत्साह के साथ सब तरह की अव्यवस्था और दंगा मचाने के लिये उसमें शामिल हो गए। क्रांति में इन्होंने गँवाया कुछ नहीं था। इनको तो मौज-ही मौज थी। बिना पसीना बहाए ये उससे बहुत अधिक प्राप्त कर सकते थे, जितना इन्हें मज़दूरी से मिलता था।

किसान लोग

देहात के किसानों की संख्या दो करोड़ के लगभग थी। ये कुल जनता के ४/५ भाग थे। पर इनकी हालत सबसे अधिक ख़राब थी। ये ग्रामों में कुलीन श्रेणी के ज़मींदारों की जागीरों में निवास करते थे। आधे के क़रीब किसान अभी तक 'भूमि-दास' व 'अर्धदास' थे, जो अपने इच्छानुसार

अपने मालिक की ज़मीन को छोड़कर कहीं बाहर नहीं जा सकते थे। इन्हें बाधित होकर अपने मालिक की ज़मीन को जोतना पड़ता था। पर शेष आधे किसान स्वतंत्र थे। ये जहाँ चाहे आ-जा सकते थे, और ज़मीनों पर अपने हक़ को बेच और ख़रीद सकते थे। ज़मीनों पर इनका हक़ मान लिया गया था, और बहुत-से किसान अपनी ज़मीन के मालिक भी बन गए थे। परंतु किसान चाहे अभी भूमि-दास की दशा मे हों, चाहे स्वतंत्र हों, और चाहे अपनी ज़मीन के स्वयं मालिक हों, विविध क़िस्म के टैक्सों से दबे हुए थे। ऐसे किसानो को ही लीजिए, जो अपनी ज़मीन के आप मालिक थे। राजा उनसे टैक्स लेता था, ज़मींदार उनसे नज़राने लेता था, और चर्च उनसे आमदनी का दसवाँ हिस्सा वसूल करता था।

यह न समझना चाहिए कि फ़्रांस के किसानो की दशा इस समय असाधारण रूप से ख़राब थी। वास्तविकता तो यह है कि उनकी दशा अन्य देशो के किसानों की दशा से बहुत काफ़ी अच्छी थी। क्रांति के लिये यह ज़रूरी नहीं है कि लोग बहुत पद-दलित हों, बहुत अत्याचार-पीड़ित हों। जनता भयंकर-से-भयंकर अत्याचारो से सताई हुई रह सकती है। और, हो सकता है कि उसे अपनी स्थिति से ज़रा भी असंतोष न हो। हज़ारों साल तक मनुष्य-जाति का अधिकांश भाग दास-प्रथा का शिकार रहा है। दास की दशा में लोग भयंकर-से-भयंकर अत्याचारो को दैवी विधान समझकर सहन करते रहे है। क्रांति के लिये जन-साधारण की दशा ऐसी होनी चाहिए कि वे अत्याचारो को अनुभव करें, अपनी दशा को समझ सकें। फ़्रांस मे क्रांति सफलता से हो सकी, इसका कारण यही था कि सर्व-साधारण लोगो की हालत इस हद तक उन्नत हो गई थी कि वे अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का—अपनी दुर्दशा का—अनुभव कर सकते थे। ज्यों-ज्यों उनकी दशा सुधरती गई, वे अपने ज़मींदारो को डाकू समझने लगे। चर्च के दशांश को लूट समझने लगे, और राजा के अनुत्तर-दायी शासन को अनुचित बताने लगे। योरपियन देशो में फ़्रांस ही सबसे पहले अत्याचारों के ख़िलाफ़ विद्रोह करने के लिये अग्रसर हुआ। इसका प्रधान कारण यही था कि वहाँ के जन-साधारण की दशा पर्याप्त अच्छी थी।

यह सब होते हुए भी यह न भूलना चाहिए कि फ़्रांस के अधिकांश किसान भूखे, नंगे और ग़रीब थे। ज़मींदारों के शिकार के विशेषाधिकार जहाँ एक तरफ़ उनके खेतों को उजाड़े विना नहीं छोड़ते थे, वहाँ दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक विपत्तियाँ भी उनकी तबाही करने में किसी प्रकार की कसर नहीं रहने देती थीं। फ़्रांस के किसानो पर विविध प्रकार के करो का बोझ इतना अधिक था कि उनके पास यदि अपने गुज़ारे के लिये भी अनाज बच जाय, तो उसे वे बड़ी भारी गनीमत समझते थे।

व्यापार और व्यवसाय

फ़्रांस के व्यापार और व्यवसाय इस काल में धीरे-धीरे, परंतु निरंतर उन्नति कर रहे थे। व्यापारिक और व्यावसायिक क्रांति का प्रभाव योरप के सभी देशों मे दृष्टिगोचर होना शुरू हो गया था। इन क्रांतियों के संबंध में हम पृथक् रूप से विस्तार से प्रकाश डालेंगे। परंतु यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि फ़्रांस मे ऐसे लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी, जो आंतरिक और बाह्य व्यापार द्वारा धनी होते जा रहे थे। उस समय यांत्रिक शक्ति से चलनेवाले यानों का आविष्कार नहीं हुआ था। इसीलिये पेरिस से मार्सेल्स तक जाने मे ११ दिन लगते थे। जल-मार्ग द्वारा पेरिस से रूर तक १८ दिन लगते थे। पर इसमे संदेह नहीं कि जल और स्थल, दोनो प्रकार के मार्गों को उन्नत करने का उस समय पर्याप्त प्रयत्न किया जा

रहा था। सन् १७८८ में ३६ हज़ार मील सड़क बन चुकी थी। करोड़ों रुपया सड़कों और पुलों के लिये ख़र्च किया जा रहा था। इंजीनियरों को तैयार करने के लिये फ्रांस में एक विद्यालय की स्थापना भी हो चुकी थी। इन सब प्रयत्नों का परिणाम था कि फ्रांस का व्यापार काफ़ी अच्छी गति से निरंतर उन्नति कर रहा था। परंतु इस व्यापारिक उन्नति में फ्रांस का एकदेश न होना सबसे बड़ी बाधा थी। जगह जगह पर चुंगी देना तथा माल को खोलना व्यापारी के लिये बहुत कष्टप्रद होता है, और इससे आंतरिक व्यापार की उन्नति में बड़ी रुकावट होती है।

व्यावसायिक क्रांति के कारण पुराने जमाने की आर्थिक श्रेणियों का स्थान कारख़ाने ले रहे थे। इन कारख़ानों में पूँजीपतियों की अधीनता में बहुत-से मज़दूर काम करते थे। आर्थिक उत्पत्ति का सारा काम ये मज़दूर करते थे, पर व्यवसाय पर इनका कोई हक नहीं था। ये मशीनों की तरह पूँजीपति के हित के लिये काम करते थे। बदले में इन्हें मज़दूरी मिलती थी, जिसकी दर बहुत कम होती थी। इन कारखानों की वजह से एक इस प्रकार की श्रेणी उत्पन्न हो रही थी, जो शहरों में रहती हुई, नई लहरों से जानकारी रखती हुई और आर्थिक उत्पत्ति का सारा कार्य करती हुई भी सर्वथा असहाय थी। इस श्रेणी के लोगों को अभी अपनी शक्ति और महत्त्व का ज्ञान नहीं हुआ था। पर फिर भी वे अपने हितों को कुछ-कुछ समझने लगे थे। और, इसी का परिणाम था कि यद्यपि फ्रांस की राज्य-क्रांति राजनीतिक स्वाधीनता की स्थापना के लिये विशेष रूप से प्रयत्न कर रही थी, तथापि आर्थिक समस्या की कुछ झलक उसमें विद्यमान थी।

हरिजन-आंदोलन पर एक दृष्टि

[श्रीयुत किशोरीदास वाजपेयी]

लित उर्फ हरिजन भाइयो के उद्धार के लिये समय-समय पर वैष्णव, बौद्ध, सिख, ब्रह्म-समाज तथा आर्य-समाज ने भरसक चेष्टा की है, जिसके लिये इनका नाम सदा अमर रहेगा। इधर उस समय इस आदोलन मे फिर बिजली दौड गई, जब महात्मा गाधी ने एतदर्थ वह महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक व्रत किया। ऐसा जान पड़ा था कि अब हरिजनो का उद्धार हो गया। प्रत्येक नगर और कस्बे मे उत्साह उमडा नज़र आता था। हिंदू-जाति का प्रत्येक अंग इस सामाजिक आदोलन से सहानुभूति प्रकट करने लगा था। कट्टर सनातनी भी पिघल गए थे, और मदिरो के द्वार तथा कुओ के चबूतरे हरिजनों के लिये भी अप्रतिसिद्ध करते जा रहे थे। यह सब देखकर हर्ष होता था।

ठीक इसी समय कुछ नवयुवको ने बडी तेज़ी प्रकट की। उन्होने शायद यह सोचा कि जहॉ कट्टर सनातनी भी पहुँच गए है, या पहुँच रहे है, वहीं अगर हम भी दिखाई दिए, तो फिर हमारी विशेषता ही क्या रही? नवयुवक तो इस सदी मे 'क्राति' के वाहक है न? नवयुवक को इसकी परवा नहीं कि मेरे उतावलेपन का फल समाज पर क्या होगा! उसे तो ऑधी चला देने-भर से मतलब! इसीलिये उन दिनो सैकडो-हज़ारो नवयुवको ने झाडू-टोकरा उठाने का स्वॉग किया, बहुतो ने सिर्फ इसलिये कि उनके भी चित्र 'लीडर' मे छप जायँ। सैकड़ों जगह सह-भोज का नाटक किया गया। ठीक इसी समय महात्मा गाधी के पुत्र का एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह हुआ, और प० जवाहरलालजी नेहरू की बहन का पाणि-पीड़न किया एक वैश्य सज्जन ने। इस प्रकार की इन कार्रवाइयों से सनातनी लोगो को यह विश्वास हो गया कि ये लोग जाति-पॉति तोडकर सबको एक कर देना चाहते है। बस, वे चौकन्ने हो गए, और जहॉ-तहॉ इस आंदोलन मे सहायक होने के बदले बाधक होने लगे।

कुछ दिन तक इस प्रकार के सनातनियों को बुरा-भला कहकर उग्रता प्रकट करना ही इस आदोलन का रूप रहा, और फिर धीरे-धीरे वह भी जाता रहा। बिलकुल शिथिलता आ गई!

आज इस आदोलन की दशा सर्वत्र क्या है, सब पर प्रकट है। उदाहरण के तौर पर एक ज़िला-कमेटी का ज़िक्र किया जायगा, जिससे मेरा भी संबध है।

भारत मे सनातनी पंडितो की व्यवस्था का प्रभाव अब भी बहुत है, विशेषत: काशी तथा हरिद्वार-जैसे तीर्थ-स्थानो की व्यवस्थाओ का। सो हरिद्वार मे भी वर्णाश्रम-संघ के द्वारा हरिजन-आंदोलन मे बाधा डालने की चेष्टा की गई। मैने इन लोगो का मुकाबला करने के लिये हरिद्वार, कनखल तथा ज्वालापुर की एक बड़ी

सम्मिलित सनातनधर्म-सभा की स्थापना की। पहली सभा बड़े ज़ोर की हुई, जिसमे ऋषिकुल, गंगा-सभा तथा वर्णाश्रम-सघ के भी बडे-से-बडे विद्वान् प्रतिनिधि पधारे। साधु-महत और पडे-पुजारी भी बड़ी सख्या मे सम्मिलित हुए। कहना न होगा कि सिर्फ हरिजन-आंदोलन की प्रगति पर विचार करने और उसे बढाने के उद्देश्य से ही इस सभा की आयोजना की गई थी। और, ऐसे ही प्रस्ताव पेश हुए, जिनमें से एक यह भी था कि 'हरि की पैडी' पर हरिजनों को भी निर्बाध स्नान करने की अनुमति दे देनी चाहिए। कट्टर विद्वानों ने इन प्रस्तावों का खूब विरोध किया, परंतु मत लेने पर उनका साथ सिर्फ चार ही हाथों ने दिया, और वे भी उन्हीं के थे। इससे जाना जा सकता है कि उस समय इस आदोलन के पक्ष मे सनातनी लोगों की भी कैसी रुचि थी। परतु, बाद मे, जब नवयुवकों ने इस विषय मे 'क्राति' की आँधी उठाई, तब यहाँ भी अन्यान्य स्थानों की भाँति सनातनी भाई भडक गए, और शुरू किया हुआ काम जहाँ-का-तहाँ रह गया। सनातनधर्म-सभा के द्वारा यहाँ बहुत कुछ काम होने को था, जो सब रह गया। यही नहीं, लोग मुझे 'प्रच्छन्न आर्य-समाजी' भी कहने लगे।

इस दशा मे मैने सोचा, क्या करना चाहिए। अखिल भारतीय 'हरिजन-सेवक-संघ' की स्थापना हो चुकी थी, और इसकी शाखाएँ देश में खोली जा रही थीं। मैंने माननीय ठक्कर और श्रीकुँजरूजी से लिखा-पढ़ी की, और निवेदन किया कि हरिद्वार इस आंदोलन का केंद्र बनने लायक है, अतः यहाँ कम-से-कम 'सघ' की ज़िला-कमेटी का ऑफिस होना चाहिए। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की, और सहारनपुर के बजाय हरिद्वार मे ज़िला-कमेटी का केंद्र रक्खा गया। सनातनी इस आदोलन से प्रायः खिच-से गए थे, और आर्य-समाजी भाई तत्परता दिखा रहे थे, अतएव ज़िला-कमेटी का दफ्तर हरिद्वार या कनखल मे न रखकर गुरुकुल कॉंगड़ी मे रक्खा गया। मै भी इस कमेटी का सदस्य बनाया गया। कुछ अन्य सज्जन भी कमेटी मे रक्खे गए, पर गुरुकुल-वालों की सख्या अधिक रक्खी गई, जिससे कोरम पूरा होता रहे, और काम मे गडबड़ न पड़े।

थोड़े दिन तक इस कमेटी मे चहल-पहल दिखाई दी, और फिर जैसे-का-तैसा।

हरिजन-सेवक-सघ में पैसे का नाश

'हरिजन-सेवक-सघो' मे आजकल पैसे की उतनी ही परवा की जाती है, जितनी उन दिनो कांग्रेस मे 'तिलक-स्वराज्य-फंड' के एक करोड रुपए की, जब मौलाना शौकतअलीजी भी उसके झडे के नीचे थे। जिस ज़िला-कमेटी का मै सदस्य हूँ, उसका भी यही हाल है। हरिद्वार से इलाहाबाद, कानपुर, देहरादून तथा सहारन-पुर की सैर ड्योढे दर्जे मे आराम से की जाती है 'संघ' के पैसे पर। बडे-बड़े रईस और प्रोफे-सर तथा पेंशनयाफ्ता और सन्यासी भी 'संघ' के पैसे पर ड्योढे दर्जे मे सैर करते है, जब कि महात्मा गांधी तीसरे दर्जे मे चलते है। कहीं-कहीं तो व्यर्थ ही तीन-तीन सज्जन मिलकर सैर करने

जाते है। अन्यान्य खर्च भी इसी तरह होते है। न कोई किसी की मानता है, न सुनता है। 'सघ' के प्रेसीडेंट प्रायः निर्वाचित नहीं, नामज़द होते है।

मीटिंग मे कोई आता नहीं

सोडा वाटर का उफान बिलकुल ठंडा पड़ गया है! अब ज़िला-कमेटियों की मीटिंगे नियमानुसार, यथासमय होतीं नहीं, और जब होती है, तब उनमे प्रायः कोरम ही नहीं पूरा होता। हमारे सहारनपुर-ज़िले की कमेटी है गुरुकुल कॉगड़ी मे, और वहॉ के इतने प्रोफ़ेसर आदि इस कमेटी के मेबर बना दिए गए है कि कोरम की चिता कभी न पड़ने पावे। परंतु दुर्भाग्य से कोई झाँकता भी नहीं। हमारी कमेटी के सदस्यो मे गुरुकुल के निम्न-लिखित सज्जन सदस्य है—

१. श्रीदेवशर्माजी 'अभय' (भूतपूर्व आचार्य गु० कॉ०)

२. प्रो० श्रीविश्वनाथजी (उपाचार्य गु० कॉ०)

३. डॉ० श्रीराधाकृष्णजी (प्रिंसिपल आयुर्वेद-कॉलेज, गु० कॉ०)

४. प्रो० श्रीसत्यव्रतजी विद्यालकार

५. श्रीचिरंजीलालजी भंडारी

इनके अतिरिक्त स्वामी श्रीदेवानंदजी भी कमेटी के मेबर है, जो गुरुकुल के समीप ही रहते है। अभी १८ नवबर को, कई मास बाद, ज़िला-कमेटी की मीटिंग करने की सूचना मिली। मीटिंग वहीं गुरुकुल मे, प्रो० श्रीविश्वनाथजी विद्यालकार के निवास-स्थान पर, होनी है, जो कमेटी के प्रेसीडेंट है। घर मे स्त्री को बीमार छोड़कर, बच्चो की देख-भाल पड़ोसियो को सौंपकर मै निश्चित समय से आध घंटा लेट वहाँ पहुँचा तीन मील दौड़कर, क्योंकि विचारणीय विषय बड़े महत्त्व के थे। वहाँ जाकर देखा, प्रेसीडेंट साहब अकेले अपने कमरे मे बैठे है। मैने कहा—"यदि लोगो के आने की आशा हो, तो मै बैठूँ, अन्यथा लौट जाऊँ।" उत्तर मे निराशापूर्वक आपने कहा—"लोग आते नहीं है। सब सैर-सपाटे को चले जाते है। क्या कहा जाय, अब क्या होगा।" मै चल पड़ा। आगे देखा, प्रो० श्रीसत्यव्रतजी अपनी नज़र-बगीची श्रीमतीजी के साथ ठीक कर रहे थे, और डॉक्टर श्रीराधाकृष्णजी हरिद्वार सैर करने जा रहे थे। रविवार की छुट्टी का दिन था।

जब आर्य-समाज के सुप्रसिद्ध गुरुकुल मे हरिजन सेवक-संघ की यह दशा है, तो अन्यत्र क्या होगा!

चंदे की भी दुर्दशा है

'हरिजन-संघ' या इस आदोलन से लोगो की रुचि एकदम हट गई है। लोग वह चदा भी नहीं देते, जो स्वयं लिखा चुके है। गुरुकुल के प्रोफ़ेसरो मे ही ऐसे उदार सज्जन भी है, जो सघ की ज़िला-कमेटी के मेबर है, और जिन्होने अपने आप चदा लिखाया है, पर अब देने से साफ़ इनकार करते है। जब यहाँ, प्रकाश-केंद्र मे, यह अंधेर-अँधेरा है, तब और जगह का अदाज़ा लगाना कोई कठिन नहीं है।

सरकारी चौकसी

इधर तो हमारा जोश यों ठंडा पड़ गया, और उधर सरकार चौकन्नी हो गई। उसने सोचा,

हरिजन भी हाथ से गए। डेढ सौ बरस इस राज्य को आए हुए, इतना हरिजन प्रेम सरकार ने कभी नहीं दिखाया, जितना अब दिखाने लगी है, जब से महात्माजी ने यह आंदोलन शुरू किया। अख-बारो मे छापा जाता है, सरकार ने इस साल अछूतो के लिये इतना रुपया मजूर किया है, और अगले साल इतना करेगी। प्रांत के शिक्षा-मत्री तो प्रचार-कार्य करते ही है, इसके लिये मि० अग्रवाल को भी स्पेशल अफसर नियुक्त किया गया है, जो घूम-घूमकर प्रचार करते है। सरकार की ओर से अछूतो की कान्फ्रेसे भी होने लगी है, और अभिनदन-पत्रो द्वारा भी प्रचार हो रहा है।

अभी मि० अग्रवाल अपने सहकारियो के साथ सहारनपुर पधारे थे। कलेक्टर की मार्फत एक पत्र हमारे 'सघ' की जिला-कमेटी मे भी आया था साधारण तौर पर। उसके आधार पर हमारे 'सघ' की ओर से, सघ के पैसे से, एक नहीं, दो नहीं, तीन सज्जन ड्योढे दर्जे मे बैठकर सहारनपुर गए। कुछ बेचारे अछूत भी गए अपने खर्च से। वहाँ मीटिग हुई। जब बीच-बीच मे हमारे सघ के प्रतिनिधि बोलने लगे, तो मि० अग्रवाल ने कहा—"आप मत बोलिए। हम हरिजनो से मिलने आए है। आपको बीच मे पड़ने की आवश्यकता नहीं।"

जब बाकायदे मीटिग शुरू हुई, तो प्रेसीडेट बनाने के लिये हमारे सघ के एक प्रतिनिधि ने स्वामी श्रीदेवानदजी का नाम लिया। इस पर मि० अग्रवाल के एक सहकारी ने कहा—"स्वामीजी इस मीटिग मे दखल नहीं दे सकते, और न प्रेसीडेंट बन सकते है, क्योंकि उनका जन्म अछूतों मे नहीं हुआ है। इस सभा के प्रेसीडेट मि० अग्रवाल बनाए जायँ, जो इस समय बडा काम कर रहे है।"

इस पर स्वय स्वामी देवानदजी ने कहा—"मै प्रेसीडेट बनने का तो इच्छुक नहीं हूँ, मै तो सेवा करता हूँ। मगर सवाल यह है कि अगर मै अछूतो मे जन्म न लेने के कारण इस मीटिंग मे आतरिक भाग नहीं ले सकता, और प्रेसीडेट नहीं बन सकता, तो फिर मि० अग्रवाल को ही कब और कहाँ से यह अधिकार प्राप्त हो गया? वह तो वैश्य है, जो अछूत नहीं। रही सेवा की बात, सो वह हजारो रुपए मासिक लेकर सेवा करते है, और मै सिर्फ पब्लिक की सूखी रोटी खाकर करता हूँ। मि० अग्रवाल अब यह सेवा करने लगे है, मै सदा से कर रहा हूँ। क्या बात है?"

इसका उत्तर तो कुछ न मिला, पर मि० अग्र-वाल ही उस मीटिग के प्रेसीडेट रहे। कार्रवाई शुरू हुई, और हमारे प्रतिनिधियों को वहाँ बोलने न दिया गया, क्योकि ये खद्दरधारी थे।

हरिजनो मे भी कुछ खद्दरधारी थे। उनसे कहा गया—"सरकार तुम्हारी खूब सहायता कर रही है, लाखों रुपया खर्च कर रही है। तुम अपनी तकलीफे सरकार को बतलाओ। परंतु सरकारी सहायता तुम्हे तभी मिलेगी, जब तुम कांग्रेसवालो से अलग रहोगे।" इत्यादि।

हमारे 'संघ' शिथिल पड़ रहे है, और सरकारी प्रोपेगैडा जोर पकड़ रहा है। इस सबंध मे हमारा क्या कर्तव्य है, गभीरता-पूर्वक सोचने की बात है।

वेश्यालय में

[श्रीयुत जैनेंद्रकुमार]

[रूसी लेखक ए० क्युप्रिन की एक पुस्तक है 'यामा'। ठेठ पहले दर्जे की पुस्तक तो वह मुझे न जान पड़ी, पर हिंदी की कातरता दूर हो, साहस आए, यह मुझे अभीष्ट लगा। 'यामा' पुस्तक का लक्ष्य है वेश्या। वेश्या नाम की स्त्री और वेश्या-नामक संस्था। किंतु पुस्तक की खूबी यह है कि वेश्या के प्रति सहानुभूति उसमें कहीं अनुपस्थित नहीं है। इस लेख में उसी पुस्तक का एक प्रसंग है। निजी और साहित्यिक, कई कारणों से मैं तत्पर और लाचार हो गया कि समूची पुस्तक का अनुवाद कर डालूँ। मुझे भरोसा है, उसका प्रकाशन परखवाले हिंदी-पाठकों के लिये बहुत उपयोगी होगा।

प्रसंग यों है कि कॉलेज के कुछ विद्यार्थी एक वेश्यालय में आ पहुँचते हैं। मानो वे इरादे पर नहीं आए, होनहार पर आ गए हैं। साथ एक प्लेटेनव पत्रकार हो गया है। वहाँ का वातावरण शराब की सहायता से उन्हें गर्माता जाता है, और वे धीरे-धीरे, मौक़ा देखकर, एक-एक खिसक चलते हैं।—जैनेंद्र]

ही क्यों, लिखोनिन को छोड़कर बाक़ी और सब विद्यार्थी इसी तरह उठ-उठकर चले गए। कोई बेजाने खिसक गए, कोई चुपचाप खिसके, कोई बहाना बनाकर गए। गए, सो फिर देर तक नहीं आए। वालड्या पावलव के मन में एक थकान सी हो आई। उसने नाच की तरफ देखा। टालपीजिन का भी सिर चकराने लगा। उसने तिमिरा से कहा—"कोई ऐसी जगह बताओगी तिमिरा, जहाँ मैं हाथ-मुँह धो लूँ; सिर चकरा रहा है।" इधर पेट्रोस्की ने चुपचाप लिखोनिन से तीन रूबल लिए, और छज्जे पर से होकर खिसक गया। वहाँ जाकर उसने ज़ोकिया के हाथों छोटी मनका को बुला भेजा। और-तो-और, जेनी के सान्निध्य से जो एक प्रकार की विलक्षण, गर्म, तीक्ष्ण, मिर्चीली-सी उत्तेजना हो रही थी, उसे यह समझदार, लायक रामसिस भी झेल न सका। जान पड़ा, रात के इस तीसरे पहर उसे भी एक आवश्यक काम निकल आया है। इसलिये जरूरी है कि वह तुरंत घर चला जाय, और ज़रा सोए। किंतु अपने साथियों से विदा लेकर, कमरे से बाहर होते ही, उसने पलक मारते में अर्थ-भरी दृष्टि से आँखों-आँखों में जेनी को इशारा कर दिया। जेनी समझ गई, उसने स्वीकृति में धीरे-धीरे अपनी पलकें गिराईं। इन दोनो की इस गुप्त मंत्रणा को प्लेटेनव ने बिना देखे भी देख लिया। फिर जेनी ने जब पलकें उठाईं, तब प्लेटेनव ने देखा, उन उठी हुई आँखों में द्रोह और विद्वेष की तीव्र ज्वाला लपटें ले-लेकर जल रही है। और, मानो अपनी आँखों की चढ़ी बाँकी कमान से यह लड़की एक जलती ज्वाला का तीर इस परली ओर मुँह किए जाते हुए रामसिस की पीठ में भोंक देना चाहती है। पाँच मिनट बाद वह उठी, और बोली—"क्षमा कीजिएगा, मैं अभी आती हूँ।" और, मानो धरती कुचलती हुई चली गई।

पत्रकार ने मुस्किराकर पूछा—"अच्छा, अब तुम्हारी बारी है लिखोनिन?"

"नहीं भाई, नहीं।" लिखोनिन ने कहा—"तुम भूलते हो। और, यह कोई मेरे लिये प्रथा या

सिद्धांत की बात हो, सो भी नहीं। नहीं, मैं तो क्रांतिवादी हूँ, नकारवादी हूँ। कहता हूँ, जितनी हालत बिगड़े, उतना अच्छा। . लेकिन ख़ुश-क़िस्मती यह है कि मै जुआरी हूँ। अपनी तबियत की सब रंगीनी मै जुए पर ख़र्च लेता हूँ। सो मेरे लिये यह कोई अलौकिक कर्तव्य-परायणता की भी बात नहीं। आप ही मेरा जी इस ओर नहीं होता। लेकिन हमारे ख़याल टकरे ख़ूब! मैं भी तुमसे यही पूछनेवाला था कि "

"मैं? नहीं, बहुत थक जाता हूँ, तब कभी-कभी यहाँ आकर सो रहता हूँ। अपने आया, हसिया—से उसकी कोठरी की चाबी ली, और तख़्त पर तान सो गया। यहाँ की लड़कियाँ भी सब जान गई हैं, और मेरी आदी हो गई हैं। जानती हैं, मैं—हूँ। जैसे मर्द तक नहीं हूँ।"

"तो सच, सच, . . कभी नहीं?"

'कभी नहीं।'

"हाँ, सच तो सच्चा ही है।" न्यूरा ने कहा—"सर्गी हवानिश तो पूरे सत हैं।"

"नहीं, कोई पाँच वर्ष पहले मै यह भी कर बैठा था।" प्लेटेनव ने कहा—"पर, सच, जी घिन से भर गया, मिचली-सी आने लगी। अभी जो ऐक्टर ने तमाशा करके दिखाया था कि बहुत-सी मक्खियाँ खिड़की के शीशे पर इकट्ठी चिपटी बैठी हैं—बस, कुछ ऐसा ही समझो। इकट्ठी-की-इकट्ठी शीशे पर बैठी हैं, रह रहकर मर्र-मर्र कर रही हैं, और छोटी-छोटी टाँगों से मानो बौखलाई, अपनी पीठ सहलाती जा रही हैं, तो कैसी मूर्ख लगती है, बेबस, ज़ड। और फिर होता है कि सदा के लिये अलग-अलग चल देती हैं! वैसा ही यहाँ है। .. और, यहाँ आकर प्रेम का खिलवाड़ करना ?.. .. छिः! मै वैसा उपन्यास का नायक नहीं हूँ। सुंदर मै नहीं, स्त्रियों से लजाता मै हूँ, न क़ायदे जानूँ, न अदब। और ये! इनका कंठ तीखी चीज़ो की प्यास से कँटीला रहता है। इनको उन्मत्त वासना चाहिए, और लहू-से लाल ईर्ष्या। आँसू, जहर, गाली मार-पीट, अपघात, बलिदान—जो कुछ तीखा है, सब उन्हें चाहिए। इसका कारण भी दूर नही। समझना सरल है। स्त्री-हृदय सदा प्रेम चाहता है, प्रेम के नाम पर इन कामिनियों को प्रतिदिन चरपरे, चुटीले आख्यान मिलते हैं, रसीले रोमांस। सो स्वभावत. इन्हें कामना होती है कि प्रेम की बातों में इन्हें कुछ धार मिले, कुछ मिर्च, कुछ नमक। फिर उन्मत्त प्रेमालाप से भी तृप्ति क्षीण होने लगती है। तब अनुरूप कृत्य भी चाहिए, जो वैसे ही उन्माद-कर हों, वेदनासिक्त, लालसा-सने। परिणाम-स्वरूप उचक्के, चोर, आवारा, डाकू, हत्यारे, ये लोग इनके प्रेमी बनते है।

"और सबसे बड़ी बात यह है" प्लेटेनव ने कुछ रुककर कहा—"कि इससे हमारे बीच का सुहृद्भाव उजड जायगा। देखते हो, किस सुंदरता से वह सौहार्द हमारे बीच में सुनहरे-सुनहरे पत्ते देकर पल्लवित हो आया है।"

"मज़ाक़ बहुत हुआ।" आश्वस्त लिखोनिन बोला—"तो बताओ, फिर दिन-के-दिन और रात-के-रात तुम यहाँ बिताते ही क्यो हो? तुम लेखक होते, तो बात और थी। तब समझना मुश्किल न होता। तब तो हर कोई समझ सकता कि तुम सामग्री जमा कर रहे हो। लोगो को देख रहे हो, जीवन का पर्यवेक्षण कर रहे हो, जैसे वह जर्मन प्रोफ़ेसर तीन साल तक बंदरों मे ही रहे थे, और उनकी भाषा, रीति और स्वभाव को भली भाँति देख-समझ सके। लेकिन तुमने स्वयं कहा—लिखने-लिखाने का व्यसन तुम्हे नहीं है।"

'नहीं, नही, व्यसन की बात नहीं। इतना ही कि मैं जानता नहीं, कैसे लिखना।"

"अच्छी बात। यह भी सूचित हुआ। तो यह

सही कि तुम यहाँ इन पाप-मग्न प्राणियों के बीच में एक उच्च, उत्कृष्ट और सुंदर जीवन के प्रतिनिधि की भाँति उपदेशक, सुधारक, अवतार बनकर आए हो। तुम्हे मालूम ही है कि ईसाई-धर्म के आरंभ मे पादरी लोग गिरि-कंदराओं, वन-गुल्मों या पर्वत-शिखरो पर वर्षों खड्गासन तपस्या नही करते थे, बल्कि नगर की बाजारों में, चकलों मे अथवा अन्य इसी भाँति के अनर्गल आमोद-स्थलों में जाया करते थे। लेकिन तुम वैसे भी नही मालूम होते।"

"नहीं, मै कभी वैसा नहीं।"

"तब फिर, आखिर किस बला की ख़ातिर तुम यहाँ हिलगे हो? मैं ख़ूब देख सकता हूँ कि जो यहाँ है, अधिकांश घृणय है, लांछनीय है, दर्दनाक है, तुम्हें कष्टकर है। यही, जैसे अभी यह बोरिस का क़िस्सा हो गया। इस साइमन को ही देखो, जिसका पेशा इन दलितों को दलना है। इस चारो ओर की सड़ाँद, दुर्गंध वासना, पशुता, बर्बरता और सुरा के वातावरण के चिंतन में तुम्हारी आत्मा को यातना ही प्राप्त होती है। फिर? तब फिर?? तुम कहते हो, सो मै मानता हूँ कि तुम व्यभिचार-प्रवृत्त नहीं हो, तब तुम्हारे इस आचार का अर्थ क्या है, उद्देश्य क्या है, तात्पर्य क्या है, मेरी बिलकुल समझ में नहीं आता।"

पत्रकार ने तुरत कुछ जवाब न दिया। धीरे धीरे, रुक-रुककर मानो अपने विचारों को पहले अपने को ही सुना रहा और तौल रहा हो। उसने कहना आरंभ किया—

"मैं इस जीवन की ओर आकृष्ट हुआ, इसमे रहने लगा—क्यों? कैसे व्यक्त करूँ?.. इसकी नग्न, भयंकर सत्ता ने, सत्यता ने मुझे खींचा। समझते हो? मानो यह स्थल है, जहाँ से सभ्यता के आवरण, आवेष्टन एकदम जैसे ऊपर से फाड़कर हटा दिए गए हैं। यहाँ न कुछ मिथ्या है, न बनावट, न दंभ, न पर्दा, न धार्मिक आरोप। जन-मत की नीति-धारणा के साथ अथवा पूर्व-पुरुषाओं के अनुशासन की सामाजिक नैतिकता के साथ किसी तरह का समझौता भी यहाँ नही है। न अंतस्थ विवेक का विचार अविचार। न रूपक है न श्लेप, न अवगुंठन न अलंकार—सब नग्न है। यहाँ क्या है? एक स्त्री है, एक मादा, जो कहती है—'मैं अपनी नहीं हूँ। मेरा नाम नहीं है। मैं पदार्थ हूँ। मै सब हूँ। मैं सबकी हूँ। आओ, मुझमे नहाओ, और थूको। नगर की अतिरिक्त वासना की बची खुची कीचड को बहाकर लानेवाली मोरी के लिये मै चहबच्चा हूँ। आए जो चाहे—इनकार मेरे पास नहीं है, मैं प्रस्तुत हूँ। मेरी यही सेवा है। यही कृतकार्यता है। आओ, अपनी क्षणिक विषय-तृप्ति मुझसे पा जाओ। बस—हाँ, पैसा चुका दो। साथ साथ रोग, लज्जा, वितृष्णा, जो हाथ लगे, वह भी थाती में लेना।' बस, यह है। मानवीय जीवन का और कोई विभाग नहीं है, कोई विभाव नहीं है, जहाँ वास्तविक मौलिक सत्यता बे-लीपा-पोती, विना मानवीय दंभ की छाया ओढ़े, ऐसी स्तूपाकार, बीभत्स, रौद्र, हड्डी के ढाँचे की तरह स्पष्ट, दुर्दांत और व्यक्त होकर खड़ी हो।

"ओह, मै नही जानता, ये औरतें चरखे के सूत की तरह झूठ का कैसा बे अंत तार नहीं बुन सकती हैं। जाकर पूछो कि पहलेपहल क्या हुआ था? वह तुम्हे ऐसी पक्की कहानी गढ़ सुनाएँगी कि क्या कोई कहानीकार बनाएगा?

"तो पूछो, क्यों? मै पूछता हूँ कि तुम्हारा काम क्या है, जो पूछो। हाँ, वे झूठ बोलती हैं। पर बच्चे भी झूठ बोलते है। और, वे झूठ बोलती है, तो निरी बच्चो की तरह झूठ बोलती है। और, तुम्हीं बताओ, बच्चों से बढ़कर झूठ बोलनेवाला कोई है? कैसी प्यारी-प्यारी निर्मूल कल्पनाएँ बच्चे

गढ़ते रहते है। लेकिन इस धरती पर बालक-से सच्चा कोई दूसरा प्राणी भी है ? और एक खास बात देखो कि बच्चे और वेश्याएँ, दोनो हमसे, समवयस्क पुरुषों से ही झूठ बोलते है, और किसी से वे झूठ नही बोलते। आपस में, हाँ, गढंत तो वे गढ़ती ही रहती हैं, लेकिन हमसे वे झूठ यों बोलती हैं कि हम उनसे झूठ बुलवाते हैं। हम अपने सवाल-जवाब से, चालाकी से उनकी आत्मा में उतरकर मानो उनकी मर्म-कथाओं पर पैरो से चलकर सैर करना चाहते है। उनकी आत्माएँ हमारे लिये नितांत विदेशी हैं, सर्वथा अपरिचित। और, वे हमें अपने भीतर-ही-भीतर महामूर्ख, दभी, बने सियार समझती है। तुम चाहो, तो मै उँगलियों पर गिनकर बता दूँ कि किन-किन मौको पर वेश्या ज़रूर झूठ बोलेगी। और, तुम भी देखकर समझ जाओगे कि किस तरह आदमी चाहता है कि वे झूठ बोले।"

"अच्छा, बताओ तो।"

"पहला यह कि वे अपने को निर्दयता-पूर्वक रंग से पोत लेती है। कभी इसमे अपने को बिगाड़ तक लेती है। क्यों ? क्योंकि फौज का रँगरूट आता है, जो मुद्दत से रुका हुआ है। कामातिरेक के प्रवाहावरोध से त्रस्त है, और मौसम मे जैसे कुत्ता हो जाय, वैसे बेहया हो गया है, या इस या उस दफ़्तर का क्लर्क आ हाज़िर होता है। बेचारा दीन है, दुखारी, क्योंकि उसके उपरा-तली नौ बच्चे हैं, और पत्नी गर्भवती है। अब ये लोग आते हैं, और अपनी संचित वासना की अतिशयता को खर्च कर दें, इसीलिये नहीं आते। नहीं, वे रस चाहते है, सौदर्य चाहते हैं, समझे आप ? सौंदर्य चाहते है ! वे सौंदर्यवादी हैं। लेकिन ये बेचारी गॉव की सीधी, भोली लड़कियाँ, ये धरती की जनता की कन्याएँ—इन बेचारियों की सौंदर्यवाद की परिभाषा कितनी है ? वे जानती हैं—जो मीठा, वही अच्छा, जो लाल, वही सुंदर। इसलिये लीजिए, यह रोग़न, पाउडर और लेप का जितना चाहिए, सौंदर्य लीजिए, प्रस्तुत है !

"यह एक हुआ। दूसरे उस फौजी उत्तप्त जवान की चाह सौंदर्य पाकर बस नही मानती। नहीं, वह अभागा उसके आगे भी कुछ चाहता है। वह चाहता है, दूसरी ओर से भी उसे वैसा ही तृपार्त, आकुल, उत्कंठित प्रेम प्राप्त हो। चाहता है, उसका आलिंगन स्त्री में एकदम तप्त उद्भ्रांत प्रेम की आग भड़का दे। अच्छा, यह भी तुम्हे चाहिए, तो लो ! और, ये कामिनियाँ भी अपनी अग-भंगी से, ध्वनि से, सी सी करके और आहें भरके घोर मिथ्याचार-पूर्वक प्रतीति दिलाती है, मानो उनका मिथुनाचार हार्दिक है, उल्लास-भरा है, अरे, वे प्यासी हैं। पुरुष वास्तव में अपने मन के बहुत भीतर इस व्यवसाय-सिद्ध मिथ्याचरण को ख़ूब समझता है। पर 'उन्हें चलने भी दो', मानो यह कहकर अपने को बहका लेता है—'ओह ! मैं कैसा मर्द हूँ, रमणियाँ कैसी मुझ पर टूटती है, मेरे सहवास मे कैसी वे अपना आपा भूल लट्टू हो रहती हैं !' आदमी अत्यत असंभव परिस्थितियों में भी अद्भुत तर्क से अपने को अपने ऊपर रिझा लेता है। और, यद्यपि वह मन ही-मन इस स्वाद के खोखलेपन को ख़ूब जानता है, फिर भी जैसे इस मिथ्या अनुभूति के रस से उसकी आत्मा भीज जाती है। इसी से यह बात है। अब इस मिथ्याचार का मूल कहाँ है ? उसकी लड़ी कौन आरंभ करता है ? स्त्री या पुरुष ?

"और लिखोनिन, तीसरी बात यह है। यह तुम्ही मुझसे कहलवा रहे हो। सबसे अधिक झूठ का आसरा वे तब लेती है, जब उनसे प्रश्न पूछे जाते हैं—'तुम यहाँ कैसे आईं ? वेश्या कैसे बन गईं ?' आदि। लेकिन मै पूछूँ, तुम्हे पूछने का हक़ ? तुम कौन हो उसके ? तुम बलात् उसके अंतरंग

भेदों में घुस बैठनेवाले कौन होते हो ? वह तो तुम्हारे प्रथम प्रेम की प्यारी स्मृति के बारे में कुछ पूछने नहीं बैठती। वह तो नहीं पूछती कि तुम्हारी बहन कौन है ? पत्नी कौन है, और कैसी है। आह ! कहोगे—'हम पैसा जो देते हैं।' तो पैसे की बात है ! ठीक। तब तो एजेंट, दलाल, पुलिस, दवाई, क़ानून, म्युनिसिपैलिटी, सब तुम्हारे हितों की रक्षा पर कटिबद्ध प्रस्तुत हैं। निश्चित रहो; जो कामिनी किराए पर तुम्हारी ख़िदमत में है, वह तुम्हें पसन्न करेगी, विनीत रहेगी, अदब से पेश आएगी। तुमने पैसा दिया है, और क़रार से तुम्हें यह सब कुछ मिलेगा, तथा तुम्हारा व्यक्तित्व अछूता रहेगा।

ऐसे कुरेद कुरेदकर प्रश्न करने के कारण और जगह कनपटी पर ज़ोर का थप्पड़ ही चाहे तुम्हें मिलता, लेकिन यहाँ तुम्हें आदर प्राप्त होगा। पर तुम पैसे के एवज मे सत्य भी चाहते हो ? नहीं, वह तुम्हारी मुट्ठी की और सौदे की चीज़ नहीं है। पैसा तुम्हें सब ख़रीद देगा, पर सत्य पाने की दुराशा मत रक्खो। तुम पूछोगे, और वे तुम्हें गढा-गढ़ाया, चौखूँट-बँधा, ऐसा किस्सा सुना देंगी, जिसे तुम—क्योंकि तुम भी आख़िर बने और चौखूँट-बँधे पाबंद सोसाइटी के आदमी हो—झट पचा लोगे। कारण, जीवन स्वतः तुम्हारे निकट, ऊटपटाँग, निष्प्रयोजन और बस काट देने की वस्तु है। या वह वैसा अविश्वसनीय पदार्थ है, जैसा अविश्वसनीय जीवन ही हो सकता है।

सो तुम्हारी सेवा मे वही पुरातन और सनातन कथा उपस्थित कर दी जाती है—'एक अफ़सर था या रईस या एक पड़ोसी, . और एक बच्चा भी हुआ,...और ..आदि-आदि।' लेकिन लिखोनिन, जो कह रहा हूँ, उसे अपने पर न समझ लेना। तुम पर वह लागू नहीं है। तुम ? सच, अपने हृदय से कहता हूँ, तुममें महान् और सच्ची आत्मा के लक्षण हैं। आओ, तुम्हारे स्वास्थ्य के नाम पर...।"

वे पीने लगे।

"मैं क्या बकता ही रहूँ ?" प्लेटेनव ने अनिश्चित स्वर में कहा—"तुम उकता तो नहीं गए ?"

"नहीं-नहीं, भाई !" लिखोनिन ने कहा—"मेरी प्रार्थना है, बात तोड़ो मत। कहे जाओ।"

"वे मिथ्याचरण करती हैं।" प्लेटेनव बोला—'और, अपेक्षाकृत अधिक निर्दोष भाव से वे मिथ्याचरण करती हैं। जो उनके सामने अपने राजनीतिक विचारों के रंगों की छटा दिखाने बैठते है, उनके सामने वे उनकी-सी बन जाती है। जो कहो, वही उन्हें क़बूल। मैं आज कहूँ—'वर्तमान धन सत्तावाद घर तक है, सपत्ति के मालिकों को मिटा दो, ज़मीन के मालिकों को बम से उड़ा दो; नौकरशाही का सत्यानाश कर दो; तो तत्पर होकर अक्षर-अक्षर में वे मेरे साथ होंगी। लेकिन कल दूसरा जोर से कहे—'इन सामाजिक समतावादियों को फाँसी लगा देना ज़रूरी है, क्रांतिवादियों को भून देना चाहिए, इन विद्यार्थी और छोकरों को एक एक कर मार देना चाहिए, जो धर्म का ख़ून करके उसके रंग से अपने को रंगीन करना चाहते हैं; तब पूरे हृदय से वे उससे भी सहमत हो जायँगी। किंतु उसकी कल्पना उत्तेजित कर दो, अपने प्रति उसमे प्रेम जगा दो, तो कमर बाँधकर तुम्हारे साथ जहाँ चाहो, वहीं जाने को वे तैयार हो जायँगी। तमाशे में तो, क्रांति के विस्फोट मे तो, चोरी और हत्या के काम में तो भी। लेकिन बच्चे ? बच्चे भी तो ऐसे ही झट मान जाते हैं। वे भी क्या ऐसे ही विश्वासशील नहीं होते ? और भाई लिखोनिन, परमात्मा के लिये ये भी क्या है ? बच्ची ही नहीं है ?

"चौदह वर्ष की फुसला ली गई, और सोलह वर्ष की होते-होते पीला टिकट और योनि-रोग लेकर पेटेंट वेश्या हो गई। अब वह चकले में है।

तब से यहीं उसकी आयु के सब साल बीते है। यहाँ की दीवारों से घिरी और शेष विश्व से वह बिलकुल कटी, दूर रही है। रोज़ के उसके काम मे आनेवाले शब्दों की गिनती पर ध्यान दो। बस, अपने वही तीस-चालीस शब्द वह जानती है। उन्ही से अपना सारा काम चला लेती है। जैसे बच्चे और जंगली प्राणी गिनती के शब्दों से अपना काम चला लेते है। खाना, पीना, सोना, आदमी, बिस्तर, मालकिन, सबल, ग्राहक, डॉक्टर, अस्पताल, कपड़े, पुलिस—बस, उसके भाषा-विकास की परिधि यह है। उसके बुद्धि-विकास की भी सीमा यहीं है। उसकी कल्पनाएँ, उसके अनुभव, उसकी आकांक्षाएँ, उसकी उन्नति, इस भाँति मौत के दिन तक शैशव-तल से ऊपर नहीं उठ पाती। बिलकुल उसी तरह, जैसे उस अध्यापिका की हालत होती है, जो दस वर्ष की होते-होते संस्था मे चली गई, और वहीं रही, अथवा उस कोरी भगतिन साध्वी की-सी जो बच्ची-सी मठ मे पहुँची, और वहीं बड़ी हुई। संक्षेप में एक उस वृक्ष की दशा की कल्पना कर लो, जिसको धरती के पाताल में धँसकर और आकाश के शून्य में विस्तार बनाकर, बहुत जगह घेरकर जा फैलना था, वही शीशे के बर्तन में उगा, और वहीं बन्द रहकर बढ़ा। उनके अस्तित्व के इसी शिशु-तुल्य विकासावस्था के कारण मैं कहता हूँ, मिथ्या उनके लिये अनिवार्य है। पर वह उनका मिथ्याचार निर्दोष है, निरुद्देश्य, एक लगी बान-जैसा। पर कैसी बीभत्स, उघरी, नगी है वह सचाई, जो इस व्यवसाय के शरीर के रोम-रोम में से पीब की तरह फूटती हुई दिखाई देती है। यह घंटों के हिसाब से या पूरी रात के मोल का सौदा पटाया जाना, रात के ये बँधे दस आदमी, नगर-पिताओ (City Fathers) के बनाए नियमों की छपी हुई खूँटी से लटकी प्रतियाँ; बोरिक के पानी के प्रयोग आदि की हिदायत; साप्ताहिक डॉक्टरी मुआइना; घृण्य योनि-रोग जो यहाँ वैसे साधारण और निश्शंक भाव से सुने, समझे और सहे जाते है, जैसे ज़ुकाम—इन सबमे कैसी बेहयाई और प्रगल्भता के साथ नहीं प्रकट हो जाता वह सत्य! इन नारियों मे पुरुष के प्रति विषम ग्लानि कूटी भरी रहती है, ऐसी विषम कि उनके किसी हाव-भाव में वह व्यक्त हुए बिना नहीं रहती। उसी चिरपोषित ग्लानि को वे इस वृत्ति द्वारा चरितार्थ और तृप्त करती है। उनका यह समस्त अतर्क्य अनिष्ट जीवन सामने मेरी हथेली पर बिछा है। उसकी गंदगी, उसका पातक, उसकी बेहूदगी मैं देखता हूँ, सब है, लेकिन उसमें अपने निज के और समाज के प्रति उस दंभ और पाखंड का लेश भी नहीं है, जिसमें और लोग चोटी से एँड़ी तक डूबे दिखाई देते है। मेरे भाई लिखोनिन, एक बार सोचकर देखो, हमारे समाज के विवाहित प्रेम और विवाहित सहवास के सौ मे से निन्यानबे मामलो मे कितना असह्य, अतुल, भयंकर मायाचार और तीखी घृणा नहीं होती? सोचो, कितना अंध, निर्दय अनाचार तुम्हारे पवित्रम्मन्य मातृत्व मे नहीं है? पाशविक नहीं, वह मानवीय है। कितना तर्क-सिद्ध, गणित-सिद्ध, नियम-मान्य और कितना अंतर्वेधी! पर उसी को हमने कैसे सुरम्य रंगो से रँग रक्खा है। उन सब व्यर्थ और बड़े-बड़े ओहदो और व्यवसायों को देखो, जिन्हें भद्र मनुष्य ने 'मेरा' घर, 'मेरी' स्त्री, 'मेरी' संभोग्य, 'मेरा' बच्चा, 'मेरी' जायदाद की रखवाली के पैदा कर लिए है। ये ओवरसियर, कंट्रोलर, इंस्पेक्टर, जज, अटरनी, जेलर, ऐडवोकेट, अफसर, सरकार, शाही नौकर, जनरल, सिपाही और इसी प्रकार के सैकड़ों अन्य उपाधिधारी, ये सब क्या है? सब मनुष्य की लिप्सा, लालसा, कायरता, मिथ्याभिमान, पामरता, आलस्य, विषय-परायणता, इनके पोषण, इनकी पूर्ति के लिये ये बने हैं।

मानवीय दैन्य के ढँकने के लिये ये खडे हैं। दैन्य! यही शब्द है, यही रोग है, यही सत्य है। पर हमारे कोष शानदार शब्दों से भरे हैं। मातृभूमि, धर्म की वेदी, भ्रातृ-प्रेम, उन्नति, कर्तव्य, संपत्ति, पावन-प्रेम! उँह, मै अब ऐसे किसी भी मीठे शब्द मे नही फँसता। मैं इन ओछे मिथ्यावादियों, इन कायरों और इन चूमकर फूलनेवालों से अघा गया हूँ। इन निर्वीर्य पुरुषों से, स्त्रियों से, जो औरों को छोटा समझकर ख़ुद बडे बनते है, मै ऊब गया हूँ, उकता गया हूँ। ... मनुष्य आनंद के लिये बना है। वह सृष्टि करेगा। सिरजन उसका काम है। अपनी सृष्टि के मध्य वह ईश्वर है। प्रेम उसकी सार्थकता है, निर्बाध, स्वतंत्र, सर्व-विजयी, सर्वभक्षी, व्याप्त प्रेम। वृक्ष के लिये, आकाश के लिये, मनुष्य के लिये, कुत्ते के लिये, प्राणी-मात्र के लिये प्रेम। शस्यदा इस सुंदर पृथिवी के लिये प्रेम। हाँ, विशेषकर इस प्यारी धरती के प्रति प्रेम। धरती, जो माताओं की माता है, जिसके एक ओर से प्रभात की प्रभा प्राप्त होती है, दूसरी ओर से सध्या की गुलाबी अँधियारी। सबकुछ जिसकी धरती पर होता है, और जो सबके पैरों तले पडी है। लेकिन आदमी ऐसा मायाचारी है, ऐसा क्लीब, ऐसा दीन, ऐसा अपाहिज कि......ओह! लिखोनिन, मुझे थकान होती है।"

लिखोनिन जाने कहाँ देख रहा था। उसने जैसे सब कुछ सुना, फिर भी कुछ नहीं सुना। एक विचार, एक संकल्प मानो उसमे गर्भस्थ होकर धीरे धीरे कठिनाई से पल रहा था। उसने कहा—"मै क्रांतिवादी हूँ, और तुम्हे कुछ-कुछ समझता हूँ। लेकिन एक बात मेरी समझ मे नहीं आती। यदि तुम्हारे लिये मानवता ऐसी उपेक्षणीय हो गई है, तो (लिखोनिन ने अपना हाथ मेज़ के चारो तरफ़ घुमाया) यह सब कुछ, यह अति विगर्हणीय वस्तु, जो मनुष्य बना सका, क्यो झेल रहे हो?"

"हाँ, मै स्वयं नही जानता।" प्लेटेनव ने निर्व्याज भाव से कहा—"देखो, मेरे घर नही, बार नही। मैं फिरता ही रहता हूँ। जीवन से मुझे प्रेम हो गया है। मै बस रहना चाहता हूँ, और उस रहने में से अधिक-से अधिक रस पा लेना चाहता हूँ। मै टरनर रह चुका हूँ, कंपोज़ीटर रह चुका हूँ, खेती भी की है, तबाकू बेचा है। ऐज़व सागर पर मल्लाही भी की, मछुआ भी बनकर रहा। दरिया नीपर के किनारे राजगीरी की, और मज़दूरी भी। तरबूज़ ढो-ढोकर ले जाते होते थे। सरकस के साथ भी रहा, थिएटर में अभिनय भी किया। और, सब याद नहीं, क्या-क्या किया। कभी कुछ लाचारी मे पडकर किया हो, सो नही। जीवन को देखने की एक अटूट भूख थी, एक असह्य जिज्ञासा। सच, जो होता है, कुछ दिन के लिये मैं यदि घोड़ा बन सकता, या वृक्ष या मछली। तबियत होती है, कुछ क्षण के लिये मै स्त्री बन पाता, और अनुभव करता, प्रसव-वेदना और मातृ सुख क्या होता है। मुझे जो मिलते हैं, जी होता है, उन्हीं के भीतर पैठकर उन्हीं की आँखों से मै विश्व को देख सकता। मै विश्व की आत्मा के साथ एकात्म्य पाना चाहता हूँ। सो यहाँ-वहाँ, नगर मे, गाँव मे, विना चिंता, विना मतलब और विना बधन मै घूमता रहता हूँ। बीसियों काम जानता हूँ, और मेरा भाग्य जहाँ ले जाय, वहाँ पहुँचने में मुझे आपत्ति नही। क्या बड़ा, क्या छोटा, क्या सुख, क्या विरत, क्या भूख और क्या भोग? जहाँ हूँ, वहीं जीवन के तल पर मै प्रसन्न हूँ, क्योंकि मैं तैर सकता हूँ। इसी निरंतर चक्र मे मैं इस वेश्यालय के तट पर एक रोज़ आकर लगा। मैंने इसे देखा। पर ज्यों ज्यों देखा, एक अज्ञेय भाव, एक भय, आवेश, आक्रोश मेरे भीतर उठता आया। पर, जानता हूँ, दिनो के साथ यह भी मिटेगा, और

मैं अपनी भटकन पर फिर वही आगे बढूँगा। वसंत आने तक काम का हाल भी ठीक हो जायगा, और मेरा पर्यटन आरंभ। अब के मैं एक मिल मे जाऊँगा। मेरा एक दोस्त है, वह इसकी ठीक-ठाक कर रक्खेगा। ठहरो-ठहरो, लिखोनिन.. सुनो, ऐक्टर क्या कह रहा है,. तीसरा एक्ट है।"

एग्मेट लेवेग्स्की अब खेल-तमाशे करते-करते थक चला था। कभी कुत्ते-बिल्ली की लड़ाई दिखाई, कभी किन्हीं की आवाज़ सुनाई। पर वह धीरे-धीरे थकान के भाव से झुकता जा रहा था। सहसा, मानो आत्मप्रकाश की अनुभूति उसके भीतर उदय हुई, और उसके उद्योत मे अकस्मात् उसने कई बार यारशेंको के हाथ का चुंबन लेने की चेष्टा की। पलक उसके लाल हो आए, ओठ हिले-से, जैसे वह रो उठेगा। आवाज से प्रकट होता था कि आँसू उठकर गले और नाक तक आ गए हैं।

"मैं तमाशे का अभिनय करता हूँ।" अपनी छाती पर जोर से घूँसा मारकर उसने कहा—"मै लोगों के दिखावे के लिये लकीरदार पाजामा पहनकर नाचता फिरता हूँ। मैंने अपनी आकांक्षाएँ जलाकर बुझा दी है, प्रतिभा धरती मे गाड़ दी है, और आपका गुलाम बन गया हूँ। लेकिन पहले—(उसने आर्त मुद्रा से चीख़ना शुरू किया) पहले न्यू सर्कप मे जाकर पूछो, टूगर मे, उस्टेजन मे, जेनीवरडक में, क्रीज़ोपोल मे,...वहाँ जाकर पूछो, मैं क्या-क्या न था। कोई था मुझ-जैसा बजाने-वाला? वेल्टीज़न मे किसने वह मार्का मारा था? मैंने। वह थी जीत, जो जीत होती है।. मेरेकोस्की सिबको मैं मेरे साथ-साथ था। पावलेंको के साथ मैंने काम किया। पोशेनिन को किसने बनाया? मैंने। पर अ अब?."

वह झक बाँधकर झींकता रहा, और उसने प्रोफ़ेसर का हाथ चूमना चाहा।

"हाँ, मुझसे नफरत करो। मुझ पर उँगली उठाओ। क्योंकि तुम भले आदमी हो, और मै मूर्ख बना घूमता हूँ। मै शराब पीता हूँ।.. धर्म को मैने पामाल किया, मंदिरों की तौहीन की। मै मजे से कहाँ बैठा हूँ? जहाँ इज्जत बिकती और प्रेम लुटता है। और, मेरी स्त्री सती, पतिव्रता, पानी सी साफ, दूध सी सफेद, राजहंसिनी-सी पवित्र. ओह! अगर उसे मालूम हो जाय! उसकी उँगलियाँ, ओह! कैसी प्यारी-प्यारी उँगलियाँ, सुई से छिद-छिद जाती होंगी। और मै? ओह! मेरी सती-सावित्री रानी, मै लफंगा, मैं तेरे एवज़ में यहाँ क्या ले रहा हूँ? हाय-हाय!" ऐक्टर ने ज़ोर से अपने बाल पकड़ लिए—"प्रोफ़ेसर, मुझे अपने आलिम हाथ का एक बोसा लेने दो। तुम मुझे समझोगे। चलो, मैं तुम्हारा परिचय कराऊँगा। देखोगे, वह कैसी देवी है।.. वह मेरी बाट देखती रहती है। रातों नही सोती। मेरे नन्हे-नन्हे फूल की पँखुड़ी-से हाथों को अपने हाथों मे लेकर, लोरी गा-गाकर कानों में कहती है—'परमात्मा, तुम्हारे पापा को बचाएँ, और बडी उमर दें।'"

"झूठ बकता है तू। झूठा, कुत्ता।" कठिन घृणा की दृष्टि से देखकर मतवाली छोटी मनका सहसा चीख़कर बोली—"वह नहीं कह रही यह बच्चों से। वह कुछ भी अपने बच्चों से नहीं कह रही। झूठे, पाजी, वह दूसरे मर्द को लेकर मौजें ले रही है।"

"चुप रह, कुतिया!" ऐक्टर आपा खोकर ज़ोर से चिल्लाकर बोला, और बोतल खींचकर पकड़ी, और सिर से ऊँची उठाकर कहा—"मुझे पकड़ लो, नहीं तो मै इसका सिर फोड़ दूँगा। अपने इस गंदे मुँह से कैसे जुरअत करती है तू कि...'

"सड़ा होगा तेरा मुँह। मै रोज़ इस्तोत पढ़ती हूँ।" और ढिठाई से तनकर मनका ने कहा—"हरामी, अपने सिर पर अब से सींग रक्खा कर। ख़ुद तो रंडियों में उड़ता फिरता है, और चाहता है, औरत उसकी सती रहे। देखो बेवक़ूफ़ को,

बकने के लिये जगह कहाँ मिली है कि लगता है कोई सवार आकर उस पर लगाम खीचे है। और क्यों रे बाप निकम्मे कहीं के, बच्चों को अपनी बात में क्यो तू सानता है? यों मुझ पर आँख मत तरेड़, और दाँत मत पीस, मै डर नहीं जाऊँगा। कुत्ता, न—न!"

यारशेको के बहुत यत्न और बहुत वाक्शक्ति ख़र्च करने पर ज्यों-त्यों छोटी मनका और ऐक्टर चुप हुए। मनका ने शराब पी, और झगडा सूझा। ऐक्टर बिसूर बिसूर कर रो उठा। वह पस्त होने लगा, और हेनरीइटा उसे अपने कमरे मे ले गई।

अब सब पर थकान आ छाई थी। विद्यार्थी एक-एक कर शयन-कक्षों से लौटने लगे। उनकी तात्कालिक प्रेयसियाँ भी मानो कुछ हुआ ही न हो, इस भाव से चलती हुई आईं। सच, ये सब लोग ऐसे ही लगते थे, जैसे खिड़की के शीशे पर मर्र-मर्र करती नर और मादा मक्खियाँ। ये जमुहाई लेते, अँगड़ाई लेते। बहुत देर तक थकान, खीज और घबराहट का भाव उनके चेहरों से दूर न होता। वे चेहरे अनिद्रा से पीले और अप्रिय रूप से चमकदार थे। जब अलग होते समय उन्होंने एक दूसरे से बिदा माँगी, तब उनकी आँखों मे परस्पर एक प्रकार का विक्षेप का भाव चमक रहा था, जो एक अनावश्यक और कुत्सित कृत्य करनेवाले दो सहयोगियों मे हो ही आता है।

लिखोनिन ने पत्रकार से धीमे स्वर में पूछा—"अभी उठकर तुम कहाँ जा रहे थे?"

"सच, मै स्वयं नहीं जानता। मै रात इसिया-सविश के कमरे में काटना चाहता था। लेकिन देखो, कैसा सुंदर प्रभात है। इसे खोना पाप है। मैं सोच रहा हूँ, बाहर निकलकर ज़रा समंदर मे नहाऊँ। स्टीमर पर चढकर फिर लिप्स्की के मठ पर पहुँचूँ। वहाँ एक काला नाटा फ़क़ीर है, मैं उसे जानता हूँ। उससे टर्टूलियन के बारे मे कुछ बात करूँगा। पर क्यो?"

"मै कहता हूँ, जरा ठहरो। जब तक सब चले जायँ, तब तक ठहरो। मुझे तुमसे कुछ कहना है।"

"यह सही।"

यारशेको सबसे पीछे गया। कहा—"सिर मे दर्द है। थक गया हूँ, जाऊँगा।" लेकिन वह बाहर हुआ ही था कि पत्रकार ने लिखोनिन का हाथ पकड़ा, और दरवाज़ों के शीशों मे से दिखाया—कहा—"वह देखो," और लिखोनिन ने खिडकी के पुराने काँच में से देखा कि प्रोफ़ेसर टूपिलवाले वेश्यालय में जा पहुँचा है, और घंटी बजाकर अपने प्रवेश की सूचना दे रहा है। मिनट भर मे द्वार खुला, और यारशेको उसमें ग़ायब हो गया।

लिखोनिन ने साश्चर्य पूछा—"और तुम्हे पता कैसे चला?"

"उँह, मैने उसका चेहरा भाँपा। यह भी देखा कि वर्का की बौडी पर वह चाह से छिपाकर हाथ फेर रहा है। और लोग कम रुक सके, यह ज़रा शर्मीला था।"

"प्लेटेनव, चलो।" लिखोनिन ने कहा—"मैं तुम्हे देर तक नहीं रोकूँगा।"

"पथिक ! इस अँधेरी रात में किधर चले ?"

[युवराज रघुबीरसिंह एम्० ए०, एल्-एल्० बी०]

(गद्य-काव्य)

"पथिक ! इस अँधेरी रात मे किधर चले ? क्या एक रात-भर भी न ठहरोगे ?

दिन-भर भटकने के बाद थके-माँदे आए हो, सूरज की धूप मे तपे हो, अरे ! पसीना भी न सूखा कि इस बरसते पानी मे रवाना होने लगे !

देखो ! चाँद ने मुँह छिपाया सो छिपाया, तारे भी तुम्हारे पथ को आलोकित करने को नही झाँकते !

क्या इस अँधेरी रात मे ही चल पडोगे ? अरे ! बेचारे बादल भी रो-रोकर तुम्हारे पथ को रोक रहे है !

क्या फिर भी न सुनोगे किसी की ?"

"पथिक ! रात-भर तो विश्राम ले लो। सुस्ता लेते, कुछ खा-पी लेते, फिर सुबह बड़े तड़के चल देते।

झोपड़ी मे स्नेह-भरा दिया टिमटिमा रहा है, इस कुटिया को आलोकित कर रहा है।

जलती हुई आग इस भीगी रात में कितनी सुहावनी जान पडती है !

आर, रात-भर ओढ़कर गरम-गरम बिस्तर मे पड़ रहना !

अरे ! तुम्हारा स्वागत करने को इस कुटिया के द्वार पर आँखे बिछी हुई है। क्या पथिक ! तुम इन सबको छोड़कर चल दोगे ?

चल दोगे ! चल दोगे !

परंतु क्या कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है ? इस अँधेरी रात में बरसते पानी मे तुमसे कौन मिलने आवेगा ?

चाँद भी तो अपने प्यारे के पास जा छुपा है, तारे भी बादल की झीनी चादर ओढ़े विश्राम कर रहे है।

नहीं ! . तो क्या तुम्हे इन मेढको की टर-टराहट प्यारी जान पड़ती है ?

किसी प्रियतमा की सुध आती हो। तुम चाहोगे, तो एकआध गाना भी सुना दूँगी !"

"आखिर जा कहाँ रहे हो ?

आँसुओ के खारे सागर को भी तुम पार करोगे !

टूटे दिलो के रुधिर के लाल सागर को भी रौदकर तुम्हारा दिल न पिघलेगा !

भावो का उठता हुआ बवडर, वह तूफ़ान, आँसुओ का वह उद्वेलित सागर भी क्या तुम्हारे मार्ग मे बाधक न हो सकेगे ?

तो इस वर्ष बरसात मे ही शरद् की रात आरंभ हो गई ?

और, वहाँ तो अँधेरा-ही-अँधेरा है ! किस दिल मे अँधेरा नही है ?

रो-रोकर आँखो की कालिमा से ही सब दूर अँधेरा कर दिया । क्या इसी से ही तुम आकृष्ट होकर जा रहे हो ?

क्या यह अँधेरा कम है ? इस दिए से भी अँधेरा बढ़ता देख पडता है !"

"हाँ ! अब मालूम हुआ—

तुम तो मेरी ही इस श्यामल चादर पर खेलोगे !

मेरी ही इन श्वेत फेनिल तरगों में क्रीड़ा करोगे ।

मेरे इस बिखरे अचल के पट पर के इन फूल-पत्तो मे आँख-मिचौनी खेलने की तो तुम्हे खूब सूझी !

मेरी ही इस वाटिका में तुम अपना दिल बहलाओगे न !"

"परंतु क्या तुम फिर कभी लौटकर भी मुझसे मिलोगे ?

इस अँधेरी रात की कालिमा मे रँगकर श्याम न हो जाना कि पहचाने न जा सको ।

और, इस बरसात मे भीगकर अपने दिल की गरमी न खो बैठना—यह सरसराती हुई हवा उसे ही तो चुराने का प्रयत्न कर रही है ।

प्यारे ! दादुरों की यह टरटराहट ! कहीं भुलावे में न पड जाना , ये तो हर साल यों ही मर-मरकर ज़िंदा होते है, और गला फाड़कर चीखते है, अपने पुनर्जन्म पर इतराते है ! नदी के तीर पर चकवा-चकवी की चीख सुनकर रो न पडना, उनके भाग्य में तो सुख लिखा ही नही है ।"

"तो पथिक ! तुम किसी की भी न सुनोगे ? अच्छा, जाओ—

परंतु राह मे दलदल हो रही होगी, और तुम्हे राह कौन बतावेगा ?

अरे ! बिजली भी तो नहीं चमकती, क्या वह भी शर्माकर बादल की ओट हो गई, या बेहोश होकर पृथ्वी की गोद मे जा पड़ी ?

तो अब किस दिल से कहूँ 'जाओ' ?

पथिक ! इस अँधेरी रात मे किधर चले ? क्या एक रात भी न ठहरोगे ? सुबह होने पर चले जाना* ।"

---

* इसे लिख चुकने पर जब इसे अपने एक साहित्यिक मित्र को बताया, तो उन्होने पूछा—"क्या रवि बाबू की Traveller, must you go ? नामक कविता (जो Gardener-नामक ग्रंथ में है) का आश्रय लिया गया है ?" सभव है, अन्य पाठक भी पूछें, अतएव मैं अपना वह उत्तर, जो उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर मे दिया था, लिख देना चाहता हूँ । मैंने कहा—"संभव है, इस उत्तर द्वारा अपने पठन की संकुचितता प्रकट कर दूँ, परंतु मुझे यह कहना पडेगा कि रवि बाबू की उपर्युक्त कविता पढ़ने का मुझे सौभाग्य नहीं हुआ है ।"—लेखक

मध्याधीरा

[श्रीयुत रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०]

(१)

थर-थर सद्यः भय - कंपमान
जननी - अंकस्थित शिशु - समान
अनिश - स्पंदित हृत्पिंड लिए
उर - अंतराल में वह अजान
जब प्रणय - भीख-हित एकाकी आया दृग - झोली फैलाकर,
लुट गया प्रिया का मान-कोष, उठ गए कमल - से कर सत्वर।

(२)

पर एँ! फिर क्यों बढ़ गई व्यथा,
जब अधर - वक्ष पर सर्प-यथा
अध - पोछी कज्जल - रेखा ने
क्षण में चुपके कुछ कही कथा?
आँखों की लाल डोरियों ने खिंच पल में पर्दा खोल दिया,
रस में विष घोल मिलन-सुख का तत्काल दिवाला बोल दिया।

(३)

दूसरे निमिष में सती बाल
उर - ज्वाला पर धृति - धूलि डाल
कुछ भेद - भरी मुस्काहट को
फुसलाकर होठों पर सँभाल
बोली यों ग्रीव - भंग करके सुवचन मृदु व्यंग्य - विनोद-सने—
"कहिए, किस रास-मंडली में कल थे अभिनेता नाथ, बने?"

ज़ार की अंत्येष्टि

[आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री]

(१)

आज लगभग ४० वर्ष से एशिया और योरप मे नवीन संघर्ष चल रहा है। इससे प्रथम एशिया भक्ष्य और योरप भक्षक था। जिस समय भारत को अँगरेज़ो ने पादाक्रांत किया, उस समय एशिया के सभी मुस्लिम देश—(अरब, तुर्किस्तान, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान आदि) जो दक्षिण-पश्चिम में फैले हुए है—निर्बल और अराजक थे। पूर्व की ओर के बौद्ध-राष्ट्र—चीन, जापान, स्याम आदि—प्रसुप्तावस्था मे थे। दक्षिण की ओर के छोटे-छोटे देश और द्वीप (फ्रांसिसी, डच और स्पेनिश) लोगों ने हड़प लिए थे। उत्तर में उजाड़ साइबेरिया देश था, जो रूस का काला पानी था। ऐसी परिस्थिति मे अँगरेज़ो ने अपने साम्राज्य के काँजी-हाउस मे भारत-रूपी दुधार गाय को बाँधकर मज़े में दूध पीना शुरू किया। उस समय अँगरेज़ो को यह धारणा भी नहीं थी कि यह सीधी-सादी गाय एशियाटिक राष्ट्रो के हरे-भरे चरागाहो में चरने के लिये कान-पूँछ हिलाएगी। इस परिस्थिति मे उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर पाँव फैलानेवाला रूस और दक्षिण की ओर अपना सिर ऊँचा उठानेवाला इँगलैंड, दोनो पहलेपहल प्रतिस्पर्द्धी हुए। इसके बाद चीन और जापान का युद्ध हुआ। योरपियन युद्ध-कला की सहायता से जापान विजयी हुआ, जिससे पूर्वी एशिया मे एक हलचल उत्पन्न हो गई। और, योरप को यह भय होने लगा कि अगर एशियाई राष्ट्र योरपियन युद्ध-कला सीख लेंगे, तो जन-संख्या के बल से वे योरपियन राष्ट्रों को तहस-नहस कर डालेंगे। इसके दस ही वर्ष बाद जापान ने रूस को पछाड़कर इस भय को सत्य कर दिया। योरप को मालूम होने लगा कि एशिया के पूर्व मे सूर्योदय हो गया है। जापान की इस विजय से 'गोरे राष्ट्र अजेय है', यह गर्व चकनाचूर हो गया। एशिया मे हलचल मच गई। जापान ख़म ठोककर योरपियन राष्ट्रों की पंक्ति में जा बैठा। स्याम अपना घर सुधारने लगा। ईरान मे शाह और जनता के बीच बखेड़े शुरू हो गए। टर्की मे तरुण-संघ स्थापित हो गया। इसके दस वर्ष बाद योरपियन महायुद्ध आ धमका।

पृथ्वी के नक्शे की ओर अगर हम देखे, तो प्रतीत होगा कि एशिया और योरप मिलकर २० पश्चिम रेखांश से पूर्व की ओर १९० रेखांश तक यानी २१० रेखांश लंबाई का और दक्षिणोत्तर भूमध्य रेखांश से उत्तर की ओर ७० अक्षांश चौड़ाई का एक प्रचंड भूमि खंड दिखाई पड़ता है। वास्तव मे योरप अमेरिका, आस्ट्रेलिया और आफ्रिका के समान कोई अलग भूखंड नहीं, प्रत्युत एशिया ही का पश्चिम की ओर बढ़ा हुआ एक खंड है। जिस प्रकार एशिया के दक्षिण में अरब, भारत और मलाया समुद्र में घुसे हुए प्रायद्वीप है, वैसे ही पश्चिम की ओर योरप भी प्रायद्वीप है। एशिया, आफ्रिका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका, इन भूखंडों मे बहुत प्राचीन काल से मनुष्य की आबादी का पता चलता है। परंतु योरप की आबादी २½-३ हज़ार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। उसका रक़बा भी एशिया के एक मामूली देश के बराबर है, परंतु वह जल-प्रलय, भूडोल और ज्वालामुखी आदि भौतिक उत्पातो से बना और एशिया से पश्चिम की

ओर गए हुए आर्य और तूरानी आक्रमण-कारियों से बसा हुआ है । इस नगण्य भूखंड में इतनी विचित्रता, इतनी उधेड़-बुन और इतनी गड़बड़ बनी रही है कि संसार के इतिहास के १० में से ९ पृष्ठ इन्हीं से भर गए हैं । इस विचित्र देश के छोटे-छोटे राष्ट्रों ने पृथ्वी-भर के मनुष्यों के आधिभौतिक और आध्यात्मिक जीवन को पलट दिया है ।

आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री

हिंद-महासागर के बहुत-से द्वीप अँगरेज़ों के अधिकार में आ गए । वहाँ पर इन्होंने बहुत बड़े-बड़े कारख़ाने और खेती-बारी फैला दी है । आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड भी अँगरेज़ों के डोमेनियन हैं । जर्मनी को पेट भरने के लिये कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी । परिणाम यह हुआ कि महायुद्ध का सूत्रपात हुआ । इस महायुद्ध ने योरपियन राष्ट्र के संघ के कंकाल को खोखला बना दिया । चूँकि इस युद्ध में इँगलैंड और फ्रांस को एशिया से बहुत कुछ मदद मिलनी थी, इसलिये बहुत मदद ली गई । और, एशियाटिक लोग योरपियन लोगों से कंधे से कंधा मिलाकर लड़े । इसका

परिणाम यह हुआ कि लीग ऑफ् नेशन्स मे एशिया के राष्ट्रों की कुर्सी योरप के राष्ट्रों की कुर्सी के बराबर रख दी गई। इस प्रकार चीन-जापान-युद्ध और रूस-जापान-युद्ध तथा गत योरपियन महायुद्ध, इन तीन सीढ़ियों पर चढकर एशिया योरप का मित्र बन बैठा, और योरपियन राष्ट्रो की बराबरी करने लगा।

इससे एशिया-खंड मे नया युग शुरू हो गया। चूँकि योरप के बडे-बडे राष्ट्र लडकर कमज़ोर और छोटे-छोटे राष्ट्र आवारागर्द हो गए थे, इसलिये एशिया के नव-जाग्रत् लोगो को सुगठित होने का बहुत मौक़ा मिला। योरप के राष्ट्र अंतः-कलह मे लगे हुए थे। इँगलैंड ने सोवियट रूस के लिये योरप के फाटक बंद कर दिए थे। इस पर रशियन कम्युनिस्ट लोगों ने भारतवर्ष और चीन मे अँगरेजो के विरुद्ध बलवे उभारने शुरू कर दिए। इँगलैंड और फ्रांस ने जर्मन की जल-सेना के हाथ-पाँव काट डाले, तो जर्मन ने अपने हवाई जहाजों से आकाश को पाट दिया। अब रूस और जर्मन ने सलाह करके ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देने का इरादा कर लिया है। जर्मनी ने अपने क़र्ज़ के विषय मे और सोवियट रूस ने अपने मुक्त व्यापार के लिये तक़ाज़े कर-करके इँगलैंड, फ्रांस और इटली, इन तीनो दोस्तो के बीच मे कलह की चिनगारी छोड दी। इस महायुद्ध से जर्मन के सभी उपनिवेश छिन गए, इसलिये व्यापार के सिवा उसका कोई ध्येय नहीं रह गया। मुल्क फ़तह करने का पुराना ढर्रा, मालूम होता है, हमेशा के लिये गया। जिस प्रकार बवंडर से वायु शुद्ध होती है, उसी प्रकार इस महायुद्ध ने योरप और एशिया को सम-संयोग का रास्ता दिखला दिया है।

रूस की 'पोज़ीशन' बिल्कुल ही निराली है। रूस लगभग तीन चौथाई एशिया में है, इसलिये रूस के नवीन राष्ट्र ने अपने को एशियाई घोषित करके योरप को परेशान कर दिया है। इस वक्त आधे से अधिक एशिया का खंड रूस के अधिकार मे है। 'जार' के जमाने मे रूस की हालत बहुत बिगडी हुई थी। रूस का तमाम प्रांत उजाड, दरिद्र और अराजक था। परतु बोल्शेविक क्रांति ने रूस मे एक ऐसा नवीन जीवन उत्पन्न कर दिया, जिससे योरप के सारे राष्ट्र थर्रा उठे। और, उन्होंने अपने अद्भुत कार्य तथा शक्ति से लोगो को दिन-प्रति-दिन चकित करना शुरू कर दिया। वे लोग ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, भारत, चीन और तिब्बत मे अपने हाथ-पाँव फैला रहे है। उन्होने अपनी रेलो का छोर पेसेफिक महासागर तक ला पहुँचाया। वे दक्षिण की ओर अफ़ग़ानिस्तान और ईरान के किनारे-किनारे हिंद-महासागर के किसी बंदरगाह तक पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं। सबसे बडी बात जो रूस ने की है, वह धार्मिक सत्ता को राजनीति से दूर कर देने की है। अगर ग़ौर से देखा जाय, तो रूस की राज्य-क्रांति एशिया के लिये एक अमर वरदान है।

(२)

भयानक सर्दी थी। सब तरफ बरफ़-ही बरफ़ नज़र आती थी। मास्को से १०० मील दूर, एक गाँव के किनारे, सशस्त्र सैनिको से घिरा हुआ एक दल आया, और चुपचाप खडा हो गया। चाँदनी रात थी, और उस मीलों लंबे-चौडे मैदान में सफेद बर्फ दमक रही थी। लंबे और ऊँचे-ऊँचे वृक्ष काले-काले बड़े सुहावने प्रतीत होते थे। कुल क़ैदियों की संख्या २०० थी। और, जो सेना उन्हे घेरे हुए थी वह अनुमानतः १००० की होगी। सेना का अधिपति एक पुराना जेनरल था। वह बूढ़ा आदमी था। वह अपना रोबीला चेहरा लिए, अकडा हुआ घोड़े पर सवार था। उसने चमडे के दस्ताने पहने हुए हाथों से घोडे की रास खींची, और सेना को पंक्ति-बद्ध होकर खड़े होने की आज्ञा

दी। प्रत्येक सैनिक पत्थर की मूर्ति के समान अचल था। उनकी बंदूकों के कुंदे चाँदनी में चमचमा रहे थे। सेना-नायक ने सैनिकों को व्यूह-बद्ध करने के बाद क़ैदियों को एक दोहरी पंक्ति मे खड़े होने की आज्ञा दी। क़ैदी भी सैनिक थे, और वे सैनिक-वर्दियाँ पहने हुए थे। सेना-नायक ने कड़ककर आज्ञा दी—"तुम लोगों को 'बोल्शेविक' होने के अपराध मे अभी गोली मार दी जायगी।" प्रत्येक व्यक्ति निश्चल था। सेनापति की आज्ञा का किसी ने विरोध नहीं किया। सेनापति की दूसरी आज्ञा थी—"अपने-अपने पैरों के पास अपनी-अपनी क़ब्रें खोद लो।" क़ैदियों ने कंधों से कुदालियाँ उतारकर गढ़े खोदने शुरू कर दिए। सैनिक चुपचाप यह सब दृश्य देख रहे थे। उस भयानक सर्दी मे इतना कठिन परिश्रम करने से क़ैदियों के मत्थे से पसीना बह चला। जब कुल क़ब्रें खुद चुकीं, तो सेनापति ने हुक्म दिया—"हर कोई अपनी अपनी वर्दियाँ उतारकर रख दे, क्योंकि वे सरकारी सिपाहियों के काम आवेंगी। गोली लगने से वर्दियों मे छेद होकर उनके ख़राब हो जाने का डर है।" क़ैदियों ने चुपचाप अपनी वर्दियाँ उतारकर रख दीं। उनके सफ़ेद शरीर शीशे के माफ़िक दमकने लगे। वे काँप रहे थे, किंतु भय से नहीं, शीत से। सेनापति ने क्षण-भर उनका निरीक्षण किया, और हुक्म दिया—"तुम लोगों में जो बोल्शेविक सिपाही न हो, वह इस पंक्ति से हटकर अपने घर चला जा सकता है, उसे मैं स्वतंत्र करता हूँ।" क़ैदियों ने अपने आस-पास खड़े हुए मित्रों और बांधवों को नीरव दृष्टि से देखा। उनमे बहुत-से पिता-पुत्र, चचा-भतीजे और सगे-संबंधी थे। इसके बाद उन्होने सामने सोते हुए गाँव की ओर दृष्टि डाली, जहाँ उनकी प्यारी पत्नियाँ और बच्चे सो रहे थे। और यह नहीं जानते थे कि उनके पतियों पर क्या बीत रही है। फिर उनकी दृष्टि मीलों तक लहराते हुए खेतों पर दौड़ गई, जिनको उन्होंने जोता और बोया था, और जो अब पककर खड़े थे। उनकी दृष्टि सब तरफ़ दौड़कर फिर एक दूसरे को देखने लगी, और ज़मीन मे झुक गई। सेनापति ने फिर पुकारा—"क्या तुममें कोई ऐसा है, जो बोल्शेविक नहीं?" क़ैदियों ने एकस्वर होकर जवाब दिया—"हम लोग बोल्शेविक हैं।" जेनरल पूरी ऊँचाई से अपने घोड़े पर तनकर बैठ गया। उसने उन खुदी हुई क़ब्रों को, क़ैदियों के नंगे शरीरों को और फिर उस सन्नाटे की रात को एक बार आँख भरके देखा। उसके बाद उसकी दृष्टि अपने सैनिकों की ओर घूमी। उसने सैनिकों को संकेत किया। सैकड़ों बंदूकें एक साथ गरज उठीं। उस चाँदनी रात में, उस भयानक शीत में खड़े हुए वे २०० नरवर, जिनके शरीर से ख़ून के फ़व्वारे बहने लगे थे, अपनी खोदी हुई क़ब्रों मे झुक गए। सेनापति की आज्ञा से सेना ने आगे बढ़कर, उन्हे ठोकर मारकर क़ब्रों मे ढकेल दिया, और जल्दी-जल्दी उन पर मिट्टी डाल दी गई। उनमें से बहुत-से लोग अभी जीवित थे, और जीवित ही ज़मीन में दफ़न कर दिए गए थे।

(३)

इसके कुछ ही दिन बाद तख़्ता उलट चुका था। पिट्रोग्रेड से २००० मील दूर साइबेरिया-प्रदेश में, 'टोबोलस्क' मे, २२ एप्रिल, १९२२ को, लगभग १० बजे दिन को, एक अद्भुत और वीर सरदार धीरे-धीरे घुसा। उसके साथ १५० चुने हुए घुड़-सवार थे। नगरवासियों ने देखकर परस्पर संकेत मे बातें कीं, पर 'कौन और क्यों?' इसका हाल कोई नहीं जानता था।

सवारों का यह दल सीधा नगर के प्रांत भाग मे स्थित एक पुराने और विशाल मकान के खँडहरों में घुस गया। सभी जानते थे, उस मकान में कुछ

राजनीतिक अपराधी एक वर्ष से क़ैद है। परंतु थोड़ी ही देर में नगरवासियों ने आश्चर्य से देखा, ख़ुद ज़ार और उनका परिवार बंदी की भाँति उन सवारों से घिरा हुआ उस मकान से बाहर निकला, और इकटेरिबर्ग-गाँव की तरफ़ चल दिया।

(४)

सरदार का नाम 'वेसली-बीच-जे कोलिन' था। वह सोवियट सरकार का प्रधान व्यक्ति था। ज़ार कहाँ है, कैसा है, इसके विषय में कोई नहीं जानता था। वह एक वर्ष से गुप्त क़ैद था। उस गुप्त क़ैद से उसे निकाल 'जेकोलिन' ने उस गाँव में रख दिया। यह गाँव सोवियट दल का प्रधान अड्डा था। ज़ार इस गाँव के एक साधारण मकान में अपने परिवार तथा अन्य मनुष्यों-सहित क़ैदी की तरह रहने लगे। इन पर 'ज्यूरो बस्की' का पहरा था।

(५)

२५ जुलाई की आधी रात का समय था। २ बजे 'ज्यूरो बस्की' आया, और उसने ज़ार के दरवाज़े को खटखटाया। द्वार खुलने पर उसने ज़ार को कपड़े पहन लेने का हुक्म दिया। इसके बाद ज़ार तत्काल एक तहख़ाने में ले जाए गए। उनके स्त्री-बच्चे भी बुला लिए गए। उस कमरे में कुल ११ मनुष्य हो गए—(१) ज़ार, (२) ज़रीना, (३) तेरह वर्ष का रोगी पुत्र, (४-७) चार पुत्रियाँ, (८) एक गृह-चिकित्सक, (९) दासी, (१०) रसोइया और (११) नौकर। इस तरह ११ मनुष्य थे। ग्यारहों मनुष्यों के पीछे 'ज्यूरो बस्की' था, और उसके पीछे १२ आदमी और थे। सभी चुप थे। 'ज्यूरो बस्की' ने इन ११ आदमियों के दो दल करके अपने सामने खड़ा कर दिया। राजा, रानी और राजकुमारों के लिये कुर्सियाँ मँगवाई गईं। खिड़कियों से पहरेदार लोग भयभीत मुद्रा से जो कुछ होनेवाला था, उसे देख रहे थे।

'ज्यूरो बस्की' ने कुछ भी शिष्टाचार न करके अपना आटोमेटिक पिस्तौल बाहर निकाला, और ज़ार को निशाना बनाकर दन से चला दिया। क्षण-भर में ही ज़ार मरकर ज़मीन में लुढ़क गए। इसके दूसरे ही क्षण बारह पिस्तौलों ने एकदम अग्नि-ज्वाला उगल दी। सभी बंदी क्षण-भर में मार डाले गए। कमरे में पिस्तौलों की प्रलय-गर्जना और मरते हुओं की चीत्कार के बाद सन्नाटा छा गया। स्थान धुएँ से भर गया। यह हृदय-द्रावक और भयानक दृश्य देखकर सिपाही भी भयभीत हो गए। ज़ार का छोटा पुत्र 'एलेक्स' अपने माता-पिता के मृत शरीर पर गिरकर, फूट-फूटकर रोने लगा। 'ज्यूरो बस्की' ने तत्काल उसे दूर हटाया, और गोली मार दी। गोली खाकर भी वह मरा नहीं, सिसकने लगा। ज्यूरो बस्की ने एक सिपाही को संकेत किया। उसने भारी-भारी पैर आगे बढ़ाए, और अपनी संगीन उसके कोमल कलेजे में भोंक दी।

उस कमरे की दीवारें रक्त और मांस के छीछड़ों से भर गई थीं। प्रातःकाल चद्दरें लाई गईं। उनमें मुर्दे लपेटे गए, और बाहर खड़ी हुई मोटर-लारी में डाल दिए गए। ये मुर्दे जंगल में ले जाए गए। वहाँ उन्हें जला दिया गया, जिससे उनके प्रेत का भी अस्तित्व न रहे।

इस प्रकार शताब्दियों का अत्याचारी सम्राट् अनंत में मिल गया। और, जनता ने उसे ख़ून नहीं, जन-कल्याण के साधक यज्ञ की आहुति बताया।

हिंदी-गद्य-शैलीकार पं० बालकृष्ण शर्मा

[प्रोफ़ेसर पं० सद्गुरुशरण अवस्थी एम्० ए० ।]

बालकृष्ण शर्मा उन साहित्य-कुबेरो मे है, जो अपना सरस्वती-कोप बिखेर देना जानते है, उसका उपयोग करना नही जानते। यही कारण है कि समीक्षकों की दृष्टि अभी बालकृष्ण शर्मा के ऊपर एक उत्तम गद्य-लेखक के रूप मे नही पड़ी। उन्हे केवल कवि के ही रूप मे लोग जानते हैं, और उस रूप मे भी उनका उचित परिचय अभी समीक्षको को स्पष्ट नही हुआ है। इसका कारण केवल यह है कि बालकृष्ण शर्मा ने कभी अपनी पद्य या गद्य कृतियो के संकलन* छपाने की ओर ध्यान नही दिया। यदि उनकी कहानियो का संग्रह निकल गया होता, यदि उनके जोशीले लेखो का सामूहिक रूप आलोचको के समक्ष आ गया होता, यदि उनके मर्म-भेदी कोमल भावनाओ से ओत-प्रोत गद्य-खंडो का संकलन हिंदी-संसार के सामने होता, तो बालकृष्ण की उपेक्षा करना किसी भी इतिहासकार के लिये असभव था।

शैली ही व्यक्ति का प्रतिरूप है, यह जितना बालकृष्ण के लिये सत्य है, उतना कदाचित् ही किसी अन्य लेखक के लिये सत्य होगा। कहीं भी, किसी भी परिस्थिति मे, उनके वाक्य-समूहो का एक खंड बड़े स्पष्ट शब्दो मे उनका विज्ञापन करता है। उनकी सारी कृतियों मे जो एक लगन है, एक धुन है, एक प्रेरणा है, एक स्थायी भाव है, वही उनकी शैली मे केवलता का विधायक है। यह प्रायः सभी लेखको मे देखा गया है कि जब वे कोई तात्त्विक, तार्किक विवेचन करते हैं, तो छोटे वाक्यो मे, प्रश्नात्मक प्रणाली मे एक के बाद एक चितना का निष्कर्ष समक्ष रखते चले जाते है। वे हृदय से बिलकुल हटकर बुद्धि के क्षेत्र मे ही विचरण करते है। उनमे तर्क का रूखापन आ जाता है। यह बात बालकृष्ण मे नही है। उनके वाक्य चाहे छोटे हो या बड़े, वे रागात्मकता का दावन नही छोड़ते। उनकी विवेचन-प्रणाली मे पूरी स्फूर्ति होती है। उसमे हृदय और मस्तिष्क का पूर्ण सोहाग रहता है।

बालकृष्ण शर्मा ने बड़ी सजग क्षिप्रस्पंदन-शील तथा कोमलतम स्पर्श से सिहर उठनेवाला हृदय पाया है। ससार की कोई भी हलकी-से-हलकी ध्वनि उनको प्रतिध्वनित कर सकती है। अभिप्राय यह कि बालकृष्ण मे कवि बड़ा प्रबल है। उनके गद्य लेखो का स्वरूप भी यही कवि सँवारा करता है।

* लेखक क्षमा करेंगे, यदि हम कहे कि इसमे सबसे अधिक दोष आपका ही है। आप बालकृष्ण-जी के मित्र हैं और सहृदय प्रशंसक भी, यह काम आपको ही कर डालना चाहिए। गंगा-पुस्तकमाला इन संकलनों को छापने को तैयार है।—सुधा तथा गंगा-पुस्तकमाला-संपादक

मनुष्य राग-द्वेष का कंदुक है। जिसकी राग-द्वेष-भावना जितनी ही परिष्कृत है, उतना ही वह ऊँचा है। इस परिष्कार के मूल मे भावुक का अभ्यास है। भावुक प्राणी स्वार्थ और अपनेपने के कटघरे से जब अपने राग-द्वेष को निकालकर समष्टि की पावन भूमि पर चढ़ा ले जाता है, तो उसके पवित्र स्वरूप को पहचानने लगता है। संसार-द्वेषी उसके द्वेष का लक्ष्य और ससार-पूज्य उसके अनुराग की प्रतिमा बन जाता है। बालकृष्ण का सारा साहित्य-स्वरूप राग-द्वेष की इसी पवित्र प्रेरणा की सृष्टि है, और यही उनका व्यक्तित्व भी है।

नीचे एक गद्य खंड उनके 'पधारो देव'-शीर्षक लेख से दिया जाता है। महात्मा गांधी के प्रति कैसे भक्ति-पूर्ण उद्गार है—

"आओ, तीस करोड़ जनगणो के अधिनायक, पधारो। इस अभागे प्रांत को अपने अकपित चरणो की रज से पवित्र करके यहाँ की जनता मे आत्मविश्वास और स्वावलंबन का भाव उत्पन्न करने के लिये आओ। अपनी अमृत वाणी से हमारे मृतप्राय हृदयो को नव-जीवन के स्पंदन से कंपित करने के लिये आओ। देव, राम और कृष्ण का क्रीडा-क्षेत्र यह प्रांत आज तुम्हारे स्वागत के लिये उत्सुक है। अपने देवता को रिझाने के लिये हमारे पास कोई साधन नही है। हम निःसाधन है, निर्धन है, निस्तेज है। तुम्हारे तपःपूत हाथो मे हम क्या भेट धरे? हम तो इस योग्य भी नही है कि तुम्हारी चरण-रज को अपने कलुषित माथे पर रख सके। यह आत्म-ग्लानि की अनुचित भावना नहीं है, जो हमे ऐसा कहने को विवश कर रही है।"

हिंद-प्रांत के दौरे मे महात्माजी कानपुर पधारनेवाले थे, उसी स्वागत मे यह लेख लिखा गया है। भाषा कैसी भावमयी है, और प्रत्येक वाक्य मानो श्रद्धा के फूल बिखेरता चलता है। गुणो के दर्शन पर बालकृष्ण उत्सर्ग हो जाते है। वह स्वय वेग-संपन्न है, अतएव सर्वत्र ही वह वेग, साहस और निर्भीकता के पुजारी हैं। उन्हे टिमटिमाते हुए तारो की अपेक्षा आकाश को एक क्षण के लिये आलोकित करके प्रकाश-पंक्ति विदीर्ण करता हुआ विलीयमान उल्का अधिक पसंद है। प्रत्येक असाधारण शार्यवाले व्यक्ति के चरणो मे बालकृष्ण नत-मस्तक श्रद्धा की पुष्पांजलि बिखेरने के लिये प्रस्तुत रहते है। उनके 'वे'-शीर्षक लेख का एक खंड प्रताप से दिया जाता है—

"अनुत्तरदायी! जल्दबाज़! अधीर आदर्श-वादी! लुटेरे! डाकू! हत्यारे! अरे ओ दुनियादार! तू उन्हे किस नाम से, किस गाली से विभूषित करना चाहता है? वे मस्त है। वे दीवाने है। वे इस दुनिया के नहीं है। वे स्वप्नलोक की वीथियो मे विचरण करते है। उनकी दुनिया मे, शासन की कटुता से, मा धरित्री का दूध अपेय नही बनता। उनके कल्पना-लोक मे ऊँच-नीच का, धनी-निर्धन का, हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं है। इसी सम

भावना का प्रचार करने के लिये वे जाते हैं। इस दुनिया मे उसी आदर्श को स्थापित करने के लिये वे जीते है। दुनिया के पठित मूर्ख-मंडली उनको गालियाँ देती है। लेकिन यदि सत्य के प्रचारक गालियो की परवा करते, तो शायद दुनिया मे आज सत्य, न्याय, स्वातंत्र्य और आदर्श के उपासको के वंश मे कोई नामलेवा और पानीदेवा भी न रह जाता। लोक-रुचि अथवा लोकोक्तियों के अनुसार जो अपना जीवन यापन करते है, वे अपने पड़ोसियो की प्रशंसा के पात्र भले ही बन जायँ, पर उनका जीवन औरो के लिये नहीं होता। संसार को जिन्होंने ठोकर मारकर आगे बढाया, वे सभी अपने-अपने समय मे लांछित हो चुके है। दुनिया खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने तथा उपभोग करने की वस्तुओं का व्यौपार करती है। पर कुछ दीवाने चिल्लाते फिरते है—'सर-फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है।' ऐसे कुशल, किंतु औघड़ व्यौपारी भी कहीं देखे हैं? अगर एक बार आप-हम उन्हे देख ले, तो कृतकृत्य हो जायँ।"

भक्ति-प्रदर्शन मे बालकृष्ण की भाषा बड़ी वेगवती और शक्ति-संपन्न हो जाती है। उनकी उर्वरा कल्पना का शक्तिशाली सोपान भावना को ऊपर उठाने मे बड़ा योग देता है। परंतु बालकृष्ण जितने कुशल निर्मायक है, उतने ही क्रूर संहारक भी। स्थापना और ध्वंस साथ साथ उसी वेग से चलते है। बुत-परस्ती और बुत-शिकनी उनके लिये एक सी हैं। द्वेष के प्रदर्शन मे वही वेग है, जो राग के निदर्शन मे। जितनी फुरती के साथ बालकृष्ण मोटे-मोटे सुगंधित पुष्पों की झड़ी अपने आराध्य देव पर बाँध देते है, उतने ही वेग से तीखे बाणो की वर्षा भी वह मिथ्या प्रचारक पर करते है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

"बंबई से एक चिथड़ा अखबार निकलने लगा है। यह चिथडा मराठी मे भी निकलता है, और हिंदी मे भी। इस पत्र का एक नियम है। वह यह कि यह पत्र सदा सर्वथा महात्मा गांधी को गालियाँ दिया करता है। मै इस पत्र की बेहूदगियो पर कभी ध्यान नहीं देता। कई बार इसके छिछोरेपन के ऊपर मैंने लिखने का विचार किया। मैंने अभी कुछ नहीं लिखा। अब देखता हूँ कि इस बार फिर इस सड़े-गले चिथड़े ने महात्माजी पर आक्षेप किए है। वे नितांत असभ्यता-पूर्ण, गलतफहमी फैलानेवाले और अकारण हैं। इस पत्र के सर पर गाधी-विद्वेष का भूत सवार है। भूत के उतारने की दवा है मिरचे की धूनी और करारा तमाचा। सो भाई, मै आज वही प्रयोग कर रहा हूँ। भूत-व्याधि-ग्रस्त यह पत्र अभी कल का लौंडा है। इसलिये मै ज़रा सोच-समझकर ही तमाचे जड़ूँगा। मुझे यह भी तो खयाल है न, कि कहीं लड़के के गाल बहुत अधिक सुर्ख न हो जायँ।"

यह अवतरण जिस लेख से लिया गया है, उसका नाम है 'मिरचे की धूनी और तमाचा', और इसके लेखक का नाम है श्रीमान् तड़ातड़ ओझा। बालकृष्ण मे उचित शीर्षक के चयन करने की अनुपम शक्ति है। इस अव-

तरण के सबंध मे यह न भूलना चाहिए कि बालकृष्ण का उस व्यक्ति के साथ कोई निजी विरोध नहीं, जिस पर उन्होंने उक्त लेख मे आक्रमण किया है। महात्मा गांधी की निदा के कारण बालकृष्ण ने उनकी खबर ली है। यह द्वेप उनका स्वार्थगत न होकर निःस्वार्थ है।

इस शैली मे व्यग्यात्मकता का आश्रय नहीं लिया गया, अन्यथा प्रयोगो की अभद्रता बचाई जा सकती थी। भावना के वेग से भाषा की घड़घड़ाहट दूर से सुन पड़ती है। उसकी कर्कशता रौद्र रूप धारण किए है। उर्दू, हिंदी, सस्कृत, जैसे शब्द आए है, प्रयोग किए गए है। इस अवतरण अथवा ऊपर के अवतरणो से यह न समझना चाहिए कि बालकृष्ण प्रकृति से औघड बाबा की प्रसाद वृत्ति और दुर्वासा की कोप-वृत्ति लेकर पदा हुए है। उनमे वास्तव मे औघड बाबापना और दुर्वासापना नहीं है। उनके राग-द्वेष के आलंबन खूब सोचे-विचारे, समझे-बूझे है। शैली मे जो बहुत तीव्र गति है, और जो अनुपम दंशन-शक्ति है, उसका कारण है उनका औरो की अपेक्षा अधिक निर्मल और सहसा झंझना जानेवाला हृदय। फिर भी 'मिरचे की धूनी और तमाचा'वाली उनकी शैलो उनके गौरव की वस्तु नहीं। है भी यह अपनी शैली का अकेला लेख। अतएव इसे अपवाद ही समझना चाहिए।

नीचे उनकी एक कहानी का आरंभिक अश दिया जाता है—

"मेरे दो नटखट बच्चे है। ऐसे नटखट, जैसे बंदर। मेरे बच्चे बड़े भोले है। ऐसे भोले, जैसे जवानी की उमंग। मेरे बच्चे बड़े कठोर है। ऐसे कठोर, जैसे सालिगराम की बटिया। मेरे बच्चे बड़े स्नेहार्द्र है। ऐसे स्नेहार्द्र, जैसे स्तन पीनेवाले बच्चे के दूध-भरे मुँह की सोंधी-सोंधी सुगंध। मेरे बच्चे बडे तगड़े है। ऐसे तगडे, जैसे पार्थ-सारथी के अजानु बाहु। मेरे बच्चो की आँखो मे सपना रहता है। इस तरह, जैसे छोटे-छोटे घोसलो मे चिरैयाएँ रहती है।

"मेरा एक बालक बड़ा लंबा है। ऐसा लंबा, जैसे चीड़ का वृक्ष। मेरा दूसरा बालक ज़रा ठिगना है। ऐसा ठिगना, जैसे बरगद का गुट्ठल झाड़ी। मेरे बच्चो के दिल है। उनका कलेजा सवा हाथ का है। हौसले बढ़े हुए है। वे भोले भंडारी यह नहीं जानते कि आजकल यहाँ दिल का हौसला अभिशाप बन आता है। उन्हे क्या? जब जवानी का जोश बल्लियो उछलता है, तब वे दोनो बच्चे मुझे घेरकर खड़े हो जाते है। और लगते है धीगा-मुश्ती करने। अपनी उमंग मे वे कभी गाते है, कभी रोते हैं, कभी हँसते है, और कभी घुम-सुम हो जाते है।"

कैसी आलंकारिक भाषा है। कैसा प्रवाह है। कैसे छोटे-छोटे, किंतु चोट पहुँचानेवाले वाक्य है। अलंकारो की योजना मे नई उद्भावनाएँ की गई है। कहानी पर युग-धर्म का प्रभाव है। वह कवि की लेखनी-प्रसूत है, यह स्पष्ट मालूम होता है। छिपा हुआ भाव वही 'राग' है। देश-भक्ति उसका आलंबन है। बच्चे केवल

प्रतीक-मात्र है। नीचे उनकी 'राखी'-नामक गद्य-खंड का प्रारंभिक अंश उद्धृत किया जाता है—

"कच्चे सूत का यह फंदा आज फिर मुझ निष्किंचन को वत्सल-स्नेह के सूत्र मे बाँधने के लिये आ गया है। बड़ी प्रतीक्षा के बाद आज तुम्हारा अनुराग-स्निग्ध लिफाफा मिला। राखी-पूर्णिमा आई, और सूनी ही चली गई। दिन-पर-दिन बीतते गए। मैने समझा कि चिर-घोषित मंजुल भाव अब शायद विस्मृत की काली चादर ओढ़कर सो गया है। दिल मे तड़पन थी, वेदना थी, अन्यमनस्कता थी, विषाद-भावना थी। पर मेरे मुख पर सूखी हँसी थी, उदासीनता का बहाना था। इतने ही मे एक दिन, जगत्पति के अकल्पित आशीर्वाद की तरह, तुम्हारा ललित लिफाफा मेरे निराश, किंतु अति प्रतीक्षित हाथो पर आन गिरा। बहिना रानी, सच कहता हूँ, उस समय यह मेरा मूर्ख हृदय कोलाहल कर उठा। तुम क्या जानो पगली, कि तुम्हारे 'प्रिय भैया' के हृदय मे कौन-सा महासागर लहराया करता है? हिय के कपाट खोलकर अंतस्तल का यह प्रचंड हाहाकार मै तुम्हे कैसे दिखलाऊँ? जाने दो; उसकी जरूरत ही क्या है? मेरे बड़े भाग्य कि इतनी अवधि के उपरांत तुम्हे अपने एक नगण्य भाई की याद तो आई। मै उलाहना नही देता। मुझे उलाहना देने का हक ही क्या है? उपालंभ तो वह भाग्यशाली दे, जिसे तुम्हारे प्रेम-भाव को अधिकार-पूर्वक प्राप्त कर सकने का विश्वास हो। मै तो सचमुच अपना सौभाग्य समझता हूँ, जो छठे-चौमासे तुम्हारे मानस-दिङ्मंडल मे मेरी छाया पड़ जाती है। मत समझो रानी कि मै अपनी वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ हूँ। मेरे पास और धधा ही कौन-सा है। चौबीसो घंटे अपनी भावनाओ का विश्लेषण किया करता हूँ।"

कैसा रसात्मक वर्णन है। कितना तन्मयता है। इस स्थल पर बालकृष्ण की लेखन-प्रणाली बड़ी निखरी हुई, प्रांजल और उलझा लेनेवाली है। प्रेम के स्वरूप-निरूपण मे तो उनका हृदय ही बोलने लगता है। उसकी भाषा विचित्र हो जाती है। एक सुखद भावना का संचार हो जाता है। शब्दो के सुहावने तद्भवरूप इस शैली मे दिखाई देते है। ब्रज तथा अवधी के प्यारे शब्दो का प्रयोग भी दिखाई देता है।

नीचे का अवतरण इनका सबसे नवीन है। यह उनके 'झनन-झनन'-नामक लेख से लिया गया है—

"वह अभी ताजा ही आया था—जेल से, इसके मानी यह कि वह भी गांधो के गधो मे से एक था। तुम अगर बाबू हो, यानी यह कि तुम अगर दर्जी के बनाए हुए आदमी (Tailor-made man) हो, तो तुम उसे समझ न सकोगे। इसके अर्थ यह नही है कि तुम्हारी अक्ल चरने गई है, न इसके यही अर्थ है कि तुममे अक्ल है ही नही। नही। तुममे अक़्ल है, और जरूर है, पर हे दर्जी-निर्मित मुकप्पड़ जीव, तुम उसे समझ न सकोगे, जो

अभी ताज़ा जेल से आया है। सुरख़ाब के पर थोड़े ही लग जाते हैं उनके, जो जेल से आते हैं? वैसे ही मामूली इंसान, दो पैर के जंतु होते हैं वे, जो जेल जाते और वहाँ से आते हैं। पर यार, नको भी एक धज होती है, इतना तो मान ही लो। वे बेवक़ूफ़ हैं, कम-अक्ल हैं, बौड़म हैं, निर्धन हैं, दाल-आटे के भाव का उन्हें पता नहीं है। अच्छा। सही। अगर चाहो, और दस-बीस सुना लो। लेकिन मैं यह कहता हूँ कि तुम अगर उन्हें समझने की कोशिश करोगे, तो तुम्हारा कुछ बिगड़ न जायगा।"

बालकृष्ण शर्मा के जितने अधिक लेख 'प्रताप' से अन्य पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत किए गए हैं, उतने और किसी भी हिंदी-संपादक के कदाचित् ही किए गए होंगे। 'प्रताप' इनसे गौरवान्वित है। बालकृष्ण में न तो भाषा-संबंधी हकलाहट है, और न शैली का कनफुस्सीपना। वह प्रखर और वेग-संपन्न है। उसका क्रांतिकारी विलोड़न दूर से सुनाई पड़ता है। इस युग के गद्यकारों में बालकृष्ण शर्मा काफ़ी स्पष्ट हैं। इनके बड़े शब्द और बड़े-बड़े वाक्य स्वयं फिसलते हैं, उन्हें धक्के लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पंतजी की कविता

[श्रीयुत पं० सुबोधकुमार शर्मा]

प्रसिद्ध कलाकार रीफल का कथन है—"सच्चे कलाकारों का जीवन ही कलामय होता है, उनकी प्रत्येक बात कला-पूर्ण होती है।" काव्य मे कला का यथार्थ रूप क्या है, इस विषय पर बड़ा मतभेद है। कविता मे जो जीवनी शक्ति है, आनंद की मात्रा है, उसका सभी प्राणी अनुभव करते है। किंतु उस जीवनी शक्ति के गर्भ मे जो रहस्य छिपा है, उसे कोई क्या जाने ?

न-जाने कहाँ से कवि के अतस्तल मे दिव्य प्रकाश होने लगता है ? हरएक प्राणी के भाग्य में वह नहीं बदा। प्रतिभाशाली पुरुष भी उससे वचित रहते है। रवि बाबू ने 'निर्झरेर स्वप्नभंग'-नामक कविता मे कहा है—

"बहु दिन परे एकटी किरण
गुहाय दिए छे देखा,
पडे छे आमार आंधार सलिल
एकटि कनक - रेखा।"

बहुत दिनो मे एक किरण दिखाई पड़ी है। हमारे अंधकारमय सलिल (अतर) मे एक कनक-रेखा आ पडी है। न-जाने किस भाँति यह किरण चुपचाप आ जाती है; इसके आते ही कवि हृदय थिरकने लगता है—"थर-थर करि कॉपिछे वारि।" वारि थर-थर कॉपने लगता है। शायद इसी किरण के नूतन प्रकाश को पाकर गौतम बुद्ध हो गए थे। इसी नव-ज्योति के आगम से आह्लादित हो सूफी सत शम्स तबरेज़ ने कहा था—"मै वह एक है, जब से चार नेत्र हुए है, स्त्री पुरुष का भेद जाता रहा है।"

❀ ❀ ❀

आधुनिक हिंदी-कविता मे पतजी का क्या स्थान है, इस पर विचार करना होगा। नव-जागृति काल के वह भावुक कवि है। उनकी कविता मे भावुकता के अतिरिक्त नव-उत्थान की झलक है। पुराने नियमो के विरुद्ध विद्रोह है। साहित्य की रूढ़ियो से मानो उनका हृदय घबरा गया है। कवि-हृदय ऐसा अन्याय नहीं सह सकता। पुरानी वस्तु से उन्हे घृणा नहीं। ब्रज-भाषा को वह प्यार करते है। उन्ही के शब्दो मे—

"उस ब्रज की बॉसुरी मे अमृत था, नदन की मधु-ऋतु थी; उसमे रसिक श्याम के प्रेम की फूँक थी, उसके जादू से सूर-सागर लहरा उठा, मिठास से तुलसी-मानस उमड़ उठा।"

किंतु आजकल की भाषा खड़ी बोली से उन्हे अगाध स्नेह है, उनके सगीतो की वही भाषा है। 'शेली' ने कहा है—"कवि बुलबुल है, अँधेरे मे बैठ वह अपने विजन को आनंदमय बनाने के लिये गाता है।" बुलबुल के हृदय से गीत उमड़ते है, किंतु कब ? अहा ! जब वह गुलाब के

इर्द-गिर्द मँडराती है, तब उसका उत्कंठा-भरा प्रेम अवर्णनीय होता है, फारसी-कविता मे गुल और बुलबुल का प्रेम-वर्णन हर स्थान पर पाया जाता है। जब वह गुल से दूर, विरह मे क्रंदन करती है, तब एक नया आलम बन जाता है। उसके तप्त आँसू कफस मे फैल जाते है। पंतजी भी ऐसे ही संगीतज्ञ है, उन्होने कितना अच्छा कहा है—

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमडकर आँखों में चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

और 'ग्रंथि' मे गुल से दूर ले जाई बुलबुल की भाँति वह चीख उठते है—

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह, अहह! कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा?

काव्य मे प्रेम और करुणा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। करुणा काव्य का प्राण है, प्रेम केवल मनारजन का साधन। उत्तर-रामचरित के अमर कवि भवभूति ने इसीलिये करुण-रस को प्रथम स्थान दिया है। इसी करुणा को लेकर उनकी कविता व्यक्त हुई है, उनके गान की यही तारीफ है। उनका हरएक शब्द आँसुओ से भीगा जान पड़ता है। उनका प्रत्येक शब्द उस मिठास से पूर्ण है, जिसके विषय मे शेली ने कहा है—

"Our sweetest songs are those—
That tell of saddest thoughts"

पतजी का गान कैसा है, यह उन्ही से पूछिए—

आह! यह मेरा गीला गान—
वर्ण-वर्ण है उर की कंपन,
शब्द-शब्द है सुधि की दंशन,
चरण-चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण अथाह;
बूँद में है बाड़व का दाह।

अपूर्व गान है। ऐसा गान तो हमने सुना नही। इस गीले गान को सुनाकर मानो कवि विषादमय जगती के अंतर् को हमे दिखा रहा है। भाव-लोक मे इतनी वेदना—

कल्पना में है कसकती वेदना;
अश्रु में जीता सिसकता गान है।

जीता-सिसकता गान भी कैसा सिसकता है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे शब्द सिसक रहे हों। कवि की कुशल लेखनी कैसे दृश्य दिखाती है, और कहाँ-कहाँ उड़ाकर ले जाती है। सृष्टि के रहस्य मे, आकाश के अतस्तल मे, न-जाने कहाँ-कहाँ? दांते के 'वाइटा न्योवा' मे भी ऐसी करुणा की झलक है। उसके प्रेम-इतिहास का प्रत्येक अनुभव मीठे सरस पदो मे व्यक्त है। 'ग्रंथि' मे भी ऐसा ही है—

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बधन हो गया, वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

प्रेम मे ऐसा ही होता है। मिलन के बाद बिछोह अवश्यभावी होता है। विद्यापति ने इस

बिछोह का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। कृष्ण के विरह मे क्षीणकाय राधा अपना अतिम समय निकट जान, सखियो से कहती है—

'मरिबे, मरिबे, सखि ! निश्चय मरिबे ।'

किंतु पंत के बिछोह मे एक और सरसता है। वह मर मिटने को तैयार है, किंतु जगती मे मिलन का ही आभास देखते है। विश्व-भर की करुणा हृदय मे एकत्र कर मानो वह जगत् को दुःख से खाली किया चाहते है—

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को ;
चंद्रिके ! चूमो तरंगो के अधर,
उडुगणो ! गाओ पवन-वीणा बजा ।
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी निर्जन विपिन मे बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी ।

साहित्यिक रूढ़ियो के बंधन मे अपनी कविता को बाँधकर भावों का गला घोटना पंतजी को अच्छा नहीं लगा। कल्पना-लोक में साधारण प्राणी को ले जाकर स्वच्छंदता-पूर्वक वह न-जाने क्या-क्या दिखाते है ! आम्र-बौरों का रुपहला, सुनहला रंग, फूलो मे फैला विकास, मुकुलों के उर मे मदिरा का वास, नव छवि, नव रंग, नव मधु। किंतु यह नहीं कि उनकी कविता तत्त्व से खाली हो, या उन्होने जीवन की वास्तविकता पर विचार न किया हो। सुख-दुख की समस्या को उन्होने किस विचित्र ढंग से सुलझाया है—

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित है अति सुख से ;
मानव - जग में बँट जावे
दुख सुख से औ' सुख दुख से !

कैसा श्रेष्ठ साम्यवाद है। बेचारे मार्क्स की बुद्धि यहाँ तक नहीं पहुँच सकी—कैसा सरल उपाय है ! सुख का दुख और दुख का सुख से बँट जाना, यही सामंजस्य जगती का एकीकरण है। यह एकता (Uniformity) ही जगती का मूल तत्त्व है, इसी से नादान कवि को गान मिलता है—

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान ।

चेतावनी

[श्रीयुत 'प्रणयेश' शुक्ल]

प्रतीक्षा - पथ पर है अनजान !
बटोही अपना ले पहचान !

(१)

सुगंधित मंद पवन अनुकूल,
सरस उपवन है हरित दुकूल
कि जिसके मृदुल अंक मे फूल
रहे है सुख से झूला झूल ।
भ्रमर - गन गाते गुन - गुन गान !
प्रतीक्षा - पथ पर है अनजान !

(२)

सजनि ! सुन-सुन कोकिल के बोल—
"आ रहा तेरा प्रिय अनमोल ।"
कहे वाणी मे अमरित घोल
रही है प्रणय - ग्रंथि - सी खोल—
छेड़कर मधुमय पंचम - तान
प्रतीक्षा - पथ पर है अनजान !

(३)

फिरा है अब तेरा संसार,
देर करने की क्या दरकार ?
अरी, कर ले अपना शृंगार;
यही है वैभव के दिन चार !
मिलन का साज सकल सामान
बटोही अपना ले पहचान !

(४)

अगम बीहड़ वन - खंड अपार
पार कर विस्तृत पारावार;
शीश पर लिए दुसह तम - भार
आ रहा है वह तेरे द्वार ।
निकट आ पहुँचा जीवन - दान !
बटोही अपना ले पहचान !

सुधा-चित्रावली

श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली'

[आप १ फ़रवरी को प्रयाग में होनेवाले महिला-कवि-सम्मेलन की सभानेत्री मनोनीत हुई हैं ।]

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

[आपके नेतृत्व मे आठ फ़रवरी को मीरा-स्मृति-दिवस मनाया जायगा ।]

श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद'

[आप सुधा के अपने कवि है । आपकी 'सौंदर्योपासक'-शीर्षक कविता पृष्ठ ४६६ पर प्रकाशित हुई है। हिंदी के नवयुवक कवियों में आपका विशेष स्थान है।]
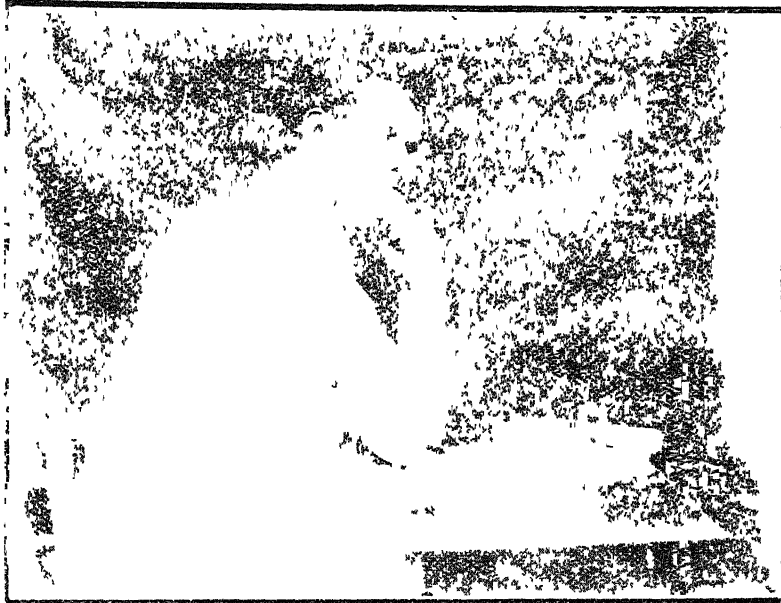
श्रीयुत पं० रामनारायण मिश्र एम्० एस्-सी०

[आप उदीयमान सुकवि है । आपकी 'मध्याधीरा'-शीर्षक कविता पृष्ठ ५१३ पर प्रकाशित हुई है ।]
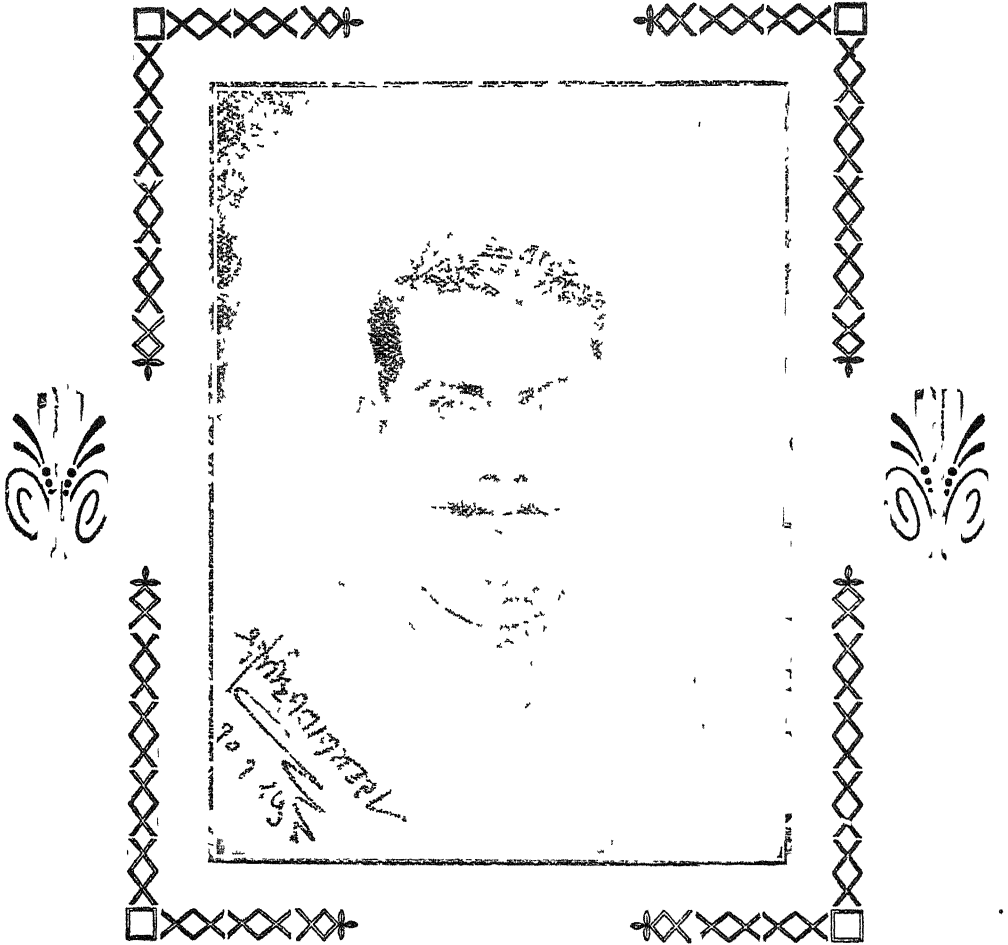
श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'

[आप बिहार-प्रांत के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आपकी सुंदर कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, और हिंदी-जनता ने उन्हें अपनाया भी है। आपका 'गीत' पृष्ठ ४६९ पर पढ़िए।]

१. गीत

चपल अचपल पल-पल चितवन,
मधुर जीवन रे! मधुर मरण।
निखिल तू, तेरा निखिल निवास,
प्रभा-तन पीन वास आकाश,
सूर्य-शशि-तारक-सूचित हास,
लास जग का षड्-ऋतु दर्शन।
इसी छवि-छाया मे अम्लान,
खेलते, खुलते मेरे गान,
ध्यान मे अवसित ज्ञानाज्ञान,
यही चिर-जागृति, यही शयन।

(कुँवर) चंद्रप्रकाशसिंह

× × ×

२. मधुर मिलन

कितने सुंदर थे। एक कवि था, दूसरा था चित्रकार। कवि काल्पनिक जगत् विचारता था, जिस दिव्य ज्योति का अनुभव करता था, चित्रकार उसे प्रथम ही अंकित कर देता था। एक सुमन संचित करता था, दूसरा हार पिरो देता था। माला तैयार हो जाती थी। एक वीणा बजाता था, दूसरा नृत्य-सहित गा उठता था, प्रेम की वर्षा होने लगती थी। इस दिव्य दृश्य को देखकर पुष्प मुस्किरा उठते थे। निकट-प्रवाहिनी नर्मदा भी क्षण-भर को स्तब्ध हो जाती थी। वन के पशु-पक्षी सभी प्रमुग्ध हो नृत्य कर उठते थे। मधुर-मंद-हासिनी निशा भी तारागणों की मणि-माला लेकर सुधा-वृष्टिकर्ता सुधांशु द्वारा प्रकृति का शुभाभिषेक करती थी।

उस कमनीय कानन में नित्य नवीन उत्सव हुआ करते थे। पवित्र भावों की सुमन-माला द्वारा भगवान् की अभ्यर्थना तथा वंदना होती थी। दोनो विचरते थे, स्वयं प्रथम जगदीश को रिझाना चाहते थे, किंतु साथ-ही-साथ माला गूँथकर सर्वेश के मस्तक को सुशोभित करते थे। दोनो एक ही साथ प्रेम-वीणा द्वारा प्रभु का आवाहन कर गद्गद हो उसके चरणों पर मूर्च्छित हो गिर पड़ते थे। दोनो के हृदयो मे कौतुक था, किंतु विद्वेष नही था। हृदय के अंतस्तल मे यही भाव था कि हम पीछे उस प्रसाद को पाएँ, सबसे पीछे हमारा

कल्याण हो। तभी तो प्रेममय प्रभु प्रसन्न थे। जगत् उनके इन भावों से आनंदित हो कृतार्थ हो गया था। जड़ पदार्थों में भी चैतन्यता दृष्टिगोचर होती थी। कलकलस्विनी सरिता क्षण-क्षण-भर में खिलखिलाकर हँस पड़ती थी।

सदैव के समान वीणा-वादन हो रहा था। प्रकृति स्तब्ध हो इस अपूर्व प्रतिभा के चमत्कार को देख रही थी। करुणामय प्रभु की पूजा हो रही थी। सहसा चंचला का-सा प्रकाश हुआ। एक विचित्र प्रतिध्वनि के साथ दोनो के शरीर से एक ज्योति निकली; फिर दोनो एक होकर जगदाधार मे विलीन हो गए।

अपूर्व मिलन था! असीम आनंद था!!

लक्ष्मीप्रसाद मिश्र

× × ×

३. समर्पण

सहसा मचा द्वंद्व क्यों भाई,
मुझको आज जगाया है?
क्या यह प्रातःकाल आज कुछ
नया सँदेशा लाया है?
वही नित्य की वायु आज क्या
कुछ विशेषता रखती है?
क्या कहते हो, हाँ, समझी अब,
आज 'गणेश - चतुर्थी' है।
किंतु उसी के लिये आज यह
मेरा आमंत्रण कैसा?
पथ की भूली हुई, दिवानी
को यह पुरस्कार कैसा?
पर जब तुम आए हो भाई,
तब यह तुम्हें समर्पण है;
तुच्छ बहन की तुच्छ भेंट यह
तव सेवा मे अर्पण है।
पर ठहरो तो, मुझ अबोध की
सेवा अपनावेगा कौन?
यह भी एक समस्या है, पर
इसको सुलझावेगा कौन?

रूपरानीदेवी भार्गव

× × ×

४. युवतियों का पंजाबी संस्करण

आजकल चारो ओर युवतियों में किसी-न-किसी तरह की नई जागृति पैदा हो रही है। भिन्न-भिन्न जगह मे इस तरक्क़ी का दरजा तरह-तरह का है, पर है ज़रूर। बंबई में कुछ और, बंगाल मे कुछ और। यू० पी० तो पिछड़ा है, पर वहाँ भी कुछ नहीं, तो पर्दा वग़ैरह धीरे-धीरे हटाया जा रहा है। घर-घर दूर देहातो में भी रहन-सहन तथा वस्त्र-आभूषण के फ़ैशन बदल रहे हैं। पर इन सबमें हमारे पंजाब की युवतियाँ सबसे बाज़ी मार ले गई हैं!

पंजाब मे पर्दा तो बहुत पहले ही से न था, इसलिये जब सब जगह नए सिरे से पर्दा-त्याग-आंदोलन शुरू हुआ, तो इन लोगों ने आगे ही बढ़े रहने के ख़याल से नई बछेड़ियो की तरह और भी ज्यादा स्वतंत्रता अख्तियार कर ली। अब क्या है, अब तो वे सड़कों पर कूदती फिरती है, वे ही बाज़ारो मे ख़रीद फरोख्त करने जाती और ठसाठस भीड़ मे आदमियो के कंधे से कंधा रगड़ती हुई स्वच्छंदता से घूमती है। इस पंजाबी तरक़्क़ी का नमूना हम दिल्ली और लाहौर में देख सकते हैं।

उनके वस्त्र दिन-पर-दिन बदलते जा रहे हैं, और धीरे-धीरे पाश्चात्य ढंग ग्रहण करते मालूम पड़ते है। पर अभी तो न पाश्चात्य ही ढंग है, और न अपना पुराना ही। जूता एड़ीदार पहन लिया,

साड़ी निहायत बारीक, सिल्क की बाँधी, और उसके ऊपर से छाती के अर्धभाग से गोलाकार बाडी से अपने ऊपर के बदन को ढक लिया, फिर सेट, लवेंडर तथा पाउडरों का नंबर आया, उसके बाद ज़रा लिपस्टिक की भी आरज़ू पूरी की, तब तैयार। रास्ते मे ऐसा मालूम होता है कि सिवा इस ख़याल के कि "मैं बुरी तो नहीं दिखाई दे रही हूँ", और किसी बात का इनको होश-हवास नहीं रहता। सिनेमा-तमाशों की तो ये ख़ास शौक़ीन। अब तो यहाँ तक है कि विवाह करने के पहले यह बड़े गर्व से कहा जाता है कि देखो भाई, मेरी लडकी सिनेमा देखने की बहुत आदी है, यहाँ पर तो महीने में २० दिन देखने जाती थी।

ये युवतियाँ बाज़ार में जब कई साथ-साथ चलती हैं, तो शायद इस बात को बिलकुल भूल ही जाती हैं कि वे स्त्री है। कहीं धोती ज़मीन पर घिसती हुई जा रही है, कहीं आँचल आसमान में उड़ा जा रहा है। कुरते वग़ैरह के फ़ैशन तो उनके एकदम नए है ही (जिसमे कम-से-कम अंग ढकने की कोशिश होती जा रही है), पर उस पर भी यदि उसके बटन खुले हो, तो इसकी उन्हे परवा नही, वे तो बस फिरहरी के समान चलते हुए और तोते के समान तीक्ष्ण आवाज़ मे चुटपुट बातचीत करती हुई उडी जाती हैं। किसी दूकानदार के यहाँ बैठ गईं, तो घंटों बैठकर घुट-घुटकर बाते करती हुई सौदा तय करती हैं। रास्ते मे अचानक यदि कचालूवाला दिखाई दे गया, तो समझो कि उसकी तो आफ़त आ गई। चाहे खायँ एक-ही-एक पैसे का, लेकिन उस बेचारे को अपने प्रश्नो तथा आपस के मज़ाक़ और खिल-खिलाहट से परेशान कर देती हैं!

इन पंजाबी संस्करण की नवयुवतियो ने जो आदर्श बना रक्खा है, वह, नहीं मालूम, आगे चलकर कौन-सा रूप धारण करेगा? इसमें कोई शक नहीं कि इन बेचारियो को इसकी कुछ ख़बर नहीं। वे तो सचमुच यही जानती और समझती है, बल्कि इसका गर्व भी करती हैं कि वे तरक़्क़ी के शिखर पर हैं, और जो उनके रास्ते पर नहीं आई हैं, वे पिछड़ी हुई है। साथ ही वे उस शुभ दिन के लिये कामना, प्रार्थना और प्रयत्न करती हैं, जब ये भी उनके दल की मेंबर बन जायँ।

मेरी समझ मे तो इस नए, ग़लत रास्ते से हज़ार अवगुण होते हुए भी अपनी पिछडी ही युवतियाँ अच्छी हैं, क्योंकि उनमें कम से-कम वह अमूल्य चीज़ तो मौजूद है, जो स्त्री-जाति का सबसे प्रधान अंग है। वह है संकोच, लज्जा।

इस बारे में कई बार बहुत-से लोगो ने आवाज़ उठाई है, पर कभी किसी ने गंभीरता-पूर्वक ध्यान नहीं दिया। मालूम पड़ता है, इस ग़लत आदर्श की आँधी को रोकना असंभव ही है। पर, मेरे विचार से, यदि इस ओर ख़ास दृष्टि डालकर प्रयत्न किया जाय, तो भारत को कम-से-कम उन भयंकर परिस्थितियों से हमेशा के लिये बचाया जा सकता है, जिनसे आज योरप परेशान है। हमने यह लेख अपने गंभीर अनुभव के आधार पर लिखा है।

रसिकरंजन रतूड़ी

× × ×

५ गीत

शरद-पूर्णिमा के राकेश!
देखे है तुमने तो जग के सुंदर-सुंदर देश,
भला बताओ, कही मिला है ऐसा सुखद प्रदेश?
देखा होगा मरु-प्रदेश भी, ताड़-वृक्ष, सुनसान,
मरु-कण निर्निमेष रजनी मे भरते तव मुसकान।
कितनी बार तरंग-धार में महासिंधु की गोद—
खेले हो, तुम इठलाए हो पाकर सुख-आमोद।
तुंग हिमालय श्वेत-शिखर पर फहराया सित केतु;
बाँधा स्वर्गलोक से पृथ्वी तक किरणों का सेतु।

मा गंगा की गोद हिलोरे ले-लेकर सानंद—
कितने स्वच्छ हुए, चमके हो नभ मे विभव अमंद ।
स्फटिक शिलाओं को देकर अपना केवल प्रतिबिंब—
अमरपुरी की रम्य थली वसुधा को दी अविलंब ।
देखा होगा यमुना-तट पर वैभव का विस्तार ;
एक 'समाधि-भवन' पर कितना मोहित है संसार ।
चमचम चाँदी-सी चमका करती चाँदनी अपार ;
कलकल करती बहती रहती है यमुना की धार ।
'ताजमहल' है या तेरा ही मुकुट गिरा उस देश,
जहाँ प्रकृति धारण करती है नित नूतन वर वेश ।
कितने स्वयं-सुखी सबको करते आनंद प्रदान ;
कितने जीवन-पात्र भरा करते तव अमृत-दान ।
घूमो तुम जगती मे, फिर भी यह मानो राकेश !
तुम सुंदर हो, जब तुमसे हो सुंदर यह तव देश ।

ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम'
(बी० ए०, सी० टी०)

पत्र से परदे तक

फ़िल्म का श्रीगणेश करनेवाला कहानी-लेखक ही है। उसी के मस्तिष्क मे सबसे पहले वह चिनगारी प्रकट होती है, जिससे वह कथानक का दीपक प्रज्वलित करता और फिल्म-कंपनी के समस्त स्टाफ के लिये पथ बनाता है। वह अपना विषय निश्चित कर फिर एक शीर्षक चुनता है। फिर चरित्रों का सग्रह कर देश और काल की कल्पना करता है। अंत में कथानक के सूत्र मे कौशल पूर्वक चरित्रो को गूँथकर वह अपनी कहानी तैयार करता है—कोरे पत्र पर कुछ अक्षरो का समूह ! वह किस प्रकार एक दिन जीवित होकर हमारी श्रेष्ठतम ज्ञानेंद्रियों को धोखा दे जाता है !

छाया-भूमि के बचपन मे चित्र के इस स्रष्टा का कोई अस्तित्व ही न था। कल-पुर्ज़ो के पेच-पहियों की चालो से अनभिज्ञ रहने के कारण बेचारा बहुत दिन तक फिल्म-कपनी के फाटक पर के लबे-चौड़े साइनबोर्ड को पढकर ही घर लौट-लौट जाता था। कहानी कभी-कभी पूँजीपति के मन मे उपजती थी, और विशेषकर डाइरेक्टर ही उसे गढता था। बहुत दूर की और धूमिल रूप-रेखा की कल्पना कर कुछ पत्र रँग लिए जाते थे, और "ऐक्शन ! कैमरा ! गो ! कट !" होने लगता था।

जब इस छाया-प्रतिमा के अक्षरों मे उच्चारण फूट निकला, और इसने मुखर होकर पढे और अपढ, दोनो पर अपनी मोहिनी डाली, तब कहानी-लेखक के भी भाग जागे, और प्रेस के अतिरिक्त फिल्म की कंपनी मे भी उसे बैठने को एक कुर्सी मिली। उसने डाइरेक्टर की अधीनता मे कथोपकथन लिखने आरंभ किए, और संगीत-शास्त्री की संगति मे गीत।

डाइरेक्टर फ़िलम-कंपनी के अंदर वह केंद्र है, जिसके संकेतों पर कंपनी के समस्त कलाधर, तारिकाएँ और टैक्नीशियन नृत्य किया करते है। वह कहानी-लेखक की हस्त-लिपि को लेकर उसे मूर्तिमान् कर उसमे प्राण फूँक देता है। वह कथा के अक्षरों की दीवाल को तोड़कर उसे निरक्षरों के मतलब की चीज़ बना देता है। फ़िलम-कंपनी का वह जादूगर, जिसने कला को संकुचित सीमा के

बाहर निकालकर लोक-साधारण की संपत्ति बना दिया, एक अद्भुत प्रतिभा का मनुष्य है। सारी प्रकृति उसकी पृष्ठ-भूमि है और समस्त धरातल उसका मंच ! उसने एक नवीन फिल्म के देश-काल की रचना कर इतिहास की घटनाओं को फिर-फिर दुहराया है।

यदि डाइरेक्टर साहित्यिक योग्यता से संपन्न हो, तो वह परिपूर्णता को प्राप्त होता है। डाइरेक्शन और लेखन की शक्तियों के सम्मिश्रण से एक अनोखे चित्र की सृष्टि होती है। जब एक ही मन अक्षरो को आकार देने लगता है, तब फिल्म मे अनेक सुंदरताएँ अपने आप प्रकट हो जाती है।

अनेक भाषाओं का विद्वान् होना डाइरेक्टर के लिये आवश्यक नही। उसे मनुष्यो पर शासन करने की शक्ति चाहिए। इसी से अनेक सफल डाइरेक्टरों ने सेना-विभाग से स्टूडियो मे पदार्पण किया है। उसे कहानी जोड़-लिख लेने की क्षमता चाहिए, इसी से अनेक डाइरेक्टर पहले पत्रकार थे। उसके पास 'देखनेवाली' आँख का होना जरूरी है, इसी से अनेक फिल्म-कंपनियो के स्विच आज चित्रकार और मूर्तिकार डाइरेक्टरो के हाथ में है।

सिनेरियो—यह कहानी के एक विशेष रूपांतर का नाम है। सिनेरियो लिखने के लिये फिल्म-कंपनी के टैक्नीक और उसके साधन, दोनो का ज्ञान होना जरूरी है। कैमरे और खीचे जानेवाले धरातल के बीच की दूरी और उनके कोणों से अनेक रुचिकर दृश्य उपजते है। कहते है, जब से सिनेमा के अंदर कोण-चित्रण समाविष्ट हुआ है, उसका आकर्षण कई गुना बढ़ गया। रंगमंच पर कई छोटी-छोटी चीजों का महत्त्व खो जाता है। परंतु रजत पट पर आँख के आँसू की एक छोटी-सी बूँद और गाल की एक क्षीणतम हास्य-रेखा भी क्लोज़-अप मे विराट् होकर समस्त दर्शकों को प्रभावित कर देती है।

आर्ट-डाइरेक्टर या टैक्निकल डाइरेक्टर वह व्यक्ति है, जो देश-काल के अनुसार ठीक-ठीक सेटों का निर्माण कराता है। वह भिन्न-भिन्न जातियो के इतिहास, स्थापत्य, वेश-भूषा और रीति-रिवाजो से परिचित रहता है। कम-से-कम खर्च और थोड़े-से-थोडे समय मे स्टूडियो के भीतर जूलियस सीज़र का विलास-भवन, अशोक की राजसभा और नैपोलियन का शयन-कक्ष निर्माण करा देना उसकी प्रवीणता के सबूत है।

सिनेरियो के लिखे जाने पर डाइरेक्टर और आर्ट-डाइरेक्टर उसका अध्ययन करते है। सेट बनने आरंभ होते है, और परिच्छद तथा अलंकारों का निर्माण होता है। चरित्र छाँटे जाते है, और रिहर्सल शुरू होती है। सिनेरियो के बाद एक हस्त-लिपि और लिखी जाती है। उसको 'शूटिंग स्क्रिप्ट' कहते है। इसके कारण व्यय, श्रम और समय की भारी बचत होती है। इसके अतिरिक्त क्रम-विहीनता की अनेक हास्यास्पद स्थितियाँ भी चित्र के अंदर नही आने पाती।

फोटोग्राफर और ऑडियोग्राफर, ये डाइरेक्टर

के दो लेफ्टिनेट है। शूटिंग आरंभ होने पर अभिनेता और अभिनेत्रियों की सारी कला इन दोनो टैक्नीशियनो के कौशल पर निर्भर रहती है। फोटोग्राफर बड़ी सूक्ष्म दृष्टि का मनुष्य होता है। उसे लेंस की रेंज का और कैमरे के क्षेत्र का पूरा ज्ञान होता है। किसी दृश्य मे कहाँ पर दृष्टि-रेखा आकर्षक होगी, और उस दृष्टि-रेखा मे कहाँ पर दृष्टि-बिंदु सुमधुर लगेगा, इस बात को एक क्षण मे जान लेने का उसका स्वभाव है। अभिनेताओं के मेक-अप, परिच्छद और सेटों मे कौन-कौन-से रंग हानिकारक होगे, उन पर तीखी नजर रखना उसका कर्तव्य रहता है। किस दृश्य या किस ऐक्टर पर कहाँ से प्रकाश देने से चित्र खिल उठेगा, और कौन-सी रोशनी चित्र को धुँधला और चपटा बना देगी, य ही उसके रात-दिन के खेल है। जिन कुशल ऑखों को लेकर कैमरा-मैन चित्र खींचता है, वैसे ही दक्ष कानो को खे.ले, ध्वनि-आलेखक शब्दों को अंकित करता है।

शूटिंग समाप्त होकर फिल्मे लेबोरेटरी मे प्रवेश करती है, और सबका परिश्रम लेबोरेटरी मैन के चातुर्य पर जा टिकता है। कभी-कभी लेबोरेटरी-मैन की असावधानी से धूल के कण, रासायनिक घोल में ताप-क्रम का अंतर, मैले पानी और छापने के लैंपों में बिजली के वाल्टेज की कम-ज्यादती से फिल्म नष्ट हो जाती है, और फिर रिटेकिंग की नौबत आ उपस्थित होती है। नेगेटिव फिल्मे धो-सुखाकर फिर उनसे पोजिटिव फिल्मो की आवश्यकतानुसार कापियाँ छापी जाती है।

अंत मे फ़िल्म का संपादन होता है। यह 'कैंची का मनुष्य' बड़ी विलक्षण बुद्धिवाला होता है। वह काट-छाँट और जोड़-चिपकाकर अद्भुत कला प्रकट करता है। उसके सपादन ने अनेक बार बुरी-से-बुरी फिल्मो को उबार दिया, और उसकी त्रुटियों से कभी-कभी श्रेष्ठतम नक्षत्र, डाइरेक्टर और टैक्नीशियनो की हजामत हो गई!

संपादक के कमरे से निकलकर फिल्म शो-हाउस मे आती है, और प्रोजेक्टर की सहायता से ऑपरेटर द्वारा परदे पर।

गोविंदवल्लभ पंत
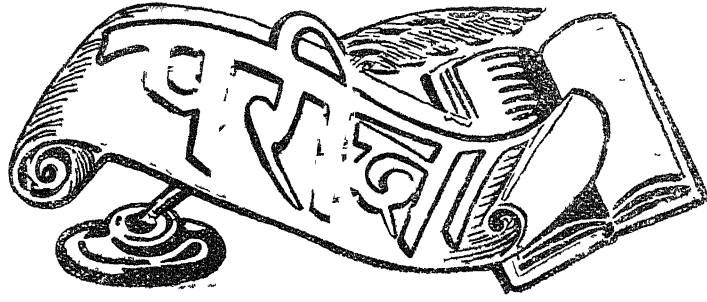
किंजल्क—लेखिका, श्रीमती रामेश्वरीदेवी 'चकोरी', संपादक, श्रीदुलारेलाल भार्गव, प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ, मूल्य ॥।), सजिल्द १)

सर्वप्रथम मुझे श्रीमती रामेश्वरीदेवी मिश्र 'चकोरी' की कविताएँ पढ़ने का सौभाग्य 'सुकवि' में हुआ था। वह समय मेरे साहित्यिक जीवन का प्रारंभ था। उसी समय से मैं आपका भक्त बन गया। यह भक्ति-भावना उत्तरोत्तर सज्जन-मैत्री-सी बढ़ती ही गई, क्योंकि आपकी रचनाओं में मुझे कुछ मिलता है। 'किंजल्क' तीन फूलों में विभक्त है—

१. "अरे, अचानक बिखर पड़े ये मेरे हृदयोद्गार!"

२. "भर ले, भर ले अपना अंचल इन फूलों से आज!"

३ "हमारे प्राणों का संदेश, जगा दे जीवन का उद्देश्य!"

प्रथम पुष्प में २५ पंखुरियाँ है, मादक महँक से भरी हुई। १ समीर के प्रति, २ यौवन से, ३ जिज्ञासा में, मादकता का विशेष अंश मिला—

१. "मुझे जलाने बार-बार शीतल झोंके, तुम आते क्यों?"

२. "लज्जा का अंजन लगा दिया उन चपल हठीली आँखों में।"

३. "यौवन हाथ पसार माँगता क्यों यौवन का दान?"

द्वितीय पुष्प में १० पंखुरियाँ हैं, जिनमें ६ विशेष मादकता लिए हुए। कुछ तो पहले भी देख चुका था, तथा अंतिम 'पावस' के संबंध में अपने विचार प्रयाग की 'सहेली' में श्रीमती 'चकोरी'जी की एक कविता शीर्षक से प्रकट भी कर चुका हूँ।

१ उलाहना, २ प्रतीक्षा की निराशा, ३ उजड़ी वाटिका से, ४ पतंग के प्रति, ५ दीपावली, ६ पावस।

तृतीय पुष्प में ११ पंखुरियाँ हैं, जिनमें मुझे सर्व-प्रथम 'जाते-समय' उनमें विशेष सुरभित प्रतीत हुई।

पुस्तक पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'चकोरी'जी में प्रतिभा है, कवित्व-शक्ति एवं वर्णन-वैशिष्ट्य भी, विशेषतः सवैया-छंद के प्रयोग में। इस संग्रह में 'चकोरी'जी का वसंत और विभूति न देखकर मुझे कुछ फीकापन महसूस हुआ, पर शायद दूसरे संग्रह के लिये 'रिज़र्व्ड' कर लिया गया है।

पुस्तक गंगा-ग्रंथागार, ३६ लाटूश रोड, लखनऊ से मिल सकती है। इस सुंदर पुस्तिका की न्यौछावर बारह आने पैसे हैं। जो 'काव्यशास्त्रविनोदेन काल यापन' के इच्छुक है, शीघ्रता करें।

× × ×

पंछी—प्रणेता, श्रीगोपालसिंह नेपाली; संपादक एवं प्रकाशक, श्रीदुलारेलाल भार्गव, अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला,

२६ लाटूश रोड, लखनऊ, मूल्य सजिल्द ।1/), अजिल्द ।=)

नेपालीजी एक नवयुवक कवि है। आपके दर्शन मुझे कभी-कभी पत्र-पत्रिकाओ मे हो जाते थे। इधर श्रीभार्गवजी की अनुकंपा से आपका उपर्युक्त काव्य भी देखने को मिला है। पुस्तक की कहानी मृदु, मधु एव उदात्त भावों से ओत-प्रोत है। भाषा भी मँजी-मँजाई, मुहाविरेदार और रोचक है। मै उस दिन की राह देख रहा हूँ, जब नेपालीजी एक चमकते हुए तारे के रूप मे प्रकट होगे। आशा है, वह दिन दूर नही है।

त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी

× × ×

छाया—संपादक, श्रीपं० विनोदशंकरजी व्यास, प्रकाशक, श्रीशंकरलालजी गुप्त; प्रकाशन-स्थान, दिल्ली, वार्षिक मूल्य ४।।), एक प्रति का –)।

पं० विनोदशकरजी व्यास अच्छे कलाकार हैं। आपने छोटी-छोटी कहानियाँ लिखकर अपना एक ख़ास स्थान बना लिया है। 'छाया' नाम का सचित्र साप्ताहिक पत्र आपने दिल्ली से निकाला है। पत्र सिनेमा का है, यह नाम ही से प्रकट है। छाया का दूसरा अंक हमारे सामने है। इस अंक मे लेख अच्छे है। व्यासजी का 'कहानियों का आरंभ और अंत'-शीर्षक लेख बहुत सुंदर है। हम इस पत्र की हृदय से उन्नति चाहते है।

× × ×

हिंदी-प्रचार-पत्रिका—संपादक, श्रीरघुनाथ पाडेय 'प्रदीप', प्रकाशक, मैनेजर हिंदी-प्रचार-पत्रिका न० १ नवाब बदरुद्दीन स्ट्रीट, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता।

नए वर्ष का नया अंक हमारे सामने है। लेख सभी सुदर और पढ़ने-योग्य है। पत्र जैसा निकला है, उससे पता चलता है कि उत्तरोत्तर उन्नति करता जायगा, और भविष्य में अपना एक अच्छा स्थान बना लेगा। मुख-पृष्ठ पर मालवीयजी का सुंदर चित्र है। यदि भविष्य में कुछ सुंदर चित्र अंदर भी दे दिया करे, तो बहुत अच्छा हो। हमे पूर्ण आशा है, यह पत्र अपने नाम को सार्थक करेगा—इससे नव-कवियो, लेखकों और विद्यार्थियों को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा।

गिरिजाशंकर द्विवेदी (विशारद)

× × ×

विदुर-नीति (मूल तथा हिंदी-अनुवाद)—अनुवादक तथा सपादक, 'हिंदी के प्रसिद्ध लेखक' श्रीयुत प्रेमशरणजी 'प्रणत', 'साहित्य-प्रचारक', प्रकाशक, प्रेम-पुस्तकालय, आगरा, पृष्ठ-सख्या करीब १६०, मूल्य ।।।)

महाभारत के उद्योग-पर्व का जो अश 'विदुर-नीति' के नाम से प्रसिद्ध है, उसका यह हिंदी-अनुवाद है। अनुवाद सरल भाषा मे किया गया है, और प्रायः मूल का भाव भी स्पष्ट हुआ है। छपाई साधारण है। प्रकाशक का 'राजनीति-ग्रंथ-माला' निकालने का उद्देश्य बडा अच्छा है।

× × ×

विज्ञान की कहानियाँ—मूल-बँगला-लेखक, श्री-सुशीलचंद्र राय चौधरी, अनुवादक, श्रीठाकुरदत्त मिश्र, प्रकाशक, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, पृष्ठ-सख्या १५७; मूल्य ।।=)

पुस्तक में सात कहानियाँ हैं, जिनमे ससार के बड़े से-बड़े वैज्ञानिकों का हाल है, और उनके द्वारा किए गए आविष्कारों की कथा का बडा मनोरंजक वर्णन है। क्या बालक, क्या युवा, क्या बड़े-बूढ़े, सभी पुस्तक पढ़कर लाभ उठा सकते और विज्ञान की अनेक करामातो की कथा जान सकते है, साथ-ही-साथ अपने ज्ञान मे भी संवर्द्धन कर सकते है। नवीन बातो से लोग कितने चौंकते हैं, आरंभ में प्रतिभाशाली आविष्कारकों को कितने कष्ट और भर्त्सना झेलनी पड़ती है, और बाद को उनकी कृति से संसार का कितना उपकार होता है, किस प्रकार एक मनस्वी अन्वेषक को अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर एक सिद्धांत या तत्त्व की खोज करनी

पड़ती है, इत्यादि मनोरंजक तथा उपयोगी विषयों पर मनन करने की सामग्री पाठकों को प्रचुर मात्रा में मिलेगी।

पुस्तक सचित्र है। छपाई-सफ़ाई बहुत अच्छी—भूमिका का अभाव खटकता है।

× × ×

यांत्रिक चित्रकारी (प्रथम भाग)—लेखक, श्रीयुत ओंकारनाथ शर्मा ए० एम्० आई० एल्० ई०; प्रकाशक, उद्योग-मंदिर, अजमेर, पृष्ठ-संख्या २५०, मूल्य सस्ता संस्करण २॥), बढ़िया संस्करण ३॥)

यह 'उद्योग-मंदिर-ग्रंथावली' की पहली पुस्तक है। आचार्य राय के शब्दों में—"यह पुस्तक हिंदी में है, इसलिये इसकी पहुँच साधारण यंत्रकारों और कारीगरों तक होगी। इसमें वैज्ञानिक विषयों का प्रतिदान इस प्रकार से किया गया है, जिससे वे उनकी समझ में सरलता से आ सकें। इसके चित्र प्रशंसनीय हैं। मेरे विचार से यह पुस्तक एक वास्तविक कमी को पूरा करेगी, और मुझे यह लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि जिस श्रेणी के पाठकों के लिये यह लिखी गई है, उनको सर्वथा इसके पढ़ने से लाभ होगा।" यांत्रिक चित्रकारी कारीगरों की भाषा कहलाती है, इसका जानना प्रत्येक कारीगर के लिये अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि बिना इसके जाने कोई कारीगर दूसरे कारीगर के वस्तु-निर्माण-संबंधी विचार नहीं समझ सकता, और न अपने विचार दूसरे को भली भाँति समझा सकता है। लेखक ने ऐसे आवश्यक विषय पर पुस्तक लिखकर बड़े सदुत्साह का परिचय दिया है। पुस्तक लिखने के ढंग तथा भाषा से लेखक की योग्यता पूर्ण रीति से प्रकट होती है। जिन-जिन विषयों पर उन्होंने 'उद्योग-मंदिर' द्वारा पुस्तकें प्रकाशित करने का आयोजन किया है, वे सभी बड़े आवश्यक और महत्व-पूर्ण हैं। लेखक के उत्साह को बढ़ाना तथा उनके द्वारा हिंदी में उद्योग-धंधों तथा कारीगरी पर अनेकानेक उत्तम पुस्तकें प्रकाशित कराना हरएक हिंदी-प्रेमी का कर्तव्य होना चाहिए। हमें आशा है, सम्मेलन तथा अन्य संस्थाओं से लेखक को काफ़ी प्रोत्साहन मिलेगा।

× × ×

मणि-माला—लेखक, श्रीनोखेलाल शर्मा काव्य-तीर्थ, प्रकाशक, अनूपलाल मंडल साहित्य-रत्न, अध्यक्ष युगांतर-साहित्य-मंदिर, अयोध्यागंज बाजार, पूर्णिया, पृष्ठ-संख्या ९०, मूल्य ॥)

यह एक गद्य-काव्य है। कवि में बड़ी मधुर कल्पना करने की शक्ति और भावुकता को व्यंजित करने की योग्यता दृष्टिगोचर होती है। गद्य-काव्य-प्रेमियों के पढ़ने की चीज़ है।

× × ×

नेह-निकुंज—लेखक, दीवान बहादुर कैप्टेन चंद्रभानुसिंह 'रज', प्रकाशक, प्रेम-भवन, गरौली बुंदेलखंड), पृष्ठ-संख्या ६८, मूल्य कृपा।

रियासत गरौली के चीफ़ बड़े काव्य-प्रेमी तथा कवि हैं, और उनकी श्रीकृष्ण में अगाध भक्ति है। यह पुस्तक उन्हीं की कविताओं का संग्रह है। १६८ मुक्तक छंद हैं—पद, कवित्त, छप्पय, सवैया, दोहा। कोई-कोई पद बड़ा मधुर है। भाषा ब्रज तथा बुंदेलखंडी का मिश्रण है। दीवान बहादुर साहब की भगवद्भक्ति तथा काव्य-शक्ति सराहनीय है।

केदारनाथ भट्ट (एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

× × ×

अंतिम आकांक्षा—प्रणेता, श्रीसियारामशरण गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी), पृष्ठ-संख्या १८५, जिल्द बँधी हुई, मूल्य १।), छपाई-सफ़ाई उच्च कोटि की।

हमारा अधिकांश मानव-समाज महामारी से भी एक अधिक भयंकर रोग से पीड़ित है। वह है अविचार। हम जो बात करते हैं, जो काम करते हैं, कभी विचारकर नहीं करते, यों ही करने लगते

हैं—प्रमाणवाद अथवा यों कहिए कि अंध-विश्वास आधार पर। यदि हम अविचार छोड दें—प्रत्येक बात को, प्रत्येक कार्य को विचारकर करें—तो यह निश्चय है कि हम अचिर भविष्य मे आदमी को आदमी समझने लगे, जन्मगत या वर्णगत उच्चता के अंध-विश्वास-पाश से, जो हमारे अधिकांश समाज को जकड़े हुए है, मुक्ति मिलने मे अधिक विलंब न लगे।

अंतिम आकांक्षा मे रामलाल का चरित्र चित्रण कर गुप्तजी ने समाज का ध्यान एक महान् सत्य—मनुष्यत्व की ओर आकर्षित किया है। हमारे समाज को रूढिवाद ने कैसा जकड़ लिया है, रामलाल देखता है, विचार करता है, और उस तथ्य की तह पर पहुँचता है, जो बुद्धिवाद की सर्वोज्ज्वल विजय है।

इस कथानक की विशेषताएँ हैं—सहज सरलता तथा सुरुचि। उच्चादर्श तथा हृदयहारी, प्रशस्त मनोभावों के नाते यह उपन्यास संसार के किसी भी उपन्यासकार की कृति के समकक्ष ठहरता है। इसके अनुशीलन के समय इसकी सादगी, जिसकी तह में गंभीर-से गंभीर भावों का समावेश है बरबस मन को मोह लेती है।

आशा है, गुप्तजी ऐसी ही अन्य रचनाओं द्वारा मानवता का मुख उज्ज्वल करते रहेंगे। हमारी समझ में यह कृति निस्संदेह अन्य लेखकों के लिये लेखन शैली तथा विषय की दृष्टि से एक महान् आदर्श उपस्थित करती है। अच्छा हो, यदि अन्य लेखकगण गुप्तजी के बतलाए हुए मार्ग पर विचारपूर्वक अग्रसर हो वास्तविक साहित्य-सेवा मे तत्पर हों।

ब्रजमोहन तिवारी
(एम्० ए०, एल्० टी०)
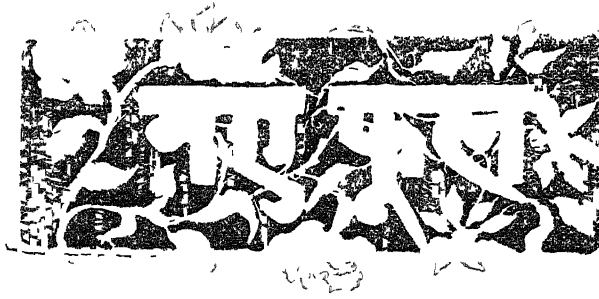
इस स्तंभ मे हम हिंदी-प्रेमियो की जानकारी और सुबीते के लिये प्रतिमास नई-नई पुस्तको के नाम देते हैं। पिछले महीने मे निम्न-लिखित पुस्तके प्रकाशित हुई है—

(१) 'ग्रामीण हिंदी' (साहित्य)—लेखक, श्रीधीरेंद्र वर्मा; मूल्य ॥)

(२) 'जादूगरनी' (कहानी)—लेखक, श्री-देवीदत्तजी शुक्ल; मूल्य १॥)

(३) 'मुक्ति का रहस्य' (नाटक)—लेखक, श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र; मूल्य १॥)

(४) 'चित्र-लेखा' (उपन्यास)—लेखक, श्रीभगवतीचरण वर्मा; मूल्य १।।।)

(५) 'नवीन पिंगल' (पिंगल)—लेखक, श्रीअवध उपाध्याय; मूल्य ।।।)

(६) 'गृह-विज्ञान'—लेखक, श्रीसत्यव्रतजी; मूल्य ।-)

(७) 'नवीन भाषा - पत्र - विज्ञान'—लेखक, मुंशी झुन्नीलाल राठौर; मूल्य ≈)

(८) 'काल-चक्र' (दर्शन-शास्त्र)—लेखक, डॉ० सिद्धेश्वर शास्त्री; मूल्य ।≈)

(९) 'विद्यार्थी - जीवन - रहस्य'—लेखक, महात्मा नारायण स्वामी, मूल्य ॥≈)

(१०) 'सफल जीवन'—लेखक, श्रीछविनाथ पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०; मूल्य १॥)

(११) 'सौभाग्यवती' (स्त्रियोपयोगी)—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर; मूल्य ३)

(१२) 'आदर्श-पाक-शिक्षा (स्त्रियोपयोगी)—लेखिका, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर; मूल्य ३॥)

(१३) 'वनस्थली' (काव्य)—लेखक, श्री-नाथूराम अग्निहोत्री 'नम्र' शास्त्री; मूल्य ॥≈)

(१४) 'बेकार बी० ए०'—लेखक, कविराज वी० एन्० मित्तल; मूल्य ।-)

(१५) 'शृंगार-विलासिनी'(महाकवि देव-कृत)—संपादक, पं० गोकुलचंद्र दीक्षित 'चंद्र'; मूल्य १॥)

(१६) 'रचना-परिचय'—लेखक, श्रीभजनलाल पांडेय विशारद 'श्रीहरीश'; मूल्य नहीं दिया।

[संपादकीय विचार]

१. भारतेंदु-अर्द्ध-शताब्दी
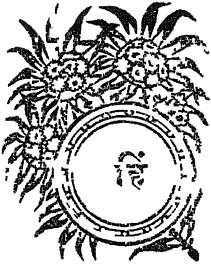
हिंदी के विकास के इतिहास मे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने अपने अल्प जीवन-काल मे हिंदी की बडी सेवा की, और अपना नाम अमर कर गए। आधुनिक काल में हमारे साहित्य को कोई दूसरा भारतेंदु के समान प्रतिभाशाली कवि तथा लेखक नही मिला, और न किसी दूसरे को इतनी प्रतिष्ठा और सम्मान ही प्राप्त हुआ। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवन भी एक मूर्तिमान् काव्य था। और, उनका रहन-सहन, सहृदयता तथा उदारता हमारे चित्त को इतना आकर्षित कर लेती है कि कभी-कभी तो उनका काव्य पढ़कर उसका उचित मूल्य निर्धारित करने की इच्छा ही नहीं रहती। जिस कवि के जीवन ने हमारे दिलो में इतना घर कर लिया हो, उसकी स्मृति बनाए रखना हमारा परम कर्तव्य है। जो कुछ भी भारतेंदु का वास्तविक कार्य है, वही उनको अमर बनाए रखने के लिये पर्याप्त है। उनके संबंध मे अतिशयोक्ति की आवश्यकता नही, क्योंकि सदा से हिंदी-संसार ने उनका कृतज्ञता-पूर्वक आदर किया है। हमें विश्वास है, सभी संस्थाएँ और हिंदी-प्रेमी अर्द्ध-शताब्दी मनाने मे पूर्ण योग देंगे, और अपने परम प्रिय कवि की स्मृति में हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करेंगे। साथ-ही-साथ हम हिंदी के सब वर्तमान हितैषियो तथा लेखकों से अनुरोध करते है कि भारतेंदु-कृत मुख्य-मुख्य ग्रंथ अवश्य पढे। हम लोगो में पढने की रुचि दिन-पर-दिन कम होती जाती है। हम लोग पढ़ते कम हैं, बनते बहुत हैं। इसी कारण हमारे बहुत-से उदीयमान लेखक हिंदी की प्रकृति से अनभिज्ञ होते जाते है, और उन्हे अपने भाव ऐसे शब्दों मे प्रकट करने पड़ते हैं, जिनको समझने में पाठको को कठिनता होती है—जो भाषा प्रौढ़त्व को प्राप्त हो चुकी है, उसके प्रौढ़त्व का लाभ उन्हे नहीं मिलता, और एक नवीन भाषा

का अवांछित प्रादुर्भाव होता जाता है, जिसके प्रौढ़ावस्था तक पहुँचने में काफी समय लगेगा। इस प्रकार पुराने और आधुनिक काल के आचार्यों की कृतियों का अनुशीलन नहीं करने से हम बड़े मूल्यवान् समय का अपव्यय कर रहे हैं, और अपने घर की संपत्ति से उचित लाभ नहीं उठाते। हम सभी प्राचीन लेखकों पर रायज़नी करने के लिये सदा तैयार रहते है, परंतु यह आवश्यक नहीं समझते कि उनका एक बार सत्यनिष्ठा के साथ अध्ययन तो कर लें। इस ढोंग से हिंदी के स्थायी हित की हानि है, और इसे जितना शीघ्र हो सके, दूर करना प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का कर्तव्य है। अर्द्ध-शताब्दी मनानेवालों को भारतेंदु के ग्रंथ भी एक बार पढ़ने का संकल्प अवश्य करना चाहिए। वे सब सुलभता से मिल सकते हैं, और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा भी, जिसके श्रेष्ठ प्रकाशन और प्रचार-कार्य से सभी साहित्य-संसार सुपरिचित है, एक नया संस्करण निकालने जा रही है। जहाँ हमे इस बात पर संतोष है कि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का पूरा-पूरा मान किया जाता है, वहाँ इसका खेद भी है कि उनके ग्रंथो को बिना देखे-पढ़े ही उनकी प्रशंसा करने का रोग बढ़ता जाता है। आशा है, कुछ काल और व्यतीत हो जाने पर हम उनका उचित मूल्य निर्धारित कर सकेंगे, और उनको हिंदी के बड़े बड़े कवियों और आचार्यों की मंडली में उस स्थान पर प्रतिष्ठित कर देंगे, जो उनके योग्य है। इसमे कुछ भी संदेह नहीं कि उनका स्थान सदा ऊँचा रहेगा, और पक्षपात, प्रेम तथा अनभिज्ञता के कारण जो व्यर्थ की स्तुति कभी-कभी कर दी जाती है, उसके दूर होने पर भी वह हिंदी-साहित्य मे अमर रहेंगे।

× × ×

२. लखनऊ-विश्वविद्यालय और हिंदी

पिछले महीने हम लखनऊ-विश्वविद्यालय में हिंदी की अवहेलना की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर चुके है, और बतला चुके है कि अभी तक यहाँ हिंदी एम्० ए०-परीक्षा तक स्वीकृत नहीं हो पाई है। इन प्रांतों में केवल यही एक ऐसा विश्वविद्यालय है, जहाँ अभी तक हिंदी को उस स्थान के योग्य नहीं समझा गया है, जिसके योग्य उसे अन्य प्रांतो के विश्वविद्यालय बहुत पहले समझ चुके है। इस संबंध मे दो-एक बाते और भी जान लेना आवश्यक है। पहले, जब लखनऊ-विश्वविद्यालय स्थापित ही हुआ था, उर्दू-हिंदी को बी० ए० परीक्षा के लिये भी वह स्थान नहीं दिया गया था, जो अन्य भाषाओं तथा विषयों को प्राप्त था। कई वर्ष बाद हमारे प्रांत की दोनो आधुनिक भाषाएँ इस योग्य समझी गई कि विश्वविद्यालय की नीची-से-नीची परीक्षा के लिये पाठ्य विषय का पद पाने की अधिकारिणी मान ली जायँ। इस संबध मे जहाँ-जहाँ से और जैसे-जैसे हिंदी-उर्दू का विरोध हुआ था, उसके जाननेवाले अभी तक मौजूद है। इसमे ज़रा भी अत्युक्ति नहीं कि यदि उस समय लखनऊ-विश्वविद्यालय मे हमारे प्रिय मित्र स्वर्गीय प० बदरीनाथ भट्ट हिंदी-अध्यापक न होते, तो शायद हिंदी तो बिलकुल ही उठा दी गई होती। स्वर्गीय भट्टजी की प्रतिभा और प्रभाव का ही दम था, जो हिंदी का अस्तित्व यहाँ कायम रहा। विश्वविद्यालय की कार्य-कारिणी समिति मे विरोध, कोर्ट मे विरोध और—खेद और आश्चर्य की बात है—अन्य विश्वविद्यालयो के हिंदी-विभाग द्वारा उकसाया हुआ विरोध! ख़ैर, इस अंतिम विरोध के प्रसंग को इस समय यहीं रहने दीजिए, विश्वविद्यालय के कोर्ट तथा अन्य समितियों के विरोध का कुछ विश्लेषण सुन लीजिए। कुछ लोग तो इस विचार के है कि केवल अँगरेज़ी-भाषा का प्रचार होना चाहिए, उसमे विज्ञान तथा साहित्य के लिये सभी कुछ है, और व्यर्थ मे ऐसी भाषाओं के अध्ययन-अध्या-

पन में समय नष्ट नहीं करना चाहिए, जिनमे आधुनिक विचार प्रकट करने के लिये शब्द भी नहीं, और यदि शब्द गढ़ भी लिए जायँ, तो उन्हे पढ़ने समझनेवाले नहीं। जिन लोगो के ऐसे विचार हों, और शुद्ध हृदय से प्रेरित हों, उनके साथ, उनकी कम-समझी के साथ कुछ सहनशीलता से काम लिया जा सकता है। और, आशा भी की जा सकती है कि कभी अवसर पाकर वह भी अपनी मातृभाषा का महत्व समझ जायँगे, और चूँकि हृदय के साफ़ है, ढंग पर भी आ जायँगे। परतु विरोधियो मे एक किस्म और भी थी। अन्य प्रांतों के निवासी ये लोग इस भाग्य-हीन अवध-प्रांत को शिक्षा देने के लिये कटिबद्ध होकर, केवल उतना ही मासिक वेतन स्वीकार कर, जितना अन्यत्र कहीं भी न मिल सका, टूट पड़े है। और, इनको यह बात स्वप्न मे भी गवारा नहीं कि हिंदी को किसी प्रकार का महत्त्व दिया जाय। अपने प्रांत में अपनी मातृभाषा के हिमायती हैं, उनकी उन्नति चाहते हैं, उसमें लिखते पढ़ते है, अपने प्रांत से बाहर अपनी मातृभाषा के साहित्य की तथा कवि-कोविदों की प्रशंसा के पुल बाँधने को सर्वदा तत्पर रहते हैं, परंतु यहाँ आकर यहाँ की मातृभाषा की उन्नति मे रोड़े अटकाना अपना परम धर्म समझते है। हिंदू-सभा के नेता बनते हैं, हिंदुओं के अकिंचन स्वत्वों के लिये बड़ी बडी युक्तियाँ देते है, लेकिन हिंदी के अभ्युत्थान मे हिंदुओं का हित ज़रा भी नहीं मानते। शायद डरते है कि यदि हिंदी का उत्कर्ष हो गया, तो उनकी उन्नत मातृभाषा के राष्ट्र-भाषा बनने मे एक बाधा और भी खड़ी हो जायगी। ऐसी ही कुछ विचार-तरंगें उनके मन में उठती होंगी। हम ठीक-ठीक नहीं बतला सकते कि वे क्या है, परंतु इतना अवश्य सोच सकते हैं कि वे अवश्य संकीर्णता, नीचता और स्वार्थ की उपज है। लखनऊ-विश्वविद्यालय के कार्य-विवरण देखने से पता चलता है कि ऐसे लोगों ने हिंदी के मार्ग मे अड़ंगे लगाने में कोई कसर बाक़ी नहीं रक्खी। कभी किसी नियम की रोक लगाई, कभी प्रश्न को ही स्थगित कराकर हिंदू-हितों को नष्ट होने से बचा लिया! सारांश यह कि हर पहलू पर लड़े, और हिंदी-हित को आगे बढ़ने न दिया। कुछ स्वार्थ रत हिंदी-भाषियो ने भी उनका साथ दिया, क्योंकि यदि ऐसा न करते, तो अपना मतलब सिद्ध करने मे उनकी सहायता कैसे मिलती। हम लोग, जो हिंदी को विश्वविद्यालयों मे प्रतिष्ठित कराना चाहते हैं, ज़रा सोचे, और आगे के लिये कुछ समझ-बूझकर अन्य प्रांतवासियों को अपने यहाँ बुलावें। भविष्य में ऐसे आदमी ही बाहर से बुलाए जायँ, जो कम-से-कम 'जिसका खाना, उसका गाना' इस सिद्धांत के माननेवाले तो हो; यह नहीं कि 'मियाँ की जूती, मियाँ का सर' करें। हिंदी की उन्नति के लिये यह अनिवार्य है कि हमारे विश्वविद्यालयो के अध्यापक—सब विषयों के अध्यापक—हिंदी पढ़े हों, हिंदी जानते हों, और हिंदी के हित-चिंतक हों। हमारे लिये आवश्यक है कि हम यह आंदोलन करें कि इसी प्रांत के योग्य विद्वान् हमारे विश्वविद्यालयों में अध्यापक बनाए जायँ। जो अन्य भाषाभाषी है, और हिंदी का पर्याप्त ज्ञान नहीं रखते, उन्हे कभी कहीं नियुक्त न किया जाय, और यदि कहीं पहले से ही हों, तो उन्हें हटाने का प्रयत्न निर्भय और निस्संकोच होकर किया जाय। इस आंदोलन को उठाने से उन लोगों के होश जल्दी ही ठिकाने आ जायँगे, जिन्होंने किसी कारण हिंदी या उर्दू का विरोध करने का ठेका-सा ले लिया है। यदि वास्तव में हम चाहते है कि हिंदी को उसके उपयुक्त आदर और सम्मान के पद पर प्रतिष्ठित करें, तो हमारा यह कर्तव्य है—बुद्धिमानी का यह तक़ाजा है—कि केवल हिंदी-हितैषी सज्जनो का ध्यान इस

र आकर्षित कर ही चुप न हो जायँ, बल्कि उन क्तिशाली व्यक्तियों की भी पूरी-पूरी ख़बर लें, नकी हिकमतअमलों से हिंदी को अपना अधित स्थान नहीं मिलने पाता। इतना करने पर ही हा जा सकेगा कि हिंदी-भाषियों ने अपनी मातृषा के लिये वह सब कर दिया, जिसकी उनसे शा थी, और जो उनका परम धर्म था। भक्तो तरह कोरी भावनाओं के प्रदर्शन से कुछ होना ो। विरोध की जड़ काटिए, विरोधियों को मूल कीजिए, तभी सब काम होगा।

हिंदी की उन्नति के लिये एम्० ए० में हिंदी ाई जाने की व्यवस्था होने से यह अधिक आवक और महत्त्व-पूर्ण है कि हमारे विश्वविद्यालयों अध्यापक हिंदी-भाषी हो। तभी तो विद्यार्थियों अपनी मातृभाषा से प्रेम होगा, बड़े-से-बड़े वार हिंदी मे प्रदर्शित करने की योग्यता आवेगी, र उच्च-से-उच्च साहित्य का प्रादुर्भाव हिंदी मे े लगेगा। यदि अँगरेज़ी, इतिहास अथवा अर्थस्त्र का अध्यापक हिंदी-प्रेमी है, तो कहाँ तक के विद्यार्थी इन सब विषयों के नवीन-से-नवीन ारों से अपनी मातृभाषा का भंडार न भरेंगे। तो अध्यापकों से वे उसे तिरस्कार और घृणा दृष्टि से देखना सीखते हैं। अँगरेज़ी-साहित्य भी जो विचार हिंदी मे दिखलाई पड़ते है, वे भी रेज़ी के आचार्यों से सीखने-पढ़ने के बाद विद्यार्थी- नहीं लिखते, या तो स्वयं अध्ययन करते है, या ने हिंदी-अध्यापकों से सुनते हैं। स्वयं अध्ययन े पूर्णतया समझना कठिन है, और ऐसे अध्या- ों से, जो अँगरेज़ी-साहित्य मे पारंगत नहीं, ज्ञान त करना भयावह है। इसी कारण अँगरेज़ी ारों की प्रायः छीछालेदर देखने को मिलती है।

× × ×

३. विशेषज्ञ द्वारा समालोचना

आचार्य-शिरोमणि, पूज्यपाद प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने जब से सरस्वती का संपादन अपने हाथों मे लिया, तब से मासिक पत्रों में नई-नई पुस्तकों की समालोचना छपना एक साधारण बात हो गई है। परंतु इतने वर्ष बीत जाने पर भी यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि समालोचनाएँ अधिक स्वनाम-सार्थक होने लगी है। कोई-कोई सपादक ऐसा भी करने लगे है और माधुरी और सुधा को निकालकर हमने भी ऐसा ही किया है कि जिस विषय की पुस्तक हुई, उसे उसी विषय के विशेषज्ञ के पास समालोचनार्थ भेज दिया। पर ऐसा करने से भी समालोचना की कोटि में उच्चता नहीं आई। इसके कई कारण हो सकते है। एक तो यह कि विशेषज्ञ छोटी-छोटी साधारण पुस्तकों के पढ़ने में उतना समय नहीं लगाते, जितने की अपेक्षा होती है। शायद उनके पास समय का अभाव रहता है, और उनका मन भी हरएक पुस्तक के अनुशीलन मे नहीं लग पाता। दूसरे, प्रत्येक विशेषज्ञ समालोचना करने का अधिकारी भी नहीं होता। समालोचना भी एक कला है, जो अनायास ही हर किसी को नहीं आ सकती। किसी विषय में असाधारण योग्यता प्राप्त कर लेना और बात है, और उस विषय की भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से लिखी हुई पुस्तकों के अभिप्राय के अनुरूप गुण-दोष का विवेचन करना तथा इस मर्म को निकालना कि वास्तव में लेखक के पास कुछ कहने योग्य बात है भी या नहीं, यह और बात है। अतएव किसी भी मासिक पुस्तक के लिये केवल यही गर्व की बात नहीं हो सकती कि उसमें विशेषज्ञों द्वारा समालोचनाएँ कराई जाती हैं। यदि विशेषज्ञ अच्छे समालोचक भी हुए, तब तो ठीक है, अन्यथा कोई विशेष लाभकारी अंतर नहीं पड़ सकता।

× × ×

४. नई एसेंबली

नई एसेंबली के निर्वाचन मे कांग्रेस की विजय रही। कांग्रेस के उम्मेदवारों के विरुद्ध जो कांग्रेस-

राष्ट्रीय-पार्टी के उम्मेदवार बंगाल और पंजाब में जीते, उनमे भी प्रायः सब-के-सब कांग्रेस के सिद्धांतो के अनुयायी हैं; केवल सांप्रदायिक निर्णय पर कुछ मतभेद रखते हैं। कांग्रेस की विजय बड़ी सार्थक है। उससे सिद्ध होता है कि यद्यपि कांग्रेस के भीषण कार्य-क्रम में साथ देने को साधारणतः लोग तैयार नहीं, तथापि जहाँ उनके किसी निरापद् कार्य करने से कांग्रेस की विजय होती हो, वहाँ वे सब ख़याल छोड़कर कांग्रेस के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि समर्पण करते है। सर्व-साधारण जनता यही जानती और मानती है कि कांग्रेसवाले उसी के लिये लड़ते है, उसी के हितो की रक्षा के लिये जेल जाते है, और अपना तन, मन, धन, सभी स्वाहा करते है, और देश के लिये जान पर खेल गुज़रते है। उसे किसी की योग्यता नहीं लुभाती, किसी की अधिक समझदारी आकर्षित नहीं करती, न किसी की धर्म की दुहाई सुहाती है; उस पर तो बलिदान का प्रभाव है, कष्ट सहने का दर्द है, और वह सांसारिक मान-अपमान पर लात मारनेवालों को सर पर बैठाना चाहती है। जन-समुदाय की यह भावना देश का सौभाग्य है, इसी मे आगे के लिये कुछ आशा निहित है। अपने ऊपर मर मिटनेवालो के लिये यदि इतना भी न हो, तो फिर कैसी देश-भक्ति और कहाँ देशोद्धार का स्वप्न! अस्तु। जनता परीक्षा मे खरी उतरी, और उसने देश-भक्तो और देश-वीरो को आगे बढ़ने की वर्तमान शक्ति प्रदान की, इसके लिये वह बधाई की पात्र है, और इसकी ख़ुशी प्रत्येक देशवासी को होनी चाहिए।

एसेबली में कांग्रेस-पार्टी के नेता शायद श्रीयुत भूलाभाई देसाई हुए हैं। आप बंबई-हाईकोर्ट के नामी बैरिस्टर है, और वर्षों से प्रथम श्रेणी के वकीलो मे गिने जाते रहे हैं। आपकी कानूनी योग्यता, अपने पक्ष को समर्थन करने की दक्षता तथा आपकी बुद्धि की प्रखरता निर्विवाद है, और करीब-करीब स्वर्गीय पं० मोतीलालजी नेहरू की कक्षा तक पहुँचती है। परंतु आपको सार्वजनिक जीवन का अनुभव अभी कम है, तथा आपमे अनुयायियो को आकर्षित करने की शक्ति भी उतनी अधिक नहीं, जितनी पुरानी स्वराज्य पार्टी के नेता में थी। इस कमी की पूर्ति कांग्रेस के चुने गए सदस्यो की अधिक योग्यता, वर्द्धमान अनुशासन-प्रियता तथा देश-भक्ति की वेगवती प्रगति द्वारा अवश्य होगी, और हमें पूर्ण आशा है कि इस बार कांग्रेस-पार्टी का कार्य पहले से भी अधिक सगठित तथा सफल हो सकेगा।

जहाँ महामना मालवीयजी की अनुपस्थिति खटकती है, और उनके अप्रतिम अनुभव के अभाव की पूर्ति होना दुष्कर है, वहाँ यह देखकर संतोष होता है कि कतिपय मुसलमान सदस्य भी राष्ट्रीय विचार के हैं। यदि श्रीमोहम्मदअली जिन्ना सांप्रदायिकता की आग को भड़कने से रोक सके, और राष्ट्रीय भावना को अंशतः भी जीवित अवस्था में रख पाए, तो देश के पक्ष का समर्थन बडी योग्यता तथा शान के साथ होगा। मि० जिन्ना के समान योग्य, वाद-विवाद में दक्ष और आत्मसम्मान की रक्षा करनेवाले नेता देश में बहुत नहीं हैं, और यदि उन्होने कांग्रेस तथा राष्ट्रीय पार्टियों से सहयोग कर लिया, तो देश-हित का कार्य अत्यंत सबलता के साथ चलेगा, और कानून-विधान के अंदर जैसा कुछ कार्य हो सकता है, वह भले प्रकार हो सकेगा। देश-भर बडी उत्सुकता से एसेबली के काम की ओर दृष्टि लगाए हैं, और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि उसे हताश और निराश न होना पड़े।

× × ×

५. शिक्षा-संबंधी फिल्मो का प्रचार

भारतीय चित्रपट-परिषद् (Motion Pic-

ture Society of India) पिछले कई महीनों से शिक्षा-संबंधी फ़िल्मो के निर्माण और प्रचार के लिये बड़े प्रयत्न कर रही थी। हर्ष की बात है कि उसे धीरे-धीरे सफलता मिल रही है, और आशा की जाती है कि भारत-सरकार विशेष रूप से इस ओर ध्यान देकर शिक्षा-संबंधी फिल्मों के निर्माण मे सहायता देगी।

गत मास में – बबई के राक्सी थिएटर में, १० ऑक्टोबर को २ बजे दिन मे, उपर्युक्त परिषद् की संरक्षता मे—कुछ फिल्मों का प्रदर्शन किया गया, जो अधिकांश मे स्वास्थ्य-सबंधी विषयों की थीं। हार्निया का ऑपरेशन, रक्त-प्रवाह-पद्धति, रेडियम, एक्स-रे आदि का कार्य, हृदय की बनावट और उसका कार्य आदि-आदि फ़िल्म के रूप मे दिखलाए गए। यह अपने ढंग का अनोखा और पहला अवसर है, जो स्वास्थ्य-विभाग की उन्नति के लिये फ़िल्मो का आश्रय लेने की चेष्टा की गई है। राक्सी थिएटर में, जहाँ यह फिल्म चली थी, लगभग १२०० सीटें है। कहना न होगा कि दर्शकों से सब-की-सब भरी हुई थी, और मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी, प्रोफ़ेसर और वैज्ञानिक विद्वान् बहुत बड़ी संख्या मे उपस्थित थे। इससे पता चलता है कि भारतीय जनता शिक्षा-संबंधी फ़िल्मों में दिलचस्पी अवश्य लेगी, और उनका प्रचार लाभ-प्रद सिद्ध होगा। उपस्थित जनता ने परिषद् को ऐसे कार्य के लिये बधाई दी, और अनुरोध किया कि पुनः ऐसे ही आयोजन किए जायँ। परिषद् के ऑनरेरी सेक्रेटरी ने अपने संक्षिप्त भाषण मे आश्वासन दिया कि जनता द्वारा प्रोत्साहन मिलने पर परिषद् इस प्रचार-कार्य को बहुत आगे बढ़ा सकेगी, और आगामी वर्ष में इस कार्य में यथेष्ट उन्नति होने की संभावना है।

हम भारतीय चित्रपट-परिषद् को इस पवित्र उद्देश्य की सफलता के लिये बधाई देते है, और विश्वास करते है कि वह अपने प्रयास में जनता और सरकार, दोनो का सहयोग प्राप्त कर सकेगी।

× × ×

६. मुख की बनावट का रहस्य

आकृति से चरित्र की पहचान करना सरल भी है, और कठिन भी, परंतु सफलता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि जिसके विषय में आप कुछ जानना चाहते हो, उसे इस बात का पता न होना चाहिए कि आप अपनी दृष्टि से उसका गंभीर निरीक्षण कर रहे हैं। ऐसा प्रकट हो जाने पर उस व्यक्ति की चेष्टा और भाव भंगी बदल जायगी, और आप उसके विषय मे झूठी धारणा कर लेगे। आकृति-निरीक्षण मे सबसे बड़ी पहचान मुख से होती है। मुख के दोनो ओर तथा ऊपर-नीचे की रेखाओं की बनावट एवं उतार-चढाव मनुष्य के चरित्र को स्पष्ट कर देता है। आंतरिक असंतोष, प्रसन्नता, झुँझलाहट और गंभीरता का रहस्य होठों की बनावट तथा मुख से तुरंत ज्ञात हो जाता है।

जिस आदमी के होठ पतले और ऊपर की ओर उठे-से होते हैं, वह आत्माभिमानी, गंभीर और कम बोलनेवाला होता है।

जिस आदमी के मुख के कोनों पर होठ गिरते हुए और रेखाएँ नीचे की ओर झुकी होती है, वह चिड़चिड़े स्वभाव का और छोटी-छोटी बातों में झगड़नेवाला होता है।

जिस आदमी के होठ मुख की ओर घुमावदार और कुछ मोटे होते है, वह निराश प्रकृति का होता है।

बाहर की ओर उठे और उभरे होठोंवाला मनुष्य बनाव-चुनाव और बाहरी दिखावे का प्रेमी तथा अविश्वसनीय होता है। मोटे और चौड़े होठोंवाला मनुष्य क्रूर और हठी होता है।

बडा मुख अच्छे चरित्र का चिह्न होता है। देखने में वह सुंदर भले ही न हो, परंतु बड़े मुखवाला

मनुष्य साधारणतया उदार, सहृदय और आपत्तियों को हँसते-हँसते झेलनेवाला एवं परोपकारी होता है।

पतला, दृढ़, सुडौल और सुंदर मुख आदर्श समझा जाता है। ऐसे मुखवाला मनुष्य सौंदर्य-प्रेमी, कवि, रसिक और ईश्वर-प्रेमी होता है।

बंद रहनेवाला मुख, बहुत पतले होठ और चंचल दृष्टि कंजूसी, दरिद्रता और अविश्वास के चिह्न समझे जाते है।

× × ×

७. चेहरे का सौंदर्य और उसकी रक्षा

बहुत-सी महिलाओं के चेहरे पर चमकीलापन और तेल-जैसी किसी वस्तु का स्वाभाविक चिकनापन दिखाई देने लगता है। यद्यपि चेहरे का रूखापन स्वास्थ्य का चिह्न नहीं है, परंतु अधिक चिकनापन भी एक प्रकार का रोग है, जो सौंदर्य के लिये हानिकारक है। इसका उपचार यदि शीघ्र न किया जाय, तो यह चेहरे की कांति और त्वचा के रंग को बदल देता है।

इस रोग का मुख्य कारण अनियमित भोजन और पाचन-शक्ति की ख़राबी है। जिनके चेहरे पर सदैव चिकनापन वर्तमान रहता हो, उनको चाहिए कि अपने भोजन को सादा और सरल बनाएँ, तथा घी, तेल आदि पदार्थों का सेवन बहुत कम कर दे। मलाई, मक्खन और दूध का सेवन साधारण रूप में किया जा सकता है। दही लाभदायक है, उसका व्यवहार किया जा सकता है। पाचन शक्ति की क्षीणता और पेट साफ़ न रहने पर जल का अधिक प्रयोग आवश्यक है। दिन में आठ-दस ग्लास जल पीना चाहिए। नारंगी का रस, संतरे का जूस, नींबू, इनका व्यवहार भोजन के साथ अवश्य करना चाहिए। फल, हरे साग और सब्ज़ी का इस्तेमाल त्वचा की चिकनाई दूर करता है। खुली हवा मे व्यायाम करना भी बहुत लाभप्रद होगा।

चेहरे की बाह्य कांति के लिये उसे साफ रखना बहुत आवश्यक है। साबुन और ठडे पानी से चेहरे को दिन मे तीन-चार बार नियमित रूप से धोना चाहिए। बिस्तरे पर सोने के पहले, रात को, किसी अच्छी कोल्ड क्रीम का व्यवहार चेहरे और गर्दन के सौंदर्य को बढ़ाता है। प्रातःकाल उठकर, साबुन से धोकर रोएँदार तौलिए से चेहरे को अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। गुनगुने पानी का व्यवहार किया जा सके, तो अच्छा है। कुछ दिनो तक इस प्रकार करने से चेहरे की चिकनाई दूर हो जायगी।

× × ×

८ अभिनेताओ और अभिनेत्रियो के जीवन की संकटमय घड़ियाँ

नार्मा शियरर अमेरिका की प्रसिद्ध अभिनेत्री है। अपने फिल्म-जीवन की दुर्घटनाओं का उल्लेख करते हुए उसने एक पत्र मे लिखा है कि एक अवसर पर वह किस प्रकार अभिनय करते समय मौत के मुँह से निकल आई। वह लिखती है—

"मैं ईरीनरिच के साथ एक फिल्म में प्रधान अभिनेत्री का कार्य कर रही थी। हम लोगों को जलते हुए जंगल के भीतर से निकलना था, और उसी दृश्य की शूटिंग आरंभ हो गई। यद्यपि सचमुच का जंगल आग से फूँक देने की बात न थी, फिर भी बहुत-से दरख़्त काटकर गिरा दिए गए थे, और झाड़ियों के पत्तों से ढककर, उन पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी गई। डाइरेक्टर के संकेत करने पर मुझे और ईरीन, दोनो को लगभग सौ गज़ के जलते हुए जंगल मे भागना था। इशारा मिला, और हम दोनो भागने लगे। कैमरा ठीक से सेट नहीं था, हमे रोककर पुनः भागने को कहा गया। इस बार भी नहीं बना। जब तीसरी बार हम लोग भागे, तब तक आग काफ़ी जोर पकड़ चुकी थी, और हमारे चारो तरफ़ आग की लपटें ऊँची-

ऊँची उठती आ रही थीं। नौकरी के लिये, पेट के लिये, जान पर खेलकर हम उस आग की ओर लपके चले जा रहे थे। गर्मी से देह झुलसी जाती थी। गला सूख रहा था। वह सौ गज का फासला सौ योजन के बराबर हो गया था, और एक-एक पैर आगे बढ़ना कठिन था। मेरी आँखें बंद हो रही थीं। मै ईरीन के पीछे खिंचती हुई चली जा रही थी। डर यह लगा हुआ था कि अभी कोई ऊँची शाखा जलती हुई आकर हम पर गिरेगी, और यहीं हमारी चिता बना देगी। बाहर निकलते-निकलते मैं लगभग बेहोश हो गई थी। ईरीन मुझे खींचकर बाहर लाए। हमारा कार्य सफलता से समाप्त हो गया था। डाइरेक्टर के स्वागत के शब्द सुनकर मैंने आँखें खोलीं। मैंने घूमकर पीछे देखा, वह सारा कृत्रिम जंगल भहराकर ढेर हो गया था, और धूम्र-राशि आकाश को ढँक रही थी। मैं कष्ट को भूलकर अपनी सफलता पर हँस पड़ी, और मैंने अपने सह-अभिनेता ईरीन को धन्यवाद दिया।"

नाइल ऐस्थर नामी अभिनेता ग्रेटा गार्बो के साथ एक फ़िल्म मे अभिनय कर रहा था। कैटालीना-द्वीप के तट पर, प्रवाल की चट्टानो के निकट, समुद्र बड़ा गहरा है। वहीं पर फ़िल्म बनाया जा रहा था। नाइल को पानी के भीतर अभिनय करना था। उसी मे एक ग़ोता लगाने का दृश्य भी आ गया। कैमरा पानी पर तैरा दिया गया, और दूर का चित्र लेनेवाला विशेष सबमेरीन लेंस उसमें लगा था। नाइल ने गोता लगाया, और तह के नीचे तक जाकर लौट रहा था कि एक बड़ी भारी शार्क मछली ने उस पर आक्रमण किया। नाइल के प्राण सूख गए, क्योंकि शार्क के समान हिंसक जंतु शायद ही दूसरा कोई होता हो। नाइल स्वयं लिखता है—"मै अपने जीवन से हताश हो गया, जब मैंने बृहदाकार शार्क को मुँह फैलाए अपनी ओर आते देखा। जल से निकलकर शीघ्रातिशीघ्र बाहर आने से ही मेरे प्राणो की रक्षा हो सकती थी। मै एक ओर को घूमा, त्यों ही शार्क ने मुझ पर आक्रमण किया। मै ऊपर सतह पर जाने लगा कि शार्क ने मुझे पकड़कर नीचे की ओर खींचा। सौभाग्य-वश एक गोताख़ोर ने देख लिया, और वह छुरा लेकर पानी में कूद पड़ा। मैं ईश्वर का नाम ले रहा था कि इतने में उस गोताख़ोर ने शार्क को छुरे से मार डाला, और मेरे प्राणो की रक्षा की। पानी से बाहर आने पर मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने मुझे नया जीवन दिया।"

× × ×

६. योरपियन स्कूलों मे हिंदी का अभाव

१२ दिसंबर के 'भारत' मे प० केदारनाथ भट्ट एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने हिंदी-हितैषियों का ध्यान एक अत्यंत महत्त्व-पूर्ण विषय की ओर आकर्षित किया है। योरपियन स्कूलों मे केवल उर्दू ही पढ़ाई जाती है, हिंदी नहीं। जिन कारणों से उर्दू को ही यह महत्त्व प्रदान किया गया था, वे अब उस रूप मे नहीं रहे हैं, फिर भी कोई हिंदी की ओर दृष्टिपात नहीं करता, यह बड़ी खेद-जनक बात है। जब गवर्नमेंट सिविलियनो तथा फौज के अफ़-सरों को हिंदी और उर्दू, दोनो भाषाओं के पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करती है, और विशेष योग्यता प्राप्त करने पर उन्हे पुरस्कार भी देती है, तो कोई कारण नहीं कि उन स्कूलों में, जिनमें विशेषकर योरपियन और एंग्लो-इंडियन बच्चों की शिक्षा का प्रबंध है, केवल उर्दू ही-उर्दू के पढाने तथा परीक्षा का विषय होने का इंतज़ाम हो। समय की गति के अनुसार परिवर्तन होना सर्वथा आवश्यक है। और, हमें पूर्ण आशा है कि यदि इस विषय पर उचित रीति से आंदोलन उठाया गया, तो हिंदी अवश्य उन परीक्षाओं के लिये भी पाठ्य विषय निर्धारित हो जायगी, जिनमें योरपियन स्कूलों के विद्यार्थी बैठते हैं।

अपने पाठकों के लाभार्थ 'भारत' से पूरा पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है—

"हमारे प्रांत में अनेक योरपियन स्कूल कायम है, जिनको गवर्नमेंट से अच्छी-ख़ासी सहायता मिलती है। विशेषकर योरपियन और ऐंग्लो-इंडियन लड़के-लड़कियाँ इनमें शिक्षा पाते हैं, परतु एक काफ़ी सख्या इनमें देशी ईसाइयों तथा हिंदू-मुसलमानो के बच्चों की होती है। बहुत से हिंदू-मुसलमान पिता भी अपनी संतान को अँगरेज़ी ढंग सीखने तथा अँगरेज़ी बोल-चाल और उच्चारण मे दक्ष बनाने के हेतु इन मदरसों मे भेजते है। इनमे प्रायः विलायत के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों की प्रवेशिका-परीक्षा तक पढाई होती है।

"आरंभ में—जब अदालतों की भाषा केवल उर्दू ही थी, और सिर्फ़ अरबी-लिपि (जिसमे उर्दू लिखी जाती है) का प्रचार था—इन स्कूलों के प्रवर्तकों ने उर्दू-भाषा तथा लिपि की शिक्षा का प्रबंध किया। और, ऐसा करना किसी अंश मे उचित भी था, क्योंकि आवश्यकता इस बात की थी कि जो लड़के यहाँ से पढ़-लिखकर निकले, उन्हे सरकारी अदालतो तथा दफ़्तरों मे काम करने मे कोई अड़चन न रहे। यही प्रबंध अभी तक चला आता है। देशी भाषाओं में केवल उर्दू पढ़ाई जाती है, और उसी में मौखिक और लिखित परीक्षा होती है।

"अब ज़माना बदल गया है। हिंदी-भाषा और नागरी-लिपि का प्रवेश अदालतों और दफ़्तरो मे हो गया है। हिंदी-भाषा ने वैसे भी उन्नति के मैदान में उर्दू को पीछे छोड दिया और राष्ट्र-भाषा का पद पा लिया है। इन स्कूलो में हिंदू-लड़के और लड़कियाँ भी काफी संख्या में पढ़ने लगी है, फिर भी वही पुराना पाठ्य क्रम जारी है, कोई चेष्टा हिंदी का महत्त्व स्वीकार करने की नज़र नहीं आती। मैं समझता हूँ, इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया है। इस काम में गवर्नमेंट आर्थिक सहायता देती है, जनता का धन लगता है, इसलिये कौंसिलो मे इस विषय पर प्रश्न किए जा सकते है। हिंदू-माता-पिता भी इस आंदोलन को उठा सकते है कि हिंदी को पाठ्य क्रम मे स्थान दिया जाय। मै जानता हूँ, अनेक ऐंग्लो-इंडियन, ईसाई तथा हिंदू ऐसे है, जिन्हे हिंदी का न पढाया जाना खटकता है। परंतु अभी तक इस ओर संगठित प्रयत्न करने का उत्साह किसी ने भी नहीं दिखलाया। हमारी आदत है कि जहाँ तक विना हाथ-पैर हिलाए काम चले, वहाँ तक हम, सब चुपचाप सहन करते हुए, कुछ करना नहीं चाहते। आश्चर्य है, हिंदी साहित्य-सम्मेलन के प्रचार-विभाग ने भी अपनी दृष्टि इस ओर नहीं फेरी। ख़ैर, अब भी समय है कि यदि इस विषय मे कुछ तथ्य दिखाई दे, तो आंदोलन आरंभ कर दिया जाय।"

आशा है, हिंदी-हितैषी योरपियन स्कूलों मे हिंदी जारी कराने का उद्योग करेंगे। इंदौर के आगामी हिंदी-साहित्य सम्मेलन द्वारा एक प्रस्ताव भी इस सबंध मे पास होना चाहिए।

× × ×

१०. अद्भुत अस्थि-पंजर

हिंदुओं के युग धर्म का अलग-अलग इतिहास है। यह इतिहास वेदों तथा पुराणों में अपनी ज्योति समेटकर स्वेच्छा से ही बंद पड़ा है। आजकल इस ओर भारतीय जनता का ध्यान नहीं है। जो थोड़े-बहुत इसके पठन-पाठन में निरत है, उन्हे संसार-प्रवेश में कठिनता होती है। कारण, इस युग मे इनकी गौरव-गरिमा और उपयोगिता का मूल्य नहीं। यही कारण है कि इन तमाम शास्त्र-ग्रंथों का इतिहास एक प्रकार की मनोरंजक कथाओं के रूप में ही अपना महत्त्व रखता है। अद्भुत बातों पर लोग हँसते है, आश्चर्य करते है, और प्रणेताओं को अस्वाभाविक चित्रण के लिये दोष भी देते है। पर विधाता की इस

अनंत सृष्टि में उनकी सचाई के जब तब प्रमाण भी मिलते रहते हैं। उस समय क्षण-भर के लिये लोगों का हास्य गंभीर होकर अद्भुत रस में परिणत हो जाता है।

अभी हाल मे इसी तरह के एक सत्य का प्रमाण मिला है। दतिया के महाराज आखेट मे एक ऐसे प्राक् ऐतिहासिक अस्थि-पंजर को पाकर चकित हो गए हैं। यह अस्थि-पंजर ३१ फ़ीट लंबा है। टाँगे १० फ़ीट लंबी हैं। यह पंजर राजप्रासाद मे रक्खा गया है, और इसकी जाँच के लिये विशेषज्ञों को आमंत्रित किया गया है। देखें, ये लोग इसके संबंध मे क्या विचार प्रकट करते हैं।

× × ×

११. चार विचित्रताएँ

पेरिस फ़्रांस की राजधानी है। समस्त संसार मे अपनी श्री-शोभा के लिये प्रसिद्ध है। उसकी सबसे अधिक ख्याति विलास की सामग्री और उनके विन्यास के लिये है। ऐसे प्रसिद्ध नगर से एक विचित्र घटना का समाचार आया है। इस नगर से एक बीस साल की पूर्ण युवती को एक रोग है। इस रोग ने बड़े-बड़े डॉक्टरों को चकित कर दिया है। उसे कभी-कभी दौरा आता है, और तब वह बच्चों की तरह हाथ-पैर फेंकती है। उसके चेहरे पर बचपन की ज्योति स्पष्ट होती है, और वह दौरे मे बच्चों की ही तरह शीशी से दूध पीती है। अभी तक इसका निदान और प्रतिकार डॉक्टरों से नहीं हो सका।

दूसरी विचित्रता एक नर्तक में है। उसे यदि कलियुग का कुंभकर्ण कहा जाय, तो आश्चर्य न होगा। विश्व-ख्यात नर्तक मि० चार्ल्स जैक्सन आजकल लंका (कोलंबो) मे पधारे हैं। कुछ दिन पहले वह न्यूयार्क मे अनवरत २१ दिनों तक नृत्य करके पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। इस नृत्य के बाद स्वास्थ्य-लाभ के लिये आप लगातार ४६ घंटे तक सोते रहे।

तीसरी विचित्रता—बोगरा मे सिविल कोर्ट के चपरासी अब्दुलसमद की स्त्री ने एक विचित्र बालक प्रसव किया है। इस नवजात शिशु के चार हाथ, चार पैर और दो सिर हैं। बालक स्थानीय मेडिकल स्कूल की रसायनशाला में रक्खा गया है। प्रतिदिन शिशु के दर्शनों के लिये अपार भीड़ होती है।

चौथी विचित्रता—जर्मनी मे नए क़ानून के अनुसार १११ व्यभिचारियों को नपुंसक कर दिया गया है। इनका ऑपरेशन वैज्ञानिक विधि से हुआ है। ८ मिनट में ही ऑपरेशन-क्रिया समाप्त हुई। फिर ये अपराधी कई महीनों तक अस्पताल मे रक्खे गए। इनकी देह-वृद्धि के समय-समय पर कई चित्र लिए गए, और स्वर-परिवर्तन के ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड भी।

× × ×

१२ पूना का लिबरल फ़ेडेरेशन

गत बड़े दिन की छुट्टियों मे, पूना मे, नरम-दल-वालों की बड़ी महत्त्व-पूर्ण कान्फ़्रेंस हुई। सभापति का आसन हमारे प्रांत के प्रसिद्ध उदार-दल के नेता पं० हृदयनाथ कुँजरू ने ग्रहण किया था। आपका भाषण बड़ा ओजस्वी तथा मार्मिक हुआ। पार्लियामेंट की कमेटी की रिपोर्ट पर आपने जो जो आलोचनाएँ कीं, तथा उदार-दल ने जो मंतव्य पास किया, उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उसे स्वीकार करने के लिये नरम-दल भी तैयार नहीं। चारो ओर से उसकी निंदा ही हो रही है, फिर भी भारतवासी इतने विवश हैं कि उसमे प्रस्तुत किए हुए सुधारों (?) को देश के सिर मढ़े जाने से रोक नही सकते। यदि किसी भाँति सब दल मिलकर उनका विरोध करें, तो शायद उनसे किसी अंश मे पिंड छूट सके। पर ऐसा होना कठिन है।

इस वर्ष की कार्यवाही ने साबित कर दिया है कि लिबरल-दलवाले भी देश के हिताहित का विचार

करने में किसी दूसरे दल से पीछे नहीं, और उनको खुशामदी तथा देश-द्रोही कहकर बदनाम करना सर्वथा अनुचित है। आशा है, हमारे नेता कोई ऐसी युक्ति अवश्य निकालेंगे, जिससे रिपोर्ट का विरोध सभी दल मिलकर कर सकें।

× × ×

१३ कथानक का विकास और फ़िल्म-निर्देशन

किसी फ़िल्म की सफलता के लिये यह बात अत्यंत आवश्यक मानी गई है कि उसका कथानक शृंखला-हीन न हो। कथानक का उचित विकास डाइरेक्टर की प्रतिभा और अनुभव की सच्ची कसौटी पर निर्भर है। कथानक ही किसी चित्रपट को सफल या असफल बनाता है। क्रम से पृथक् और प्रवाह से विमुख दृश्य, चाहे वे कितने ही भड़कीले और सुंदर क्यों न हों, चित्रपट के लिये किसी काम के नहीं समझे जाते। निर्माण-शाला (Studio) के कार्यकर्ताओं की कुशलता का अंदाज़ा चित्रपट के कथानक का विकास-क्रम देखकर ही लगाया जा सकता है। हिंदोस्तानी फ़िल्मों में प्रतिदिन दिखाई देनेवाली सैकड़ों अक्षम्य त्रुटियाँ हिंदोस्तानी कंपनियों के कार्यकर्ताओं की लापरवाही, जल्दबाज़ी और उत्तरदायित्व-हीनता की परिचायक हैं। सच-मुच ही भारतवर्ष के फ़िल्म व्यवसाय के लिये यह बड़े ही कलंक की बात है।

कंपनीवालों का यह कहना कि इतनी छोटी-छोटी भूलों पर ध्यान ही कौन देता है, बिल्कुल व्यर्थ है। किसी भी समझदार दर्शक की आँखों से वे भूलें छिप नहीं सकतीं। हमारे विचार से ८५ प्रतिशत फ़िल्म दर्शक उन भूलों को समझकर उन पर हँसते हैं। हाँ, ऐसे शहरों की, जहाँ सिनेमा का प्रचार प्रारंभ ही हुआ हो, बात ही दूसरी है। वहाँ पर "अंधों में काना राजा" की दुहाई देते हुए सड़ी-गली फ़िल्में भी कुछ-न-कुछ कमा ही लेती हैं। दर्शक यद्यपि एक आलोचक की दृष्टि से फ़िल्म को भले ही न देखता हो, फिर भी उसे यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक-अमुक स्थानों पर कथानक की त्रुटियाँ आ गई हैं। उसे यह तुरंत ही जान पड़ता है कि फ़िल्म में एक अभाव, एक कमी, एक असत्यता है, जो कथानक के प्रवाह को नष्ट कर रही है, चाहे फ़िल्म कितना ही सुंदर और डाइरेक्शन की दृष्टि से उत्तम क्यों न हो। यही हाल दृश्यावली और सेटिंग्स का है, जिसकी पूर्णता किसी भी फ़िल्म के लिये अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इसी पर कथानक का मुख्य आधार रहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कथानक का विकास क्रमशः दो बातों पर अवलंबित है, और निर्माण-शाला के दो प्रमुख विभाग उस कार्य के उत्तरदायी रहते हैं—पहला है कला-निर्देशक (Art Director), और दूसरा है फ़िल्म निर्देशक (Film Director)। हमने लेखक (Author) का उल्लेख जान-बूझकर छोड़ दिया, क्योंकि उसका फ़िल्म-जगत् में कोई अस्तित्व ही नहीं, कोई स्थान ही नहीं। उसका कथानक निर्देशक के द्वारा परिवर्तित, परि-वर्द्धित, संशोधित होकर संक्षेप में कट-पिटकर, सत्यानाश होकर सिनेमा के पर्दे पर आता है। इस-लिये जब तक लेखक को फ़िल्म-निर्माण में स्वतंत्रता से सम्मति देने का अधिकार नहीं प्राप्त होता, तब तक उसे कथानक के अच्छे या बुरे होने का उत्तरदायी ठहराना उसके साथ भयंकर अन्याय होगा! अस्तु।

प्रमुख विषय पर लौटते हुए हम पहले कला-निर्देशक के कार्य की ओर दृष्टि डालते हैं। जैसा पहले लिखा जा चुका है, सेटिंग्स की उपयुक्तता कथानक के लिये अत्यंत आवश्यक है। कथानक में वर्णित दृश्यावली को पहले ही सोचकर तैयार कर लेना चाहिए, और उसका पूरा प्रबंध रखना चाहिए। कला निर्देशक बाह्य एवं अंतरंग दृश्यों को चित्रित करने के प्रथम यदि यह निश्चित कर ले कि उन

दृश्यों का चुनाव सर्वोत्तम हो, तो वह सफलता पा सकता है। परंतु आजकल हम देखते हैं कि बिलकुल उलटी बात हो रही है। कला-निर्देशक केवल एक दिन का काम-चलाऊ दृश्य सोच लेगा, और दूसरे दिन की चिंता न करेगा। कल की कल देखी जायगी, इस विचार के आते ही कथानक की शृंखला-हीनता का आरंभ हो जाता है। दृश्यों का तारतम्य ठीक न रहने से फ़िल्म में कलात्मक त्रुटियों का होना अवश्यंभावी है। कथानक का मुख्य भाग इस प्रकार कला-निर्देशक के हाथों नष्ट किया जाता है। दूसरे, हमारे आजकल के अधिकांश आर्ट-डाइरेक्टर किसी भी दृश्य का चित्रण (Shooting) करते समय मनोवैज्ञानिक प्रभाव की ओर ध्यान नहीं देते। किसी एक सीन में भिन्न-भिन्न कार्यावस्थाओं (Stages of Action) का समावेश चित्रित करने के लिये यह आवश्यक है कि कला-निर्देशक उनकी पृथक्-पृथक् क्रमागत सूची तैयार कर ले, और तब काम शुरू करे। भारतीय फ़िल्म-कंपनियाँ इस विषय को कोई महत्त्व नहीं देतीं। और, यदि उनकी त्रुटियाँ बतलाई जाती हैं, तो उत्तर मिलता है—जल्दी में यह बात हो गई, क्या किया जाय, समय नहीं था!

दूसरा उत्तरदायित्व है फ़िल्म-निर्देशक का, जो कथानक को इच्छानुसार रूप देकर फ़िल्म की सफलता या असफलता का कारण बनता है। कथानक में वर्णित पात्रों का चरित्र-चित्रण, अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का उचित चुनाव, उनको भाव-प्रदर्शन की शिक्षा देना आदि-आदि कार्य उसे करने पड़ते हैं। हिंदोस्तानी फ़िल्मों में डाइरेक्टरों की योग्यता के विषय में कुछ कहने के बदले हम पाठकों से यही कहेंगे कि वे स्वयं ही फ़िल्मों को देखकर समझ लें। इस विषय की आलोचना ही व्यर्थ है। अच्छा और बुरा, दोनो का अस्तित्व प्रत्येक स्थान में होना अनिवार्य है। फिर भी हमारे अधिकांश चित्रपट अच्छे कहलाने की अपेक्षा बुरे ही कहलाते हैं। इसका कारण उचित डाइरेक्शन का अभाव है। कथानक को सँभालना और उसे जन-रुचि के अनुकूल बनाना एक कुशल डाइरेक्टर का कार्य होता है। भारतीय फ़िल्मों में कहानियाँ इसीलिये अधिकांश में बुरी आती हैं, क्योंकि आजकल के डाइरेक्टरों की योग्यता सीमित है, और वे अपने कार्य के उत्तरदायित्व को नहीं समझते। उनका यह कार्य कथानक-लेखक के महत्त्व को छिपाए हुए है, किंतु यह निश्चय है कि ज्यों-ज्यों देश में राष्ट्र-भाषा हिंदी का प्रचार बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों प्रतिष्ठित हिंदी-लेखक भी, अधिक आमदनी के लोभ के कारण, सिनेमा की ओर झुकेंगे, और तब संभव है कि कथानक-लेखक का पद डाइरेक्टर के पद से नीचा न रहकर ऊँचा हो जाय। भारतीय सिनेमा-व्यवसाय का भविष्य बहुत उज्ज्वल है और आगे चलकर वही कंपनी सबसे अच्छी चलेगी, जिसमें धनिकों और प्रतिष्ठित कवि-कोविदों का सहयोग होगा। क्या इन प्रांतों के रईस फ़िल्म-प्रेमी सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों का सहयोग प्राप्त करके कोई श्रेष्ठ फ़िल्म-कंपनी खोलने का शीघ्र ही आयोजन करेंगे?

× × ×

१४. सुधा द्वारा कलाकारों के लिये ४ स्वर्ण-पदक

सुधा की आगामी संख्या से इस वर्ष का दूसरा खंड शुरू होगा। इधर कई महीने से सुधा को हमने बहुत अच्छा निकालने की कोशिश की है। फ़रवरी-संख्या से और भी उन्नति करने जा रहे हैं। इस नए खंड में (अर्थात् आगामी ६ संख्याओं में) जो कविताएँ, कहानियाँ, लेख और चित्र छपेंगे, उनमें सर्वोत्तम कविता, कहानी, लेख और चित्र के लिये एक-एक स्वर्ण-पदक या चाँदी का कटोरा दिया जायगा। विजेता चाहेंगे, तो स्वर्ण-पदक या चाँदी के कटोरे की जगह हमारी प्रकाशित ५०)

की पुस्तकें भी ले सकते हैं। प्रत्येक चीज़ के लिये ५-५ निर्णायक नियुक्त किए जायँगे, जिनके नाम हम आगामी किसी संख्या मे प्रकट करेंगे। सुधा के प्रेमी कवियों, आख्यायिकाकारों, लेखकों और चित्रकारों को चाहिए कि अपनी रुचिर-से-रुचिर रचनाएँ—कमनीय कृतियाँ भेजने की कृपा करें। जो महानुभाव प्रतियोगिता में शामिल न होना चाहेंगे, उन्हें उसमे शामिल नहीं किया जायगा।

× × ×

१५. भूल की स्वीकृति

मिश्रबंधु-विनोद के चौथे भाग के पृष्ठ २५३ तथा २५४ पर पं० सुंदरलाल, कटरा, प्रयाग का विवरण छपा है। उसमे आठ ग्रंथों के विवरण के पीछे इस प्रकार लिखा है—

"(६) भारत मे अँगरेज़ी राज्य (यह ग्रंथ ज़ब्त हो गया है)।

विवरण—प्राचीन निवास-स्थान धनमऊ, ज़िला मैनपुरी। आप देश-भक्त तथा राष्ट्रीय कार्यकर्ता एवं सुलेखक हैं। कई बार देश-प्रेम के कारण जेल जा चुके हैं। व्याख्यान भी आप धारा-प्रवाह देते हैं। आपके ग्रंथ देश-भक्ति-पूर्ण तथा चरित्र-शोधक हैं।"

पंडितजी ने हमें लिखवाया है कि उपर्युक्त कथन उनके विषय मे अशुद्ध है, तथा इनसे उनको हानि हो सकती है, क्योंकि वह राष्ट्रीय कार्यकर्ता नहीं हैं। लेखक तथा प्रकाशक को इस अशुद्धि से बड़ा दुःख है। ये अशुद्धियाँ मिश्रबंधु-विनोद की बची हुई सभी कापियों से निकाल दी गई हैं।

मिश्रबंधु, लेखक मिश्रबंधु-विनोद { पंडित गणेशविहारी मिश्र, रावराजा रायब० श्यामविहारी मिश्र, रायब० शुकदेवविहारी मिश्र

प्रकाशक मिश्रबंधु-विनोद { श्रीदुलारेलाल भार्गव, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ

× × ×

१६ हिंदी-भाषा-भाषियों से प्रार्थना

श्रद्धेय भाई बनारसीदासजी ने दुलारे दोहावली के विरुद्ध, 'विशाल भारत' मे, लगातार चार अंकों में प्रोपेगैंडा करके तथा इस प्रकार औरों को भी इस विषय मे, पक्ष और विपक्ष में, लिखने के लिये उकसाकर इस समग्र हिंदी संसार को दूषित वातावरण से आच्छादित कर दिया है। जनवरी-अंक में तो वह गालियों पर उतर आए हैं। ऐसे समय में जो 'समालोचक'-शीर्षक लेख पं० बनारसीदासजी के ही मित्र आदरणीय श्रीगुलाबरायजी का लिखा हुआ पौष की सुधा मे मुद्रित हुआ है, वह बहुत समयानुकूल है। आशा है, यह वर्तमान दूषित वातावरण को कुछ-न-कुछ सुधारने मे सफल होगा।

हमने सुधा में अभी तक कोई लेख दुलारे-दोहावली के पक्ष में या बनारसीदासजी के अनुचित आक्षेपों के उत्तर मे नहीं छापा है। केवल विद्वानों की लिखी बहुमूल्य सम्मतियाँ और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेख, वह भी उनके तथा उनके मित्रों के निंदा-प्रधान लेख निकलने के बाद, दुराक्रमण-रक्षा में वितरित किए हैं। फिर सम्मतियों का ऐसा उपयोग तो हम, मुद्रक, प्रकाशक और विक्रेता होने के नाते, सदा ही करते रहे हैं। हमारे लिये यह कोई नवीन बात नहीं। माधुरी और सुधा के संबंध मे यथासमय प्राप्त विद्वानों की सम्मतियाँ और लेख भी हमने इसी प्रकार छापे और भेजे थे। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी और पं० रामनरेशजी त्रिपाठी से ही सम्मतियों के सदुपयोग की यह परिपाटी हमने सीखी है। वे स्वयं और उनके पक्ष के और सज्जन भी ऐसा ही करते रहे और अब भी करते हैं। हाँ, इस संबंध मे एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है। जहाँ शिष्ट भाई बनारसीदासजी-लिखित और संपादित लेख अशिष्ट शब्दों से युक्त हैं, वहाँ हमारे द्वारा वित-

शित किए गए लेखों में अशिष्टता की गंध भी नहीं है।

भवदीय
जवाहरलाल भार्गव
व्यवस्थापक सुधा
तथा गंगा-ग्रंथागार

गंगा-ग्रंथागार
लखनऊ, १ । २ । ३५

× × ×

१७ सहृदय साहित्य संसार से सांजलि समभ्यर्थना

'ग़ालिब' बुरा न मान, जो वाअ़ज़ बुरा कहे,
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे।

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी हितैषी और भारतीय भाषाओं की रानी सुमधुर 'व्रजबानी' के परम प्रेमी सवाई महेंद्र महाराजा श्रीमान् ओरछाधिपति ने जो प्रसिद्ध पुरस्कार प्रतिवर्ष प्रदान करने की घोषणा की है, उसकी प्रतियोगिता के लिये दुलारे-दोहावली, गंगा-ग्रंथागार द्वारा, टीकमगढ़ भेजी भी न गई थी कि 'विशाल भारत' के विशाल-हृदय संपादक, प्रसिद्ध प्रोपेगैंडिस्ट, प्रिय भाई बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने उसके विषय में निंदात्मक, द्वेष-जन्य और जघन्य प्रचार प्रारंभ कर दिया—अपनी पतनोन्मुखी प्रोपेगैंडा-प्रवृत्ति का उन्होंने मुझे भी अब की बार शिकार बना डाला! तब तक मैंने पत्र-पत्रिकाओं को अपना ग्रंथ आलोचनार्थ भेजा भी न था, केवल अपने मित्र कवि-कोविदों को अवलोकनार्थ तथा सम्मत्यर्थ ही प्रेषित किया था, और उनमें से सिर्फ़ २५-३० सज्जनों की सम्मतियाँ आई थीं, जो ग्रंथ के अंत में ग्रंथित हैं। अनेक बड़े-बड़े विद्वानों को तब तक दोहावली भेजी भी न गई थी, और अब भी अनेक मान्य मित्रों और सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों की सेवा में, समाप्तप्राय हो जाने के कारण, नहीं जा सकी है। (उन्हें शीघ्र ही सटीक संस्करण, जो छप रहा है, भेजा जायगा। तब तक के लिये उनसे क्षमा-प्रार्थी हूँ।) अस्तु।

भाई बनारसीदासजी का विस्तृत नोट निकल जाने के कई दिन बाद तक मैं यह बात सोचता रहा कि अपनी दोहावली प्रतियोगिता में भेजूँ या नहीं, पर अंत में मित्रों ने प्रतियोगी पुस्तकों के पहुँचने की निश्चित तारीख़ १५ ऑक्टोबर निकट आ गई देख प्रेम-पूर्वक आग्रह करके, उसे अंतिम दिन, अर्थात् १४ ऑक्टोबर को, आदमी द्वारा, टीकमगढ़ भिजवा ही दिया! फिर मित्रवर पं० केदारनाथजी भट्ट, पं० हरिशंकरजी शर्मा, श्रीयुत महेंद्रजी तथा और भी अनेक गण्य-मान्य सुप्रतिष्ठित साहित्य-सेवियों द्वारा, जिनका नाम समय आने पर बतला दिया जायगा, मुझे यह सूचना मिली कि भाई बनारसीदासजी ने यह बात स्वीकार कर ली है कि उन्होंने दुलारे-दोहावली और मेरे साथ यह अनुचित प्रोपेगैंडा करके अन्याय किया है, और अब आगे दुलारे-दोहावली के गुणों की ओर भी 'विशाल भारत' के पाठकों का ध्यान वह आकर्षित करेंगे। उन्होंने ऐसा नहीं किया, यह ठीक ही किया! दोहावली को उन्होंने पहले दो कौड़ी की बतलाया और अब भी उसे बिलकुल रद्दी समझ रहे हों—उसमें एक भी दोहा उन्हें अच्छा न दिखलाई देता हो, इसमें भी मुझे कोई एतराज़ नहीं, क्योंकि मैंने तो स्वयं ही इसे 'नीरस कृति' लिखा है। परंतु दुःख की बात तो यह है कि मेरे और मेरी दोहावली के कारण अनेक सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियों और प्रकांड पंडितों पर—पूज्य रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र, डॉक्टर भगवानदास, पं० मधुसूदनजी ओझा, डॉक्टर गंगानाथ झा, पं० बालकृष्णजी मिश्र, पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, 'भानु'जी, पं० रामचंद्रजी शुक्ल, लाला सीतारामजी, 'रसाल'जी, महाकवि 'शंकर', पं० पद्मसिंहजी शर्मा (जो वास्तव में चाय पीने के शौक़ीन थे), पं० केदारनाथ भट्ट, पं० हरिशंकर शर्मा, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त, बाबू सियारामशरणजी गुप्त, अजमेरीजी, 'निराला'जी, सुमित्रानंदनजी पंत, प्रो० शिवाधारजी पांडेय, प्रो०

जीवनशंकरजी याज्ञिक आदि के ऊपर — व्यर्थ के छीटे पड रहे है ! चतुर्वेदीजी कई कारणों से हमसे नाराज़ हैं, यह बात कई मित्रों से उन्होंने स्वीकार भी की है, और दोहावली की वह तारीफ करेंगे, तथा उसमे अच्छे दोहों की कमी नहीं है, यह भी उन्होंने कई मित्रों से कहा है। पर तो भी इधर उन्होंने दोहावली की आलोचना न करके—उसके गुण-दोष न दिखाकर अशिष्ट शब्दों और वाक्यों से भरे दो विषाक्त लेखो से 'विशाल भारत' के कलेवर को विभूषित किया है !

चतुर्वेदीजी के अशिष्ट लेखो और अनुचित आक्षेपों के उत्तर मे अनेक लेख, भडौए और कार्टून सुधा में प्रकाशनार्थ आ रहे है। अब तक मैंने अपने ऊपर किए गए इस अनुचित आंदोलन के संबंध में एक भी लेख या टिप्पणी सुधा में नहीं दी है । अपने पक्ष की रचनाएँ अपने ही पत्र मे छापने में मुझे स्वाभाविक ही संकोच प्रतीत हो रहा है । अतएव इस संबध में अपना कर्तव्याकर्तव्य जानने के लिये मै सहृदय साहित्य-ससार के (पं० बनारसीदासजी की 'साधारण जनता' के नही) निष्पक्ष निर्णय की प्रतीक्षा मे हूँ । सभी साहित्य-सेवियो से मेरा नम्र निवेदन है कि इस समय मुझे समुचित सम्मति देने की कृपा करे । इसके अतिरिक्त यह भी बतावें कि यदि ये वस्तुएँ सुधा में गईं, तो मुझे इसके संपादकत्व से अलग हो जाना चाहिए या नहीं, या सुधा के कुछ पृष्ठों को पृथक् करके उन लेखों के संपादन आदि का उत्तरदायित्व किसी अन्य व्यक्ति के सिपुर्द कर देने से भी काम चल सकता है !

अत में मै यहाँ उन सज्जनो को धन्यवाद देना उचित समझता हूँ, जिन्होने मेरे ऊपर अकारण ही (हाँ, दोहावली को प्रतियोगिता मे भेजने का अपराधी गंगा-ग्रंथागार अवश्य है) अनुचित आक्रमण होते देखकर मेरे पक्ष मे — सत्य की रक्षा के लिये लेख लिखे है । साथ ही उनसे प्रार्थना भी है कि इस समय, स्पष्ट कारणों से, वे विद्वद्वर बनारसीदासजी और उनके पक्षियो के प्रहारों की परवा न करें — उन्हे उचित उत्तर देने का प्रयत्न न करे । हाँ, वर्तमान वातावरण के शांत हो जाने के उपरांत जैसा उचित समझे, करें, और इस बीच मे यह बतलाएँ कि इस अनुचित, अशिष्ट आंदोलन मे आगे मेरा क्या कर्तव्य होना चाहिए । मेरे इस छोटे-से साहित्यिक जीवन मे जहाँ न-जाने कितने कृपालु कवि-कोविदों ने मुझे गंगा-पुस्तकमाला, सुकवि-माधुरी-माला, महिला-माला, बालविनोद-वाटिका, धार्मिक ग्रंथमाला, माधुरी, सुधा आदि द्वारा राष्ट्र-भाषा हिंदी की साधारण सी सेवा करते रहने मे सदा समुचित सहायता पहुँचाई है, इन कठिन कार्यों में करावलंब दिया है, निरतर प्रोत्साहन प्रदान करके प्रगति की ओर ही प्रेरित किया है, वहाँ कुछ पत्र-पत्रिकाओं और सहृदय सज्जनों ने, समय-समय पर, अपनी स्वाभाविक प्रहार-प्रवृत्ति का शिकार बनाकर, मुझे लेखन-सपादन प्रकाशन से विरत करके पृथक् करने में भी कोई कोर-कसर नही रक्खी ! परंतु इस पेचीदे, पर पुनीत पथ से मैं विचलित नहीं हुआ । विष-भरे वारो को मैने शात होकर सहन किया है, प्रत्युत्तर मे प्रहार करने का प्रयत्न, जहाँ तक संभव हुआ है, स्वयं नहीं किया । हिंदी-संसार मेरी इस मौनवृत्ति से पूर्णतया परिचित है । परंतु अब की बार, दलबंदी द्वारा, मुझ पर वार किया गया है, और शिष्टता की सर्वथा अवहेलना की गई है, अतएव परिस्थिति कुछ और ही है । अस्तु ।

साहित्यिक जीवन के इस कंटकाकीर्ण मार्ग में जिन साधारण स्थिति के साहित्यिकों से लेकर बड़े-बडे राजे-महाराजे कलाविदों तक ने अपना मैत्री का कमनीय, कोमल, किंतु सुदृढ कर बढाकर मुझे सदा सहायता प्रदान की है, उन्हीं के सहयोग

से मैं इस आक्रमण को भी टाल सकूँगा—विरोधी दल के अकारण विद्वेष के बादल मित्र-मंडली के सत्य-समीर द्वारा उड़ा दिए जायँगे, और साहित्याकाश पूर्ववत् निर्मल दृष्टिगोचर होगा, ऐसा मेरा अटल-अचल विश्वास है। वर्तमान वातावरण में सहृदय साहित्य संसार से—माननीय मित्रों से—मेरी यही सांजलि समभ्यर्थना है—

हियौ-नेह दै जो दियौ साहित-दियौ जगाइ,
किंचित सिंचित राखियौ, ह्वै सूनो न बुताइ।

कवि-कुटीर
१।२।३६

विनीत—
दुलारेलाल भार्गव

दुलारे-दोहावली पर श्रेष्ठ विद्वानों की सम्मतियाँ

आचार्य-श्रेष्ठ बाबू श्यामसुंदरदास के सर्वश्रेष्ठ शिष्य, हिंदी के एकमात्र डी० लिट्०, हिंदी के उदीयमान लेखक और सुकाव्य-मर्मज्ञ डॉक्टर पीतांबरदत्तजी बड़थ्वाल, जिन्होंने प्राचीन हिंदी-साहित्य का विशेष रूप से अध्ययन किया है—'दोहावली' पढ़कर यत्परो नास्ति आनंद हुआ। आप अपनी रचना को 'नीरस' कैसे कहते हैं ? यदि ऐसी सरस रचना को नीरस कहा जाय, तो सरस रचनाओं की गिनती में कितनी आ पावेंगी ? आपकी अनोखी सूझ-बूझ, ललित शब्द-साधना, चमत्कारी संबंध-गुंफन, सब सराहनीय है। आप सचमुच वाग्देवी के दुलारे लाल हैं। उसने काव्य-प्रणयन के भृगु-पंथ* को आपके लिये देहली का पैड़ा बनाकर आपके भार्गवत्व की रक्षा की है। मैं राष्ट्रीय विषय ले आने-मात्र के लिये आपकी प्रशंसा नहीं करूँगा, बल्कि इस कारण कि राष्ट्रीय घटनाओं को भी आपने काव्य के साँचे में ढाल दिया है।

इस रूखे जमाने में भी आपने पुरानी रसिकता के मुग्धकर दर्शन कराए हैं। इसमें संदेह ही नहीं कि आप इस युग के 'बिहारी' हैं। वह समय दूर नहीं जान पड़ता, जब 'बिहारीलाल' कहते ही हठात् दुलारेलाल भी मुँह से निकल पड़ेगा। सिलाकारीजी ने अपनी बृहत् प्रस्तावना लिखकर इस संबंध में कहने के लिये कुछ छोड़ा ही नहीं है, इसी से अधिक कुछ नहीं लिखता।

काव्य-कल्पद्रुम के यशस्वी लेखक, धुरंधर काव्य-मर्मज्ञ, कविवर श्रीयुत कन्हैयालालजी पोद्दार—जब कि खड़ी बोली के मेघाच्छन्न, अंधकारावृत नभोमंडल में विरल नक्षत्र की भाँति व्रजभाषा-काव्य लुप्तप्राय हो रहा है, ऐसे समय में दुलारे-दोहावली की भाव-पूर्ण, रमणीय, चित्ताकर्षक रचना वस्तुतः चंद्रोदय के समान है।

दुलारे-दोहावली की शैली व्रजभाषा के प्राचीन दोहा-साहित्य के अनुरूप कोमलकांत पदावली युक्त, रस, भाव, ध्वनि, अलंकार आदि सभी काव्योचित पदार्थों से विभूषित है। कुछ दोहे तो बड़े ही चित्ताकर्षक हैं। वे तुलनात्मक आलोचना में महाकवि बिहारीलाल के दोहों की समकक्षता उपलब्ध कर सकते हैं।

निस्संदेह दुलारे-दोहावली अपनी अनेक विशेषताओं के कारण व्रजभाषा-साहित्य में उच्च स्थान उपलब्ध करने योग्य है।

आचार्य रामकुमार वर्मा एम्० ए०, हिंदी-विभाग, इलाहाबाद-युनिवर्सिटी—मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं है कि दोहावली में कल्पना और अनुभूति का जितना सजीव चित्रण हुआ है, उतना आधुनिक व्रजभाषा के किसी भी ग्रंथ में नहीं। यह आधुनिक व्रजभाषा में सर्वोत्कृष्ट रचना है। विशेषता तो यह है कि इस दोहावली में व्रजभाषा ने नवीन युग की भावना उतने ही सौंदर्य से प्रदर्शित की है, जितने सौंदर्य से राधाकृष्ण के शृंगार की भावना। इसमें संदेह नहीं कि आपकी यह कृति अमर रहेगी।.. व्रजभाषा में लिखनेवाले आधुनिक कवियों के लिये दुलारे-दोहावली आदर्श रचना होगी।

---

* भृगु-पंथ बदरीनारायण में आगे है, जिस पर चलना असंभव ही-सा है। संभवतः इस मार्ग से ही भृगु मुनि नारायण के दर्शन के लिये अपने आश्रम से उतरते होंगे।

दोहावली पर 'रसाल'जी की सम्मति !

ब्रजभाषा-काव्य के सुप्रसिद्ध मर्मज्ञ और कविश्रेष्ठ, रत्नाकरजी के 'उद्धव-शतक' और हरिऔधजी के 'रस-कलश' के भूमिका-लेखक तथा सबसे बड़े प्रशंसक, वर्तमान समय में ब्रजभाषा-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक **विद्वद्वर पं० रमाशंकर जी शुक्ल 'रसाल' एम्० ए० (हिंदी-अध्यापक प्रयाग-विश्वविद्यालय)** [illegible] आधुनिक ब्रजभाषा-काव्यों में ही नहीं, बिहारी-सतसई तक से ऊँची रचना मानते हैं। सम्मति पढ़िए—

आपकी 'दोहावली' बड़े ही चाव से आद्योपांत देखी। मुझे तो इसके बहुत से दोहे आपने 'द्विवेदी-मेला' के अवसर पर सुनाए थे, और मैंने उनकी तभी मुक्त कंठ से सराहना की थी। साथ ही 'दोहावली' को शीघ्र ही प्रकाशित करने का आग्रह भी किया था। आज इसे इस [illegible] में, साथ प्रकाशित देख मुझे वास्तव में बहुत अधिक प्रसन्नता हुई है। यह तो [illegible] होगा कि मैं आपकी 'दोहावली' को साहित्य-सदन की 'रत्नावली' कह चुका हूँ। दोहे वास्तव में अपने रंग-ढंग के अनुपम हैं। ये बड़े ही ललित, काव्य-कला-कलित एवं ध्वनि-व्यंजना-वलित हैं। जैसा अन्य विद्वानों ने इस 'दोहावली' के संबंध में कहा है, वैसा प्रत्येक काव्य-कला-कौशल प्रेमी [illegible] कहेगा। इसकी महत्ता-सत्ता दिन-प्रति-दिन बढ़ेगी। सत्काव्य के सभी [illegible] इसमें सुंदर रूप से प्राप्त होते हैं। यों तो सतसइयाँ कई हैं, किंतु आपकी यह 'दोहावली' [illegible] ही है। [illegible], काव्य-कौशल, सभी दृष्टि से यह सर्वथा सराहनीय है। आप [illegible] रचना में [illegible]। ब्रजभाषा-काव्य के रसाल-वन में कल कंठ से ककुभ कूजित करनेवाला कोकिल यदि आपको उस रचना के लिये कहा जाय, तो सर्वथा उपयुक्त ही होगा। यदि इस रचना को मुक्तक-माला की मंजु मणि-मनका कहें, तो अत्युक्ति न होगी। यदि विद्वानों ने इसके दोहों को बिहारी के दोहों के समकक्ष या उनसे भी कुछ उन्नत कहा है, तो ठीक ही कहा है। ब्रजभाषा-काव्य-क्षेत्र में इस समय इस रचना तथा आपको बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त हो गया है। मुझे पूर्ण आशा है कि इसके बाद जब आपकी पूरी सतसई प्रकाशित होगी, तब हिंदी-संसार अन्य सतसइयों को सर्वथा भूल जायगा। आपने ब्रजभाषा-काव्य को उस रचना के रसामृत से सिंचित कर नव-जीवन प्रदान कर दिया है। अब यह कहना, जैसा कुछ लोग कहते हैं, कि अमुक कवि (सत्यनारायण, हरिश्चंद्र आदि) ब्रजभाषा का अंतिम कवि था, सर्वथा भ्रममूलक और भिन्न-रुचि-मात्र-सूचक ठहरता है। किं बहुना ? निष्कर्ष यह है कि इसमें वाक्य लाघव, अर्थ गौरव, माधुर्य एवं मंजु मार्दव सर्वत्र चारु चातुर्य-चमत्कार के साथ मिलते हैं। वर्तमान समय में प्रकाशित काव्यों में यह सबसे उत्कृष्ट है।—